स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसादजी-द्वारा

संस्थापित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाके अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड, तमिल आदि प्राचीन भाषाओंमें उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन-साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उसका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन भण्डारोंकी सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित हो रहे हैं।

•

ग्रन्थमाला सम्पादक

डॉ० हीरालाल जैन, एम० ए०, डी० लिट्०

डॉ० आ० ने० उपाध्ये, एम० ए०, डी० लिट्०

•

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता–२७

प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी–५

विक्रय केन्द्र : ३६२०।२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–६

मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी–५

•

स्थापना : फाल्गुन कृष्ण ९, वीर नि० २४७० ● विक्रम सं० २००० ● १८ फरवरी सन् १९४४



स्व० मूर्तिदेवी, मातेश्वरी साहू शान्तिप्रसाद जैन

JÑĀNAPĪTHA MŪRTIDEVĪ JAINA GRANTHAMĀLĀ : Apabhraṁśa Grantha No.7

[Thesis approved for the Ph. D. Degree of the University of Jabalpur.]

JAMBŪSĀMICARIU

of

VĪRAKAVI

[Critically Edited with Hindi Introduction, Translation, Appendices etc.]

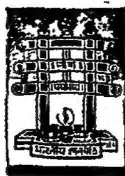
Edited by

Dr. Vimal Prakash Jain, M. A., Ph. D.

Reader in the Deptt. of Sanskrit, Pali &

Prakrit, University of Jabalpur

JABALPUR



BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA PUBLICATION

First Edition— VĪRA SAṀVAT 2494, V. S. 2025, 1968 A. D.

Price Rs. 15/-

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA MŪRTIDEVĪ

JAINA GRANTHAMĀLĀ

FOUNDED BY

SĀHU SHĀNTIPRASĀD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE BENEVOLENT MOTHER

SHRĪ MŪRTIDEVĪ

IN THIS GRANTHAMĀLĀ CRITICALLY EDITED JAIN ĀGAMIC, PHILOSOPHICAL, PURĀNIC, LITERARY, HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS AVAILABLE IN PRĀKRIT, SANSKRIT, APABHRAṂSA, HINDI, KANNAD, TAMIL ETC., ARE BEING PUBLISHED IN THERE RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR TRANSLATIONS IN MODERN LANGUAGES

AND

CATALOGUES OF JAINA BHANDARAS, INSCRIPTIONS, STUDIES OF COMPETENT SCHOLARS & POPULAR JAIN LITERTURE ARE ALSO BEING PUBLISHED.

●

General Editors

Dr Hiralal Jain, M A., D Litt
Dr A N Upadhye, M. A., D. Litt.

●

Bharatiya Jnanpitha

Head office. 9 Alipore Park Place, Calcutta-27.
Publication office : Durgakund Road, Varanasi-5.
Sales office : 3620/21 Netaji Subhash Marg, Delhi-6.

●

Founded on Phalguna Krishna 9, Vira Sam. 2470, Vikrama Sam. 2000.18th Febr. 1944

प्रधान सम्पादकीय

जम्बूस्वामी जैन या श्रमण संघके एक विशेष पूज्य व्यक्ति हैं। वे महावीरके साक्षात् शिष्य सुधर्म द्वारा संघमें दीक्षित किये गये थे, अन्तिम केवली थे और उनका ४६३ ई० पू० मे निर्वाण हुआ। आगम ज्ञानकी परम्परामें जम्बूस्वामीका योगदान स्मरणीय हैं। अर्धमागधी आगमके अनुसार सुधर्मस्वामीने जम्बूको अंग ग्रन्थोका उपदेश दिया और जम्बूस्वामीने अपने शिष्योको। यद्यपि वे ऐतिहासिक व्यक्ति थे, फिर भी उनके जीवनके विषयमें समकालीन या आगम स्रोतोंसे हमें बहुत कम जानकारी प्राप्त होती है। तथापि उनके सम्बन्धकी बहुत कुछ बातें हमें अन्य स्तरोंके परवर्ती जैन साहित्यसे उपलब्ध होती है। उनके जीवनकी मौलिक घटनाएँ अश्वघोष रचित 'सौंदरनन्द' काव्यमें चित्रित नन्दके चरित्रके समानान्तर प्रतीत होती है। कालान्तरमें जम्बूस्वामीको यह परम्परागत जीवनी विविध स्रोतोंसे प्राप्त अनेक उपाख्यानोंसे जुड गयी और समृद्ध हुई। जैन लेखकोंमें जम्बूस्वामीका जीवन इतना लोकप्रिय और प्रेरक सिद्ध हुआ कि विभिन्न भाषाओंमें लगभग ९५ रचनाएँ इस विषयको लेकर रची गयी हैं।

प्रस्तुत संस्करणमें महाकवि वीर-द्वारा रचित 'जंबूसामिचरिउ' नामक अपभ्रंश ग्रन्थ प्रस्तुत किया जा रहा है। इसके रचयिता विशेष ज्ञानी हैं। उन्होने कालिदास, पुष्पदंत आदि पूर्व कवियोके साहित्यिक गुण परम्परासे प्राप्त किये है तथा उनके काव्यने नयनन्दी, रइधू, राजमल्ल आदि परवर्ती कवियोको प्रभावित किया है। उनकी रचनाओंमें प्रस्तुत काव्यसे समानता रखनेवाले अनेक खंड सरलतासे खोजे जा सकते हैं। वीर कविने अपने जीवन सम्बन्धी अनेक बातें कही हैं। उनका जीवन-काल विक्रम संवत् १०१०–१०८५ तक पाया जाता है। उन्होने १०७६ वि० सं० अर्थात् १०१९ ई० में जंबूसामिचरिउको पूर्ण किया।

डॉ० विमलप्रकाश जैनने प्रस्तुत संस्करणमे अपभ्रंश काव्य जंबूसामिचरिउका सम्पादन पाँच हस्तलिखित प्रतियोके आधारसे किया है जिनमें सबसे प्राचीन प्रति वि० सं० १५१६ की है। उन्होने उन सभी प्राचीन प्रतियोके पाठान्तर संक्षिप्त रूपसे अंकित किये हैं। अपभ्रंश पाठके नीचे हिन्दी अनुवाद है जो मूलानुगामी होते हुए भी ऐसी धारावाही शैलीसे प्रस्तुत किया गया है कि वह स्वतन्त्ररूपसे भी पढ़ा जा सकता है। उक्त प्राचीन प्रतियोमें-से तीनमें संस्कृत टिप्पणी पायी जाती है जिसे सावधानीपूर्वक सम्पादित कर अन्तमें जोड़ दिया गया है। शब्दकोशमें वर्णानुक्रमसे अपभ्रंश शब्दोकी सूची, उनके संस्कृत रूपो तथा सन्दर्भों सहित संकलित की गयी हैं। अन्तमें ग्रन्थमें आये भौगोलिक नामोकी एक सूची है जिनका आवश्यक स्पष्टीकरण और उचित सन्दर्भ दिया गया है।

डॉ० वि० प्र० जैनकी प्रस्तावना ग्रन्थका एक सर्वांग सुन्दर अध्ययन प्रस्तुत करती है। सम्भवतः यह अपने ढंगका प्रथम सर्वांगपूर्ण प्रयास है, जिसमें जम्बूस्वामीके जीवनका सभी दृष्टियोंसे अध्ययन किया गया है। उन्होने उसके महाकाव्यात्मक लक्षणो, विषय-वस्तुसे सम्बद्ध विभिन्न चरित्रों, विषयके आभ्यन्तरवर्ती उपाख्यानों, काव्यरसों तथा अलंकारों एवं कवि-द्वारा प्रयुक्त छन्दोंका अध्ययन किया है। प्रस्तावनाके एक भागमें काव्यकी शैलीका ग्रन्थके सन्दर्भों सहित मूल्यांकन किया गया है। वीर कवि-द्वारा प्रयुक्त अपभ्रंशभाषाका उसकी ध्वनियों, संज्ञारूपो और क्रियारूपों आदिका विस्तारसे विवरण दिया गया है। वीर कविकृत इस जंबूसामिचरिउके आधारसे जम्बूस्वामीके जीवनके आलोचनात्मक अध्ययन-द्वारा लेखकने जबलपुर विश्वविद्यालयसे पी-एच० डी०की उपाधि अर्जित की है जो उचित ही है।

General Editorial

Jambūsvāmin is an important dignitary of the Jaina or Śramaṇa Saṃgha. He was initiated into the order by Sudharman, the immediate pupil of Mahāvīra. He passed away as the last Kevalin in c. B. C. 463. In the inheritance of scriptural knowledge Jambūsvāmin has played a memorable role. As presented in the Ardhamāgadhī canon, the Aṅga texts are addressed by Sudharman to Jambū who, then, imparted the same to his pupils Though he was a historical person, we know very little about his biography from contemporary or even canonical sources. A good deal of information about him, however, is available in different strata of later Jaina literature. The basic details of his biography appear to have been parallel with those of Nanda's life as depicted in the Saundarananda, a poem by Aśvaghoṣa. With the passage of time, this traditional biography of Jambūsvāmin got interlinked with and enriched by a large number of sub-stories in different sources. With the Jaina authors the life of Jambūsvāmin has proved to be so popular and inspiring that some 95 works in different languages have been written on this theme. In the present edition is presented the Apabhraṁśa work, Jambūsāmicariu composed by Vīra. The author is a man of learning. He has inherited the influence of earlier poets like Kālidāsa, Puṣpadanta etc ; and his poem has left as well its influence on later authors like Nayanandī, Raidhū, Rājamalla and others. A number of parallel passages in their works are easily traceable. The author Vīra gives plenty of autobiographical details. He is assigned to a period Vikrama Samvat 1010–1085. He completed the Jambūsāmicariu in V. S. 1076, i. e , A D. 1019.

Dr. V. P. Jain has carefully edited in this volume the Apabhraṁśa text of Jaṁbūsāmicariu based on five mss. (the earliest of the V. S 1516) and noting their various readings in a concise manner. The text is accompanied below by a Hindi translation which is close to its contents and is so fluently presented that it can be read by itself. The Sanskrit gloss on this text available in three Mss. is carefully edited and presented at the end The Śabdakośa gives an alphabetical register of Apabhraṁśa words with their Sanskrit equivalents and references to the text. At the end there is a list of Geographical names found in this work with necessary explanation and suitable references

Dr. V. P. Jain's introduction is a thorough piece of study. Perhaps here is an exhaustive attempt, first of its kind, to study the biography of Jambūsvāmin in all its aspects The editor has critically evaluated the Jambūsāmicariu as a Kāvya. He has studied its charactristics as a Mahākāvya, the different characters involved in its plot, the sub-stories intervening the theme, poetical sentiments and embellishments permeating the presentation and the metrical forms employed by the author. A special section is devoted to the stylistic estimate of the poem with necessary references to the context. The Apabhraṁśa dialect used by Vīra is described in

details with regard to its phonology, declensions and verbal forms etc. This critical study of the Life of Jambūsvāmin on the basis of Jambūsāmicariu of Vīra has justly earned the Ph. D. degree of the University of Jabalpur for its author.

The General Editors of the Mūrtidevī Granthamālā are thankful to Dr. V. P. Jain for giving us his valuable edition of the Jambūsāmicariu, in Apabhraṃśa, composed by Vīra for being included in this Series. Not only he brings to light an unpublished Apabhraṃśa work but has also presented here a helpful Hindi translation and a critical and exhaustive study of all the details about the author and his works in his learned Introduction. Publication of such Apabhraṃśa works is indeed a forward step in the progress of studies of Apabhraṃśa language and literature the understanding of which is quite essential to work out the growth of New Indo-Aryan.

We record our sense of gratitude to Smt. Ramadevi Jain and to Shri Sahu Shantiprasadji Jain through whose munificence such rare works of Indian literature are being brought to light in the Mūrtidevī Granthamālā in a sumptuous form. Our thanks are due to Shri L. C. Jain, the Secretary, who is very enthusiastic in pushing the publication of such works. Dr. Gokulchandra Jain deserves our thanks. He helped us in various ways by his presence in Banaras where this work was printed.

A. N. Upadhye
H. L. Jain

प्राक्कथन

वीर कवि द्वारा रचित 'जंबूसामिचरिउ' विक्रमकी ११वी शतीका एक महत्त्वपूर्ण अपभ्रंश चरित महाकाव्य है। इसका परिचय सर्वप्रथम पं० परमानन्दजीने अनेकान्तमें प्रकाशित किया था। लगभग सात वर्ष पूर्व पूज्य डा० हीरालाल जैनने इस ग्रंथके संपादनकी ओर मेरा ध्यान आकृष्ट किया था। उसी समय कारंजा जैन शास्त्रभंडारकी एक हस्तलिखित प्रति (क) तथा आमेर जैन शास्त्र भंडारकी हस्तलिखित प्रतिकी फोटो प्रति (ख) ये दो प्रतियाँ भी मुझे उनसे उपलब्ध हुईं। इन दो प्रतियोंके आधारपर संपादन कार्य प्रारंभ करनेके बाद 'जंबूसामिचरिउ'की तीन और प्रतियाँ (ग घ ङ) उपलब्ध हुईं। इनमें सबसे अधिक प्राचीन प्रति (ख) वि० सं० १५१६ की है। इन सब प्रतियोंका पूर्ण विवरण आगे 'संपादनपरिचय'में दिया गया है।

हस्तलिखित प्रतियोंकी खोजके प्रयासोंमें 'जंबूसामिचरिउ'की एक संस्कृत पंजिका (पं) भी उपलब्ध हुई, जो संक्षिप्त होनेपर भी महत्त्वपूर्ण है। अतः उस पंजिकाको अन्य प्रतियों (ख एवं ग) में उपलब्ध टिप्पणोंके साथ संपादन करके प्रस्तुत ग्रंथके अंतमें दे दिया गया है। काव्यके मूलपाठ चयन एवं हिंदी अनुवाद, दोनोंमें इन संस्कृत टिप्पणोंसे पर्याप्त सहायता प्राप्त हुई है।

मूल अपभ्रंश प्रतियोंकी खोजके ही सिलसिलेमें जंबूस्वामीकथासे संबंधित शताधिक ऐसी रचनाओंकी जानकारी प्राप्त हुई जो विविध भारतीय भाषाओंमें भिन्न-भिन्न प्रदेशों व कालोंमें रची गयीं। उनका संक्षिप्त विवरण आगे दिया गया है।

प्रस्तुत संस्करणमें वीर कवि कृत अपभ्रंश 'जंबूसामिचरिउ'को मूलानुगामी हिंदी अनुवादके साथ सुसंपादित रूपमें सर्वप्रथम प्रस्तुत किया गया है। समालोचनात्मक संपादनकी परंपराके अनुसार इस महाकाव्यके प्रत्येक पहलूका विशेष अध्ययन करके उसके निष्कर्ष प्रस्तावनामें दिये गये हैं। ग्रंथका विशद शब्द-कोष भी प्रबंधके अंतमें दिया गया है।

जंबूस्वामीके जीवनचरितके संबंधमें आगमिक साहित्यसे लेकर संपूर्ण प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत जैन साहित्यमें जो कुछ भी सामग्री उपलब्ध है, उसका सूक्ष्मतासे अध्ययन कर प्रस्तावनामें जंबूस्वामीके जीवनचरितपर यथासंभव पूर्ण विस्तारसे प्रकाश डाला गया है। 'जंबूसामिचरिउ' महाकाव्यके परिप्रेक्ष्यमें इस संपूर्ण सामग्रीके अध्ययनसे यह प्रमाणित होता है कि जंबूस्वामी जैन श्रमण-परंपरामें एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक पुरुष थे, जिन्होंने ई० पू० ५२७ में भगवान् महावीरके तीर्थमें उनके साक्षात् शिष्य आचार्य सुधर्मासे जिन-दीक्षा स्वीकार की थी। अपनी अलौकिक प्रतिभा एवं कठोर तप.साधनाके कारण वे जैन श्रमण संघके न केवल प्रधानाचार्य ही बने, बल्कि उन्होंने श्रमण-साधनाकी परंपरा और पुरातन आगमिक साहित्यिक संपत्तिको सुरक्षित रखने, उसका प्रचार-प्रसार करने तथा चिरस्थायी बनानेमें भी अपना अभूतपूर्व एवं अद्वितीय योग-दान दिया। प्रश्नोंके माध्यमसे जंबूस्वामीने सुधर्माचार्यसे सारे आगमोंको सुनकर धारण किया, और जंबूस्वामीसे वह सारा ज्ञान उनकी शिष्य-संततिको प्राप्त हुआ और उनके द्वारा आगेकी संततियोंको। इस प्रकार गुरु-शिष्य परंपराके द्वारा आगम साहित्यकी स्थायी सुरक्षा तथा प्रचार-प्रसार, ये दोनों ही कार्य सिद्ध हुए।

आगमिक साहित्यमें जंबूस्वामीके जीवनचरितके विषयमें उपलब्ध सामग्री अत्यल्प है। बादके जंबूस्वामीकथा एवं चरित साहित्यसे उनके जीवनपर कुछ विशेष प्रकाश पड़ता है। परंतु अबसे ढाई हजार वर्ष पूर्व होनेवाले इस महापुरुषके वास्तविक जीवनचरितकी सामग्री, इस कथाके परंपरागत होनेपर भी,

कथा-अंतर्कथाओंके ताने-बानेमें दुखद आश्चर्यकारक रूपसे ऐसी खो गयी या छूट गयी है कि इनके जीवनचरितके सूत्र ऐतिहासिक संदर्भोंके साथ पूर्ण रूपसे जोड़ पाना आज संभव नहीं है। तथापि अद्यावधि प्राप्त समस्त ऐतिहासिक साहित्यिक सामग्रीके आधारसे उनके जीवनकी प्रमुख घटनाओं जन्म, दीक्षा, केवल-ज्ञानोपलब्धि, जैन श्रमणसंघका कुलपतित्व (आचार्यत्व) एवं मोक्षप्राप्तिको ऐतिहासिक तिथियोंके साथ जोड़ा गया है।

ऐतिहासिक जीवनचरितकी दृष्टिसे जंबूस्वामीका चरित जितने महत्त्वका है, साहित्यिक कथानायककी दृष्टिसे भी किसी भी प्रकार उससे कम महत्त्वका नहीं है। कामदेव सदृश सौंदर्य, कुबेर सरीखा वैभवविलास, बृहस्पतिके समान अलौकिक प्रतिभा एवं ऐंद्रियिक भोगविलासकी वासनाके दुर्निवार-दुर्दम्य जनक तथा प्रेरक अधिष्ठाता उद्दाम यौवनकालमें कामदेवकी रतिके समान अनुपम सुंदरी एकाधिक कन्याओंसे विवाह, इन सारे स्वर्गोपम सुखसाधनोंको लात मारकर, महावीर और बुद्धके समान मुनि जीवन अंगीकार करके जीवनके चरमलक्ष्य—परिपूर्णबोधि अर्थात् केवलज्ञान और मोक्षको प्राप्त करना, इन सारे तत्त्वोंने पाँचवी-छठी शती ई०से लगाकर अद्यावधि गत पंद्रह सौ वर्षोंमें प्रत्येक शतीमें और देशके लगभग प्रत्येक राज्यमें जैन साहित्यकारोंको बलात् अपनी ओर आकृष्ट किया है। यही कारण है कि प्राचीन प्राकृत साहित्यसे लेकर संस्कृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, गुजराती और हिंदी आदि विभिन्न भारतीय भाषाओंमें जंबूस्वामी चरितकी एक सुदीर्घ परंपरा प्राप्त होती है, जो वसुदेव-हिंडी(प्राकृत)के रचयिता संघदास गणि (पाँचवी-छठी शती ई०)से लगाकर बीसवीं शतीतक अविच्छिन्न रूपसे चली आयी है।

आभार—इस ग्रन्थको तैयार करनेमें हस्तलिखित प्रतियोंको उपलब्ध करानेसे लेकर प्रस्तुत रूप देने तकमें जिन पूज्य गुरुजनों, विद्वानों, श्रीमानों तथा मित्रोंका सहयोग प्राप्त हुआ है उनकी सूची बहुत बड़ी है, और उन सबके प्रति नामोल्लेखपूर्वक कृतज्ञता ज्ञापित करना यहाँ संभव नहीं है, तथापि कुछ अवश्य उल्लेखनीय व्यक्ति और संस्थाएँ हैं—पूज्य डॉ० हीरालाल जैन, जिन्होंने प्रस्तुत काव्यकी प्रतियाँ प्रदान करते हुए मुझे इसके संपादन करनेकी प्रेरणा दी और जिनसे मैंने आलोचनात्मक अध्ययन तथा संपादनकी पद्धति सीखी और निरंतर मार्गदर्शन प्राप्त किया, जैन शोधसंस्थान, महावीर भवन जयपुरके डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल तथा जैन महाविद्यालय जयपुरके प्राचार्य पं० चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ, जिनकी कृपासे मुझे जयपुरके भंडारोंकी तीन प्रतियाँ, पंजिका, फोटो प्रतिकी मूल प्रति एवं ब्रह्म-जिनदासकृत संस्कृत जंबूस्वामीचरित्रकी प्रतियाँ उपलब्ध हुईं; लालभाई दलपतभाई शोधसंस्थान, अहमदाबादके निदेशक पं० दलसुख भाई मालवणिया, जिनके सहयोगसे मुझे उस संस्थानसे भिन्न-भिन्न जंबूस्वामीचरितोंकी सत्रह हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुईं; प्राच्य शोध संस्थान बड़ौदाके संचालक डॉ० भोगीलाल साडेसरा, एवं भंडारकर प्राच्य शोध संस्थान, पूनाके मैनुस्क्रिप्ट्स विभागके अध्यक्ष डॉ० ए० डी० पुसालकर, जिनसे मुझे जंबूस्वामी-अध्ययन नामक रचनाकी भिन्न-भिन्न कई प्रतियाँ तथा मानसिंह कृत संस्कृत जंबूस्वामीचरित्र उपलब्ध हुए, प्राकृत, जैनशास्त्र एवं अहिंसा शोध संस्थान वैशाली (बिहार)के निदेशक डॉ० नथमल टाटिया, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान वाराणसीके निदेशक डॉ० मोहनलाल मेहता तथा स्याद्वाद-महाविद्यालय वाराणसीके प्राचार्य पू० पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, जिनके कृपापूर्ण सहयोगके कारण मुझे इन संस्थाओंसे सहायक ग्रंथ उपलब्ध हुए तथा डॉ० नेमिचद्र शास्त्री आरा, जिन्होंने समय-समयपर मेरा मार्गदर्शन किया और मेरी समस्याओंको सुलझाया, इन सबका हृदयसे आभारी हूँ।

भारतीय ज्ञानपीठके मंत्री श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन तथा मूर्तिदेवी ग्रन्थमालाके प्रधान संपादक डॉ० आ० ने० उपाध्येका मैं हृदयसे कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इसे भारतीय ज्ञानपीठसे प्रकाशित करनेकी स्वीकृति प्रदान की। भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसीके व्यवस्थापक डॉ० गोकुलचन्द्र जैन, उनके अन्य सहयोगी तथा श्री पोल्हावनजीका भी आभारी हूँ जिन्होंने इस ग्रंथके यथाशीघ्र, सुंदर और शुद्ध मुद्रणमें आद्योपांत अत्यंत आत्मीयतासे बहुत अधिक सक्रिय सहयोग प्रदान किया। इस प्रसंगमें तारा-प्रकाशन,

वाराणसीके प्रबंध-संचालक श्री रमाशंकरजी पंड्याका स्मरण और उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापन करना मेरा प्रिय कर्त्तव्य है जिन्होने मुझे डा० ही० ला० जैन-द्वारा संपादित 'सुदंसणचरिउ'की पूर्ण प्रूफ कॉपी प्रदान की, जिससे मैं जंबूसामिचरिउ तथा 'सुदंसणचरिउ' का तुलनात्मक अध्ययन सरलतासे कर सका। इन सबके अतिरिक्त मैं सहायक एवं संदर्भ ग्रंथोके सभी विद्वान् लेखक-संपादकोंके प्रति भी अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। अन्तमें मेरी धर्म-पत्नी श्रीमती कमलेश, जिन्होने इस कार्यको पूर्ण करानेमें मेरे साथ अथक परिश्रम किया और अनगिन कष्ट प्रसन्नतासे सहन किये, उनके प्रति कुछ न कहकर ही सब कुछ कहा जा सकेगा। मेरे अत्यन्त शुभेच्छु एवं परम-स्नेही आत्मीय मित्र और बांधव जो वर्षोंसे मुझे कार्य पूर्ण करनेकी निरंतर प्रेरणा व उत्साह प्रदान करते रहे, उनकी सद्भावनाओंका ऋण शब्दोंमें व्यक्त कर मैं उऋण होना नही चाहता।

प्रकाश पर्व १ नवंबर १९६७ — विमलप्रकाश जैन

विषय-सूची

प्रस्तावना

मूलपाठ

संस्कृत टिप्पण और शब्द-कोष

प्रस्तावना

१. संपादन परिचय

प्रति परिचय

वीर कवि विरचित जंबूसामिचरिउ नामक यह अपभ्रंश महाकाव्य प्रथम बार संपादित होकर प्रकाशमे आ रहा है। इसका संपादन निम्नलिखित पाँच प्राचीन प्रतियोंके पाठोंका पूरा मिलान करके किया गया है:

क प्रति कारंजा भंडारसे पू० डॉ० हीरालालजीके सौजन्यसे उपलब्ध हुई है। प्रतिमे कुल १०४ पत्र हैं, जिनमे-से प्रथम पत्र केवल एक ओर लिखा गया है। आकार ११"×४३/४"; पंक्तियाँ प्रतिपृष्ठ अधिकांशत. ९, और किन्हीं किन्हीं में १०; अक्षर प्रति-पंक्ति लगभग ३६; हाशिया दोनों पार्श्वोंमे १", ऊपर-नीचे ३/४"। लिखावट सर्वत्र समान नही है। कहीं अक्षर बड़े-बड़े लिखे हैं, तो कहीं छोटे-छोटे। लेख सर्वत्र सुंदर है।

प्रतिका प्रारंभ '॥ स्वस्ति ॥ ओं नमो वीतरागाय' से होता है; और ग्यारहवीं संधिके अंतमे 'इय जंबूसामिचरिए सिंगारवीरे महाकव्वे महाकइदेवयत्त' यहीं तक आकर अधूरी पुष्पिका पर ही प्रति समाप्त हो जाती है। इसके आगे कोई भी प्रशस्ति नही है। अत इस प्रतिके लेखन-कालका अनुमान लगाना कठिन है।

इस प्रतिकी निम्नलिखित विशेषताएँ हैं —

(१) यह प्रति अनुस्वार प्रधान है, तथा इसमे निरर्थक अनुस्वारका अत्यधिक प्रयोग हुआ है।

(२) 'न'के स्थानपर सर्वत्र 'ण'का प्रयोग हुआ है, केवल दो स्थानोंको छोड़कर (१) कामिनी, (२) अन्य > अन्नु।

(३) अनेक स्थलों पर 'इ' के स्थान पर 'य' श्रुति, और 'य' श्रुति के स्थान पर 'इ' का प्रयोग मिलता है। इ > य जैसे—अवइण्ण > अवयण्ण (अवतीर्ण); छइल्ल छयल्ल—(हि० छैला, विदग्ध-पुरुष); कइवय > कयवय (कतिपय), वइतरिणि–वयतरिणि (वैतरणी), पइवय > पयवय (पतिव्रत) आदि, एव य > इ जैसे वेयल्ल > वेइल्ल (विचकिल्ल), आयउ > आइउ (आगत) आदि।

(४) कहीं कहीं 'य' श्रुतिके स्थानपर 'व' श्रुतिका भी प्रयोग मिलता है, जैसे जुयल > जुवल (युगल);

(५) क्वचित् 'व'कारके स्थान पर 'म'कारका प्रयोग—ताव > ताम (तावत्), एवहिं > एमहि (इदानीम्)

(६) तृतीया तथा सप्तमी विभक्तियोमे सर्वत्र 'इ' का प्रयोग—(तृ०) करणि, अब्भासि, पियरि; तथा (स०) हियवइ, घरि घरि, आउसि आदि।

ख प्रति—यह पोथी जयपुरके आमेर शास्त्र भंडारमें उपलब्ध है। प्रतिमे कुल ७६ पत्र हैं, जिनमें ६२वाँ पत्र नही है। प्रथम पत्र इस प्रतिमें भी केवल एक ओर लिखा गया है। आकार ११"×५३/४"; पंक्तियाँ प्रति-पृष्ठ (पत्र १ से ७४ तक) १४; और बीच बीचमें कुछ पत्रोंपर (२०, ३१, ३३) १५;

तथा पत्र ७५ व ७६ पर मोटे-मोटे अक्षरोंमे पृष्ठत. ९, ८, ९ व ११ पंक्तियाँ; अक्षर प्रति पंक्ति लगभग ३५; हाशिया पार्श्वोंमें १$\frac{1}{2}$" व १$\frac{1}{2}$" तथा ऊपर-नीचे १", १"। लेख असमान, कहीं अक्षर छोटे छोटे, कहीं बड़े-बड़े परन्तु सामान्य रूपसे सर्वत्र स्पष्ट, शुद्ध एवं सुन्दर।

ख प्रतिकी एक फोटो-कॉपी भी संपादकको पू० डॉ० हीरालालजीके सौजन्यसे उपलब्ध हुई है, और संपादन कार्यका आरंभ उसी प्रतिके पाठोंके मिलानसे किया गया था। पीछे जयपुर जानेपर उपर्युक्त मूल ख प्रति उपलब्ध हो सकी। फोटो-कॉपीका आकार है ६$\frac{1}{2}$"×३"; हाशिया पार्श्वोंमें $\frac{1}{2}$" व $\frac{3}{4}$" तथा ऊपर नीचे $\frac{1}{2}$", $\frac{1}{2}$"।

इस प्रतिका आरंभ 'ओं नमः सिद्धेभ्यः' से होता है। अंतमें वीर कविकी स्वकृत प्रशस्तिके उपरांत 'इति जंबूसामिचरित्तं समाप्तं' लिखा गया है, और इसके पश्चात् निम्नलिखित प्रति प्रशस्ति उपलब्ध होती है—

मन्ये वयं पुण्यपुरीव भाति सा झूंझुणेति प्रकटीबभूव।
प्रोत्तुंगतन्मंडनचैत्यगेहाः सोपानवद्‌दृश्यति नाकलोके ॥१॥
पुरस्सराराम-जलतडागकूपा-हर्म्याणि तत्रास्ति रतीव रम्या।
दृश्यंति लोकार्घनपुण्यभाजा ददाति दानस्य विशालशाला ॥२॥
श्री विक्रमार्कैन गते शताब्दे षडेक-पंचैक (१५१६) सुमार्गशीर्षे।
त्रयोदशीयातिथिसर्वशुद्धा श्री जंबूस्वामीति च पुस्तकोऽयं॥

इससे ज्ञात होता है कि यह प्रति संवत् १५१६ में मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदशीके दिन झूंझणपुर (राजस्थान) नामक अति समृद्ध नगरीमें लिखी गयी, जो अपनी शोभामें स्वर्गलोकके समान थी। प्रति लेखक अथवा लिखानेवालेके संबंधमें इससे कोई ज्ञान नहीं होता।

उपलब्ध पाँचों प्रतियोंमें यह प्रति सबसे अधिक प्राचीन है। पाठोंकी दृष्टिसे भी यह प्रति सबसे शुद्ध है। अतः मुख्य रूपसे इस प्रतिके पाठोंको ही मूल ग्रन्थका आधार माना गया है। इस प्रतिकी विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं :—

(१) आदि 'न' का नियमित रूपसे सुरक्षित रहना।

(२) मध्यवर्ती असंयुक्त 'न' के स्थानपर 'ण' का सर्वत्र प्रयोग, कुछ अपवादों, जैसे झाणानल, निनइ, दावानल, मुहियएन आदिको छोड़कर।

(३) मध्यवर्ती संयुक्त 'न्न' का सुरक्षित रहना, जैसे आसन्न, उप्पन्न, सन्नद्ध, सन्नद्ध आदि।

(४) मध्यवर्ती संयुक्त 'न्य' तथा 'र्न' के स्थान-पर अनियमित रूपसे 'न्न' अथवा 'ण्ण' का प्रयोग, जैसे मन्नइ-मण्णइ, सेन्न-सेण्ण, निन्नासिय आदि।

(५) अनेक स्थलों-पर 'इ' के स्थानमें 'य' श्रुतिका तथा कहीं कहीं 'य' श्रुति के स्थानमें 'इ' का प्रयोग इ>य जैसे जइवि>जयवि, वइसवण>वयसवण, अवइण्ण>अवयण्ण, पइसइ>पयसइ, सेणावइ>सेणावय आदि, य>इ वेयल्ल>वेइल्ल (वेगवान)।

(६) क्वचित् 'व' के स्थानपर 'म' का प्रयोग, जैसे सकिवाण>सकिमाण, और कहीं 'म' के स्थानपर 'व' का, जैसे भामिणी>भाविणि।

(७) तृतीया एवं सप्तमीके प्रत्ययों, कृदंतके पूर्वकालिक क्रिया रूपों तथा अन्यत्र भी 'एं' व 'ए' मात्राका बाहुल्य जैसे (तृ०) अब्भासें, पियरें, करणे [न], मुणेंदें, (सप्तमी) रयणे, घरे घरे, आउसे; (कृ० पूर्व० क्रिया) परिहरेवि, करेवि, मुणेवि आदि, अन्यत्र तेत्थ, जेत्थ, जे, एत्तहे, तेत्तहे, सेट्ठ (श्रिष्टम्), रोट्ठ-अनिष्ट (शत्रु) आदि, और कहीं कहीं 'इ' मात्रा भी जैसे घरि घरि, आयाण्णित्ति आदि,

तथा कृ० पूर्व० क्रिया प्रत्ययोमे जायवि, पढवि, करवि, परिहरवि ऐसे रूप भी बहुशः उपलब्ध होते है।

(८) यह प्रति सटिप्पण है, जिसके चारो हाशियो-पर छोटे-छोटे अक्षरोमे आद्योपात टिप्पण लिखे गये हैं। टिप्पणोंके संबंधमे विशेष जानकारी मूल ग्रन्थके अंतमे संस्कृत टिप्पणोंकी भूमिकामे दी गयी है।

ग प्रति—यह भी जयपुरके शास्त्र भंडारमे सुरक्षित है। इसमे कुल ११४ पत्र हैं। आकार १२"×४¾"; हाशिया दोनों पार्श्वोमें १½"; १½", ऊपर-नीचे १", १"; पंक्तिसंख्या पत्र २ से ३१ तक प्रति पृष्ठ ८, ८, बीचमे पत्र २६ में ९, ९। पत्र ३२ से पत्र ११४ तक पंक्ति संख्या कही ८, कही ९। इस प्रकार कुल ६३ पत्रोमे ८, ८ पंक्तियाँ हैं, पत्र १०६ तथा ११० पर १०, १०; तथा प्रथम-पत्रपर एक ओर कुल ८, अक्षर प्रतिपंक्ति ८, ८ पंक्तियोवाले पत्रोमे लगभग ३२, व ९, ९ पंक्तियोंवाले पत्रोमे लगभग ४०; लिखावट असमान, अक्षर कही छोटे, कही बड़े, परतु हस्त-लेख आद्योपांत सुदर, स्पष्ट व शुद्ध। स्थान-स्थानपर बीच-बीचमे अक्षरोकी स्याही समयके प्रभावसे उड़ गयी है।

यह प्रति भी सटिप्पण है। चारो हाशियोपर स्पष्ट अक्षरोमे सुंदरतासे टिप्पण लिखे गये हैं; जो अधिकांशतया ख प्रतिके टिप्पणोके समान हैं, परन्तु अनेक स्थानो पर उनसे भिन्न और विशद हैं।[1]

पाठकी दृष्टिसे यह प्रति पूर्णतया ख प्रतिसे मेल खाती है, और इसीको आदर्श मानकर लिखायी गयी प्रतीत होती है। अतः इस प्रतिकी समस्त पाठगत विशेषताएँ वे ही हैं, जो उपर्युक्त ख प्रतिकी। इन दोनों प्रतियोंमे यदा-कदा विरले ही परस्पर कोई पाठ-भेद उपलब्ध होता है, और अधिक करके वह पाठ ख की अपेक्षा शुद्ध सिद्ध हुआ है। परन्तु ये दोनो प्रतियाँ निश्चयतः एक ही परंपराकी हैं।

ग प्रतिका आरंभ ख प्रतिके समान ही 'ओं नमः सिद्धेभ्य' से होता है, और अंत कवि प्रशस्तिके उपरात 'इय जंबूसामिचरित्तं समाप्तं' से। इसके उपरात निम्नलिखित प्रति प्रशस्ति उपलब्ध होती है :—

संवत् १६०१ वर्षे आषाढ़ सुदि १३ भौमवासरे तोडागढवास्तव्ये राजाधिराज्य-राव श्री रामचंद्र-विजयराज्ये श्री आदिनाथचैत्यालये श्री मूलसंघे नद्याम्नाये बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्री कुंदकुंदाचार्यान्वये भ० श्री पद्मनंदिदेवास्तत्पट्टे भ० श्री शुभचंद्रदेवास्तत्पट्टे भ० श्री जिनचंद्रदेवास्तत्पट्टे भ० श्री प्रभाचंद्रदेवास्तच्छिष्य मं० श्री धर्म्मचंद्रदेवास्तदाम्नाये खंडेलवालान्वये साहगोत्रे जिनपूजापुरंदरदानगुणश्रेयो नृपति'। सा० महसा तद्भार्या सुहागदे तत्पुत्र सा० मेघचंद द्वितीय कौजू। सा० मेघचंद भार्या माणिकदे द्वितीय नौलादे तत्पुत्र सा० हेमा द्वितीय सा० हीरा तृतीय सा० छाजू। सा० हेमाभार्या हमीरदे तत्पुत्र चिरजी भीषा। सा० हीराभार्या हीरादे। सा० कौजूभार्या कौतिगदे तत्पुत्र सा० पदारथ द्वितीय पीवा। सा० पदारथभार्या पाटमदे तत्पुत्र सा० धनपाल। सा० पीवाभार्या पिवसिरि तत्पुत्र डूगरसी। एतेषां मध्ये सा० हेमाभार्या हमीरदे एतत् जंबूस्वामिचरित्रं लिपाप्य रोहिणीव्रत-उद्यापनार्थं ज्ञानपात्राय मंडलाचार्य श्री धर्म्मचंद्राय दत्तं॥

ज्ञानवा ज्ञानदानेन निर्भयोऽभयदानत.। अन्नदाणात् सुखी नित्यं निव्याधिर्भेषजा भवेत्॥
॥ श्रीरस्तु॥ जैनधर्म चिरं जीयात्॥ कल्याण जयतु॥

इस वृहत् प्रशस्तिसे निम्न बातोकी जानकारी होती है :—

(१) यह प्रति संवत् १६०१ मे आषाढ़ शुक्ल त्रयोदशी मंगलवारके दिन महाराज श्री रामचंद्र-विजयके राज्यमे तोडागढ़नगरमे श्री आदिनाथ चैत्यालयमें मंडलाचार्य श्री धर्मचंद्रको प्रदान

---

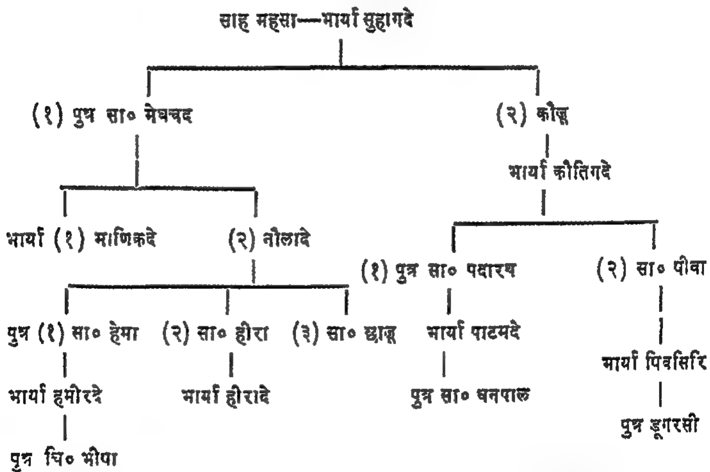
१. टिप्पणोंके विस्तृत परिचयके लिए देखें : ज० सा० च० 'संस्कृत टिप्पण'।

करने हेतु लिखवायी गयी, जिनकी गुरु-परंपरा निम्न प्रकार थी :—

मूलसंघ, नंद्याम्नाय, बलात्कारगण, सरस्वतीगच्छ श्री कुंदकुंदाचार्यान्वयमें —

भ० पद्मनंदि
|
भ० शुभचन्द्र
|
,, जिनचन्द्र
|
,, प्रभाचन्द्र
|
मंडलाचार्य मुनि श्री धर्मचन्द्र

इन मं० धर्मचन्द्रके आम्नायमें खंडेलवालान्वयमें इनके श्रावक शिष्योंकी परम्परा चली, जिनमें साहु हेमाकी भार्या हमीरदेने रोहिणीव्रतके उद्यापनार्थ इस जम्बूस्वामिचरित्रको लिखवाकर आचार्य धर्मचन्द्रको प्रदान किया। इस श्राविकाका वंशवृक्ष निम्नप्रकार है :—



ग प्रतिसे उपलब्ध उपर्युक्त समस्त तथ्योंको ध्यानमें लेनेसे स्पष्ट है कि कुछ बातोंमें यह ख प्रतिसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण प्रति है।

घ प्रति—यह भी जयपुरके शास्त्र भंडारमें उपलब्ध है। पत्र संख्या दो भागोंमें दी गयी है। पहले पत्र संख्या १ से ५१ तक है, और पुनः १ से ४७ तक, इस प्रकार कुल पत्र संख्या ९८ होती है। इसे बीचमें पत्र ५१ तक लाकर नये सिरेसे १ से प्रारम्भ करनेका कोई कारण प्रतीत नहीं होता। आकार ११"×५½", पंक्तियाँ प्रति पृष्ठ ११; अक्षर प्रति पंक्ति लगभग ३४, प्रथम व अंतिम पत्र दोनोंपर केवल एक ओर पृष्ठ १०, १० पंक्तियाँ लिखी गयी हैं। हाशिया दोनों पार्श्वोंमें १½", १¼", ऊपर-नीचे १",१"। लिपि सुन्दर स्पष्ट व शुद्ध है।

प्रतिका प्रारम्भ "स्वस्ति श्री गणेशाय-नम. ॥ ओं नमो वीतरागाय ॥" इन दो मंगल नमस्कारोंसे होता है। इससे प्रतीत होता है कि प्रति-लेखक कोई गणेश भक्त अजैन पंडित था। अंतमे प्रति अपूर्ण है। ११वी संधिमे १५वें कडवकके घत्ताकी दूसरी पंक्तिका 'सोक्खपरंपरु' बस इतने प्रारंभिक अंशके उपरांत ही प्रति समाप्त हो जाती है। इसके आगे किसी प्रकारकी कोई प्रशस्ति नहीं है। अत. प्रतिके लेखनकाल आदिका अनुमान लगाना कठिन है।

प्रतिगत विशेषताएँ :—

(ङ) इस प्रतिकी ध्वन्यात्मक विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं :—

(१) आदिमे सर्वत्र तथा मध्यमे 'न्न' न्य, एव 'र्न' इन संयुक्त रूपोमे विद्यमान 'न्' ध्वनिकी पूर्ण सुरक्षा; कहीं-कहीं मध्यमे भी असयुक्त 'न' का सुरक्षित रहना; अन्यत्र जैसे 'ज्ञ' और 'ण' के स्थान पर प्रचुरतासे तथा कहीं-कहीं ण्ण, स्न, ह्न, एवं ण्य के स्थान-पर भी न्न, न, न् के प्रयोगका बाहुल्य। आदि 'न' सुरक्षित रहनेके सबंधमे यह ख एव ग प्रतियोसे पूर्णतः मेल रखती है। अन्य स्थितियोमे न् के प्रयोगोमे-से कुछ उदाहरण निम्नप्रकार हैं :—

मध्य असंयुक्त न > न नमिविनमि, झाणानल आदि, न्न > न्न जीवासाछिन्नु, आसन्नभव्व, भिन्न, पन्नय, संछिन्न, सन्निह आदि, न्य > न्न अन्न, अन्नुन्न, धन्न रायकन्ना, सिन्न आदि; र्न > न्न पुणुन्नउ (पुनर्नवः), निन्नासिय, दुन्निरिक्ख आदि; ष्ण > ह्न तुन्हिक्को; स्न > न नेह; स्न > न्ह न्हाण; ह्न > न्न मज्झन्न, ण्य > न्न लावन्नवन्न, तारुन्न, महापुन्न, भन्नइ, आदि, ज्ञ > न संपन्ननाण, ज्ञ > न्न सन्नालुय, विन्नत्त, विन्नाण आदि, र्ण > न्न अवइन्न, फलिहुवन्न, वन्निऊण, उन्नामय, संपुन्न, कन्नपुड, निव्वन्नमि, महन्नव आदि आदि।

(२) तृतीया एव सप्तमी विभक्तियोमे, एवं अन्य शब्द रूपोमे 'इ' एव 'ि' मात्राके प्रयोगमें यह क प्रतिसे मेल रखती है।

(३) अन्य पाठोमे इस प्रतिका मेल अधिकांशमे क एवं ङ प्रतियोसे तथा अल्पांशमें ख एव ग प्रतियोसे है, और अनेक पाठ चारो प्रतियोसे भिन्न तथा अधिक शुद्ध है। अत यह प्रति क ङ और ख ग इन प्रति परंपराओकी अपेक्षा किसी अन्य स्वतंत्र प्रतिसे संबंध रखती है। संभव है इस परम्पराकी कोई अन्य प्रति किसी शास्त्र-भंडारमे कभी अधिक शोध-खोज होनेपर उपलब्ध हो सके। 'जंबूसामिचरिउ पंजिका'से भी उपर्युक्त दोनों प्रति-परम्पराओ(क ङ, ख ग) से भिन्न प्रति होनेके संकेत मिलते हैं।

ङ प्रति भी जयपुर शास्त्र-भंडारमे उपलब्ध है। कुल पत्र संख्या १०६; आकार १०" × ४½", पंक्तियाँ प्रति पृष्ठ १०; अक्षर प्रति पंक्ति लगभग ३४; अंतिम पृष्ठपर कुल आठ पंक्तियाँ हैं, और अन्य प्रतियोके समान इसमे भी प्रथम पत्रपर केवल एक ही ओर कुल १० पंक्तियाँ है। हाशिया दोनो पार्श्वोंमे लगभग ¾", ¾", तथा ऊपर नीचे ½", ½"। लिखावट बहुत सुन्दर और चमकीली है, पाठ भी अनेक स्थलो-पर क प्रतिकी अपेक्षा शुद्ध है। इसके लेखनकी दीर्घ कालावधिके प्रभावसे प्रतिके पत्र बहुत जीर्ण और टूटनेवाले हो गये है।

प्रतिका आरंभ '॥ स्वस्ति ॥ ओ नमो वीतरागाय ॥' इस प्रकार होता है। प्रति पूर्ण है। कवि प्रशस्ति इसमे नही है, परन्तु निम्न प्रति प्रशस्ति उपलब्ध है :—

संवत् १५४१ वर्षे आसोजवदि ७ सप्तमैं शनिवारे श्री मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुंदकुंदाचार्यानए [°यान्वये] भट्टारक श्री पद्मनंदिदेवा तत्पट्टे भट्टारक श्रीशुभचंद्रदेवा तत्पट्टे भट्टारक श्री जिनचंद्र देवा तत्शिष्य श्री रत्नकीर्ति देवा पंडेलवालानवे [°न्वये] पाटणीगोत्रे संघही धनराज सर्गस्ति [स्वर्गस्थ.¹] तस्य भार्या कोडी। तयो पुत्रा संघही देवराज। मूलराज। तस्य पुत्र [पुत्राः] सोनपाल। रणमल। महिपाल। मल्लू। ज्ञानावरणीकर्म्मक्षयनिमित्तं मु० [मुनि] श्री विशालकीर्त्ति जोगु सत्तो [?] पाटणी पुस्तक घटापितं ॥ शुभ भवतु ॥

इस प्रशस्ति-पर-से इतनी बातें जानी जा सकती हैं :—

(१) प्रतिका लेखन संवत् १५४१ मे आश्विन कृष्ण सप्तमी शनिवारके दिन पूर्ण हुआ।

(२) यह प्रति मुनि श्री विशालकीर्त्तिको प्रदान करनेके निमित्तसे लिखायी गयी, जिनकी गुरु-परंपरा निम्नप्रकार थी :—

मूलसंघ-बलात्कारगण-सरस्वतीगच्छ-कुंदकुंदाचार्यान्वियमे भ० श्री पद्मनंदी (सं० १३८५-१४५०)[1]
|
भ० श्री शुभचंद्र (सं० १४५०–१५०७)
|
„ „ जिनचंद्र (सं० १५०७–१५७१)
|
श्री रत्नकीर्त्ति
| (?)
मुनि श्री विशालकीर्त्ति

खंडेलवालान्वयमे, पाटनी गोत्रमे श्री रत्नकीर्त्तिके एक (श्रावक) शिष्य संघही (संघाधिप-संघपति) धनराज थे, वे स्वर्गस्थ हो गये। उनकी कोडी नामकी भार्या थी। उसके दो पुत्र थे, सघही देवराज और मूलराज। संभवतः मूलराजके चार पुत्र हुए सोनपाल, रणमल, महिपाल और मलू। इसके बादका अंश स्पष्ट नही है। इसी पाटनी परिवारके किसी व्यक्तिने जो मुनि श्री विशालकीर्त्तिका भक्त था, उनके लिए यह पुस्तक लिखवायी।

प्रतिगत विशेषताओंकी दृष्टिसे यह प्रति पूर्ण रूपसे क प्रतिसे समानता रखती है तथा निश्चित रूपसे ये दोनो प्रतियाँ एक ही प्रति-परंपराकी हैं। ङ प्रतिका लेखनकाल उपर्युक्त प्रशस्तिके अनुसार बिलकुल निश्चित है, परतु क प्रतिमे कोई प्रशस्ति न होनेसे उसके लेखनकालका अनुमान लगाना कठिन है, यह पहले ही कहा जा चुका है। तथापि प्रतियोंके पत्रोकी अपेक्षाकृत जीर्णता तथा ङ प्रतिमे क प्रतिकी अपेक्षा अनेक पाठ शुद्ध होने एव क प्रतिके अधूरेपन आदि तथ्योपर विचार करनेसे ऐसी दृढ प्रतीति होती है कि ङ प्रति क प्रतिसे बहुत अधिक प्राचीन है। और इस दृष्टिसे देखनेपर वास्तवमे इन प्रतियोंके सकेत बिलकुल विपरीत अर्थात् ङ के स्थानपर क, और क के स्थानपर ङ ऐसा होना चाहिए था। परन्तु क्योंकि संपादकको क प्रति सर्वप्रथम उपलब्ध हुई और ङ प्रति सबसे पीछे। अतः इनकी उपलभ्यताकी दृष्टिसे ही इनके ये सकेत मान लिये गये हैं।

उपर्युक्त पाँचो प्रतियोमे ख प्रति सबसे प्राचीन है, संवत् १५१६ की। इसके बाद कालक्रममे ङ प्रतिका नाम आता है जो ख के ठीक २५ वर्षोपरात संवत् १५४१ मे लिखी गयी थी। इसके उपरात ग प्रतिका समय आता है, जो ङ प्रतिके ६० वर्षोपरात सवत् १६०१ मे लिखकर पूर्ण हुई। क एव घ प्रतियाँ अंतमें अपूर्ण हैं, शेष इनके संबंधमे ऊपर लिखा गया है।

यहाँ संपादन-सामग्रीके परिचयमे 'जंबूस्वामीचरित्रपजिका' (पं) का परिचय देना इस दृष्टिसे आवश्यक है कि संस्कृत टिप्पणोके साथ मूल पाठके जो उद्धरण इसमे दिये गये हैं, वे पाठ-संशोधनमे बहुत सहायक सिद्ध हुए हैं, और कही-कहीं तो केवल पजिकाका पाठ ही शुद्ध रहनेसे उसे मूलमे स्वीकार कर अन्य सब प्रतियोंके पाठोंको पाठभेदोंमे दे दिया गया है।

---

१. मूलसंघ बलात्कारगण उत्तरशाखाके विस्तृत इतिहासके लिए देखें : डॉ० जोहरापुरकर कृत 'भट्टारक-संप्रदाय' पृ० ८९ से पृ० ११२।

पं की प्रतिमें कुल पत्र संख्या ३१ है; आकार १०$\frac{3}{4}$"×४$\frac{3}{4}$"; पंक्तियाँ प्रतिपृष्ठ १२; अक्षर प्रति-पंक्ति लगभग ४०; हाशिया दोनो पार्श्वोंमे १", १" से कम, ऊपर-नीचे $\frac{3}{4}$", $\frac{3}{4}$"। पत्र २३ अ, (पृ० ४५) पर कुल ९$\frac{1}{2}$ पंक्तियाँ हैं। प्रथम पत्रपर दाहिनी ओरके हाशियेपर 'जंबूस्वामीचरित्रस्य पंजिका' लिखा हुआ है। यह प्रति जयपुरके छोटे तेरापंथी मंदिरके शास्त्र-भंडारमे उपलब्ध है।

पंजिका (पं) का प्रारंभ "ओं नमो श्री वीतरागाय। मन्दमतीनां सुखाववोधार्थं जंबूस्वामी-चरित्रे करोमि टिप्पणक" इस प्रकार होता है और अंतमे निम्न अपूर्ण प्रति प्रशस्ति भी उपलब्ध होती है :—

श्री शुभं भवतु। संवत् १५६५ वर्षे फाल्गुण सुदि १० गुरुवासरे पुष्यनक्षत्रे श्रीमूलसंघे नंद्याम्नाए सरस्वतीगच्छे श्री कुंदकुंदाचार्यान्वये भट्टारक श्री पद्मनंदिदेवा तत्पट्टे भ० श्री० शुभचंद्रदेवा तत्पट्टे भ० श्री जिनचंद्रदेवा तत्शिष्य मंडलाचार्य मुनि श्री रत्नकीर्त्तिदेवा तत्शिष्य मंडला० मुनि श्री हेमचंद्र तदाम्नाए पंडेलवालान्वए [°न्वये] टोग्या गोत्र संघभारधुरंधरं ·········सं०।

इस अपूर्ण प्रशस्तिसे यह जानकारी होती है कि यह पंजिका (पं) संवत् १५६५ में फाल्गुण शुक्ल दशमी गुरुवारके दिन लिखी गयी, और जिन्होने (?) इस पंजिकाकी रचना की; अथवा अपने गुरुसे अर्थोंको सुनकर लिखा, या स्वयं लिखवाया, उनकी गुरुपरम्परा निम्नप्रकार थी :—

[1]मूलसंघ-नंद्याम्नाय-सरस्वतीगच्छ-कुंदकुंदाचार्यान्वयमें —

भ० श्री पद्मनंदी [सं० १३८५—१४५०]
" " शुभचंद्र [सं० १४५०—१५०७]
" " जिनचंद्र [सं० १५०७—१५७१]
|
मंडला० मुनि श्री रत्नकीर्ति [इन्होने सं १५७२ मे दिल्ली जयपुर शाखासे अलग नागौर शाखा स्थापित की।]
|
मंडला० मुनि श्री हेमचंद्र

इनके आम्नायमे खंडेलवालान्वयमे टोग्या गोत्रके संघपति···(अपूर्ण) ······[ने इस प्रतिको मुनि हेमचन्द्रजीके निमित्त लिखवाया]।

सम्पादनमे सहायक सामग्रीके रूपमे दो और रचनाओंका उल्लेख करना यहाँ आवश्यक है।

(१) ब्रह्म-जिनदासकृत 'जंबूस्वामीचरित' और (२) पं० राजमल्लकृत 'जंबूस्वामीचरित'। ब्रह्म जिनदास भ० सकलकीर्तिके शिष्य थे और इन्होने संवत् १५२० मे जंबूस्वामिचरित्रकी रचना पूर्ण की थी। यह चरित प्रस्तुत अपभ्रंश काव्यके समान ११ परिच्छेदोंमे पूर्ण हुआ है, और अधिकांशतया सभी बातोमे न केवल भावात्मक रूपसे बल्कि शब्दात्मक रूपसे भी इससे इतनी अधिक समानता रखता है कि इसे यथार्थमें प्रस्तुत अपभ्रंश-काव्यका संस्कृत रूपांतर कहना अनुचित न होगा। अत: स्वाभाविक रूपसे इस संस्कृत रूपान्तरसे मूल अपभ्रंशके पाठ संशोधन और हिंदी अनुवादमे बहुत अधिक सहायता मिली है।

पं० राजमल्लकी रचना सं० १६३२ में आगरेसे पूर्ण हुई। इसमें १३ पर्व हैं, और इसका भी विषयानुसार पर्व-विभाजन प्रस्तुत अपभ्रंश काव्यसे अत्यधिक मिलता-जुलता है। प्रारंभमे कुछ पर्व केवल आगरे आदिका वर्णन होनेसे वास्तवमे मूल रचनासे विशेष संबंध नहीं रखते। इसका अध्ययन करनेसे स्पष्ट होता है कि यह भी अपभ्रंश जंबूसामिचरिउका अधिकाशमे संस्कृत रूपांतर ही है। अतः इससे भी पाठसंशोधन व अनुवाद कार्यमें पर्याप्त सहायता उपलब्ध हुई है।

---

१. भट्टारक संप्रदाय पृ० ९६, ११२ तथा ११४; लेखांक २७९।

प्रति प्रशस्तियोंकी प्रामाणिकता

ख ग ङ प्रतियो तथा पं की प्रशस्तियोंमें मूलसंघ, बलात्कारगणके जिन भट्टारको एवं मुनियो, तथा खडेलवालान्वयमे पाटनी, टोग्या (या ठोल्या ?) और साह गोत्रोमे उनके श्रद्धालु श्रावको तथा प्रतिलेखन स्थानोके नाम आये हैं, उनकी ऐतिहासिक सचाईकी परीक्षाके लिए यहाँ कुछ चर्चा कर लेना लेना उचित होगा।

दिगंबर जैन-संघके इतिहासमे बलात्कारगणका अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है, और जैन साहित्यकी सुरक्षा एवं संवर्द्धनमे इस गणके भट्टारको, आचार्यो, मुनियो तथा श्रद्धालु श्रावकोका अभूतपूर्व एव अनुपम योगदान रहा है। केवल साहित्य ही नहीं, जैनधर्म, संप्रदाय और जैनतीर्थों व मदिरोकी सुरक्षा, प्रचार-प्रसार और निर्माणमे सदैव ही इस संघका बहुत बडा हाथ रहा है।

यूँ तो इस गणका उद्भव आचार्य कुंदकुंदसे ही माना जाता है, और तदनुसार इसके साथ कुंदकुंदाचार्यान्वय, नद्याम्नाय, सरस्वतीगच्छ आदि पद भी जुडे रहते हैं, परन्तु इस गणका प्रथम उल्लेख आचार्य श्रीचद्रने किया है, जो धारा नगरीके निवासी थे, और जिन्होने स० १०७०, १०८०, एवं १०८७ मे क्रमश. पुराणसार, उत्तरपुराण वे पद्मचरितकी रचना की थी। यहीसे इस गणकी ऐतिहासिक परंपरा चालू होती है, और विक्रम की १५वी शती तक जाती है। दक्षिणमे इस गणकी कारजा एवं लातूर शाखाएँ वि० की १६वी शतीसे प्रारम्भ होकर वर्तमान तक चल रही हैं।

बलात्कारगणकी उत्तर-शाखा मंडपदुर्ग (माडलगढ-राजस्थान) मे भट्टारक वसंतकीर्तिके द्वारा सं० १२६४ मे प्रारंभ हुई, तथा विशालकीर्ति शुभकीर्ति-धर्मचद्र-रत्नकीर्ति एवं प्रभाचद्र भट्टारकोसे होती हुई भ० पद्मनंदी (सं० १३८५–१४५०) तक आकर उनके बाद दिल्ली-जयपुर; ईडर एव सूरत इन तीन प्रमुख शाखाओंमें विभक्त हो गयी। दिल्ली-जयपुर शाखामे-से दो और उपशाखाएँ निकली, नागौर शाखा एवं अटेर शाखा। अटेरशाखामे से सोनागिर प्रशाखा; ईडरशाखामे-से भानपुर उपशाखा; और सूरत शाखामे-से जेरहट उपशाखा। इन सबका दीर्घकालीन इतिहास है, और इनमें-से बहुत-से भट्टारकपीठ आज भी विद्यमान हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि बलात्कारगणकी शाखा, उपशाखा और प्र-शाखाएँ संपूर्ण उत्तरभारतमे व्याप्त थी। दिल्ली-जयपुरके निकटवर्ती उत्तरप्रदेश एव पजावमे हिसार तकका सारा प्रदेश इसी शाखाके प्रभावमे था। गुजरात, राजस्थान एव मालवामे भट्टारक-सम्प्रदायका अत्यधिक प्रभाव था; और दिल्ली जयपुर, पजावमे आजका कुरुक्षेत्र तथा उत्तरप्रदेशमे मेरठ व आगराके सभाग, इन समस्त प्रदेशोंमे बलात्कारगणके भट्टारको, मुनियो तथा भक्तश्रावकों-द्वारा निरतर धर्म व साहित्यकी सुरक्षा और सवर्द्धनका कार्य सपन्न किया जाता रहा।[1]

यहाँ उपर्युक्त विस्तृत टिप्पणी देनेका तात्पर्य यह है कि जंबूसामिचरिउकी ख ग एव ङ प्रतियों तथा पं की प्रशस्तियोंमे बलात्कारगणसे सबद्ध जिन-जिन आचार्यों, खंडेलवालान्वय, पाटणी, साह तथा टोग्या [ठोल्या ?] गोत्रो एव झूँझणपुर और तोडागढ नगरो तथा रावराजा रामचद्र (सोलकी) के नामोल्लेख हुए हैं, वे सभी पूर्णत. ऐतिहासिक हैं, तथा भट्टारक संप्रदायसे संबद्ध लेखो, प्रशस्तियो व पट्टावलियोंमे इन सबके नाम उपलब्ध होते हैं। अत प्रतियोंकी प्रशस्तियोमे दी गयी सूचनाएँ ऐतिहासिक सत्य हैं।

पाठ-सम्पादनकी पद्धति

§ १ सामान्य सिद्धान्तके रूपमे ख एव ग प्रतियोंकी परपरागत सर्वप्राचीनता, तथा पाठोंकी प्रामाणिकताको ध्यानमे रखकर इन प्रतियोंके पाठोंको ही मूलमे स्वीकार किया गया है। परन्तु अर्थ औचित्य तथा व्याकरण एव छन्दशुद्धिकी दृष्टिसे जहाँ कहीं भी आवश्यक प्रतीत हुआ है वहाँ क घ एव ङ प्रतियो-

1. भट्टारक सम्प्रदाय पृ० ४५।

के, या केवल क ड प्रतियोके, तथा बहुत बार केवल किसी एक ही प्रति, विशेष रूपसे घ मे उपलब्ध पाठको ही ले लिया गया है। क्वचित् केवल प मे उपलब्ध पाठको भी इसी आधारपर स्वीकार किया गया है, और इसी प्रकार कुछ ऐसे भी स्थल है, जहाँ सब प्रतियोके पाठोके आधारपर उनसे भिन्न शुद्ध पाठ बनाया गया है। ऐसे समस्त स्थलोमे यह पाठ परिवर्तन कही भी एक अक्षर, एक मात्रा अथवा एक अनुस्वारसे अधिक नही किया गया।

§ २ 'न' और 'ण' के प्रयोगके सम्बन्धमे निम्न प्रणाली अपनायी गयी है :—

(i) आदि 'न' की सर्वत्र सुरक्षा।

(ii) मध्यवर्ती संयुक्त 'न्न' की सुरक्षा; जैसे सन्नद्ध, भिन्न, आसन्न आदि।

(iii) आदिमे 'न' के पश्चात् 'न' आनेपर 'न्न' का प्रयोग, जैसे निन्नाशिय।

(iv) झाणानल, अनल तथा नेह (स्नेह) शब्दोमे 'न' की सुरक्षा।

(v) अन्य सब स्थितियोमे मध्यवर्ती असंयुक्त तथा संयुक्त न् के स्थानपर सर्वत्र ण् का प्रयोग किया गया है। इस सबंधमे घ प्रतिका साक्ष्य भिन्न है, और जैसा कि घ प्रतिके परिचयमे प्रतिगत विशेषताओके अन्तर्गत § १ मे कहा गया है कि यह प्रति 'न'कार बहुला है और इसमे र्ण, ण्य, ज्ञ, ण्य, र्णं, ण्ण, स्न और ह्न के स्थानपर प्रचुरतामे न, न्न, न् का प्रयोग हुआ है, इन प्रयोगोको स्वीकार नही किया गया। इसके दो कारण हैं—एक तो यह कि स्वयं इस प्रतिमे भी ये प्रयोग सर्वत्र नियमित रूपमे नही किये गये हैं, कही हैं, कही नहीं, और दूसरा यह कि जो एक परपराकी प्राचीनतम व प्रामाणिकतम उपलब्ध प्रतियाँ ख और ग हैं, उनमे ये प्रयोग नही पाये जाते। अत यह साक्ष्य इस अकेली घ प्रतिका रह जाता है, जिसकी प्राचीनताका कोई निश्चय नही है।

'न' के इन प्रयोगोके सम्बन्धमे यहाँ दो साक्ष्य प्रस्तुत हैं। प्रथम साक्ष्य श्रीचंद्र कृत अपभ्रंश 'कहकोसु'[1] (कथाकोष, वि० सं० ११२३) का है, जिसमे उपर्युक्त घ प्रतिके ठीक समान, परंतु अधिक नियमित रूपसे शब्दोके आदि एवं मध्यमे असयुक्त तथा संयुक्त सभी स्थितियोसे न एव न्न का प्रयोग अत्यंत प्रचुरतासे किया गया है। दूसरा साक्ष्य जिनदत्तसूरि (वि० सं० ११३२–१२११) विरचित अपभ्रंश काव्यत्रयी[2] (चर्चरी, उपदेशरसायनरास, कालस्वरूपकुलक) का है, जो गुर्जरदेशीय थे और जिन्होने वीर कविके प्रस्तुत अपभ्रंश चरितकाव्यकी रचनाके अधिकसे अधिक एक सौ वर्षोके अंदर ही अपनी काव्यत्रयीकी रचना की थी। इस अप० काव्यत्रयीमे उपर्युक्त पाँचो स्थितियोमें न, न्न एव न् का प्रयोग किया गया है, जिनके कुछ उदाहरण ये हैं :—नमिवि (च० १) गुणवन्तण (च० २) पुन्निहि (पुण्यै च० ७), मन्निउ (मानित॰ च० १४), न्हवण (उप० ४८), निव्विन्नी (उप० ६७), सुन्नउ (काल० १२) तथा नेह (काल० १३)। परंतु प्रस्तुत रचनामे इस सपादकने कुछ विशिष्ट स्थितियोमे ही न, न्न का प्रयोग स्वीकार किया है, इसका कारण ऊपर ही लिखा जा चुका है।

§ ३ सभी प्रतियोमे लगभग सर्वत्र 'व' के स्थानपर 'ब' का प्रयोग मिलता है, इस सबंधमे मैंने मूल संस्कृत शब्दके अनुसार यथास्थान ब् व् दोनोका प्रयोग किया है।

§ ४, दो स्वरोंके बीचमे 'य' श्रुति एवं 'व' श्रुतिके प्रयोगमे प्रतियोमे एकरूपता नही है, कही इनका प्रयोग हुआ है, और कही केवल उद्वृत्त स्वर ही शेष रहा है। इस संबंधमे जहाँ दो या अधिक प्रतियोमे श्रुतिका प्रयोग हुआ है, उसे स्वीकार किया गया है। 'व' श्रुतिका प्रयोग उन दो स्वरोंके

---

१. संपादक : डॉ० हीरालाल जैन; प्रका० प्राकृत टैक्स्ट सोसायटी अहमदाबाद ग्रन्थ शीघ्र प्रकाश्यमान है।

२. संपादक : लालचंद भगवानदास गांधी, प्रका०-गायक० ओरि० सिरीज़ ग्रन्थ क्र० XXXVII बड़ौदा १९२७ ई०

बीच किया गया है, जिनमें पूर्व स्वर 'उ' हो, अन्यत्र साधारणतः प्रतियोंके अनुसार 'य' श्रुति ही रखी गयी है। जहाँ प्रतियोंमें किसी श्रुतिका प्रयोग नही मिलता, वहाँ नियमतः उद्वृत्त स्वर ही रखा गया है।

§ ५. तृतीया एवं सप्तमीके कारक प्रत्ययो तथा कृदन्तके पूर्वकालिक क्रियाके क्त्वा तथा ल्यप् प्रत्ययोके स्थानपर और अन्यत्र भी ख ग प्रतियोके साक्ष्यके अनुसार छन्दकी आवश्यकताको ध्यानमे रखते हुए सबसे अधिक 'ए' व 'ऍ' तथा इनकी मात्राएँ (`, `) और जहाँ ये नही हैं वहाँ 'इ' अथवा 'इ' की मात्रा (ि); अथवा इन दोनोंसे रहित जैसे करवि, पढवि, परिहरिवि आदि रूपोंको (ख ग प्रतियोंके अनुसार) स्वीकार किया गया है।

§ ६. क एवं ङ प्रतियोके अनुस्वारबहुल शब्दोंको इन प्रतियोंपर प्रादेशिक बोलीके प्रभावको दिखलानेकी दृष्टिसे इस प्रथम संस्करणमें पाठभेदोमे रख लिया गया है। भविष्यमे किसी दूसरे संस्करण-मे इन्हें रखनेकी आवश्यकता नही रहेगी।

§ ७. प्रतियोमे लिखावट सबंधी निम्नप्रकारकी भूलें हैं, परन्तु शुद्ध-पाठ लेना सर्वत्र संभव हुआ है :—(i) °उं न > °पुण्ण . उट्ठिउं न > उट्ठिपुण्ण (ख ग)
> °ऊ ण　„　„ > उट्ठिऊण (क ङ)

(ii) ए > प } —पारए तरट्टि > पारपत्तरट्टि (क ङ)
त > त्त }

(iii) च > व तवचरण > तववरण (क ङ)
विराउसइं > विराउ° („)
°संकेयचत्तो > °वत्तो (क ङ)
व > च वेयइ > चेयइ (क ख ग ङ)
ववगयसत्त > चवगय° (क ङ)

(iv) च्च > त्त } चणुच्चत्थणीण > चणुव्वच्छणीएं (क ढ)
त्थ > च्छ }

(v) च्छ > त्थ सच्छा > सत्था (ख ग)

(vi) त्थ > च्छ वित्थिण्ण > विच्छिण्ण (क ङ)

(vii) भ > त भुवडाल > तुयडाल (घ)

(viii) म > व } उवसावमि > उवसामवि (क ङ)
व > म }
म > स समुद्धरहि > सुसुद्धरहि　(क ङ)

(ix) र क > क्ख पर-केवलइं > पक्खेवलइं > (क)

(x) ल > स तण्हालुयउ > तण्हासुवउ (क्र ङ)

इसपर-से स्पष्ट है कि लिखावटकी ये अधिकांश भूलें क एवं ढ प्रतियोमे हुई हैं। इससे इन प्रतियोंके पाठोकी प्रामाणिकता कम जाती है।

साधारणतः उपर्युक्त सिद्धान्तोके अनुसार इस रचनाका संपादन किया गया है।

२. ग्रन्थकार परिचय

जन्मभूमि, परिवार, पिता, काव्यरचना प्रेरक, समय, पूर्ववर्ती और समकालीन कवि तथा आचार्य, समकालीन राजा, व्यक्तित्व और कृतित्व :

महाकवि वीरने जंबूसामिचरिउ (१. ४—५) में अपना परिचय स्वयं दिया है। उनका जन्म मालव देशके गुलखेड नामक ग्राममे हुआ था। उनके पिता लाडवर्गगोत्रके महाकवि देवदत्त थे,

जिन्होने पद्धडिया छंदमे (१) वरांगचरित[1], (२) चच्चरिया शैलीमे शांतिनाथका यशोगान (शान्तिनाथरास)[1]; (३) सुन्दर काव्य शैलीमे सुद्धयवीरकथा[1]; एवं (४) अंबादेवीरास[1] की रचना की थी, जिसका नृत्याभिनय वीर कविके कालमे किया जाता था। कविने अपने पिताको कवि स्वयंभू तथा पुष्पदंतके पश्चात् तीसरा स्थान प्रदान किया है और कहा है कि 'स्वयंभूके होनेपर एक, पुष्पदंतके होनेपर दो तथा देवदत्तके होनेपर तीन कवि विख्यात हुए (५.१)।' कविके इस कथनमे अतिशयोक्ति अवश्य संभावित है, तथापि इससे इतना तो निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि अवश्य ही कविके पिता देवदत्त अपने समयके प्रख्यात व उच्चकोटिके कवियोमे रहे होंगे।

कविकी माँका नाम श्रीसंतुवा था, और (१) सीहल्ल (२) लक्षणाक तथा (३) जसई नामोसे प्रख्यात तीन अनुज थे। कविकी चार पत्नियाँ थी। प्रथम जिनमती, दूसरी पद्मावती, तीसरी लीलावती एवं अंतिम (चतुर्थ) भार्याका नाम जयादेवी था। उनकी प्रथम पत्नीसे उन्हे नेमिचंद्र नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। यद्यपि वीर संस्कृत काव्य-रचनामे निपुण थे, किन्तु पिताके मित्रोकी प्रेरणा, उत्साह संवर्द्धन एव आग्रह, तथा संस्कृत काव्य-रचनाको छोडकर सर्वजनप्रिय प्राकृत (अपभ्रंश) प्रबन्ध शैलीमे जंबूसामिचरिउकी रचना करनेके अपने पिताके आदेशके कारण कवि अपभ्रंश-प्राकृतमें महाकाव्यकी रीतिसे 'जंबूसामिचरिउ' की रचनामे प्रवृत्त हुआ।[2]

लाडवग्ग वंशकी ऐतिहासिकता

कविका जन्म लाडवग्ग अर्थात् लाट-वर्गट वंशमे हुआ था। इस लाट-वर्गटवंशका इतिहास बहुत पुराना है। वास्तवमे इस वशका प्रारम्भ पुन्नाट सघसे हुआ है। इस संघके आचार्य पहले पुन्नाट अर्थात् कर्नाटक प्रदेशमे विहार करते थे, इसलिए इसका नाम पुन्नाट था। बादमे इसका प्रमुख कार्यक्षेत्र लाड-बागड (स० लाट-वर्गट) अर्थात् गुजरात और सागवाडेके आसपासका प्रदेश हुआ। इसलिए इसका नाम लाड-बागड गच्छ पडा।[3]

पुन्नाट सघके प्राचीनतम ज्ञात आचार्य जिनसेन हैं, जिन्होने शक सं० ७०५ (वि० सं० ८४०) मे वर्द्धमानपुरके पार्श्वनाथ तथा दोस्तटिकाके शातिनाथ मंदिरमें रहकर हरिवंशपुराणकी रचना की।[4]

आचार्य जयसेन लाड-बागडसघके नामसे ज्ञात प्रथम व्यक्ति हैं, जिन्होने वि० सं० १०५५ मे सकली करहाटक (करहाड, आधुनिक कराड, बम्बई प्रदेश) ग्राममे रहकर धर्म-रत्नाकर नामक ग्रन्थ लिखा।[5] प्राय इसी समय इस गणके दूसरे आचार्य महासेनने प्रद्युम्नचरित लिखा[6], तथा सं० ११४५ मे इसी गणके आचार्य विजयकीर्तिके उपदेशसे एक मंदिर बनवाया गया[7]।

---

१. दुर्भाग्यत. महाकवि देवदत्तकी इन चारोंमें-से किसी एक भी रचनाका अभीतक कोई पता नहीं चलता। संभव है कि कालांतरमें जिन-शास्त्र भंडारोंके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी सूचियाँ अभीतक पूर्ण रूपसे प्रकाशित नहीं हो पायी हैं, उनमें-से किसीमे कोई रचना उपलब्ध हो सके।

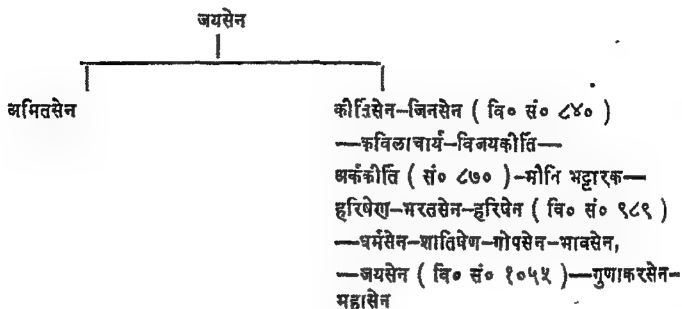
२. जं० सा० च० १.५.५. तथा १.१८. घत्ताके उपरांत संस्कृत पद्य २-३।

३. पुन्नाट और लाडबागड संघोंकी एकताके लिए देखिए : म० संप्र० ले० १२१, व ७४७ तथा पृष्ठ २५७।

४. म० संप्र० ले० ६२२

५-७. वही, पृ० २५७, तथा पं० नाथूराम प्रेमी कृत 'जैन साहित्य और इतिहास' द्वि० सं० पृ० २७८

आ० जयसेनसे लेकर महासेन तक इस संघकी गुरु-शिष्य परम्परा निम्नप्रकार है[1]



शांतिषेणके शिष्य आ० विजयकीर्ति (सं० ११४५) जो की गुरु परम्परा इस प्रकार थी—देवसेन—कुलभूषण—दुर्लभसेन—शांतिषेण—विजयकीर्ति। ऐसे भी देवसेन गुरु तक यह परम्परा वि० सं० १०५० के पूर्व तक जा पहुंचती है।

प्रस्तुत काव्यके रचयिता कवि वीरके पिता देवदत्त मालवामे इसी संघके अनुयायी वशमे उत्पन्न हुए थे। वीर कृत 'जंबूसामिचरिउ' का रचनाकाल वि० स० १०७६ निश्चित है।[2] अत उनके पिताका समय सरलतासे वि० स० १००,० के लगभग माना जा सकता है। आ० विजयकीर्ति (स० ११४५) के आगे भी वि० स० १५०० तक लाड-वागड संघकी परम्परा अखण्ड रूपसे चलती रही।

वीर कविके काव्य-रचनाका प्रेरक

वीर कविने लिखा है ? (१-५ २) कि मधुसूदनके पुत्र और उसके पिताके मित्र तक्खड नामक श्रेष्ठ जो कि मालवदेशमे सिन्धुवर्षी नामक नगरीके रहनेवाले थे, ने वीरको संस्कृत काव्य रचनामे निपुण जानकर प्राचीन कवियोंके द्वारा अनेक ग्रन्थोंमे उद्धृत (उल्लिखित या लिखित) 'जंबूस्वामिचरित' को सर्वजनप्रिय प्राकृत (अपभ्रंश) प्रबन्ध शैलीमे सक्षेपमे लिखनेकी प्रेरणा दी। कविके सकोच करनेपर तक्खडके अनुज भरतने अग्रजकी बातका समर्थन किया और कविको काव्य रचनेका उत्साह दिलाया। तक्खडके पिताका नाम मधुसूदन था, और वह धक्कडवग्ग अर्थात् धर्कटवशका आभूषण था।

धर्कट या धक्कडवाल वश यह वैश्योंकी ही एक जाति है। अपभ्रंश भविसयत्त कहा (भविष्यदत्तकथा) के रचयिता महाकवि धनपाल (१०वीं शती ई०) इसी धक्कड वणिक् वशमे उत्पन्न हुए थे।[3] उन्होंने 'भविसयत्तकहा' (सन्धि २२) मे कहा है —

धक्कडवणिवंसि माएसरहो समुब्भविण।
धणसिरिदेविसुएण विरइउ सरसइसभविण॥

अपभ्रंश भाषाकी धम्मपरिक्खा (धर्म परीक्षा)के कर्ता हरिषेण भी इसी धक्कडवशके हैं जिनका

१. म० सम्प्र० पृ० २६१

२. देखें, आगे प्रस्तावना : समय निर्धारण।

३ देखें, डॉ० दलाल और गुणे द्वारा संपादित 'भविसयत्तकहा' प्रका०—गायक० ओरि० सि० पृ० X X—बड़ौदा सन १९२३; तथा प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास पृ० ४०९।

समय वि० सं० १०४४ है। आगे भी देलवाड़ा तथा आबूके शिलालेखोंमें इस जातिका उल्लेख है।[1] हरिषेणने 'सिरउजपुरणिग्गयधक्कडकुल' लिखा है, अर्थात् सिरिउंजपुरसे निकला हुआ धक्कडकुल। 'सिरिउंजपुर' संभवतः टोंक राज्यके सिरोंजका ही पुराना नाम है। मेवाड़की पूर्वसीमापर टोंक राज्य है, और सिरोंज पहले मेवाड़मे ही शामिल था। हरिषेणने अपनेको मेवाड़ देशका कहा भी है। यह धक्कडजाति अब भी विद्यमान है। ये लोग दिगम्बर जैनधर्मका पालन करते हैं, तथा अपने मूल निवास राजस्थानसे महाराष्ट्रके अकोला और यवतमाल जिलो तक फैल गये हैं। मुनि जिनविजयजी-के अनुसार मूलतः धक्कडकुल उपकेश (ओसवाल) जातिकी एक शाखा है।[2]

समय–निर्धारण

'जंबूसामिचरिउ' की प्रशस्तिके साक्ष्यके अनुसार वि० सं० १०७६ मे माघ शुक्ल दशमीके दिन इस काव्यकी रचना पूर्ण हुई, तथा इस रचनाको पूर्ण करनेमे कविको एक वर्षका समय लगा।

प्रस्तुत काव्यके अंतःसाक्ष्य तथा अन्य बाह्य साक्ष्योंसे भी प्रशस्तिमें उल्लिखित समय ठीक सिद्ध होता है। जैसा ऊपर कहा गया है कि कविने अपने पूर्वाचार्योंमे महाकवि स्वयंभू (लगभग ८वी शती विक्रम) पुष्पदंत (वि० की नौवी शती का उत्तरार्द्ध एवं दसवीका पूर्वार्द्ध) तथा स्वयं अपने पिता देवदत्तका उल्लेख किया है। पुष्पदंतके उल्लेखसे ऐसा प्रतीत होता है कि जब यह महाकवि अपने जीवन-का उत्तरार्द्ध काल-यापन कर रहा था, और जिस समय राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीयकी मृत्यु (वि० सं० १०२४) के पांच ही वर्ष उपरान्त धारानरेश परमारवंशीय राजा सीयक या श्रीहर्षने कृष्ण तृतीयके उत्तराधिकारी व अनुज खोट्टिगदेवको आक्रमण करके मार डाला था, एवं मान्यखेटपुरीको बुरी तरह लूटा तथा ध्वस्त कर दिया था (वि० सं० १०२९), तथा इनके महापुराणकी रचना पूर्ण हो चुकी थी; तबतक इस निष्परिग्रही, निरासक्त, निःस्वार्थ एवं अभिमान-मेरु महाकविकी ख्याति वीर कविके मालव-प्रान्तमे भी पूर्णरूपसे व्याप्त हो चुकी होगी; उसी समय वीर कविने अपने बाल्यकालमे ही वागेश्वरीदेवीके इस वरद पुत्रकी ख्याति सुनी होगी तथा होश संभालनेपर अवश्य उनकी रचनाओंका अध्ययन किया होगा।

'जंबूसामिचरिउ' पर पुष्पदन्तकी रचनाओंका गंभीर एवं व्यापक प्रभाव भी इस तथ्यकी पुष्टि करता है। अतः वीर कविके समयकी पूर्वसीमा वि० सं० १०२५ के लगभग निश्चित हो जाती है। प्रश्न उत्तरसीमा निर्धारित करनेका है।

वीर कविका समय वि० सं० ११०० से पूर्व होनेका एक अति प्रबल एवं अकाट्य साधक प्रमाण यह है कि वि० सं० ११०० मे होनेवाले मुनि नयनंदिके 'सुदंसणचरिउ' पर 'जंबूसामिचरिउ' का अत्यन्त गम्भीर और प्रचुर प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।[3]

एक और बात जो इस संबंधमे कही जा सकती है वह यह है कि प्रस्तुत काव्यकी ५ वी-६वी एवं ७वी संधियोंमें हंसद्वीपके राजा रत्नशेखरके द्वारा केरलके घेर लिये जाने, व मगधराज श्रेणिककी सहायतासे राजा रत्नशेखरको परास्त किये जानेके बहानेसे वीर कविने जिस ऐतिहासिक युद्ध घटनाकी ओर संकेत किया है, जिसमे कविने स्वयं भी एक पक्षकी ओरसे भाग ले लिया हो, ऐसा प्रतीत होता है, वह घटना परिवर्तित रूपमें मुंजके द्वारा केरल, चोल तथा दक्षिणके अन्य प्रदेशों-पर वि० सं० १०३० से १०५० के बीच चढ़ाई करके उन्हे विजित करनेकी मालूम पड़ती है।

१–२. धक्कडकुलकी उत्पत्ति और वर्तमान स्थितिपर जिनविजयजीके मतके लिए देखिए : प्रेमी, जै० सा० और इति०, पृ० ४०५ तथा उस पर पाद टिप्पण।

३. देखें : आगे प्रस्तावना—पूर्ववर्ती साहित्यकारोंका प्रभाव।

परवर्ती एवं बाह्य साक्ष्य

वीर कविके परवर्ती साक्ष्योंमें प्रथम साक्ष्य ब्रह्म जिनदासकृत संस्कृत जम्बूस्वामिचरित है, जिसे उन्होंने वि० सं० १५२० में पूर्ण किया। यह रचना वीरकृत अपभ्रंश काव्यका अधिकांशतया संस्कृत रूपान्तर मात्र है। कवि रइधूने (१५वीं शती ई०) भी अपनी दो रचनाओंमें वीर कविका नामोल्लेख किया है। इसके पश्चात् वि० सं० १५१६, १५४१ एवं १६०१ की जंबूसामिचरिउकी हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं, जिनका पूर्ण उपयोग इस काव्यके संपादनमें किया गया है। वि० सं० १६३२ में आगरामें पं० राजमल्ल-द्वारा रचित जम्बूस्वामिचरित्र भी प्रस्तुत अपभ्रंश काव्यका संस्कृत रूपान्तर ही है।

कवि-द्वारा उल्लिखित पूर्ववर्ती कवि और काव्य

कवि वीरने अपनी इस रचनामें स्पष्ट रूपसे सर्वप्रथम अपभ्रंश महाकवि स्वयंभूका स्मरण किया है।[1] तदनन्तर अपने पिताश्री महाकवि देवदत्तका।[2] आगे चलकर कविने यह कहते हुए कि स्वयंभूके होनेपर लोकमें एकमात्र (अपभ्रंश) कवि हुआ, पुष्पदंतके जन्म लेनेपर दो हो गये, तथा देवदत्तके होनेपर तीन[3], इस प्रकार अप० महाकवि पुष्पदंतका आदरपूर्वक स्मरण किया है। संधिके दूसरे कडवककी निम्न पंक्ति-द्वारा त्रिभुवन स्वयंभूका भी अप्रत्यक्ष उल्लेख होना संभावित है—'सो चेय गरु जइ ण उ करइ, नहो कज्जे पवणु तिहुयणु धरइ'। अपभ्रंश कवियोंकी प्राचीन परंपरामें इनके सिवाय किसी अन्य कविका उल्लेख प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी रूपमें वीर कविने नहीं किया।

अपने पिता कवि देवदत्त-द्वारा रचित जिन चार काव्य कृतियों[4] (१) पद्धडिया छंदमें रचित 'वरांगचरित' (२) 'सुद्दयवीरकहा' (३) 'शान्तिनाथचरित' अथवा रासके रूपमें शान्तिनाथका महान् यशोगान तथा (४) 'अंबादेवी-रास' का उल्लेख कविने किया है, दुःख है कि उनमें-से किसी रचनाका अभी तक कोई पता नहीं चल सका।

प्राकृत साहित्यके निर्माता कवि और काव्योंमें वीर कविने 'सेतुबन्ध' महाकाव्यका[5] अप्रत्यक्ष उल्लेख किया है।

संस्कृत साहित्य और साहित्यकारोंमें सर्वप्रथम उल्लेख 'प्रदीप' नामक शब्दशासनका[6] तथा व्याकरणशास्त्र,[7] पद निघंटु (नामकोश)[8] और तर्क (शास्त्र) का उपलब्ध होता है। सेतुबंधके साथ ही रामायणमें सेतुबंधकी घटनाका संकेत है। रामायणके उल्लेख प्रस्तुत 'जम्बूसामिचरिउ' में एकाधिक बार प्राप्त होते हैं।[9] महाभारतकी चर्चा भी स्पष्ट रूपसे काव्यमें हुई है।[10] भरतमुनि और उनके

नाट्यशास्त्रका स्मरण कविने जिस रूपमें किया है[1] उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि भरतमुनिके नाट्यशास्त्रका वीर कविने मनोयोगपूर्वक अध्ययन किया, और उनके नाट्यशास्त्रके शास्त्रीय नियमोंके आदर्श पर अपनी काव्यकृतिमें रसों, भावों, अलंकारों आदि काव्य तत्त्वोंका समावेश किया। यह तथ्य 'जंबूसामिचरिउ' के तुलनात्मक अध्ययन[2] से और भी अधिक परिपुष्ट होता है। इनके अतिरिक्त वीर कविने संस्कृतके अन्य किसी कवि या काव्यका कोई उल्लेख नहीं किया, तथापि प्रस्तुत काव्यकृतिका सूक्ष्मतासे अध्ययन करनेपर ज्ञात होता है कि वीर कवि संस्कृतके महाकवि कालिदास, हर्षचरितकार, बाण, शिशुपालवधके प्रणेता कवि माघ एवं उत्तररामचरितके रचयिता भवभूतिसे अवश्य प्रभावित था।[3] संस्कृत कवियोंमें कवि वीर कालिदाससे सबसे अधिक प्रभावित है, और प्रस्तुत काव्यके अनेक वर्णनोंमें यह प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है, यहाँ तक कि कुछ स्थलोंपर[4] तो वीर कविने कालिदासके श्लोकोंको शब्दशः अपभ्रंश रूपान्तर करके अपनी रचनामें समाविष्ट कर लिया है।

समकालीन कवि और आचार्य

जैन साहित्यके इतिहासमें विक्रमकी ११वीं शती सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। जैन साहित्यके विविध-अंगों अथवा अनुयोगों—सिद्धांत व दर्शन, आचार, ज्योतिष, गणित, भूगोल एवं पुराण कथा व चरित्र इन सब विषयोंपर अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रंथोंकी रचनाकी दृष्टिसे यह ११वीं शती प्रारंभसे लगाकर अंत तक अत्यधिक क्रियाशीलता और उत्साहकी रही है।[5] संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश सभी भाषाओंमें इस शतीमें बहुत उच्चकोटिके महाकाव्य, चरितकाव्य, चंपूकाव्य एवं कथा-कृतियोंकी रचना की गयी है। संस्कृतमें वीरनंदिकृत चंद्रप्रभचरित (महाकाव्य); अजितसेनके शिष्यका चामुंडपुराण, महासेनका प्रद्युम्नचरित (सं० १०३१-१०६६ के बीच), जंबूनागका मणिपतिचरित्र, जिनेश्वरसूरि कृत निर्वाणलीलावतीकथा एवं वीरचरित्र, सोमदेव कृत यशस्तिलकचंपू (वि० सं० १०१६) धनपाल कृत नवसाहसांकचरित ये प्रमुख रचनाएँ हैं। प्राकृतमें धनेश्वर सूरिकृत सुरसुंदरी-चरिय इसी शतीकी एक विशिष्ट रचना है। अपभ्रंशमें इस शतीकी प्रमुख रचनाएँ हैं:—महाकवि पुष्पदंतकृत 'तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकार' या महापुराण, णायकुमारचरिउ एवं जसहरचरिउ; हरिषेणकृत 'धम्मपरिक्खा' (वि० सं० १०४४), महेश्वरसूरि कृत संयममंजरी कहा; सागरदत्तकृत पार्श्वपुराण एवं जंबूचरिउ (वि० सं० १०७६) तथा नयनंदिकृत सुदंसणचरिउ (वि० सं० ११००)।

उपर्युक्त संस्कृत-प्राकृत एवं अपभ्रंश कवियोंमें जिनका कवि वीरके साथ विशेष संबंध रहा होगा, वे हैं—संस्कृतमें (१) यशस्तिलकचंपू आदिके रचयिता सोमदेवसूरि; (२) सुभाषितरत्नसन्दोह (वि० सं० १०५०), धर्मपरीक्षा (वि० सं० १०७०), पंचसंग्रह एवं उपासकाचार आदि ग्रन्थोंके प्रणेता आचार्य अमितगति; (३) कविके ही पितृकुल लाड-वागड वंशसे संबद्ध तथा प्रद्युम्नचरित्र (वि० सं० १०३३ से १०६६ के बीच) के कर्ता महासेन, (४) नव-साहसांक चरित (लगभग वि० सं० १०५०) के लेखक पद्मगुप्त परिमल तथा (५) पाइयलच्छीनाममाला और तिलकमंजरीके कर्ता धनपाल। एक सोमदेवको छोड़कर ये सभी परमार राजा मुंजकी राजसभाके रत्न थे, और अधिकतर इन सबने धारा नगरीमें रहकर अपनी कृतियाँ पूर्ण की थीं। सोमदेवने कृष्णतृतीयके राज्यकालमें शक सं० ८८१ (वि० सं० १०१६) में कृष्ण-तृतीयके चालुक्यवंशी सामंत अरिकेसरीके ज्येष्ठ पुत्र वागराजकी राजधानी गंगधारामें रहकर

---

१. वही ३.१.३–४.

२. देखें : प्रस्तावना—पूर्ववर्ती साहित्यकारोंका प्रभाव।

३. वही।

४. देखिए मूल ३.३.९–१२; मिलाइए रघुवंश १–२–४।

५. विशद जानकारीके लिए देखें : फतहचंद बेलाणी : 'जैन ग्रन्थ और ग्रन्थकार' पृ० १०–१४।

अपने ग्रंथोंकी रचना की थी । संभव है धारवाडके निकट गगवाटी नामक स्थानका ही प्राचीन नाम गंगधारा रहा हो ।[1]

अपभ्रंशमे महाकवि पुष्पदंत तथा धम्मपरिक्खा (वि० सं० १०४४) के रचयिता हरिषेण इन दोनोसे कविका विशेष साक्षात् सपर्क होनेकी सम्भावना है। इनमे-से पुष्पदतने तो मान्यखेटपुरी (मलखेड, बरार) मे राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीयके मन्त्री भरतके आश्रयमे रहकर अपनी काव्य प्रतिभा दिखलायी और हरिषेण मुनिके आश्रयमें धारानगरीमे रहकर अद्भुत कथाकोषके समान विचित्र कथाओसे भरी हुई अपनी धम्मपरिक्खाकी रचना की । अपभ्रंशभाषामे ही पार्श्वपुराण तथा 'जम्बूचरिउ' के कर्त्ता सागरदत्त विशेष ध्यान देने योग्य हैं। जैन ग्रंथावलिमे उनके 'जंबूचरिउ' का रचनाकाल भी ठीक वही कहा गया है जो वीर कृत प्रस्तुत 'जंबूसामिचरिउ' का है, अर्थात् वि० स० १०७६ । सधियोंकी संख्या भी इसी काव्यके अनुसार ग्यारह बतलायी गयी है । अत. इन दो रचनाओंका तुलनात्मक अध्ययन सबसे महत्त्वकी वस्तु होता; क्योंकि एक ही भाषा, एक ही नाम, एक ही नायक, एक ही विधा, एक-सा ही परिमाण तथा ठीक एक-सा ही समय, फिर भी दो सर्वथा भिन्न रचनाओंका होना प्राचीनकालकी एक महत्त्वपूर्ण घटना है । परंतु खेद है कि सागरदत्त कृत 'जबूचरिउ'की एकमात्र जिस प्रतिका उल्लेख जैन ग्रंथावलिमे किया गया है, वह प्रयास करनेपर भी संपादकको उपलब्ध नही हो सकी। रचना स्थानका भी कोई अनुमान लगाया नही जा सकता । अतः इन दोनोके परस्पर संबंध, सादृश्य या वैषम्य किसी भी संबंधमे कुछ कहा नही जा सकता ।

समकालीन राजा

वीर कवि यद्यपि अपने समकालीन राजाओं तथा राजनैतिक स्थितिके संबंध स्पष्ट उल्लेख नहीं किये किंतु प्रकारांतरसे जो जानकारी दी है, वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। जंबूसामिचरिउकी प्रशस्ति (पंक्ति ९-१०) में कविने कहा है कि बहुत-से राजकार्य, धर्म, अर्थ एवं काम गोष्ठियोंमें विभाजित समयवाले वीर कविको इस चरित्त-काव्यकी रचना करनेमें एक वर्षका समय लगा । पांचवींसे लेकर सातवी संधि तक युद्धका जो वर्णन है, वह अपने आपमें विशेष महत्त्व रखता है । निश्चित समय (वि० सं० १०७६) तथा उसका निवास स्थान गुलखेड़ इस सामग्रीके विषयमे विचार करनेके लिए एक निश्चित आधार देते हैं । गुलखेड़ नामक ग्राम या नगर मालवामें सिंधुवर्षी नगरी (?) के सन्निकट ही कहीं रहा होगा। सिंधुवर्षी नगरीकी भौगोलिक स्थितिका इतना ठीक-ठीक अनुमान लगाया जा सकता है कि पूर्वी मालवामें जमुनासे निकलनेवाली एक छोटी नदीका नाम काली-सिंधु या सिंधु नदी है। यह नदी प्राचीन दशार्ण क्षेत्र, जिसकी प्राचीन राजधानी विदिशा थी, से बहती हुई पद्मावती नामक स्थानपर आकर चर्मण्वती (चंबल नदीसे भोपालके निकट निकलनेवाली पारा नदीमे मिल जाती है । वहाँसे आगे दोनो नदियाँ मिलकर बेतवामें गिर जाती हैं। इसी सिंधु नदीके तीरपर भोपालसे पूर्व और विदिशासे उत्तरमे कहीं सिंधुवर्षी नामक नगरी रही होगी । इससे अधिक ठीक स्थिति कह सकना कठिन है ।

इन दो सूचनाओंका आश्रय लेकर अर्थात् मालव देश एवं वि० सं० १०७६ (के आस पास) का समय, देखनेपर ज्ञात होता है कि मालवामे वि० सं० १०२४ में मंजके पिता सीयक, श्रीहर्ष या सिंहभट राज्य कर रहे थे। वि० सं० १०२४ के पहले वे राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीयके द्वारा हराये गये थे। परंतु वि० सं० १०२९ के प्रारंभमे कृष्ण तृतीयकी मृत्यु हो जानेपर उनके अनुज खोट्टिगदेव गद्दीपर बैठे। खोट्टिगदेवके गद्दीपर बैठते ही सीयकने पूरी तैयारीके साथ मान्यखेटपर आक्रमण किया और खोट्टिगदेवको हराकर मान्यखेट नगरीको बुरी तरह लूटा व ध्वस्त किया। सीयककी राजधानी धारानगरी थी। इससे वे धारानरेश या धारानाथ कहलाते थे। सीयकके उपरांत उनके पुत्र प्रसिद्ध मुंज राजा गद्दीपर बैठे। इन्होंने अपने पितासे प्राप्त राज्य सीमाओंको न केवल रक्षा की वरन् उनका विस्तार भी

१. पं० कैलाशचंद्र शास्त्री, सोमदेवकृत उपासकाध्ययन, प्रस्तावना पृ० १४ ।

किया। कर्णाटक, लाट, केरल, चोलके राजाओंको उन्होंने जीता था, और अन्य भी कई प्रदेशों पर चढाई की तथा अपने राज्यकी सीमा वृद्धि की थी।[1] उन्होंने सोलंकी राजा तैलप द्वितीयको छह बार हराया था, पर सातवी बार गोदावरीके पासके युद्धमें वे कैद कर लिये गये और वि० स० १०५०–१०५४ के बीच मार डाले गये।[2] मुंजराजका दूसरा नाम वाक्पतिराज भी था।[3]

मुंजराजकी मृत्युके बाद सिंधुल, सिंधुराज, कुमारनारायण या नव-साहसांक नामोंसे विख्यात उनके छोटे भाई गद्दीपर बैठे। इन्होंने हूणोंको तथा दक्षिण कोसल, बागड, लाट और मुरल तथा अन्य कई प्रदेशोंके राजाओंको युद्धमें हराया।[4] ये गुजरात नरेश सोलंकी चामुण्डराजके साथकी लड़ाईमें मारे गये। वि० सं० १०५० और १०६६ के बीच किसी समय इनके मारे जानेका अनुमान किया गया है।[5]

सिंधुराजकी मृत्युके उपरात भोजराज गद्दीपर बैठे और वि० सं० ११११२ तक लगभग ४५ वर्ष राज्य किया।[6] राज्याधिरूढ होते ही भोजने दिग्विजयका उपक्रम किया और अनेक युद्ध किये। उनमें-से बहुत-से युद्धोंमें ये विजयी हुए, परंतु दक्षिणमें इनकी विजय अस्थायी रही और जयसिंहके पुत्र सोमेश्वर प्रथमने कर्णाटकी गद्दीपर बैठनेके बाद दक्षिणके संघर्षमें भोजदेवकी भयानक दुर्दशा की। गुजरातमें भी भोज-राजको विजयश्री हाथ नही लगी। भोजराज अतिशय साहित्यिक अभिरुचि संपन्न राजा थे और इनकी सभा अनेक विख्यात कवियों-साहित्यकारोंसे अलकृत रहती थी।

इस पृष्ठभूमिपर वीर कविकी सूचनाओं और वर्णनोंको जाँचनेमें विशेष सुविधा होगी।

जं० सा० च० की प्रशस्ति (पंक्ति ९-१०) में कविने लिखा है कि बहुत-से राजकार्यमें लगे रहकर इस काव्यकी रचना करनेमें उन्हें एक वर्षका समय लगा। इससे यह प्रमाणित है कि कविका किसी राजाकी राज्य सभासे घनिष्ठ सबध था।

काव्यकी पाँचवी सधिमें कविने लिखा है कि केरलमें मृगांक नामका राजा था, उसकी विलासवती नामक कन्या दैवज्ञ मुनिके कथनानुसार मगधके श्रेणिकराजको ब्याही जानी थी। परंतु हसद्वीपके राजा रत्नशेखरने उसके रूप-गुणोंकी प्रशसा सुनकर उसके पिता मृगाकसे विलासवतीको अपने लिए माँगा, और न देनेपर केरलपुरीको चारों ओरसे घेर लिया। यह समाचार मृगाकके साले गगनगति विद्याधरसे सुनकर श्रेणिक राजाने सैन्य सहित केरलकी ओर प्रस्थान किया। परंतु काव्यके नायक अकेले जंबूस्वामीने ही गगनगति विद्याधरके साथ जाकर मृगांककी सेनाकी सहायता करके रत्नशेखर विद्याधरको हरा दिया.... आदि। छठी सातवी सधियोंमें दोनो सैन्यो एवं प्रमुख व्यक्तियो गगनगति—रत्नचूल, मृगांक-रत्नचूलके बीच युद्धमें केरल पक्षकी पराजय तथा अतमें जबूकुमार-द्वारा रत्नचूलके पराजयका वर्णन है, और फिर आठवी संधिकी प्रारंभिक पंक्तियोंमें कहा है कि आर्षप्रोक्त कथासे अधिक जो मैंने युद्धादिका वर्णन किया उसके लिए गुरुजन मुझे क्षमा करें। कविके इस कथनसे यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि उसने अपने काव्य-को महाकाव्य बनानेकी दृष्टिसे अपनी ओरसे यह सारा युद्धका प्रसग जोड़ दिया। यह युद्ध वर्णन सर्वथा काल्पनिक भी हो सकता था, परंतु कविने फिर कहा है कि हाथमें धनुष, तथा दो भुजाओंमें विक्रम वीर कविका सहज परिकर है....आदि (६.१.३–६)। इससे ज्ञात होता है कि कविने स्वयं भी किसी युद्धमें

१-२. प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास, द्वि० सं० पृ० २८२।

३. पृ० २८१, बल्लाल कृत भोजप्रबंधके संपादक पं० जगदीशलालशास्त्रीने ग्रंथकी भूमिका पृ० ग पर इन्हें 'वाक्पतिराज द्वितीय'के नामसे प्रसिद्ध कहा है।

४. जगदीशलालशास्त्री; बल्लालकृत भोजप्रबंध भूमिका पृ० ड।

५. प्रेमी, जै० सा० इति० पृ० २८२ द्वि० सं०।

६. श्री गांगुलीके मतानुसार भोजराज लगभग वि० सं० १०५६–५७ में गद्दीपर बैठे और ५५ वर्ष राज्य किया; देखिए: ज० का० शास्त्री भो० प्र० भूमिका पृ० च।

भाग लिया था। देखना यह है कि वह युद्ध कौन-सा, किस राजाके द्वारा, कहाँ किया हो सकता है, जिसमें वीर कविने भाग लिया हो और जो उसके वर्णनके अनुकूल भी पड़ता हो।

इस भूमिकापर जब हम विचार करके देखते हैं तो उपर्युक्त परमारवंशीय राजाओंमें सर्वप्रथम सीयक या सिंहभटके जीवनके ऊपर अनायास हमारी दृष्टि पहुँच जाती है, जिन्होंने दक्षिणमें कर्णाटक, लाट, केरल और चोलदेशके राजाओंको जीता था, और जिनका राज्यकाल सं० १०२४ से लगाकर सं० १०५४ तक तीस वर्षोंकी दीर्घ अवधि पर्यंत बना रहा। इसके बाद परमार वंशके राजाओंको दक्षिणमें ऐसी विजय प्राप्त नहीं हुई। अत. उपर्युक्त सारी चर्चाको ध्यानमें रखकर, तथा सब साक्ष्योंको एक साथ मिलाकर देखने-पर ऐसा अनुमान होता है कि सीयककी दक्षिण-विजय यात्रामें कवि अपने यौवनकालमें उनके साथ रहा, और प्रौढत्व अथवा वृद्धत्व आनेपर राजकाजमें लगे रहते ही उसने जं० सा० च० की रचना अपने पिताके मित्र मधुसूदन श्रेष्ठिके पुत्र तक्खडकी प्रेरणा और उसके अनुज भरतके अति उत्साह संवर्द्धन करनेसे की और सीयककी दक्षिण-विजय यात्रा, जिसमें केरल भी सम्मिलित था, को ही अपने काव्यके अनुरूप परिवर्तित करके कविने उसे यह काव्योचित रूप दे डाला। यह अनुमान करनेमें कोई असंगति या असंभाव्यता प्रतीत नहीं होती।

सीयककी मृत्युके उपरांत भी कवि कमसे कम २५–३० वर्ष जीवित रहा, और इस बीच मुंज व सिंधुल राजा हुए तथा उनके बाद भोजदेव गद्दी पर बैठे। भोजदेवके शासनकालमें भी वीर कवि कमसे कम १५-२० वर्ष जीवित रहा, और उसकी राज्यसभाका सदस्य रहा होना चाहिए। इस विषयमें अभी अन्य साक्ष्योंकी अपेक्षा बनी रहती है।

उपर्युक्त समस्त विवेचनके आधारसे राष्ट्रकूटवंशीय कृष्णराज-तृतीय तथा परमारवंशीय सीयक, मुंज, सिंधुल और भोजदेव वीर कविके समकालीन व उसके संरक्षक राजा कहे जा सकते हैं। और इन तथ्योंपर-से कविका जीवनकाल भी बहुत कुछ निश्चित हो जाता है जो लगभग वि० सं० १०१० से लगाकर वि० सं० १०८५ तक ठहरता है।

कविकी शिक्षा तथा व्यक्तित्व एवं कृतित्व

इस विषयमें कविने अपनी रचनामें पर्याप्त सामग्री प्रदान की है। आदिमें तीर्थंकर महावीर, पार्श्व एवं आदिनाथ-ऋषभकी स्तुति तथा महाकाव्योंकी रीतिके अनुसार सज्जन प्रशंसा, दुर्जन निंदा व काव्यदोषोंको क्षमा करनेके लिए मध्यस्थ ज्ञानी जनोंकी अभ्यर्थना तथा महाकवि स्वयंभूका नाम स्मरण व गुण संकीर्तन करके, कवि अपनी विनयशीलता प्रदर्शित करते हुए कहता है[1]—सुकाव्य रचनामें मनसे प्रवृत्त होकर भी मैंने उसके लिए विद्यासाधन रूपी कौन-सी सामग्री एकत्र की ? क्या मैंने प्रदीप[2] नामक शब्दशास्त्रका अध्ययन किया; या छंदशास्त्र सहित निघंटुको जाना; या कि तर्कशास्त्रको समझा या कि महाकवि रचित विशिष्ट काव्य सेतु[3]—का अध्ययन किया ? व्याकरणकी गुण, वृद्धि आदि क्रियाओं, समास-विधान, अपशब्द व शुद्ध शब्दोंका भेद, अथवा छंदशास्त्र इनमें-से किसीको भी तो मैंने नहीं समझा; हाँ रामायणमें समुद्रपर सेतु बाँधा गया था, यह मैंने अवश्य सुना है"'आदि-आदि। कविके इन वाक्योंसे स्पष्टतया यह प्रकट होता है कि वह शब्दशास्त्र, छंदशास्त्र, निघंटु (नामकोश), तर्कशास्त्र तथा प्राकृत काव्य सेतुबंध इन सबका विशेष रूपसे गहन अध्ययन करनेके उपरात काव्य रचनामें उद्यत हुआ। प्राचीन प्रणालीके अनुसार जैन साहित्यके चारों अनुयोगों (विधाओं) प्रथमानुयोग (पुराण, कथा, चरित, साहित्य), द्रव्यानुयोग (सैद्धांतिक साहित्य), चरणानुयोग (आचारपरक धार्मिक साहित्य) एवं करणानुयोग (जैन-भूगोल,

---

१. जं० सा० च० १.३.१-१०।

२. देखिए ऊपर पृ० १४, पाद टिप्पण ६।

३. महाकवि प्रवरसेन (५वीं शती ई०) विरचित 'सेतुबन्ध' महाकाव्य।

गणित ज्योतिष आदि) का कविने आचार्य-परंपरासे गंभीर एवं तात्त्विक ज्ञान प्राप्त किया था, यह तथ्य संपूर्ण रचनामें पद-पदपर झलकता है। मूल ग्रंथमें अनेक पौराणिक घटनाओंके उल्लेखोसे[1] ज्ञात होता है कि कविको केवल जैन पौराणिक परंपराका ही नही, बल्कि वाल्मीकि-रामायण व महाभारत इन दोनो पौराणिक महाकाव्यो तथा शिवपुराण आदि पुराणोसे भी गहरा परिचय था। इनके अतिरिक्त प्राचीन कवियोके प्रसिद्ध काव्यग्रंथो व शास्त्रीय लक्षणग्रंथो, विशेपरूपसे भरतके नाट्यशास्त्रके अनुसार अलंकार व अन्य काव्य-लक्षणोंका कविको तलस्पर्शी ज्ञान था, इसके भी अनेक प्रमाण प्रस्तुत काव्य-कृतिमें[2] हमें उपलब्ध होते है। संस्कृत साहित्यके कुछ प्रमुख-कवियों, लेखकोकी रचनाओसे कवि सुपरिचित एवं प्रभावित था, जिनमें-से महाकवि कालिदास, तथा बाण विशेपरूपसे उल्लेखनीय है।[3]

शास्त्रीय ज्ञानके अतिरिक्त कवि लौकिक शिक्षामें भी निष्णात था। केवल काव्य-रचना ही उसका एक-मात्र जीवन व्यापार अथवा साधन नहीं था, बल्कि वह अन्य भी बहुविध राजकार्य, धर्म, अर्थ, व काम चर्चाओं में लगा रहता था, और इन सब कार्योमें व्यस्त रहते हुए इस 'जंबूसामिचरिउ' नामक चरितकाव्यकी रचना करनेमें उसे एक वर्षका समय लगा।'[4] अर्थात् कविको समाजके विभिन्न वर्गों एवं जीवन-यापनके विविध साधनोंका साक्षात् अनुभव था। वीर कवि एक श्रद्धा-भक्तिवान् जैन सद्गृहस्थ था; और उसने मेघवनपत्तनमें भगवान् महावीरकी प्रतिमाकी स्थापना करायी थी।[5] अन्यत्र कविने स्वयं कहा है कि दरिद्रोको दान, दूसरोके दुःखमें दुःखी, सरस-काव्य [की रचना] को ही सर्वस्व माननेवाले पुरुषोंको धारण करनेसे ही धरित्री कृतार्थ होती है, तथा हाथमें धनुष, साधुचरित्र महापुरुषोंके चरणोमें शिरस. प्रणाम, मुखमें सच्ची वाणी, हृदयमें स्वच्छ-प्रवृत्ति, कानोसे सुने हुए श्रुतका ग्रहण, तथा दो भुज-लताओमें विक्रम यह वीर (पुरुष, कवि) का सहज परिकर हुआ करता है।[6] अर्थात् वीर कवि पूर्ण रूपसे एक अनुकंपावान सल्लक्षण जैन गृहस्थ होनेके साथ ही साथ एक सच्चा वीर पुरुष भी था।

कवि केवल अपभ्रंश रचनामें ही सिद्धहस्त नही था। संस्कृत एवं प्राकृतमें भी उसे निर्बाध नैपुण्य एवं गति प्राप्त थी। संस्कृतके कुछ श्लोक प्रथम संधिके अंतमें तथा एक आर्या पंचम संधिके ११वें कडवकमें उपलब्ध हैं, और प्राकृतकी अनेक गाथाएँ प्रत्येक संधिके प्रारंभमें विद्यमान हैं। प्रशस्ति भी प्राकृत गाथाओमें लिखी गयी है। पहली और सातवी संधियोंके बीचमें भी (१.११; ७.६) प्राकृत गाथाएँ हैं। इन गाथाओंकी भाषा गूढ अर्थ प्रधान व क्लिष्ट है, और ये शुद्ध साहित्यिक शैलीमें निबद्ध है, तथा अत्यंत गंभीर और विशद भावोसे द्योतित हैं। संपूर्ण रचना संस्कृतके तत्सम शब्दोसे भरी है, और शैली भी संस्कृत काव्योके अनुरूप समास, अलंकार तथा श्लेष प्रधान है। ये बातें यह सिद्ध करनेके लिए पर्याप्त है कि संस्कृत रचनामे निपुण होनेका कविका दावा असत्य नही है, और प्राकृत रचनामें उसकी सिद्धहस्तता प्रकट करनेके लिए तो कविकी प्रस्तुत रचनामें उपलब्ध गाथाएँ ही पर्याप्त प्रमाण है। इस प्रकार कविकी एक मात्र कृति 'जंबूसामिचरिउ' से प्रमाणित है कि कवि संस्कृत-प्राकृत एवं अपभ्रंश तीनो भाषाओमें निष्णात था, तथा किसी भी भाषामें काव्य रचना करनेमें समर्थ था।

---

१. जं० सा० च० १.१०.७-८; ३.१२.१-२; ४. १८.१२-१३; ५-८.३१-३६, एव ५.९.१४.।

२. वही, ३.१३.४; ७.१.३-६; ८ १.३-१०, ९.१.१-४; एवं १०.१.१-४।

३. विशेषके लिए देखें—प्रस्तावना—पूर्ववर्ती साहित्यकारोंका प्रभाव।

४. जं० सा० च० प्रशस्ति गाथा ५।

५. जं० सा० च० प्रशस्ति गाथा ४।

६. जं० सा० च० ६.१.१-६।

३. कथासार, कथावस्तुका महाकाव्यात्मक गठन और मौलिकता

तीन तीर्थंकर महावीर, पार्श्व एवं ऋषभकी स्तुति वंदना करके (१.१) अपने विद्याभ्यास, (१.३) माता-पिता (१.४) एवं प्रेरणादायकोंका परिचय देकर कवि जंबूस्वामीचरितकी कथा प्रारंभ करता है (१ ५-६)। मगधदेश (१.६-८) के राजगृह नगर (१.९-१०) में श्रेणिक नामका राजा (१.११) था, उसकी कई सहस्र सुंदर रानियां (१.१२) थी। एकबार भ० महावीर अपने समवशरण सहित विपुलाचल पर पधारे (१.१३)। राजा अपने समस्त परिवार, परिजन, पुरजन, व सेना सहित भगवान्‌के दर्शनोंको गया (१.१४-१६) तथा स्तुति-वंदना करके (१ १७ १८) उचित स्थानपर बैठ गया। (संधि—१)।

श्रेणिकके अनुरोध करने पर भगवान्‌ने जीवादि तत्वोंका उपदेश दिया (२.१-२)। उसी समय एक महातेजस्वी देव अपनी चार देवियों सहित अपने आकाशगामी विमानसे उतरा व भगवान्‌को वंदना करके समवशरणमें देवताओंके कोठेमें बैठ गया। श्रेणिकके प्रश्न करने पर भगवान्‌ने कहा यह विद्युन्माली नामका देव है, जो सातवें दिन स्वर्गसे च्युत होकर इसी नगरमें मनुष्य रूपमें जन्म लेगा व तप करके उसी भवसे मोक्ष जायेगा (२.३)। श्रेणिक-द्वारा पुन. पूछे जाने पर भगवान् ने उस देवके पूर्व भवोंकी कथा इस प्रकार कहनी प्रारंभ की—

इसी मगध देशमें वर्द्धमान नामका ब्राह्मणोंका अग्राहार ग्राम है (२ ४)। वहाँ सोमशर्म नामका वेदज्ञ ब्राह्मण रहता था, जिसकी सोमशर्मा नामक पत्नी थी। उनके दो शास्त्रज्ञ पुत्र हुए, बड़ा भवदत्त तथा छोटा भवदेव। कुछ काल पश्चात् व्याधिग्रस्त होकर उनका पिता विष्णुका स्मरण करता हुआ जीवित ही चितामें प्रविष्ट होकर मृत्युधर्मको प्राप्त हुआ। पतिव्रता सोमशर्माने भी चितामें जलकर तत्क्षण पतिका अनुगमन किया। माता-पिता दोनोंके वियोगको स्वजनोंके धैर्य बधाने पर (२-५) किसी-किसी तरह सहन करते हुए बडा भाई भवदत्त न्याय-नीतिपूर्वक गृहस्थधर्मका पालन करने लगा। उस समय बडा भाई भवदत्त अठारह वर्षका था, और छोटा भवदेव बारह वर्षका। कुछ दिन बाद सुधर्म मुनिका उपदेश (२ ६) सुनकर भवदत्तको वैराग्य हो गया और छोटे भाई भवदेवको गृहस्थीका भार सौंपकर वह संघमें दीक्षित हो गया (२.७)। बारह वर्ष पश्चात् मुनिसंघ विहार करते-करते पुन उसी गाँवमें आया। छोटे भाई भवदेवको भी दीक्षित करनेकी इच्छासे गुरुकी अनुज्ञा लेकर भवदत्त मुनि भवदेवके घर आये (२.८)। उस समय भवदेवका विवाह हो रहा था। बडे भाईका आगमन सुनकर वह नववधूको अर्द्धमंडित ही छोडकर तुरत बाहर आया (२.९), और मुनिके पूछने पर उसने बताया कि मैंने इसी गाँवके दुर्मर्षण नामक ब्राह्मण व उसकी नागदेवी नामक पत्नीकी नागवसू नामक कन्यासे विवाह किया है (२.११)। भवदेवके आग्रहसे वही आहार लेकर भवदत्त मुनि जहाँ संघ ठहरा था, वहाँ लौट चले। नगरके अन्य नर-नारी कुछ दूर तक मुनिको छोड़कर नगरको लौट गये, पर मुनिने भवदेवको वापिस लौट जानेको नहीं कहा। अत भाईके प्रति श्रद्धा व लज्जाके कारण भवदेव घर जानेको अत्यत उत्सुक होने पर भी लौट नहीं सका और मुनिके साथ जहाँ संघ ठहरा था, वहाँ पहुँच गया (२.१२)। संघमें जाकर अन्य मुनिजनोंकी प्रेरणासे तथा भाईकी भी ऐसी ही अंतरंग इच्छा जानकर उनके सम्मानकी रक्षाके लिए बे-मनसे भवदेवने आचार्यसे दीक्षा ले ली (२.१३)। तदनन्तर संघ वहाँसे विहार कर गया। भवदेव दिन-रात नागवसूके ध्यानमें लीन रहता हुआ, घर लौटकर पुन. उसके साथ कामभोग भोगनेके अवसरकी प्रतीक्षामें समय व्यतीत करने लगा (२.१४)। बारह वर्ष पश्चात् मुनिसंघ पुन. उसी वर्द्धमान गाँवके निकट आकर ठहरा। भवदेव इससे बहुत उत्कंठित हुआ, और बहाना करके मनमें प्रेम व प्रेमपूर्तिकी उधेड़-बुन करता हुआ अपने घरकी ओर चला (२.१५-१६)। गाँवके बाहर ही एक जिन-चैत्यालयमें उसकी नागवसूसे भेंट हो गयी। यद्यपि पत्नीने अति [illegible], [illegible] भवदेव उसे पहचान नहीं सका (२.१६)। अपने कुल व पत्नीके [illegible] नागवसू [illegible] पहचान [illegible] नश्वर है, और धर्मबुद्धि [illegible] है। तब [illegible] अपना परिचय दिया और अपना [illegible] शरीर दिखलाकर व नानाप्रकारसे धर्मोपदेश

देकर भवदेवको प्रतिबुद्ध किया (२.१७-१८)। इस प्रकार बोध प्राप्त करके भवदेवने आचार्यके समक्ष जाकर सब कुछ बतलाकर प्रायश्चित्त किया, पुन दीक्षा ली (२.१९) और अति कठोर तप करने लगा। तप करके दोनो भाई मरकर तीसरे स्वर्गमें देव हुए (२.२०)। (संधि-२)।

मंदराचलसे पूर्व दिशामे पूर्व-विदेहमें पुंडरिकिणी नामकी नगरी (३.१-२) है। बडे भाई भवदत्तका जीव स्वर्गमें अपनी आयु पूरी करके, वहांके राजा वज्रदंत व उसकी रानी यशोधनाका सागरचंद्र नामक पुत्र हुआ (३.३)। उसी देशमे वीताशोक नामक नगरीमें, छोटे भाई भवदेवका जीव, वहाँके राजा महापद्म और उसकी वनमाला नामक पट्टरानीका शिवकुमार नामक पुत्र हुआ (३ ३)। युवा होनेपर उसका युवराज पद-पर अभिषेक एवं अनेक राजकन्याओंके साथ परिणय करा दिया गया। उधर पुंडरिकिणी नगरी में सुबंधुतिलक नामके एक महामुनि पधारे (३.४)। उनसे धर्म श्रवण एवं दोनों भाइयोंके पूर्वजन्मका ज्ञान प्राप्त करके कुमार सागरचंद्र वहीं दीक्षित हो गया (३.५)। मुनिसंघके साथ विहार करते हुए मुनि सागरचंद्र छोटे भाई भवदेवके जीव युवराज शिवकुमारको प्रतिबोध देनेकी इच्छासे वीताशोक नगरीमें पधारे। उन्हें देखकर अपने पूर्वजन्मका स्मरण होनेसे शिवकुमारको भी वैराग्य हो गया और उसने दीक्षा लेनेकी अनुमति माँगी (३-७)। परंतु दीक्षाके लिए माता-पिताकी अनुज्ञा न मिलनेसे घरमें ही मंत्रीपुत्र दृढधर्मके हाथो केवल कांजीका शुद्ध आहार लेते हुए अनेक वर्षों तक कठोर तप करके आयुष्यके अंतमें संन्यास-पूर्वक मरण किया (३-९)। उसी तपके प्रभावसे पहले भवदेव, फिर स्वर्गमें देव और फिर शिवकुमारका वह जीव विद्युन्माली नामका यह अति तेजस्वी देव हुआ है। उधर बडा भाई भवदत्त, फिर देव, और फिर सागरचंद्र मुनिका जीव भी आयुष्य पूरा करके स्वर्गमें देव हुआ। अब विद्युन्माली देव मनुष्य जन्म लेकर विद्युत्प्रभ नामक चोरके साथ दीक्षा लेगा (३-१०)।

विद्युन्माली देवकी चार देवियोंका पूर्वभव पूछनेपर भगवान्ने कहा—भारतदेशमें चंपानगरीमें सूर्यसेन नामका एक सेठ जयभद्रा, सुभद्रा, धारिणी और यशोमती नामकी चार अतिसुंदर पत्नियोंके साथ रहता था (३-१०)। कुछ काल बाद कर्मविपाकसे सूर्यसेनको कुष्ठ आदि अनेक भयानक व्याधियाँ हो गयीं और वह अपनी पत्नियोंसे बडी ईर्ष्या रखने लगा, तथा द्वेष व शंकासे उन्हें नानाप्रकारकी यातनाएँ देने लगा (३-११)।

एक बार वसंतऋतु (३.१२) में नागयक्षकी यात्रा (पूजा)-के अवसर-पर वे चारों भी नागदेवताके दर्शन कर निकटस्थ वासुपूज्य भगवान्के मंदिरमे गयीं। वहाँ सुमतिनामक मुनिसे उन्होंने श्रावकोंके व्रत ले लिये। सूर्यसेनकी मृत्युके उपरांत सब संपत्ति मदिर निर्माणमें लगाकर चारो बहुएँ सुव्रता आर्यिकाके पास आर्यिकाएँ हो गयीं। वे ही चारों तप करके मरणोपरांत स्वर्गमें विद्युन्माली देवकी चार प्रियाएँ हुई है (३.१३)।

पुन. विद्युच्चोरके संबंधमें पूछने पर भगवान्ने कहा—मगधदेशमे हस्तिनापुर नामक नगरमें विसंध्र नामके राजा व उसकी श्रीसेना नामक प्रिय रानीसे विद्युत्प्रभ नामका पुत्र हुआ जो चोरीके व्यसनके वशीभूत होकर पिताका राज्य छोड़कर राजगृह नामक नगरमें आकर कामलता नामक वेश्याके घरमें रहता है, व चोरीका धन ला-लाकर उसका घर भरता है (३-१४)। (संधि ३)।

तब विद्युन्माली देवके जन्मकुलके संबंधमें पूछनेपर भगवान्ने कहा कि यह देव इसी राजगृह नगरी-के निवासी व यहीं समवशरणमें उपस्थित श्रेष्ठी अरहदास व उसकी प्रिय भार्या जिनमतीके पुत्ररूपमें जन्म लेगा। भगवान्के ये वचन सुनकर एक यक्ष अपने गोत्रकी प्रशंसा करता हुआ प्रसन्नताके कारण उठकर नाचने लगा (४ १)। इसका कारण पूछने पर भगवान्ने कहा कि इसी नगरीमें धनदत्त नामका सेठ रहता था। उसकी गोत्रवती नामकी भार्या थी। उसके दो पुत्र हुए, बड़ा अरहदास जो बहुत सज्जन व धर्मात्मा हुआ, और छोटा जिनदास जो जवानीके वेगमें कुसंगतिके प्रभावसे जुआ आदि व्यसनोमें बुरी तरह पड़ गया। एक दिन वह जुएमें छत्तीस सहस्र स्वर्णमुद्राएँ हार गया। घरसे मुद्राएँ लाकर देनेका वचन देने पर भी छलक नामके एक जुआड़ीने जिनदाससे व्यर्थ झगड़ा करके उसके पेटमें कटारी मार दी (४-२)। यह सूचना

मिलने पर बड़ा-भाई अरहदास उसे घर ले गया, और सब उचित उपचार किया। पर वह बच नहीं सका, और भाईके सदुपदेशसे शुभ भावोंसे मरकर उसने यक्ष योनिमें इस रूपमें जन्म लिया है। अतः अपने पूर्व-जन्मके पितृकुलमें भाईके घरमें अंतिम केवलीके जन्म होनेकी बात सुनकर अपने गोत्रकी प्रशंसा करता हुआ आनंदके कारण नाच रहा है। (४.३)।

इसके पश्चात् भगवान्‌ने नानाप्रकारसे धर्मोपदेश किया व आगे होनेवाले संपूर्ण जंबूस्वामी चरित्र-को विस्तारसे बतलाया। धर्म श्रवण करके व नानाप्रकारसे श्रावकव्रतोंको लेकर राजा सहित सब पुरजन नगरको लौट आये। सात दिन पश्चात् अरहदासकी जिनमती भार्याने सोते समय रात्रिके अंतिम प्रहरमें पाँच मांगलीक स्वप्न देखे (४-५) :—

(१) अत्यंत सुगंधित जंबूफलोंका समूह, (२) समस्त दिशाओंको प्रकाशित करनेवाला धूम्ररहित अग्नि, (३) फूला हुआ व फलभारसे नम्र सुगंधित शालिक्षेत्र; (४) चक्रवाक् हंस आदि पक्षियोंके मधुर कलरवसे युक्त सरोवर एवं (५) नाना मगरमच्छ—कच्छपादिसे भरा हुआ विशाल सागर। इसी समय विद्युन्माली देव जिनमतीके गर्भमें अवतीर्ण हुआ (४.७)। नौ मास पूर्ण होने पर वसंतकी शुक्ल पंचमीको सोमवारके दिन जब चंद्रमा रोहिणी नक्षत्रमें विद्यमान था, प्रत्यूष कालमें पुत्र जन्म हुआ। बहुत आनंदसे पुत्र जन्मोत्सव मनाया गया। स्वप्नमें जंबूफलोंका प्रथमदर्शन होनेसे पुत्रका नाम जंबूस्वामी रखा गया (४-८)। उचित समयपर बालककी शिक्षा-दीक्षा हुई और उसके रूप (४-९) व गुणोंकी ख्याति चारों ओर फैलने लगी (४-१०)। जहाँ भी वह जाता नगरकी नारियाँ उसे देखकर अपनी सब सुध-बुध खो बैठतीं और कामबाणोंसे पीड़ित हो जाती (४-११)।

अरहदासके चार धनाढ्य-बालमित्रोंने बचपनमें खेल-खेलमें की हुई प्रतिज्ञानुसार अपनी अपनी चार कन्याओंको (जो पूर्वभवमें विद्युन्माली देवकी चार देवियाँ थी), जिन्हें सब प्रकारकी स्त्रीजनोचित विद्याओं व कलाकौशलकी शिक्षा दी गयी थी (४-१२), जो जन्मसे ही अद्वितीय सुंदरियाँ थीं, और दिन-दिन पूर्ण यौवन (४-१३-१४) को प्राप्त हो रही थीं, अरहदाससे जंबूस्वामीके लिए वधू रूपमें स्वीकार करनेका अनुरोध किया। जिनमतीकी अनुमति लेकर अरहदासने इस प्रस्तावको सहर्ष स्वीकार किया (४-१४)। पाँचों श्रेष्ठियोंके घरोंमें विवाहकी पूरी तैयारियाँ होने लगीं (४-१५)। इतनेमें वसंत आ पहुँचा (४-१५)। नगरके स्त्री-पुरुष युगलोंके साथ राजा नगरसे निकला और उपवनमें पहुँचा (४-१६)। वहाँ यथेच्छ उद्यान क्रीड़ा की गयी (४-१७)। जंबूस्वामीने भी उन्मुक्त भावसे कामिनियोंके साथ हास-परिहास किया (४-१८)। पश्चात् सबने देर तक जलक्रीड़ा की (४-१९)। जलक्रीड़ा समाप्त करके जब सब लोग नगरमें जानेकी तैयारी कर रहे थे (४-२०) कि राजाका विषमसंग्रामशूर नामक पट्टहाथी बंधन तुड़ाकर भाग निकला, और उसने नगर व उपवनमें सर्वत्र मृत्यु एवं विनाशका भयावह दृश्य उपस्थित कर दिया (४-२०-२१)। उसे कोई वशमें नहीं कर सका। जंबूस्वामीने सरलतासे उसपर विजय प्राप्त कर ली (४.२२)। इसपर राजाने बहुत प्रकारसे जंबूस्वामीकी प्रशंसा की। (संधि—४)।

विविध प्रकारसे जंबूस्वामीका सन्मानादि करके राजाने उसके साथ नगरमें प्रवेश किया और अपनी राजसभा लगायी (५ १)। एक दिन जब राजा जंबूस्वामीके साथ सभामें बैठा था, तो गगनगति नामका विद्याधर अपने विमानसे राजसभामें आकर उतरा, और प्रणाम करके निवेदन करने लगा—देव, मैं सहस्र-शृंग नामक पर्वतपर रहनेवाला गगनगति नामका विद्याधर हूँ। मलयाचलमें केरल नामकी नगरीके राजा मृगांकसे मालतीलता नामक मेरी बहन ब्याही गयी है। उनकी विलासवती नामकी अपूर्व सुंदरी कन्या है। मुनिके कथनानुसार उसका परिणय आपसे किया जाना है (५.२) उधर हंसद्वीपके रत्नचूल नामक प्रचंड बली विद्याधर राजाने बलपूर्वक उस कन्याको प्राप्त करने हेतु अपनी सेनाके साथ केरल नगरीको चारों ओरसे घेर लिया है, तथा वहाँ बड़ा विनाश कर रहा है। अब अन्य कोई उपाय न देख, क्षात्रधर्मकी रक्षा हेतु अपने सीमित सैन्य साधनके साथ मृगांक राजा कलके दिन नगरसे बाहर निकलकर रत्नशेखरसे

युद्ध करेगा, और सर्वनाशको प्राप्त होगा (५.३)। मैं अपना धर्म निभाने वहीं जा रहा हूँ। रास्तेमें आपकी सभा देखकर प्रासंगिक समाचार आपसे निवेदन कर दिया है। उसके इतना कहने पर जंबूस्वामी राजाकी अनुज्ञा लेकर, उसके साथ विमानमें बैठकर अकेले ही केरल नगरीकी ओर चल दिये। इधर राजाने भी अपने सेनापतियोंको केरल नगरीकी ओर प्रयाण करनेके लिए तैयार होनेका आदेश दिया (५.५)। प्रयाणकी तैयारियाँ की गयी व राजाने सेनाके साथ प्रस्थान किया (५.६)। रास्तेमें विंध्याटवी पडी (५.८)। उसे पार कर राजाने विंध्यप्रदेशमें प्रवेश किया (५ ९)। आगे रेवा नदी पड़ी और उसके तट पर कुरल पर्वतके निकट राजाने सेना सहित पडाव डाल लिया (५.१०)। उधर गगनगति विद्याधरके साथ जंबूस्वामी केरल नगरीमें पहुँचे और नगरके बाहर ही विमानसे उतरकर मृगाक राजाके दूत बनकर रत्नशेखरकी छावनीमें प्रविष्ट हो गये (५.११)। रत्नशेखरकी सभामें पहुँचकर, दूसरेके निमित्त दी हुई कन्याको बलपूर्वक लेनेके कदाग्रहपर उसे बहुत बुरा-भला कहा (५.१२-१३)। इससे रत्नशेखर बहुत क्रुद्ध हो गया और उसने अपने भटोको जंबूस्वामीको पकड़कर मार डालने की आज्ञा दी। सभास्थलमें ही भयानक युद्ध प्रारंभ हो गया। गगनगतिने जंबूस्वामीको एक दिव्य ढाल व तलवार भेंट की, व स्वयं भी युद्ध करने लगा। स्वामीने अकेले ही नाना प्रकारके पैंतरे बदलते हुए सहस्रों शत्रु भटोंको मार गिराया व उसकी सेना को तितर-बितर कर दिया (५.१४)। (संधि—५)।

अपने चरोंसे यह सब समाचार पाकर मृगांक राजाने तुरंत अपनी सेनाको युद्धमें चलनेकी तैयारी करनेके आदेश दिये। वीर वधुओंने अपने प्रियतमोंको नाना संदेश दिये (६.३)। सेनाने नगरसे प्रयाण किया (६.४)। दोनों सेनाओंमें भीषण युद्ध हुआ (६.५-६)। संग्रामका भीषण दृश्य (६.७)। भटोंकी अवस्था (६ ८)। युद्ध (६.९)। गगनगति और रत्नशेखर विद्याधरमें आकाशमें युद्ध हुआ, उसमें गगनगति घायल हो गया (६.१०-११)। रत्नशेखर आकाशसे नीचे उतरा, और मृगांक राजासे युद्ध करके, उसे परास्त करके बाँधकर ले गया (६ १२-१४)। इससे केरल राजाकी सेना पराभूत भावसे निश्चेष्ट व अधोमुख होकर बैठ रही। (संधि—६)।

छावनीके भीतरसे युद्ध करते हुए बाहर निकलने पर जंबूस्वामीको गगनगतिसे युद्धके सब समाचार ज्ञात हुए, व स्वामीकी प्रेरणासे केरल सेना पुनः युद्धके लिए तत्पर हो गयी। दोनों सेनाएँ पुनः आमने-सामने डट गयी (७.१-५) फिर वीरोंका परस्पर महान् युद्ध हुआ, व अनेक कायर जन भाग खडे हुए (७.६)। इधर रत्नशेखरसे सामना होने पर जंबूस्वामीने उसे अपने साथ द्वंद्व युद्धके लिए ललकारा, जिससे व्यर्थ नरसंहार न हो। दोनों सेनाओंको अलग-अलग दूर हटा दिया गया (७.७)। जंबूस्वामी एवं रत्नशेखरमें महाभयानक युद्ध हुआ (७-८१०)। जंबूस्वामीने युद्धमें रत्नशेखरको परास्त करके बाँध लिया, और मृगांक राजाको बंधनसे छुड़ा लिया, तथा मृगांक राजाके अनुरोधसे केरल नगरीको गये। वहाँ जाकर रत्नशेखर विद्याधरको भी बंधन मुक्त कर दिया, व केवल क्षात्रधर्मकी रक्षा हेतु युद्ध करनेके लिए क्षमा माँगी। तत्पश्चात् कुछ दिन केरल नगरीमें रहकर पत्नी व कन्या सहित मृगांक राजा, गगनगति विद्याधर एवं रत्नशेखर विद्याधरादिके अनेक विमानोंके साथ कुमारने मगधकी ओर प्रयाण किया। इन सबके साथ पर्वतके निकट ही ससैन्य श्रेणिक राजासे भेंट हो गयी। राजाने जंबूस्वामी व अन्य सबका समुचित स्वागत किया। गगनगति विद्याधरने सबका परिचय दिया, विलासवती कन्याका राजासे परिणय करा दिया गया। मृगांक व रत्नशेखरमें मैत्री करा दी गयी। सब लोग अपने-अपने स्थानोंको विदा कर दिये गये। श्रेणिक राजाने भी राजगृहकी ओर प्रयाण कर दिया। राजगृह पहुँच कर नगरके बाहर ही उपवनमें सुधर्म स्वामी ५०० मुनियोंके साथ विराजमान दिखाई दिये। राजा व अन्य सबने मुनिको वंदना की, और जंबूकुमारने भी प्रणाम किया (७.११-१३)। (संधि—७)।

आठवी संधिके प्रारंभमें कवि विनयपूर्वक निवेदन करता है कि आर्यप्रोक्त कथासे अधिक वसंतक्रीडा, हस्तिका उपद्रव, नरेंद्रका प्रस्थान एवं युद्धका वृत्त, यह जो मैंने कहा, उसके लिए गुणीजन मुझे क्षमा करें।- इसके पश्चात् कई गाथाओंमें काव्यके लक्षणोपर प्रकाश डालकर कवि कथासूत्रको आगे बढ़ाता है। सुधर्म

स्वामीको देखकर अपने मनमें अनायास उनके प्रति बड़ा स्नेह उमड आनेसे जंबूस्वामीने सुधर्म गणधरसे इसका कारण पूछा। तब सुधर्मस्वामीने भवदत्त-भवदेवके जन्मसे लगाकर दोनोके पाँच भवोका वर्णन किया। तू पहले भवदेव था, मैं भवदत्त। तत्पश्चात् दोनो स्वर्गमें एक साथ देव हुए। अनंतर तू शिवकुमार हुआ, मैं सागरचंद्र। इनके पश्चात् फिर दोनो देव हुए। तू विद्युन्माली देवके रूपसे च्युत होकर यहाँ जंबूस्वामी हुआ है, और मैं स्वर्गसे च्युत होकर इसी मगध देशमें संवाहन नामक नगरमें सुप्रतिष्ठ राजा व रुक्मिणी रानीका सुधर्म नामका पुत्र हुआ। एक दिन सुप्रतिष्ठ राजा सपरिवार महावीर जिनेंद्रके समवशरणमें गया, और भगवान्का उपदेश सुनकर वहीं दीक्षित हो गया। सुधर्मकुमारने भी उसी समय पिताके मार्ग-पर अनुगमन किया। पिता भगवान्के चतुर्थ गणधर हुए और मैं सुधर्म उनका पाँचवाँ गणधर बना। वही मैं ऋषिसंघके साथ विहार करते हुए यहाँ आया हूँ। तथा वे जो तुम्हारी चार देवियाँ थीं, उन्होंने भी पूर्वजन्मके स्नेहसे बँधे हुए सागरदत्तादि चार श्रेष्ठियोकी चार अति सुंदर कन्याओंके रूपमें जन्म लिया है। आजसे दसवें दिन उनसे तुम्हारा परिणय होगा (८ १-५)। यह सब इतिवृत्त सुनकर जंबूस्वामीको ससारसे वैराग्य हो गया, और उसने आचार्यसे दीक्षा देनेका अनुरोध किया, व आचार्यके आदेशसे घर जाकर माता-पितासे दीक्षा लेनेकी अनुमति माँगी। माता-पिताने अनेक प्रकारसे पुत्रको समझाने व सांसारिक सुख भोगनेके लिए प्रेरित करनेपर जब वह किसी भी प्रकार नहीं माना तो उन्होने कन्याओंके पिताओको यह समाचार भिजवाकर अनुरोध कराया कि कन्याओके लिए अन्य वर देख लिया जाये। कन्याएँ इसके लिए प्रस्तुत नहीं हुई, व अपने अपूर्व सौंदर्य और काम-चेष्टाओ द्वारा (८.११) जंबूस्वामीको अपने वशमें कर लेनेके विश्वाससे स्वामीको यह समाचार भिजवाया कि स्वामी केवल एक दिनके लिए विवाह कर लें, अगले दिन प्रातः दीक्षा ले लें, तब उन्हें कोई नही रोकेगा। स्वामीने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। वणिक् गोत्राचारकी श्रेष्ठ रीतिसे विवाह हुआ (८.१२-१३) विवाहके उपरांत जंबूस्वामी चारों वधुओंके साथ अपने घर आये। इतनेमें सायंकाल हो गया, व थोडी देरमें चारो ओर घना अंधेरा छा गया (८.१४)। कुछ देर बाद चंद्रोदय हुआ और स्वामी वधुओ सहित अपने वासगृहमें प्रविष्ट हुए (८.१५)। सब समागत मित्र-स्वजन अपने अपने घरोको विदा कर दिये गये, वासगृहके द्वार निश्छिद्ररूपसे बंद कर दिये जानेके उपरांत वधुएँ जंबूस्वामीको वशमें करनेके लिए नानाप्रकारकी कामचेष्टाएं करने लगी (८.१६)। (संधि.८)

नौवी संधिके आदिमें दो गाथाओमें पुनः काव्यके कुछ लक्षण कहकर कवि कथाको आगे ले चलता है। वधुओंको उन सब कामचेष्टाओंका जंबूस्वामीपर रंचमात्र भी कोई प्रभाव न पडते देखकर वधुओंको बड़ी निराशा हुई, और उन्होंने क्रम क्रमसे जंबूस्वामीपर व्यंग्य करते हुए उसे इंद्रिय सुखोंमें प्रेरित करनेके लिए प्रचलित लोक कथाएँ सुनानी आरंभ की। जंबूकुमारने भी प्रत्येक वधूकी कथाके उत्तर स्वरूप, उसके आशयको खंडित करनेवाली उतनी ही कथाएँ कही। (इन सब कथाओके लिए देखिए. प्रस्ता० 'जंबूस्वामी चरितकी अंतर्कथाएँ एवं मूलका हिंदी अनुवाद ९.४ से ९ ११)।

इस प्रकार परस्परमें कथा वार्ता करते-करते आधीरात बीत गयी। इधर चोरीके हेतु वेश्यावाट (९ १२) में-से निकलकर मिथुनोंकी कामक्रीडा—(९.१३) को देखता हुआ विद्युच्चर नामक चोर जंबूकुमार (स्वामी) के घर पहुँचा व भित्तिसे लगकर छिपकर खडा हो गया परतु वर-वधुओंके सारे कथा-आलापको सुनकर उसका चित्त बदल गया। जंबूकुमारकी व्याकुलतासे जागती, बार बार जाती आती माँने उसे देख लिया व पूछा तू कौन है व क्या चाहता है? विद्युच्चरने अपना परिचय दिया, और माँको व्याकुलताका कारण पूछा। माँसे सब सुनकर उसने कहा—माँ किसी तरह मुझे भीतर प्रवेश कराओ, तो मैं भी कुमारको समझानेका प्रयत्न करके देखता हूँ। यदि समझ जाये तो ठीक, अन्यथा मैं भी विहान होते ही इसीके साथ तपश्चरणका अनुसरण करूँगा। माँने अपना छोटा भाई कहकर पुत्रकी अनुमति लेकर उसे भीतर प्रवेश कराया। जंबूस्वामीने उस मामाका उचित स्वागत अभिनंदन किया, और पूछा कि मामा इतने वर्षो तक आपने कहाँ-कहाँ भ्रमण किया (९.१८)। विद्युच्चरने दक्षिण दिशामें समुद्रसे लगाकर, क्रमशः दक्षिण, पश्चिम, उत्तर व अंतमें पूर्व दिशामें अपने भ्रमण किये हुए सब देशोंके नाम लिये (९.१९)। (संधि-९)

इसके उपरात जंबूस्वामीकी स्तुति करके विद्युच्चरने उसे भोगोंकी ओर प्रेरित करनेके लिए भौतिक दर्शनोके तर्क दिये। स्वामीने युक्तिपूर्वक विद्युच्चरके समस्त तर्कोंका खंडन कर उसे निरुत्तर कर दिया (१०.१-५), और अपने पूर्व जन्मोंका वृत्तात भी कहा (१० ६)। यह सुनकर विद्युच्चर बोला, यदि किसी तरह तुम्हें पूर्वजन्मोंमें देवसुख प्राप्त हो गया तो वार-बार हृदयेच्छित सुख कहांसे प्राप्त होंगे। इस संबंधमें विद्युच्चरने उस ऊँटका आख्यान सुनाया जिसने एक बार कही मधुका स्वाद लेकर, मधुकी आशामें अन्य कुछ खाना ही छोड़ दिया (१०.७)। इसपर जंबूस्वामीने वाणिक्पुत्रकी कथा सुनायी (१०.८)। क्रमशः दोनोंने उत्तर-प्रत्युत्तर स्वरूप चार-चार कथाएँ कही। (कथाओंके लिए देखिए आगे, प्रस्तावना—जंबूसामिचरिउकी अतर्कथाएँ व हिंदी अनुवाद १०.७ से १०.१७) इस समस्त चर्चाके होते-होते विद्युच्चरको भी प्रतिबोध हो गया, और भक्तिपूर्वक जंबूस्वामीकी स्तुति करके स्वय भी उनके साथ दीक्षा लेनेकी इच्छा प्रकट की (१०.१८) जंबूस्वामीकी चारों वधुओं व माता-पिताको भी ज्ञान हो गया। ये सारे समाचार मिलनेपर श्रेणिक राजाने बडे उछाहसे जंबूस्वामीका अभिनिष्क्रमण महोत्सव मनाया। जंबूस्वामी व राजा सहित सब कोई सुधर्मगणधरके पास पहुँचे (१०.१९)। जंबूस्वामीने आचार्यसे दीक्षा ग्रहण की व एक एक कर समस्त वस्त्राभूषणोंको उतार फेंका, तथा सिरसे केश लोंच कर लिया। विद्युच्चरने भी दीक्षा ले ली। जंबूस्वामीके पिता अरहदास भी निर्ग्रंथ साधु हो गये। उनकी माता व चारों वधुएँ भी आर्यिकाएँ हो गयी, व कठोर तप करने लगी। जंबूस्वामी गुरुके साथ रहकर बारह प्रकारका महान् तप करने लगे (१०.२०-२२)।

अठारह वर्ष बीतनेपर माघ शुक्ल सप्तमीके दिन प्रातःकाल विपुलगिरिके शिखरसे सुधर्मस्वामी निर्वाणको प्राप्त हुए (१०.२३)। उसी दिन जंबूस्वामीको भी कैवल्य प्राप्त हुआ। देवताओने बड़ा उत्सव मनाया। इसके पश्चात् जंबू अठारह वर्षों तक धर्मोपदेश करते हुए, अंतमे विपुलगिरिके शिखरपर निर्वाणको प्राप्त हुए। पिता-माता व चारों वधुएँ तप करके समाधि एवं सल्लेखनापूर्वक मरकर विभिन्न स्वर्गोंमें देव हुए (१०.२४)।

जंबूस्वामीके निर्वाणगमनके उपरांत विद्युच्चर मुनिसघके साथ विहार करते-करते ताम्रलिप्ति पधारे व नगरके बाहर ही ठहर गये। वहाँ भूत-पिशाचोंने समस्त सघपर महान् उपसर्ग किया। एक विद्युच्चर महामुनिको छोड़कर अन्य कोई मुनि उस उपसर्गको सहन नही कर सके और योग-ध्यान छोडकर भाग निकले। उस महान् उपसर्गमें विद्युच्चर मुनि बिलकुल अडिग व निर्भय रहे (१०.२५-२६) (संधि-१०)।

जैसे-जैसे वह घोर उपसर्ग बढता गया, वैसे-वैसे मुनि अनित्य, अशरण, अशुचित्व आदि बारह भावनाओंका चिंतन करते हुए कर्मोंको काटने लगे। दशविध धर्मोंका ध्यान व अनुप्रेक्षाओंकी भावना करते हुए, परीषहोंके वशीभूत न होकर, समाधिपूर्वक मरकर विद्युच्चर महामुनि सर्वार्थसिद्धिको प्राप्त हुए। वहाँ आयुष्य पूरा कर वे एक ही बार मनुष्य जन्म लेकर मोक्ष प्राप्त करेंगे। (संधि-११)।

कथावस्तुका महाकाव्यात्मक गठन एवं मौलिकता

महाकवि वीरने जंबूस्वामीके पौराणिक आख्यानको महाकाव्यकी कथावस्तुके रूपमें ग्रथित किया है। यही कारण है कि मूल आख्यान और अंतर्कथाओंका गठन बहुत सुदृढ़ रूपमें हुआ है। इस काव्यमें प्रयुक्त अंतर्कथाएँ मूलकथाधाराके छोटे-छोटे जलस्रोतोंके समान हैं, जो आगे चलकर मूलकथासे मिलकर उसकी धाराको पृथुलतर, गंभीरतर और विशालतर बना देते हैं। लघु कथाएँ स्वतंत्र होते हुए भी मूलकथासे संबद्ध हैं। सभी कथाओंसे नायकके फलागमपर प्रभाव पड़ता है। कथावस्तुका आरंभ एक दिव्य विभूतिके दर्शनसे होता है। श्रेणिककी दृष्टि आकाश मार्गसे आये हुए विद्युन्माली देवपर पड़ती है और वे उसके सौंदर्य, ऐश्वर्य, एवं प्रभावसे आकृष्ट हो उसका इतिवृत्त जाननेकी जिज्ञासा व्यक्त करते हैं। इस प्रकार यद्यपि कथावस्तुका आरंभ शुद्ध-पौराणिक रूपमें हुआ है, वक्ता और श्रोताके रूपमें कथा गतिमान हुई है, तो भी कविने इतिवृत्तके साथ वर्णन-व्यापारोंका समावेश कर कथाको महाकाव्योचित गरिमा प्रदान

की है। कविने पौराणिक मान्यताओंको पुराणके रूपमें ही प्रस्तुत किया है, पर कथा सानुबंध होनेसे उसमें महाकाव्यत्व आ गया है।

महाकवि वीरके पूर्व जंबूस्वामीचरितकी कथावस्तु संघदासगणिने वसुदेवहिंडीमें कथाकी उत्पत्ति नामक प्रथम प्रकरणमें, गुणभद्रने उत्तरपुराणके छिहत्तरवें पर्वमें तथा कवि गुणपालने गद्य-पद्य मिश्रित शैलीमें रचित प्राकृत जबूचरियमें ग्रथित की है। पुष्पदतने अपभ्रंश महापुराणके उत्तरखडमें सौवीं संधिमें 'जंबूसामि-दिक्खवण्णणं'में पूर्ण रूपसे गुणभद्रका ही अनुकरण किया है। इन आचार्योंने नायकको प्रत्यक्ष रूपमें उपस्थित कर तदनतर उसकी भव-परंपरा प्रस्तुत की है। पर वीर कविने विद्युन्माली देवके चमत्कारसे आकृष्ट हो श्रेणिक-द्वारा उसके पूर्वभवोको जाननेकी जिज्ञासा व्यक्त करायी है। अतः कविने प्रारंभमें ही यह दिखलानेका सफल प्रयास किया है कि सर्वसाधारण विषयासक्त मनुष्य भी साधनाके बलसे भगवत्पदको प्राप्त कर सकता है। आत्मा परमात्मा है, पर उसकी यह शक्ति अप्रकटित है। इसे प्रकाशमें लानेके लिए पुरुषार्थ अपेक्षित है। इस तथ्यको मनमें निहित रखकर ही कविने नायकका उत्तरोत्तर विकास दिखलाया है। अत आध्यात्मिक साधनाकी व्यंजना उत्तरोत्तर वर्द्धमान है। कथावस्तु आरभसे ही पाठक और श्रोताके मनमें जिज्ञासाके साथ यह द्वंद्व उत्पन्न कर देती है कि भवदेवकी भूमिकामें जंबूस्वामी किस प्रकार आत्मोद्धारके लिए प्रयास करता है।

कविने 'विषयोसे ठुकराया हुआ व्यक्ति आत्मसाधनाकी ओर अग्रसर होता है,' इस तथ्यकी यथार्थ पुष्टि की है।[1] हिंदीके महाकवि तुलसीदासका जीवन भी इसी तथ्यका एक और उत्कृष्ट उदाहरण है। कथागठन-में भी कविने अपनी मौलिकताका परिचय दिया है। संघदासगणि, गुणभद्र एवं गुणपाल कथाकारके रूपमें हमारे सामने आते है, जबकि वीर कवि एक महाकाव्य रचयिताके रूपमें। कथाकार केवल कथातत्त्वोंके निर्वाहका ध्यान रखता है। जबकि वीर कविने वस्तुव्यापार-वर्णनो तथा यथास्थान छोटी-बडी अनेक अवांतर कथाओंका समावेश करके 'जबूसामिचरिउ'में कथाका विकास महाकाव्योचित आयामके मध्य किया है। कविकी मौलिकता इस बातमें भी है कि उसने अपने नायकका प्रतिद्वंद्वी नायक भी कल्पित किया, यतः महाकाव्यमें प्रतिनायकका रहना आवश्यक है। विद्याधर रत्नशेखरका आख्यान वसुदेवहिंडी, उत्तरपुराण तथा प्राकृत जंबूचरियं इन तीनो ही पूर्ववर्ती ग्रंथोमें नही है। कविने कन्या-प्राप्ति, विरक्त नायकके जीवनमें न दिखलाकर नायकके स्वामी श्रेणिकके जीवनमें दिखलायी है, और कन्याके अधिकारी श्रेणिकको युद्धमें न भेजकर नायक जंबूस्वामीको युद्धमें भेजा है। अत नायकके शौर्य, पराक्रम, साहस एव युद्धकला प्रवीणता दिखलानेका कविको पूर्ण अवसर प्राप्त हुआ, और उसने इस अवसरको निर्माण कर उससे पूर्ण लाभ भी उठाया। नायकके चरित्रके इन गुणोका उद्घाटन किये विना कविकी इस रचनामें महाकाव्यत्व नहीं आ सकता था। रत्नशेखर-विषयक आख्यानकी सृष्टि करके कवि अपनी कृतिमें महाकाव्यके सपूर्ण तत्त्वोका यथोचित समावेश कर, अपने काव्यको महाकाव्योचित गरिमा प्रदान करते हुए अपनी मौलिक सूझ-बूझका परिचय देनेमें पूर्ण रूपसे सफल हुआ।

४. जंबूस्वामी : एक ऐतिहासिक कथापुरुष, कथाकी दीर्घ परंपरा और मूलस्रोत

जैन साहित्यकी ऐतिहासिक परंपरा भ० महावीरसे प्रारंभ होती है, जिनका निर्वाणकाल भारतीय इतिहास, साहित्य एवं सस्कृतिके स्वदेशी एव विदेशी लगभग सभी विद्वान् अब एक मतसे ५२७ ई० पू० अथवा ४७० वि० पूर्व मानते है।[2]

१. नागवसू द्वारा भवदेवको बोध प्रदान करनेका वृत्त उत्तरा० २२ में राजुल और रथनेमिके आख्यानसे तुलनीय है।

२. डॉ० ही० ला० जैन भा० सं० में जैन धर्मका योगदान पृ० २५–२६; पं० कैलाशचन्द्रशास्त्री : जैन सा० और इति० की पूवपीठिका पृ० २८७–३२७ आदि ग्रन्थ।

भ० महावीरके पश्चात् उनके प्रमुख गणधर इंद्रभूति गौतमका नाम आता है। वि० पू० ४७० में कार्तिक कृष्ण अमावस्याको प्रातःकाल महावीरका निर्वाण हुआ, उसी दिन सन्ध्याकालमें गौतमको केवलज्ञान प्राप्त हुआ। बारह वर्ष तक केवली रूपसे धर्मोपदेश देते रहकर जिस दिन गौतम निर्वाणको प्राप्त हुए, उसी दिन महावीरके दूसरे प्रधान शिष्य सुधर्माको कैवल्यकी प्राप्ति हुई और ये बारह वर्षों तक संघके प्रधान रूपसे धर्मोपदेश देते हुए विचरण कर निर्वाणको प्राप्त हुए। उसी दिन सुधर्माके प्रमुख शिष्य जंबू केवली पदको प्राप्त हुए, तथा जैन श्रमणसंघके प्रधानाचार्य अथवा कुलपति बने और अड़तीस वर्षों तक जैनधर्म व श्रुतका प्रचार-प्रसार करते रहकर वि० पू० ४०८ (ई० पू० ४६५)में निर्वाणगामी हुए। ये ही जंबू प्रस्तुत चरितके नायक जंबूस्वामी हैं। जैन परंपरामें इन्हें अंतिम केवली माना जाता है, तथा ये एवं इनकी शिष्य-संततिके द्वारा ही भ० महावीरके उपदेशोंकी अर्द्धमागधी जैनागमके रूपमें सुरक्षा हो सकी यह ऐतिहासिक सत्य है। इस कारण जैन परंपरामें जंबूस्वामीका स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। गौतमको केवलज्ञान होनेसे लगाकर जंबूस्वामीको मोक्ष होने तक वीर निर्वाणके १२ + १२ + ३८ = ६२ (या श्वे० परंपरानुसार १२ + ८ + ४४ = ६४ वर्ष) पूर्ण होते हैं। जंबूस्वामीके पश्चात् दिगंबर परंपरानुसार विष्णु या नंदी १४ वर्ष, नंदिमित्र १६ वर्ष, अपराजित २२ वर्ष, गोवर्द्धन १९ वर्ष और भद्रबाहु २९ वर्ष, इस प्रकार आगामी १४ + १६ + २२ + १९ + २९ = १०० सौ वर्षोंकी अवधिमें ये पाँच श्रुतकेवली हुए, और कुल मिलाकर वीर निर्वाणके १६२ वर्ष पूरे हुए।

श्वेतांबर गुरु पट्टावलियोंके अनुसार वीर निर्वाणके बारह वर्ष पश्चात् इंद्रभूति (गौतम गोत्र) का निर्वाण हुआ और इनके आठ वर्ष, तथा वीर नि० के बीस वर्ष पश्चात् सुधर्मा (अग्नि वैश्यायन गोत्र) और सुधर्माके निर्वाण जानेके उपरांत चवालीस वर्षों तक केवलज्ञानी रूपसे धर्मोपदेश देते हुए विचरण करते रहकर जंबूस्वामी (काश्यप गोत्र) मोक्षको गये। इस प्रकार वी० नि० के चौसठ वर्षों तक तीन केवल-ज्ञानियोंकी यह परंपरा अविच्छिन्न रूपसे चली। जंबूस्वामीके बाद इनके समकालीन गुरुबंधु प्रभव, जिन्हें दिग० आम्नायके साहित्यमें विद्युच्चर नामसे जाना जाता है, और जो हमारे चरित काव्यके एक अन्य प्रमुख पात्र हैं, वे ११ वर्ष तक संघके प्रधान रहे, इनके उपरांत शय्यंभव २३ वर्ष, यशोभद्र ५० वर्ष, संभूतिविजय ८ वर्ष और भद्रबाहु १४ वर्ष = ६४ + ११ + २३ + ५० + ८ + १४ अर्थात् वी० नि० १७० वर्ष।

उपर्युक्त दोनों गुरु-परंपराओंके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि जंबूस्वामीके निर्वाणकाल—अर्थात् वी० नि०के ६२ या ६४ वर्षों तक दोनोंकी गुरु शिष्य वंशावली एक समान है। जंबूके पश्चात्से इनमें स्पष्ट भेद पड़ जाता है। दिग० परंपरामें जंबूके उपरांत विष्णु या नंदिका नाम आता है, तथा गुरु-पट्टावलीमें कहीं भी विद्युच्चर (प्रभव) का नाम नहीं आता; जबकि श्वे० परंपरामें प्रभवके ११ वर्ष तक संघप्रधान रहनेका उल्लेख है। आगेके अन्य नाम भी भिन्न हैं। गुरु-शिष्य वंशानुक्रमके इस मतभेदमें पड़ना प्रस्तुत प्रसंगमें आवश्यक नहीं है। अतः जंबूस्वामी तककी मतभेद रहित वंशावलीको स्वीकार करके जंबूस्वामीके जीवन-चरितके विषयमें ऐतिहासिक दृष्टिसे यहाँ कुछ विचार किया गया है।

प्रस्तुत काव्यकृतिमें वीर कविने कहा है[1] कि जंबूस्वामीके दीक्षा लेनेके अठारह वर्षोपरान्त माघ शुक्ल सप्तमीके दिन प्रातःकाल सुधर्माको मोक्ष हुआ, और उसी दिन जंबूको केवलज्ञान; तथा सुधर्माके निर्वाणके अठारह वर्ष व्यतीत होनेपर जंबूको मोक्ष प्राप्त हुआ। ये दोनों मिलाकर (१८ + १८) छत्तीस वर्ष पूरे हुए। अब श्वे० एवं दिगं० दोनों संप्रदायोंकी ऐतिहासिक गुरु-परंपरानुसार यदि वी० नि० के ६२ या ६४ वर्ष पीछे जंबूका निर्वाण माना जाये तो इस रीतिसे वीर कविके उपर्युक्त उल्लेखानुसार वी० नि० से २६ या २८ वर्ष पीछे गौतमका निर्वाण मानना होगा, जो अबतक उपलब्ध अन्य सभी जैन साहित्यिक-ऐतिहासिक प्रमाणोंसे सर्वथा विपरीत है। तिलोयपण्णत्तिके रचयिता यतिवृषभाचार्य (दूसरी-तीसरी शती ई०) शौरसेनी षट्खंडागमके धवला टीकाकार वीरसेन, और गोम्मटसारके रचयिता नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती

1. जं० सा० च० १०.२३-२४।

(९ श० ई०) एवं उत्तरपुराण (ई० ८९८ से पूर्व) के कर्त्ता गुणभद्र तथा अपभ्रंश महापुराण (या तिसट्ठि-महापुरिसगुणालकारु) के प्रणेता महाकवि पुष्पदंत इन सभीने वी० नि० के १२ वर्ष पश्चात् गौतम, इनके १२ वर्षोपरान्त सुधर्मा, एवं सुधर्माके ४० वर्ष (तिलोयपण्णत्तिके अनुसार ३८ वर्ष) पीछे जंबूस्वामीको मोक्ष प्राप्त होना एक मतसे मान्य किया है।

अब यदि हम अन्य उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्रीकी ओर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि भ० बुद्धका निर्वाण ५४४ ई० पू० में हुआ।[1] बुद्धके निर्वाणसे ८ वर्ष पहले ५५२ ई० पू० में अजातशत्रु गद्दीपर बैठा और लगभग उसी समय राजा श्रेणिक बिंबिसारकी मृत्यु हुई।[2] जंबूस्वामीके जन्मके संबंधमें स्वयं भ० महावीरसे अथवा कहिए गौतम गणधरसे राजा श्रेणिक बिंबिसारने प्रश्न किये, ऐसा उल्लेख सभी जैन साहित्यकारोंने किया है। तदनुसार जंबूका जन्म श्रेणिकके स्वर्गवाससे कुछ काल पूर्व अथवा उसीके आसपास लगभग ५५२-३ ई० पू० में होना चाहिए। और ऐसा होना असंभव भी नहीं है कि जंबूस्वामीकी आयु अस्सी वर्ष न होकर उससे अधिक नव्वें वर्ष रही हो। वीर कविने और उसके अनुसार ब्रह्म जिनदास (१३ श० वि०) तथा राजमल्ल (१७ श० वि०) ने यह भी कहा है कि जंबूस्वामीने राजा श्रेणिक बिंबिसारके राज्यकालमें ही दीक्षा अंगीकार की थी, और राजाने स्वयं उनका दीक्षोत्सव बड़े धूमधामसे मनाया था। इस कथनपर विचार करनेसे जंबूका जन्म ५५२ ई० पू० में श्रेणिककी मृत्युके कमसे कम १६, १७ वर्ष पूर्व अर्थात् ई० पू० ५६८-६९ में मानना पड़ेगा, और ऐसा माननेसे जंबूका आयुष्य ४६३ ई० पू० से ५६८ ई० पू० तक लगभग १०५ वर्षका, तथा गौतम इंद्रभूति, सुधर्मा एवं जंबू तीनोंके केवलज्ञान कालके संबंधमें श्वे० तथा दिग० दोनों संप्रदायों-द्वारा स्वीकृत कालक्रमका खंडन करना होगा, जिसके लिए हमारे पास कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है। अतः वीर कविका यह कथन ऐतिहासिक दृष्टिसे समीचीन प्रतीत नहीं होता।

इसी प्रकार वीरके अनुसार सुधर्मा और जंबूका केवली रूपमें रहनेका समय कुल १८, १८ वर्ष माननेमें भी ऐतिहासिक साक्ष्य विरुद्ध है, यह ऊपर ही कहा गया है। संभव है वीर कविके समक्ष ऐसी कोई गुरु-पट्टावलियाँ रही हों, जिनमें गुरु-वंशावलीके संबंधमें कोई ऐसे उल्लेख रहे हों, पर वर्तमानमें उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्रीसे संग्रहीत तथ्योंसे यह सर्वथा विपरीत है।[3] इसी प्रसंगमें श्वे० आम्नायमें प्राप्य गुरु-पट्टावलियोंमें[4] गौतम, सुधर्मा एवं जंबूके संबंधमें जो कुछ जानकारी उपलब्ध होती है, उसपर विचार कर लेना उचित है। इनके अनुसार इंद्रभूति गौतमका जन्म ई० पू० ६०७ में हुआ। वे ५० वर्ष गृहस्थ रहे तथा ३० वर्ष साधु और ई० पू० ५२७ में भ० महावीरके निर्वाणके दिनसे ई० पू० ५१५ तक १२ वर्ष केवली रहकर निर्वाणको प्राप्त हुए। सुधर्माका जन्म भी ६०७ ई० पू० हुआ। ये भी ५० वर्ष गृहस्थ रहे, ३० वर्ष साधु, १२ वर्ष तक गौतमके केवलज्ञान कालमें संघ प्रधान तथा ८ वर्ष (दिग० परंपरानुसार १० वर्ष) केवली, इस प्रकार सौ वर्षकी आयुमें लगभग ५०७ ई० पू० इनका निर्वाण हुआ। जंबूस्वामीका जन्म ५४३ ई० पू०; दीक्षा १६ वर्षकी अवस्थामें भ० महावीरके निर्वाणसे कुछ पीछे ५२७ ई० पू०; केवलज्ञान ५०७ ई०

---

१. भ० बुद्धके निर्वाणकालके संबंधमें भी बहुत मतभेद है, तथापि अब सामान्य रूपसे सभी विद्वान् यह स्वीकार करते हैं कि भ० बुद्धका निर्वाण भ० महावीरके निर्वाणसे १६ वर्ष पहले लगभग ५४४ ई० पू० में हुआ; द्रष्टव्य : बौद्धधर्मके २५०० वर्ष।

२. पं० कै० च० शास्त्री : जैन सा० इति० पूर्वपीठिका पृ० ३०३-२१२।

३. जंबूके जन्मके संबंधमें महाकवि-पुष्पदंतने लिखा है कि जिस रात जंबू गर्भमें आयेंगे, उसी रात भ० महावीरका निर्वाण होगा (म० पु० १००-२)। तदनुसार जंबूस्वामीका जन्म वीर निर्वाणके एक वर्ष पश्चात् ई० पू० ५२६ में मानना होगा। महाकवि पुष्पदंतका यह कथन भी अन्य किसी ऐतिहासिक उल्लेखसे समर्थित न होनेसे माननीय नहीं है।

४. जैन सत्यप्रकाश वर्ष ७, अंक १-२ पृ० ४९-७३ : मुनि न्यायविजयजीका 'गुरु-परंपरा' नामक लेख।

पू० तथा निर्वाण ४६३ ई० पू० । जंबूस्वामीके जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान एवं मोक्ष कालके संबंधमें अद्यावधि उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्रीके आधारपर यह मत ही सबसे अधिक समीचीन है।

उपर्युक्त रीतिसे जंबूस्वामीके जीवनकालके संबंधमें चर्चा करनेके उपरांत अब हमें उनके जीवन चरित विषयक प्राचीनतम उपलब्ध सामग्री, कथाकी पूर्व परंपरा एवं मूलस्रोतोंपर विचार करना है। इस विषयमें हमारा ध्यान सर्वप्रथम अर्द्धमागधी जैनागमोंपर जाता है। जैन संप्रदायकी इस पुरातन पवित्र साहित्य संपत्तिका अवलोकन करनेसे हमें जंबूस्वामीके संबंधमें इतनी सूचनाएँ प्राप्त होती हैं कि वे महावीर स्वामीके पाँचवें गणधर अग्निवेश्यायन गोत्रीय आर्य सुधर्मा (सुधर्मस्वामी) स्थविरके प्रधान शिष्य थे, और कश्यप गोत्रके थे। संघमें दीक्षा लेनेके उपरांत इन्होंने आर्य सुधर्मासे क्रमशः एक-एक जैनागमको कहनेका अनुरोध किया, व आर्यसुधर्माने जैसा भ० महावीरके मुखसे सुना था, तदनुसार जंबूको एक-एक आगम कहकर सुनाया।[1] स्थान-स्थानपर जंबूस्वामीने श्रमण भ० महावीरके धर्म व सिद्धांतके संबंधमें भी अनेक प्रश्न किये और सुधर्माने उनका उत्तर दिया।[2] इस प्रकार समस्त जैनश्रुत गुरु-शिष्य परंपरासे भ० महावीरसे आर्य सुधर्माको, सुधर्मासे आर्य जंबूको एवं जंबूसे उनकी शिष्य संततिको प्राप्त हुआ। जंबूस्वामीके जीवनके संबंधमें इससे अधिक सामग्री आगम साहित्यसे प्राप्त नहीं होती।

आगमिक परंपराके अध्ययनके उपरांत कालक्रमसे यतिवृषभाचार्य (दूसरी तीसरी शती ई०) कृत तिलोय-पण्णत्तिका नाम आता है, जिसमें जैन दृष्टिसे त्रेसठ पौराणिक महापुरुषों [२४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव (नारायण), ९ प्रतिवासुदेव (प्रतिनारायण)] के जीवनचरित अथवा जैन महापुराणों व चरितग्रंथोंकी सामग्री बीज रूपमें नामावलियोंके रूपमें प्राप्त है, जिनमें माता-पिता, वंश, जन्मस्थान, निर्वाणस्थान व महापुरुषोंके जीवनसे संबद्ध प्रमुख व्यक्तियों, स्थानों व घटनाओंके नाम मात्र उल्लिखित हैं। परंतु जंबूस्वामीके संबंधमें इस ग्रंथमें केवल इतनी ही संक्षिप्त सूचना उपलब्ध होती है कि जिस दिन भ० महावीर सिद्ध हुए उसी दिन गौतम गणधरको केवलज्ञान प्राप्त हुआ। पुन: गौतमके सिद्ध होनेपर उनके पश्चात् सुधर्मस्वामी केवली हुए।[3] सुधर्मस्वामीके मुक्त होनेपर जंबूस्वामी केवली हुए। पश्चात् जंबूस्वामीके भी मोक्षको प्राप्त होनेपर फिर कोई अनुबद्ध केवली नहीं रहे।[4] गौतमादिक केवलियोंके धर्म-प्रवर्तनकालका प्रमाण पिंड (एकत्र) रूपसे बासठ वर्ष है (१२ + १२ + ३८ = ६२)।[5]

तिलोयपण्णत्तिके पश्चात् जंबूस्वामीके जीवनचरितकी दृष्टिसे सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ संघदास गणि (५ वीं-छठी शती ई०) कृत वसुदेव-हिंडी है, जो न केवल प्राचीन ही है, बल्कि पर्याप्त विशद भी है, और जिसे पीछेके समस्त जंबूचरितके रचयिता कवियों, लेखकोंका प्रमुख आधार ग्रंथ बननेका गौरव प्राप्त है।

---

१. आगमोंमें जंबूस्वामी विषयक उल्लेखोंके लिए देखें: आया० १.१.१; सूय० १.१; २.१.१; २.३.४३; २.४.६३ और २ ७.८१; ठाण० १.१; समवाय० १.१; भगवती० १.१.४; नाया० १.४; ५.२१-३२; उवासग० १.१ आदि; अंतगड०, अणुत्तर० एवं विवाग० के अध्ययनोंका प्रारंभ व अंत; पण्ह० वाग० में पाँच आस्रवद्वार, पाँच संवरद्वार आदि प्रश्नोंका प्रकरण; नंदी० गाथा २२; निशीथ चू० २, पृ० ३६०; कल्पसूत्र-विनयविजय पृ० २४९; कल्पसूत्र-धर्मविजय पृ० १६२; कल्पसूत्र-स्थविरावलीचरित ५.५–७; निरयावलिया १.१; तित्थोगलिय ६९८ ff; व्यवहार भाष्य १०,६९१; दसवैका० चू० पृ० ६।

२. देखिए सूय० ५.१.१-२; ५.२.१; ६.१.१–२; ८.१.१; ९ १.१, ११.१.१-३।

३. तिलोयपण्णत्ती ४.१४७६।

४. वही ४.१४७७।

५. वही ४.१४७८. इससे अगली गाथामें एक और महत्त्वपूर्ण उल्लेख है कि केवलज्ञानियोंमें अंतिम श्रीधर कुंडलगिरिसे सिद्ध हुए (४.१४७९)।

इसके संबंधमें विद्वानोंका यह मत है कि वसुदेव हिंडी[1] गुणाढ्य कृत पैशाची बृहत्कथाका सबसे प्रामाणिक जैन रूपांतर है।[2] भाषाकी अपेक्षा भी यह गुणाढ्यकी पैशाची बृहत्कथाके सबसे अधिक निकट है।[3]

वसुदेव-हिंडीके कथाकी उत्पत्ति[4] नामक प्रथम अधिकारमें मंगलाचरणके उपरांत जंबूस्वामीकी कथा इस प्रकार प्रारंभ होती है—प्रथमतः सुधर्मास्वामीने जंबूस्वामीको प्रथमानुयोग ग्रंथमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती तथा दशार वंशके व्याख्यानके प्रसंगमें आये हुए वसुदेवचरितको कहा था। अतः वसुदेवचरित प्रारंभ करनेसे पूर्व जंबूस्वामी तथा उनके शिष्य प्रभवकी उत्पत्तिकी कथा कहनी चाहिए। यह कथा इस प्रकार है :

मगध देशके राजगृह नामक नगरमें श्रेणिक नामका राजा था, व चेलना रानी। इनका कूणिक नामक पुत्र था। इसी राजगृहमें ऋषभदत्त नामक सेठ था, जिसकी धारिणी नामक पत्नी थी। एक बार वह अर्द्ध-जाग्रत् अवस्थामें निम्न पाँच स्वप्न देखकर जाग उठी—(१) धूम्ररहित अग्नि (२) पद्मसरोवर (३) फलभारसे नम्र शालिक्षेत्र (४) धवल मेघके समान श्वेत व उद्धत चतुर्दंतयुक्त हाथी, एवं (५) वर्ण-गंध व रसपूर्ण जंबूफल। उसी रात्रिको स्वर्गसे च्युत होकर विद्युन्माली देवका जीव धारिणीके गर्भमें अवतीर्ण हुआ। नवमास पूर्ण होनेपर बालकका जन्म हुआ, एवं बालकके बड़े होनेके साथ-साथ उसके रूप व गुणोंकी ख्याति सब ओर फैलती गयी।

उसी कालमें सुधर्मास्वामी राजगृहके गुणशील नामक चैत्यमें संघ सहित पधारे। जंबूस्वामी सब लोगोंके साथ आर्य सुधर्माके दर्शनोंको गये। आर्य सुधर्माका उपदेश सुनकर जंबूको वैराग्य हो गया, और दीक्षाके लिए माता-पिताकी अनुज्ञा लेने हेतु घरकी ओर चले। नगरके एक द्वारपर भीड़ देखकर सारथीको रथ घुमाकर दूसरे द्वारसे चलनेको कहा। वहाँ शत्रु सैनिकोंके घातके लिए शिला-शतघ्नी आदि शस्त्रोंको डोरसे लटकते हुए देखकर उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि यदि अचानक कोई शस्त्र ऊपर आकर गिरे तो विना व्रत लिये ही मेरी मृत्यु होगी। यह विचार मनमें आते ही जंबू रथ लौटाकर पुनः आर्य सुधर्माके पास गये, और आजन्म ब्रह्मचर्यका व्रत लेकर घर आये। आकर माता-पितासे दीक्षा लेनेकी अनुमति माँगी। तब माता-पिताने कहा कि धर्म श्रवण सब कोई करते हैं, पर कोई वैराग्य तो नहीं लेता। इसपर जंबूस्वामीने कहा—धर्म श्रवण करनेपर किसीको तत्त्वार्थोंका निश्चय देरमें होता है, और किसीको तुरंत हो जाता है, तथा वह धर्मके मार्गपर लग जाता है। इस संबंधमें जंबूस्वामीने उन पाँच मित्रोंकी कथा सुनायी जो एक बार उद्यानमें गये। वहाँ तीर्थंकरका दर्शन कर व उनका उपदेश सुनकर परस्पर विचार-विनिमय करके वहींके वहीं दीक्षित हो गये, तथा अंतमें केवली होकर मोक्ष गये। अतः आप मुझे दीक्षा लेनेकी अनुमति दें। फिर भी माता-पिताने जंबूको विपुल संपत्तिसे दुर्लभ विषयभोग भोगकर पीछे दीक्षा लेनेको कहा। इसपर जंबूस्वामीने उस वानरकी कथा कही जो अपनी विषय लोलुपताके कारण अंतमें शिलाजीतमें चिपककर दुःखद अंतको प्राप्त हुआ। नानाप्रकारसे समझानेपर भी जब जंबूस्वामी नहीं माने तो माताने समुद्रश्री, सिंधुमती आदि उन आठ कन्याओंके माता-पिताके पास यह समाचार भिजवाया जिनका बहुत पहलेसे ही जंबूके साथ वाग्दान किया जा चुका था। ऐसा जानकर कन्याओंने कहा जंबूस्वामीसे हमारा वाग्दान हो चुका है, अतः जो मार्ग

१. प्राकृतमें हिंडधातुका अर्थ है चलना, फिरना, परिभ्रमण करना, अतः वसुदेव-हिंडीका अर्थ हुआ 'वसुदेव (वासुदेव कृष्णके पिता) का परिभ्रमण (वृत्तांत)।' इस ग्रंथमें वसुदेवके गृह त्यागकर चले आनेके उपरांत अनेक वर्षोंके परिभ्रमण व नाना कन्याओंसे परिणयके वृत्तांत एवं अनुभव कल्पना रंजित साहित्यिक शैलीमें वर्णित हैं।

२. वसुदेव हिंडी प्र० खंड, गुज० अनु० भूमिका पृ० ९-१३; प्रकाशक जैन आत्मानंद सभा भावनगर।

३. वही, भूमिका पृ० १६

४. इस अंशको विद्वानोंने शुद्ध जैन-कथाभाग कहा है; वही पृ० १२।

उनका, वही हमारा। कन्याओंका ऐसा निश्चय जानकर जंबूस्वामीसे उन कन्याओंके साथ विवाह कर लेनेका अनुरोध किया गया, जिसे स्वामीने स्वीकार किया। उचित तिथि-मुहूर्तमें विधिपूर्वक विवाह संस्कार संपन्न हुआ और जंबू वधुओंके साथ घर आकर वासगृहमें प्रविष्ट हुआ।

उसी कालमें जयपुरवासी विन्ध्य राजाका कलानिपुण प्रभव नामक पुत्र था, जो पिताके द्वारा छोटे भाई प्रभुको राज्य दे देनेसे रुष्ट होकर राज्य छोडकर चला आया था, और विन्ध्याचलकी विषम तलैटीमें चोर सरदारोंके साथ चोरी करके जीवन यापन करता हुआ रहता था। जंबूस्वामीका विवाह एवं अपरिमित दहेजकी बात सुनकर अपने साथी पाँच सौ चोरोंके साथ अटवीसे निकलकर, रातके समय नगरीमें प्रविष्ट हुआ। तालोद्घाटनी विद्यासे ताले खोलकर जंबूस्वामीके घरमें पहुँचा, तथा अवस्वापिनी विद्याके बलसे सबके सो जानेपर चोर सोते हुए लोगोंके आभूषण आदि खोलने लगे। यह देखकर चोरकी विद्यासे अप्रभावित, अतः जागते हुए जंबूने ये निर्भीक वचन कहे—'आमंत्रित लोगोंको स्पर्श मत करना'। ये वचन सुनकर चोर स्तंभित जैसे हो गये। प्रभवने जंबूको देखकर अपना परिचय देकर कहा मेरी दो विद्याएँ 'तालोद्घाटिनी व अवस्वापिनी' ले लीजिए, और मुझे अपनी 'स्तंभिनी तथा मोचनी' विद्याएँ दे दीजिए। इसपर जंबूने कहा—मुझे सांसारिक विद्याओंसे कोई प्रयोजन नहीं है। मैंने तो गणधरके पास संसारमोचनी-विद्या ग्रहण की है। प्रभात होते ही घर-परिवार सब छोड़कर मैं दीक्षा लूंगा। जंबूके ऐसे वचन सुनकर प्रभव आश्चर्यचकित रह गया, व उसने भी यौवनमें मानुषिक विषयसुख भोगकर पक्व वय'में दीक्षा लेना उचित बतलाया। विषयसुखोंके संबंधमें जंबूने प्रभवको 'मधुबिंदु आस्वाद'का दृष्टांत सुनाया (प्रस्तावना–५ 'जंबूस्वामी चरित्र-की अंतर्कथाएँ')।

पुनः प्रभवके यह पूछने पर कि किस दुःखके कारण तुम अकालमें स्वजनोंका त्याग करते हो, जंबूने गर्भावास दुःखके संबंधमें ललितांगकुमारका आख्यान सुनाया (वही : 'जंबूस्वामीचरितकी अन्तर्कथाएँ')।

इसीप्रकार जंबूने सांसारिक संबंधोंकी असारताके विषयमें कुबेरदत्त एवं कुबेरदत्ताका, पितरोंको पिंड-दानादि रूप लोकधर्मकी असंगतिके बारेमें महेश्वरदत्तका, तथा सांसारिक सुख व मोक्षसुखकी तुलनाके संबंधमें एक कौड़ीके लिए सर्वस्व हार जाने वाले वनियेका, तथा धनके सदुपयोगके बाबत गोपयुवकका, ये सब कथानक प्रभवको सुनाये। इस कथा-वार्ताके उपरांत प्रभवको भी बोध हो गया। प्रातःकाल होते ही जंबूस्वामीने दीक्षाके लिए अभिनिष्क्रमण किया। जंबूद्वीपके अधिपति अनादृत (अणाढिय) देवने स्वामीका अभिनिष्क्रमण महोत्सव मनाया। वैभारगिरि-पर सुधर्मा गणधरके पादमूलमें जंबूस्वामीने दीक्षा ली। आर्य सुधर्माने प्रभवको जंबूके शिष्यरूपमें विहित किया। जंबूस्वामीकी माँ एवं वधुएँ भी सुव्रता आर्यिकाकी शिष्याएँ हो गयी। थोड़े ही समयमें जंबू श्रुतकेवली हो गये।

कालांतरमें आर्य सुधर्मा संघसहित विहार करते-करते चंपानगरीके पूर्णभद्र चैत्यमें पधारे। कूणिक राजा उनकी वंदना करने आया, व अति स्वरूपवान जंबूस्वामीको देखकर उनके पूर्वकृत तप, त्याग, दान, शील आदिके संबंधमें विशेष जानकारी चाही। इसपर आर्य सुधर्माने उत्तर दिया कि पूर्वकालमें तुम्हारे पिता श्रेणिकको भगवान् महावीरने जिस प्रकार यह कथा सुनायी थी, उसे कहता हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो। यह कहकर सुधर्माने केवली होने पर्यंत राजर्षि प्रसन्नचंद्रका कथानक विस्तारसे कहा (प्रस्तावना—५)। देवता राजर्षिका कैवल्योत्सव मनाने आये। भगवान्से यह जानकर श्रेणिकने पूछा इनके पीछे कौन केवली होगा। तभी महातेजस्वी विद्युन्माली देव अपनी चार देवियों सहित भगवान्‌की वंदना करने आया। उसकी ओर संकेत कर भगवान्ने कहा—यह देव, जो कि सात दिन बाद देवगति त्याग करके मनुष्य गतिमें अवतीर्ण होगा। उसकी असाधारण, असामान्य तेजस्विताके विषयमें पूछने पर भगवान्ने श्रेणिक से कहा—

इसी जनपदमें सुग्राम नामक गाँवमें आर्यव नामका एक राष्ट्रकूट रहता था। उसकी रेवती नामक पत्नी थी। उनके दो पुत्र भवदत्त व भवदेव हुए। बड़ा भवदत्त युवावस्थामें ही दीक्षित हो गया। कुछ काल

बाद साधुसंघ विहार करते-करते पुन: उसी गाँवमें आया। भवदत्त अनगार छोटे भाई भवदेवको दीक्षित करनेकी इच्छासे गुरुकी अनुज्ञा लेकर भवदेवके घर गया। उसी समय भवदेवका विवाह हुआ था, और वह कुलकी रीतिके अनुसार नवपरिणीता नागिलाका मंडनकर्म कर रहा था। भाईका आगमन सुनकर भवदेव नागिलाको अर्द्धमंडित ही छोडकर बाहर आया। आहारादि करके भवदत्त अनगार घरसे निकले व घी का भरा पात्र भवदेवके हाथमें दे दिया। भवदेवके भाईके पात्रको लेकर शीघ्रसे शीघ्र घर लौटनेकी इच्छा करता हुआ बेमनसे भाईके साथ चला, व संघमें जाकर भाईकी सम्मान रक्षाके लिए दीक्षा ले ली। बहुत काल बाद भवदत्त अनगार समाधिमरण करके स्वर्ग गया।

इधर भवदेव मनमें पत्नीका ध्यान करता हुआ ब्रह्मचर्य पालने लगा। एक बार जब साधुसंघ पुनः उसी गाँवमें आया, तो गुरुको कहे बिना ही अपने घरकी ओर चल दिया, और गांवके बाहर ही एक मंदिरमें विश्राम करने बैठा। तभी उसकी व्रतोपवाससे क्षीण देहवाली पत्नी नागिला एक ब्राह्मणीके साथ उसी मंदिरमें पूजा करने आयी। भवदेव उसे पहचान नहीं सका, तथा उससे अपने माता-पिता और पत्नीके विषयमें पूछा और नागिलासे मिलनेकी इच्छा व्यक्त की। नागिलाने उसे पहचानकर अपना परिचय दिया, व भवदेवको बोध देनेके लिए भोगपिपासाके कारण पाडा बनने वाले ब्राह्मणपुत्रकी कथा सुनायी (प्रस्तावना –१)। इतनेमें ब्राह्मणीका पुत्र कहींसे दूध-पाक जीमकर वहाँ आया व माँसे बोला—माँ एक थाली लाओ, उसमें अतिशय स्वादिष्ट दूधपाकका वमन करूँगा। अभी अन्यत्र जीमने जाता हूँ। पुनः भूख लगनेपर अपने वमित दूधपाकको खाऊँगा। माँने कहा बेटा वमन करके खाया नहीं जाता। भवदेवने भी उसे धिक्कारा। इसी पर नागिलाने भवदेवको बोध दिया—तुम भी वमित (त्यक्त) नागिला और भोगोंका भक्षण करना चाहते हो। इससे भवदेवको प्रतिबोध हो गया।

इसके पश्चात् भवदेवने कठोर तप किया, व सल्लेखनापूर्वक मरकर स्वर्ग गया। उधर भवदत्त देवायु पूरी करके पुष्कलावती देशमें पुंडरीकिणी नगरीमें वज्रदंत चक्रवर्ती व यशोधरा रानीका सागरदत्त नामक पुत्र हुआ एवं युवावस्थामें ही एक बार मेरुपर्वतके समान महामेघको क्षणभरमें विलीन होते देखकर विरक्त हो गया और मुनिसंघमें दीक्षा ले ली। इधर भवदेवका जीव देवायु पूरी करके उसी देशमें वीतशोका नगरीमें पद्मरथ राजाकी वनमाला देवीसे शिवकुमार नामक पुत्र हुआ। युवा होने पर अनेक राजकन्याओंके साथ उसका परिणय करा दिया गया और वह भोग-विलासपूर्वक रहने लगा।

कालांतरमें सागरदत्त मुनि संघसहित विचरते हुए वीतशोका नगरीमें पधारे। उन्हें देखकर शिवकुमारको बडा स्नेह उमड आया। कारण पूछनेपर मुनिने अपने व शिवकुमार दोनोंके अबतकके दो पूर्वजन्मों [भवदत्त—भवदेव (१), स्वर्गमें देवता (२)] की कथा सुनायी। यह सुनकर शिवकुमारको वैराग्य हो गया। माता-पितासे दीक्षा लेनेकी अनुमति न मिलने पर घरमें ही रहते हुए मंत्रीपुत्र दृढधर्मके हाथों केवल कांजी व अंबिल आहार लेते हुए बारह वर्षों तक उसने कठोर तप किया, और पीछे समाधिपूर्वक देहत्याग करके स्वर्गमें विद्युन्माली नामक महातेजस्वी देव हुआ। आजसे सात दिनों बाद अपनी देवायु पूरी करके यह राजगृहमें ऋषभदत्त सेठकी धारिणी नामक पत्नीके गर्भमें पुत्र रूपमें अवतरित होगा। यह बात सुनकर जंबूद्वीपका अधिपति अनादृत देव अपने कुलकी प्रशंसा करता हुआ उठकर नाचने लगा। कारण पूछनेपर भगवान्ने श्रेणिकको कहा—

इसी नगरमें गुप्तिमति नामका श्रेष्ठिपुत्र था। ऋषभदत्त व जिनदास उसके दो पुत्र थे। ऋषभदत्त शील सदाचारवान् था, जबकि जिनदास मद्य-वेश्या एवं जूएका व्यसनी। ऋषभदत्तने जिनदाससे कोई संबंध न होनेकी घोषणा कर दी। एक बार एक सेनापतिके साथ जूआ खेलते समय जिनदासने कुछ घोटाला किया। इसपर सेनापतिने उसे शस्त्रसे मारा। यह दुःखद समाचार मिलते ही ऋषभदास तुरंत आया और औषधोपचार निमित्त जिनदासको घर ले गया। तब जिनदासको भारी पश्चात्ताप हुआ। भाईसे अपने कुकृत्योंकी क्षमा मांगकर, उससे सदुपदेश लेकर, भावत: समस्त आरंभ परिग्रहको त्याग कर अनशन धारणकरके, सम्यक् आराधना करते हुए, समाधिमरण करके जिनदास स्वर्ग गया। वही यह जंबूद्वीपका अधिपति

अनादृत नामक देव है। मेरे कुलमें अंतिमकेवली होगा, ऐसा जानकर यह देव अपने कुलकी प्रशंसा करता हुआ प्रसन्नताके भावावेगसे नाच रहा है। भगवान्‌के मुखसे यह सारा वृत्तांत सुननेके अनंतर वह देव भगवान्‌की वंदना करके उनके समवशरणसे उठकर अपने देवलोकको चला गया।

विद्युन्माली देव भी वहाँसे चला गया। पीछे उसकी चारों देवियोंके पूछनेपर प्रसन्नचंद्र केवलीने बताया कि देवलोकमें विद्युन्माली देवसे वियोग प्राप्त कर, राजगृहीमें श्रेष्ठिपुत्रियोंके रूपमें जन्म लेकर तुम लोगोंका पुन. संगम होगा, और तुम लोग भी उसके साथ संयम धारण करके स्वर्गमें देव बनोगी। केवलीके ऐसे वचन सुनकर देवियाँ भी उनकी वंदना कर चली गयीं।

'वसुदेव-हिंडी'में उपलब्ध जंबूचरितका संक्षेपमें अध्ययन कर आगे दृष्टिपात करनेसे कथाकी एक और परंपरा हमारे सामने आ जाती है। वह है गुणभद्राचार्य कृत उत्तर पुराण, जिसकी रचना ८९७ ई० से पहले ही पूर्ण की जा चुकी थी। उत्तर पुराणमें आदि तीर्थंकर 'ऋषभ जिन'को छोड़कर शेष बासठ शलाका पुरुषों (पौराणिक जैन महापुरुष) का जीवन चरित विस्तारसे वर्णित है। उत्तर पुराणके छिहत्तरवें पर्वमें १ से लगाकर २१२वें श्लोक तक जंबूस्वामीकी कथा संक्षेपमें इस प्रकार वर्णित है :—

एक बार भ० महावीर विहार करते-करते राजगृह नगरमें आये, और संघसहित विपुलाचल पर्वतपर पधारे। राजा श्रेणिक भगवान्‌के दर्शनोंको आया व उनकी स्तुति की। फिर गणधर गौतमकी स्तुति करके, मार्गमें देखे हुए धर्मरुचि मुनिके[1] ध्यानमें लीन होनेपर भी मुखपर विकृत भाव होनेका कारण पूछा। गौतम स्वामीने संक्षेपमें धर्मरुचि मुनिका संपूर्ण वृत्तांत सुनाकर उनके मुखपर विकृत भाव आनेका कारण बतलाया और श्रेणिकसे कहा—जाओ, उनके कषाय-भाव शांत करो। श्रेणिक गया, और गणधरके कथनानुसार मुनिको बोध देकर उनके भाव शांत कर, उन्हें प्रसन्न कर आया। कुछ ही क्षणोंमें धर्मरुचि मुनिको केवलज्ञान हो गया। इंद्रादि देवोंने आकर उनकी पूजा की और श्रेणिकने भी; तथा भगवान् के पास आकर गणधरसे पूछा कि इनके बाद सबसे पीछे स्तुति करने योग्य कौन होगा ? इतनेमें विद्युन्माली देव अपनी चारों देवियों सहित वहाँ आ पहुँचा और भगवान् की वंदना कर यथास्थान बैठा। उसकी ओर संकेत कर गणधरने कहा—यह अंतिम केवली होगा। आजसे सातवें दिन यह स्वर्गसे च्युत होकर इसी नगरके सेठ अर्हद्दासकी स्त्री जिनदासीके गर्भमें आयेगा। इसके पहले जिनदासी पाँच स्वप्न देखेगी—हाथी, सरोवर, धानका खेत, ऊर्ध्वशिखा निर्धूमाग्नि, व देवकुमारों-द्वारा लाये हुए जामुनके फल। उसका नाम जंबूकुमार होगा, जो बहुत रूपवान्, भाग्यवान्, कांतिमान्, सर्व कलाकुशल व यौवनके आरंभसे ही विकार रहित रहेगा। मैं पुनः इसी विपुलाचलपर सुधर्म गणधरके साथ आऊँगा। चेलिनीका पुत्र इस नगर (राजगृही) का राजा कूणिक मेरा धर्मोपदेश सुनने आयेगा व जंबूकुमार भी उपदेश सुनकर विरक्त होकर दीक्षा लेना चाहेगा, पर अपने भाई-बंधुओंके आग्रहके कारण ऐसा नहीं कर सकेगा। फिर नगरके सागरदत्तादि चार सेठोंकी कन्याओंके साथ उसका विधिपूर्वक विवाह होगा। और विवाहके उपरांत भी वह वधुओंके साथ आवास महलमें निर्विकार भावसे पृथिवीतलपर बैठेगा। मेरा पुत्र अपनी वधुओंका वशवर्ती हुआ या नहीं, यह देखनेको आकुलतासे उसकी माँ स्नेहवश अपने आपको छिपाकर वहीं खड़ी होगी। उसी समय पोदनपुर नगरके राजा विद्युद्राजकी रानी विमल-मतीसे उत्पन्न हुआ विद्युत्प्रभ नामका चोर, जो अदृश्य होने आदि रूप अनेक विद्याओंका जानकार होगा, चोरी करने अर्हद्दासके घर आवेगा। जंबूकुमारकी माँको जागी देखकर अपना परिचय देकर उससे इतनी रात तक जागनेका कारण पूछेगा। माँसे सब बातें जानकर उससे प्रभावित अपने कर्मोंकी निंदा व धिक्कार तथा जंबूकुमारकी महान् विरक्तिके संबंधमें सोचता हुआ वह जंबूकुमारको समझाने हेतु उसके वासगृहमें जावेगा, जहाँ जंबूकुमार सब वधुओंके बीच निर्विकार भावसे बैठा रहेगा। वहाँ जाकर वह जंबू-

१. वसुदेव-हिंडीमें धर्मरुचि मुनिके स्थानपर प्रसन्नचंद्र राजर्षिका कथा पूरे विस्तारसे दिया गया है। (देखिए परिशिष्ट २)।

कुमारको मीठा गुन खानेवाले ऊँटकी कथा सुनाकर कहेगा कि इसी प्रकार उपस्थित भोगोंको छोड़कर स्वर्ग सुखोंकी इच्छा करके तू भी उस ऊँटके समान मृत्युको प्राप्त होगा। इसके उत्तरमें जंबू दाह-ज्वरसे पीड़ित वैद्यकी कथा कहेगा (प्रस्ता०–९)। अंतमें जंबूकुमारके तर्कोंसे विद्युच्चरको भी बोध प्राप्त होगा, तथा जंबूस्वामीकी माँ एवं वधुएँ भी संसारसे विरक्ति भावको प्राप्त होंगी। जंबूस्वामीके वैराग्य भावको जानकर उसके सब स्वजन, सेना सहित कूणिक राजा व अनावृत देव आकर उनका दीक्षा अभिषेकोत्सव मनायेंगे। तब जंबूकुमार दिव्य यानपर चढ़कर बड़े जनसमूहके साथ विपुलाचलके शिखरपर मेरे ही पास आवेगा, तथा विद्युच्चर और उसके ५०० मनुष्योंके साथ सुधर्म गणधरके पास दीक्षा लेगा। केवलज्ञानके बारह वर्ष बाद मुझे निर्वाण होगा, तब सुधर्मको कैवल्य लाभ। इसके बारह वर्ष बाद जब सुधर्माको मोक्ष होगा, तब जंबूको कैवल्य लाभ, और ४० वर्ष तक वे केवली अवस्थामें धर्मोपदेश देते हुए विहार करते रहेंगे। इस कथाको सुनकर अनावृत नामक देव अपने वंशका माहात्म्यगान करता हुआ उठकर नाचने लगा। श्रेणिकके पूछनेपर गौतमने अनावृत देव (वसु० हिंडीमें अनादृत देव) का पूर्वभव अति संक्षेपमें कहा—अर्हद्दासका भाई जिनदास व्यसनोंमें पड़कर दुरवस्थाको प्राप्त होकर पश्चात्ताप करके मरकर देव हुआ।

इस कथाके बाद पुनरपि श्रेणिकने विद्युन्मालीको देखकर पूर्वभव पूछा। आगेकी संपूर्णकथा, शिवकुमार और सागरदत्त तथा भवदेव और भवदत्तके जन्मों तथा चारों देवियोंके आगामी जन्ममें जंबूस्वामीकी पत्नियाँ बननेका वृत्तांत सब कुछ वसुदेव हिंडीके अनुसार है। अंतर केवल इतना है कि भवदेव-भवदत्तके जन्म स्थानका नाम वृद्ध नामक गांव, पिता राष्ट्रकूट नामक वैश्य, भवदेवकी वधूका नाम नागिलाके स्थानपर नागश्री, और भवदेवको बोध देनेका निमित्त नागश्री नहीं एक गर्भिणीको बतलाया गया है। गर्भिणीके कथनानुसार नागश्रीकी दारिद्र्य आदिसे पीड़ित दुरवस्थाको देखकर भवदेवको संसारकी असारता एवं देहकी क्षणभंगुरताका बोध प्राप्त होकर सच्चा वैराग्य उत्पन्न हो जाता है।

संघदास गणि कृत वसुदेव-हिंडी तथा गुणभद्र कृत उत्तर-पुराणके अतिरिक्त (परंतु कालकी दृष्टिसे इन दोनोंके बीच) जंबूस्वामीके अंतिम भवकी कथासे लगभग पूर्णतया समकक्ष दूसरी कथा हरिभद्र कृत समराइच्च-कहा (८वीं शती ई०) के नौवें भवमें प्राप्त होती है। कथा संक्षेपमें निम्नप्रकार है : कुमार समरादित्य बड़े ही प्रतिभाशाली, विद्वान्, शौर्य-वीर्य-धैर्य आदि सर्वगुण एवं रूप-यौवन संपन्न राजकुमार थे। परंतु पूर्वभवों के अभ्यस्त संस्कारोंके कारण बाल्यकालसे ही उन्हें भोगोंसे विरक्ति थी। फिर भी पिताके प्रति आग्रहके कारण उन्होंने दो कन्याओंके साथ विवाह किया, परंतु वे उनके रूप-यौवनसे किंचित् भी विचलित नहीं हुए, और वधुओंको दो प्रमुख सखियोंके साथ बैठकर कथा-वार्त्ता करने लगे। इसी प्रसंगमें उन्होंने रति रानी तथा शुभंकरकुमार के अनुचित अनुरागकी कथा (जंबूसामिचरिउमें विभ्रमा नामक रानी और ललितांग कुमारकी कथा किंचित् भेद लिये हुए शेष पूर्णतः समराइच्चकहाके अनुरूप) सुनाकर दोनों वधुओंको समझाया, और निम्न शब्दोंमें अनुरागकी सच्ची परिभाषा भी बतलायी : 'परमहित-मोक्षकी प्राप्तिमें अनुराग और अपने आत्मीयजनको उसीकी प्रेरणा देना।' वधुओंके द्वारा विषय-भोग त्याग दिये जानेपर, उनकी इस शुभ भावनापर ध्यान करते-करते शुभंकर कुमारको घरमें रहते ही अवधिज्ञान हो गया, और नाना कथाओंके द्वारा अपने माता-पिताको भी समझाकर कुमार समरादित्यने जिन-दीक्षा ले ली। देवताओंने आकर उनकी पूजा की। तत्पश्चात् थोड़े ही कालमें तप करते हुए मुनि समरादित्यको क्रमशः कैवल्य तथा मोक्षकी प्राप्ति हुई।[1] जंबूस्वामीके आख्यानसे इसका सादृश्य अत्यंत स्पष्ट है, अतः अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं।

जयसिंह सूरि-द्वारा विरचित धर्मोपदेशमालाविवरण (वि० सं० ९१५) में 'दोग्घबाहुम्मि नूपुरपंडिता-कथा'; महुबिंदु-कूपनर-कथा, क्र० ७३; तथा द्रव्य-भावाटव्यां पथसार्थवाहकथा, क्र० ८५-८६; ये सब कथाएं पूर्णरूपमें विद्यमान हैं, और निश्चयतः ये ही कथाएँ गुणपालकृत जंबूचरियं (विक्रमकी ११ वीं शतीके

१. 'जंबूस्वामीचरित' की कुछ अंतकथाओंके समकक्ष अन्य कथाएँ भी समराइच्चकहामें उपलब्ध हैं, उनका निर्देश आगे यथास्थान किया गया है।

पूर्व) को कथाओंका आदर्श बनी है। जंबूस्वामीकी कथा इसमें अति संक्षेपमें 'सत्पुरुषप्रभावे जम्बूकथा', (क्र० ५३), में निम्न गाथाके व्याख्यान रूपमें विद्यमान है :—

सुपुरिसचेट्ठं दट्ठुं वुज्झंते नूण कूरकम्मा वि।
मुणि-जंबु-दंसणाओ चिलाय-पभवा जहा वुद्धा ॥३८॥

जम्बूदर्शनात् प्रभव. प्रतिबुद्धः। 'रायगिहे उसभदत्तस्स धारिणीए जह नेमित्तिय-सिद्धपुत्तादेसाओ जंबू नामो जाओ। जहा य संवड्ढिओ पडिबुद्धो, जणणि-जणय-वयणाओ जह अट्ठ कन्नयाओ परिणीयाओ। ताहिं सह जुत्त-पडिवत्तीहिं धम्मजाग(र)णेण जग्गंतस्स चोर-सहिओ पभवो बोहिओ। जहा हि दोन्नि वि पव्व-इया, तहा सुप्पसिद्धं' ति काऊण न भणियं गंथ-गोरव-भीरुत्तणओ, नवर भुवणओ सवुद्धीए कायव्वो।

'जंबूसामिचरिउ' कथाकी पूर्व परंपराकी दृष्टिसे प्रथमत. वसुदेव हिंडी, द्वितीय गुणभद्र कृत उत्तर-पुराण, तृतीय समराइच्च कहा, एवं चतुर्थ जयसिंह सूरि कृत 'धर्मोपदेशमालाविवरण' पर विचार करनेके उपरात जिस ग्रंथपर हमारी दृष्टि अनायास आकृष्ट हो जाती है वह है प्राकृत 'जंबूचरियं।' मुनि गुणपालकी यह कृति सुंदर रत्नोंसे बीच-बीचमें जटित एक श्रेष्ठ मुक्तामालाके समान गद्य-पद्यमय मिश्रित शैलीमें रचित काव्य एवं साहित्य-रससे भरपूर एक उत्कृष्ट रचना है। इस ग्रंथका लेखनकाल अभीतक निःसंदिग्ध रूपसे निर्धारित नही किया जा सका है, परंतु इसके विद्वान् संपादक मुनि श्री जिनविजयजीने इसकी भाषा एवं शैलीपर गंभीरतापूर्वक विचारकर ग्रंथकी प्रस्तावनामें इसका रचनाकाल विक्रमकी ११वी शती अथवा इससे पूर्व माना है। डॉ० नेमिचंद्रजी शास्त्रीने भी अपने ग्रंथ 'प्राकृत भाषा और साहित्यका आलोचनात्मक अध्ययन'में इसका रचनाकाल मुनि जिनविजयजीकी अपेक्षा और भी दो शती पूर्व अर्थात् विक्रमकी नौवी शतीके लगभग माना है। 'जंबूचरिय' तथा 'जंबूसामिचरिउ'के तुलनात्मक अध्ययनसे यह समस्या कुछ और सुलझ जाती है और निश्चित रूपसे यह कहा जा सकता है कि 'जंबूचरियं'की रचना वि० सं० १०७६ में 'जंबूसामिचरिउ'के प्रणयनसे अवश्य ही कुछ पूर्व समाप्त हो चुकी होगी, तथा इसकी महान् ख्यातिसे आकृष्ट होकर वीर कविने निश्चयसे गभीरतापूर्वक इसका अध्ययन किया होगा, और संभवत. इसकी क्लिष्ट प्राकृत भाषा निवद्ध शैली एवं लंबे-लंबे धार्मिक उपदेशो व नीरस और बोझिल प्रतीकोके कारण इसे सर्वजनप्रिय न समझकर, सरलतर प्राकृत अर्थात् अपभ्रंश भाषामे, अर्थ-सुगम शैलीमे, काव्यरससे सर्वसाधारणको विभोर कर देनेवाले अपूर्व ग्रंथरत्नकी रचना करनेकी बलवत्तर प्रेरणा उसके कविहृदयमें उत्पन्न हुई होगी, जिसकी महाकाव्यात्मक कथावस्तुका आयाम आदर्श रूपमें स्वभावत. उसके समक्ष उपस्थित हो गया था। निम्न पंक्तियोके अध्ययनसे यह कथन स्वत. प्रमाणित हो सकेगा।

वसुदेव हिंडी तथा गुणभद्र कृत उत्तरपुराण के मूलकथा गठनके परिप्रेक्ष्यमें जब हम गुणपालकृत 'जंबूचरियं' के मूलकथा-गठन एवं अंतर्कथा-गुंफन-शिल्प-पर विचार करके देखते है तो एक सर्वथा परिवर्तित, नवीन एवं अपूर्व कथावस्तु हमारे सामने उपस्थित होती है, जिसमें प्रथम दो उद्देश्योमें हरिभद्र कृत समराइच्च कहाके समान साहित्यिक रीतिसे कथाओंके अर्थकथा, कामकथा, धर्मकथा एवं सकीर्णकथा ये चार भेद बतलाकर, फिर मनुष्योके कल्याण हेतु धर्मकथा कहना ही काव्य-रचनाका उद्देश्य एवं प्रयोजन बतलाकर विस्तारसे धर्मचर्चा करके तीसरे उद्देश्य (अध्याय) से वास्तविक कथा प्रारंभ की गयी है। संक्षेपमें कथा निम्न प्रकार है .—

जंबूद्वीपके राजगृह नामक नगरमे श्रेणिक नामका राजा था, उसकी चेलना नामक महादेवी थी। एक समय विपुलाचलपर भ० महावीरका समोशरण आया। राजा श्रेणिक भी भगवान्‌के दर्शनोके लिए नगरसे निकला। रास्तेमें प्रसन्नचंद्र मुनिके दर्शन हुए; जिनके मुखपर ध्यानावस्थामें ही नाना प्रकारके उतार-चढाव आ रहे थे। समोशरणमें जाकर श्रेणिकने भगवान्‌से प्रसन्नचंद्र राजर्षिके संबधमें जाननेकी जिज्ञासा व्यक्त की। भगवान्‌ने राजर्षिका पूर्ण कथानक विस्तारसे सुनाया। इतनेमे राजर्षिको केवलज्ञान हो गया और आकाशसे देवगण उनका कैवल्योत्सव मनाने आये। 'राजर्षिके बाद अतिम केवली कौन होगा ?' यह प्रश्न करनेपर भगवान्‌ने अपनी चार देवियो सहित प्रसन्नचद्र केवलीकी वदना निमित्त वहाँ आये हुए अत्यंत तेजस्वी विद्यु-

न्माली देवकी ओर संकेत करके बतलाया कि यही देव अंतिम केवली होगा। विद्युन्माली देवकी अतिशय तेजस्विताका कारण एवं उसके पूर्व-भव पूछनेपर भगवान् महावीरने उसके प्रथम भवसे कथा प्रारंभ की। सुग्राम नामक ग्राममें भवदत्त-भवदेव दो भाई थे। सुस्थित नामक मुनिके संयोग एवं धर्मोपदेशसे भवदत्तको वैराग्य हो गया और वह साधुसंघमें दीक्षित हो गया। कुछ काल बाद अनुजको भी दीक्षित करनेके निश्चय-से मुनि भवदत्त, संघके पुनः अपने ग्राममें आनेपर, अपने घर गया। और नव-वधूके साथ सातफेरे (सप्तपदी) लेते हुए भवदेवको विवाहकार्यके बीचमें-से ही भोजनयुक्त भिक्षा-पात्र हाथमें देकर, इस बहाने उसे नगरके बाहर जहाँ संघ ठहरा था, उस ओर ले जाने लगा। भवदेव घर लौटनेकी इच्छासे पूर्व-क्रीडित स्थानोंको दिखलाता हुआ चला। मुनि 'हूं, हाँ, स्मरण करता हूँ', ऐसा कहते हुए चुपचाप जैसे चलते रहे। भवदेव भी अग्रजके सम्मान, मर्यादा एवं लज्जाके वशीभूत हुआ, उनकी अनुमति बिना घर न लौट सका, और संघमें जाकर चुपचाप दीक्षित हो गया, पर सांसारिक सुखोंका ही चिंतन करता रहा। कुछ काल बाद मुनि भव-दत्तके स्वर्गस्थ हो जानेपर अवसर पाकर भवदेव पुनः अपने घरकी ओर चला। नगरके बाहर ही जिन चैत्यालयमें नागिला (पत्नी) से भेंट हो गयी। उसने भोग-सुखकी वासनासे पाड़ा बननेवाले तथा अपने ही वमनको खानेकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मणपुत्रोंके दृष्टांतों द्वारा भवदेवको बोध दिया। इसके उपरांत भवदेव कठोर तपस्या कर स्वर्गमें देव हुआ। स्वर्गसे आकर बड़ा भाई भवदत्त सागरदत्तके रूपमें जन्मा, और भवदेव राजपुत्र शिवकुमारके रूपमें। सागरदत्तके दर्शन व संयोगसे शिवकुमारको पूर्व-जन्मस्मरण एवं वैराग्य हो गया। माता-पिताके आग्रहको न टाल सकनेके कारण शिवकुमार घरमें रहता हुआ ही कठोर तप करने लगा (इस जन्ममें शिवकुमार एवं कनकवतीकी परस्पर प्रणयकथा बहुत ही रोचक है)। सागरदत्त मुनि तप-साधना कर मोक्ष गये और शिवकुमार समाधिमरण कर स्वर्गमें विद्युन्माली नामक देव हुआ, जिसकी चार अत्यंत प्रिय देवियाँ हैं। यह सात दिनों बाद राजगृहके सेठ ऋषभदत्तकी धारिणी नामक धर्मपत्नीके गर्भमें आवेगा तथा अत्यंत यशस्वी पुत्र होगा, और १६ वर्षकी अवस्थामें दीक्षा लेकर अंतिम केवली होगा। ये चारों देवियाँ स्नेहवशात् इसकी पत्नियाँ बनेंगी। कुल आठ कन्याओं (४ पूर्व देवियाँ + ४ कन्याएँ) से इसका विवाह होगा। इसी प्रसंगमें अणाढिय देवका लघु आख्यान कहा गया है।

उचित समयपर जंबूका जन्म हुआ। युवा होनेपर सुधर्माका उपदेश सुनकर उसे वैराग्य हो गया, पर माता-पिताके अत्यधिक आग्रहके कारण पूर्व वाग्दत्त आठ कन्याओंसे विवाह किया और अपने वासगृहमें आकर निर्विकार भावसे बैठा। सब सो गये। प्रभव चोर अपने ५०० साथियोंके साथ चोरी करने आया। जंबूको जागते हुए देखकर उससे कथासलाप करने लगा। जंबूकुमारने सांसारिक सुखोंके संबंधमें मधुबिंदु दृष्टांत एवं रिश्ते-नाते और पिंडदानके संबंधमें एक ही जन्ममें अठारह नाते तथा महेश्वरदत्तके आख्यान सुनाये। बहुएँ भी जाग गयीं और पहले एक पत्नी-द्वारा कथा, फिर जंबू-द्वारा उसका उत्तर; फिर दूसरी पत्नीकी कथा और उसका उत्तर, इस प्रकार कथा-प्रतिकथाके रूपमें (१) मूर्ख किसान, (२) कौवा, (३) वानर-युगल, (४) इंगालदाहक, (५) नूपुरपंडिता, (६) मेघरथ-विद्युन्माली, (७) संखधमक, (८) यूथपति वानर, (९) बुद्धि-सिद्धि, (१०) जात्यश्व, (११) ग्रामकूट पुत्र, (१२) घोड़ीपालक, (१३) माँ-साहस पक्षी, (१४) तीन मित्र, (१५) चतुर ब्राह्मण कन्या, (१६) ललिता रानी, (१७) बनिये और खदानें तथा (१८) द्रव्या-टवी-भावाटवीका दृष्टांत ये सब आख्यान कहे गये। अंतके तीन आख्यान अकेले जंबूस्वामी-द्वारा सुनाये गये। सबको बोध हो गया। राजा कूणिकने जंबूका दीक्षोत्सव बड़े उल्लास-उत्साहसे मनाया। जंबू, उसके माता-पिता, बहुएँ व उनके माता-पिता एवं ५०० साथियों सहित प्रभव, सबने दीक्षा ली। सुधर्मा कैवल्य प्राप्त कर मोक्ष गये। जंबू संघके प्रधान हुए और यथासमय मोक्ष गये। अन्य सब तप करके स्वर्गको प्राप्त हुए। इस प्रकार मुनि गुणपाल कृत जंबूचरित्र पूर्ण हुआ।

उपर्युक्त रीतिसे गुणपाल कृत जंबूचरियंके मूलकथा-गठन एवं अंतर्कथाओंके संयोजनपर थोड़ा-सा ध्यान देनेसे ही यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है कि वीर कविने अपने महाकाव्यकी योजनामें, इस दृष्टि-से आवश्यक अन्य तत्त्वोंका समावेश तथा यथायोग्य संक्षेप-संवर्द्धन और परिवर्तन कर, अन्य सब रीतियोंसे

'जंबूचरियं' को ही प्रमुख रूपसे अपना आदर्श आधार-ग्रंथ माना है, हाँ, सामग्री उन्होंने गुणभद्रके उत्तर पुराणसे भी यथावश्यक यथेष्ट परिमाणमें संग्रहीत की है; और 'जंबूसामिचरिउ' में समाविष्ट पाँच अंतर्कथाएँ तो ऐसी है, जो प्रथम बार केवल 'जंबूचरियं' में ही उपलब्ध होती है, इसके पूर्व अन्य किसी ग्रंथमें नही। संभव है गुणपालको अर्द्धमागधी आगमग्रंथोंकी टीकाओं या चूर्णियों अथवा मौखिक परंपरासे ये लघुकथाएँ उपलब्ध हुई हो, परंतु इस संपादकको अबतक इनका कोई अन्य पूर्ववर्ती स्रोत ज्ञात नही हो सका। सभी प्रमुख जंबूस्वामिचरितोंकी आद्योपांत कथासारिणीसे भी यह बात स्पष्टतया सिद्ध होती है। उपर्युक्त समस्त चर्चापर विचार करते हुए गुणपालकृत 'जंबूचरियं' का रचनाकाल वि० सं० १०७६ में 'जंबूसामिचरिउ' की रचनासे पूर्वतर मानना युक्तियुक्त एवं औचित्यपूर्ण प्रतीत होता है।

वीर कविके पूर्ववर्ती साहित्यकारोंकी उपर्युक्त रचनाओंके अतिरिक्त महाकवि पुष्पदंत कृत महापुराण (वि० सं० १०२९) के उत्तरखडमें 'जंबूसामिदिक्खवण्णणं' नामक सौवी संधिमें संक्षेपमें जंबूस्वामिचरित वर्णित है, जो पूर्णत. गुणभद्र कृत उत्तर पुराणके ७६वें पर्वके अनुकरणपर रचित है, अत उसमें कोई नवीनता नही है।

कालक्रमसे जंबूस्वामीकी कथा-परंपरामें इन सबके उपरात वीरकृत 'जंबूसामिचरिउ' का स्थान है। वीरके पश्चात् दिगम्बर आम्नायकी साहित्य-संपत्तिमें इस कथापर आधारित दो प्रमुख कृतियाँ हमारे समक्ष आती हैं · (१) ब्रह्म जिनदास (वि० सं० १५२०) तथा (२) पं० राजमल्ल (वि० सं० १६३२) कृत 'जंबूस्वामिचरित्र'। ये दोनो रचनाएँ संस्कृत भाषामें सुंदर काव्यशैलीमें रचित हैं, परंतु कुछ कम-अधिक दोनो ही वीर कविके प्रस्तुत अपभ्रंश चरितकाव्यके लगभग पूर्णतया संस्कृत-रूपांतर है, अत. इनमें कोई नवीन सामग्री नहीं है। पुरानी जयपुरी हिंदी, व आधुनिक हिंदीमें भी इन्हीं ग्रंथोंके छोटे-बड़े संक्षिप्त रूपांतरोंमें कुछ रचनाएँ उपलब्ध हैं, जिनकी सूची आगे दी गयी है।

श्वे० आम्नायकी साहित्य-धारामें जंबूस्वामीचरित-कथाकी परंपरा आधुनिक काल तक अविच्छिन्न रूपसे चलती आयी है, और इसमें विविधशैलियों, भाषाओं व छोटे-बड़े आकारकी पचासों कृतियाँ उपलब्ध हैं (देखें आगे सूची)। इनमें-से कुछ प्रमुख ग्रथ हैं (१) भद्रेश्वर कृत प्राकृत-कथावली (वि० १२ वी शती पूर्वार्द्ध); (२) नेमिचंद्रसूरिकृत प्राकृत-आख्यानकमणिकोष (वि० सं० १२२९, केवल प्रसन्नचंद्र राजर्षि तथा नूपुरपंडिता, ये दो अंतर्कथाएँ); (३) हेमचंद्र कृत संस्कृत परिशिष्टपर्व (वि० सं० १२१७-१२२९); एवं (४) उदयप्रभसूरि कृत संस्कृत धर्माभ्युदय-महाकाव्यमें संपूर्ण अष्टम सर्ग (वि० सं० १२७९-१२९०) आदि।

जंबूसामिचरिउकी कथा-परंपराओंका तुलनात्मक अध्ययन

ऊपर वसु० हिंडीके अनुसार जंबूकथाके संक्षेपमें हमने देखा है कि कथावस्तु सीधे जंबूस्वामीके गर्भमें आनेसे लेकर, जन्म, युवावस्था, गुरूपदेश, वैराग्य, माता-पिताके आग्रहसे आठ कन्याओंसे विवाह, प्रभवका चोरी हेतु आगमन, जंबूसे कथोपकथन (अधिकाश अंतर्कथाओंका यहीं समावेश), सबको बोध और दीक्षा तक आकर कूणिक अजातशत्रुके द्वारा जंबूके पूर्व-भव जाननेकी जिज्ञासा करनेपर कथा पीछेकी ओर मुड़ती है, और उसमें विद्युन्मालीका आख्यान आता है। तथा वहाँसे फिर और पीछे चलकर भवदत्त-भवदेव सागरदत्त-शिवकुमार और पुन: विद्युन्मालीदेव तथा उसकी चार देवियों-पर ले जाकर कथा बड़े विचित्र स्थलपर आकर समाप्त हो जाती है।

गुणभद्रके उत्तरपुराणमें भी कथाको जंबूस्वामीसे ही प्रारंभ कर पीछेकी ओर उलटे क्रमसे: विद्युन्माली, सागरदत्त-शिवकुमार एवं भवदत्त-भवदेव-पर ले जाकर अपनी पत्नी नागश्रीकी दारिद्र्यादि जनित दारुण दुरवस्था देखकर वास्तविक वैराग्य और तप:साधना आरंभ करनेपर कथा समाप्त की गयी है। इन दोनों चरितकथाओंके संपूर्ण गठन एवं अंतर्कथाओंमें संक्षेप-विस्तारके अतिरिक्त वास्तविक अंतर नगण्यके समान है।

'जंबूसामिचरिउ' की कथावस्तुके साथ उपर्युक्त कथा-रूपरेखाओंपर तुलनात्मक दृष्टिपात करके देखें तो हमारे सामने निम्न तथ्य स्वत उपस्थित होते हैं :—

(१) वसुदेव-हिंडी तथा उत्तरपुराण दोनोंमें जंबूस्वामीकी कथाका वह प्रारंभिक स्थूल प्रारूप दिखाई देता है जब कि वह आगम क्षेत्रसे निकलकर पुराण एवं कथा साहित्यमें अवतीर्ण हुई थी। इस समय तक इस कथाने काव्य रचनाके योग्य कथावस्तुका ही नहीं, वरन् व्यवस्थित चरित कथाका भी रूप धारण नहीं किया था। इन दोनों ग्रंथोंमें जिस स्थलपर एवं जिस रूपमें जंबूस्वामीके अंतिम भवकी कथा कही गयी है, उससे स्पष्ट है कि अन्य पूर्वभवोंकी कथासे इसका कोई वास्तविक संबंध नहीं है। केवल विद्यु-न्मालीके भवका कुछ संबंध मालूम पड़ता है, वह भी घनिष्ठतासे नहीं। जंबूस्वामीके भवका वृत्तांत जान लेनेके उपरांत पाठकको वास्तवमें उसके पूर्वभव जाननेकी कोई जिज्ञासा नहीं रह जाती। विद्युन्माली देवसे कथाका संबंध जोड़कर किसी तरह कुछ जिज्ञासा और उसके साथ अन्य भवोंके विषयमें भी कुछ उत्सुकता उत्पन्न की जाती है।

(२) राजर्षि प्रसन्नचंद्र अथवा धर्मरुचिका जो आख्यान इनमें मिलता है, उसका मूलकथासे बिलकुल कोई संबंध नहीं है।

(३) शिवकुमार सागरदत्त, तथा भवदेव-भवदत्तके आख्यानोंको ऊपरसे किसी तरह आरोपित किया गया है, यह बिलकुल स्पष्ट प्रतीत होता है, क्योंकि नायकका वर्तमान भव पूर्ण जान लेनेके उपरांत, पिछले भवोंकी अधिकांश जिज्ञासा स्वयमेव शांत अथवा नष्टप्राय हो जाती है। अर्थात् इन ग्रंथोंमें पाँचों भवों-की कथाओंमें कोई वास्तविक संबंध तो प्रतीत नहीं ही होता, इसके विपरीत ऐसा अनुभव होता है कि जंबूस्वामीके एक भवके संक्षिप्त वृत्तके साथ, अन्य भवोंकी कथाएँ अन्यान्य स्रोतोंसे लेकर सबको किसी प्रकार एक ही कथावस्तुके साँचेमें भर दिया गया है।

(४) कथाक्रम भी दोनोंमें व्यवस्थित नहीं है। वसुदेव-हिंडीमें पहले जंबूस्वामी, फिर विद्युन्माली, उसके पश्चात् भवदत्त-भवदेवका भव, तथा अंतमें सागरदत्त-शिवकुमारकी कथा कहकर उनका विद्युन्माली और फिर जंबूस्वामीसे संबंध स्थापित किया गया है। उत्तरपुराणमें क्रम और भी विचित्र है, पहले विद्यु-न्माली देवका आना, फिर जंबूस्वामीका चरित, फिर विद्युन्मालीके पूर्व-भवमें शिवकुमार सागरदत्तका चरित, और इसी भवमें सागरदत्तसे भवदत्त और भवदेवके पूर्व-भवकी कथा कहलायी गयी है। इस प्रकारके क्रमसे कथामें एक विशृंखलता आ गयी है, जिससे पाठककी जिज्ञासाका ह्रास होता है और वह श्रांत-थकित-सी हो जाती है।

(५) उत्तरपुराणमें भवदेवको उसकी त्यक्त पत्नीसे नहीं, वरन् एक गणिनी (साध्वी) से बोध दिलाकर कथाका एक और उत्कृष्ट मार्मिक स्थल नष्ट कर दिया गया है।

(६) जंबूस्वामीकी आठ या चार पत्नियोंके संबंधमें पूर्वभवका कोई वृत्तांत नहीं कहा गया।

(७) जंबूस्वामी तथा सुधर्माका पूर्वजन्मका कोई संबंध इन ग्रंथोंमें दिखलाया नहीं गया। हाँ, भवदत्त-भवदेवमें अग्रज-अनुज संबंध तथा सागरदत्त-शिवकुमारके भवमें पूर्व संबंध जनित आकस्मिक अनुराग एवं तज्जन्य पूर्व-जातिस्मरण मात्रका उल्लेख है।

(८) नायक जंबू स्वामीमें वीर भावको प्रकट करनेकी कोई आवश्यकता इन्हें प्रतीत नहीं हुई, अथवा ऐसा करनेका कोई सुयोग अपनी रचनाओंमें ये नहीं जुटा पाये।

उपर्युक्त मुद्दोंपर विचार करनेसे ऊपर लिखे अनुसार यह तथ्य और भी स्पष्ट हो जाता है कि इनमें वर्णित मूल-जंबूकथा तथा उसके भव-भवांतरोंकी अन्य कथाओं एवं अंतर्कथाओंमें कोई अविच्छेद्य-अखंड-नीय संबंध नहीं है। अत ये सब मिलकर किसी सुव्यवस्थित-सुगठित चरित-कथाका निर्माण नहीं करतीं और स्पष्टतया कथाकथन मात्रके उद्देश्यसे ऊपरसे जैसे-तैसे आरोपित की गयी आभासित होती हैं, जिससे इनमें वर्णित चरित-कथा अनेक लघुकथाओंके संकलनके समान प्रतीत होती है।

वसुदेव-हिंडी तथा उत्तरपुराणकी जंबूचरित-कथाके अध्ययनसे एक अति महत्त्वपूर्ण तथ्य यह भी

प्रकट होता है कि शुद्र साहित्यमें दिग०, श्वे० जैसा क्षुद्र आम्नाय-भेद तबतक स्थापित नहीं हुआ था। विमलसूरिके प्राकृत पउमचरियं तथा दिग० परंपराके आ० जिनसेन रचित पद्मपुराणके अध्ययनसे भी यह तथ्य पुष्ट होता है।

अब इन्हीं मुद्दोंपर गुणपाल कृत जंबूचरियंका विश्लेषण करनेसे निम्न बातें प्रकट होती हैं :—

(१) गुणपालने कथाक्रमको पूर्णतः परिवर्तित कर, विद्युन्माली देवसे प्रारंभ कर, भवदत्त-भवदेव, देवगति, सागरदत्त-शिवकुमार, सागरदत्तको मोक्ष एवं शिवकुमारका विद्युन्माली देवके रूपमें जन्म लेना और यहाँसे जंबूस्वामीके जन्मसे लेकर मोक्ष जाने तकके वृत्तको अत्यंत सुंदर, सुगठित, सुसंबद्ध तथा महाकाव्य रचनाके सर्वथा योग्य आयाममें सजाया-सँवारा है।

(२) राजर्षि प्रसन्नचंद्रके कथानकको गुणपाल भी संभवतः पूर्वपरंपराके आग्रहके कारण छोड़ नहीं सके।

(३) शिवकुमार-सागरदत्त एवं भवदेव-भवदत्तके आख्यानोंको सुसबद्ध रीतिसे इस प्रकार लिया गया है कि वे मूलकथाके अनिवार्य-अविच्छेद्य अंग बन गये हैं। शिवकुमार एवं कनकवतीका परस्पर प्रेमाख्यान बहुत सुंदर व रोचक है, तथा अन्य सभी जंबूचरितोंसे अतिरिक्त है। इस कथाका आधार सम० कहाके द्वि० भवमें सिंहकुमार-कुसुमावलीकी प्रणयकथा है।

(४) कथाक्रम बिलकुल सुव्यवस्थित है, जिससे पाठककी जिज्ञासा और कुतूहल आद्योपांत निरंतर बने रहते हैं।

(५) वसु० हिंडीके समान भवदेवको उसकी पत्नी नागिलाके द्वारा ही बोध प्राप्ति करायी गयी है।

(६) जंबूस्वामीकी आठ पत्नियोंके संबंधमें पूर्वभवका कोई वृत्तांत इसमें भी नहीं है।

(७) जंबूस्वामी-सुधर्माका कोई पूर्व-संबंध यहाँ भी स्थापित नहीं किया गया है।

(८) नायकमें वीरताका गुण प्रकट करनेका इन्हें भी कोई विचार नहीं आया।

वीर रचित 'जंबूसामिचरिउ' की विशेषता

उपर्युक्त तीन कृतियोंके विश्लेषणसे यह सुज्ञात हो जाता है कि गुणपाल कृत 'जंबूचरियं'का इतिवृत्त ही प्रस्तुत 'जंबूसामिचरिउ' महाकाव्यकी मूल कथावस्तुका प्रमुख आधार है। उसीमें परिवर्तन, परिवर्द्धन, संशोधन करके वीरने अपनी रचनाको चरितात्मक प्रेमाख्यान महाकाव्यका रूप दिया है। विद्युन्माली देवके प्रकट होनेसे, उसके पूर्वभवके संबंधमें प्रश्न करके पाठकमें जिज्ञासा और कुतूहल उत्पन्न कर गुणपाल और वीर दोनोंही भवदत्त-भवदेव, देव, सागरदत्त-शिवकुमार; विद्युन्माली देव एवं जंबू-सुधर्मा तथा प्रभव या विद्युच्चर-के कथानकोंकी ओर ले चलते हुए पाठककी अभिरुचि और जिज्ञासा निरंतर जाग्रत-बनाये रखनेमें सफल हुए हैं। गुणपालकी रचना लंबे-लंबे धार्मिक उपदेशों और कथाओंके साथ सर्वत्र गूढ धार्मिक-आध्यात्मिक प्रतीकोंको संबद्ध करनेसे सामान्य पाठकके लिए दुरूह और बोझिल हो गयी है। वीरने अपनी काव्य-चातुरीसे अपनी रचनामें ऐसी स्थिति कहीं भी उत्पन्न नहीं होने दी।

गुणपालने पूर्व-परंपरानुसार भवदत्त-भवदेवके संबंधको तीसरे भवमें सागरदत्तको मोक्षोपलब्धि कहकर वहीं काट दिया। परंतु वीर कवि ऐसा न करके उसे पाँचवें भव तक ले आया; तथा पाँचवें भवमें सुधर्माके द्वारा उससे पूर्वके चारों भवोंको संक्षेपमें कहलाकर कथासूत्रको आद्योपांत प्रगाढ एवं अविच्छेद्य-रीतिसे जोड दिया। इसी प्रकार जंबूस्वामीकी चार पत्नियों वा विद्युन्माली देवकी चार देवियोंका एक श्रेष्ठिकी चार पत्नियोंके रूपमें पूर्वभवका वृत्तांत जोड़कर उनके उस जन्मके तपरूपी सुकृत-सामर्थ्यसे उनमें जंबूस्वामीकी पत्नियाँ बनने योग्य अर्हता उत्पन्न कर, इस जन्ममें उनके संबंधका सार्थक्य एवं अविच्छेद्य संगति भी अभूतपूर्व रीतिसे सिद्ध किये हैं। बाल्यकालसे ही विवेकवान् होनेपर भी नायकको सर्वथा नीरस-वैरागी नहीं दिखलाया जैसा कि अन्य पूर्व रचनाओंमें है। बल्कि युवावस्थामें अपनी सुहृन्मंडलीके साथ कामिनियोंसे कामविकार रहित स्वच्छंद जल-क्रीड़ा भी दिखलायी है, और जंबूस्वामीमें महाकाव्योचित नायकके

बुद्धिमत्ता, शौर्य, वीर्य, धैर्य, साहस, तेजस्विता आदि सभी गुणोंको प्रकट करनेकी दृष्टिसे जलक्रीडाके समय हस्त्युपद्रव और स्वामी-द्वारा सरलतासे उसका पराजय तथा केरल नगरीमें युद्धकी घटनाओंको अपनी कवि-कल्पना-द्वारा मूल कथाके साथ गुम्फित कर दिया है। प्रसन्नचंद्र (या धर्मरुचि) के मूल-कथा-गठनमें सर्वथा अनावश्यक और ऐसे ही अन्य छोटे-बड़े कथानकोंको अपनी रचनामें-से निकाल दिया है और कुछ नवीन सुंदर लघुकथाओंको समाविष्ट कर लिया है। व्यभिचारिणी रानी एवं वणिक्पुत्रवधूके द्विकथात्मक बडे आख्यानमें-से रानी संबंधी अंश बिलकुल छोड दिया है, तथा वणिक्पुत्रवधूके आख्यानको भी बहुत संक्षिप्त कर दिया है।

इस प्रकार वीर कवि अपनी मौलिक सूझ-बूझ और काव्य-कला कौशलसे प्राचीन सामग्रीमें-से एक उत्कृष्ट व अभिनव महाकाव्यकी रचनामें पूर्ण सफल हुआ। संघदास, गुणभद्र एवं गुणपाल भी, मूलतः कवि रूपमें नहीं, कथाकार व उपदेशकके रूपमें हमारे समक्ष आते हैं, जबकि वीर चरित-काव्यके निर्माता महाकविके रूपमें। अतः उसे महाकवि कहा जाना सर्वथा उचित है।

जंबूचरितकी कथाका मूलस्रोत

जंबूस्वामीकथाकी पूर्व-परंपराका गंभीरतासे अध्ययन करनेपर यह स्पष्ट प्रकट होता है कि वसुदेव-हिंडीके पूर्व दिग०, श्वे० संपूर्ण आगम साहित्यमें 'जंबू काश्यप गोत्रीय थे, वे सुधर्माके शिष्य थे, सुधर्माने जंबूके प्रश्नोंके उत्तर-स्वरूप सारे अर्द्धमागधी आगमोंको उन्हें कहकर सुनाया, सुधर्माके मोक्ष जानेपर जंबूको केवलज्ञान हुआ और ४०,४४ वर्ष जैन साधु संघके प्रधान रहकर जंबूको मोक्ष प्राप्त हुआ, तथा जंबू इस कालमें अंतिम केवली हुए—इन सूचनाओंके अतिरिक्त जीवनचरित-विषयक अन्य कोई भी सामग्री उपलब्ध नहीं होती। तब यहाँ यह प्रश्न होता है कि संघदास गणिने जंबूचरित कथाका निर्माण किस प्रकार किया? क्या शुद्ध निजी कल्पनासे? अथवा उनके सामने कोई और अज्ञात आधार होना संभव है? जंबूके चार या आठ कन्याओंसे विवाह करके भी, भरपूर यौवनमें बिना इंद्रिय सुख भोग लिये, विरक्त होकर दीक्षा लेनेका वृत्त मौखिक-परंपराके माध्यमसे भी संघदासको प्राप्त होना संभव है। फिर भी यह प्रश्न तो रह ही जाता है कि भवदत्त-भवदेव जन्मकी अत्यंत रसात्मक व मार्मिक कथा किस तरह, कहाँसे, संघदासने जंबूके जीवन-चरितसे जोड दी?

इस कथाके मूलस्रोतकी शोधमें अन्य भारतीय साहित्यपर दृष्टिपात करनेसे प्राचीन संस्कृत साहित्यमें जो रचना बलात् हमारा ध्यान आकृष्ट करती है, वह है बौद्ध महाकवि अश्वघोष कृत सौंदरनंद काव्य। कीथ प्रभृति संस्कृत साहित्यके इतिहासकार विद्वानोंके मतानुसार अश्वघोषको भास व कालिदाससे पूर्ववर्ती होना चाहिए। इनका अनुमानित जीवनकाल ई० पूर्व प्रथम शती माना जाता है।

इस काव्यकी 'कथावस्तु' जंबूस्वामीके पाँच भवोंमें-से उनके प्रथम और अंतिम इन दो भवोंके वृत्तसे संक्षेपमें मेल रखती है। यहाँ जंबूस्वामीके पाँचवें पूर्वजन्ममें भवदेवने भाईकी मर्यादाकी रक्षाके विचारसे वैराग्य लिया, और १२ वर्षों तक मुनिवेशमें रहकर भी पत्नीका ही ध्यान करता रहा। फिर पत्नीसे मिलने आया, तब उसीने बोध देकर पतन होनेसे बचाया। फिर देव हुआ। फिर शिवकुमारके जन्ममें बडे भाईके जीव सागरदत्त मुनिके दर्शनसे उसे प्रतिबोध हुआ। घरपर रहकर ही तपस्या की। फिर देव हुआ, और अंतमें जंबूस्वामी। इस जन्ममें चार नव-विवाहित वधूओंको छोडकर दीक्षा ली, तप किया, कैवल्य प्राप्त किया और फिर मोक्ष। यह पाँच जन्मोंकी कथा पूर्ण हुई।

दूसरी ओर सौंदरनंद काव्यमें सर्ग ४ से १२ तक गौतम बुद्धके अपनी दूसरी माँसे उत्पन्न सगे भाई नंदका चरित्र वर्णित है। बुद्धत्व प्राप्तिके उपरांत जब गौतम कपिलवस्तुके आराम-प्रांगणोंमें जीवोंको चार आर्यसत्यों व अष्टांगिक-मार्गका उपदेश देते हुए विहार कर रहे थे, उसी कपिलवस्तुके राजमहलोंमें उन्हीं-का सगा भाई नंद, बुद्धके आगमनसे सर्वथा निरपेक्ष रहकर अपनी प्रियतमा सुंदरीके साथ भोग-विलासमें डूबा हुआ था। बुद्धने भिक्षाके लिए नंदके प्रासादमें प्रवेश किया, पर वहाँ किसीका ध्यान अपनी ओर

आकृष्ट न होनेसे भिक्षा लिये बिना ही वापस वनको लौट चले। प्रासादकी छतपर खड़ी एक दासीने बुद्धको लौटते देखकर नंदको इसकी सूचना दी। इससे नंद दुःखित हुआ। वह तुरंत लौट आनेका वचन देकर, क्षण-भरके लिए भी जिसे प्रियतमका वियोग असह्य था, ऐसी अपनी प्रियतमासे मुनिको प्रणाम करने जानेकी अनुमति मांगकर, एक ओर प्रियाके स्नेहके अदम्य आकर्षण तथा दूसरी ओर गुरु-भक्तिके द्वंद्वके झूलेमें झूलता हुआ और प्रियाके अनुपम रूपका ध्यान करता हुआ मुनिके दर्शनोंको चला (सर्ग-४)। गौतम मार्गमें ही मिल गये। नंदने मुनिसे घर चलकर भिक्षा लेनेका अनुरोध किया, परंतु गौतमने उसे स्वीकार नहीं किया, तथा उसके ऊपर (प्रव्रज्या-दान रूपी) अनुग्रहकी बुद्धिसे भिक्षापात्र उसीके हाथमें दे दिया। परंतु भिक्षा-पात्र हाथमें होनेपर भी जब नंद घर लौटनेकी इच्छासे मार्गसे हटने लगा, तब गौतम अपनी दिव्य शक्तिके-द्वारा उसका मार्गावरोध करके बलात् नंदको संघमें ले गये। वहाँ उपदेश देकर उसे दीक्षित होनेको कहा। लज्जावश एक बार हाँ कहकर फिर स्पष्टत. मना करनेपर भी किसी-किसी तरह समझा-बुझाकर गौतमने प्रियाकी यादमें रोते हुए उस नंदका भिक्षुओं-द्वारा मुंडन कराकर उसे आनंदके शिष्य रूपमें भिक्षु बना लिया (सर्ग-५)।

छठे सर्गमें नंदकी नव परिणीता पत्नी सुंदरीका नाना संकल्प-विकल्पोंसे युक्त अत्यंत कारुणिक विलाप है, जिसे पढ़कर कोई भी सहृदय पाठक द्रवीभूत हुए बिना नहीं रहता।

सातवें सर्गमें नंदका विलाप है, और प्रियाके स्मरणसे उत्पन्न नंदकी दुःखद अवस्थाका अतिशय मार्मिक चित्रण है। नंद एक ओर भौतिक सुखके सर्वसाधन-संपन्न अपने महलमें लौटकर अपनी दिव्य रूपवती पत्नी सुंदरीके साथ समस्त इंद्रिय भोगोंको भोगना चाहता है, दूसरी ओर गुरु और उनके प्रति भक्ति व लज्जा उसे घर जानेसे रोकते हैं। इस अंतर्द्वंद्वमें नंदकी स्थिति प्रतिक्षण और भी अधिक दु.खद होती जाती है और इसी अंतर्द्वंद्वकी स्थितिमें कामसे अभिभूत होनेवाले पूर्व मुनियोंके चरित्रोंका स्मरण कर (७.२५-७.५०) एक दिन ऐसा आ ही जाता है जब वह 'कुलीन व्यक्तिके लिए भिक्षुवेष ग्रहण करके छोड़ना उचित नहीं, यह जो मेरा विचार है, वह भी नष्ट हो जाता है, यह सोचकर कि वे और नृपति तपोवनको छोड़कर अपने घरोंको लौट गये', इस विचारधाराके द्वारा अपने विवेकको तिलांजलि देकर घर लौट जाने-का निश्चय कर लेता है। उसके अश्रुपूर्ण लोचन और इस प्रकारकी मानसिक स्थितिसे एक निकटवर्ती भिक्षु उसके उस निश्चयको भाँप लेता है, और नाना प्रकारसे स्त्री शरीरकी अशुचिता, रोगोंका घर आदि उपदेशोंके द्वारा उसे भिक्षु जीवनमें स्थिर करनेका प्रयास करता है (सर्ग ७)। विश्वास प्राप्त कर लेने-पर नंद अपने अंतर्मनकी बात स्पष्ट रूपसे भिक्षुसे कह देता है कि प्रियतमाके बिना एक क्षण भी उसका मन यहाँ नहीं लगता। भिक्षु उसे फिर समझाता है, कहता है—तू फंदेमें-से निकलकर फिर उसीमें फंसना चाहता है, तू अपने ही वमन (त्यक्त पत्नी और कामभोग) को फिरसे खाना चाहता है आदि, और नाना प्रकारसे स्त्रीकी निंदा करता है (सर्ग ८)। पर नंदके ऊपर इस सब उपदेशका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। भिक्षु जब उसे समझाकर हार गया, तब नंदकी मन.स्थिति गौतमसे जाकर कह दी। (सर्ग ९)। नदने गौतमके सामने भी अपना घर लौट जानेका निश्चय दृढ़तासे साफ-साफ कह दिया। तब गौतम पुनः अपनी दिव्य शक्तिका प्रयोग कर नंदको स्वर्ग ले गये। वहाँकी अप्सराओंका रूपविलास एवं उन्मुक्त मादक क्रीड़ाएँ देखकर नंदका चित्त उनमें मोहित हो गया और वह अपनी प्रियाको भूलकर स्वर्गकी अप्सराओंकी प्राप्तिके लिए तप करने लगा। नंदको स्वर्ग-सुखोंके ध्यानमें लगे देखकर आनंदने उसे उन सुखोंकी विनश्वरताका ज्ञान कराया (सर्ग १०), और नाना प्रकारसे स्वर्गकी निंदा की (सर्ग ११)। अंतमें नंदका हृदय शुद्ध हो गया और वह सच्चा वीतराग बनकर सन्मार्गपर लौट आया। अब उसने गौतम बुद्धके समक्ष पूर्ण आत्मसमर्पण कर दिया और शुद्ध निर्वाण-मार्गपर चलने लगा (सर्ग १२)। आगेके चार सर्गोंमें चार आर्यसत्य आदि बौद्ध दार्शनिक तत्त्वोंकी व्याख्या की गयी है। तथा सत्रहवें सर्गमें नंदको अर्हत् पद प्राप्त होनेका वर्णन किया गया है। इस प्रकार यह कथा जंबूस्वामीके केवली बनने तकके वृत्तांतसे समानता रखती है।

नदके इस आख्यानसे जंबूस्वामीचरित कथाका संबंध स्थापित करते समय यह प्रश्न उठना

स्वाभाविक है कि कथा वसुदेव-हिंडीके रचयिता संघदासको अश्वघोषकी यह उत्कृष्ट काव्य कृति उपलब्ध हो सकी होगी या नहीं ? इस संबंधमें ऐतिहासिक स्थिति यह है कि १०वी शती ई० तक नालंदा, (विहार) वलभी (गुजरात) तथा १२वी शती ई० तक विक्रमशिला (भागलपुर, विहार) के बौद्ध विश्वविद्यालय अपने चरम उत्कर्षपर रहे, तथा ये संपूर्ण भारत देशके सबसे बडे अध्ययन केंद्र थे। इन विश्वविद्यालयोंमें संस्कृतका अध्ययन अनिवार्य रूपसे किया जाता था, और इनकी साहित्य संपत्तिका कोई पारावार नही था।[1] इस परिस्थितिमें महाकवि अश्वघोषकी ऐसी सुंदर काव्य कृतिका अत्यंत लोकप्रिय एवं सर्वप्रचलित होना एक बिलकुल सामान्य बात है, और जैन विद्वानोंके सदासे उदार व्यापक एवं जिज्ञासु दृष्टिकोण-को ध्यानमें रखकर यह बात और भी अधिक बलपूर्वक कही जा सकती है कि संघदास गणि जैसे महान् साहित्यकारने ऐसी सर्वप्रसिद्ध तथा महान् काव्य रचनाका अध्ययन अवश्यमेव किया होगा ! स्वयं वसुदेव-हिंडीके अध्ययनसे यह प्रतीत होता है कि जंबूके जीवनचरितके साथ भवदत्त-भवदेवकी कथाका कोई घनिष्ठ वास्तविक संबंध नही है, तथा उसके साथ यह कथा बिलकुल अलगसे बादमें जोडी गयी है, यह बात वसु० हिंडीके कथा-विश्लेषणसे स्वतः झलकती है। जंबूस्वामीकी कथाको रसात्मक बनानेके हेतुसे नाम बदलकर बाहरकी किसी कथाको समाविष्ट कर लेना कोई असाधारण घटना नहीं है। नंद तथा भवदत्तके आख्यानोंके कथा-तत्त्वोंका तुलनात्मक विश्लेषण करनेसे भी उपर्युक्त कथनकी पुष्टि होती है।

नंद और उसकी पत्नी सुंदरीका परस्पर अत्यंत प्रगाढ अनुराग, एक ही पिताके सगे-मौसेरे भाई बुद्ध द्वारा उसे निर्वाण मार्गपर लगानेका प्रयत्न, नंदके घर जाना, किसीका ध्यान बुद्धकी ओर न जानेसे भिक्षा न मिलना, बुद्धका रिक्त भिक्षापात्र हाथमें लिये नगरसे बाहर लौट पडना; एक सेविकाके द्वारा नंदको यह सूचना मिलनेपर, शीघ्र लौट आनेका वचन देकर, पत्नीकी अनुमति ले उसीका रूप चिंतन करते हुए बुद्धके दर्शनोंको जाना, और बुद्धके द्वारा अनुग्रह बुद्धिसे नंदके हाथमें रिक्त भिक्षा-पात्र दिया जाना, नंदको घर लौटनेकी प्रबल इच्छा, बुद्ध-द्वारा उसे दिव्य शक्तिसे व्यामोहित कर संघमें ले जाना, नंदकी अनिच्छा और स्पष्ट अस्वीकार करनेपर भी उसका सिर मुंडाकर उसे प्रव्रजित कर लेना, नंदका विलाप और सुंदरीका ही निरंतर चिंतन, उसे समझानेके सब प्रयासोंकी विफलता होनेपर बुद्ध-द्वारा उसे स्वर्गदर्शन, और फिर स्वर्ग सुखोंकी भी क्षणिकता दिखलाकर सच्चे निर्वाण मार्गपर लगा देना, तथा अंततः नंदका अर्हत् होकर निर्वाण लाभ, इस कथाके ये मूलतत्त्व हैं। जंबूचरित-कथामें किंचित् परिवर्तन-परिवर्द्धनके साथ ये सभी तत्त्व सन्नि-हित हैं। बुद्ध-द्वारा नंदके घर आनेसे लेकर नंदकी दीक्षासे उसे सच्चा वैराग्य होने तकका वृत्त भवदत्त-भव-देवके वृत्तांतसे पूर्णतया समान है। नंद और बुद्धके सशरीर स्वर्गगमनसे भवदत्त-भवदेवके मृत्युके उपरांत स्वर्गगमनकी तुलना की जा सकती है। शिवकुमार सागरदत्त-भवकी कथा विशेष महत्त्वकी नहीं है। तथा जंबूकी मोक्ष-प्राप्ति नंदके निर्वाणके समान है। अतः जंबूस्वामीकी कथामें आद्योपांत सौंदरनंदकी कथाको पिरो लेना संघदास जैसे जैन साहित्यकारके लिए अत्यंत स्वाभाविक प्रतीत होता है।

वीर कविने पांचो भवोंमें प्रथम बारके भ्रातृत्व संबंधको पूर्वजाति-स्मरण-द्वारा स्थायी बनाये रखा और इस प्रकार पहले जन्मके बडे भाई भवदत्तके द्वारा बार-बार छोटे भाई भवदेवके जीवको बोध प्रदान किया, व अंतमें वही उसके पाँचवें जन्ममें मोक्षप्राप्तिमें उसका साक्षात् गुरु और मार्गदर्शक बना, एक यह तथ्य; और दूसरे भवदेवके अंतर्द्वंद्वका मार्मिक काव्यमय-चित्रण, दो बातोंसे ऐसा अनुमान होता है कि संभवतः स्वयं वीर कविने भी अश्वघोषके सौंदरनंदका गंभीरतासे अध्ययन किया, जिससे वह अपने काव्य वर्णनमें इतनी सजीवता और मार्मिकता ला सका। इस संबंधमें जैन कथाकारोंकी एक विशेषता यह है कि उन्होंने भवदेवकी पत्नीके द्वारा ही प्रथम भवमें उसे सच्चा बोध प्रदान कराकर भारतीय नारीके चरित्रको बहुत ऊँचा और सदाके लिए आदर्श तथा महनीय बना दिया है। नारी चरितका ऐसा परम उत्कर्ष प्रेम, विरह और अंतर्द्वंद्वके मार्मिक-रसात्मक स्थल एवं मानव-जीवनके सर्वोत्कृष्ट ध्येयकी उपलब्धि, इन सब तत्त्वोंने जैन-परं-

१. बौद्धधर्मके २५०० वर्ष।

परामें जंबूस्वामीके कथानकको इतना अधिक लोकप्रिय बना दिया कि वर्तमान काल तक यह कथा काल-समुद्रकी उत्ताल तरंगोंके प्रचंड झपेटोंका अतिक्रमण करती हुई, अखंड-अविच्छिन्न रूपसे निरंतर गतिशील और प्रवहमान रही। तथा ५वीं शती ई० से लगाकर २०वीं शती ई० तक प्रत्येक शतीके उत्तर भारतके गुजरात, राजस्थान, मालवा, मध्यप्रदेश, एव उत्तर प्रांत, इन सभी क्षेत्रोंमें विविध भाषा और शैलियोंमें छोटे-बड़े-मध्यम सभी आकारोंमें अनेक रचनाएँ जंबूस्वामीके जीवनके विविध पक्षोंको लेकर प्रणीत की जाती रहीं, जिनकी संख्या लगभग एक सौ तक जा पहुँची है। इन रचनाओंका कालक्रमानुसार विवरण निम्न प्रकार है—

जंबूस्वामी विषयक रचना-सूची

*१. वसुदेव-हिंडीमें 'कथोत्पत्ति' नामक प्रकरण—संघदास गणि, ५वीं ६ठी शती विक्रम, आर्ष जैन महाराष्ट्री प्राकृत, सर्वप्राचीन कथानक, आगेकी जंबूस्वामी विषयक समस्त रचनाओंका आधार।

२. 'रिट्ठणेमिचरिउ' के अंतर्गत—स्वयंभू देव, ई० सन् ७०० के लगभग, अपभ्रंश।

*३. धर्मोपदेशमालाविवरण—जयसिंहसूरि, वि० सं० ९१५, महाराष्ट्री प्राकृत, संक्षेपमें कुछ पंक्तियाँमात्र, फुटकररूपमें जंबूस्वामि चरित्रकी चार कथाएँ उपलब्ध हैं (देखें : प्रस्ता०—५ 'कथासारिणी')।

*४. उत्तरपुराण, ७६वाँ पर्व—गुणभद्राचार्य, वि० सं० ९५५ के पूर्व, संस्कृत, २१३ श्लोक।

*५. 'तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारु' (महापुराण) १००वीं संधि—पुष्पदंत, वि० सं० १०१५-१०२१, अपभ्रंश।

*६. जंबूचरियं—मुनि गुणपाल, वि० सं० १०७६ के पूर्व, महाराष्ट्री-प्राकृत, १६ उद्देशक।

७. जंबूसामिचरिय—पं० सागरदत्त, वि० सं० १०७६, अपभ्रंश, ग्रंथाग्र २६००, बृहट्टिप्पणिकाकी सूची, क्र० ३०५-३०७ के अनुसार।
जंबूसामिचरियटिप्पण—गुजराती, ग्रंथाग्र ११००, बृहट्टिप्पणिकाकी सूची, क्र० ३०५-३०७ के अनुसार।

*८. जंबूसामिचरिउ—कवि वीर, वि० सं० १०७६, अपभ्रंश, ग्यारह संधियाँ, प्रस्तुत रचना।

९. 'कहावली' के अंतर्गत—भद्रेश्वर, ई० सन् ११०० के लगभग, प्राकृत।

१०. (क) 'उपदेशमाला' पर 'विशेषवृत्ति' : या 'दोघट्टी वृत्ति' के अंतर्गत—वृत्तिकार रत्नप्रभसूरि, वि० सं० १२३८, संस्कृत।
*(ख) कर्पूर प्रकरणटीकाके अंतर्गत—(१) जिनसागरसूरिकृत, (२) प्रतिष्ठासोमकृत, संस्कृत, अति संक्षिप्त, एक पृष्ठ मात्र।

*११. परिशिष्टपर्व—हेमचंद्राचार्य, वि० सं० १२१७-१२२९ के बीच, संस्कृत, चार पर्व, गुणपाल कृत 'जंबूचरियं' के अनुसार।

*१२ धर्माभ्युदय महाकाव्य, अष्टमसर्ग मात्र—उदयप्रभसूरि, वि० सं० १२७१-९० के बीच, संस्कृत एक सर्ग।

*१३. जंबूस्वामिचरित्र—महेंद्रसूरिके शिष्य धर्ममुनि, वि० सं० १२६६, पुरानी गुजराती, ४१ कड़ियाँ, ५ पत्र, गुज० भाषामें अबतक प्राप्त सर्वप्रथम कृति (प्रा० गु० का० सं० में प्रकाशित)।

१४. जंबूचरित्र—कर्ता अज्ञात, वि० सं० १२९९, अपभ्रंश, (ग्रन्थ सूची, जैन ग्रन्थावली भाग—२)।

१५. जबूस्वामी फाग—कर्ता अज्ञात, वि० सं० १४३०, पुरानी गुजराती, प्रा० गु० का० सं०में प्रका०।

*१६ जंबूस्वामीचरित्र-काव्य—जयशेखरसूरि, वि० सं० १४३६, संस्कृत, ७२६ श्लोक प्रमाण, छह-प्रकरण। जय शेखर सूरि अंचल गच्छके भट्टारक थे। यह कथानक उनकी स्वोपज्ञ उपदेश-चिंतामणि-वृत्तिके अंतर्गत आया है। इसमें कथा प्रारंभ आर्यवसु-ब्राह्मण, सोमशर्मा ब्राह्मणी, भवदत्त-भवदेव पुत्र, सीधे यहींसे होता है। भवदेवकी दीक्षाके वृत्तमें भी कुछ भेद है। पहली बार जब भवदत्त, भवदेवको दीक्षित करनेकी इच्छासे घर गये तो वहाँका राग-रंग देखकर स्वयं उनका मन विचलित

हो उठा और वे शीघ्र वहाँसे संघमें लौट आये। संघमें मुनियों-द्वारा व्यंग्य किये जानेपर पुनः भवदेवके घर गये और उसे किसी तरह संघमें लाकर दीक्षित किया।

१७. जंबूस्वामीनो विवाहलो—पीपल गच्छीय हीरानंदसूरि, वि० सं० १४९५। साचोरमें वैशाख शुक्ल अष्टमीके दिन रचना पूर्ण हुई। पुरानी गुजराती।

१८. जंबूस्वामीचरित—रत्नसिंह सूरिके शिष्य, वि० सं० १५१६, रचयिताने अपना नाम न देकर केवल अपने गुरुका नामोल्लेख किया है।

*१९. जंबूस्वामी चरित्र—ब्रह्म जिनदास, वि० सं० १५२०, संस्कृत ११ संधियाँ, पूर्णरूपसे वीर कृत अपभ्रंश 'जंबूसामिचरिउ' का संस्कृत रूपांतर, इसी संपादक-द्वारा संपादनाधीन इसकी अनेक प्रतियाँ आमेर, आरा, जयपुर, बम्बई, ब्यावरके जैन भंडारोंमें विद्यमान हैं।

२०. जंबूकुँवर रास—ब्रह्म जिनदास, वि० सं० १५२०, पुरानी जयपुरी हिन्दी, ११ संधियाँ,

*२१. जंबूस्वामि चौपाई—जिनभद्र सूरि, वि० सं० १५२२ आश्विन पूर्णिमाके दिन नंदेसमें लिखित, पुरानी जयपुरी हिन्दी (पद्यात्मक), पत्र ११, अरहन्नगादि प्राचीन जैन मुनियोंके नामोल्लेखोंकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण।

२२. जंबूस्वामिपञ्चभव-वर्णन चौपाई—देपाल भोजक, वि० सं० १५२२, लगभग १७९ गाथा प्रमाण।

*२३. प्रभव-जंबूस्वामि वेलि—वि० सं० १५४८ आसोज वदी आठम, पुरानी राजस्थानी हिंदी, पत्र ५, कुल २३ सुंदर गेय पद्य, प्रभव-जंबू वार्तालापसे प्रारंभ।

२४. जंबूस्वामिचरित्र—सकलचंद्र (वि० सं० १५२०) के शिष्य भुवनकीर्त्ति, वि०१६वी शती, प्राकृत। ये भुवनकीर्ति संभवतः दिग० परंपराके थे।

*२५. जंबू अंतरंग रास अथवा जंबूकुमार विवाहलो—सहजसुंदर, वि० १६वीं शती, राधनपुर नगरमें लिखित, पुरानी गुज० मिश्रित हिंदी, पत्र ४, ५ ढालें, ६४सुंदर गेय पद्य, अंतमें एक दोहा। यह लघुकृति सुंदर काव्यकी रीतिसे प्रतीकात्मक शैलीमें रची गयी है, और लौकिक वधुओंको त्यागकर इसमें जंबूस्वामीका सिद्धि (मोक्ष) रूपी वधूसे परिणय वर्णित है।

२६ जंबूस्वामी गीता—वि० सं० १५९३, गुज०, पत्र-५, (जैनग्रन्था० भाग० २)।

२७. जंबूस्वामी रास (पंचभव चरित्र)—विजयगच्छीय मल्लिदास, वि० सं० १६१९, गुज० मिश्रित हिंदी, ३० ढालें।

२८. जंबूकुमार रास—पीपलगच्छीय विमलप्रभ सूरिके शिष्य राजपाल, वि० सं० १६२२, गुज० मिश्रित हिंदी, २७ श्लोक प्रमाण, लगभग ९५५ कडियोंमें रचित।

२९. जंबूचरित—उपा० पद्मसुंदर नागौरी, वि० सं० १६२६-३९ के बीच, प्राकृत। इनके गुरु तपा-गच्छीय पद्ममेरु थे, और दादागुरु आनंदमेरु थे, जो अकबरके एक सभासद् थे। ये कवि चक्रवर्तीके नामसे भी प्रसिद्ध थे।

*३०. जंबूस्वामिचरित्रम्—पं० राजमल्ल, वि० सं १६३२ आगरेमें रचित, संस्कृत, १३ पर्व, वीरकृत अपभ्रंश जं० सा० च० के आधारसे, लगभग उसीका संस्कृत रूपांतर (प्रकाशित)।

३१. जंबूस्वामिचरित्र—पांडे जिनदास, वि० सं० १६४२, मूल संस्कृतका भाषा। (हिंदी) रूपांतर कर्त्ता पांडे जिनदास, छंदोबद्ध कर्त्ता लमेंचू नाथूराम; शुद्ध हिंदी गद्यानुवाद सूरतसे प्रकाशित।

३२. जंबूरास—खरतरगच्छीय गुणविनय, वि० सं० १६७०, बाहडमेर ग्राममें रचित, पुरानी राजस्थानी।

*३३. जंबूस्वामि चरित्र—भावशेखर शाह, वि०सं० १६८४, पाटन नगर नामक ग्राममें रचित, राजस्थानी-गुज० मिश्रित, ग्रन्थाग्र २१००, गाथाएँ ११००, पत्र १ से ६ नहीं, ७ से ३६ हैं। इसके रचयिता भावशेखर अंचलगच्छ, श्रीमालिवंश, चंद्रकुल और प्रसिद्ध पालीताणीया शाखाके थे। इनकी गुरु परंपरा इस प्रकार थी : भवनतुंगसूरि—वाचक कमलशेखर—प्रत्यशेखर—विवेकशेखर—गणिविजय-शेखर—भावशेखर शाह।

३४. जंबू चौपाई—तपागच्छीय कमलविजय, वि० सं० १६९२ सिवाणा ग्राममे रचित, राज० गुज० मिश्रित।

*३५. जंबूकुमार चौपाई अथवा जंबूस्वामी रास—खरतरगच्छीय ज्ञाननंदि वाचकके शिष्य-पाठक भुवनकीर्ति गणि द्वितीय, वि० सं० १७०५, श्रावण सुदी १, बुहनिपुर नगरमें रचित, राज० गुज० मिश्रित, पत्र ३६; ४ अधिकार; दोहा, ढाल सब मिलाकर १३५३ सुंदरगेय पद्योंमें रचित, परिशिष्ट पर्व (हेमचंद्र) के आधारसे।

३६. जंबूस्वामी रास—खरतरगच्छीय पद्मचंद्र, वि० सं० १७१४, सरिसा पाटनमें रचित, राज०-गुज० मिश्रित, लगभग १५११ गाथा प्रमाण, परि० पर्वके आधारसे।

३७. जंबू चौपाई—खरतरगच्छीय जिनसागर सूरिके शिष्य: कवि उदयरत्न, वि० सं० १७२०, राज०-गुज० मिश्रित।

*३८. जंबूपृच्छा रास अथवा कर्मविपाक रास—वीरजी मुनि, वि० सं० १७२८, पाटन नगरमें रचित, राज० गुज० मिश्रित, १३ ढालें। इसमें जंबूस्वामीके प्रश्न हैं, जिनका उत्तर सुधर्मा द्वारा दिया गया है। भीमजी माणेक-द्वारा प्रकाशित।

३९. जंबूरास—धर्ममंदिर, वि० सं० १७२९, मुलतान नगरमें रचित, राज०-गुज० मिश्रित, धर्ममंदिर व सुमतिरंग दोनोंकी ये रचनाएँ एक ही वर्षमें एक ही स्थानमें रहकर लिखी गयी। अतः तुलनात्मक दृष्टिसे ये अवश्य अध्ययनीय हैं। संपादकको ये रचनाएँ उपलब्ध नहीं हो सकी।

४०. जंबूस्वामी चौपाई—खरतरगच्छीय सुमतिरंग, वि० सं० १७२९, मुलताननगरमें रचित राज०-गुज० मिश्रित।

४१. जंबूकुमार रास—तपागच्छीय चंद्रविजय, वि० सं० १७३४, ग्राम कोरडादेमें रचित, राज०-गुज० मिश्रित, ८५२ गाथा प्रमाण।

*४२. जंबूस्वामी रास—तपागच्छीय कविराज धीरविमलके शिष्य नयविमल, वि० सं० १७३८, मार्गशीर्ष शुक्ल १३ सोमवार, ग्राम थिरपुर नगरमें रचित, राज० गुज० मिश्रित, ३५ ढालें (पत्र ३५) प्रकाशित।

*४३. श्रीजंबूस्वामी ब्रह्मगीता—उपा० यशोविजयजी, वि० सं० १७३८ (खंभातमें रचित), गुजराती, पत्र २, लघु कृति मदनपराजय (अपभ्रंश) की प्रतीकात्मक शैलीमें रचित, गु० सा० सं० भाग १ में प्रकाशित।

४४. जंबूस्वामी रास—उपा० यशोविजयजी, वि० सं० १७३९, खंभातमें रचित गुजराती, ५ अधिकार, ३७ ढालें, मदनपराजय (अपभ्रंश)की प्रतीकात्मक शैलीमें रचित, गु०सा०सं० भाग २ में प्रकाशित।

४५. जंबूस्वामी रास—तपागच्छीय उदयरत्न, वि० सं० १७४९, ग्राम खेडा हरियाणामें रचित, गुजराती, ६६ ढालें, लगभग २५०० गाथाएँ।

४६. जंबूस्वामी रास—खरतरगच्छीय यशोवर्धन, वि० सं० १७५१।

४७. जंबूस्वामी रास—खरतरगच्छीय जिनहर्ष, वि० सं० १७६०, ४ अधिकार, ८० ढालें, लगभग १६५७ गाथाप्रमाण।

४८. जंबूकुमार रास—कडवागच्छीय लाधाशाह, वि० सं० १७६४, ग्राम सोहीमें रचित, ३२ ढालें।

४९. जंबूस्वामी स्तवन—भाग्यविजय, वि० सं० १७६६, १४ श्लोकप्रमाण।

*५०. जंबूसामिचरित्तं—(पूर्व) मुनि जिनविजय, वि० सं० १७८५-१८०९ के बीच, प्राकृत, प्रकाशित।

५१. जंबूस्वामी चौढालिया—खरतरगच्छीय विनयानंदके शिष्य श्री दुर्गादास, वि० सं० १७९३।

*५२. जंबूकुमार रास—नयविजय विबुधके शिष्य, वाचक जसविजय, वि० सं० १७९९, खंभनगरमें रचित, राजस्थानी, पत्र ४४।

५३. जंबूचरित—श्री चेतनविजय, वि० सं० १८०५, अजीमगंजमें रचित, राजस्थानी।

५४. जंबूस्वामी चरित्र—विजयकीर्त्ति, वि० सं० १८२७, हिंदी पद्य, पत्र २०, जयपुर शास्त्र भंडारमें उपलब्ध।

५५. जंबू चौपाई—श्री चद्रभाण, वि० सं० १८३८, ग्राम बोडावडमें रचित, राजस्थानी, ३५ ढालें।

५६. जंबूकुमार चरित—श्वे० तेरापंथके संस्थापक आचार्य भीषणजी, लगभग वि० सं० १८५०, राज०, ४६ ढालें, गाथाओंके ऊपर २१५ दोहे, ७८८ गाथाएँ, परि० पर्वके आधारसे, भि० ग्र० रत्ना० द्वि० खड, प्रका० श्वे० तेरा० महा० कलकत्ता।

५७. जंबूस्वामि चरित्र—श्रीचेतनविजय, वि० सं० १८५२-५३, हिंदी, पत्र ३०।

५८ जबूकुमार चोढालिया—श्री सौभाग्यसागर, वि० सं० १८७३, पाटनमें रचित, भीमसी-माणेक-द्वारा प्रकाशित।

५९. जबूस्वामी श्लोक—श्री लब्धिविजय, वि० १९वी शती।

*६०. जंबूस्वामी कथा—विजयशकर-विद्याराम वि० स० १९१४, द्वि० ज्येष्ठमास कृष्णपक्ष सोमवार, श्रीनगरमें रचित, गुज० परक हिंदो, पत्र, २०; छदरहित गद्यात्मक पद्यशैली, जंबूस्वामीचरितकी २३ अंतर्कथाओंसे युक्त।

*६१. जबूस्वामी गुणरत्नमाला—ओसवाल श्रावक जेठमल चोरडिया, वि० स० १९२०, आषाढ कृष्ण-५, (जयपुर) पुरानी राजस्थानी, पत्र-३०, प्रकाशित।

*६२. जंबूस्वामी चौपाई—कर्ता अज्ञात, रचनाकाल अज्ञात, राजस्थानी, पत्र-४ पहले पाँच पृष्ठोंमें राजुल कथा; अतमें एक पृष्ठमें अतिसक्षेपमें जबूस्वामीके जन्मसे लेकर मोक्षगमन पर्यंतकी कथा।

*६३ जबूस्वामी चरित—रचयिता व रचनाकाल अज्ञात, संस्कृत गद्य, पत्र-३, सरल शैली, छोटे-छोटे वाक्य, सक्षिप्त कथा।

*६४. जबूस्वामी चौपाई—रचयिता व रचनाकाल अज्ञात, पुरानी राजस्थानी, पत्र-२, पृ० ३, अपूर्ण, भवदेवके जन्मसे कथा प्रारंभ, विविध जन्मोंकी रूपरेखा प्रस्तुत करके जंबूस्वामी जन्म, व प्रभवके साथ वार्तालापमें महेश्वरदत्तके आख्यान पर आकर कथा अपूर्ण समाप्त।

*६५. जबूकुमार रास—श्रीबालुचदगणीके शिष्य लोकागच्छके नायक मुनि भूधर, संवत् भारवनस्पति भापुवापु. मुनिवर वर्ष (?) आश्विन मास विजयादशमी, पुरानी राजस्थानी, पत्र-१४।

*६६. जंबूचरित अथवा जंबूस्वामी अज्झयण—(संभवतः) पद्मसुंदरगणि, रचनाकाल अज्ञात अर्द्ध-मागधी अपभ्रंश, ३६ पत्रोंसे लगाकर ६० पत्रों तकमें लिखित अनेक प्रतियाँ उपलब्ध। १९ उद्देसक, यह बहुत महत्त्वपूर्ण रचना है। इसके जबूअज्झयण, जंबूपयण्णा, जबूस्वामि कथानक, जंबूचरित्र एवं जंबूस्वामि अज्झयण ये अनेक नाम प्रचलित हैं। इसपर अनेक बालावबोधों व टिप्पणोंकी रचना हुई है। यह कृति भी इसी संपादकके संपादनाधीन है।

(क) जंबूचरित्र बालावबोध—वि० सं० १७९०, पुरानी गुजराती।
(ख) जबूचरित्र बालावबोध—श्री सुंदरगणि, वि० सं० १७९५ से पूर्व, पुरानी गुजराती।
(ग) जबूचरित्र बालावबोध—वि० स० १८०८, पुरानी गुजराती।
(घ) जबूचरित्र बालावबोध—वि० सं० १८१२, पुरानी गुजराती।
(ङ) जंबू अध्ययन चरित्र बालावबोध—वि० सं० १८१६ से पूर्व, पुरानी गुजराती।
(च) जबूस्वामीकथानक—वि० सं० १८२९, पुरानी गुजराती।

६७. जबूस्वामीकुलक—प्राकृत, प्रकीर्ण ग्रन्थसंग्रह। (जैन ग्रंथा० २)

६८. जबूचरित्र—अज्ञात, (जैन ग्रंथा० २)

६९. जबूचरित्र—(संभवत) संघभद्र, अपभ्रंश, केवल २० गाथाएँ, (जैन ग्रन्था० २)

७०. जंबूचरित्र—प्रद्युम्नसूरि; दादागुरु प्रद्युम्न, गुरु वीरभद्र, प्रारंभ : पढमभवे भवदेवो गहियवओ पढम-सुरपवरो। रायसुयसिवकुमारो कय वारसवास तव-सारो ॥१॥ अंत : वारस नवाणुए भद्दव सिय पडिव गुरि समुद्धरियं। घन्नासी भापाए भणियव्वं संघभद्दकए ॥२०॥

७१. जंबूचरित्र—गुजराती, पत्र ४४, ७२५ श्लोक प्रमाण, (जैन ग्रन्था० २)।

७२. जंबूस्वामीश्लोको—लब्धिविजय, पत्र ३, ४५ श्लोक प्रमाण (जैन ग्रन्था० २)।

७३. जंबूचरी—गुजराती, पत्र १४, (जैन ग्रंथा० २)।

७४. जंबूस्वामी कथा—नयविमल, गुजराती, पत्र ९, (जैन ग्रंथा० २)।

७५. जंबूस्वामिचतुष्पदी—गुजराती, २७५ श्लो० प्रमाण, (जैन ग्रंथा० २)।

७६. जंबूस्वामीस्वाध्याय—गुजराती, पत्र १, ११ श्लो० प्रमाण, (जैन ग्रंथा० २)।

७७. ,, ,,—गुजराती, पत्र १, १६ श्लो० प्रमाण, (जैन ग्रंथा० २)।

७८. जंबूकुमार स्वाध्याय—गुजराती, पत्र १, (जैन ग्रंथा० २)।

७९ जबूनाटक—(मुद्रित जैन ग्रंथावलि)।

८०. जंबूस्वामिचरित्र—रत्नशेखर, (मुद्रित जैन-ग्रंथावलि)।

८१. जंबूचरित्र—गुजराती, (मुद्रित जैन ग्रंथावलि)।

८२. ,, ,,—मूल संस्कृत (?) गुजराती भाषांतर, वि० सं० १९५०, (मुद्रित जैन ग्रंथावलि)।

८३. जंबूस्वामिचरित्र—गुजराती, (मुद्रित जैन ग्रंथावलि)।

८४. ,, ,,—(मुद्रित जैन ग्रंथावलि)।

८५. जंबूस्वामीचरित्र—१६४४ गाथा प्रमाण, (जैन ग्रंथा० २)।

८६. ,, ,, पद्मसुंदर, प्राकृत, ७५० गाथा प्रमाण, (जैन ग्रन्था० २)।

८७. ,, ,, संस्कृत, पत्र १४, (जैन ग्रंथा० २)।

८८. ,, ,, संस्कृत गद्य, ८९७ गाथा प्रमाण, (जैन ग्रन्था० २)।

८९. ,, ,, सकलहर्ष, पत्र ११, (जैन ग्रन्था० २)।

*९०. ,, ,, मानसिंह, संस्कृत पद्य, ग्रंथाग्र १३००, (जैन ग्रन्था० २)। (यह ग्रंथ भी इसी संपादकके संपादनाधीन है)।

९१. ,, ,, पत्र ५०, (जैन ग्रन्था० २)।

९२. जंबूस्वामीकथा—प्राकृत, (जैन ग्रन्था० २)।

९३. जंबूस्वामिचरित्र—नमिदत्त, (जि० र० कोश)।

९४. ,, ,, विद्याभूषण, (जि० र० कोश)।

९५. ,, ,, पं० दीपचंद्रवर्णी, सन् १९३९ (मथुरा), हिंदी, प्रकाशित।

नोंध :—उपर्युक्त सूची डा० र० ला० चो० ला० शाह द्वारा संपादित उपा० यशो० कृत जंबूस्वामीरासकी प्रस्ता०; जैन ग्रन्थावली भाग—२; मुद्रित जैनग्रन्थावली; जिनरत्नकोश; तथा भ० ओ० रि० इं० पूना, ओरि० रि० इं० बडौदा एवं ला० द० भारती शो० सं० अहमदाबादकी हस्तलिखित प्रतियोंकी सूचियों एवं अंतिम तीन संस्थाओंके निदेशकों व संग्रहालयाध्यक्षोंके सौजन्यसे प्राप्त जंबूस्वामी-चरितविषयक पोथियोंके आधारसे प्रस्तुत की गयी है। संपादकने इस सूचीमें तारा *चिह्नांकित ग्रन्थों व पोथियोंका स्वयं अध्ययन किया है।

९. जम्बूस्वामी-चरितकी अंतर्कथाएँ

मूल कथाओंसे सबंध, संस्कृत, अपभ्रंश जंबूस्वामी-चरितोंमें उपलब्ध कथाओंका तुलनात्मक विश्लेषण एवं अंतर्कथाओंका महाकाव्यकी दृष्टिसे औचित्य तथा मूल्यांकन एवं कथानक रूढ़ियोंका विश्लेषण :

'जंबूसामिचरिउ'में लघु अंतर्कथाओंकी शृंखला उस स्थानसे प्रारंभ होती है, जब जंबूस्वामी विवाहके उपरात चारों वधुओंके साथ मातृगृहके भीतर एकांतमें आकर उन वधुओंके बीच निर्विकार भावसे बैठ जाते है। वधुएँ प्रथमत अपनी शारीरिक चेष्टाओं, सुंदर अंग-प्रत्यंगोंके प्रदर्शन तथा नाना प्रकारके हाव-भाव विलास, तीखे कटाक्ष एवं मधुरता पूर्वक वात्स्यायनके कामसूत्रके पाठ आदिके द्वारा जंबूस्वामीको अपने रूप-यौवनके पाशमें फँसाना चाहती है, पर जंबूस्वामीके विवेकपूर्ण हृदयपर इन सबका किंचिन्मात्र कोई भी प्रभाव नही होता और वह हिमाचलके समान अडिग, अडोल बना रहता है। यह अवस्था देखकर वधुएँ निराश होने लगती है और अब अपने कथा कौशलसे उसे वशमें करनेका प्रयत्न आरंभ कर देती है। इन्ही कथा-प्रतिकथाओंके रूपमें इन लघु आख्यानोंकी सृष्टि होती है।

यहाँ एक विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि 'वसुदेव-हिंडी' तथा गुणभद्रकृत 'उत्तरपुराण'में भवदेवके जन्ममें उसे बोध देनेके हेतु उसकी वधू नागिलासे अपने ही वमनको खानेवाले ब्राह्मण पुत्रकी अथवा जैन गणिनी (साध्वी) के मुखसे एक दासीके द्वारा अपने पुत्रको उसीका वमन खिलानेका प्रयत्न करनेकी जो कथा कहलायी गयी है, वह वीर कविकी इस रचनामें नही है, यद्यपि उसका यहाँ होना अनुचित नही होता। दूसरी मुख्य बात यह है कि उपर्युक्त दोनो ग्रंथोंमें कथाके मध्यमें राजर्षि प्रसन्नचद्र अथवा धर्मरुचिका जो कथानक है, उसकी जबूस्वामी चरितकी कथावस्तुसे कोई भी संगति न होनेसे, उसे यहाँ सर्वथा छोड़ दिया गया है।

अणाढिय अथवा अनादृत नामक देवका आख्यान और 'जंबूसामिचरिउ'मे केरलके राजा मृगाककी, राजा श्रेणिकसे परिणेय कन्या विलासवतीके निमित्त हुए युद्धका वृत्तात, ये सब प्रस्तावना—३ में 'मूलग्रथकी संक्षिप्त कथावस्तुके' अंतर्गत आ गये हैं। अत यहाँ 'जबूसामिचरिउ'में वर्णित समस्त लघु आख्यानोंको सक्षेपमें लेकर, उनमें-से जो अन्य प्राकृत-संस्कृत चरितोंमें उपलब्ध है, उन्हीका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। इस प्रसंगमें एक आवश्यक कथ्य यह है कि इस अध्ययनमें वीर कविके पूर्ववर्ती वसुदेवहिण्डी, उत्तर पुराण (गुणभद्र) एवं जंबूचरियं (गुणपाल), तथा पश्चाद्वर्ती चरितकारोंमें सस्कृतमें हेमचंद्र, ब्रह्म जिनदास एवं पं० राजमल्ल, इस प्रकार प्राकृत-संस्कृत जंबूस्वामी विषयक छह प्रतिनिधि ग्रंथोंको आधार बनाया गया है।

[१] पहली कथा जंबूस्वामीकी सद्यः परिणीता पंकजश्री उन्हींकी ओर संकेत कर अपनी सपत्नियोंको संबोधित करते हुए कहती है, 'सखियो! हमारा यह भर्तार धनहड (धनदत्त) नामक मूर्ख किसानका अनुसरण कर रहा है। धनदत्त नामका एक मूर्ख किसान था। उसकी पहली सुशील—सद्गृहिणी पत्नी एक पुत्रको जन्म देकर स्वर्ग चली गयी। पुत्र बडा होकर घरका सब कार-भार भली भाँति देखने लगा। वृद्धत्वमें दैवसे प्रेरित होकर उसने एक चंचलचित्त और अति कामुक तरुणीसे विवाह किया तथा उसका वशवर्ती होकर रहने लगा। एक दिन अर्द्ध रात्रिको वह अकस्मात् उससे क्रुद्ध होकर शयनपर मुँह फेर कर पड रही। बहुत अनुनय-विनय करनेपर कारण बतलाया—घरमें तुम्हारा युवा पुत्र विद्यमान है, मेरे उदरसे जो पुत्र होंगे, वे सब इसके दास बनकर ही जी सकेंगे। अत. इसे मार डालो। मेरे उदरसे जो पुत्र होंगे, बुढापेमें उनसे सुख उठायेंगे। पिता-पुत्र सबध, लोक-लाज, राज-भय और पुत्रकी बलिष्ठताका भी डर, कही उलटे मुझे ही न मार डाले, आदि बतलानेपर भी वह नही मानी और पुत्रको सरलतासे मार डालनेका उपाय भी सुझा दिया, 'प्रात काल खेतमें जब पुत्र हल चला रहा होगा, तो तुम भी पीछे-पीछे उद्धत बैल और तीखे फल वाला हल लेकर जाना। उसके पीछे हल चलाते हुए उसे दुष्ट बैलसे सीग भरवा देना, फिर हलके तीक्ष्ण फालसे उसको विदीर्ण करके मार डालना! इसमें न राजभय है, न लोक लाजकी चिंता, न पुत्रके बलवान् होनेका डर।' 'साँप भी मरे और लाठी न टूटे' ऐसा उपाय बतलाया। पासके घरमें सोते हुए पुत्रने यह सब

पापयोजना सुन ली और सवेरे ही आगे जाकर हरे भरे खेतमें हल चलाकर उसका विनाश करने लगा। पीछेसे किसान आया, तथा यह देखते ही अपना मन्त्र षडयंत्र भूल गया और बोला, अरे! क्या पागल हो गया है, जो हरे-भरे खेतको उजाड रहा है? पुत्रने कहा, इसे उखाडकर इसमें नया धान रोपूँगा। पिताने निंदा की, रे मूर्ख! चला जा! प्राप्यको छोडकर अप्राप्यकी इच्छा करता है। पुत्रने उत्तर दिया आप भी तो रात्रिमें की हुई सलाहके अनुसार मुझ जैसे पुत्रको मारकर नयी महिलासे अन्य पुत्रोंकी इच्छा करते हैं। इसपर पिता पुत्रका आलिंगन करके रोने लगा। इसी प्रकार हम लोगोंका यह भर्तार (जंबूस्वामी) हम लोगोंको त्याग कर भविष्यमें सुरनारियोंके साथ किन्हीं अपूर्व सुख भोगोंकी उपलब्धिकी आशा करता है।'

यह आख्यान वसुदेव-हिंडी एवं उत्तर पुराण दोनोंमें नहीं है। गुणपाल कृत प्राकृत 'जंबूचरियं'में यह थोडेसे परिवर्तनके साथ वर्णित है, तथा ब्रह्म जिनदास (वि० सं० १५२०) और पं० राजमल्ल (वि० सं० १६३२) कृत जंबूस्वामी चरित्रोंमें यह तथा इसमें उपलब्ध अन्य आख्यान भी लगभग जैसे-के-वैसे संस्कृत रूपांतरमें वर्णित हैं। राजमल्लकी रचनामें जिन कथानकोंमें कुछ अंतर हैं, उन्हें यथास्थान निर्दिष्ट कर दिया गया है। गुणपालके अनुसार पत्नीकी मृत्युके उपरांत पिताका कष्ट देखकर पुत्रने ही पितासे दूसरा विवाह कर लेनेका आग्रह किया। परंतु विवाह योग्य जवान पुत्र घरमें रहनेसे कोई अपनी कन्या उसे देनेको तैयार नहीं हुआ। इसपर किसानने विवाहमें बाधक युवा पुत्रको मार डालनेका निश्चय किया और एक तीक्ष्ण धारवाला फरसा छुपा कर हल चलाने गया, तथा पुत्रको मारनेके अपध्यानमें खड़े खेतमें हल चलाकर उसे ही उजाडने लगा। पीछेसे पुत्रने आकर कहा, यह क्या खडे खेतको उजाड़कर नया धान रोपोगे? किसानको लगा, पुत्रने मेरा आशय जान लिया और सब बात सच कहकर रोने लगा।

इन दो कथानकोंका अंतर गुणपाल-द्वारा वर्णित किसान पिताका चरित्र बहुत नीचे गिरा देता है, कि वह स्वयं पुत्रको मारनेका निश्चय करता है, जबकि 'जंबूसामिचरिउ'का किसान दूसरी तरुण पत्नीके बार-बार अति आग्रह करनेपर एवं अपनी कोई युक्ति न चलनेपर विवश होकर पुत्र घातके लिए प्रस्तुत होता है।

[२] उपर्युक्त आख्यानको सुनकर जंबूस्वामीने प्रत्युत्तर स्वरूप यह कथा सुनायी—'विंध्यपर्वतपर एक बडा हाथी वर्षाके पूरसे नर्मदा नदीमें बह कर मर गया। उसके मासका लोलुपी एक कौवा भी उसके साथ-साथ बहता हुआ समुद्रमें जा पहुँचा और जब वहाँ पहुँचकर चारों ओर देखा तो आश्रयके लिए कोई गाँव, ठाँव, रूख आदि कुछ भी नहीं दिखाई दिया। हाथीको मच्छोंने निगल लिया और कौआ निराश्रय होकर आकाशमें उड़ा तथा अंतमें कांव कांव करता हुआ समुद्रमें डूब कर मर गया। इसी प्रकार विषयासक्त हो तुम लोगोंका सुख भोगता हुआ मैं संसार महासमुद्रमें फँसकर विनाशको प्राप्त नहीं होऊँगा।'

वसुदेव-हिंडीमें यह कथा चतुर्थ नीलयशा लंभकके अंतर्गत, ललितांगक देवके-द्वारा उसके पूर्व भवकी कथामें उसके मित्र स्वयंबुद्धके मुखसे कहलायी गयी है और कुछ परिवर्तित रूपमें है—'ग्रीष्म ऋतुमें एक बडा हाथी पहाडी-परसे नदीमें उतरता हुआ एक विषम किनारेपर आकर गिर पडा। भारी शरीर व अशक्तताके कारण वह वहाँसे उठ नहीं सका, और वहीं मर गया। अनेक पशु-पक्षी आकर गुदा-द्वारसे उसका मास खाने लगे। इस प्रकार द्वार बड़ा हो जानेपर अनेक कौए उसके पेटमें घुसकर मांस खाते हुए वहीं रहने लगे। आतपके प्रभावसे कदाचित् गुदा द्वार छोटा हो गया, कौवे और प्रसन्न हुए कि अब और भी निर्विघ्न रूपसे यहीं रहेंगे। वर्षाकालमें पूरमें पडकर हाथी नदीमें बह गया। समुद्रमें जानेपर हाथीको मच्छोंने निगल लिया, कौवे उसके पेटमें-से निकलकर उड़े और कहीं आश्रय न पा समुद्रमें गिर कर मर गये।'

उत्तरपुराणमें यह कथा नहीं है, गुणपाल तथा हेमचंद्र कृत चरितोंमें वसुदेव-हिंडीके कथानकके अनुसार संक्षिप्त रूपमें है—विन्ध्य पर्वतपर एक बडा हाथी किसी प्रकार मर गया। इसके आगे उपर्युक्त कथानुसार और समाप्ति इस प्रकार कि गुदा-द्वार बंद होनेपर (एक) कौवा हाथीके पेटके भीतर ही मर गया[1]। ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्लकी कृतियोंमें वीरके अनुसार ही कथा आयी है।

---

१. तुलना : कथा सरित्सागर, १२वीं तरंग, पृ० ७७ टौनी कृत अनुवाद।

[३] अब कनकश्री बोली—'कैलास पर्वतपर एक बंदर रहता था। एक दिन वह उसके शिखरसे गिरकर चूर-चूर होकर मरा, और तुरंत मणिस्वर्ण-जटित मुकुटको धारण करनेवाला विद्याधर हो गया। किसी दूसरे विद्याधरने इसे देखा और प्रियासे बोला कि जहाँ वानर मरकर विद्याधर हो जाता है, तब यदि विद्याधर मरे तो अवश्य उत्तम देव होगा! ऐसा कहकर रोती हुई प्रियाके द्वारा बार-बार रोके जानेपर भी पर्वत शिखरसे कूद पड़ा और मरकर लाल मुँह वाला बंदर बनकर रह गया।'

वसु० हिंदी तथा उ० पु० में यह आख्यान भी नही है। गुणपाल तथा हेमचंद्रमें कुछ परिवर्तनके साथ परिवर्द्धित रूपमें है। उसका संक्षिप्त सार इस प्रकार है—'भागीरथीके तटपर बंदरोंका एक जोड़ा रहता था। एक दिन वानर तटवर्ती वृक्षपर चढ़ा और प्रमादसे भागीरथीमें गिर गया तथा सुंदर मनुष्य बनकर निकला। वानरी भी उसी वृक्षसे भागीरथीमें कूद पड़ी और सुदर स्त्री बन गयी। तब मनुष्यने कहा आओ फिर कूद पड़ें, अबकी बार मनुष्यसे देव हो जायेंगे। स्त्रीने मना किया, नही माना और फिर कूद पड़ा तथा पुनः बंदर हो गया। स्त्री नही कूदी, और दैववशात् निकटवर्ती नगरके राजाकी अग्रमहिषी बनी। बदरको एक मदारीने पकड़कर नाचना सिखाया और एक दिन उसे राजमहलमें ले गया। वहाँ नाचनेके बाद हाथ फैलाकर माँगते समय बदरने रानीको देखा और पहचानकर अपनी दुर्गतिपर रोने लगा। रानीने भी उसे पहचान लिया और सबोधित किया, 'तब समझानेपर नही माना अब क्यो रोते हो?'

गुणपाल व हेमचंद्रके अनुसार 'रानीको पहचानकर बदरने अपनी करनीपर पश्चात्ताप किया' यहींपर कथा समाप्त हो जाती है।[1] इस परिवर्द्धनसे कथाके इस आशयमें कोई अतर नही आता कि उपलब्ध सुखको छोड़ कर जो कोई भविष्यमें अधिक सुखकी आशा करता है, वह दोनोंसे वंचित होता है।

ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्ल कृत चरितमें यही कथानक वीरकी अपेक्षा कुछ अतरसे वर्णित है पर्वतसे गिरकर विद्याधर बननेके उपरात उस पूर्व वानरको एक मुनिके दर्शन हुए। उनसे विद्याधरने अपना पूर्वभव पूछा। मुनिने कैलास पर्वतसे गिरनेका वृत्तात उसे कह सुनाया। उसे सुनकर विद्याधरसे देव बननेकी इच्छासे वह पुन पर्वतसे कूद पड़ा, और मरकर वापिस लाल मुँहवाला बदर हो गया। कवि वीर-द्वारा वर्णित इस कथानकमें कुछ अस्पष्टता और सदिग्धता है, जब कि ब्रह्म जिनदास व राजमल्ल-द्वारा वर्णित कथा बिलकुल स्पष्ट है। इसमें किसी अन्य विद्याधर युगलका प्रवेश नही है। एक ही वानरके साथ सारी घटनाएँ हुई है। कथाके आशयकी दृष्टिसे भी यह कथानक किसी प्राचीनतर कथाका शुद्ध रूप है; क्योकि वानरसे विद्याधर बनकर उपलब्ध सुखोंसे सतोष नही हुआ, और विद्याधरसे मरकर देव बननेकी लालसासे उसने ऐसा किया, तथा पुनः बंदरका बंदर होकर रह गया।

हरिभद्रकृत समराइच्च कहाके दूसरे भवमें इस कथाका प्राचीनतर रूप उपलब्ध होता है। वहाँ मुनि धर्मघोष, रुद्रदास एव सोना नामक पति-पत्नीके रूपमें अपने दो पूर्वभवोंकी आत्मकथा सुनाते हुए कहते है—सोनाके अतिशय धार्मिक आचरणके कारण, कामभोगके सुखसे वचित होनेसे रुद्रदास बहुत क्रुद्ध हुआ और उसे घड़ेमें-से फूलकी माला निकालनेके बहाने सर्पसे कटवाकर मार डाला। रुद्रसेनने मरकर तोतेका जन्म लिया और सोनाने पर्वतपर हाथीका, जो अनेक हथिनियोके साथ क्रीडापूर्वक सुखसे रहता था। तोतेने हाथीको सुखी देखा तो पूर्वजन्मका वैर स्मरण हो आया और उसने किसी प्रकार हाथीको इस सुखसे वचित करनेका निश्चय किया। दैवयोगसे लीलारति नामक विद्याधर, मृगाक नामक विद्याधरकी बहन चद्रलेखा, जिसपर वह अनुरक्त था, उसे चुराकर वहाँ लेकर आया और तोतेको देखकर बोला—'मै इस पर्वतकी गहन कंदरामें अपनी प्रियाके साथ छिप जाता हूँ। मृगांक विद्याधर मेरा पीछा कर रहा है। जब वह यहाँ आये तो तुम कुछ मत बोलना, जब चला जाये तो मुझे सकेत कर देना। मै तुम्हारे लिए इसका कुछ प्रत्युपकार करूँगा।' तोतेने

---

१. कथाकोषमें एक स्नानवती तीर्थका उल्लेख है जिसमें पशुओंको मनुष्य बनानेकी शक्ति कही गयी है। दो बदर जो जादूसे बना दिये गये थे; इस विषयमें बातचीत करते सुनाई पड़ते हैं।

अवसरका लाभ अपने कुनिश्चयको पूरा करनेके लिए उठाया। वह हाथी अपनी प्रियाओं सहित सुन ले, 'इस प्रकार जोरसे अपनी मैनामे बोला 'इस विकट प्रपातमे गिरनेसे सब इच्छाएँ पूर्ण होती है। जो व्यक्ति जो इच्छा करके इसमे गिरता है; उसकी वे इच्छाएँ पूर्ण होती हैं। ऐसा मैने महर्षि वशिष्ठसे सुना है। तो हम लोग विद्याधर बननेकी इच्छा करके इसमे कूद पड़ें।' ऐसा कहकर जब लीलारतिका शत्रु विद्याधर मृगाक वहाँसे चला गया तो वह अपनी प्रियाके साथ लीलारति विद्याधरको संकेत देनेके लिए प्रपातमें नीचेकी ओर गिरा। उसी समय विद्याधर अपनी प्रेमिकाके साथ वहाँसे उडा। हाथीने यह सब देखा और तोतेका कहना सच मानकर, विद्याधर बननेकी इच्छा करके अपनेको उस प्रपातमें गिराकर चूर-चूर कर लिया। इसी बीच तोता वहाँसे उड गया।

[४] इसके उत्तरमे जंबूस्वामी बोले—'विंध्यपर्वतमें एक अतिशय कामातुर यूथपति वानर रहता था। जो दूसरे नर-वानरोको वहाँ ठहरने नही देता था। वानरीसे जो भी संतान उत्पन्न होती, पुत्रीको छोडकर, पुत्रको मार डालता था। कदाचित् एक वानरी सगर्भा हुई, और उस प्रदेशको छोडकर, दूसरे वनमें जाकर संतान उत्पन्न की। बड़े होनेपर पुत्रने पिताके संबंधमें जिज्ञासा की और वानरीसे सब वृत्तात जानकर बहुत क्रुद्ध हुआ तथा बदला लेने चला। विंध्यमें जाकर वानर पितासे युद्ध करके उसे घायल व परास्त कर दिया और पीछा करते हुए उसे निकाल भगाया। वृद्ध वानर भयसे त्रस्त भागता हुआ तृषासे व्याकुल हो उठा। एक स्थानपर सामने पानी जैसा पदार्थ (लेप—'शिलाजीत' ?) बहते देखा, और उसे पीनेको जैसे-ही हाथ बढाये वे उसीमें चिपक गये। इसी तरह पैर भी और मुँह भी, तथा उसीमें चिपक कर मर गया। अत उस वानरके समान विषय सुखोका प्यासा होकर मैं भी विनाशको प्राप्त नही होऊँगा!'

यह आख्यान भी वसु० हिंडी तथा उ० पु० मे नही मिलता। गुणपाल तथा हेमचंद्रके चरितोमें कुछ परिवर्तित रूपमे है, परंतु मूल कहानी यही है और इसका सारांश भी उपर्युक्त ही है।

ब्रह्मजिनदास एवं राजमल्ल कृत चरित्रमें यह आख्यान कुछ भिन्न रूपमें इस प्रकार है—विंध्यपर्वतमें एक अतिशय कामातुर वानर वानरियोके साथ रमण करता हुआ रहता था। दूसरे किसी वानरको वहाँ टिकने नही देता था। एक बार एक वानरीसे एक बलवान् बंदर उत्पन्न हुआ और तरुण होकर उसीके साथ काम-क्रीडाके लिए उद्यत हुआ। यह देखकर वृद्ध वानर अत्यंत क्रुद्ध हुआ और दोनोमें युद्ध होने लगा। तरुण वानरने वृद्धको अत्यधिक घायल कर दिया और उसे वनसे बाहर भगा दिया। वृद्ध वानर वही मर गया। तरुण वानरको लौटते समय प्यास लगी, युद्धके घाव और थकान थी ही। उसने एक स्थानपर पानी देखा। वहाँ घनी कीचड थी, इसका उसे ज्ञान नही हुआ। पानी पीने जाकर उस सघन कीचडमे फँस गया। अशक्त होनेके कारण उसमे-से निकल नही सका और वही मर गया। वीर कृत इस कथामें कुछ अस्पष्टता है और कौन सा वानर मरा यह ठीक ज्ञात नही होता। यहाँ वह बिलकुल स्पष्ट है। आशय दोनोका एक ही है—अतिशय कामवासनाओके कारण मृत्यु।

[५] इसके उपरात विनयश्रीने कहा—हमारा यह दूल्हा मूर्ख संखिणीके समान है। 'किसी नगरमें संखिणी नामका एक कबाड़ी रहता था। वह वनसे ईंधन ला, उसे बेचकर कष्टसे अपना पेट भरता था। कुछ दिनोमें धीरे-धीरे भोजनसे बचकर उसके पास एक रुपया रोकड़ जमा हो गयी। बडे उत्साहसे पत्नीके साथ मिलकर घडेमें रख कर, उसे एकात स्थानमें गाड दिया। कुछ दिन-बाद सूर्यग्रहणके अवसर-पर कुछ यात्री बहुत-से मणि-रत्न लेकर तीर्थस्थानको चले और उन मणि-रत्नोको सुरक्षित रखनेके लिए जब गढा खोदा तो भाग्यसे संखिणीके रखे हुए उस एक रुपये सहित वह घडा उनके हाथ लग गया। उन्होने उसीमे अपने मणि-रत्न रखकर घडेको पुन भूमिस्थ कर दिया, तथा तीर्थस्नान कर अपने घरोको लौट गये। एक पर्वका दिन आनेपर रुपयेको निकालनेके लिए जब संखिणीने वहाँ खोदा तो उसे मणि-रत्नोसे भरा देखकर वह उछल पडा और पत्नीसे कहा—हम बहुत भाग्यशाली और पुण्यवत हैं। देखो, एक रुपया रखकर गाडनेसे ही घडा मणि-रत्नोसे भर गया। अब उसका लोभ अत्यधिक बढ गया और यह सोचकर कि एक-एक सिक्का अलग-अलग घडोमे रखकर गाड देनेसे सभी घडे इसी प्रकार रत्नोसे भर जायेंगे, उसने

वैसा ही किया, तथा कवाड़ीपनसे ही अपनी जीविका चलती रहेगी, ऐसा निर्णय कर उसमें-से एक भी सिक्का नहीं निकाला और घर चला गया, एवं उसी प्रकार लकड़ियाँ वेचकर कष्टपूर्वक जीवन यापन करता रहा। किसी दूसरे पर्वपर यात्री अपना धन खोजने आये तथा खोज-खोजकर सब घड़ोंमें-से अपने सब मणिरत्नोंके साथ कवाड़ीका एक रुपया भी निकालकर ले गये। दुबारा जब कवाड़ी उस गडी हुई संपत्तिको देखने गया तो सब घड़ोंको रीता देखकर अपना सिर पीट लिया कि हाय उन मणि-रत्नोंके साथ मेरा एक मात्र रुपया भी चला गया।'[1] इसी प्रकार हमलोगोंका यह स्वामी स्वाधीन लक्ष्मीको तो भोगता नहीं और श्रेष्ठ स्वर्ग सुखको चाहता है। इसके हाथ कुछ भी नहीं लगेगा। ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्लकी कृतियोंमें यह आख्यान शंख नामक कवाड़ीके नामसे वर्णित है। अन्य चरितोंमें यह उपलब्ध नहीं होता।

[६] इसके प्रत्युत्तरमें जंबूस्वामी बोले—'हे सुंदरी! रति सुखके लिए मैं भ्रमरके समान विनाशको प्राप्त नहीं होऊँगा। कमलगंधका लोभी मुग्ध भौंरा सूर्यास्तको भी नहीं जान पाता और रात्रिके आनेपर उसी कमलमें बंद होकर मर जाता है। इसी प्रकार विषय-सुखोंका त्याग न करके मैं अपना सर्वनाश नहीं करूँगा।' भ्रमरका यह संक्षिप्त दृष्टांत भी अन्य चरितोंमें उपलब्ध नहीं होता।

[७] यह दृष्टांत सुनकर रूपश्रीने कहा, तुम्हारे जैसे ही आत्मगर्वसे एक सर्प स्वयंकी ही करनीसे नेवलोंके द्वारा निगल लिया गया। 'किसी समय वर्षाकालमें सात दिनों तक लगातार घनघोर वृष्टि हुई। जल-थल सब एक हो गये। सूर्य भी दिखाई नहीं दिया। बहुत घर पानीसे गल गये, बह गये। मनुष्य और पशु सभी भूखसे तड़पने लगे। ऐसे समय एक अति प्राज्ञ करकेंटा पानीमें बहता हुआ किसी तरह किनारे आकर लगा और आहारकी खोजमें निकला तो भयानक काले व जीभ लपलपाते हुए सर्पके सामने जा पहुँचा। तत्क्षण उससे बचनेका उपाय सोचकर सर्पका जय-जयकार करके बोला, 'हे स्वामिश्रेष्ठ, मुझे मारकर इस क्षुद्र जंतुयोनिसे मेरा उद्धार कीजिए।' इतना कहकर दीन मुख बनाकर अश्रु बहाता हुआ रोने लगा। इस आश्चर्यजनक व्यवहारका कारण पूछनेपर उसने सर्पको बतलाया कि आप हमारे कुलप्रभु हैं। अतः आपसे खाया जाकर मैं सीधे मोक्ष प्राप्त करूँगा, यह तो मेरे द्वारा आपके जय-जयकार किये जानेका कारण है। परंतु मेरे कुटुंबमें संतानें बहुत है। एक मेरे न रहनेसे वे अनाथ हो जावेंगे। यह मेरे रोनेका कारण है। इसलिए हे देव! अच्छा हो कि आप चलें और मेरे सारे कुटुंबको खा डालें। 'बताओ तुम्हारा कुटुंब कहाँ है ?'—सर्पके ऐसा पूछनेपर करकेंटा एक पहलेसे देखे हुए नेवलोंके बिलकी ओर आगे-आगे चला और सर्प पीछे-पीछे। बिलके सामने पहुँचकर करकेंटा बोला, स्वामी जाइए। भीतर प्रवेश करके मेरे कुटुंबका भक्षण कर लीजिए। सर्प बिलमें घुसा और वहाँ नेवलोंके समूहने उसे फाड़कर खा डाला। अधिककी इच्छा रखनेवाला सर्प दूधको तो देखता है, परंतु घातमें लगे व्यक्तिके प्रहारको नहीं देख पाता। इसी प्रकार अधिक (अनुपलब्ध) सुखोंकी इच्छा करनेवाले हमारे इस प्रियतमके उपलब्ध सुख साधन भी शिव और माधव धूर्तों-द्वारा प्रलोभित राजपुरोहितके समान लुट जायेंगे।[2]

ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्ल कृत चरित्रमें यह आख्यान अति संक्षेपमें वर्णित है। अपने आहारकी खोजमें निकला हुआ एक करकेंटा एक काले साँपके सामने जा पड़ा और उसे देखते ही अपने पहले देखे एक नकुल-विवरका स्मरण करके दौड़कर सैंकड़ों छिद्रोंवाले उस विवरमें घुस गया। सर्प भी उसके पीछे-पीछे भागा और नकुलोंके महाबिलमें घुसते ही फाड़कर खा लिया गया।

---

१. यही आख्यान लोक कथा रूपमें इस प्रकार प्रचलित है—एक कवाड़ी बहुत कष्टसे रहकर प्रतिदिन कुछ बचाकर जंगलमें घड़ेमें गाड़कर रखने लगा। एक दिन उस घड़ेको खोदकर उसमें कुछ रखते हुए कवाड़ीको एक धूर्तने देख लिया और उसके जानेपर घड़ेमें-से उसकी सारा जमा-पूंजी आरामसे निकालकर ले गया। ब्रह्म जिनदासकी कृतिमें भी इस आख्यानका अंत भाग इसी प्रकार है।

२. शिव और माधव धूर्तों-द्वारा राजपुरोहितको प्रलोभित करके लूटनेका आख्यान संपादकको अभीतक कहीं नहीं मिल सका।

[८] जंबूस्वामीने कहा कि विष यदि स्वाधीन भी हो, तो भी क्या तुरत ही उसका त्याग नहीं कर दिया जाता ? और यह कथा सुनायी—किसी रात्रिमें एक शृगाल एक नगरमें आहारार्थ प्रविष्ट हुआ। उसने मार्गमें पड़ा एक मृत बैल देखा और उसका मांस खाने लगा। इसमें वह इतना आसक्त हो गया कि खाते-खाते उसका मुँह छिल गया और सारी रात कब बीत गयी, इसका भी उसे कोई भान नहीं हुआ। प्रातःकाल होनेपर लोगोंके आवागमनके शोरसे उसे बोध हुआ। तब उसने सोचा कि अपनेको मृत दिखला देता हूँ, रात्रि आनेपर जंगलमें चला जाऊँगा। इतनेमें वहाँ लोग एकत्र हो गये और उनमें-से एकने औषधार्थ शृगालके कान व पूँछ काट लिये। फिर भी वह शांत पड़ा रहा, यह सोचकर कि पूँछ व कानके बिना भी जी लूँगा, यदि पुण्यसे आज बच जाऊँ तो। इतनेमें एक कामुकने उसके दाँतसे प्रियाका मन वशमें करनेके लिए पत्थर लेकर एक दाँत तोड़ डाला। अब शृगाल जान बचाकर भागा। परन्तु सिंहके समान बलवान् एक कुत्तेने दौड़कर उसका गला पकड़ लिया और शोर करते हुए अनेक कुत्तोंने मिलकर उस शृगालको खा लिया। इसी प्रकार जो व्यक्ति विषय-भोगोंमें अंधा बना रहता है। वह निश्चयसे विनाशको प्राप्त होता है। ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्लकी कृतियोंमें यह कथानक संक्षेपमें वर्णित है, अन्य चरितोंमें सर्वथा नहीं।

[९] इस प्रकार कथा-प्रतिकथा होते होते आधी रात्रि व्यतीत हो जाती है। इसी बीच विपुल धन चुरानेकी इच्छासे विद्युच्चर (वसु० हिंडीके अनुसार प्रभव अपने ५०० साथियों सहित; उ० पु० के अनुसार विद्युत्प्रभ) नामक चोर वहाँ पहुँचता है। पहले दोनोंमें कुछ दार्शनिक वाद-विवाद होता है। विद्युच्चर नाना प्रकारसे जंबूस्वामीको सांसारिक भोग भोगनेको प्रेरित करता है। जंबूस्वामी अपने पिछले चार जन्मोंका वृत्तांत सुनाते हैं। यह सुनकर विद्युच्चर कहता है कि यदि पूर्व जन्मोंके शुभकर्मोंकी परिणतिसे तुम्हें किसी प्रकार स्वर्ग सुख मिल गया, तो बार बार ऐसा होना कैसे संभव है ? इस संबंधमें एक कथा कहता हूँ, उसे सुनो—'किसी घुमक्कड़ने अपने कार्यसे भ्रष्ट तथा खस (खुजली) व्याधिसे पीड़ित एक ऊँटको अटवीमें छोड़ दिया। स्वच्छंद विचरण करनेसे ऊँट स्वस्थ और बलशाली हो गया तथा बहुत दिनोंपर कहीं उसे मधु खानेको मिला। उस मधुका सदैव स्मरण करते रहकर वह करीलकी शाखाओंको कभी चरता था और कभी नहीं भी चरता था। यही बात भोगे हुए स्वर्ग सुखोंको स्मरण करनेकी है। भला स्वर्ग और मोक्ष किस मूढ़को प्राप्त होते हैं ?

ऊँटका यह कथानक उ० पु० में कुछ भिन्न रूपमें है। एक स्वच्छंद विचरण करनेवाला ऊँट चरता हुआ कहीं पर्वतके निकट पहुँचा। वहाँकी घास किसी ऊँचे स्थानसे टपकते हुए रससे मीठी हो रही थी। ऊँटने उसे एक बार खाया, तो बस सदैव वैसी ही मीठी घास खानेके संकल्पसे मधु टपकनेकी प्रतीक्षामें अन्यत्र घास चरना छोड़कर वहीं बैठा रहा और अंतमें भूखसे तड़पकर मर गया। वसु० हिंडी और गुणपाल तथा हेमचंद्रके चरितोंमें यह कथा नहीं है।

ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्ल कृत जंबूस्वामीचरित्रमें इस कथानकमें उ० पु० की अपेक्षा कुछ अंतर है—वनमें स्वच्छंद घूमते हुए एक ऊँटने एक कुएँके तटपर खड़े हुए वृक्षके पत्ते खाते समय ऊपरसे टपकता हुआ एक मधुबिंदु चख लिया। और अधिक मधु प्राप्त करनेकी इच्छासे उसने ऊँची गरदन करके शाखासे टपकते मधुको चाटनेकी चेष्टा की, और सहसा शरीरका संतुलन खो बैठनेसे कुएँमें गिरकर मर गया।

[१०] इसे सुनकर जंबूस्वामी यह कथा कहने लगे—'एक वणिकपुत्र धन कमानेकी अति तृष्णासे अकेला ही व्यापारको चला और एक अरण्यमें शीतल जलवाला एक सरोवर देखा। वहाँ उसे चोरोंने लूट लिया, और वह भयसे काँपता हुआ, जलका स्मरण करते हुए सो गया। स्वप्नमें उसने उस सरोवरको देखा और स्वप्नमें ही मानो प्रचुर जल पी लिया ऐसे संस्कारवश जाग उठा तथा अत्यंत प्याससे पीड़ित हो जिह्वासे ओसबिंदु चाटने लगा। भला इनसे कहीं उसकी प्यास बुझ सकती है ? इसी प्रकार वह व्यक्ति है जो भोगे हुए स्वर्ग सुखोंका स्मरण करता है। उसकी अभिलाषाएँ कभी नहीं मिट सकतीं। और फिर मनुष्यका यह काम-भोगों संबंधी सुख तो बहुत ही घिनौना, विवेक रहित तथा दूसरोंके लिए केवल कौतूहल उत्पन्न करनेवाला है।

अनु० हिंडीमें यह कथानक नहीं है। उ० पु०में इसके स्थानपर यह कथानक उपलब्ध होता है—'एक मनुष्य महा दाहज्वरसे पीड़ित था। उसने नदी, सरोवर, ताल आदिका प्रचुर पानी बार-बार पिया तो भी उसकी प्यास शांत नहीं हुई। तो क्या कुशाग्रपर रखे हुए क्षुद्र जलबिंदुसे उसकी प्यास बुझ जावेगी? कदापि नहीं। इसी प्रकार इस जीवने चिर कालतक स्वर्ग सुख भोगे हैं, फिर भी यह तृप्त नहीं हुआ, तो क्या हाथीके कानके समान चंचल (क्षणिक) इन वर्तमान सुखोंसे यह तृप्त हो जावेगा?

गुणपाल कृत 'जंबूचरियं'में इसके स्थानमें यह कथा उपलब्ध होती है।—'कलिंग देशमें अंबाडग ग्राममें कोयलेसे आजीविका करनेवाला एक लकड़हारा था। करवेमें पानी भरकर लकड़ी काटने जंगलमें गया। लकड़ियाँ काटकर उन्हें जला दिया। आगकी गर्मी, सूर्यका ताप और परिश्रमसे उसे अत्यंत तीव्र प्यास लगी। इधर करवेमें रखा हुआ जल बंदर पी गये। प्यासा ही घरको चला। पर थककर वहीं गिर पड़ा। इतनेमें थोड़ी मेघ वृष्टि हुई और ठंडी हवा चली, जिससे उसे नींद आ गयी। स्वप्नमें उसने देखा कि उसने सब सरोवरों और कुओंका जल पी लिया पर प्यास नहीं मिटी। नींद खुलनेपर प्याससे पीड़ित हो, वह एक कुएँपर गया। घासकी रस्सी बनायी और कुएँमें उतरकर उसके कीचडयुक्त जलको जीभसे चाटने लगा। भला इससे क्या उसकी प्यास बुझ जायेगी? इस कथाके पश्चात् सांसारिक वस्तुओंकी आध्यात्मिक दृष्टिसे तुलना की गयी है जैसे, पुरुष-जीव, तृष्णा-भोगेच्छा आदि। हेमचंद्रने भी अपने परिशिष्ट पर्वमें इस कथाको लिया है।

[११] पुनः विद्युच्चरने कहा सुनिए—'एक वृद्ध बनिया था उसकी तरुण स्त्री थी। वह व्यभिचारिणी थी। एक बार वह ब्रह्ममुष्टि नामके एक चेटके साथ बहुत-सा द्रव्य लेकर निकल गयी। रास्तेमें उन्हें एक धूर्त मिला। वक्र दृष्टि रखकर उनके साथ उसने कपट प्रेम संबंध बढ़ाया। उन दोनोंके अनुचित संबंधको जानकर कामोत्तेजक मधुर गायन-द्वारा उस स्त्रीको मोह लिया और एक ग्रामासन्न देवालयमें पहुँचकर ब्रह्ममुष्टिसे पीछा छुड़ानेका यह उपाय किया—उसने स्त्रीसे कहा तुम ग्रामरक्षकसे कह आओ कि दीर्घयात्रासे थकी हुई मैं अपने पतिके साथ अमुक देवालयमें सोऊँगी। स्त्रीने वैसा ही किया। रात्रिमें (नगरमें चोरीकी कोई दुर्घटना होनेसे) कोतवाल अपने सहायकोंके साथ देवालयमें आया। स्त्री झटपट ब्रह्ममुष्टिको शैयापर अकेले सोते हुए छोड़कर जागते हुए धूर्तकी शैय्यापर आ गयी, और धूर्त उस कोतवालसे बोला कि हमने दिनमें ही कह दिया था कि हम पति-पत्नी हैं, तीसरेको हम नहीं जानते, तुम लोग खोज लो! लोगोंने बेचारे ब्रह्ममुष्टिको पकड़ लिया, उसे बहुत मारा और बाँधकर ले गये। धूर्त उस कुलटाको साथ लेकर वहाँसे भाग निकला और एक नदीके किनारे पहुँचा। वहाँ पहुँचकर वह बोला कि नदी बड़ी अथाह और दुस्तर है, अतः पहले तुम अपने सब वस्त्राभूषण उतार कर दे दो। एक बार उन्हें उस पार रख आऊँ, वापस आकर तुम्हें साथ ले आऊँगा। स्त्रीने उसका विश्वास कर सारे वस्त्राभूषण उतारकर उसे दे दिये। धूर्त उन्हें लेकर पार उतर गया और परले पार जब शीघ्रतासे जाने लगा तो स्त्री चिल्लाकर बोली, अरे दुष्ट मुझे ठगकर और इस नग्न अवस्थामें छोड़कर कहाँ चला? धूर्तने शीघ्रतासे चलते हुए हाथ हिलाकर उत्तर दिया, अरे तूने पहले तो परिणय किये हुए श्रेष्ठ भर्तारको छोड़ा, फिर जारको भी मरवा डाला, तो अब क्या मुझे भी खाना चाहती है? मैं चला, तू यहीं रह। धूर्तके चले जानेपर जब वह असती इस दुरवस्थामें तीर पर खड़ी थी कि मांसका टुकड़ा लिये एक शृगाल वहाँ आया और उस मांसके टुकड़ेको छोड़कर जलसे बाहर स्थलपर पड़े हुए एक मत्स्यको पकड़नेको लपका। इतनेमें मत्स्य जलमें कूद गया और उधर मांसके टुकड़ेको एक बाज झपटकर ले गया। दोनोंसे वंचित हो बड़े लज्जित और दुखी हुए उस शृगालको लक्ष्य करके उस कुलटाने व्यंग किया, रे मूर्ख शृगाल! स्वाधीन (मांसका टुकड़ा) वस्तुको छोड़कर तुझे क्या लाभ हुआ? इस व्यंग्यबाणसे बिंधकर शृगालने (मनुष्यकी वाणीमें) उत्तर दिया—'मैं तो अवश्य कुबुद्धि या मूर्ख हूँ, पर तेरी यह सद्बुद्धि जो मुझे सीख दे रही है, वह स्वयं तेरे लिए कहाँ दिखाई देती है? पहले तूने पतिको छोड़ा, फिर जारको मरवा डाला और अब धनसे भी गयी व धूर्तसे भी। नग्न खड़ी रहकर बोलनेमें कुछ तो लज्जा कर।' यह कथानक सुनाकर विद्युच्चर बोला—इस असती कथानकको समझो, और देवसुखोंके लिए स्वाधीन सुखोंको छोड़कर मनका दमन मत करो।

यह कथानक वसु० हिंदीमें नहीं है। उ० पु० में केवल शृगालसे संबद्ध अंश स्वतंत्र रूपसे इतना भर है कि एक शृगाल मासका टुकडा मुँहमे लिये कहींसे आया, नदी तट-पर जलसे बाहर मच्छको देख, मासका टुकडा छोड, मच्छको पकडने झपटा, मच्छ पानीमें खिसक गया। इधर मांसके टुकडेको बाज उठाकर ले गया, और शृगाल दोनोंसे वंचित हुआ। यहाँ असतो कथानकसे इसका कोई संबंध नहीं दिखलाया गया है, परंतु अन्य चरितोंमे भिन्न-भिन्न रूपोंमे कही अति विस्तारसे और कही संक्षेपमें वर्णित है। गुणपाल कृत जंबूचरिय तथा उसका अनुसरण करनेवाले हेमचद्रने इसे बहुत विस्तारसे दिया है और इसके साथ एक दुराचारी सुनार पुत्र या वणिक् पुत्र वधूका बृहद् आख्यान भी जुडा हुआ है (देखें आगे)।

ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्ल कृत जंबूस्वामिचरित्रमें इस कथानकसे कुछ अंतर है। यह संक्षेपमें इस प्रकार है—'एक वृद्ध बनियेकी तरुण स्त्री विटोंसे स्वेच्छासे रमण करनेको धन लेकर एक जारके साथ भाग गयी। रास्तेमें किसी दूसरे धूर्त्तने उसे मोह लिया और उसके साथ किसी अन्य नगरमें जाकर ठहरी। वहाँ वह तीसरे जारसे लग गयी। तब धूर्त्तने नगर रक्षकसे जाकर शिकायत की कि कोई जार मेरी स्त्रीके पास आता है, उसे पकडो तो तुम्हें कुछ सुवर्ण लाभ कराऊँगा। रात्रिमें धूर्त्त जागते हुए उस पुंश्चलीके साथ पड रहा। कुछ देर बाद वह तीसरा जार आया। स्त्री उठकर चुपचाप उसके अंकमें चली गयी। फिर कोतवाल अपने सहायकोंके साथ आया और पूछा, यहाँ कौन जार या चोर है ? तीसरा जार झटसे बोला, मैं नही जानता आप लोग खोजें ! उन्होंने धूर्त्तको ही पकड लिया, उसका कुछ कहना नही सुना कि उसने ही कोतवालको शामको समाचार दिया था। उसके पकडे जानेपर तीसरा जार स्त्रीको लेकर भाग निकला।' आगेका कथानक चोरके अनुसार है। इतना अंतर है कि शृगालके ऊपर व्यंग्य करनेपर दूसरे तीरपर-से वह जार चिल्लाकर बोला यह तो पशु है, इसे हिताहितका विवेक नही, पर पापिनी तूने स्वय क्या किया ? अपना चरित्र तो देख···आदि, और उसे नदीके इसी तीरपर नग्न छोडकर चलता बना।

[१२] इसका उत्तर जंबूस्वामीने यह कथानक सुनाकर दिया—'एक बनिया जहाज लेकर कहीं दूसरे तीरपर पहुँचा और एक श्रेष्ठ बहुमूल्य चिंतामणि रत्न खरीदकर जहाजसे वापिस लौट चला। आते समय उस चिंतामणि रत्नको हथेलीपर रखकर, अन्यत्र उसे बेचकर नाना प्रकारके हाथी-घोडे आदि खरीदकर राजाके समान संपदा सहित घर लौटनेकी सुखद कल्पनाएँ करते-करते अर्द्धनिद्रित-सा हो गया. जिससे वह रत्न हथेलीसे निकलकर समुद्रके मध्यमें जा गिरा। बनिया तुरंत सचेत होकर तैरनेवालोंसे चिल्लाया, अरे ! अरे ! जहाज रोको ! चिंतामणि रत्न समुद्रमें गिर गया है, उसे ढूँढकर मुझे लाकर दो . भला वह रत्न क्या उस बनियेको पुन. मिल सकेगा ? उसी प्रकार यह मनुष्य जन्म चिंतामणि रत्नके समान है। रति सुखकी निद्रामें पडकर संसार समुद्रमें खोकर, मैं इसे फिर कैसे पाऊँगा ?' वसुदेव हिंडी, गुणपाल कृत जंबूचरियं तथा हेमचंद्रके परिशिष्ट पर्वमें यह आख्यान नही है। उ० पु० में इसके स्थानपर यह कथानक है—'कोई मूर्ख पथिक कहीं जा रहा था। रास्तेमें किसी चौराहेपर उसे महा देदीप्यमान रत्नोंकी राशि मिली। वह चाहता तो सरलतासे उसे ले सकता था। परंतु तब उसे न लेकर पथिक आगे चला गया। फिर कुछ समय बाद मनमें विचार आनेपर उस रत्नराशिको लेनेकी इच्छासे वापिस लौटकर पुनः उस चौराहेपर आया, तो क्या वह उस रत्नराशिको पा सकेगा ? नही ! इसी प्रकार जो मनुष्य इस संसार रूपी समुद्रमें गुण रूपी मणियोंको पाकर भी उन्हें एक बार स्वीकार नही करता, वह पीछे उन्हें फिर कभी नही पा सकेगा।' यहाँ कथानकका आशय मनुष्य जन्ममें प्राप्य तप, संयम, साधनादि गुणोंसे है, जिन्हें मनुष्य जन्मके सिवाय अन्य किसी गतिमें, किसी शरीरमें पाया नही जा सकता।

[१३] जंबूस्वामीके यह कथानक कहनेके उपरांत विद्युच्चरने एक शृगाल संबंधी कथानक सुनाया—'विंध्य क्षेत्रमें एक धनुषधारी प्रचंड भील रहता था। एक दिन उसने बाणके आघातसे एक हाथीको मार डाला। इधर उसे सर्पने डस लिया। उस सर्पको उसने वहीं धनुषके प्रहारसे मार डाला और स्वयं भी विषके प्रभावसे गिरकर मर गया। दैवयोगसे ये सब, मृत हाथी, भील और सर्प तथा धनुष एक

घूमते हुए शृगालकी दृष्टिमें पड गये। उसने सोचा यह हाथी छह मास, मनुष्य एक मास और सर्प मेरा एक दिनका; भोजन होगा। अच्छा हो इन सबको अभी रहने दूँ। आज तो अपनी क्षुधा इस धनुषकी सूखी तांतको खाकर मिटा लेता हूँ। ऐसा सोचकर उस तांतको काटने लगा। उसे कुतरनेसे धनुषमें बँधी हुई गांठ टूट गयी और उसके एक सिरेसे उसका तालू और कपाल फूट गया, तथा वह शृगाल वहीं ढेर हो गया। अत्यधिक लोभ करनेवाला शृगाल जिस प्रकार विनष्ट हुआ, उसी प्रकार वर्तमान उपलब्ध सुखोंको छोडकर भविष्यत् शिव (मोक्ष) स्वर्ग सुखकी आशामें तुम भी यूँ ही विनष्ट होओगे।'

यह आख्यान गुणपाल और हेमचंद्रके चरितोंमें नहीं है। उ० पु० में इसी प्रकार तथा वसु० हिंडीमें नीलयशा नामक चतुर्थ लंभकमें कुछ परिवर्तित रूपमें है—'भीलने एक ही बाणसे हाथीको मार गिराया और हाथी दांत तथा गजमुक्ता निकालनेके लिए एक फरसा लेकर उसपर प्रहार करने लगा। हाथीके गिरते समय एक बडा सर्प उसके नीचे दब गया और उसने भीलको डस लिया, भील भी मर गया और सर्प भी।' शेष कथा पूर्ववत् है। ब्रह्म जिनदासकी रचनामें यह वीरके अनुसार ही वर्णित है।

[१४] इस कथाके प्रत्युत्तरमें जंबूस्वामीने लकडहारेका कथानक सुनाया—'एक दिन एक लकडहारा कुल्हाडी लेकर वनमें गया। लकडी काट, गट्ठा बाँध, उसे सिरपर रखकर चल दिया। मध्याह्न कालमें तीक्ष्ण रवि किरणोंसे तप्त होकर, भार डालकर एक वृक्षके नीचे पडकर सो रहा। स्वप्नमें उसने राजलीला-विलास देखा। मानो वह राजा है। सुंदर कामिनियोंके साथ काम-क्रीडा कर रहा है। सिंहासनपर बैठा है और उसपर चमर डुलाये जा रहे हैं। हाथी, घोडे, योद्धा आदि सभी सामग्री है और राजद्वारपर प्रतिहार पहरा दे रहा है, आदि। इतनेमें क्षुधासे पीडित उसकी क्रुद्ध पत्नीने आकर उसे जगा दिया। उसके कठोर वचनोंको सहन न कर, लकडहारेने उसे पीटकर भगा दिया और पुनः सो गया, तो अबकी बार स्वप्नमें देखा कि उसके सिरपर भार लदा है, और सारे शरीरसे मलिन दुर्गंधयुक्त पसीना बह रहा है। यह स्वप्न देखकर दुःखसे तडफ कर वह जाग उठा। अब यदि लकडहारेको स्वप्नमें एक बार राज्य मिल भी गया, तो वह भी बार-बार कैसे मिल सकता है? अतः यदि मैं एक बार मनुष्य जन्म खो बैठा, तो फिर नरकोंके दुःखोंसे ग्रस्त होकर पडा रहूँगा।'

ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्ल कृत चरित्रमें यह आख्यान लकडहारेको पत्नी-द्वारा जगा दिये जानेपर समाप्त हो जाता है। वसु० हिंडी, उ० पु० और गुणपाल तथा हेमचंद्र कृत चरितोंमें यह नहीं है। परंतु संपूर्ण जैन साहित्यमें 'स्वप्नमें लकडहारेको राज्य प्राप्ति' कहावतके रूपमें प्रसिद्ध और प्रचलित है।

[१५] जंबूस्वामीके उपर्युक्त आख्यानके उत्तर स्वरूप विद्युच्चरने यह कथा सुनायी—'एक बार नटोंका एक बडा दल वर्षाकालमें आजीविका हेतु नगरमें आया। रात्रिमें बोड नामक एक जरा जीर्ण नटको वृक्षोंसे संकीर्ण उद्यानके समीप अपने निवास (तंबू) की रक्षा हेतु छोडकर, नट समूह नृत्य दिखलानेके लिए राजाके पास गया। इधर अपनी साससे भर्त्सना पाकर आभरणोंसे लदी हुई एक बहू उसी उद्यानमें एक वृक्षके नीचे आकर ठहरी और मरनेके उद्देश्यसे अपने गलेमें फंदा लगाया। यह देखकर वृद्ध बोडने सोचा, अरे, इसके मरनेसे मुझे यहाँ बैठे-बैठे स्वर्ण लाभ हो गया। परंतु यह मरना नहीं जानती। मैं इसे ठीकसे मरनेकी शिक्षा देता हूँ, और मरनेपर इसके आभूषणादि ले लूगा। पूछनेपर स्त्री बोली, हे भाई! मुझे शिक्षा दो, और सुख-मृत्युसे यमपुरी भेज दो। तब नटने स्त्रीके हाथसे फंदा ले लिया और एक मुरज लाकर वृक्षके नीचे रखा। उसपर स्वयं चढकर उस फंदेको एक पटसे वृक्षकी शाखामें बांधकर, अपने गलेमें डाल लिया। 'हे सुंदरी! मुरजको लुढकाकर सुदृढ फंदेसे सुखपूर्वक मरना चाहिए' इस प्रकार उत्साहपूर्वक उस स्त्रीको यह दिखलाते समय वेगके कारण दैव संयोगसे मुरज लुढक गया, फंदेकी सुदृढ गाँठ वृद्ध बोडके गलेमें पड गयी और वह तड़फडाता हुआ मर गया। वह स्त्री बोडको इस तरह मरता हुआ देखकर, लज्जा और भयपूर्वक वहाँसे भाग गयी। इसी प्रकार जो व्यक्ति असिद्ध (अनुपलब्ध) कार्योंकी इच्छा करता है, और उसका परिणाम न जानते हुए इस बोडका अनुसरण करता है, वह स्वयंकी ही दुर्बुद्धिसे सुख त्याग कर मृत्युको प्राप्त होता है।'

वसु० हिंदी और गुणपाल तथा हेमचंद्रके चरितोंमें उपर्युक्त आख्यान नहीं है। उ० पु० में ईषत् परिवर्तित संक्षिप्त रूपमें है—'एक वधू सासकी भर्त्सना पाकर एक उद्यानमें वृक्षके निकट आयी और मरनेके लिए गलेमें फंदा लगाया। इतनेमें स्वर्णकारक नामका एक मृदंगवादक वहाँ आ पहुँचा और स्त्रीका अभिप्राय जानकर सुवर्णलाभके लोभमें उसे मरनेकी रीति दिखलाने लगा।' आगे कथा पूर्वोक्त प्रकार है।

ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्ल कृत जंबूस्वामीचरियमें यह कथानक बिलकुल भिन्न रूपमें है—'एक कुशल नटने अनेक नर्तकियोंके साथ राजभवनमें नृत्यादिका सुंदर प्रदर्शन किया। उससे राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसके दलको प्रचुर सुवर्ण-वस्त्राभूषणादि बहुमूल्य पुरस्कार प्रदान किये। थके हुए ये सब लोग रात्रिमें वहीं सो गये। नट जागता रह गया। सबको सोते देख नटको लोभ आ गया। सोचा, 'सब सोये हैं, मैं यह सब प्राप्त धन लेकर यहाँसे चंपत हो जाऊँ।' यह सोचकर सब धनकी गठरी बाँधकर वह जैसे ही चला, जागती हुई नर्तकियोंने उसे वहीं पकड़ लिया और प्रातःकाल राजाके सामने उपस्थित किया। राजाने उसे चोरीका उचित दंड दिया। इस प्रकार अतिशय लोभके कारण जो उचित पुरस्कारांश था वह भी खोया और उलटे दंडका भागी बना। वीर कृत कथानकका आशय भी ऐसा ही है। विद्युच्चरका तात्पर्य यह है कि, 'हे जंबूस्वामी, शिव सुखकी उपलब्धिके लिए इतने अधीर मत होओ। कुछ दिन उपलब्ध अनुपम सुंदरी स्त्रियों और अन्य भोगोंको स्वेच्छासे भोगो फिर मोक्ष प्राप्तिके लिए साधन। करना। अत्यधिक उतावलापन करनेमें दोनों ही प्रकारके सुखोंसे वंचित होनेकी संभावना अधिक है। हो सकता है सहसा इन सुखोंको त्याग कर पीछे पश्चात्ताप हो। तब न इस लोकके रहोगे न परलोकके।'

[१६] इसके प्रत्युत्तरमें जंबूस्वामीने अपने निश्चयकी दृढ़ता और विवेकशीलता व्यक्त करनेके हेतुसे चंग नामक सुनार पुत्र (अन्यत्र ललितांग, कहीं सुनार पुत्र, कहीं श्रेष्ठि पुत्र)का आख्यान सुनाया, जो इस कथा-प्रतिकथाओंकी इस शृंखलामें सबसे अंतिम है। बनारसका लोकपाल नामक राजा शत्रुको जीतनेके लिए देशांतरको गया। युद्धमें पाँच वर्ष लग गये। पीछे उसकी विभ्रमा नामक महादेवी पुरुष संयोगके बिना कामपीड़ासे व्याकुल हो उठी। एक बार अपने राजप्रासादकी छतसे उसने चंग नामक अति सुंदर, युवा एवं हृष्ट-पुष्ट सुनार पुत्रको देखकर दासीसे कहा कि किसी प्रकार इस युवकसे मिला और मेरा काम-दाह शांत कर! दासी गयी और चतुराईसे उस सुनार पुत्रको बुला लायी। आनेपर दोनोंने दृष्टिसे एक दूसरेको पहचाना और कामराग-भरी महादेवीने उसे अपनी शैय्यापर बैठाया। उसी समय विजयी होकर राजा समस्त सैन्य साधन, परिजन, परिवारके साथ लौट आया। रानीने चंगको पीछेके कोठेमें छिपा दिया। परंतु किसी कारण उसी कोठेमें राजाके आगमनका समाचार जानकर भयसे उतावली रानीने चंगको पुरीष कूपमें डाल दिया। उसीमें प्राण टिकने-भरको आहार पहुँचाती रही। चंग छह मास तक कूपमें पड़ा रहा। उसका सारा शरीर दुर्गंध पूर्ण और पांडुरवर्ण हो गया। पुरीष कूपके बहुत सड़ जानेपर कर्मकरोंने जलसे कूपका धोवन किया, भूमिस्थ द्वारसे मलयुक्त गंदे पानीके साथ चंग भी बहकर निकल गया, और गंगाके प्रवाहमें जाकर गिरा। गंगाके तीरपर लोगोंने उसे पहचाना और पूछा कि तेरा शरीर दुर्गंधयुक्त और पांडुरवर्ण क्यों हो गया? चतुर चंगने उत्तर दिया कि मुझे रूपासक्त नाग सुंदरियाँ पाताल स्वर्गमें ले गयीं और वहाँ एक दिन मुझे घरका स्मरण करते हुए जानकर रोषमें कुल्ला करके छोड़ दिया। घर जाकर जलसेचन और दिव्य सुरभित द्रव्य तथा तैलोंके प्रयोगसे बहुत दिनोंमें चंग पुन. पूर्ववत् स्वस्थ, सुंदर हो गया। किसी समय राजा पुनः बाहर गया। रानीको पुन. पुरुष विरह उत्पन्न हुआ, उसने चंगको पुनः बुलवाया, पर वह नहीं गया, और दासीसे बोला—"सौंदर्यका जो फल मैंने भोगा उसके कारण शरीरकी दुर्गंध अब तक शांत नहीं हुई। पुण्यसे एक बार संकटसे छूट गया तो क्या कोई बार-बार उस संकटमें पड़ने जाता है?" इसी प्रकार हे मामा! तिर्यंच और नरक गतियोंका अनुभव करके यदि किसी प्रकार मुझे मनुष्यत्व प्राप्त हो गया, तो अब मैं लेश मात्र रति सुखके वशीभूत होकर पुनः नरक गतिमें पड़ने नहीं जाऊँगा।'

यह आख्यान कुछ अंतरसे सभी चरितोंमें उपलब्ध है। वसु० हिंदीमें संक्षेपमें यह कथा इस प्रकार है—'वसंतपुरके शतायुध नामक राजाकी ललिता नामक रानी एक दिन छज्जेपर खड़ी थी। तब उसने राज-

मार्गसे जाते हुए श्रेष्ठि पुत्र ललितांगको देखा और उसपर मुग्ध हो गयी तथा अपनी चतुर दासीके हाथ उसके पास प्रेमपत्र पहुँचाया। पूर्णिमाका दिन आनेपर रानीकी अस्वस्थताका बहाना करके चतुरदासी वैद्यके रूपमें ललितांगको रानीके भवनमें ले गयी। इस प्रकार दोनो निःशंक रति सुख भोगने लगे। अंत पुरके वृद्ध रक्षकोंको इसका पता चल गया। उन्होंने राजाको सूचना दी और राजाने ललितांगको पकडनेके आदेश दे दिये। तब रानीने भयभीत होकर ललितांगको पुरीष कूपमें डाल दिया। आगेकी कथा लगभग पूर्वोक्त प्रकार है।

गुणपाल कृत जंबूचरियंमें इतना अंतर है कि 'कौमुदी महोत्सव आनेपर राजाने रानीसे उद्यान-क्रीडा हेतु चलनेको कहा। रानी शिरोवेदनाका बहाना करके नही गयी। राजाके जानेपर एकांत पाकर चतुर धायने ललितांगको अंत पुरमें प्रवेश करा दिया। इधर अकेले होने व रानीकी शिरोवेदनाकी चितासे राजाका मन उद्यान-क्रीडामें नही लगा और वह शीघ्र लौट आया। भयभीत रानीने ललितांगको पुरीष कूपमें डाल दिया।' आगे कथा पूर्वोक्त प्रकार है और अंतमें यह कि ललितागके साथ बार-बार ऐसा हुआ, तथापि वह सचेत नही हुआ।

हेमचंद्रके चरितमें इतना अल्प अंतर है कि कौमुदी उत्सवके समय राजा शिकारपर गया, पीछे यक्ष मूर्तिके बहाने धायने ललितांगको अंतःपुरमें प्रवेश करा दिया तथा दोनोने अपनी कामवासना पूर्ण की। रक्षकोको संदेह हो गया कि यक्ष मूर्तिके रूपमें पर-पुरुषको प्रवेश कराया गया है। राजाको इसकी सूचना दी गयी। शेष वसु० हिंडीके समान।

उपर्युक्त चारो ग्रंथोमें इसका धार्मिक प्रतीकार्थ यह निकाला गया है कि ललितांग जीव है, रानी विषय भोगोंका प्रतीक है और पुरीष कूप गर्भवासका; तथा अंधद्वारसे निष्क्रमण माताके गर्भद्वारसे निकलनेके समान है, आदि।

उ० पु० में कथा बहुत संक्षेपमें है—एक राजाकी रानी ललितांग नामक धूर्तपर मुग्ध हो गयी और चतुराईसे दासी-द्वारा उसे अंतःपुरमें बुलवा लिया, तथा यथेच्छ रमण किया। राजाको इसका पता लग गया। भयसे रानीने ललितांगको शौचालयमें छिपा दिया और वही दुर्गंधसे दम घुटकर उसकी मृत्यु हो गयी।

हरिभद्रकृत 'समराइच्चकहा'के नौवें भवमें प्रद्युम्न राजाकी रति नामक रानी तथा शुभंकर कुमारकी परस्पर आसक्तिकी कथा भी गुणपालके आख्यानके समान है और वही कथानक गुणपालकी रचनाका आधार है। राजमल्लने लगभग वीर कृत 'जंबूसामिचरिउ'का ही अनुकरण किया है, केवल इतने अंतरसे कि राजा शिकारको गया था, युद्धके लिए नही। यहाँ एक ध्यान देने योग्य बात यह है कि वसु० हिंडी, उ० पु० तथा हेमचंद्र वर्णित कथानकमें रानी और ललितागका मिलन होता है और वे अपनी वासना पूर्ति करते हैं। परंतु वीर कवि तथा हरिभद्र और गुणपालके अनुसार चंग या ललितांग अंत.पुरमें पहुँचा ही था, कि राजा आ गया अथवा रक्षकोको खबर लग गयी और बस! ललितांग गूथ कूपमें फेंक दिया गया। उनकी कामवासना अतृप्त ही रही। ऐसा कहनेमें तीनो ग्रंथकारोका आशय यह रहा है कि संसारमें जीव चाहे कितने ही भोग भोगे तथापि उसकी भोगवासना सदैव अतृप्त ही रहती है।

अन्य अंतर्कथाएँ

जं० सा० च० की उपर्युक्त अंतर्कथाओंके अतिरिक्त वसु० हिंडी, जंबूचरियं (प्राकृत) परि० पर्व तथा ब्र० जिन० एवं पं० राज० कृत जंबूस्वामीचरित्रोंमें निम्नलिखित अंतर्कथाएँ और भी उपलब्ध होती हैं। लोककथा-तत्त्वों, एवं मूलकथाको रोचक बनाने, तथा उसे गति प्रदान करने आदिकी दृष्टिसे ये कथाएँ भी महत्त्वपूर्ण हैं। उन्हें गुणपाल कृत जंबूचरियंके कथा-क्रमानुसार यहाँ दिया जा रहा है।

[१] राजर्षि प्रसन्नचंद्र एवं वल्कलचीरी

भ० महावीर अपने संघसहित राजगृहके निकट पधारे। लोग उनके दर्शनोंको गये। राजा श्रेणिकके दो सिपाहियोंने भगवान्‌के दर्शनोंको जाते हुए रास्तेमें मुनि प्रसन्नचंद्रको खडे होकर ध्यान करते देखा। उन्हें

देख उनमें-से एक बोला—इसकी तपस्याका कोई लाभ नहीं। यह राजा दीक्षा लेते समय अपनी रानियों और बालक राजकुमारको मंत्रियोंके भरोसे छोड आया है। वे राजकुमारका वध कर देना चाहते हैं। इस प्रकार इसकी प्रव्रज्या इसके कुल नाशका कारण होगी। इतना कहकर वे चले गये। इधर यह सब सुनकर मुनिको बडा विक्षोभ उत्पन्न हुआ। वे मनसे ही मंत्रियोंसे युद्ध करने लगे और उनके मुख-मंडलपर तीव्र गतिसे विविध-भावोंका उतार-चढाव प्रकट होने लगा। पीछेसे भगवान्‌के दर्शनोंको आते राजा श्रेणिकने मुनिको इस अवस्थामें देखा और समवशरणमें पहुँचकर भगवान्‌से उनके संबंधमें प्रश्न किया। भगवान्‌ने मुनिका पूर्ण वृत्तांत इस प्रकार सुनाया—

'पोतनपुरका राजा सोमचंद्र शिरके श्वेत बालका निमित्त पाकर अपने पुत्र प्रसन्नचंद्रको राज्य दे दीक्षित हो गया। गर्भवती रानी धारिणीने भी पतिका अनुगमन किया। समयपर वनमें ही धारिणीने पुत्रको जन्म दिया, और स्वयं सूतिका रोगसे चल बसी। पिता सोमचंद्र साधु अब स्वयं पुत्रका पालन करने लगे और उसका नाम वल्कलचारी रखा। उधर नगरीमें राजा प्रसन्नचंद्रको किसी प्रकार अपने भाईके जन्म लेने आदिके समाचार मिले। उसने बडी युक्तिपूर्वक (देखें: परि० पर्व) पिता सोमचंद्रको पता लगे बिना ही वल्कलचारीको अपने पास बुलवाकर उसका विवाहादि करा दिया। इधर सोमचंद्र साधु होनेपर भी पुत्रके मोहवश पुत्र वियोगमें रोते-रोते अंधा हो गया। एक बार दोनो भाई पितासे मिलने वनमें आये। पुत्रमिलनके आनंदाश्रुओंसे सोमचंद्रको पुनः दृष्टि प्राप्त हो गयी। पिताकी कुटीमें अपने चीरसे उनके पात्रोंको साफ़ करते-करते वल्कलचारी ध्यानमें लीन हो गया कि कभी मैं भी इसी अवस्थामें (साधु) था, उसी अवस्थामें चिंतन करते-करते उसे वहीं पूर्व जन्मका स्मरण हो आया। एकाग्रतासे ध्यानमें ऊँचे और ऊँचे चढते हुए वल्कलचारीको वहीं केवलज्ञान प्राप्त हो गया, तथा वे प्रत्येकबुद्ध हो गये। पिताको भ० महावीरको सौंप वे प्रत्येकबुद्ध अन्यत्र विहार कर गये। प्रसन्नचंद्रको भी इस घटनासे वैराग्य हो गया, और घर आकर बालक राजकुमार तथा रानियोंको मंत्रियोंकी देख-रेखमें छोड़ वह दीक्षित हो गया। भ० महावीरके यह कथा कहते-कहते मुनि प्रसन्नचंद्रको भी इसी बीच आत्मचेतना जाग्रत हुई। उनके विचार बदले। उन्होंने तीव्र पश्चात्ताप किया, और उसी समय ध्यान बलसे ऊपर चढते-चढते उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया।

यह कथा जंबूचरियके अतिरिक्त वसु० हिंडी, उ० पु० (संक्षिप्त) तथा परि० पर्वमें भी प्राप्त होती है।

इसी प्रसंगमें अंतिम केवली कौन होगा, यह पूछनेपर भगवान् ने विद्युन्माली देवका नाम लिया और जंबूस्वामीके भवदेव नामक प्रथम भवसे कथा प्रारंभ की।

[२] भोग-वासनाग्रस्त ब्राह्मण-पुत्र

भवदेवके दीक्षोपरांत भोगकी इच्छासे पुन. नागिलासे मिलने आनेपर नागिला (जं० सा० च० नागवसू) ने उसे प्रतिबोध देनेके लिए कथा सुनायी।

नागिला : रे भवदेव, साधुत्वको छोड़कर तू वासना-ग्रस्त ब्राह्मण-पुत्रके समान पशु होकर दु.ख पावेगा।

भवदेव : कौन-सा ब्राह्मण-पुत्र ?

नागिला : सुन! मैं तुझसे कहती हूँ—'लाटदेशके भरुकक्ष नगरमें रेवादित्य नामक अति दरिद्र ब्राह्मण हुआ। उसकी अत्यंत विकृत व कुरूपाकृति तथा स्वभावसे महादुष्ट यथा नाम तथा गुण आपदा नामक पत्नी थी। उसे पाँच लडकियाँ हुईं और एक सबसे छोटा लड़का। महान् कष्टमय जीवन व्यतीत करते-करते आपदा तो कुछ काल बाद मर गयी, और ब्राह्मण अत्यंत दु.खी व किंकर्तव्यविमूढ होकर लड़-कियोंको ब्राह्मण लड़कोंके हाथोंमें सौंप पुत्र सहित घरसे निकल गया। तीर्थाटनमें साधुओंके सत्संगसे वे दोनों साधु बन गये। पुत्र साधु जीवनके कष्टोंको सह नहीं सका, अतः संघसे निकाल दिया गया और गृहकार्योंमें प्रवृत्त हो गया। ग्वालोंके साथ पशु चराने, लोगोंका लकडी, पानी, भूसा आदि ढोनेका श्रम करके भी कठि-नाईसे वह उदरपूर्ति कर पाता, फिर भी घरमें स्त्री लानेकी तीव्र इच्छा रखता। इस प्रकार महान् कष्टमय जीवन व्यतीत करते हुए अतृप्त भोगवासनाओंसे पीड़ित वह ब्राह्मण पुत्र एक बार सर्प काट लेनेसे मरकर एक

महिषके रूपमें जन्मा और उस जातिमें भी वध-बंधन आदि सहता हुआ असह्य भार ढोने लगा (उसके पिताने, जो संन्यासपूर्वक मरकर देव हुआ था, स्वर्गसे आकर उसे बोध दिया)। इसी प्रकार तू भी भोग-वासनाके वशीभूत हो दुर्गतिको प्राप्त होगा।'

[३] वमन-भक्षणेच्छुक ब्राह्मण-पुत्र

इसी बीच नागिलाके साथकी ब्राह्मणीका पुत्र वहाँ आ गया और माँसे बोला—'माँ एक थाली लाओ, मैं बहुत स्वादिष्ट दूध-पाक जीमकर आया हूँ, उसका वमन करूँगा। उसे तू संभालकर रख लेना, जब मुझे पुनः भूख लगेगी तो मैं उसे खाऊँगा। अभी मुझे दूसरे घर जीमने जाना है।' उसका यह कथन सुनकर माँने उसे धिक्कारा—'छि. बेटा! वमन करके भी कहीं पुन' खाया जाता है?' भवदेवसे भी न रहा गया और उसने भी ब्राह्मण-पुत्रका बड़ा धिक्कार किया। यह सुनकर नागिलाने कहा—रे भवदेव! दूसरेको क्या धिक्कारता है, तू अपनी ओर तो देख! तू भी अपने वमन (त्यक्त) किये हुए (विषय भोगों) को फिरसे खाने (भोगने) की इच्छा कर रहा है! नागिलाके इस कथनसे भवदेवको सच्चा बोध हो गया।

यह कथा जंबूचरियके अतिरिक्त वसु० हिंडी और परि० पर्वमें भी मिलती है।

इस स्थल-पर गुणभद्र कृत उ० पु० में निम्नरीतिसे तीन कथाएँ कही गयी हैं जो अन्यत्र नहीं मिलती।

[४] दासी-पुत्र

दीक्षाके बारह वर्ष पश्चात् गाँवमें आने-पर मुनि भवदेवकी भेंट सुव्रता नामक गणिनी (साध्वियोंके संघकी अध्यक्षा) से हुई। भवदेवने गणिनीसे अपनी स्त्री नागश्री (जं० सा० च० नागवसू) के संबंधमें पूछा। गणिनी उसका अभिप्राय समझ गयी, और उसे संयममें स्थिर करनेके आशयसे 'मैं नागश्रीके संबंधमें अच्छी तरह नहीं जानती', ऐसा उत्तर देकर, अपने साथकी दूसरी आर्यिकाको निम्नलिखित कथा सुनाने लगी—'एक सर्व समृद्ध नामक वैश्य था। उसका दारुक नामका सरल-हृदय दासी-पुत्र था। एक दिन दासीने सेठका जूठा स्वादिष्ट भोजन जबर्दस्ती अपने पुत्रको खिला दिया। वह खा तो गया, पर ग्लानिके कारण उसने वह सब भोजन वमन कर दिया। उसकी माँ ने वह वमन काँसेकी थालीमें ले लिया, और भूख लगनेपर पुन उसके सामने रख दिया। भूखसे अत्यंत पीड़ित होनेपर भी दारुकने अपना वमन नहीं खाया। तब मुनि अपने छोड़े हुए पदार्थको किस तरह चाहते हैं।

[५] राज-श्वान

इसके उपरांत सुव्रता दूसरी कथा कहने लगी—नरपाल नामक राजाने कौतुकवश एक कुत्ता पाल रखा था। राजा उसे अच्छे अच्छे भोजन देता, सुवर्णके आभूषण पहनाता और वनविहारादिके समय उसे सोनेकी पालकीमें साथ बैठाकर ले जाता। एक दिन पालकीमें जाते समय कुत्तेकी दृष्टि अकस्मात् एक बालककी विष्टापर पड़ गयी, और उसे प्राप्त करनेकी इच्छासे वह झट उसपर कूद पड़ा। यह देख राजाने उसे डंडेसे पीटकर भगा दिया। इसी प्रकार जो मुनि पहले सबके पूजनीय होते हैं, वे ही छोड़ी हुई वस्तुकी इच्छा कर फिर अनादरके पात्र बन जाते हैं।

[६] दुर्बुद्धि पथिक

इसके बाद सुव्रता यह कथा कहने लगी—'एक पथिक वनमें-से सुगंधित फल-पुष्प तोड़कर लानेकी इच्छासे चला, परंतु सुमार्ग छोड़कर महा संकीर्ण वनमें जा पहुँचा। वहाँ उसने उसे मारनेकी इच्छासे सामने आता-हुआ एक व्याघ्र देखा। उसके भयसे भागते-भागते वह दुर्बुद्धि पथिक एक भयंकर कुएँमें जा पड़ा। वहाँ उसे वात-पित्तादि सब दोष उत्पन्न हो गये, और सब इंद्रियाँ जडीभूत होने लगी! सर्पादि का भय भी वहाँ, था, और कुएँमें-से निकलनेका कोई उपाय भी उसे ज्ञात नहीं था। पुण्यसे एक सद्वैद्य वहाँसे आ निकला, और दयार्द्र होकर उसे ठीक प्रकारसे कुएँसे बाहर निकलवाया। औषधोपचारके द्वारा उसके सब रोग नष्ट कर दिये। उसकी सब इंद्रियाँ पूर्ववत् क्रियाशील हो गयीं। तब वैद्यने उसे सर्वरमणीय नगर (मोक्ष) की

ओर रवाना कर दिया। कुछ काल बाद वह पथिक पुनः विषयोंमें आसक्त हो गया, और दिशा भ्रांत होकर पुनः उसी कुएँमें जा गिरा। इस कथामें पथिक मिथ्यादृष्टि जीव है, वैद्य सद्गुरु है, कुआँ संसार-कूप है, व्याधियाँ सांसारिक आधि-व्याधि दुःख, रोग, शोक है। सद्गुरु रूपी वैद्य जीवोंके सम्यग्दृष्टि रूपी नेत्रों एवं सम्यक् ज्ञान रूपी कानोंको खोल सम्यक्चारित्र प्रदान कर मोक्ष रूपी सर्वरमणीय नगरकी ओर जीवोंको रवाना करते है। सद्बुद्धि पुण्यवान् जीव एक बार उस मार्गको प्राप्त कर फिर मुक्ति प्राप्त किये बिना उसे नही छोडते। पर दुर्बुद्धि मंदपुण्य अभागे पुरुष बार-बार सत्संयोग पाकर भी विषयोंमें अंधे और मूढ बने रहकर उस मार्गसे फिर-फिरकर लौट आते हैं। गणिनीकी ये सब बातें सुनकर भवदेवको सच्चा वैराग्य हो गया।

तीसरे भवमें शिवकुमार कनकवतीका प्रेमाख्यान बहुत बड़ा है, और मूल कथासे उसका कोई वास्तविक संबंध नही। अत उसे यहाँ नही दिया जाता। यहाँसे हम विद्युन्मालीके रूपमें देवायु पूर्ण करके जंबूस्वामीके जन्म और १६ वर्षकी आयुमें सुधर्मस्वामीके दर्शन-धर्मोपदेशके उपरात जंबूस्वामीको वैराग्य होनेसे आगेकी कथाओपर आते हैं। जंबूस्वामी आर्य सुधर्माका उपदेश सुनकर घर आये, और उनमें तथा उनके माता-पितामें इस प्रकार वार्त्तालाप होने लगा—

[७] इभ्यपुत्र

जंबू—माँ सुधर्मस्वामीके दर्शन और धर्मोपदेशसे मुझे अपने चार पूर्वजन्मो (भवदेव, देव, शिवकुमार, विद्युन्मालीदेव) का स्मरण हुआ है। इससे मैं संसारसे पूर्णतः विरक्त हो गया हूँ और मुनि दीक्षा-लेना चाहता हूँ। आप मुझे दीक्षा लेनेकी अनुमति दें।

माँ—धर्मोपदेश तो हमने भी अनेक बार सुना है, पर तेरे जैसा निश्चय तो कभी नही हुआ!

जंबू—माँ किसीको अनेक बार सुनकर भी धर्मबोध और श्रद्धा नही होती, और किसीको एक बार सुनकर ही हो जाती है। इस संबंधमें मैं तुम्हे एक दृष्टात सुनाता हूँ, उसे ध्यानसे सुनो—

'वसंतपुरमे लावण्यवती नामकी एक अति रूपवान और धनवान् गणिका रहती थी। अनेक समृद्धिशाली राजपुत्र उसके पास भोग करनेको आते थे। कुछ काल ठहरकर जब वे जाने लगते तो लावण्यवती अपनेको स्मरण रखनेके लिए उन राजपुत्रोंको उनके मना करनेपर भी अपने बहुमूल्य कड़े-कुंडलादि आभूषण भेंट किया करती थी। एक बार रत्नोंका पारखी एक चतुर वणिक् पुत्र उसके पास आया। लावण्यवतीके पाँच अमूल्यरत्नोंसे जटित पाद-पीठको, कोई पहचान न सके इस हेतुसे, अन्य गणिकाओं-द्वारा अनादरपूर्वक यहाँ-वहाँ फेंके जाते देख उस रत्न-पारखी वणिक् पुत्रने तुरंत पहचान लिया। कुछ दिन वहाँ रहकर जब उसने घर जानेकी इच्छा प्रकट की तो लावण्यवतीने उससे भी अपनी स्मृतिकी रक्षाके लिए कोई वस्तु ले लेनेका आग्रह किया। उसने उत्तर दिया, 'यदि कुछ लेना ही है तो तुम्हारे निरंतर चरणस्पर्शसे सौभाग्यशाली यह पादपीठ ही मुझे मिले।' लावण्यवतीने उसे बहकानेका बहुतेरा प्रयास किया, पर वह अपने आग्रहपर अटल रहा। तब लावण्यवतीने उसके रत्नपरीक्षाके कौशलपर मुग्ध होकर अपना वह महार्घ्य पादपीठ उस वणिक् पुत्रको अर्पित कर दिया। हे माँ! यही बात धर्म श्रवणके संबंधमें है। इस दृष्टातमें गणिका धर्मश्रुतिका प्रतीक है, राजपुत्र श्रोता, कड़े-कुंडलादि आभूषण धार्मिक अणुव्रत, पादपीठ सम्यग्दर्शन, पचरत्न पाँच महाव्रत, और वणिकपुत्र सम्यग्ज्ञानका प्रतीक है। साधारण श्रोता छोटे-छोटे व्रतोंको लेकर संतुष्ट हो जाते है, और सम्यग्ज्ञानी पुरुष सम्यग्दृष्टि ग्रहण कर पच-महाव्रतोंको धारण करके मोक्षको अपना लक्ष्य बनाता है। अतः आप मुझे दीक्षा लेनेकी अनुमति दें।'

यह कथा जंबूचरियके अतिरिक्त केवल वसु० हिंदीमें मिलती है।

[८] पाँच मित्र

माता-पिता—जब पुनः सुधर्म गणधर आवें तब तुम चले जाना!

जंबू—इस संबंधमें आपलोग एक पुरानी कथा सुनें—'कंचनपुर नामके प्रसिद्ध नगरमें पाँच मित्र

रहते थे। एक बार कुंथुनाथ भगवान्‌का धर्मोपदेश सुनकर उनमेंसे एकने कहा—भगवान्‌के मुखसे धर्मश्रवण करना अति दुर्लभ होता है। अतः हमलोग उनके चरणोंमें दीक्षा ले लें। दूसरेने कहा इन या किसी अन्य भगवान्‌के पुनः यहाँ आनेपर हम लोग दीक्षा लेंगे। ऐसी शंका आनेपर वे पाँचों स्वयं भगवान्‌के पास गये और उनसे भगवानोंके दर्शन तथा धर्म श्रवणको अति दुर्लभ जानकर वहीं दीक्षा ले ली। यही बात मेरे संबंधमें है।'

यह कथा भी जंबूचरियके अतिरिक्त केवल जम्बु० हिंदीमें प्राप्त होती है।

[९] मधु-बिंदु दृष्टांत

जंबूका विवाह हो गया और वह घर आकर वधुओंके बीच निर्विकार भावसे बैठ गया। सब सो गये, जंबू जागता रहा। इतनेमें प्रभव चोर वहाँ चोरी करने आया। जंबूको जागते देख, और उसकी दीक्षा लेनेकी इच्छा जान उनमें इस प्रकार वार्तालाप हुआ (भवि वीर, ब्र० जिन० एवं पं० राज०के अनुसार यह वार्तालाप वधुओं और जंबूके बीच हुआ)—

प्रभव : जंबू तुम्हारा यह देव दुर्लभ अद्वितीय रूप, यौवन, अपार संपत्ति तथा ये अपूर्व-अनिंद्य सुंदरी वधुएँ. इन सबका अलभ्य मानवीय सुख भोगकर परिपक्व वय आनेपर तब तुम दीक्षा लेना।

जंबू : हे प्रभव ! यह समस्त सांसारिक सुख तुच्छ मधु-बिंदुके आस्वादके समान है ! सो कैसे ? इसका दृष्टांत मुझसे सुनो—

'एक बार एक धनवान् वणिक् वाणिज्यके लिए निकला और राहमें बड़े दुर्गम वनमें फँस गया। वहाँ यमके समान एक दुर्दांत हाथी उसके पीछे लग गया। प्राण रक्षाके लिए भागता-भागता वणिक् एक वट वृक्षके प्ररोहोंको पकड़कर उसके नीचे स्थित कुएँमें लटक गया, जिसके चार कोनोंमें चार विषैले सर्प और बीचमें एक भयानक अजगर मुँह खोले पड़े थे। इधर एक श्वेत और एक काला ऐसे दो चूहे अविराम गतिसे उसी प्ररोहको काट रहे थे, जिससे वह लटका था। इतनेमें हाथी भी आ गया और क्रुद्ध होकर उखाड़नेके लिए उस वटवृक्षको झकझोर डाला। वृक्षके हिलनेसे उसपर लगा मधुमक्खियोंका छत्ता उड़ गया और उसमेंसे एक-एक बूँद टपककर भाग्यसे वणिक्‌के मुखमें आकर गिरने लगी। वणिक् उसका आस्वाद लेने लगा। वे सारी मधु-मक्खियाँ भी आकर वणिक्‌से चिपट गयीं और तीक्ष्णतासे काटने लगीं। आकाश-मार्गसे जाते एक विद्याधरने वणिक्‌को इस मारणांतिक भयावह स्थितिमें देखा और अनुकंपा पूर्वक वहाँसे उसका उद्धार करनेको तत्पर हुआ। पर उस महान् संकटमें भी वह वणिक् उन क्षुद्र मधु-बिंदुओंके स्वादको नहीं छोड़ सका। चूहोंने उसकी अवलंब—डाल काट दी। उसका प्राणांत हो गया और वह कूपमें उन भयानक सर्पोंके मुखमें जाकर गिरा। इस दृष्टांतमें वणिक् संसारी जीव है; वन संसार है, वाणिज्य सांसारिक तृष्णाएँ है, हाथी मृत्युका प्रतीक है ! वटवृक्ष मोक्ष है, जिसपर वह चढ नहीं सकता। प्ररोह आयु है और श्वेत व काले चूहे दिन और रात हैं जो अविराम गतिसे मानवीय आयुष्यको काटते रहते हैं। मधु-मक्खियाँ व्याधि-व्याधियाँ हैं, जिनसे मनुष्य पीड़ित रहता है। वह कूप मृत्युकूप है और चार सर्प नरक, तिर्यंच, मनुष्य व देव ये चार गतियाँ तथा अजगर सूक्ष्म-सूक्ष्म जीव योनि (निगोद) का प्रतीक है। इन परिस्थितियोंमें सांसारिक इंद्रिय सुख उस क्षुद्र मधु-बिंदुके आस्वादके समान हैं। विद्याधर सद्गुरु है। पर मोहांध जीव सद्गुरुका उपदेश और अवलंब पाकर भी इंद्रिय सुखोंको त्याग नहीं सकता तथा मृत्यूपरांत भयानक दुर्गतिको प्राप्त होता है।'

यह कथा जं० सा० च० के अतिरिक्त उपर्युक्त सभी चरितोंमें पायी जाती है !

प्रभव : यदि ऐसा हो, तो भी हे जंबू ! अपने माता-पिता, बंधु-बांधव, पत्नियोंके प्रति अपने कर्तव्योंको पूर्ण करके तब तुम दीक्षा लेना।

जंबू : प्रभव ! सांसारिक प्रबंध कितने क्षणभंगुर और असार होते हैं, इस संबंधमें यह आख्यान ध्यानसे सुनो—

[१०] कुवेरदत्त-कुवेरदत्ता (अठारह नाते)

मथुराकी एक वेश्या कुवेरसेना एक बार जुड़वाँ भाई-बहनोंकी माँ बनी। उसने उनके नाम कुवेरदत्त और कुवेरदत्ता रखकर उनकी अँगुलियोमें नामांकित मुद्रिकाएँ पहनाकर एक मंजूषामें रख उन दोनोंको जमुनामें प्रवाहित कर दिया। बहती हुई वह मंजूषा शौर्यनगरके किनारे दो वणिकोंके हाथ लगी। उनमें-से एकने पुत्रीको ले लिया, दूसरेने पुत्र। युवा होनेपर समान रूप गुणोंको देख उनका परस्पर विवाह कर दिया गया। विवाहोपरांत द्यूत-क्रीडामें कुवेरदत्ताने कुवेरदत्तको जीत लिया। सखियोंने कुवेरदत्तकी अँगूठी निकालकर कुवेरदत्ताकी गोदीमें डाल दी। अँगूठीको देखते ही कुवेरदत्ताको सहसा ऐसा हुआ कि हो न हो हम दोनों भाई-बहन है? माता-पितासे वृत्त पूछनेपर बात सत्य सिद्ध हुई। इससे कुवेरदत्ताको बडी विरक्ति हुई और वह जैन साध्वी बन गयी। कुवेरदत्त व्यापारादिमें लग गया। एक बार व्यापारके ही प्रसंगमें वह मथुरा पहुँचा और कुवेरसेनाके रूप गुणोंकी ख्याति सुन उससे आकृष्ट हुआ और अंततः उसीके यहाँ रहने लगा। कुवेरसेनासे उसे एक पुत्र हुआ। कुवेरदत्ता साध्वी भी घूमते-घामते मथुरा पहुँची और वहाँ भाईको माँके साथ भोग भोगते जान उसे अतिशय क्लेश हुआ। दोनोंको (माँ कुवेरसेना, भाई कुवेरदत्त) प्रतिबोध देनेकी इच्छासे वह कुवेरसेनाके ही घर जाकर ठहरी। भाई व माँ (अब पति-पत्नी) दोनोंने उसे नहीं पहचाना। उनके पास खेलते (कही पालनेमें झुलाते) बालकको देख वह बोली—तू मेरा भाई, पुत्र, देवर, भतीजा, चाचा और पौत्र है। तेरा पिता मेरा भाई, पिता, बाबा, पति, लड़का और श्वसुर है; और तेरी माँ, मेरी माँ, दादी, भाभी, पुत्रवधू, सास और सौत है। कुवेरदत्त-कुवेरसेना साध्वीके इस प्रलापसे बड़े क्षुब्ध हुए और उसका वास्तविक अर्थ पूछा। तब कुवेरदत्ताने जन्मसे लेकर अबतककी सारी कहानी उन्हें सुनायी और उन्हें अपने संबंध बतलाये कि जैसे उसने कहे थे, वे सभी सच है। कुवेरदत्ताके इस व्याख्यानसे कुवेरदत्तको भी तीव्र वैराग्य हो गया और वह भी दीक्षित हो गया तथा कुवेरसेना भी सच्ची श्रद्धालु धर्मनिष्ठ श्राविका बन गयी। तो हे प्रभव! ये सांसारिक संबंध तो ऐसे ही मिथ्या है, इनमें कोई सार नहीं है। जब एक ही जन्ममें इतने नाते (अठारह) संभव है, तो फिर जन्म-जन्मकी तो बात ही क्या? न जाने कौन किसका क्या-क्या बना है? और क्या-क्या बनता रहेगा? अतः इन झूठे संबंधोके लिए मैं आत्मकल्याणकी हानि क्यों करूँ?

यह कथा जंबूचरियंके अतिरिक्त वसु० हिंडी और परि० पर्वमें उपलब्ध होती है।

[११] गोपयुवक दृष्टांत : अर्थ विनियोगकी विरूपता :

प्रभव : हे जंबू! तुम्हारे सातिशय वचनोंसे किसको बोध नहीं होगा? तथापि मैं कहता हूँ कि जिस अर्थ (धन) की उपलब्धि बड़े महान् प्रयत्नसे होती है, और वह धन तुम्हारे पास विपुल परिमाणमें है, उसके परिभोगके लिए वर्ष-भर घरमें रहो, फिर प्रव्रज्या ले लेना।

जंबू : सत्पुरुष उत्तम पात्रोंके लिए धनके परित्यागकी प्रशंसा करते हैं, न कि कामभोगमें। उसके विनियोगकी। कामभोगोंमें धनके विनियोगके संबंधमें मैं तुम्हें एक दृष्टांत सुनाता हूँ। उसे ध्यान देकर सुनो—

'अंग जनपदमें प्रभूत गो-महिष संपत्तिके स्वामी गोप रहते थे। एक बार चोरोंने उनके घोष (बस्ती) पर आक्रमण किया, और एक सद्यःप्रसूता रूपस्विनी तरुणीको, उसके लडकेको वहीं छोडकर, अपहरण करके ले गये। उन्होंने चंपानगरमें उसे वेश्याओंके हाटमें ले जाकर वेच दिया। वहाँ वमन-विरेचनादि परिकर्म, परिचर्या और उपचार किये जानेसे उसका मूल्य लक्ष-मुद्राओंके बराबर हो गया। उधर उसका वह लड़का भी बडा होकर जवान हो गया और घीकी गाडियाँ भरकर चंपा नगरीको गया। वहाँ उसने घी बेचा, और तरुण पुरुषोंको गणिकाके घरमें स्वच्छंद क्रीडा करते हुए देखकर सोचा, 'मुझे इस धनसे क्या काम? यदि इस प्रकार इच्छित युवतीके साथ विहार न करूँ;" और देखते-देखते वही गणिका उसे अच्छी लगी जो उसकी माँ थी। उसने उसे यथेच्छ शुल्क दिया। संध्याके समय स्नानादि करके अपनी माँ-गणिकाके घरकी ओर चला। रास्तेमें एक अनुकंपावान् देवताने बछड़े-सहित गायका रूप बनाकर अपने को उस युवकके समक्ष प्रकट किया।

'पैर अशुचि (विष्ठा) में पड गया' करके वह गोप युवक अपना पैर बछडेके शरीरसे पोंछने लगा। तब वछडा मनुष्य वाणीमें बोला—'माँ यह कैसा व्यक्ति है, जो अमेध्यमें भरे हुए अपने पैरको मेरे शरीरसे पोछता है।' माँ बोली—'पुत्र! दुखी मत हो, यह अभागा अपनी माँके साथ अकार्य करने जा रहा है, इस गोपयुवकके लिए तेरे साथ ऐसा व्यवहार कोई वडी वात नही', ऐसा कहकर देवताने अपनेको अदृश्य कर लिया। गोपयुवकने सोचा, 'सुना है मेरी माँ चोरोंके द्वारा अपहरण कर ली गयी थी! क्या वह गणिका तो नही हो गयी?', ऐसा विचारकर पहले तो वहीसे लौटने लगा। फिर सत्य शोधकी जिज्ञासासे वहाँ गया, और अज्ञानमें माँके गणिका सुलभ व्यापारोंकी उपेक्षा कर, आग्रहपूर्वक उससे उसका पूर्व वृत्त बिल्कुल सच-सच पूछा। वास्तविकता जान उसे तीव्र क्लेश हुआ""। तो प्रभव! मैं तुमसे पूछता हूँ यदि देवताने अनुकंपा न की होती, तब उस गोपयुवकके धनका भोग और विनिमय कैसा होता?'

यह कथा केवल वसु० हिंदीमें ही प्राप्त होती है।

[१२] महेश्वरदत्तका पिंडदान

प्रभव : जंबू! तुम्हारा कथन सत्य है, फिर भी पुत्रके नाते, लोकधर्मकी रक्षा हेतु पितरोंको पिंडदान करके जाना तुम्हारा कर्त्तव्य है।

जंबू : प्रभव! पिंडदानकी बात बिलकुल व्यर्थ है। इस विषयमें मै एक कथा कहता हूँ, उसे दत्तचित्त होकर सुनो—

ताम्रलिप्तिमें महेश्वरदत्त नामका वणिक् रहता था। उसके माँ-बाप (बहुला व समुद्र) बडे धूर्त्त और लोभी थे। मरकर उसकी माँ कुतिया व पिता भैंसके रूपमें उत्पन्न हुए। महेश्वरदत्त वाणिज्य हेतु प्रायः दीर्घकालीन प्रवासमें रहता था। पीछे उसकी अकेली, सुंदर-युवा पत्नी व्यभिचारिणी हो गयी। एक बार महेश्वरदत्त अचानक प्रवाससे लौट आया और उसने पत्नीको अपनी आँखो व्यभिचार करते देख लिया। उस जारको क्रोधवश महेश्वरदत्तने तत्क्षण मौतके घाट उतार दिया! मरकर वह जार अपने ही शुक्रसे महेश्वरदत्तकी पत्नीके गर्भमें प्रविष्ट हो गया। वणिक् फिर सुखसे पत्नीके साथ रहने लगा। उचित समयपर उसे पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसे उस मूढने अपना ही समझा। माता-पिताके वार्षिक श्राद्धके दिन उसने भैसा खरीदा और वध करके, उसका मास पकाया। पिंडदान किया, स्वयं खाया, गोदीमें बिठा पुत्रको दिया, और एक कुतिया आ गयी उसे भी फेंका। इसी बीच एक साधु वहाँ आये और यह देख, आह दुष्पाप! आह क्लेश! ऐसा शोकपूर्वक उच्चारण कर लौट चले। महेश्वरदत्त उनके पीछे भागा और उनके शोकोद्‌गार का कारण पूछा। साधुने सब कुछ वतलाया—यह भैसा जिसे तुमने काटा, तुम्हारा ही पिता है और यह कुतिया तुम्हारी माँ है, तथा प्रमाणके लिए कुतियोंको घरमें ले जा उससे गडे धनका स्थान बतलाया। बात सत्य निकली। हे प्रभव, पिंडदानकी बात वडी व्यर्थ है। कहाँ पितर और कहाँ पिंडदान?

यह कथा जंबूचरियके अतिरिक्त वसु० हिंदी तथा परि० पर्वमें मिलती है।

[१३] कौड़ीके लिए करोड़ खोनेवाला वनिया :

जंबूके ये वचन सुनकर प्रभवको बोध हो गया और उसने पूछा—स्वामी! सिद्धिसुख और विषय-सुखोंमें कितना अंतर है?

जंबू: सिद्धि सुख अनंत-अव्याबाध और निरुपम है। ऐसे सुखको छोड, क्षुद्र इंद्रियसुखोंके लालची जीव उस वणिक्के समान है जो एक कौडीके लिए करोडकी संपत्ति खो बैठा! सुनो कैसे—

'एक वनिया करोडोंके भाड (पदार्थ) गाडियोंमें भरकर सार्थ (कारवा) के साथ एक अटवीमें प्रविष्ट हुआ। उसका एक पात्र फुटकर व्ययके लिए पणो (कौडीके मोल बराबर सिक्के) से भरा था। उन्मार्गमें पड जानेसे एक जगह उसका भार (पात्र) फूट गया और पण बिखर गये। उसने अपनी सब गाडियाँ रुकवा दी, और सब आदमियोंको पण ढूंढनेमें लगा दिया। इतनेमें सार्थके दूसरे लोग भी आ गये और बोले, 'अरे गाडियोंको जाने दो! क्या एक काकिणीके लिए करोडोंसे हाथ धोना चाहते हो? क्या चोरोंसे

नही डरते ?' वह बोला—'भविष्यत्‌में लाभ होना तो संदिग्ध है; जो है उसे कैसे छोड़ दूँ ?' सार्थके शेष लोग चले गये, और उसका सारा माल चोरोंने लूट लिया।

यह कथा मात्र वसुदेव हिंडीमें उपलब्ध है।

इस प्रकार संवाद होते-होते बहुत रात बीत गयी और वधुओंकी नीद खुल गयी, तथा प्रभवके निरुत्तर हो जानेसे कथोपकथन अब वधुओं और जंबूस्वामीके बीच होने लगे।

समुद्रश्री : सखियो ! हमारे इस भर्त्तारको प्राप्त सुखोंको छोड, अप्राप्त सुखोकी धुनमें उस मूर्ख किसानके समान पछताना पड़ेगा, जिसकी कथा निम्न प्रकार है, सुनो :

[१४] बक नामक मूर्ख कृषक

'सुसीमन नामक गाँवमें बक नामक एक किसान रहता था। उसने खेतमें काँगू और कोदों नामक धान बोया। धानके पौधे समय पाकर खूब बडे बडे हो गये। इसी बीच वह एक बार दूर गाँवमें अपने संबंधियों-के यहाँ गया। वहाँ उसे गुड-मंडग खिलाये गये, जो उसे बहुत अच्छे लगे। गुड-मंडग बनानेकी विधि पूछने-पर उसे बताया गया कि पहले गेहूँ बोना। गेहूँ पक जानेपर उन्हें पिसाकर उस आटेको भट्ठीमें लोहेकी कढाईमें भूनना। इसी प्रकार ईख बोना और गन्नोंका रस पकाकर गुड़ बनाना। भुना हुआ आटा और गुड मिलानेसे गुड-मंडग तैयार होगा। यह कहकर संबंधियोंने उसे गेहूँ और ईखके बीज भी दिये। उन बीजोंको लेकर वह खुशी-खुशी घर आया, और पुत्रोके बहुत मना करनेपर भी हरी-भरी खेतीमें हल चलाकर उसे उजाडकर उसमें गेहूँ और ईखके बीज बोये और पानी देनेके लिए वही कुआँ खोदा, जिसमें पानी नहीं निकला। इस प्रकार मूर्ख बक गेहूँ और ईख ही नही उगा सका, फिर गुड-मंडग खानेका सुख तो उसे मिलता ही कैसे ? अपने जो काँगू और कोदो धान तैयार थे, उनसे भी हाथ धो बैठा। इसी प्रकार हमारा पति जंबू भी दिव्य सुखोंकी आशामें वर्तमान उपलब्ध सुखोंको छोड़ दोनोसे ही वंचित होकर पछतायेगा।'

यह कथा जंबूचरियं तथा परिशिष्ट पर्वमें प्राप्त होती है।

कथा सूत्रको जोडनेवाली बीचकी कथाएँ पहले दी जा चुकी हैं। आगेकी कथाएँ सभी चरितोंमें जंबूस्वामी तथा वधुओंके संवादके रूपमें आयी हैं। उसी क्रमसे वे यहाँ प्रस्तुत हैं।

दत्तश्री : हे नाथ, हम लोगोंको छोडकर तुम उस वानरके समान पश्चात्ताप करोगे जिसकी कथा इस प्रकार है, सुनिये—

[१५] मूर्ख वानर

'भागीरथीके तटपर एक अति स्नेही वानर-युगल एक वृक्षपर रहता था। एक बार बंदर कुछ प्रमादसे कूदा, तो सीधा भागीरथीमें जा गिरा और पुण्यसंयोगसे उसमें-से मनुष्यका रूप प्राप्त करके निकला। वानरीने यह देखा और झट भागीरथीमें कूद गयी तथा एक सुंदर स्त्रीका रूप पाया व दोनो सुखसे रहने लगे। एक बार पुरुषके मनमें आया कि अब यदि फिर कूदू तो मनुष्यसे देव हो जाऊँगा। स्त्रीने बहुत मना किया, और रोयी, पर वह दुर्बुद्धि नही माना और फिरसे भागीरथीमें कूद पड़ा व पुन. लाल मुँह वाला बंदर बन गया। स्त्री वनमें अकेली रह गयी। सुंदर नारीके रूपमें वह एक दिन निकटस्थ नगरके राजपुरुषोंकी दृष्टिमें पडी। वे उसे राजाके पास ले गये। राजाने उसके अप्रतिम सौंदर्यसे आकृष्ट हो, उसे अपनी पटरानी बना लिया।[१] इधर उस वानरको एक मदारीने अपने जालमें फँसा लिया और उसे मार-मारकर नाचना व खेल दिखाना सिखलाया। एक दिन मदारी बंदरके करतब दिखलाने उसी राजाके राजमहलमें ले गया। बंदरके खेलोंसे सब बहुत प्रसन्न हुए। अंतमें बंदर हाथ फैलाकर सबसे पैसा माँगने चला और राजाकी पटरानीके सामने पहुँचा। उसे देखकर वह पहचान गया और विकल होकर रो पड़ा। तब पटरानी बोली—उस समय कितना समझाया पर माने नही, अब क्यो रोते-पछताते हो ! इसी प्रकार हे नाथ, तुम भी उपलब्ध मनुष्य सुखोंको छोड़ दिव्य सुखोंके लालचमें दोनोको गँवाकर पछताओगे।'

१. 'जंबूचरियं'में यहीं कथा समाप्त।

यह कथा जंबूचरियंके अतिरिक्त परिशिष्ट पर्वमें तथा ज० सा० च० (संक्षिप्त), ब्रह्म जिनदास और राजमल्लके चरितोंमें भी प्राप्त होती है। संक्षिप्त रूपमें इसका उत्तर जंबूने इंगाल दाहकके आख्यानसे दिया।

[१६] नूपुर-पंडिता

इगाल दाहकका आख्यान सुन पद्मश्री बोली (परि० पर्व · पद्मसेना)—स्वामिन्, शरीरधारियोंका परिणाम (फल) कर्माधीन होता है। अतः तुम युक्तिपूर्वक भोगोंको भोगो। इसके दृष्टांत अनेक हैं, पर मैं नूपुरपंडिता विलासवतीका आख्यान कहती हूँ उसे सुनो—

'अंगदेशके वसंतपुर नगरमें जितशत्रु राजा था, सागरदत्त श्रेष्ठि, उसकी श्रीसेना नामक सेठानी, वसुपाल नामक पुत्र और विलासवती नामक पुत्रवधू।[1] एक बार विलासवती नदीमें स्नान करने गयी। वहाँ एक धूर्त युवक उसे देख उसपर आसक्त हो गया, और विलासवती उस युवकपर। एक परिव्राजिकाकी सहायतासे युवक उसके घरके पीछेके उद्यानमें रात्रिमें उससे अभिसार करनेमें सफल हुआ। इसी समय सागरदत्त लघुशंकादि निवारणार्थ उठकर वहाँ आया तो उसने पुत्रवधूको धूर्तके साथ सोते देखा, और प्रात.काल पुत्रको प्रमाण सहित बतलानेके लिए वधूके पैरका नूपुर निकालकर अंदर चला गया। विलासवती जगी तो थी ही, तुरंत धूर्तको तो वहाँसे भगा दिया और पतिको बुलाकर उसी स्थानपर उसके साथ आकर सो रही, तथा कुछ ही देर बाद हड़बड़ाकर उठी और बोली, देखो! देखो! तुम्हारे पिता अभी-अभी मेरे पैरका नूपुर निकालकर ले गये हैं, सबेरे मुझपर कलंक लगायेंगे कि मैं किसी पर-पुरुषके साथ सोयी थी। अब तुम जानो! 'तुम निश्चित रहो' कहकर श्रेष्ठिपुत्र सो गया!

प्रात.काल होनेपर पिताने पुत्रसे वह बात कही। पर पुत्र नहीं माना और बोला, 'वृद्धावस्थामें आपको भ्रम हुआ है। मेरी पत्नी बडी सती-साध्वी है। मैं ही उसके पास सोया था। आपको वहाँ जानेमें लज्जा आनी चाहिए थी', उलटे आप बहूपर कलंक लगा रहे हैं। सागरदत्त कुछ नहीं कह सका, पर जो कुछ उसने आँखो देखा वह झूठ नहीं था। विलासवतीने अपने श्वसुरके द्वारा लोगोंमें होनेवाली बदनामीसे बचने और अपने सतीत्वको सबके समक्ष प्रमाणित करनेका उपाय निकाला। उस नगरमें एक साक्षात् प्रभावशाली पवित्र यक्षका आयतन था। कोई अपराधी उस यक्षके पैरोंके बीचसे जीवित नहीं निकल सकता था। नगरमें घोषणा करा, नहा-धोकर सब नागरिकोंके जुलूसके साथ वह यक्षके मंदिरमें पहुँची, इधर उसने उस धूर्त युवकको कहलवा दिया कि तुम पागलका रूप बनाकर यक्ष मंदिरमें सबके सामने मेरा आलिंगन कर लेना! धूर्तने ठीक समय वहाँ पहुँचकर वैसा ही किया। विलासवतीने उसे दुत्कार दिया और यक्षसे निवेदन किया कि मेरे पति और सबके सामने इस पागलको छोडकर यदि किसी पर-पुरुषने मेरा स्पर्श किया हो तो तुम मुझे दंड देना! इतना कह, जबतक यक्ष कुछ निर्णय ले, वह झटसे उसके पैरोंके बीचसे होकर साफ-साफ निकल गयी। लोगोंने उसका बडा जय-जयकार किया और श्रेष्ठिकी भर्त्सना।[2]

यह सब स्त्री-चरित्र देख चिंता, शोक व ग्लानिके कारण श्रेष्ठिकी नींद उड गयी। राजा जितशत्रुके पास भी श्रेष्ठिके निरंतर जागते रहनेकी बात पहुँची। राजाने उसे बुलवाकर अपने अंत:पुरका रक्षक नियुक्त कर दिया।

श्रेष्ठि रात्रिमें जागता हुआ पहरा देने लगा। इसी बीच उसने एक रानीको बार-बार प्रासादके वातायनसे झाँकते देखा। उसे कुछ संदेह हुआ और वह सोनेका बहाना करके पड रहा। तब उसने देखा कि राजाका पट्ट हाथी महावतखानेसे निकला, उसी वातायनके नीचे पहुँचा। उसने अपनी सूँड ऊपर उठा दी और वह रानी उसकी सूँडके सहारे नीचे उतर महावतखानेमें आयी। वहाँ आनेपर महावत उसपर बहुत रुष्ट हुआ और उसे हाथीकी साकलोंसे पीटा व देरसे आनेका कारण पूछा। रानीने नये रक्षककी नियुक्तिकी बात कहकर उससे हाथ जोडकर क्षमा माँगी और फिर उसके साथ भोग करके हाथीके सूँडपर चढकर उसी

१. परि० पर्व, राजगृह नगर, देवदत्त सुनार, देवदिन्न पुत्र, दुर्गिला पुत्रवधू।

२. तुलना : जातकट्ठकथा अंडभूत जातक क्र० ६२।

वातायनके मार्गसे वापिस प्रासादमें जाकर सो रही।[1] यह घटना देख श्रेष्ठिको हुआ—आह ! जब राजमहलों तकमें ऐसा होता है तो हम साधारण लोगोंकी स्त्रियोंकी क्या बात ? इस विचारसे उसे जो निर्वेद-भाव आया, उससे उसकी चिंता मिट गयी और वह प्रगाढ निद्रामें लीन हो गया, तथा सात रात-दिनों तक निरंतर सोता रहा। राजाने उसे बीचमें जगाया नहीं, जागनेपर निद्रा आनेका कारण पूछा। श्रेष्ठिने आद्योपात अपनी पुत्रवधूसे लगाकर जो कुछ प्रासादमें देखा वह सब कह सुनाया। कुशलतासे उस रानीकी पहचान की गयी और राजाने अपनी उस पटरानीको महावतके साथ उसी पट्टहस्तिपर चढाकर हस्ति सहित ऊँचे पर्वतकी चोटीसे गिराकर मार डालनेकी आज्ञा दे दी। हाथीकी अद्वितीय दक्षताके कारण लोगोंने राजासे उसके प्राण न लेनेका आग्रह किया और उसीके साथ रानी और महावतको भी प्राण-भिक्षाके बदले देश-निकालेका आदेश प्राप्त हुआ।

महावत रानी (अब उसकी स्त्री) के साथ वहाँसे निकल किसी दिन कहीं दूसरे राज्यमें किसी ग्रामके बाहर एक रात-भरके लिए एक शून्य देवालयमें आकर ठहरा। रात्रिमें जब ये दोनों सो रहे थे, नगरसे एक चोर चोरी करके वहां आया और अंधेरेमें स्त्रीसे टकरा गया। स्त्री चोरको देखते ही उसपर मुग्ध हो गयी और उससे कहा—यदि तू मेरा भर्तार बनना स्वीकार करे, तो मैं तेरी प्राण-रक्षा करूँगी। चोरने स्वीकार किया। इतनेमें रक्षक राजपुरुष चोरको खोजते हुए वहां पहुँचे। स्त्रीने चोरको अपना पति बतला दिया, वह बच गया, और उसके बदले सोता हुआ निरपराध महावत पकड़ लिया गया। उसे फाँसीका दंड मिला, और मरनेके पूर्व एक श्रावकसे णमोकार मंत्र प्राप्त कर, उसका जाप करते हुए, अपने दुष्कृत्योंका प्रायश्चित्त करके मरकर स्वर्गमें देव हुआ।

इधर चोर स्त्रीको लेकर वहाँसे भागा और एक विशाल नदीके तीरपर पहुँचा। आगे कथा जं० सा० च०के समान, अंतर केवल यह कि महावतके जीवने स्वर्गमें देव होकर अवधिज्ञानके बलसे स्त्रीकी दशाको देखा और उसे चोर-द्वारा ठगी जाकर नदीके इस तीरपर झाड़ोंके बीच नंगी रोती खड़ी देखकर, उसपर अनुकंपा करके अपनी देवमायासे मांसका टुकड़ा मुँहमें लिये हुए शृगाल, बाज पक्षी और मत्स्यके रूप बनाये, और शृगालके रूपमें मनुष्यवाणीमें उसपर व्यंग्य करके उसे अपना देव-रूप दिखला, महावतका स्मरण दिलाकर प्रतिबोध दिया और हीन दुश्चरित्रमय जीवनसे छुटकारा दिलाकर उसे धर्मकी साधनामें प्रवृत्त किया।

इस प्रकार हे जंबू ! विलासवती अपनी चतुराईसे मानवीय भोग भोगनेमें सफल रही, और दूसरी ओर रानी महावतके सुखको छोड़, चोरके सुखकी लालचमें दोनोंको खो बैठी।[2] अतः तुम भी युक्ति-पूर्वक मनुष्य सुखोंको भोगो, व दिव्य सुखोंकी लालसासे इन्हें छोड़ दोनोंसे वंचित मत होओ।

यह कथा जंबूचरियके अतिरिक्त परिशिष्ट पर्वमें पूर्ण तथा जं० सा० च०, ब्रह्म जिनदास तथा पं० राजमल्लके चरितोंमें संक्षेपमें पायी जाती है।

[१७] मेघरथ-विद्युन्माली

जंबू : ओ पद्मश्री ! मैं विषयसुखोंके लोभमें अंधा होकर अपने लक्ष्यसे भ्रष्ट होना नहीं चाहता।

पद्मश्री : स्वामिन् ! यह सब ठीक है, पर आप एक वर्ष हम लोगोंके साथ भोग करें, उसके उपरांत हम लोग भी आपके साथ गुरुके पादमूलमें दीक्षा ले लेंगी।

जंबू : हे पद्मश्री ! जो भोगेच्छा अनेक जन्मोंमें भोग-भोगकर तृप्त नहीं हुई, भला वह एक वर्षमें कैसे तृप्त हो सकेगी ? इस संबंधमें मैं एक दृष्टांत देता हूँ, उसे तुम ध्यानसे सुनो ! वैताढय पर्वतपर देवताओंके गगनवल्लभ नामक नगरमें दो विद्याधर भाई मेघरथ, विद्युन्माली रहते थे। एक बार कुछ विद्यासाधनके लिए, जिसमें उन्हें चांडाल कन्याओंसे विवाह कर एक वर्ष तक उनके साथ ब्रह्मचर्य-पूर्वक रहकर विद्या सिद्ध

1. तुलना : कथासरित्सागर, टौने कृत अनुवाद, भाग १, पृ० १६९ की कथा।

2. तुलना—जातकट्ठकथा : चुल्लधनुग्गह जातक; तथा चीनी भाषासे अँगरेज़ीमें एस० जूलियन-द्वारा अनूदित अवदान, भाग २, पृ० ११ की कथा।

करनी थी, वे दोनों चांडाल देशको गये। वहाँ पहुँचकर अपने बुद्धि-कौशलसे उन्होंने दो चाडाल कन्याओंसे विवाह कर लिया, और विद्यासाधन करने लगे। मेघरथ चाडाल कन्याके मोह-पाशमें नहीं पडा, और नियमानुसार वर्ष-भरमें विद्या सिद्ध कर ली। पर विद्युन्माली भयानक विरूप-कुरूप और विकृत आकृतिवाली चाडाल कन्याके बाहु-पाशमें फँस गया, और स्वयं चाडालोंके समान रहने लगा, तथा विद्यासाधनके बदले उसे प्राप्त हुआ चाडाल-कन्यासे एक पुत्र। वर्ष भर बाद जब मेघरथने उसका यह हाल देखा, तो उसे बहुत समझाया, और एक वर्ष बाद आनेको कहकर अपने नगरको चला गया, तथा वहाँ प्रभुत्व, सत्ता, संपत्ति, अनेक अपूर्व सुंदरी विद्याधर कन्याएँ, यश, सम्मान आदि प्राप्त कर देवोपम सुखसे रहने लगा। वर्ष-भर बाद पुन विद्युन्मालीको देखने गया, तो पाया अब वह दो पुत्रोंका पिता बन चुका था। फिर उसे समझाया! पर विद्युन्मालीको बोध नहीं हुआ। वह चांडालीके विषय-सुखको छोड नहीं सका और उसीमें अंधा होकर अपना सब कुछ विद्याधरपना खोकर वहीं अधम चाडाल होकर रह गया। तो हे पद्मश्री! मैं विद्युन्मालीके समान इंद्रिय भोगोंमें पडकर अपने मोक्षरूपी लक्ष्यसे भ्रष्ट नहीं होऊँगा!'

यह कथा जबूचरियके अतिरिक्त केवल परिशिष्ट पर्वमें उपलब्ध होती है।

[१८] शंखधमक

पद्मसेना (परि० पर्व : कनकसेना) : देखो स्वामिन्! उपलब्ध सुखोंको छोड अनुपलब्ध मोक्ष सुखके लिए अतिशय उत्कंठित मत होओ! अन्यथा तुम्हारी दशा शंखधमक किसान जैसी होगी।

जंबू : कैसे पद्मसेना?

पद्मसेना : सुनिये नाथ! मैं उसकी कथा सुनाती हूँ—'शालिग्रामका एक कृषक ऊँचे मचानपर बैठ पशु-पक्षियोंसे खेतकी रक्षाके लिए रात्रिमें खूब जोरसे शंख बजाया करता था। एक रातको चोरोंका एक दल चोरीके पशुओंका एक झुंड हाँककर ले जाते हुए किसानके खेतके पाससे निकल रहा था। उसी समय किसानने खेतपर पशुओंका आक्रमण समझ उच्च-ध्वनिसे शंख फूँका। 'बहुत लोग हमारा पीछा कर रहे हैं', ऐसा समझ चोरोंका दल पशुओंको वहीं छोड भाग गया। प्रातःकाल किसानने बिना ग्वालेके पशुओंके उस झुंडको वहीं चरते देखा। वह उन पशुओंको हाँककर गाँवमें ले गया। 'एक देवताने मुझे ये पशु भेंट किये हैं,' ऐसा कहकर उन्हें सब गाँववालोंको बाँट दिया।[1] दूसरे-दूसरे चोर भी इसी तरह अपना चुराया हुआ सब धन आदि छोडकर भाग जाते रहे। पर इस सस्ती प्रसिद्धि और चोरोंकी संपत्तिका कडुआ फल उसे शीघ्र ही मिल गया। एक रातमें चोरोंका वही दल पुन उसी मार्गसे निकला, और फिर वैसी ही शंख-ध्वनि सुन, उसे पहचान, अपनी पुरानी भूलको समझ खेतमें घुस गये, तथा उस मचानको उखाडकर किसान सहित नीचे पटक दिया। किसानको बहुत मारा-पीटा, यातना दी और नंगा करके अकेले रोते छोड, उसके पशु व अन्य जमा पूँजी सब-कुछ लेकर चले गये। इसी प्रकार मोक्ष सुखकी अति उत्कंठावश कहीं तुम अपने प्राप्त सुखोंको भी मत खो बैठना!'

यह कथा जंबूचरियके अतिरिक्त परि० पर्वमें इसी रूपमें तथा इसके स्थानपर जं० सा० च०, ब्रह्म जिनदास एवं पं० राजमल्लके चरितोंमें शंख नामक कबाडीका आख्यान मिलता है। इसके उत्तरमें जंबूने कामातुर यूथपति वानरका आख्यान सुनाया।

[१९] बुद्धि-सिद्धि

तब हाथ जोडकर कनकसेना (परि० पर्व नभसेना) बोली—नाथ! कहीं दिव्य-सुखोंके अति लोभके कारण तुम्हारी अवस्था बुद्धि नामक वृद्धा जैसी न हो, जिसकी कहानी इस प्रकार सुनी जाती है—

'भरत क्षेत्रमें मार्कंदानगरमें बुद्धि-सिद्धि नामकी दो वृद्धाएँ रहती थीं। ये परस्पर बहुत ही घनिष्ट मित्र थीं, और दोनों ही दारिद्र्यसे अत्यंत दुखी थीं। बुद्धि दीर्घ कालसे सच्चे भक्ति भावसे गोत्र

1. विमल प्रबंधके अनुसार अन्यत्र जाकर बेच दिया।

नामक यक्षकी पूजा कर नैवेद्य और पुष्प चढाया करती थी। उसकी सच्ची भक्तिसे प्रसन्न हो यक्ष वुद्धिकी इच्छानुसार सुखपूर्वक जीवन-यापन हेतु प्रतिदिन उसे एक दीनार प्रदान करने लगा। इससे वुद्धि शीघ्र ही पड़ोसियोंमें सवसे धनवान् बन गयी! सिद्धिको यह रहस्य ज्ञात होनेपर वह भी यक्षको प्रसन्न कर वुद्धिसे दुगुना प्राप्त करनेमें सफल हुई। अब इन दोनोंमें कुस्पर्धा प्रारंभ हो गयी, और वार-बार यक्षको भेंट देकर एक-दूसरेसे दुगुना मांगती रहीं। यक्ष भी देता चला गया। एक बार सिद्धिने अत्यंत दूषित चित्त हो, यक्षसे अपनी एक आँख फोड देनेको कहा, यक्षने वैसा ही किया। वुद्धिने पुनः यक्षको प्रसन्न करके सदाकी तरह जो कुछ सिद्धिको दिया उससे दुगुना माँगा और दोनों आँखें गँवा बैठी। इसी प्रकार तुम भी दिव्यसुखोंके अतिलोभमें पड़कर कहीं दोनों लोकोंके सुखोंको न खो बैठो!'

यह कथा जंबूचरियंके अतिरिक्त केवल परिशिष्ट पर्वमें मिलती है।

[२०] जात्यश्व

जंबू : कनकसेना! मैं ऐसा मूर्ख नहीं हूं। मैं तो श्रेष्ठ कुलीन अश्वके समान कभी भी सत्यका मार्ग नहीं छोड़ूंगा। सुनो कैसे?

'वसंतपुरके राजा जितशत्रुकी घुडसालमें एक बडा भाग्यवान् और श्रेष्ठ लक्षणोंसे संपन्न घोड़ा था। उसके पुण्य प्रभावसे राजा दिनों-दिन बलवान् एवं दुर्जेय होता गया। राजाने वह घोड़ा सुरक्षा एवं लालन-पालन हेतु अपने नगरके पवित्र हृदय और विश्वसनीय जिनदास नामक श्रावकको सौंप दिया। जिनदास बहुत ध्यानसे घोडेकी देख-रेख करने लगा। वह उसपर बैठकर उसे एक पुष्करिणीमें ले जाता, स्नान कराता और रास्तेमें एक जिनमंदिरकी तीन प्रदक्षिणा देकर वापस ले आता। यही उसका दैनिक मार्ग और क्रम था। पडोसी राजा, जितशत्रुकी दुर्जेयतामें घोडेके प्रभावका रहस्य जान, घोडेको मारने या चुरानेका उपक्रम करने लगे, पर जिनदासकी सावधानीके कारण कोई कुछ कर नहीं पाया। एक प्रतिद्वंद्वी राजाके मंत्रीने घोड़ा चुरानेके लिए छह महीनेकी अवधि माँगी। वह जैन श्रावक बनकर वसंतपुर गया, और जिनदासका विश्वासपात्र बनकर उसके घर रहने लगा। किसी समय जिनदासको आवश्यक गृहकार्यसे दूर गाँवमें अपने संबंधियोंके घर जाना पड़ा। वह अपना घर-बार और घोड़ा, सब कुछ उस कपटी श्रावकके भरोसे छोड़ गया। रातमें उस कपटीने घोड़ेको खोल अपने राज्यमें भगा ले जानेका प्रयास किया, पर घोड़ा घरसे पुष्करिणी, वहाँसे मंदिर और मंदिरसे वापिस घर, इस मार्गके सिवाय कितनी भी मार-पीट और कुछ भी करने पर, अन्य मार्गपर एक पग भी नहीं गया। इस तरह जब सारी रात बीत गयी और सवेरा हो गया तो वह कपटी मंत्री घोडेको छोड भाग निकला। लौटनेपर जिनदासको सब पता चल गया, पर घोड़ा सुरक्षित था, इससे जिनदासको परम आनंद हुआ। इसी प्रकार हे कनकसेना! ये इंद्रियोंरूपी चोर मुझे कितना भी बहकायें, फुसलायें या यातना दें, पर मैं इनका वशवर्ती हो अपना मोक्षका मार्ग नहीं छोड़ूंगा!'

यह कथा जंबूचरियं तथा परिशिष्ट पर्वमें उपलब्ध होती है।

[२१] ग्रामबोड-पुत्र

कनकश्री (परि० पर्व : कनकसेना) : स्वामिन्! ऐसा कदाग्रह करके ग्रामबोड (या गाँवकूट— गाँवका सबसे उदार व्यक्ति) पुत्रके समान मूर्ख मत बनिये! सुनिये—

'भारतके वंग प्रदेशमें मद्दालंद नामक गाँवमें ग्रामबोडकी विधवा पत्नी अपने अत्यधिक आलसी पुत्रके साथ रहती थी। एक बार उसने कुछ भी न करनेके लिए पुत्रकी बहुत भर्त्सना की। तब पुत्रने कहा— माँ, अबसे मैं जीनेके साधन जुटानेके लिए अपनी शक्ति-भर सब कुछ करूंगा। एक दिन जब गाँवके लोग एक गोष्ठीमें बैठकर गप्-शप् कर रहे थे, तभी गाँवके कुम्हारका एक दुष्ट गधा रस्सा तुड़ाकर भाग निकला। कुम्हार, पकडो! पकड़ो! चिल्लाता हुआ उसके पीछे दौडा। कोई उस दुष्ट गधेको पकड़ने आगे नहीं बढ़ा। तब उस ग्रामकूट पुत्रको लगा कि अपना पुरुषार्थ दिखाकर यह कुछ अर्थ-प्राप्तिका अवसर है, ऐसा सोच उसने दौड़कर उस गधेकी पूँछ पकड़ ली। गधा उसे दुलत्तियाँ मारने लगा, लोगोंने भी उसे बहुत कहा,

पर उसने पूँछ नहीं छोडी। अंततः गधेने जोरसे उसके मुँहपर लात मारी, उसके सारे दाँत टूट गये, और वह पछाड़ खाकर गिर पडा। इसी प्रकार स्वामिन्! मोक्षके लिए दुराग्रह करके मूर्ख मत बनिये!'

यह कथा भी जंबूचरिय, तथा परिशिष्ट पर्वमें उपलब्ध होती है।

[२२] घोड़ीपालक

जंबू : कनकश्री! नारीमें प्रेम करनेका परिणाम बड़ा बुरा होता है। कैसे? इसे मुझसे सुनो—

'भारतके कलिंग प्रदेशमें सिंहनिवास नामक ग्राममें किसी एक भुक्तिपालके पास बहुत उत्तम घोड़ी थी। उसने उसे सोल्लक नामक एक व्यक्तिके पास देख-रेखके लिए रख दिया। पर सोल्लक घोडीको खानेके लिए दी जानेवाली अच्छी-अच्छी वस्तुओंमें-से थोड़ी-सी ही उसे देता, शेष कुछ स्वयं खा लेता और कुछ बेच देता। क्रमशः क्षीणकाय होते-होते घोड़ी अंततः चल बसी। अपने समयपर सोल्लक भी मर गया। पर अपने दुष्कृत्यके परिणाम स्वरूप वह बार-बार पशु जातिमें जन्मा। बहुत जन्मोंके बाद एक दरिद्र ब्राह्मणके यहाँ पुत्र रूपमें उत्पन्न हुआ। उसका नाम सोमदत्त रखा गया। लगभग उसी समय कई जन्मांतरोंके उपरांत घोड़ी भी उसी नगरकी एक वेश्याकी पुत्री होकर, नगरमें सर्वोच्च सुंदरी कन्या हुई। युवकोंमें उसकी कृपा प्राप्त करनेकी होड लग गयी। सोमदत्त भी उसपर अत्यंत आसक्त था, पर दरिद्र होनेके कारण वेश्यापुत्री उसकी ओर अच्छी प्रकार देखती तक नहीं थी। फिर भी कमसे कम उसके सान्निध्यमें रहने हेतु अत्या-सक्तिवशात् सोमदत्त उसका सेवक बन गया। पर कोई उसे चाहता नहीं था। अतः जब उसे घरसे निकाला जाने लगा तो उसने कठोरसे कठोर दंड, यातना, भूख-प्यास सब कुछ सहना स्वीकार किया, परंतु अपनी प्यारी वेश्यापुत्रीका घर नहीं छोड़ा। तो हे कनकश्री! मैं तुम लोगोंके प्रेमाधीन होकर, उस ब्राह्मण पुत्रके समान यातनाओंमें नहीं पड़ूँगा।'[2]

यह कथा भी जंबूचरियं तथा परिशिष्ट पर्वमें पायी जाती है।

[२३] मा-साहस पक्षी

कमलवती : हे नाथ! मा-साहस पक्षीके समान दुःसाहसी मत होइये! सुनिये—

'किसी जंगलमें एक पक्षी सोते व्याघ्रके मुखमें घुसकर उसके जबडोंमें लगा मांस नोच-नोचकर खाता, बार-बार उड़कर पेडकी डालपर जा बैठता। मा साहस! (दुःसाहस मत करो) मा साहस! कहता और फिर व्याघ्रके मुखमें प्रवेश कर मांस नोचने लगता। सोचो! उस पक्षीकी कथनी क्या? और करनी क्या? तथा उसका परिणाम क्या हुआ होगा? स्वामिन्, तुम भी उस मा-साहस पक्षीके समान बन रहे हो![1] तुम चाहते मुक्त हो, पर सुखके साधनोंकी निंदा करते हो, और साक्षात्सुखको छोड अदृष्ट सुखकी चाहसे तप करनेको उद्यत हुए हो। हे भोले नाथ! तुम्हारे कथन और कर्ममें मा-साहस शकुनि जैसा साक्षात् विरोध दिखाई देता है।'

यह कथा भी जंबूचरियं और परिशिष्ट पर्वमें मिलती है।

[२४] तीन-मित्र

जंबू : हे कमलवती! मैं सच्चा मित्र, संबंधी, प्रेमी और हितैषी कौन होता है, उसे जानता हूँ। अतः तुम लोगोंकी बातोंमें पडकर अपने स्वार्थ (परमार्थ) से वंचित नहीं होऊँगा। सुनो! मैं तुम लोगोंको तीन (प्रकारके) मित्रोंका एक आख्यान सुनाता हूँ—

'क्षितिप्रतिष्ठ नगरमें अपराजित नामक राजा था। उसका सुबुद्धि नामक मंत्री था,[2] जिसके तीन मित्र थे—सहमित्र, पर्वमित्र, जोहार (प्रणाम) मित्र। सहमित्र निरंतर सुबुद्धि मंत्रीके साथ रहता। खाना,

१. तुलना : महाभारत २, १५४८।

२. परि० पर्व : जितशत्रु राजा; सोमदत्त ब्राह्मण—कुल पुरोहित व प्रधान अमात्य।

पीना, सोना, उठना, बैठना सब कुछ साथ ही करता, और सुबुद्धि भी दिन-रात उसकी देख-भाल रखता। ये दोनो घनिष्ठतम मित्र थे। पर्व-मित्रसे जब कभी विशिष्ट प्रसंगों-पर भेंट हुआ करती, तब दोनों प्रेमसे एक साथ मिलकर उठते-बैठते, खाते-पीते। जोहार मित्रसे यदा-कदा भेंट हो जानेपर आपसमें केवल प्रणाम भर हुआ करता और बस। एक बार किसी कारण राजा अमात्य पर अत्यधिक क्रुद्ध हो गया। अमात्य अपने प्राण बचाने हेतु राजाके पाससे भाग निकला और सहमित्रके घर पहुँचा। ऐसी स्थितिमें भी सुबुद्धि मंत्रीने सहमित्रकी शरण नही मागी, केवल दूसरे देशको चले जानेमें सहायताकी अपेक्षा की। सहमित्रने उत्तर दिया—'तुम कौन हो? कहाँसे आये हो? मैं तुम्हें नही जानता। तुम मेरे घरसे तत्क्षण निकल जाओ! मैं तुम्हारी कोई सहायता नही कर सकता।'

अमात्य अत्यंत निराश हो पर्व-मित्रके घर पहुँचा। उसने अनादर तो नही किया, बल्कि सम्मान किया, परदेश जानेमें कोई सहायता नही दी। हाँ परंतु चौराहे तक जाकर छोड़ आया और कहा—'इस रास्तेसे चले जाओ।

अब बिलकुल निराश हो, सहायताकी कोई अपेक्षा न कर वह बड़े संकोच और संभ्रमके साथ जोहार मित्रके घर पहुँचा। उसने बिना कुछ कहे-सुने-सब जान लिया। सुबुद्धि मंत्रीका अपनी आत्माके समान सम्मान-सत्कार किया। आत्मीयतापूर्वक अपने घरमें रखा और परदेशमें भी उसके साथ गया। वहाँ दोनो सुखसे साथ-साथ रहने लगे।'

इस दृष्टांतमें सुबुद्धि-मंत्री आत्मा है, सहमित्र देह, पर्व-मित्र स्वजन-संबंधी, और जोहार मित्र है धर्म। *राजाका क्रोध यमदंडका पतन (मृत्यु) है, चौराहा श्मशान है, जहाँ तक स्वजन संबंधी साथ देते हैं* और परदेश है परलोक जहाँ केवल धर्म ही साथ जाता है, अन्य कोई नही।

यह कथा जंबूचरियं तथा परिशिष्ट पर्वमें पायी जाती है।

[२५] चतुर ब्राह्मण कन्या

यह सब सुनकर सबसे अंतमें आठवीं विजयश्री (परि० पर्व जयश्री) नामक वधू जंबूस्वामीसे इस प्रकार कहने लगी—हे स्वामिन्! माना कि तुम अतिशय बुद्धिमान्, चतुर और महान् प्रतिभावान् हो, पर चतुर भट्टपुत्रीके समान ये सब झूठे कथानक कहकर तुम दूसरोको बहका सकते हो, हम लोगोको नही! सुनिये। मैं सुनाती हूँ कि उस भट्टपुत्रीकी चतुराईकी कथा—

'वाणारसी (वाराणसी) नगरीमें अपराजित राजा था।[1] उसे प्रतिदिन कहानियाँ सुननेका व्यसन था। नगरके ब्राह्मणोकी यही उपजीविका थी। इसी नगरमें नागशर्म ब्राह्मण, सोमश्री ब्राह्मणी व उनकी एक चतुर कन्या थी।[2] ब्राह्मण था अशिक्षित। सो एक दिन राजाको कहानी सुनानेकी उसकी पारी आ गयी। उस दिन ब्राह्मण घरमें बड़ा दु:खी, दुर्मना, चिंतित दिखाई-दिया। यह देख पुत्रीसे न रहा गया, बोली—'पिताजी! आज आप ऐसे व्याकुल क्यो लग रहे है? क्या कारण है? कहिये भी तो;' और पितासे इसका कारण जान, कन्याने कहा—पिताजी आप चिंतित न हो, आज आपके बदले मैं राजाको कहानी सुनाने जाऊँगी।' यह कहकर कन्या राजदरबारमें पहुँच निर्भीक भावसे राजासे बोली—'राजन्! मुझे बालक समझकर मेरा अपमान न किया जाय! आज अपने पिताके बदले, मै आपको कहानी सुनाऊँगी।' राजाने कहा—सुनाओ! तब कन्या कहने लगी—

एक बार मेरे माता-पिता एक समागत ब्राह्मण पुत्रके साथ मेरा वाग्दान करके; उसे व मुझे घरमें छोड़; विवाहके लिए सामग्री माँगने चले गये। रात्रिमें मैं भी उसके साथ सो रही, और अपने हाव-भाव विकारोसे उसे उत्तेजित कर दिया। इससे वह मेरे साथ बलात्कारको उद्यत हो गया। मैं चिल्ला पड़ी! आस-पासके लोग इकट्ठे हो गये। वह भयभीत हो मेरी खाटके नीचे छिप गया। मैंने आये हुए लोगोसे कहा यह मेरा स्वामी है। मैंने आज ही इसका वरण किया है। अब यह अचानक अस्वस्थ हो

१-२. परि० पर्वः रमणीय नामक नगर, नागश्री नामक ब्राह्मण कन्या; शेष कोई नाम नहीं।

गया है। तब, 'इसकी सेवा करो, मलो, मर्दन करो' ऐसा कहकर लोग चले गये। मैं फिर उसके साथ सो गयी। अब मेरे साथ सुरत क्रीडाकी तीव्र अभिलाषा आदि कामविकारोको दबानेसे उसे अचानक असह्य शूल वेदना उत्पन्न हो गयी और उसीसे उसका प्राणांत हो गया। मैंने रो-धोकर, गड्ढा खोदकर उसे वही गाड दिया। ऊपरसे लीप दिया और धूप दे दी। इतनेमें सवेरा हो गया। माता-पिता लौटकर आ गये। मैंने उनसे सब वृत्तांत कह दिया। यही मेरी कहानी है।' इतना कह वह चतुर ब्राह्मण-कन्या चुप हो गयी। राजाने पूछा, 'यह सब सच है या झूठ?' कन्याने उत्तर दिया—आपने अब तक जो अन्य कहानियाँ सुनीं, यदि वे सब सच हैं, तो यह भी सच है; आदि।[1] इस प्रकार, हे स्वामिन्! ब्राह्मण कन्याके समान झूठी कथाएँ सुनाकर तुम हम लोगोको बहकानेमें सफल नही होगे!

यह कथा भी जंबूचरियं तथा परिशिष्ट पर्वमें उपलब्ध होती है।

इसपर जंबूस्वामीने कहा—मैं ललितांग (ज० सा० च० : चंग, अंतर्कथा क्र० १६) के समान विषयाध नही हूँ! इन सब आख्यानोके उपरात सबको निश्चय हो गया कि जंबूस्वामी किसी भी प्रकार दीक्षा लेनेके निश्चयसे नही डिगेंगे, तो सभीनें उनके साथ प्रव्रज्या लेनेका निर्णय किया। अंतमे जंबूने निम्नलिखित दो दृष्टात और सुनाये। पहला दृष्टात सम्यग्दृष्टि (सच्चा-श्रद्धावान्) सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्रित श्रद्धावान्) और मिथ्यादृष्टि पुरुषोके संबंधमें प्रतीक रूपसे है।

[२६] तीन वणिक् और खदानें

तीन पुरुष दारिद्र्य पीडित हो अर्थोपार्जनके निमित्त परदेशको चले। राहमें चलते जाते वे एक भयंकर अटवीमें फँस गये। पर उनके भाग्यसे अटवीमें आगे चलकर उन्हें लोहेकी एक खदान मिली। तीनोंने जितना हो सका, उतना लोहा ले लिया। और आगे चलनेपर उन्हें चाँदीकी खान मिली। एकने सब लोहा फेंककर चाँदी ले ली, दूसरेने 'इतनी दूरसे ढोकर ला रहा हूँ, इसलिए सब लोहा कैसे फेंकूँ', ऐसा कहकर आधा लोहा छोडा, उतनी चाँदी ले ली। तीसरा यही कहकर लोहा ही लिये रहा। पहलेने दोनोको बहुत समझाया कि भाई लोहेकी अपेक्षा चाँदी अधिक बहुमूल्य है, अतः सब लोहा फेंककर चादी ले लो? पर वे दोनो अपनी-अपनी बातपर अडे रहे, उसका कहना नही माना। और आगे जानेपर सोनेकी खान मिली। पहलेने चाँदी भी सब फेंक दी और पूरा सोना ले लिया। दूसरेने अपने तर्कके अनुसार तीनो वस्तुएँ बराबर परिमाणमें ले ली। तीसरा अपने कदाग्रहके कारण लोहा ही लिये रहा। पहले व्यक्तिके समझानेको फिर भी दोनो नही माने। इसके बाद वे घर लौट आये। पहला सर्वसुखी हो गया। दूसरा मध्यम, और तीसरा वैसा दरिद्रका दरिद्र रह गया।

ये तीन व्यक्ति क्रमश. (१) सम्यग्दृष्टि (२) सम्यग्मिथ्यादृष्टि और (३) मिथ्यादृष्टि व्यक्तियोके प्रतीक है। प्रथम प्रकारके व्यक्ति सब मतोको छोड, सच्चा मार्ग ग्रहण कर मोक्ष पाते है। दूसरे नाना मतोके बखेडेमें आगे नही बढते। उनकी नीचे गिरनेकी संभावना बनी रहती है। और तीसरे अनत दुखोसे परिपूर्ण इस अतर-अथाह अपार संसार-सागरमें जन्म-जन्मातरोमें भटकते रहते हैं।

यह कथा केवल जंबूचरियंमें पायी जाती है।

---

१. परिशिष्ट पर्वमें कहानी कुछ प्रकारांतरसे है। नागश्रीने राजासे कहा—'एक बार मेरे माता-पिता यात्रापर गये थे। पीछेसे जिससे मेरा वाग्दान किया था, वह घर आ गया। मैंने यथासंभव उसका उचित सम्मान-सत्कार किया। रात्रिमें घरमें एक मात्र शैय्या होनेके कारण, गंदी भूमिपर न लेटकर मैं भी चुपचाप उसके पास लेट गयी। स्पर्शसे उसे मेरी उपस्थितिका पता लग गया, और एकाएक उठी हुई अपनी तीव्र कामवासनाको दबानेके प्रयास व आत्मलज्जा जनित क्षोभके कारण उसकी तत्क्षण मृत्यु हो गयी। 'इन परिस्थितियोंमें मैं ही इसकी मृत्युकी अपराधिनी मानी जाऊँगी....' इस भयसे मैंने उसके मृत देहके टुकड़े-टुकड़े काट, गुप्तस्थानमें गड्ढा खोदकर गाड़ दिया, और घटनाके सारे चिह्नोंको मिटा दिया। तब माता-पिता आये।

[२७] आख्यान—चिंतामणि (द्रव्याटवी-भवाटवी)

उपर्युक्त दृष्टांत सुनानेके पश्चात् जंबूस्वामीने सबको धार्मिक आशयों-प्रतीकोंसे परिपूर्ण निम्नलिखित धर्मकथा सुनायी। यह कथा बडी होनेसे लौकिक अर्थोंके साथ उनके आध्यात्मिक आशयोंको साथ-के-साथ कोष्ठकोंमें दिया जा रहा है। गुणपालने इस दृष्टांतको चिंतामणि रत्नके समान सर्वोत्कृष्ट फलदायी आख्यान कहा है—

अवंति देशकी उज्जयिनी नामक नगरीमें धन नामक सार्थवाह रहता था। कदाचित् वह नाना भांड भर कर रत्नद्वीपको प्रस्थान करनेके लिए उद्यत हुआ। नगरके दुःखी लोगोंपर अनुकंपा करके, यह सोचकर कि इन्हें रत्नद्वीपमें शिवपुरीमें स्थापित कर दूँगा, जहाँ ये सब सुखसे रह सकेंगे; उसने नगरमें अपने रत्नद्वीपको गमनकी घोषणा करा दी, और कहला दिया कि जो भी लोग उसके साथ चलना चाहें प्रसन्नतासे चल सकते हैं। बहुत लोग (जीव) आये। सार्थवाह (सद्गुरु, केवलज्ञानी अर्हंत) ने कहा—शिवपुरी (मोक्ष) के मार्गमें एक भयानक अटवी (भव—जन्म-परंपरा) पडती है। उसमें-से दो रास्ते जाते है, एक सीधा (साधु-धर्म) दूसरा टेढा (गृहस्थ-धर्म)। टेढा रास्ता बहुत लंबा है। उससे बहुत देरसे, पर सुखसे शिवपुरी पहुँचते हैं। सीधा रास्ता छोटा है। उससे शीघ्र पहुँचते हैं, पर वह बहुत कष्टकर है। उस रास्तेमें बहुत काँटे (बाधाएँ) हैं और महा भयानक सिंह, व्याघ्र, (राग-द्वेष) आदि भी मिलते हैं। प्राय दोनों मार्गोंमें चलनेवाले पुरुष (आत्माएँ) प्रमादवश भटक कर उन्मार्गमें लग जाते हैं, और जीवन पर्यंत चलनेपर भी फिर उन्हें सच्ची राह नही मिलती। शिवपुरीके मार्गमें आगे बढनेपर खूब घने हरे-भरे सुगंधित पत्र-पुष्प फलोंसे लदे हुए शीतल छाया-वाले बड़े आकर्षक मनोरम वृक्ष (देव-मनुष्य गतियोंमें सुंदर-सुंदर युवा सुखदायक रमणियोंसे पूर्ण बसतियाँ) हैं। पर उनकी छायाके नीचे कभी विश्राम नही करना चाहिए, क्योंकि उनकी छाया बड़ी मारक होती है। बल्कि पीले, सूखे, सड़े हुए पत्तोंवाले छायाहीन वृक्षों (शून्य, त्यक्त, स्त्रियोंसे रहित, निर्जन गृह, देवकुल, श्मशान, एकांत वन आदि शुद्ध वसतियाँ)के नीचे केवल मुहूर्त भर ठहरकर आगे फिर अपने पथपर अविश्रांत भावसे चल देना चाहिए। मार्गमें किनारेपर बैठे हुए बहुत ही रूपवान् और मधुर वाचावाले पुरुष (नाना-धर्ममतोंवाले पाखंडी) बुलाते हैं, उनके वचन नही सुनने चाहियें। क्षणभरके लिए भी सहायकों (सहयोगी साधु जन) को नही छोडना चाहिये, क्योंकि एकाकीको वहाँ अवश्य भय है। वहाँ मार्गमें भयानक दुरंत दावानल (क्रोध) जलता रहता है। यत्न और सावधानी (आत्मसंयम) पूर्वक उस दावाग्निको बुझाना चाहिये। नही बुझानेसे वह प्रज्वलित होकर पुरुषको जलाये बिना नही छोड़ता। उसके आगे बड़ा महान् ऊँचा शैल (मान, अहंकार) मिलता है, उसे भी जागरूकता पूर्वक पार करना चाहिये। उसे पार नही करनेवालोंका नियमसे मरण (पतन) होता है। उससे भी आगे बढनेपर बहुत कुटिल व घनी उलझी हुई बाँसोंकी झाड़ी (माया) मिलती है। उसमें-से प्रयत्न पूर्वक निकलना चाहिये, नही निकलनेसे अनेक दोष होते हैं, और आगे बढना असंभव हो जाता है। उससे और आगे बढ़नेपर ऊपरसे दीखनेमें बहुत छोटा, परंतु वास्तवमें अपूर ऐसा एक गर्त (लोभ) मिलता है, जिसके पास मनोरथ (इच्छाएँ) नामक विप्र सदैव बैठा रहता है और कहता है कि इस गड्ढेको भरकर जाओ। पर कभी भी उसको भरनेके व्यर्थ प्रयासमें नही पड़ना। उसे जितना भरते हैं, उससे अधिक वह विस्तारको प्राप्त होता जाता है, और पथिक मार्गच्युत होकर वहीं ठहर कर रह जाता है, आगे बढ नही सकता। यहाँसे आगे बढनेपर बहुत दिव्य पके हुए और सुरभिपूर्ण किंपाक फल (विषयभोग) उपलब्ध होते हैं, परंतु वे महान् प्राणनाशक होते हैं, अतः उन्हें छूना भी नहीं चाहिये। और आगे चलनेपर मार्गमें महा भयंकर व क्रूर बाईस पिशाच (क्षुधा-तृषादि बाईस परीषह; देखें त० सू० ९.९) मिलते हैं, जो हर समय निगलनेको तैयार बैठे रहते हैं, उन्हें भी प्रयत्न-पूर्वक जीतना चाहिये। उस मार्गमें चलते हुए पथिकको सदैव स्वादहीन भोजन-पान करना चाहिये और नित्यप्रति रात्रिके प्रथम व अंतिम दो यामोंमें गमन (स्वाध्याय) करना चाहिये, कभी भी अप्रयाण (ठहरना, संयममें अनुत्साह) नही करना चाहिये। इस विधिसे वह दीर्घ अटवी (जन्मोंकी अनादि परंपरा) शीघ्र पार कर ली जाती है और आगे जाकर व्यक्ति सकल दुःख-दुर्गति-जन्म-जरा-मृत्यु-व्याधिसे

रहित, सर्वोत्तम अनंत-अक्षय-अव्याबाध-अनुपम और स्वाधीन सुखोंकी श्रेष्ठ वसति शिवपुरी अवश्यमेव उपलब्ध होती है। धन-सार्थवाहके इस प्रकार कहनेपर अनेक व्यक्ति शिवपुरकी राहमें उसके साथ चले। जो सीधे मार्गसे गये, वे शीघ्र उसके साथ शिवपुर पहुँच गये। जो टेढ़े-लंबे मार्गसे चले थे वे भी पहुँच गये, पर देरसे। यह सब कहकर अंतमें जंबूने कहा कि 'उपर्युक्त कथनके विपरीत जो कोई मूढ-पुरुष शब्द रूप-रस-गंध-स्पर्शसे मोहित होकर इस पथको छोडकर उन्मार्गमें लग जाते हैं, वे इन सकल दुःखोंके निधान, भयानक, अनोर-पार, सुदुस्तर, दुर्लंघ्य, घोर संसार-सागरमें अनंतकाल तक भ्रमण करते रहते हैं। यहाँ जिनवचन-रूपी पोतको छोड़कर दूसरी कोई नाव नहीं है।

यह आख्यान भी केवल जंबूचरियंमें पाया जाता है।

इस रीतिसे संक्षेपमें जंबूस्वामीने प्रभव आदिके समक्ष सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्र रूपी मोक्ष-मार्गका निरूपण किया। जंबू, प्रभव, वधुएँ, जंबू और वधुओंके माता-पिता सभीने दीक्षा ली। जंबूके गुरु आर्य सुधर्मा, जंबू और प्रभव मोक्ष गये। शेष अपने-अपने तपके अनुसार विभिन्न स्वर्गोंमें इंद्र, अहमिंद्र और देव हुए।

वीर कृत जं० सा० च० तथा अन्य चरितोंमें आयी हुई उपर्युक्त अंतर्कथाओंको वसु० हिंडी, उ० पु०, जंबूचरियं, जं० सा० च०, परि० पर्व० तथा ब्रह्म जिनदास एवं पं० राजमल्लकृत चरितोंकी कुल कथानक संख्या, परस्पर समान कथानक, क्रम संख्यानुसार स्थिति, तथा इन ग्रंथोंमें जंबूस्वामी कथाके विकासक्रमको निम्नलिखित कथासारिणी-द्वारा समझनेमें सरलता होगी :—

जंबूस्वामिचरितोंकी कथासारिणी

(I) संघदास गणिकृत वसुदेव हिंडी (प्राकृत) (II) गुणभद्र कृत उत्तर पुराण (संस्कृत) (III) गुणपाल कृत जंबूचरियं (प्राकृत) और (IV) वीर कृत जंबूसामिचरिउ (अपभ्रंश) (V) हेम० कृत परि० पर्व (VI) जम्बूस्वामी च० (सं०) जिनदास (VII) ,, (सं०) राजमल्ल

	(I)	(II)	(III)	(V)	(IV)	(VI)	(VII)
१ जंबूने कहा :							
१ इभ्यपुत्र			७	×			
२ पाँचमित्र			८				
३ यूथपतिवानर प्रभवागमन			२१	१७	७	७	७
४ मधुबिंदु	१०		९	५	९	९	
५ ललितांग	९		२७	२३	१९ चंग	१९	१७
६ कुबेरदत्त-कुबेरदत्ता			१०	६			
७ गोप युवक							
८ महेश्वरदत्त			११	७			
९ एक कौडीके लिए करोड हारनेवाला मूर्ख वणिक्							

(I) संघदास गणिकृत, वसुदेवहिंडी (प्राकृत)
(II) गुणभद्रकृत उत्तरपुराण (संस्कृत)
(III) गुणपालकृत जंबूचरियं (प्राकृत) और (V) हेम० कृत० परि० पर्व
(IV) वीरकृत जंबूसामिचरिउ (अपभ्रंश)
(VI) जम्बूस्वामि च० (सं०) जिनदास
(VII) „ (सं०) राजमल्ल

(I)	(II)	(III)	(V)	(IV)	(VI)	(VII)
१० प्रसन्नचंद्र-वल्कचारी विद्युन्माली देवागमन चार देवियाँ	१ धर्मरुचि	१	१			
११ अणाढिय देव वृत्तांत	११	६	२	३	३	३
१२ भवदत्त-भवदेव वृत्तांत	१२	२	३	१	१	१
नागिलाने कहा :	गणिनीने कहा :					
१३ वासनाग्रस्त ब्राह्मणपुत्र	१३ दासी-पुत्र	३	×			
१४ वमनभक्षी ब्राह्मणपुत्र	१४ राजश्वान	४	४			
	१५ दुर्बुद्धि-पथिक					
१५ सागरदत्त-शिवकुमार भव		५ सागरदत्त-शिवकुमार भव और शिवकुमार-कनकवती प्रेमाख्यान		[सा० दत्त-शिवकुमार]		
				[वधूने कहा :]		
				१० सर्प व करकैंटा	१०	१०
जंबूने कहा :	जंबूने कहा :	जंबूने कहा :		जंबूने कहा :		
४	१०	९	५	९ भ्रमर	९ मधुबिंदुदृष्टांत	
				११ मृत बैलको खानेवाला शृगाल	११	११ वृद्ध बैलको खानेवाला शृगाल
				विद्युच्चरागमन		
				विद्यु०ने कहा :		
	२			१२ मधुलोभी ऊँट	१२	१२
	६ शृगाल संबंधी अंतिम अंश मात्र			१४ असती	१४	१३
चतुर्थनीलयशा लंभक-के अंतर्गत	४			१६ भील शृगाल	१६	×
	(८) मृदंग वादक			(१८) बोड नट	(१८) नट और नर्तकियाँ	
				[जंबूने कहा :]		
	१३	१५	११	१३ तृषित वणिक्पुत्र	१३	×

	५ रत्न-राशि और मूर्खपथिक			१५ चिंतामणि-रत्न	१५	१४
	७ सोया हुआ वणिक् और चोरी					
				१७ लकड़हारे-का स्वप्न	१७	१५
५ ललित ५	९ ललितांग	२७	२३	१९ संग	१९	१७
	गणधरने कहा :					
११	११ अणाढिय देव	६	२	३	३	१
१२	१२ भवदत्त-भवदेव दीक्षा	२	१	१	१	१
नागिलाने कहा :	गणिनीने कहा :	[नागिला कथित]				
१३	१३ दासीपुत्र					
१४	१४ राजश्वान	४	४			
	१५ दुर्बुद्धि पथिक					
		[वधूने कहा]				
		१२ मूर्ख होली ट गुडमडककथा		४	४	४
		१४ वानर-युगल	१०	६ वानर	६	६
		१६ नूपुर-पण्डिता	१२	१४	१४	११
		१८ शंख-धमक	१४	८ संदिग्णी	८ शंखक-बाढ़ी	
		२० बुद्धि-सिद्धि	१६			
		२२ ग्रामकूट-पुत्र	१८			
		२४ मा-साहस पक्षी	२०			
		२६ चतुर ब्राह्मण कन्या	२२			
		[जंबूने कहा :]				
चतुर्थ शीलव्रतांगके अंतर्गत		१३ कौवा	९	५	५	५
	३ दाह ज्वर पीड़ित	१५ इंगाल दाहक	११	१३ तृषित वणिक्पुत्र	११	×
		१७ मेघरथ-विद्युन्माली	१३			
१		१९ यूथपति वानर	१५	७	७	७
		२१ [illegible]	१७			
		२३ [illegible]	१९			
		२५ तीन मित्र	२१			
५	९ [illegible]	२७ ललितांग	२३	१९	१९	१७
		२८ [illegible] और [illegible]	×			
		२९ [illegible] ×				

उपर्युक्त सारिणीसे ज्ञात होता है कि वीर कविने अपनी प्रस्तुत काव्य कृतिमें कथानक क्र० ५, ७ और १६ वसु० हिंडीसे संग्रहीत किये हैं। कथा क्र० १, ३ व १९ वसु० हिंडी तथा उ० पु० दोनोंमें समान रूपसे उपलब्ध हैं। कथा क्र० ४ मूर्खहाली, क्र० ६ वानर, क्रमांक ८ संखिणी, क्र० ९ भ्रमर एवं क्र० १४ असती, ये पांच कथाएँ गुणपाल कृत जंबूचरियंमें कुछ परिवर्तनोंके साथ विस्तृत रूपमें विद्यमान हैं। कथा क्र० २ चार देवियोंका पूर्वभव, क्र० १० सर्प व, करयँटा, क्र० ११ मृत बैल और शृंगाल, क्र० १५ चिंतामणिरत्न एवं क्र० १७ लकड़हारेका स्वप्न, ये पाँच आख्यान कविने स्वतंत्र रूपसे निबद्ध किये हैं, जिनके मूलस्रोत विविध प्रसिद्ध लोक-कथा साहित्य एवं लोकाख्यानोंमें सरलतासे खोजे जा सकते हैं।

'जंबूसामिचरिउ' की अंतर्कथाओंका तुलनात्मक अध्ययन करनेपर हम देखते हैं कि अपने कथा-गठनमें जहाँ कविने अनावश्यक कथाओंको सर्वथा छोड़ दिया है—जैसे कि प्रसन्नचंद्र-वल्कलचारी एवं महेश्वरदत्त आदिके कथानक; वहीं समस्त आख्यानोंको यथासंभव संक्षिप्त भी कर दिया है। ऐसा करनेमें कविने कथानकोंके आशयको तो पूर्णतया सुरक्षित रखा है, परंतु उनमें-से अधिकांशमें-से अतिमानवीय, दैवी तत्त्वोंका लोप कर दिया है, और अपने समस्त आख्यानोंको शुद्ध लोककथाओंके रूपमें वर्णित किया है। जहाँ दूसरे गद्य-पद्य चरितकारोंपर उनके अंतर्मनका उपदेशक रूप हावी रहा है, वहाँ वीर कवि धार्मिक सिद्धांतों, विश्वासों और श्रद्धासे अनुप्राणित रहनेपर भी अपने कवि-हृदयको धार्मिक उपदेशस्थापनसे अभिभूत नहीं होने देता। इसलिए जहाँ अन्य समस्त चरितकारोंने प्रत्येक कथाको आध्यात्मिक आशयों या प्रतीकोंसे लाद दिया है, वहाँ वीर कवि सब कथानकोंका आशय अधिकसे-अधिक दो अथवा एकाध पंक्तिमें ही कहकर समाप्त कर देता है; और इस प्रकार कहीं भी अपने आख्यानोंको धार्मिक प्रतीकोंसे बोझिल करके उनका काव्य-कथा-रस दबने नहीं देता। यही कारण है कि एक ऐसा सामान्य पाठक भी जिसका जैन धर्म व जैन संप्रदायसे कोई संबंध तथा परिचय न हो, वह भी बहुत थोड़ेसे धार्मिक चर्चावाले अंशको छोड़कर, शेष संपूर्ण रचनामें काव्य-रसका अनुभव ले सकता है, जबकि अन्य चरितोंके साथ साधारणतः ऐसा नहीं है। उनका बहुत सारा अंश सामान्य पाठक बिलकुल ही नहीं समझेगा। अतः इनमें प्रचुरतासे विद्यमान साहित्यिक रसका भी वह कोई आस्वाद नहीं ले सकेगा। उदाहरणके लिए गुणपाल कृत 'जंबूचरियं'का आख्यान-चिंतामणि नामक अंतिम कथानक देखें। आख्यानके उत्तरार्द्धमें पूर्वार्द्धके प्रत्येक पात्र, घटना, वस्तु सभीका आध्यात्मिक आशय बताया गया है, पूर्वार्द्ध केवल उसका प्रतीक मात्र है। अब काललब्धि, जीवात्माएँ, मोक्ष और रत्नत्रय आदि तत्त्वोंको सामान्य पाठक क्या समझे? अतः उसके सामने कमसे-कम अमुक-अमुक अंशको छोड़ देनेके सिवाय और क्या उपाय रह जाता है? वीर कवि ऐसी स्थिति कहीं भी उत्पन्न होने नहीं देता और धार्मिक-दार्शनिक तत्त्वोंकी चर्चा भी पाठकके मनमें जिज्ञासा और कौतूहलकी सुदृढ़ पृष्ठभूमि निर्माण कर चुकनेकी स्थितिमें करता है। अर्थात् किसी भी स्थितिमें रचनाकी साहित्यिकता या काव्यात्मकता अन्य तत्त्वोंसे दबने नहीं पाती।

प्रत्येक महाकाव्यमें अनेक अंतर्कथाओंकी योजना अनिवार्य रूपसे की जाती है। उसमें कविका महान् आशय निहित रहता है। ये अंतर्कथाएँ कहीं काव्यकी मूल कथावस्तुको क्षिप्र गतिशीलता प्रदान करती हैं, तो कहीं उसकी गति-तीव्रताको मंथर बनाती हैं; और कहीं कथावस्तुकी मूलधारामें आवश्यक मोड़ लाती हैं, तो कहीं भावी घटनाओंके संकेत भी प्रदान करती हैं। इसके अतिरिक्त अंतर्कथाओंका सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान नायकके चरित्रके अधिकसे-अधिक सुप्त और अंतर्निहित गुणों तथा उसके सर्वांगीण जीवनके विविध पक्षोंको प्रकाशमें लानेमें होता है। इनका एक और विशिष्ट आशय आद्योपांत पाठककी जिज्ञासा और कौतूहल वृत्तिको जागृत करते हुए, क्रमशः थोड़ा-थोड़ा शांत करते-करते महाकाव्यकी 'इति' तक इस प्रकार ले जाना रहता है कि अंतमें भी पाठकका कौतूहल भले ही शांत हो जाये, पर उसकी यह जिज्ञासा बनी ही रह जाये कि अब इसके आगे और क्या हो सकता है? क्या हुआ होगा? या क्या होनेकी संभावना है? इन्हीं कल्पनाओंमें पाठक काव्यका अध्ययन समाप्त कर चुकनेपर भी मानो उसीका एक अंग, एक पात्र बनकर साधारणीकरणकी स्थितिमें आकर, रसात्मक अवस्थाको प्राप्त होकर उसीके चिंतनमें आनंद-विभोर होकर रह जाता है।

वीर कविने अपने महाकाव्यमें जिन अंतर्कथाओंका जिस प्रकार जिस-जिस स्थल-पर समावेश किया है, वे अपनी-अपनी स्थितिमें मुख्य कथावस्तुको गतिदान आदि करती हुई नायकके चरित्रके विविध गुणो एवं विविध पक्षोका उद्‌घाटन कर कथावस्तुको एक निश्चित उद्देश्य अर्थात् नायकको फल-प्राप्तिकी ओर निरंतर लेती चलती है। इस प्रकार वीर कविने प्रस्तुत महाकाव्यके आयाममें इन अंतर्कथाओके समावेशका पूर्ण औचित्य सिद्ध किया है।

कथा तत्त्व तथा कथानक रूढ़ियाँ

'जंबूस्वामीचरिउ'में समाविष्ट अंतर्कथाओका कथा तत्त्वों तथा कथानक रूढियोंकी दृष्टिसे भी विश्लेषण आवश्यक है

साहित्यकारोने लोक कथाओमें निम्न तत्त्वोंका होना आवश्यक माना है[1] :—

१. लोक-कथाओका लोक-प्रचलित होना।

२. अप्राकृतिक, अतिप्राकृतिक तथा अमानवीय तत्त्वोका समावेश होना।

३. इनका देश-काल आश्चर्यजनक और कल्पना मंडित होना।

४. लोकरुचिका मनोरंजक चित्रण होना।

५ लोकचित्तको आदोलित करना, प्रेरित करना और निश्चित उद्देश्यकी ओर ले जाना।

६. लोकश्रुतिसे प्राप्त लोक कथाओको लोकभाषामें निबद्ध करना।

७. ऐतिहासिक, रूढ़िग्रस्त और पौराणिक घटनाओका कल्पनाके साथ सम्मिश्रण होना।

इन सातो ही तत्त्वोका कुछ-न-कुछ समावेश 'जंबूसामिचरिउ' में अंतर्कथाओके रूपमें समाविष्ट लोक कथाओ में हुआ है। इनमें निम्न कथा तत्त्व अधिक स्पष्टतासे समाविष्ट पाये जाते हैं :—

१. प्रेमका गंभीर पुट, जैसे भवदत्त-भवदेवके माता-पिता, भवदत्त-भवदेव दोनो भाई, भवदेवका अपनी पत्नी नागिलाके प्रति मुनि बन जानेपर भी अनन्य अनुराग, भवदत्त-भवदेवका निरंतर पाँच भवोमें अभिन्न स्नेह, शिवकुमारके जन्ममें उसके मित्र दृढवर्म और माता-पिताका उसके प्रति गहरा अनुराग।

२. स्वस्थ शृंगारिकता : जंबूस्वामीकी वधुओका उनके प्रति शृंगार-भाव प्रदर्शन और गृहस्थ मिथुनोकी रति-क्रीड़ा।

३. कौतूहलका समावेश प्राय. सर्वत्र; विशेष रूपसे इन घटनाओमें . भगवान् महावीरका समोशरण आनेपर सब ऋतुओकी वनस्पतियोका फूल उठना; विद्युन्माली देवका महावीरके समोशरणमें आना, श्रेणिककी सभामें गगनगति विद्याधरका आकाश मार्गसे आना।

४. अतिप्राकृतिकताके तत्त्वका प्रकटीकरण : भ० महावीरके समोशरण आनेके समयकी घटनाएँ।

५. उपदेशात्मकता : सभी अंतर्कथाओमें स्पष्ट रूपसे उपलब्ध।

६. अप्राकृतिकता : असतीके आख्यानमें शृगालका मनुष्यवाणीमें बोलना।

७. अनुश्रुतिमूलकता : सभी अंतर्कथाएँ कथा-प्रतिकथाके रूपमें कही गयी है, घटनाओके रूपमें नही।

८. पारिवारिक जीवनका चित्रण : भवदत्त-भवदेवके तीनो मनुष्य जन्मोकी कथाओमें, तथा मूर्ख हालीकी कथामें।

९. पूर्वजन्मोके संस्कार और फलाभोग . शिवकुमार जंबूस्वामी तथा चार देवियोकी कथाओमें।

१०. साहसका निरूपण : अकेले जंबूस्वामी-द्वारा हस्तिनिग्रह और रत्नशेखर-पराजयके वृत्तातमें।

११. जनभाषा : अपभ्रंशका प्रयोग।

१२. सरल अभिव्यंजना : कथानकोके सरल स्पष्ट वर्णनमें। जंबूसामिचरिउके कुछ कथानकोंमें अस्पष्टता और दुरूहता भी दिखाई देती है उदाहरणार्थ संखिणीके आख्यानमें।

---

१. डॉ॰ नेमिचंद्र शास्त्री : हरिभद्रके प्राकृतकथासाहित्यका-आलोचनात्मक अध्ययन, पृ० २४५-२६०।

१३. लोक-जीवनका चित्रण : विविध रूपोंमें विस्तारसे उपलब्ध ।[1]

१४. लोक-कल्याणकी भावना : जंबूस्वामी और रत्नशेखरके अकेले-अकेले द्वंद्व युद्धमें, जिससे अन्य सैनिकोंका व्यर्थ संहार न हो ।

१५. परंपराकी रक्षा श्रेणिककी वाग्दत्ता विलासवती, एवं जंबूस्वामीकी वाग्दत्ता कन्याओंके क्रमशः श्रेणिक व जंबूको ही विवाहे जानेमें ।

१६. धर्म श्रद्धा : संपूर्ण कथावस्तुका केंद्र भूत तत्त्व ।

उपर्युक्त तत्त्वोंके अतिरिक्त 'जंबूसामिचरिउ'में समाविष्ट अंतर्कथाएँ वास्तवमें जन-साधारणके सामान्य लौकिक सुख-भोग प्रधान जीवन और मनोदशाको तीव्रतासे आंदोलित कर, उसके अंतस्तलमें धार्मिक जीवन-की बलवती प्रेरणा उत्पन्न कर, उसे धार्मिक साधनाके पूर्व निश्चित उद्देश्यकी ओर स्वाभाविक रूपसे बहाकर ले जाती हुई दिखाई पड़ती हैं । कविको अपनी ओरसे कोई उपदेश देना-दिलाना नहीं पड़ता ।

ऐतिहासिक और पौराणिक घटनाओंका भी वीर कविने स्थान-स्थानपर कल्पनाके साथ सुंदर सम्मिश्रण किया है, जैसे विंध्याटवीकी उपमा कुरुक्षेत्रकी युद्धभूमिसे देना, अथवा लंकानगरीसे देना, या कात्यायनी देवीसे करना, अथवा नववसंतागमनकी तुलना सीताका वृत्तांत लेकर आये हनुमान्‌से करना । और भी अनेक स्थलोंपर शंकर-गौरी आदि देव-देवियों और उनसे संबद्ध पौराणिक वर्णनोंका सम्मिश्रण सुंदरतासे कवि-कल्पनाके साथ यथास्थान किया गया है ।

कथानक रूढ़ियाँ

कथानक रूढियाँ लोक-कथाओंका अभिन्न अंग होती हैं । "विभिन्न कथाओंमें बार-बार व्यवहृत होने-वाली एक जैसी घटनाओं अथवा एक जैसे विचारोंको कथानक रूढि कहा जाता है । उक्त प्रकारकी घटनाएँ या विचार संबद्ध कथानकके निर्माण अथवा उसके विकासमें योग देते हैं ।"[2] इस संबंधमें आ० डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदीने लिखा है, "हमारे देशके साहित्यमें कथानकको गति और घुमाव देनेके लिए कुछ ऐसे अभि-प्राय दीर्घकालसे व्यवहृत होते आये हैं जो बहुत दूर तक यथार्थ होते हैं और जो आगे चलकर कथानक रूढियोंमें बदल गये हैं ।"[3] आ० हरिभद्रने अपने कथा-साहित्यमें, उनके पूर्व वसुदेव हिंडीमें तथा आगे चलकर गुणपालने अनेक कथानक रूढियोंका प्रयोग किया है ।[4] वीर कवि क्योंकि मूलतः कवि हैं, कथाकार नहीं, अतः उसने अधिक कथानक रूढियोंका प्रयोग नहीं किया । उनके द्वारा प्रयुक्त कुछ विशेष कथानक रूढियाँ निम्नलिखित हैं :—

१. लोक प्रचलित विश्वासोंसे संबद्ध रूढ़ियाँ : जैसे जंबूस्वामीकी माताके पाँच स्वप्न और मुनि-द्वारा उनका फल-कथन तथा मृगांक पुत्री विलासवतीके श्रेणिकसे विवाहकी भविष्यवाणी ।

२. नागदेवोंसे संबद्ध रूढ़ि : जैसे लोगों-द्वारा वृत्तांत पूछनेपर भंगका यह कहना कि रूपासक्त नागदेवियाँ मुझे पाताल स्वर्गमें उठा ले गयी थीं ।

३. तंत्र-मन्त्र-औषधिसे संबद्ध रूढि : जैसे विद्युच्चरके द्वारा औषधिसे पहरेदारको स्तंभित करके अपने पिताके शयन कक्षमें चोरीके लिए प्रविष्ट होना ।

४. आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक रूढ़ियाँ : इस वर्गकी रूढ़ियोंका वीर कविने सबसे अधिक प्रयोग किया है, जिनमें-से प्रमुख प्रयुक्त रूढ़ियाँ निम्न लिखित हैं :—

---

१. प्रस्ता०—१० ।

२. डा० नेमिचंद्र शास्त्री : हरिभद्रके प्रा० कथा सा० का आलो० अध्ययन०, पृ० २१० ।

३. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्यका आदिकाल, पृ० ७४ ।

४. हरिभद्रके प्रा० कथा सा० का आलो० अध्ययन, पृ० २६–२२८ ।

(i) शिवकुमार-सागरदत्त भवमें सागरदत्त मुनिको देखकर शिवकुमारको संसारसे स्वतः वैराग्य उत्पन्न हो जाता है और वह मुनिसे इसका कारण पूछता है। इसी प्रकार सुधर्मा—जंबूस्वामी भवमें भी यही घटना घटित होती है।

(ii) तीसरे भवमें मुनि सागरदत्तके द्वारा, पाँचवें भवमें सुधर्मा-द्वारा तथा स्वयं जंबूके द्वारा अपनी पूर्व-भव-परंपरा कही जाती है।

(iii) विद्युन्माली देवकी चार देवियाँ पूर्व भवमें हृदयसे इच्छा करती हैं कि सूरसेन जैसा पति फिर न मिले; और तपश्चरणके फलसे स्वर्गमें विद्युन्माली देवकी प्रिय देवियाँ होनेपर पुनः इच्छा करती हैं कि आगामी भवमें भी, जब यह देव जंबूस्वामीके रूपमें जन्म लेगा, तब भी किसी भी प्रकार इससे हमारा संग न छूटे और हम लोग पुनः इसे अपने पतिके रूपमें प्राप्त करें।

(iv) कथाक्रममें स्थान-स्थानपर धर्मका स्वरूप तथा ज्ञानोपलब्धिकी जिज्ञासा व्यक्त हुई है।

(v) जंबूस्वामीने सुधर्मासे सम्यक्त्वोपलब्धिका कारण पूछा है।

(vi) वैराग्य प्राप्तिके निमित्त : सागरदत्तको मुनि सुवधुतिलकके धर्मोपदेशसे, शिवकुमारको मुनि सागरदत्तके तथा जंबूस्वामीको मुनि सुधर्माके दर्शनोके निमित्तसे वैराग्य होना।

(vii) जंबूस्वामीको केवल ज्ञानोपलब्धिके समय देवागमन और अन्य आश्चर्य।

(viii) मुनि सागरदत्त और सुधर्म गणधरके दर्शनसे क्रमशः शिवकुमार और जंबूको पूर्व भवोंका स्मरण।

(xi) जन्म-जन्मांतरोकी शृंखला : भवदत्त-भवदेव, देवता, सागरदत्त-शिवकुमार, पुनः देवगति और अंतमें सुधर्म व जंबूस्वामीके जन्म-जन्मांतर।

(x) विद्युच्चरकी तपस्याके समय चंडमारी व्यंतरी कृत भयानक उपसर्ग और विद्युच्चर-द्वारा उपसर्ग-विजय।

उपर्युक्त सभी कथानक रूढियाँ अधिकांशतया 'जंबूसामिचरिउ'की मुख्य कथावस्तुमें प्रयुक्त हुई हैं। इनके अतिरिक्त सभी अंतर्कथाओंमें दो आध्यात्मिक रूढियाँ प्रमुख रूपसे उपलब्ध होती है। जंबूस्वामीकी वधुओं और विद्युच्चर-द्वारा जो आख्यान कहे गये हैं उन सबका अभिप्राय यह है कि जो कोई उपलब्ध सुखोंको छोड़कर भविष्यमें, लौकिक या पारलौकिक स्वर्गादि अनुपलब्ध सुखोंकी लालसा करता है उसे भविष्यके सुख तो उपलब्ध होते ही नहीं, वह उपलब्ध सुखोंको भी खो बैठता है। जंबू-द्वारा कहे गये आख्यानोंका अभिप्राय इसके सर्वथा विपरीत यह है कि उपलब्ध क्षुद्र-क्षणिक सांसारिक सुख-भोगोंमें डूबकर मानव स्वर्ग मोक्षके अनुपम शाश्वत सुखोंको भूल जाता है और सदाके लिए खो बैठता है।

प्रस्तुत काव्यमें प्रयुक्त कथानक - रूढियोंके विश्लेषणसे यह तथ्य भलीभाँति प्रकट होता है कि वीर कविने अपने काव्यके उद्देश्यानुकूल आध्यात्मिक-धार्मिक रूढियोंका आद्योपांत सर्वाधिक प्रयोग उचित रीतिसे किया है। अन्य रूढ़ियोंका प्रयोग भी यथास्थान पाया जाता है।

६. जंबूसामिचरिउका काव्यात्मक मूल्यांकन

अन्य प्रसिद्ध महाकवियोंके समान कवि वीरने भी अपनी काव्य-संबंधी निम्नलिखित मान्यताएँ प्रकट की हैं :—

१. व्याकरण सम्मत भाषा (१.२.७)।
२. ललित पद सन्निवेश (१.२.७ एवं ७.१.४)।
३. श्रुति-मधुर वर्ण (सुइसुहयरु १.२ ११)।
४. अर्थ-गांभीर्य (कव्वत्थु निवेसइ (१.२.११ अहियं अत्थं; ८.१.८)।
५. अर्थ स्पष्टता एवं अर्थसौंदर्य (७ १.४)।

६. काव्यके विविध अंग तथा रस-भाव युक्तता (रसभावहिं···१.२.१२; कण्णपुडएहिं पिज्जइ जणेहिं रसमउलियच्छेहिं ३.१.२; सरसकव्वसव्वस्स ६.१ १; कव्वंगरससमिद्धं ८.१.३; कव्वस्स इमस्स मए विरइयवण्णस्स रससमुद्दस्स ८.१.७; रसदित्तं ९.१.४; गरुवं रसंतरं १०.१.४)।

७. संधियुक्तता : (पयडवंधसंधाणहिं (१.२ १४)।

८. छंदोवद्धता : (सच्छदु १.३.३; चारित्तुवित्तु १.३.७)।

९. गुणयुक्तता : (१.२.४)।

१०. दोष-मुक्तता : (१ २.४)।

११. अलंकार-नियोजन : (अलंकारसलक्खणाइँ ३.१.२; सालंकारं कव्वं ८.१.९)।

'जंबूसामिचरिउ' ग्यारह संधियोंमें रचित है। अर्थ-गांभीर्य, अर्थस्पष्टता एवं अर्थ-सौंदर्य तथा ललित पदरचना एवं श्रुति-मधुरता आदि गुण काव्य रचनाके अध्ययनसे स्वतः प्रकट हो जाते हैं। काव्यगुणों, रीतियो तथा भाषात्मक एवं व्याकरणात्मक स्वरूपका विश्लेषण आगे (प्रस्तावना ७-८) किया गया है। शेष काव्यात्मक तत्वोंपर निम्नलिखित शीर्षकोंके अंतर्गत विचार किया जाता है :—

(क) चरित काव्यकी दृष्टिसे समीक्षा (ख) महाकाव्यात्मकता (ग) वस्तु-व्यापार वर्णन : देश, नगर, ग्राम, शैल, अटवी, उपवन-उद्यान, सरित्; ऋतुवर्णन वसंत ग्रीष्म, वर्षा, दिन-विभाग : उषः, सूर्योदय, मध्याह्न, संध्या, प्रदोष, रात्रि, अंधकार और चंद्रोदय; क्रीडाएँ : उपवन-क्रीडा, जल क्रीडा मिथुनोंकी सुरत क्रीडा, वेश्याओंके काम-व्यापार एवं हस्तिकृत उपद्रव, सैन्य प्रयाण और पडाव; एवं विविध रूपोंमें प्रकृति-चित्रण। (घ) शील-विश्लेषण (ड) रस-भाव योजना (च) अलंकार योजना (छ) बिंब योजना (ज) छंद-योजना।

(क) चरितकाव्यकी दृष्टिसे समीक्षा

जंबूस्वामीके जीवन-चरित और कथावस्तुके स्रोतोंके अध्ययनमें हमने देखा है कि प्राचीन-साहित्यमें जंबूस्वामीचरितकी ऐतिहासिक सामग्री अत्यंत संक्षिप्त है। उसीके आधारसे सर्वप्रथम संघदास गणिने वसुदेव हिंडीके 'कथा-उत्पत्ति' नामक प्रथम प्रकरणमें जंबूस्वामी चरितकी वृहद् कथा कल्पित की। उत्तर पुराण (गुणभद्र)की परंपरासे वह कथा वीर कविको प्राप्त हुई और उसी नींवपर उसने अपनी कल्पना और काव्य-प्रतिभाके सामर्थ्यसे 'जंबूसामिचरिउ' नामक प्रस्तुत महाकाव्यकी रचना की।

अपभ्रंश साहित्य अतर्बाह्य सर्वतः प्राकृत-साहित्यकी परंपरासे अविच्छिन्न-अभिन्न रूपसे संबद्ध है। अतः प्राकृत चरितकाव्योंकी जो विशेषताएँ विद्वानोंने[1] निर्धारित की है वे पूर्णरूपसे अपभ्रंश चरित काव्योंमें भी उपलब्ध होती है। उनके परिप्रेक्ष्यमें जंबूसामिचरिउका परिशीलन करने पर निम्नलिखित विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं :—

कथावस्तुकी व्यापक और गहन अन्विति : कथावस्तुके प्रवाह एवं उसकी हृदयस्पर्शताके निर्वाहके लिए संधियोंका प्रगाढ संश्लिष्ट सयोजन, कथानकमें चमत्कार उत्पन्न करनेके लिए परिस्थितियोंका नियोजन; तथा जीवन और जगत् संबंधी उपदेश, कथावस्तुमें रोचकता बनाये रखनेके लिए मूल कथानकसे संबद्ध और असंबद्ध देशकाल, समाज एवं व्यक्तियोंके रोचकवर्णन; पात्रोंके चरित्रोंका द्वंद्वात्मक विकास; सहृदय सामाजिक अथवा पाठकको रसानुभूतिकी दृष्टिसे साधारणीकरणकी[2] स्थितिमें लानेके लिए पात्रोंका शील वैचित्र्य; चरितवर्णनमें अस्वाभाविकता और पाठकमें तज्जन्य नीरसतासे काव्यको बचानेके हेतु सर्वसुलभ साधारण मानवोंकी भाँति पात्रोंके चरितोंमें उतार-चढावरूप तरतमता, जीवनके विविध व्यापारों, परिस्थितियों, जैसे प्रेम, विवाह, वियोग, मिलन सैनिक-अभियान, नगरकी घेरेबंदी, युद्ध, जय-पराजय, का चित्रण; नाना विघ्नों एवं

१. डॉ० नेमिचंद्र शास्त्री : प्रा० भा० और सा० का आलो० इतिहास, अध्याय ३।

२. हिन्दी साहित्य कोश

उपसर्गोंका निरूपण, परिस्थितियोंके कौशलपूर्ण नियोजनसे नायकके चरितका क्रमशः उद्घाटन; कथात्मक घटना और काव्यात्मक वर्णनोंमें समन्वय; पात्रों और परिस्थितियोंके संपर्क-संघर्षसे सामाजिकोंके हृदयमें रस निष्पत्ति, धार्मिक वृत्तियों, पौराणिक विश्वासों और आश्चर्य तथा औत्सुक्यपूर्ण सहज प्रवृत्तियोंका सद्भाव; जीवनकी समग्रताका चित्रण तथा पात्रोंके चरित्र-विकासके हेतु जीवनके विविध रूपों और पक्षोंका उद्घाटन करते हुए मूलकथा और अवांतर कथाओंके अतिरिक्त विविध वस्तुओं, पात्रों और भाव अनुभावोंका निरूपण; तथा शैलीमें रोचकता, गंभीरता और उदात्तता। प्रस्तावनामें आगे यथास्थान इन विशेषताओंपर यथोचित प्रकाश डाला गया है।

(ख) महाकाव्यात्मकता

प्रस्तुत कृतिमें शास्त्रीय महाकाव्यके सभी लक्षण पाये जाते हैं। महाकाव्यके इतिवृत्त, वस्तु व्यापार-वर्णन, संवाद एवं भावाभिव्यंजन, ये चारों अवयव संतुलित रूपमें यहाँ घटित हुए हैं। कविने जीवनकी समग्रताका चित्रण कई जन्मोंकी कथाका अवलंबन लेकर किया है।

नामकरण—महाकाव्योंके नामकरणके निम्नलिखित प्रमुख आधार हैं :—(१) काव्यमें वर्णित किसी प्रमुख घटनाके नामसे, जैसे 'सेतुबंध' (२) प्रमुख पात्रके नामसे, जैसे 'गउडवहो'; (३) नायक या नायिकाके नामसे, जैसे 'पउमचरिउ'; (४) वर्णित वंश विशेषके नामसे, जैसे महाकवि कालिदासकृत 'रघुवंशम्'; (५) प्राप्त संकेत या उपदेशके आधारसे, जैसे 'मयणपराजयचरिउ' एवं (६) कविके नामसे, जैसे 'माघकाव्य'। स्पष्ट है कि कविने नायकके नामपर काव्यका नामकरण किया है। अतः यह अपभ्रंश काव्यकी वह विधा है जिसे चरितनामांत महाकाव्य कहा जा सकता है।

यों तो पुराण और महाकाव्यका उद्भव और विकास समानांतर रूपमें होता है। आरंभमें इन दोनोंका रूप भी हमें एकमें घुलमिल दिखाई देता है, जिसके उदाहरणस्वरूप स्वयंभू कृत 'हरिवंशपुराण' या 'रिट्ठणेमिचरिउ'का नाम लिया जा सकता है। परंतु जब अलंकरणकी प्रवृत्ति और सौंदर्य बोधकी चेतना विस्तृत होती है, तो महाकाव्योंका संगठन पुराणोंसे पृथक् शैलीमें होने लगता है। यही कारण है कि अपभ्रंश काव्योंमें पौराणिक तत्त्वोंके साथ सौंदर्यचेतनाका विस्तार पाया जाता है। इस दृष्टिसे 'जंबूसामिचरिउ' एक चरितनामांत महाकाव्य है। इसमें निम्नलिखित तत्त्व समाहित हैं—(१) शास्त्रीय नियमोंके आधारपर ग्रथित जंबूस्वामीका इतिवृत्त; (२) वस्तु व्यापारोंका संयोजन; (३) अवांतरकथाओं और घटनाओंमें वैविध्यके साथ अलौकिक व अप्राकृतिक तत्त्वोंका सन्निवेश, (४) दर्शन और आचार संबंधी सिद्धांतोंका समावेश, (५) व्यापक और मर्मस्पर्शी कथानकका एक ही नायकके जीवनके साथ संबंध; (६) रस-भाव योजनाके हेतु रोमांटिक तत्त्वोंकी समाहिति, (७) कथा- वस्तुमें विस्तारकी अपेक्षा गहनता; (८) सर्ग विभाजनके स्थानपर संधि विभाजनके रूपमें सानुबंध-कथाकी योजना, (९) कर्म संस्कारोंके विश्लेषण, उद्घाटन हेतु कई जन्मोंकी कथाका ग्रंथन; (१०) प्रमुखपात्रोंके चरितका क्रमिक उद्घाटन एवं विभिन्न अवस्थाओंके माध्यमसे मोक्षप्राप्तिका उल्लेख; तथा (११) काव्यत्व उत्पन्न करने हेतु यथास्थान अलंकारों, गुणों एवं रीतियोंका संयोजन।

'जंबूसामिचरिउ' में इन महाकाव्य गुणोंके समावेश-संयोजनसे यह स्पष्ट प्रमाणित है कि यह एक उच्चकोटिका अपभ्रंश महाकाव्य है। कविने इसमें सज्जन प्रशंसा, दुर्जन निंदा, संध्या, प्रभात, मध्याह्न, रात्रि, चंद्र, सूर्य, वन, पर्वत, नदी, सरोवर एवं ऋतु आदि वस्तुओंका सांगोपांग चित्रण किया है। प्रबंध कल्पना भी महाकाव्यकी है। कथाकी अन्विति, संधि विभाजन, छंद परिवर्तन, प्रकृति चित्रण, भावाभिव्यंजन आदि महाकाव्यके सभी उपकरण प्रस्तुत काव्यकृतिमें समवेत है।

(ग) वस्तु-व्यापार-वर्णन

जं० सा० च०में तीन देशों, पाँच नगरों, एक ग्राम, एक वन, एक पर्वत तथा एक नदीका वर्णन उपलब्ध होता है। ग्राम आदिके वर्णनमें सरोवर आदिके भी उल्लेख हैं। कविने ऋतुओं, दिन-रात्रिके विभिन्न

प्रहरों, और अनेक विव क्रीडाओंके सुंदर, स्वाभाविक, सजीव एवं मार्मिक वर्णन किये हैं। यह सामग्री विविध दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण है। संक्षेपमें जानकारी इस प्रकार है :—

देश वर्णन—वीर कविने अपनी रचनामें तीन देशोंका विस्तारसे[1] वर्णन किया है—मगध, पूर्व-विदेह तथा विंध्य। इनमें मगध देशका वर्णन सर्वप्रथम तथा सबसे विस्तारसे और सांगोपांग रीतिसे किया गया है (१.६. १६से १.८.१-८)। इस संदर्भमें मगधकी समृद्धि, वहांके नर-नारी, गृह-प्रासाद, नदी-सरोवर और उद्यान तथा ग्राम, उपवन, और खेतोंका अत्यंत सजीव वर्णन उपलब्ध होता है।

नगर वर्णन—'जंबूसामिचरिउ'में क्रमशः राजगृह, पुंडरिकिणी, वीतशोका, नर्मपुरपत्तन और संवाहन नामक नगरोंका वर्णन किया गया है।[2] पुंडरीकिणी नगरीका वर्णन विस्तारसे उपलब्ध होता है (३ १.२०से ३ २.११ तक), जिसमें नगरकी बाह्याभ्यंतर रचना और नागरिकोंके सुखद जीवनका आकर्षक वर्णन है। अन्यत्र राजगृहकी नारियोंकी सुंदरता और नागरिकोंकी समृद्धि, नर्मपुरके लोगोंका धार्मिक जीवन और संवाहन नगरके व्यापारिक कारोबारका मनोहारी वर्णन उपलब्ध होता है।

ग्राम वर्णन—ग्रामों और खेतोंका बहुत कुछ चित्र कविने बहुधा देश वर्णन करते समय खींच दिया है, जो मगधदेशके वर्णनमें भी देखा जा सकता है। काव्यमें ब्राह्मणोंके एक अग्रहार ग्रामका सुंदर वर्णन किया गया है (२.४ ७-१२)।

शैल वर्णन—श्रेणिक राजाकी केरल देशकी ओर ससैन्य यात्राके प्रसंगमें वीर कविने कुलपर्वतका सजीव वर्णन किया है (५.१०.११-१५)। कविने पर्वतके उन्मुक्त एवं स्वच्छंद पशु-पक्षी और वनस्पति जगतका चित्रण करते हुए, राजा श्रेणिकके स्वागत भावका आरोपण कर प्रकृतिका मानवीकरण किया है। कालिदासके हिमालय वर्णनकी तरह वीर कविने विंध्य पर्वतको पूर्व और पश्चिम समुद्रोंका अवगाहन करके पृथ्वीके मापदंडके समान कहा है :—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ॥ कुमार० १-१
गिरिविंज्झु दुग्गमसिहरु धरलवंसपव्वहिं अहिट्ठिउ।
पुव्वावरोवहि धरवि धरपमाणदंडु व परिट्ठिउ ॥ (५.८.२-३)

हिमालयकी अपेक्षा विंध्यके प्रति यह कथन अधिक उपयुक्त माना जा सकता है।

अटवी वर्णन—उपर्युक्त संदर्भमें ही विंध्य महाटवीका परिपूर्ण सांगोपांग वर्णन निम्नलिखित दो पंक्तियोंमें पाया जाता है :—

गिरिनिज्झरकंदरविसम-तरुवरनियरधरिट्ठ।
रववहिरियवणयरभमिर विंज्झमहाडइ दिट्ठ ॥ (५.८.४-५)

इसके उपरांत ५.८.६ से १४ तक नौ पंक्तियोंमें विंध्याटवीके वृक्ष वनस्पतियोंका विशद उल्लेख है। ५.८.१५से २३ तक व्याघ्र, कोल, वन महिष, वानर, घूयड, वायस, शृगाल और शृगालोंके फेत्कारसे आह्वान कर उनका पकड़े जाना, वन्य झरने और पत्तोंसे ढके हुए सर्प और भयानक विषैले सर्पोंके फेत्कारसे प्रदीप्त होनेवाले दावानल, इस प्रकारके वन्य वातावरणका अति सटीक वर्णन है। इसके आगेकी पंक्तियोंमें कविका वर्णन इतना सजीव बन पड़ा है मानो अपने वर्णनके माध्यमसे उसने हमें सशरीर वहाँ ले जाकर खड़ा कर दिया हो। अटवीके भीलोंका जीवन साकार रूपमें प्रदर्शित कर कविने श्लेष शैलीमें उसकी तुलना महाभारतकी युद्धभूमि, लंकानगरी, कात्यायनीदेवी और गौरी सहित महादेवके साथ सटीक रीतिसे की है (५-८.२५-३६)।

१. जं० सा० च० १.६.१६से १-८; ३.१.१३-१९ एवं ५.९,१-११।

२. जं० सा० च० १.८.९ से १.१० राजगृह वर्णन; ३.२ पुंडरिकिणी वर्णन; ३.३.६-१० वीतशोका वर्णन; ५.९.१२-१७ नर्मपुर वर्णन और ८.३.५-१४ संवाहन नगर वर्णन।

उपवन-उद्यान—वीर कवि-द्वारा किया हुआ मगधके उद्यानोका वर्णन आज भी सारे उत्तर और दक्षिण विहार प्रांतको शोभा और प्राकृतिक समृद्धिके सूचक विविध उच्चकोटिके आम्रोद्यानो, जंबू और मधूक वृक्ष पंक्तियो, द्राक्षा लतामंडपो और मिथिला प्रदेशके चारो ओर आम्रवाटिकाओसे घिरे हुए कमल सरोवरोंकी स्मृतिको नवीन कर देता है। एक समय था जब इस प्रांतके पथिक वास्तवमें अपने घरोसे पाथेय लेकर नहीं चलते थे। राजमार्गोंके दोनो पार्श्वोंमें स्थित विविध फलोपवन तथा जामुन और महुएके वृक्षोंकी फलोसे लदी लंबी कतारें उनके लिए सदैव पर्याप्त पाथेय प्रदान किया करती थीं (१.७.३–८)।

वसंतागमन एवं नागरिकोके उद्यान क्रीडार्थ गमनके संदर्भमें (४.१६ १–९) किया हुआ उद्यानवर्णन वहाँ अवतीर्ण माधव-श्री अर्थात् वसंतशोभा और उसके मदमाते वातावरणको पाठकके मनोमंडलमें अवतरित करता-सा प्रतीत होता है।

नदी-सरिता—श्रेणिकके सैन्य प्रयाणके संदर्भमें (५. १०. ४-९) रेवा नदीका वर्णन पठनीय है। इसमें कविने रेवा नदीका सजीव चित्र खीचा है—कही सूर्यकी किरणोसे तप्त हस्तिसमूह उसमे स्नान कर रहा होता है, कही टूट-टूटकर गिरते हुए जामुनके गुच्छे उसमें क्षुद्र लहरें उत्पन्न करते रहते है, तो कहीं उसमें गिरे हुए अकोल्ल पुष्पोकी गंधसे आकृष्ट भौंरे गुंजार करते हुए दिखाई देते है। कही उसका प्रवाह तटवर्ती प्रदेशमें बड़ी-बड़ी खदानें (खड्डे) खोद डालता है, तो कही उसमें क्रीडा करती हुई भीलनियोंके उत्तुंग, कठोर, सुपुष्ट स्तनोसे आहत होकर उसकी लहरें मानो टूक-टूक हो जाती है।

ऋतु वर्णन—छहो ऋतुओके वर्णनका विशिष्ट अवसर वीर कविको अपनी रचनामें उपलब्ध नही हो सका। अतः वसंत, ग्रीष्म और वर्षाका वर्णन करके ही उसे संतोष करना पड़ा है।

जं० सा० च० में वसंत ऋतुका सांगोपांग वर्णन पाया जाता है। वसंत आनेपर रात्रिका क्षीण होना और दिनका बढना, आमोपर बौर आना और कोकिलका कूकना, क्षुद्र जलाशयोमें जलका घटना और गुलाब पुष्पोका खिलना, अतिमुक्तक, विचकिल्ल तथा पलाश और किंशुक वृक्षोका फूल उठना तथा इनके साथ प्रोषित-पतिका, मानिनी नारी, कामुकजन, प्रवासी पथिक, मिथुनोका भूषण परित्याग, प्रियसंगमकी लालसा तथा कामीजनोकी मतवाली अवस्था आदि मानवीय भावनाओके साथ वसंतागमनका एकीकरण एक अपूर्व, अलौकिक आनंदानुभूति प्रदान करता है (३. १२. १-१३)।

ग्रीष्म—वीर कविने ग्रीष्म ऋतुका सीधे-सीधे वर्णन न करके, जंबूके विवाहके संदर्भमें ग्रीष्मकालीन जन-जीवनका एक बिंब प्रस्तुत किया है (१८. १३. १-७)। तीव्र धूपमें पसीनेसे तर कामिनियोके कपोलों, पर स्वेदकण झलकने लगते है। वे अपने सारे शरीरमें चंदनका गाढा लेप करती है। वैवाहिक-भोज आदिके अवसरपर लोग तिनकोके आसनोपर बैठकर जलकण चुआते हुए चंवरो तथा सुगंधित जलसे भिगोये हुए बीजनोसे शीतल सुगंधित पवनका सेवन करते है। सरोवरोका जल ईषत् उष्ण हो जाता है और तटवर्ती शिलाएँ सूर्यके तीव्रतापसे अग्निके समान गरम हो जाती हैं। दर्दुर कर्दममें लोट-पोट होते है। भ्रमर, इंदीवरोमें छिप जाते है। भैंसोके यूथ कीचडयुक्त जलमें लेट जाते हैं तथा गोमंडल वृक्षोकी छायामें जा बैठता है। यह वर्णन कितना सजीव और वास्तविक है!

वर्षा—करकंडे और सर्पकी अंतर्कथाके संदर्भमें (९. ९. ६ से ९. १०. ५) वर्षा ऋतुका यथार्थ चित्रण किया गया है। इस प्रसंगमें वर्षा ऋतुके आगमनपर आकाशमें घने बादलोका लटक जाना, धूलिका घात हो जाना और ऐसी घनघोर वर्षा जिसमें जल-थल सब एक हो जाते है, एक वृद्धासे वर्षाऋतुकी तुलना कर उसका मानवीकरण, तालाबोकी मेंढ फोड़कर पानीका वह निकलना तथा सात दिनो तक निरंतर वृष्टिसे दरिद्र ग्रामीणोकी दशा आदिका अत्यंत मार्मिक व हृदयस्पर्शी वर्णन पाया जाता है।

जं० सा० च० में उषःकाल एवं सूर्योदय (१०. १८. ७-१२), मध्याह्न (८ १३. १-७), तथा संध्या, सूर्यास्त, प्रदोषकाल रात्र्यागमन, अंधकार एवं चंद्रोदय (८. १४. ४-२१, ८. १५. १-१५) आदिके भी रोचक वर्णन उपलब्ध होते हैं।

उषःकाल एवं सूर्योदय—कर्म-रज और मोहांधकारके नाशसे वैराग्य एवं आत्मबोधका जो अदृष्टपूर्व प्रकाशमय सूर्य विद्युच्चरके मनमें उदित हुआ है, उसीके प्रतीक और बिंब-प्रतिबिंबभावसे किया हुआ वर्णन विशेष पठनीय है। अपराह्न संध्या-सूर्यास्त और रात्र्यागमनके वर्णनकी विशेषता यह है कि संध्याकाल और रात्र्यागमनके अवसरपर कामियोके मनमें कामराग बढ जाता है और प्रिया मिलनकी आकांक्षा तीव्र हो उठती है; पर इस संदर्भमें इससे सर्वथा विपरीत घटना घटती हुई दिखाई देती है। जंबूस्वामीने विवाह किया, पर अपनी अप्रतिम सुंदरी वधुओंमें आसक्त न होकर, उसने मुक्तिरूपी अलौकिक वधूमें अपना ध्यान लगाये रखा। अत: मानो संध्याका आना निष्फल हुआ और उसकी वधुओंके हाथ लगी निराशा तथा चिर वियोग। इन कोमल भावनाओंके परिप्रेक्ष्यमें उपर्युक्त संदर्भ दृष्टव्य हैं।

रात्रि और चंद्रोदय—का वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण शैली तथा मानवीय भावनाओंके उद्दीपनकारक रूपसे पाया जाता है (८ १५ १-१५)। रात्रिके आगमनपर अभिसारिकाएँ काले वस्त्राभूषण पहनकर निकलती हैं। दूतिकाओंका गमनागमन प्रारंभ होता है। दीपक जलाये जाते हैं और चंद्रोदय होनेपर प्रोषित-पतिकाओंके हृदय विरहाग्निसे जल उठते हैं, अतः वे कंचुकियाँ धारण कर लेती हैं। सारा जगत् मानों चांदनीसे नहा जाता है, अथवा मानों क्षीरसागरमें तैरने लगता है और कुमुद खिल जाते हैं। यह वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण होनेपर भी यथार्थ है। अत सजीव और मधुर है।

अबतक जिन वस्तु व्यापार वर्णनोंका विवेचन किया गया है, उनमें प्रकृति प्रधान है और उसे विविध मानवीय भावनाओंके प्रतीक रूपमें चित्रित किया गया है तथा मनुष्यके वास्तविक क्रिया-कलापोंको केवल संकेत रूपमें ही ग्रहण किया गया दिखाई देता है। अब हम उन वस्तु व्यापारोंको देखें, जिनमें यथार्थ मानवीय क्रिया-कलापोंका वर्णन उपलब्ध होता है। इस वर्गमें नागरिकोंकी उद्यान-क्रीडा, जल-क्रीडा, रात्रिमें अपने-अपने शयनकक्षोंमें मिथुनोंकी सुरत-क्रीडा, वेश्याओंके काम-व्यापार, हस्त्युपद्रव और तज्जन्य संक्षोभ, साधुओंके दर्शनोंके लिए राजाका सपरिवार, ससैन्य गमन एवं युद्धार्थ सेना सहित प्रयाण, सैन्यपड़ाव या छावनी तथा सेनाके-द्वारा नगर विध्वंस आदिके वर्णन रखे जा सकते हैं।

उद्यान क्रीड़ा—वसंत आ गया, मंदार आदि पुष्पोंकी मादक मंद मकरंदने संपूर्ण वातावरणको व्याप्त कर लिया और नागरिकोंके जोडे मस्तीके साथ उद्यान क्रीड़ाको निकले। इस संदर्भमें मिथुनोंकी पूर्ण स्वच्छंद क्रीड़ाका माधुर्य-गुण एवं वक्रोक्तिपूर्ण वर्णन ४.१७ एवं ४.१८ में पाया जाता है।

जल क्रीड़ा—इसी प्रसंगमें मिथुनोंकी जलक्रीड़ाका संभोग शृङ्गार एवं प्रसाद गुण पूर्ण वर्णन अत्यंत मनोहारी है (४.१९)।

वेश्याओंके काम-व्यापार—अर्द्धरात्रिका समय, सर्व प्रकारका कोलाहल शांत, प्रकृति स्तब्ध-नीरव पहरेदारोंकी 'जागते रहो' की पुकारें मौन, ऐसी घोर निःशब्दताकी घड़ीमें विद्युच्चर चोरीके उद्देश्यसे वेश्या-वाटमें-से नगर भ्रमणको निकला। इस संदर्भमें वेश्याओंकी विविध चेष्टाओं, काम-व्यापारों एवं वेश्या जीवन-का अत्यंत यथार्थ चित्रण उपलब्ध होता है (९.१२.५-१९ एवं ९.१३.१-७)।

मिथुनोंकी सुरत-क्रीड़ा—वेश्यावाटसे निकलकर आगे चलनेपर विद्युच्चरने नागरिकोंके शयनकक्षों-में मिथुनों-द्वारा पूर्ण विश्रब्ध भावसे की जाती हुई विविध प्रकारकी रतिक्रीड़ाको देखा। इसका अतिशय संभोग शृंगारपूर्ण वर्णन यहाँ देखा जा सकता है (९-१३.८-११)।

हस्त्युपद्रव—नागरिकोंके जोड़े अत्यानंद पूर्वक उद्यानक्रीड़ा (४.१७-१८) और जलक्रीड़ा (४.१९) पूर्ण करके शीघ्रतासे नगरको लौटनेकी तैयारी कर ही रहे थे कि श्रेणिक राजाका हाथी महावतको मारकर भाग निकला और उसने चारो ओर महाविनाश, विध्वंस एवं यमलीलाका दृश्य उपस्थित कर दिया। इसका रोमांचकारी वर्णन जं० सा० च० में पढ़ा जा सकता है (४.२०-७ से ४.२१.६)।

हस्त्युपद्रव जनित जनसंक्षोभ—जं० सा० च०में हाथीकी विनाश-लीलासे भयत्रस्त नागरिक संक्षोभ-

का भयावह दृश्य वर्णित है। भयानक भाग-दौड और कोलाहलकी स्थितिमें भी साहसी धूर्त कामुक अपना काम बना लेते हैं। कविका यह कथन बड़ा ही मनोरजक है (४.२१.७-१७)।

(भगवद्दर्शनार्थ) सैन्य प्रयाणकी तैयारी—एक जवानके द्वारा विपुलाचलपर समोशरण सहित भ० महावीरके शुभागमनकी आनंददायक सूचना पाकर श्रेणिकने अत्यत प्रसन्न होकर भगवान्के दर्शनोंके लिए चलनेकी तैयारी की और आनंदभेरी बजवायी। इस शुभ अवसरपर सैन्यप्रयाणकी तैयारीका सुंदर वर्णन है (१ १४.५-१०)।

प्रयाण—इसी प्रसंगमें पौरजनों सहित चतुरगिणी सेनाके मस्तीसे भरे प्रस्थानका दृश्य प्रस्तुत किया गया है (१ १५.१-७)। युद्धार्थ सैन्यप्रयाणकी तैयारीके वर्णनमें अधिकांशतया विविध सैन्य वाद्य-वादनका वर्णन किया गया है (५ ६)। उसमें बहुत कुछ वर्णन इसी विषयके पूर्वोक्त वर्णनके समान है। फिर भी एक अंतर देखा जा सकता है कि पूर्वोक्त (१.१४.५-१०) वर्णनको पढकर प्रसाद, प्रसन्नता एवं अव्यक्त माधुर्यकी भावभूमि और वातावरण निर्माण होते हैं। यहाँ उसी वर्णनमें ओजकी प्रबल ध्वनि सुनायी देती है।

(युद्धार्थ) सैन्य प्रयाण—भविष्यवक्ता मुनिके आदेशानुसार अपनी वाग्दत्ता विलासवतीके पिता केरलराज मृगाककी, विद्याधर रत्नशेखरके विरुद्ध, जो विलासवतीको बलात्कारपूर्वक अपनी बनाना चाहता था, सहायतार्थ श्रेणिकने ससैन्य केरलकी ओर प्रस्थान किया (५-७.१-२५)। ये पंक्तियाँ केवल सैन्य-प्रयाण नही बल्कि इस माध्यमसे ग्रामीण व नागरिक जीवन और साधारण लोगोंकी आजीविकाके साधनों पर भी बडा मर्मस्पर्शी प्रकाश डालती है।

सैन्य पड़ाव—विंध्य देशमें पहुँचकर रेवा नदीके वृक्षोंसे आच्छादित विस्तीर्ण तटवर्ती प्रदेशमें श्रेणिककी सेनाने पडाव डाला। जं० सा० च० में उसका संक्षिप्त वर्णन पाया जाता है (५.११.१-५)। दूसरी ओर केरलके बाहर शत्रु राजा विद्याधर रत्नशेखरकी सैन्य पडावका दृश्य वर्णित किया गया है (५.११.१०-१३)।

प्रकृति वर्णन—प्रकृतिके अधिकांश अंग जैसे—खेत, उद्यान, सरोवर, सरिताएँ, अटवी और पर्वत तथा बसंत ग्रीष्म आदि ऋतुएँ और उष., सूर्योदय, सूर्यास्त, रात्रि एवं चंद्रोदय आदि सबके वर्णन ऊपर दिये हुए संदर्भोमें आ चुके हैं। यहाँ केवल खेतोंके दृश्य और सैन्य-प्रयाण आदिके समय उड़नेवाली धूलिके संदर्भ दिये जा रहे हैं।

खेतोंका वर्णन—जं० सा० च० में मगध देशके वर्णनके प्रसगमें वहाँकी अतिसमृद्धता-सूचक धान्य संपत्तिका बिलकुल यथार्थ हृदयाकर्षक एवं आनंददायक वर्णन प्रस्तुत किया गया है (१.८.१-७)।

धूलिका प्रसार—जं० सा० च०में श्रेणिककी सेनाके प्रयाणसे जो धूलि उड़ी उसका (५.७.१-५), तथा युद्धके समय उड़ती हुई धूलिका सुंदर चित्र खीचा गया है (६.४.१०-११, ६ ५.१-४ एवं ६.६.१-२)। इन संदर्भोंमें आकाशमें उड़ती हुई धूलिका वर्णन उसके प्राकृतिक, मानवीकृत एवं अलकार विधानके आलबन रूपोंमें किया गया है।

धूलि शात होनेका वर्णन—जं० सा० च० ६.५ १०-११ में मानवीकरण करके किया गया है।

प्रकृति चित्रणके विविध रूप—इस प्रकार हम देखते हैं कि वीर कविने प्रकृतिके विभिन्नअंगोंका नाना रूपोंमें विस्तारसे चित्रण किया है, जिनमें प्रकृतिके उपदेशिका, आलंबन, उद्दीपन और अलंकारविधान, इन सभी रूपोंमें प्रकृतिका अत्यंत मनोहारी चित्रण उपलब्ध होता है। इन रूपोंमें प्रकृति चित्रणके कुछ संदर्भ यहाँ दिये जा रहे हैं।

(क) प्रकृतिका उपदेशिका रूपमें चित्रण—इसके प्रमुख सदर्भ ये हैं—जं० सा० च० १.६.११, २४-२५, १.७.१-३ (मगधदेश वर्णन) एवं ६.५.१०-११ (धूलि शात होना)।

आलंबन रूपमें—प्रकृति चित्रणके अनेक उदाहरण जं० सा० च० में पाये जाते हैं जिनमेंसे कुछ प्रमुख संदर्भ ये हैं :—१.७ ४-१४ (मगध), १.७ १-१० (राजगृह), ३.१.१३-२१ (पुष्कलावती), ३.२ (पुंडरिकिणीनगरी), ३.३ ६-१० (वीतशोकानगरी), ४.१६ (उद्यान), ५.८ (विंध्याटवी), ५ ७ (विंध्यप्रदेश), ५ १० ४-७ (रेवानदी), ८.१३.१-७ (ग्रीष्म), ९.९.९-१४ तथा ९ १० १-५ (वर्षा वर्णन) । इन सब संदर्भोमें प्रकृतिके आलंबन रूपका चित्रण किया गया है ।

उद्दीपन रूपमें—प्रकृतिके उद्दीपन रूपमें चित्रणके उदाहरण अपेक्षाकृत अल्प हैं । इस विषयके दोनों प्रसंग (३ १२.४.१६.७-१६) वसंतागमनसे संबद्ध हैं । इनमें प्रवासी पथिकों और प्रोषित-पतिकाओं आदिके विरह, प्रिय मिलनकी तीव्रकामना, मानिनी प्रियाओंका मानभंग, कामक्रीड़ाभिलाष आदि भावनाओंके उद्दीपनका हृदयस्पर्शी चित्रण किया गया है ।

अलंकार विधान रूपमें—प्रकृतिका चित्रण द्विविध रीतिसे किया गया है—(१) मानवीकरण, जिसमें प्रकृतिके विविध अंगोंका सचेतन, संवेदनशील मानव रूपमें वर्णन पाया जाता है । उदाहरण है :— मगधदेश (१ ८ १-७), तथा कुरल पर्वतका समान मानवीकृत चित्रण (५.१०.१०-१५), एवं अस्तंगमनशील सूर्यका नायक रूपमें तथा पश्चिम दिशा और दिवसलक्ष्मीका नायिका रूपमें (८ १४ ८ व १३-१५), एवं समुद्रका मानव रूपमें चित्रण (८,१४ १०-११) ।

उपमा व उत्प्रेक्षालंकारोंके उपमान-उपमेय रूपोंमें प्रकृति चित्रणके अनेक उदाहरण जं० सा० च० में उपलब्ध होते हैं, जिनके संदर्भ ये हैं—तरुणीके स्तन मंडलके सुखद्र संस्पर्शके समान मगध देशकी सुखदता, (१.६.१८), संवाहन नगरका उपमाओंसे पूर्ण वर्णन, (८.३.५-१४), अंधकार (८.१४.१६-२१), तथा चंद्रोदय और ज्योत्स्नाके उपमा व उत्प्रेक्षालंकार युक्त वर्णन, (८ १५.५-१४), वर्षागमनकी वृद्धा स्त्री से उपमा (९ ९.७-८) एवं उषा तथा सूर्योदयके रूपकालंकारसे अलंकारसे अलंकृत वर्णन (१०.१८.७-१२) ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वीर कविने उपर्युक्त नाना रूपोंमें प्रकृति चित्रण करनेमें अपना भरपूर कला-कौशल प्रदर्शित किया है ।

(घ) शील-विश्लेषण

'जंबूसामिचरिउ' में अनेक पात्र आये हैं, पर चरित्र-चित्रणकी दृष्टिसे चरितनायक जंबूके भवदेव, शिवकुमार और जंबू तथा सुधर्माके भवदत्त, सागरदत्त और सुधर्मा ये तीन-तीन जन्म, भवदेवकी पत्नी नागवसू, जंबूके माता-पिता और उसकी चार वधुएँ तथा उसके साथ दीक्षा लेनेवाला विद्युच्चर एवं कल्पित प्रतिनायकके रूपमें हंसद्वीपका राजा रत्नशेखर, इन पात्रोंके चरित्र महत्त्वपूर्ण हैं ।

नायक जंबूस्वामी—इनका चरित्र-चित्रण पाँच जन्मोंकी कथा द्वारा किया गया है । इनमेंसे दो बार स्वर्गोंमें देवताके रूपमें जन्म इस दृष्टिसे निरर्थक हैं । अतः प्रस्तुत कृतिमें भवदेव, शिवकुमार और जंबूके रूपमें नायकके चरित्रका क्रमशः उद्‌घाटन और विकास किया गया है ।

भवदेव, भवदत्त और नागवसु—एक वेदपाठी ब्राह्मणपुत्रके रूपमें भवदेव एक साधारण व्यक्तिके वेशमें हमारे सामने आता है । अत्यंत सुंदरी-भरपूर नवयौवना नागवसूसे उसका विवाह हो ही रहा था कि बड़े भाई भवदत्त, जो बारह वर्षकी अवस्थामें ही भवदेवको गृहस्थीका भार सौंपकर दीक्षित हो गये थे वे उसे प्रव्रजित करनेकी सुनिश्चित मनोभावनासे उसके घर आये । भवदेवने मुनिका उचित स्वागत सत्कार किया और नगरके बाहर तक उन्हें छोड़नेके निमित्तसे उनके पीछे-पीछे चला । अन्य लोग लौट आये । भवदेव भी मनमें शेष वैवाहिक रीतियों और नागवसूकी अधूरी शृंगार-सज्जाको पूर्ण करनेकी कल्पना करता हुआ घर लौट चलनेकी सोचता रहा । पर अग्रजके स्वयं अनुमति न देनेसे लज्जा और सम्मान वश लौटा नहीं । मुनिसंघमें जाकर भाईकी सम्मान रक्षा हेतु उसने बेमनसे दीक्षा ले ली और बारह वर्षों तक एक ओर सुंदर पत्नीके साथ नाना प्रकारके कामभोगोंकी सुखद कल्पनाएँ और दूसरी ओर ऊपरी रीतिसे व्रतोंका

पूर्ण निर्वाह करते हुए जीवन व्यतीत करता रहा। मुनि संघके दुबारा ग्रामके निकट आने पर उसके द्विविध अंतर्द्वंद्वमें इंद्रिय सुखोंकी वासनाने उसे पराभूत कर दिया और वह पत्नीसे मिलने घरकी ओर चल दिया। राहमें चलते हुए बारह वर्षोंकी दीर्घ अवधिमें पतिके बिना पत्नीका क्या हुआ होगा ?, क्या वह कुल-धर्ममें स्थित रही होगी अथवा यौवनके वशीभूत होकर उसने अन्य पति कर लिया होगा ?, आदि अनेक विकल्प उसके मनमें आते रहे। गाँवके बाहर एक मंदिरमें ही नागवसूसे भेंट हो गयी। परन्तु इधर भवदेवका बारह वर्षोंका मुनि जीवन, और उधर नागवसूको घरमें रहते हुए व्रतोंकी साधना। इससे उनका दैहिक सौंदर्य और यौवन न जाने कहाँ विलीन हो गये थे। नागवसू एक जरा-जीर्ण वृद्धाके समान प्रतीत होने लगी थी। अतः वे दोनों परस्परको पहचान नहीं पाये। भवदेव मुनिके द्वारा अपने माता-पिता व पत्नीके संबंधमें जिज्ञासा करनेपर नागवसूने उसे पहचान लिया। उसने मुनि चरित्रसे डिगते हुए भवदेवको धर्ममें स्थिर करने हेतु सदुपदेश दिया, जिससे भवदेवको आत्म-विवेक उत्पन्न हो गया। उसने मुनि संघमें आकर आचार्यसे सब कुछ निवेदन कर दिया और अपनी आलोचना की व प्रायश्चित किया। इसके पश्चात् उसने कठोर तप किया और मृत्युके उपरांत दोनों भाई स्वर्गमें देव हुए। इधर नागवसू भी आर्यिका (साध्वी) हो गयी और तपोमय जीवन व्यतीत करने लगी।

भवदेवके इस जीवन चरित्रमें-से हम देख सकते हैं कि यद्यपि मुनि होनेके पश्चात् भी दीर्घकाल तक वह इंद्रिय सुखोंका चिंतन करता रहा, तथापि उसने धर्मका परित्याग नहीं किया, और मुनि जीवनकी मर्यादाओंका ऊपरी तौरसे ही क्यों न हो, पूर्ण पालन करता रहा और जब वह धर्मसे डिगनेको हुआ तथा ऐसा आभास होने लगा कि अब उसकी जीवनधारा सदाके लिए बदलकर ही रहेगी, तब उसकी पत्नीने ही उसे हस्तावलंबन देकर डूबनेसे बचा लिया। जिन परिस्थितियोंमें भवदेवने मुनि दीक्षा ली, वे प्रत्येक सहृदय सामाजिककी संपूर्ण सहानुभूति भवदेवकी ओर अनायास खींच लेती हैं, और अग्रज भवदत्तके इस कार्यसे कुछ क्षणोंके लिए ही सही, उसके मनमें एक वितृष्णा-सी उत्पन्न हो जाती है। भवदत्तका यह कार्य अश्वघोषके सौंदरनंद काव्यमें बुद्धके द्वारा नंदकी दीक्षाके प्रसंगसे पूर्णतः मेल रखता है।

भवदत्त—ठीक विवाहके समय ही वैवाहिक जीवनका रंचमात्र भी सुख देखे बिना अनुजको उसकी इच्छाके सर्वथा विपरीत मुनि बना लेनेमें पाठकको पहले पहल भवदत्तकी परम कठोरताका आभास होता है। पर जब हम धार्मिक विश्वासोंकी पृष्ठभूमिमें भवदत्तके इस कार्यको तौलकर देखते हैं, तो अनुजको संसारके अनंत आवागमनके चक्रसे छुडाकर उसके शाश्वत-कल्याण (मोक्ष-प्राप्ति) की दृष्टिसे भवदत्तका यह कार्य उसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न किये बिना नहीं रहता।

भवदेवको बोध देनेका एकमात्र प्रसंग जो कि काव्यकी संपूर्ण कथावस्तु और नायकके चरित्रोत्कर्षकी सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है, नागवसूके चरित्रका एकाएक उद्घाटन कर देता है। नागवसूका यह कार्य भारतीय नारीके चरित्रको युग-युगोंके लिए सर्वोच्च स्थानपर प्रतिष्ठित कर देता है। नागवसूके इस कार्यने अध-पतनके गर्तमें गिरते हुए एक सामान्य विषय लोलुप व्यक्तिको त्रिलोकपूज्य ऋषि बना दिया। इसी प्रकारकी एक घटना हमें उत्तराध्ययनमें पढनेको मिलती है, जिसके अनुसार साध्वी राजीमतीने अरिष्टनेमिके चचेरे भाई रथनेमिको पतनके महान गर्तमें गिरनेसे बचाया[1]। नागवसूका यह चरित्र भारतीय नारीके जीवनका सर्वोच्च आदर्श रहा है। भारतीय संस्कृतिके इतिहासमें ऐसे असख्य उदाहरण हैं जबकि नारीने न केवल गृहस्थ जीवन, जो मनुष्यके वृहत्तर जीवन एक अंग मात्र है, बल्कि युद्ध और मृत्यु एवं तप-साधना तक सभी क्षेत्रोंमें सदैव पुरुषकी अनुगामिनी-सहयोगिनी बनकर मोक्ष प्राप्ति पर्यंत स्वयंके और पतिके जीवनको उठाया है। तुलसीको संत कवि तुलसी बनानेमें नारीकी ही प्रेरणा निहित है, यह विदित तथ्य है। इसी लिए 'यशोधरा'[2] के कविको पीडा यह नहीं कि बुद्धने स्त्री-पुत्रको छोड़कर संन्यास क्यों लिया ? बल्कि उसकी

१. उत्तरा० २२ रहनेमिज्जं।
२. स्व० मै० श० गुप्त द्वारा रचित हिंदी काव्य।

वास्तविक वेदना तो यह है कि बुद्धने यशोधराके अनजाने यह क्यों किया ? यदि वे यशोधरासे कहकर जाते तो क्या यशोधरा उनके पथकी बाधा बनकर खड़ी होती ? नहीं ! बल्कि निज मनके इस दौर्बल्यने कि कहीं मैं न फंस जाऊं, उन्हें ऐसा करनेको प्रेरित किया होगा। इस प्रकार नागवसूका जीवन चरित नारी जीवनके उच्चतम आदर्शका प्रतीक है।

सागरदत्त-शिवकुमार—भवदत्त और भवदेवके स्वर्गिक जीवनके संबंधमें कुछ विशेष कथ्य नहीं है। जब वे दोनो स्वर्गसे आकर दो राजाओंके सागरदत्त और शिवकुमार नामक पुत्र हुए, तो सागरदत्त एक मुनिका उपदेश सुनकर दीक्षित हो गया और वीतशोक नगरीमें जहाँ शिवकुमार उत्पन्न हुआ था, उसे बोध देने गया। शिवकुमारको इस बार मुनिके दर्शन करते ही अपना पूर्वभव स्मरण हो आया और वैराग्य ही हो गया। फिर भी माता-पिताके आग्रहसे घरमें ही रहकर बारह वर्षों तक भावना करके वह पुनः स्वर्ग गया और विद्युन्माली नामक देव हुआ। मुनि सागरदत्त भी समाधिमरण करके स्वर्ग गये। यहाँ शिवकुमारके जीवनमें अंतर्द्वंद्वका अभाव पाया जाता है। युवावस्था तक निर्द्वंद्व भावसे सारे राजसुख और इंद्रिय भोग भोग कर मुनिदर्शन मात्रसे सहसा उसे बोध हो आता है और वह धर्मसाधनामें लग जाता है।

सुधर्मा और जंबू—स्वर्गसे आकर सुधर्मा एक विद्वान् ब्राह्मणपुत्र हुए और महावीरके दर्शनसे बोध प्राप्त कर उनके शिष्य बन गये तथा उनके निर्वाणोपरान्त बारह वर्ष तक संघके प्रधान रहे। उधर विद्युन्माली देवने राजगृहीमें अर्हद्दास सेठके घरमें जन्म लिया और उसका नाम जंबूस्वामी रखा गया। बाल्यकालसे लेकर मोक्षगमन पर्यंत जंबूस्वामीके जीवन-चरितमें वे सारे गुण उपलब्ध होते हैं जो महाकाव्यों और नाटकोंके धीरोदात्त नायकोंमें कहे गये हैं। सर्वसम्पन्न घरानेमें उत्पन्न अप्रतिम और अपूर्व रूपलक्ष्मीके जन्मजात धनी, लोगोंके अनुराग और कामिनियोंकी अनायास आसक्तिके अद्वितीय आलंबन, गंभीर स्वभावी, महासत्त्व, स्थिर प्रकृति, दृढव्रती और अत्यंत विनयशील तथा कृतज्ञ होनेपर भी अदम्य स्वाभिमानी ! ऐसा वर्णित किया है वीर कविने जंबूके जीवनको। वसंत ऋतु आनेपर अनेक मित्रोंके साथ सरोवरमें कामिनियोंके मध्य जंबूकी जलक्रीडाके वर्णनसे उसके जीवनमें युवावस्था सुलभ रसिकताकी प्रतीति होती है और बचपनसे ही बुद्धके समान एकांतप्रिय वैरागी न दिखला कर, कवि सहृदय पाठकको नायकके जीवनके साथ समरस होनेका अवसर प्रदान कर उसे साधारणीकरणकी रसात्मक अनुभूति करानेमें सफल हुआ है। जलक्रीडाके अवसरपर राजहस्ति-के उपद्रवका वर्णन कर कविने अत्यंत कुशलतासे जंबूके शौर्य गुणको प्रकट किया है। विलासवतीके राजा श्रेणिकसे परिणयकी भविष्यवाणी, हंसद्वीपके विद्याधर राजा रत्नशेखरका उसके लिए दुराग्रह और कन्याके पिता मृगांक-द्वारा उसके आग्रहको ठुकरानेके प्रसंगोंकी स्व-कल्पना प्रसूत सृष्टि करके कवि एक प्रतिनायककी योजना करनेमें सफल हुआ। इसी प्रसंगको लेकर कविने केरलमें राजा मृगांक तथा विद्याधर रत्नशेखरकी सेनाओंमें युद्ध होनेका विस्तारसे वर्णन करते हुए अंतमें जंबूस्वामी और रत्नशेखर, और राजा श्रेणिकका सेना सहित केरलकी ओर प्रयाण, रास्तेमें सैन्य पड़ाव तथा युद्धमें जंबूकी विजय दिखलाकर नायकके चरितमें लौकिक दृष्टिसे भी परमोत्कर्ष दिखलाया है, और उसके शूरवीरता और क्षमाशीलता इन दोनों गुणोंका पूर्ण उद्घाटन किया है। युद्ध-विजयके उपरांत केरलसे वापिस लौटते समय राजगृहीके बाहर ही उद्यानमें सुधर्म मुनिके दर्शन, धर्मोपदेश और पूर्वभवकथनसे जंबूको एकदम वैराग्य हो जाता है। माता-पितासे दीक्षा लेनेकी अनुमति नहीं मिलती, प्रत्युत जंबूको चार कन्याओंसे विवाह करना पड़ता है। परंतु यहाँ कवि नायकके मनमें किसी प्रकारका अंतर्द्वंद्व नहीं दिखलाता क्योंकि पूर्व संस्कारोंके कारण प्रव्रज्या लेनेका उसका निश्चय अटल होता है। फिर भी विवाह होता है और कामदेवकी रतिके समान अपूर्व रूप-यौवन संपन्न वधुएँ अपने हाव-भाव विलास और अंग-प्रत्यंग प्रदर्शन, गीत, हास्य आदिके द्वारा जंबूको रतिसुखमें डुबोनेका भरपूर प्रयास करती हैं। कथनोपकथन होते हैं, पर जंबू अडिग रहता है। यहाँसे लेकर जंबूके मोक्षगमन पर्यंत कथावस्तु सीधे-सीधे तीव्रतासे फलागमकी ओर बढ़ती हुई नायकको फलप्राप्ति होनेपर पूर्ण होती है।

विद्युच्चर—यह एक प्रकारसे जंबूस्वामीका सहयोगी पात्र तथा रचनाका उपनायक है। जन्मतः

राजपुत्र, कर्मसे चोर और वेश्याव्यसनी, इस रूपमें विद्युच्चर पाठकके सामने आता है और चोर बनकर जंबूस्वामीके घरमें प्रवेश करता है। वहाँ वर और वधुओंके बीच होते हुए कथा वार्तालापको सुनकर ठह जाता है और उसे सुनते-सुनते उसका चित्त बदल जाता है। जंबूकी जाग्रत तथा चिंताविह्वल माँ उसे दे लेती है। दोनोंकी वार्ता होती है। विद्युच्चरको जंबूका मामा बनाकर जंबूकी माँ उसे पुत्रके सामने उपस्थि करती है। एक चोर, दूसरा भविष्यत् केवली, ऐसे अद्भुत मामा-भानजोंके मध्य कथा संवाद प्रारंभ होता है पहले दार्शनिक चर्चा और फिर वही लोक कथाओंका सिलसिला। विजय होती है जंबूकी। विद्युच्चर अपने असली रूपको प्रकट कर जंबूका चिर अनुगामी शिष्य बन जाता है। विद्युच्चरके हृदय परिवर्तनकी यह घट अनायास एक ओर हमे महर्षि वाल्मीकिके जीवन चरितका स्मरण कराती है, दूसरी ओर अपने द्वारा हत्य किये हुए मनुष्योंकी गिनतीके लिए उनकी एक-एक अंगुली काटकर, उसकी माला पहिननेवाले भयानक दस्यु अंगुलिमाल एवं महात्मा बुद्धकी भेंटका, जिसकी परिणति उस नर-पिशाच अंगुलिमालके लोकपूज्य अर्हत् अंगुलिमाल बननेमें होती है।[1] जंबूके साथ दीक्षा लेनेके उपरांत विद्युच्चर जैन संघके एक प्रमुख अर्हत् बने और श्वे० परम्परानुसार जंबूके पश्चात् ग्यारह वर्षों तक संघके प्रधान भी रहे। साधु जीवनमें उन्होंने अनेक भयानक उपसर्गोंको अविचल भावसे सहन किया और दीर्घ तपस्या कर स्वर्गमें देव रूपसे उत्पन्न हुए। विद्युच्चरका यह जीवन इस बातकी उच्चतम स्वरसे घोषणा करता हुआ प्रतीत होता है कि महापुरुषोंकी संगति वह दिव्य पारस है जो निकृष्टतम लोहेके समान नराधमोंको भी अपने स्पर्श मात्रसे त्रिलोक पूज्य महात्मा बना देता है।

रत्नशेखर—प्रतिनायकके रूपमें कविने रत्नशेखरको धीरोद्धत नायकके गुणोंसे संपन्न व्यक्ति वर्णित किया है। वह अन्यायसे बलपूर्वक श्रेणिकके निमित्त प्रदत्त कन्याको प्राप्त करना चाहता है और साम, दाम आदिसे उपलब्धि न होनेपर युद्ध ठान देता है। शस्त्र युद्धमें मृगांकको जीत न पानेपर माया युद्ध-द्वारा मृगांकको बाँधकर कैद कर लेता है। यह समाचार मिलनेपर जंबूस्वामी उसे ललकारते हैं और उसे सब प्रकारके युद्धमें पराजित कर अंतमें बाँध लेते हैं और नगरमें ले जाकर क्षमा कर देते हैं। रत्नशेखर भी सारे वैर विरोधको भूलकर जंबूस्वामीका भक्त और मृगांकका मित्र बन जाता है। रत्नशेखरका यही संक्षिप्त चरित हमें प्रस्तुत काव्यमें उपलब्ध होता है।

जंबूस्वामीकी चार वधुएँ—विवाहके पूर्व ही यह जान लेनेपर भी कि जंबूस्वामीको वैराग्य हुआ है और वह दीक्षा लेनेवाला है, चारों वधुओंने भारतीय आदर्शके अनुकूल उसीसे विवाह किया। उन्हें विश्वास था कि हमारा यह अप्सराओं-जैसा दिव्य और अनुपम रूप-यौवन जंबूको आकृष्ट करके अपने पाशमें बाँधनेमें अवश्य सफल होगा और यदि हम लोग जंबूस्वामीको न जीत सकीं तो भी हम उन्हींकी अनुगामिनी बनकर उन्हींके साथ दीक्षा लेंगी। विवाह हुआ और चारों वधुओंने नारी सुलभ जो-जो हाव-भाव-विलास आदि काम चेष्टाएँ हो सकती हैं, सभी कुछ किया। इन सबका जंबूपर कोई प्रभाव न पड़ता देख अंतमें अपने कथा-कौशलके द्वारा उसे वैराग्यसे पराङ्मुख करनेका मनोवैज्ञानिक यत्न किये। पर जब इसमें भी जंबूने उन्हें प्रतिकथानकोंके द्वारा निरुत्तर और मूक कर दिया, तो वे शांत होकर बैठ रहीं और प्रातःकाल होनेपर जंबूके साथ ही दीक्षा ले ली। इस प्रकार उन्होंने जीवनपर्यंत पतिके मार्गका अनुसरण-अनुगमन किया। भवदेवके जन्ममें उन परिस्थितियोंमें नागवसूने जिस आदर्शकी स्थापना की थी, उससे कुछ भिन्न परिस्थितियोंमें जबकि एक क्षीण संभावना यह अवश्य थी कि जंबूस्वामी गृहस्थोंमें रह सकें, युवावस्थाकी स्वाभाविक प्रवृत्तियोंके अनुसार इंद्रियसुखकी भावनाओंसे प्रेरित जो चेष्टाएँ थीं, वे सब करके जब वे हार गयीं, तब अंतमें उन वधुओंने भी उसी आदर्शका पालन किया। फिर वे जंबूके मोक्षमार्गकी यात्रामें बाधक बनकर खड़ी नहीं हुईं। भारतीय नारीके इसी सर्वोच्च आदर्शकी ओर कविने पाठकोंके हृदयपर बार-बार अधिकाधिक दृढ़तासे छाप लगानी चाही है, अंकित करना चाहा है और हृदयकी अधिकतम गहराइयोंमें अमिट रेखाओं-द्वारा उत्कीर्ण कर देनेका सत्प्रयास किया है।

१. जातकट्ठकथा : अंगुलिमाल जातक।

शिवकुमारके माता-पिता—ने उसे दीक्षा लेनेकी अनुमति नहीं दी थी और मोहवश उसे घरमें ही रहकर तप-साधना करनेकी पूर्ण सुविधा प्रदान की। माँ-बापका अपने इकलौते पुत्रके प्रति न जाने कितना मोह, असीम वात्सल्य और अनंत मनोभावनाएँ आबद्ध रहती हैं। परन्तु फिर भी जब पुत्रको अलौकिक मोक्ष-साधनाके मार्गपर चलना हो तो वे उसमें बाधा तो नहीं देते, लेकिन पुत्र आँखोंके सामने रहे यह भावना और तज्जन्य संतोष कितना महान् होता है इसे प्रत्येक माता-पिताका हृदय समझ सकता है। वही शिवकुमारके माँ-बापने किया। इससे वे हमारी सहज अनुभूति समवेदना आकृष्ट करते हैं।

जंबूके माता-पिता—शिवकुमारको वैराग्य हुआ था तब, जबकि वह एक प्रकारसे राज्यवैभव और यौवन, संपत्तिके सारे सुख भोग चुका था। जंबूने यौवन सुख किसे कहते हैं, यह जाना तो अवश्य था, पर भोगा नहीं, तभी उसे ससारसे विरक्ति हो गयी। चार कन्याओंसे विवाह बचपनसे ही निश्चित किया जा चुका था। फिर भी जंबूके समझानेसे उसके माता-पिताने धैर्य धारण कर लिया और कन्याओंके घर जंबूको वैराग्य उत्पन्न होनेका समाचार भिजवा दिया, जिससे कन्याओंका संबंध अन्य योग्य वरसे किया जा सके। पर यह नहीं हो सका। कन्याओंके स्वयंके आग्रहके कारण जंबूके माता-पिताको उसे विवाह कर लेनेको कहना पड़ा। जंबूने प्रव्रज्या लेनेके अपने पूर्व निश्चयपर अटल रहते हुए भी विवाह करना स्वीकार किया। विवाह हुआ जंबू अडिग रहे।

जंबूकी वधुओंके बीच कथोपकथनके अंतरालमें उसकी माँकी मनोदशाका कविने अत्यंत मनोवैज्ञानिक और मार्मिक चित्रण किया है। प्रातःकाल जंबूने दीक्षा ली, साथमें वधुओं तथा माता-पिताने भी। यह पढ़कर अनुभव होता है, मानो जंबूके चरितके क्रमिक उत्थानके साथ-साथ उससे संबद्ध अन्य व्यक्तियों अर्थात् माता-पिता एवं वधुओंके चरितमें भी उत्तरोत्तर उत्कर्ष आता गया है। शिवकुमारने घरमें रहकर ही तप-साधना की थी, पर उसकी पत्नियों, माता-पिता किसीकी धार्मिक साधनाओंका कोई उल्लेख हमें नहीं मिलता। परंतु जब शिवकुमारने अंतिमकेवली होनेवाले जंबूस्वामीके रूपमें जन्म लिया, तब उसके माता-पिता और वधुएँ भी मानो उसीके साथ उन्नत हो गये और जंबूके साथ इन सबने भी जिनदीक्षा स्वीकार कर ली। सच है पुत्र और पतिकी भौतिक आध्यात्मिक उन्नतिके साथ-साथ माता-पिता-पत्नीका भी सर्वतोमुखी उत्थान, उन्नति, विकास स्वाभाविक और अनिवार्य है। यही वह संदेश है जिसे कवि अपनी संपूर्ण रचना और चरित-चित्रणके माध्यमसे देना चाहता है।

इन प्रमुख पात्रोंके अतिरिक्त जं० सा० च० में कुछ और भी पात्र आये हैं—जैसे राजा श्रेणिक, विद्याधर गगनगति, राजा मृगांक व उसकी विलासवती कन्या तथा अणाढिय नामक यक्ष। इनके चरित-विश्लेषणके संबंधमें बहुत अल्प सामग्री जं० सा० च० में उपलब्ध होती है, अतः इनके विषयमें कोई विशेष कथ्य नहीं है।

अब यदि चरितचित्रणकी दृष्टिसे जं० सा० च० के विषय-वर्णनका विश्लेषण किया जाये तो हम देखेंगे कि जंबूस्वामीके विवाह और वधुओंके जंबूस्वामीको वशमें करनेके प्रयत्नोंपर आकर जं० सा० च० की आठवीं संधि समाप्त होती है और वास्तवमें इतना ही इस रचनाका श्रेष्ठ काव्य रसात्मक अंश है। संधि ९ और १० में अनेक अंतर्कथाओंके द्वारा जंबूके विवेक और वैराग्य-भावकी दृढ़ता प्रकट की गयी है और १०वीं संधिके १९ से २४ तक कुल पाँच कडवकोंमें जंबूकी दीक्षासे लेकर मोक्षगमन पर्यंतका सारा वृत्तांत कह दिया गया है। संधि १०, कडवक २५ से लगाकर, ११वीं संधिके अंत तक मुनि विद्युच्चरपर घोर उपसर्ग, बारह भावनाओं-द्वारा उपसर्ग-विजय और समाधिमरण करके सर्वार्थसिद्धि स्वर्गगमनका वृत्त कहा गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वीर कविने अपने कथ.पात्रोंका चरित्र-चित्रण रचनाके उत्कृष्ट भागमें किया है, और धर्मसंबंधी चर्चाओं व तप-साधना आदि जो कि सर्वसाधारण पाठककी रुचिके विषय नहीं हैं, उन्हें बहुत अल्प स्थान दिया है। इस कारण इनकी रचनामें आद्योपांत कहीं भी शुष्कता व नीरसता नहीं आ पाती और संभवतः "पायथवधुवल्लहु जणहो विरइज्जउ कि इयरें" (१४.१०) तथा "सरिसर-निवाणठिउ वहु त्रि जलु सरमु न तिह मणिज्जइ। योवउ करयत्थु विमलु जणिण अहिलार्से जिह पिज्जइ।"

(१ ५ १०-११) वीर कविकी इन पंक्तियों तथा 'काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये। कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे' मम्मटाचार्यकी इस कारिकाका यही हेतु था जिसे सफलीभूत करनेमें हमारा कवि बहुत दूर तक सफल हुआ है।

(ङ) रस-भाव योजना

जंबूसामिचरिउके परिशीलनसे ज्ञात होता है कि यह एक प्रेमाख्यानक महाकाव्य है। अश्वघोषकृत सौंदरनंद महाकाव्यके समान इस काव्यका प्रारंभ भी बड़े भाईके द्वारा छोटे भाई भवदेवके अनिच्छापूर्वक दीक्षित कर लिये जानेसे प्रिया-वियोगजन्य विप्रलंभ शृंगारसे होता है। काव्यमें विप्रलंभशृंगार रस-योजनाकी दृष्टिसे उच्चकोटिका माना जाता है। भवदेवके प्रेमकी प्रबलता और महत्ता इसमें है कि जैन संघके कठोर अनुशासनमें दिगंबर मुनिके वेषमें बड़े भाईकी देखरेखमें रहते हुए भी तथा जैन मुनिके अतिकठोर आचारका पालन करते हुए भी उसने बारह वर्षोंका दीर्घकाल अपनी पत्नी नागवसूके रूप चिंतन तथा उसीके ध्यानमें बिता दिये। उपाध्यायों-द्वारा पढाये जानेपर उसे एक अक्षर नहीं आता था, और वह निरंतर अपनी सुंदर पत्नी नागवसूके अंग-प्रत्यंगोंका स्मरण-चिंतन करते हुए यही सोचता रहता कि अब वह कैसी होगी? और वह धन्य-दिवस कौन-सा होगा जब मैं प्रियाका गाढ आलिंगन करके उसके साथ यथेच्छ सुरत-सुख भोगूँगा? इस प्रकार बारह वर्ष बीत गये और मुनिसंघ पुनः उसके गाँवमें आया। उस समय एक ओर भवदेवका पत्नीसे मिलकर विषय-भोग करनेका अदम्य उत्साह व दूसरी ओर अपनी मुनि अवस्था, और तीसरे मुनि जीवनको कलंकित करनेवाले उसके कु-आचरणसे उसके अग्रज भवदत्तको कैसी महान् लज्जा उत्पन्न होगी, इसका विचार, इन प्रेय और श्रेय-वृत्तियोंका द्वंद्व काव्यमें अत्यंत मार्मिक बन पड़ा है। अंततः भवदेव गाँव की ओर चल दिया। गाँवके बाहर मंदिरमें ही पत्नीसे भेंट हो गयी, परंतु व्रतोपासनासे क्षीणकाय होनेसे वह उसे पहचान नहीं सका। नागवसूने अपने माता-पिता दोनों भाई, और अपनी पत्नीके विषयमें पूछताछ करनेपर नागवसूने उसे पहचान लिया कि यह मुनिधर्मसे विचलित भवदेव है। उसने तुरंत निश्चय किया कि मैं इसे बोध देकर धर्ममार्गमें स्थिर करूँगी। अपने इस निश्चयमें वह पूर्णतया सफल रही, और भवदेव बोध प्राप्त कर उसी क्षणसे सच्ची तप-साधनामें लग गया। इसी स्थलसे भवदेवके चरित्रका उत्थान प्रारंभ होता है, जो क्रमशः जंबूस्वामीके रूपमें जन्म लेकर अंतिम केवलज्ञानी हुआ, और मोक्ष लाभ कर परमात्म-पदको प्राप्त हुआ। नागवसूका यह कार्य इस चरितमें एवं भारतीय नारीके इतिहासमें उसे अत्यंत महान् पद प्रदान कराता है कि वह एक पतनोन्मुख सामान्य विषयलोलुपी मानवको त्रिलोकपूज्य परमात्म अवस्था तक उठानेमें हेतुभूत हुई। वासनामय होनेपर भी परमप्रेमकी परम वैराग्यमें यह परिणति, परिवर्तन व स्थानांतरण और उदात्तीकरण एक ऐसी मनोवैज्ञानिक घटना है जो अनेक भारतीय ऋषियों, मुनियों संतों व तुलसी जैसे महाकवियोंके जीवनमें घटित हुई हैं, जिसके कारण ही उन्हें वह पद प्राप्त हुआ है, जिसपर वे आज विराजमान हैं। जब प्रेमपात्रसे निराशा होती है, तो वह व्यक्तिको वैराग्योन्मुख करती है, ऐसा आधुनिक मनोवैज्ञानिकोंका भी अभिमत है। इस काव्यका प्रारंभ प्रेमसे होकर उसकी चरम परिणति परम वैराग्यमें हुई है। इस दृष्टिसे इसमें नागवसूका महत्त्व सर्वोपरि है, और उसका जीवनवृत्त अत्यल्प होते हुए भी उसके इस एक ही कार्यने उसे इस चरितकाव्यकी नायिकाका पद प्रदान कराया है।

इस प्रकार विप्रलंभ शृंगारसे काव्यका प्रारंभ होकर, शांतरसमें पाठकको शांति प्रदान करता हुआ यह चरित-काव्य अमृतपयस्विनी गंगाकी धाराके समान विभिन्न रसों रूपी घुमावों और मोड़ोंमें होता हुआ अंतमें शांतरसके सुधा-सागरमें परिणत हो जाता है।

वीर कविने अपनी इस रचनामें प्रमुख रूपसे वीर, बीभत्स, रौद्र, भयानक एवं शांत रसोंकी योजना की है। अद्भुत, करुण एवं हास्य रसात्मक अंश भी काव्यमें विद्यमान हैं, परंतु वे बहुत अल्प हैं, और उनमें रस अपने पूर्ण उत्कर्षको प्राप्त नहीं हो सके हैं। उन अंगोंमें रसकी अपेक्षा उनके स्थायी और संचारी भावोंका ही प्राधान्य दिखाई देता है। कविने स्वयं भी अपनी रचनाको 'शृंगारवीर-रसात्मक महाकाव्य'

कहा है। भयानक, रौद्र एवं बीभत्स रसोंकी योजनापर यदि गहराईसे विचार किया जाये तो प्रतीत होगा कि वे वीर-रसके पोषक-रस रूपसे यहाँ नियोजित हुए हैं। 'शांतरस' काव्यका केंद्रीभूत रस है। इस प्रकार शृंगार, वीर और शांत तीनों समान रूपसे काव्यके प्रधान रस माने जा सकते हैं। संदर्भोके परिप्रेक्षमें उन्हें संक्षेपमें इस प्रकार देखा जा सकता है :—

शृंगार रस—महाकवि वीरने प्रेमियोंके हृदयमें संस्कार रूपसे वर्तमान रति या प्रेमको रसावस्था तक पहुँचाकर उसमें आस्वाद योग्यता उत्पन्न की है। कविने शृंगार रसकी पूर्णता संयोग या संभोग शृंगारमें न मानकर विप्रलंभ शृंगारमें मानी है। वस्तुतः वियोगाग्निमें तपनेपर ही प्रेममें उत्कटता और उत्कर्ष आते हैं। अतएव वियोगावस्थामें पात्रके जैसे उद्‌गार अभिव्यक्त होते हैं, वैसे संयोगावस्थामें नहीं। प्रस्तुत काव्यमें कविने भवदेवकी दाम्पत्यविषयक रतिका सजीव चित्रण किया है। विरक्त होनेपर भी भवदेव अपनी पत्नीके आकर्षणको भूल नहीं सका। साधना करते समय भी उसका मन नागवसूके अंग-प्रत्यंगकी रूप-सुषमाके चिंतनमें लगा रहता है। वीर कविने इस प्रसंगमें विप्रलंभ शृंगारके अभिलाष, चिंता, स्मृति आदि अंगोंका सरस वर्णन किया है (२-१४-१५)।

जंबूस्वामी युवा होनेपर नगर भ्रमणके लिए निकलते हैं। इस प्रसंगमें वीरने जंबूस्वामीको देखकर काम विह्वल होती हुई नगरकी नारियोंका रोचक वर्णन किया है (४.११)। यहाँ दर्शन जन्य पूर्वराग नामक शृंगार रस है, तथा कुमारके अनुपलब्ध होनेसे इसमें विप्रलंभका भाव घनीभूत हो उठा है।

जंबूस्वामीकी भावी वधुओं—चार श्रेष्ठि-कन्याओंके सौंदर्यका शृंगार पूर्ण वर्णन भी रस परिपाककी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है (४.१३)।

वसंत ऋतुका आगमन हुआ। नागरिकोंके जोड़े उद्यान-क्रीडाके निमित्त बाहर निकले और रस विभोर हो क्रीड़ाओंमें डूब गये (४.१७-१८)। उद्यान क्रीड़ाके उपरांत जलक्रीडाका वर्णन है (४.१९)। इन दोनों प्रसंगोंमें संभोग शृंगारका परिपाक हुआ है।

इसी प्रकार सूर्यास्त एवं संध्याके आगमनपर (४.१४) विप्रलंभ शृंगार, एवं विवाहके उपरांत वधुओंकी काम चेष्टाओं (८.१६) और वेश्यावाटके वर्णनमें (९.१२) वीरने संभोग शृंगारका सविशेष वर्णन किया है।

वीर रस—वसंतोत्सव मनाकर जब लोग अपने-अपने घरोंको लौटनेकी तैयारी कर रहे थे, उसी समय राजाका पट्टहाथी मेंठको मारकर भाग निकला और उसने चारों ओर महाविनाश तथा मृत्युका दृश्य उपस्थित कर दिया। जंबूस्वामीने अपने पौरुषसे उस दुष्ट हाथीको अपने वशमें कर लिया। नायककी वीरता-का वर्णन इस हस्तिविजयके प्रसंगमें वीर रसके अनुरूप हुआ है (४.२१)। इस संदर्भमें हस्ति आलंबन है उसके द्वारा कुमार-पर प्रहार उद्दीपन है, कुमारका युद्धार्थ उद्यम अनुभाव है और अमर्ष-आदि संचारी है। स्थायी भाव कुमारका हस्तिविजय विषयक उत्साह है।

इसी प्रकार रत्नशेखरकी राजसभामें उत्तेजक और अपमानकारक बातें कहनेके कारण राजाके आदेशसे जब विद्याधर भटोंने जंबूकुमारको चारों ओरसे घेर लिया उस प्रसंगमें (५.१४.१२.२४) भी वीर रसकी सुंदर योजना की गयी है। संधि ६ और ७ में प्रचुरतासे वीर, रौद्र एवं बीभत्स रसोंका समावेश हुआ है। जं० सा० च० ६.४.४—९; ६.५.५—१०; ६.६ ३—८, ६ एवं ६.९, में केरलनृप मृगांक और रत्नशेखर विद्याधरकी सेनाओंके बीच युद्ध वर्णन, तथा ६ १०.५-१४ एवं ६ १३ में रत्नशेखर एवं गगनगति विद्याधरोंके बीच युद्ध; ७ ७ में जंबूस्वामी और रत्नशेखरका परस्पर आह्वान, ७.९ व ७ १० में इन दोनोंका युद्ध इत्यादि सारे वर्णन वीर रस पूर्ण है। ७.६ में दडक रूपमें वीर, बीभत्स एवं भयानक रसोंका एक साथ बहुत अच्छा संयोजन हुआ है।

रौद्र रस—केरलराज मृगांकने जब विद्याधर रत्नशेखरको अपनी विलासवती नामक कन्या देनेसे सर्वथा अस्वीकार कर दिया, तो रत्नशेखरने क्रुद्ध होकर केरल पुरीको घेर लिया और वहाँ सर्वनाश एवं

महाप्रलय जैसा दृश्य उपस्थित कर दिया (५ ३)। वीरने यह वर्णन रौद्र रस युक्त किया है। यहाँ स्थायी-भाव रत्नशेखरका क्रोध है, आलंबन विभाव कन्याका प्राप्त न होना है, उद्दीपन विभाव मृगांक-द्वारा उसका अपमान आदि है; सेनाकी उग्रता, आवेग, मद एवं गर्व आदि अनुभाव हैं, तथा अमर्ष इत्यादि संचारी भाव हैं।

रौद्र रसका एक और उदाहरण वहाँ उपलब्ध होता है, जब जंबूस्वामी दूतके बहाने रत्नशेखरकी छावनीमें घुसकर उसके समक्ष पहुँचे और जाते ही नाना प्रकारसे उसे बुरा-भला कहा, निंदा व भर्त्सना की और अपमान करने लगे। यहाँ प्रतिनायक रत्नशेखरका रौद्ररस-मय वर्णन दर्शनीय है(५ १३.९-११)। यहाँ भी स्थायी भाव क्रोधके साथ आलंबन विभावके रूपमें जंबूस्वामी हैं। उद्दीपन विभाव जंबूकी दर्प एवं अपमान पूर्ण कटु उक्तियाँ हैं। आँखोंका लाल होना, ओंठ कांपना, मुख लाल हो जाना, कंठका स्तब्ध होना, स्वेद आना, ओंठ काटना, नासापुटोंका भयानक रूपसे फड़कना आदि अनेक अनुभाव हैं; और अमर्ष आदि संचारी भाव हैं। इसी प्रकार ५.१४.६–११ में भी इसी संदर्भमें रौद्र रसकी सुंदर योजना बन पड़ी है।

भयानक रस—वीर और रौद्र रसोंका पोषक रस है भयानक। जं० सा० च० में युद्ध वर्णनके प्रसंगमें भयानक रसके संयोजनके कई उदाहरण हैं, जैसे ६.७.४-७;६.१०.१-४,७.१४ १०-१४,७ १ १०-२२;७ ६.५-१४; एवं ७ ८ ७-१२। आगे चलकर असती विषयक अंतर्कथाके संदर्भमें (१०.९ १-३) भी भयानक रसकी औचित्य पूर्ण योजना हुई है। इन संदर्भोंमें स्थायी-भाव भय है। आश्रयपात्र कायर सैनिक एवं नीच पुरुष आदि हैं। आलंबन-विभाव शत्रु सैनिक हैं, और उद्दीपन विभाव उनके द्वारा किया जाता हुआ भयानक शत्रु संहार है। शत्रुओं और कायरोंका इधर-उधर बिखर जाना, पलायन करना आदि अनुभाव हैं; एवं त्रास, शंका, संभ्रम तथा मृत्यु आदि संचारी भाव हैं।

वीभत्स रस—जं० सा० च० में वीभत्स रसके बहुत थोड़े-से उदाहरण पाये जाते हैं। विद्युच्चर महा मुनिके ऊपर दैवी उपसर्गका वर्णन (१०.२६.१-४) वीभत्स रस पूर्ण है। चंग नामक सुनार-पुत्र रानीके द्वारा बुलाये जाने पर उसकी शैयापर जाकर बैठा ही था कि राजा युद्ध विजय करके लौट आया और चंगको निकालनेके सब मार्ग अवरुद्ध जानकर रानीने भयके मारे चंगको गूथ कूपमें डाल दिया (१० १७ ४, ६-८)। यह वर्णन भी वीभत्स रसात्मक है। इन संदर्भोंमें स्थायी भाव जुगुप्सा; दुर्गंध युक्त विष्ठा, माँस, चर्बी आदि आलंबन तथा उद्दीपन विभाव हैं; आँखें बंद कर लेना आदि अव्यक्त अनुभाव हैं, एवं मोह, व्याधि, आवेग, मरण आदि संचारी भाव हैं।

करुण रस—जं० सा० च० मे करुण रसकी योजना कई स्थलोंपर योग्य रीतिसे हुई है। भवदत्त-भवदेवके पिताकी मृत्यु और उनकी माँ के जीवित ही चितामें जलकर सती होनेका प्रसंग अत्यधिक कारुणिक है। उसमें करुण रसका पूर्ण परिपाक हुआ है (२.५ ११-१७)। इस संदर्भमें स्थायी भाव शोक है, आलंबन विभाव माता-पिता, उद्दीपन उनका चिर वियोग, रोदन आदि संचारी भाव हैं। इसी प्रकार शिवकुमारको मुनिदर्शनके निमित्तसे पूर्व-भवका स्मरण होने पर, उसके सहसा मूर्च्छित हो जानेसे, उसके अंतःपुरकी अवस्था (३ ७ ४-७) एवं माता-पिताकी अवस्थाका वर्णन (३.८ १-४) भी करुण रसात्मक है। सुधर्मके दर्शन एवं धर्मोपदेशको सुनकर जंबूको संसारसे वैराग्य हो गया और उन्होंने माँके समक्ष अपनी दीक्षा लेनेकी इच्छा प्रकट की। इस प्रसंगमें माँकी अवस्थाका वर्णन अत्यंत करुण रस पूर्ण हुआ है (८ ७ ११-१४)। जंबूके दीक्षा लेनेके निश्चयको जानकर पद्मश्री आदि कन्याओंके पिताओं तथा स्वजनोंकी जैसी अवस्था हुई, उसका चित्रण (८.१० १-५); तथा एक ओर, प्रातःकाल होनेपर जंबूके दीक्षा लेनेकी संभावना एवं दूसरी ओर, वधुओंके प्रति आकृष्ट होनेकी क्षीण आशा, इन अंतर्द्वंद्वमें पड़ी हुई जंबूस्वामीकी माँकी अवस्था (९ १४ ६-१०,९ १५ ९-१५) और जंबूके दीक्षा लेनेपर उनके माता-पिता दोनोंकी दुखद अवस्थाका अत्यंत मर्मस्पर्शी करुण रस पूर्ण वर्णन पाया जाता है (९ २८ ८-९)।

अद्भुत रस—जं० सा० च० के कुछ स्थल, जैसे भगवान्‌के समोसरणमें विद्युन्माली देवका आगमन

(२.३ २-४) एवं श्रेणिककी राज सभामें गगनगति विद्याधरका आकाश मार्गसे अकस्मात् प्रवेश (५.२.१-५), ये वर्णन अद्भुत रसके उदाहरण रूप रखे जा सकते है।

वात्सल्य रस—वात्सल्य या वत्सल रसके संबंधमें साहित्याचार्योंमें पर्याप्त मतभेद है। भोजराज (११ श० ई० पूर्वार्द्ध) ने स्पष्टतः वात्सल्यको एक स्वतंत्र रस माना है। उद्भट (८-९ श० ई०) तथा रुद्रट (९ श० ई०) ने वात्सल्यको स्वतंत्र रस नामसे तो नही गिनाया, पर उनके 'प्रेयस' भावकी मान्यता वात्सल्य रसकी स्वीकृतिका आभास देती है।[1] मम्मट (१२ श० ई०) ने वात्सल्यको स्वतंत्र रस नही माना, पर साहित्यदर्पणकार विश्वनाथने उसे स्वतंत्र रसका स्थान दिया है। जं० सा० च० से ऐसा प्रतीत होता है कि वीर कवि भी संभवत. वात्सल्यको स्वतंत्र रस स्वीकार करते थे। जं० सा० च० २ ९ १९–२०; ६ ११ ९-११ ६'१२.१–२,४, एवं ७ १३ ६–७के वर्णन वात्सल्य रससे ओत-प्रोत है। इन प्रसंगोमे स्थायी भाव है स्नेह, आलंबन है अग्रज भाई एव अपने स्नेही संबंधीजन, उद्दीपन अपने इन स्नेहीजनोंके प्रति गुणानुराग; अनुभाव रोमाच आदि, एवं संचारी भाव है हर्षोद्गार। केरलमें रत्नशेखर विद्याधरको परास्त कर, उसके तथा मृगांक उसकी रानी व कन्या विलासवती एवं विद्याधर गगनगति आदिके साथ जंबूस्वामी कुरल-पर्वतके पास छावनीमे महाराज श्रेणिकसे आकर मिले। श्रेणिकने भरपूर वात्सल्य भावसे जंबूस्वामीका स्वागत किया (७ १३ ६-७)। यह प्रसंग वात्सल्य-रसका सागोपांग उदाहरण है। इसमे वात्सल्य-रसके स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव एवं संचारी भाव सभीकी अभिव्यक्ति अत्यंत स्पष्टतासे हुई है।

शांत रस—प्राचीनकालके सभी प्रमुख संस्कृत-प्राकृत महाकाव्यों, नाटको, व चरितोके समान जं० सा० च० की चरम-परिणति शृंगार, वीर आदि रसोंकी सरिताओंसे होती हुई शात रसके महासागरमें हुई है। इस दृष्टिसे विचार करनेपर हम देखते है कि आद्योपात संपूर्ण रचना शातरससे ओत-प्रोत है, और समस्त रसोके पीछे कही दूर, कही सन्निकट नैपथ्यमें-से शांतरसकी अव्यक्त मधुर ध्वनि मानो बार-बार पाठकके कर्णपटोपर आकर झंकृत होती रहती है। अत. स्वाभाविक रीतिसे शात रसात्मक वर्णन रचनाके आदिसे अंत तक व्याप्त है।

शांतरसका प्रथम सांगोपांग उदाहरण हमें इस संदर्भमें मिलता है कि सौधर्म नामक मुनि वर्द्धमान ग्राममें आये और उनका उपदेश सुनकर भवदत्तको वैराग्य हो गया और उसने गुरुके पास दीक्षा ले ली (२ ७)। अग्रजके द्वारा दीक्षित होनेके बारह वर्ष उपरांत जब कामवासनासे पीडित भवदेव पुन अपने गाँव आया, तब वहाँ स्वयं उसकी पत्नीने उसे बोध दिया। यह प्रसंग शातरसका अत्यंत मार्मिक उदाहरण है (२.१७–१९)। इसमें भवदेवाश्रित शांत रसकी अत्यंत सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। भवदेव १२ वर्षसे दीक्षित होकर तनसे योगी, पर मनसे भोगी था। नागवसूसे मिलन और वार्ता होनेपर उसने भवदेवकी वृत्तियोको पहचान कर, उसे प्रतिबोध दिया। नागवसू-द्वारा निज रूप-यौवनकी दुरवस्था एवं विनश्वरता भवदेवके वास्तविक शम (शांत-निष्काम भाव) का कारण बनी। नागवसूकी उद्बोधक उक्तियोने उपशम भावके उद्दीपनका कार्य किया। किसी मुनि या साधुके दर्शन उपदेश आदिने नही। १२ वर्षों तक मुनिसंघमे मुनि जीवनकी कठोर चर्याका पालन करते रहकर, आचार्योंके दिन-रातके उपदेश-संगति एवं सहवास आदिका जिस भवदेवके ऊपर रंचमात्र भी प्रभाव नही पडा था, और ये सब निमित्त जो कार्य करनेमें सर्वथा असमर्थ रहे थे, भवदेवके कामरागको शांत कर, उसके आत्मोन्मुख शम-भाव या शांत-भावको जाग्रत करनेका वह महान् कार्य धर्म-साधनामें रत, सच्ची धर्मपत्नीकी तप.पूत, सत्यपूत वाणीने कुछ ही क्षणोमे कर दिखाया। इस प्रसंगमें (२.९) स्थायी भाव वैराग्य; आलंबन नागवसूका तप.कृश शरीर, उद्दीपन उसका सदुपदेश, रोमाच आदि अनुभाव तथा निर्वेद, ग्लानि, लज्जा आदि संचारी भाव है।

आगे चलकर शिवकुमारको वैराग्य (३ ८) जबूको वैराग्य (८.७ ५-१०); वधुओंकी कामचेष्टाओंसे जंबूके शम-भावका और अधिक उद्दीपन (९ १), विद्युच्चरको वैराग्य (१० १८ १-२) एव विद्युच्चरका

1. हिं० सा० कोश।

अनित्य, अशरण आदि १२ भावनाओंका चिंतन (संधि ११ पूर्ण), ये सब प्रसंग पाठकोंको शांत रसका हृदयावर्जक चर्वण कराते हैं।

रसोंके उपर्युक्त विवेचनसे हमारा ध्यान स्वयं इस तथ्यपर आकृष्ट होता है कि वीर कविने जं० सा० च०में सभी रसोंकी योजना सफलतापूर्वक की है, जिनमें शृंगार, वीर एवं शांत ये तीन रस प्रधान हैं। किसी रसका अतिरेक भी किसी काव्य-कृतिको रस हीन आस्वादहीन बना देता है। कवि वीरकी इस रचनामें कहीं भी यह रसातिरेक नहीं दिखाई देता। यही कारण है कि जं० सा० च०का पाठक विविध रसोंकी मंदाकिनीमें अभिषिक्त होता हुआ स्वयमेव अपने संपूर्ण अहंको खोकर अपनी संपूर्ण आत्म-सत्ताको शांत रसके महासागरमें समर्पित होते हुए देखता है।

रसाभास एवं भावाभास—रस-योजनाके साथ जं० सा० च०में रसाभास, भावाभास, भावोदय, भावशांति, भाव-संधि एवं भावशबलताके भी कुछ प्रसंग-उपलब्ध होते हैं।

रसाभास—जल-क्रीडाके प्रसंगमें कामिनियोंके द्वारा निर्जीव जलमें सुभग नायकके समान रति भावका आरोप (४.१९ २०–२१) होनेसे अनौचित्य है। अतः शृंगाराभास है।

विवाहोपरांत चारों वधुओंके साथ जंबूस्वामी एकांत वासगृहमें पलंगपर बैठे। वधुओंने उन्हें वैराग्यसे विमुख कर, भोगोन्मुख करनेके उद्देश्यसे नाना कामचेष्टाएँ करनी प्रारंभ की (८.१६.६–१५)। इस प्रसंगमें स्थायी, आलंबन, उद्दीपन, विभाव, अनुभाव एवं संचारी भाव सभी कुछ हैं, परंतु नायकके वैराग्योन्मुख होनेसे यहाँ अनुभयनिष्ठ रति रूपी अनौचित्य है, अत शृंगार रसाभास है। रसकी दृष्टिसे उपर्युक्त दोनों संदर्भ काव्य-दोषोंके समकक्ष हैं। परंतु एकमें प्रकृतिका मानवीकरण और दूसरेमें अत्यंत कामोत्तेजक वातावरणमें नायकके चरित्रकी दृढताका द्योतन होनेसे ये प्रसंग दोषके बदले काव्यके अलंकार बनकर अभिव्यक्त हुए हैं।

भावाभास—जंबूस्वामीका दीक्षा लेनेका दृढ निश्चय जानकर भी पद्मश्री आदि चार कन्याओंने अपने अद्वितीय अनुपम रूप-सौंदर्य और काम-कला-विलासके द्वारा जंबूको अपने वशमें कर लेनेके विश्वाससे उसे एक दिन विवाह करके प्रातःकाल दीक्षा ले लेनेका प्रस्ताव किया। इस अवसरपर उन्होंने अपने पिताओंके समक्ष कामवासनापूर्ण उद्गार व्यक्त किये। (८.१२.१–१५)। इस संदर्भमें पितृजनोंके समक्ष रति भावका इस प्रकारका प्रदर्शन सर्वथा अनुचित है।

यहाँ उद्दीपन-विभाव, अनुभाव एवं संचारियोंके अभावके कारण शृंगाररसका भी परिपाक नहीं हो पाया है, और पितृजनोंके समक्ष यह सब कहलवाना निश्चित रूपसे रति-भावाभास है। आलंकारिक या चरित्र विकासकी दृष्टिसे भी इस प्रसंगका औचित्य सिद्ध नहीं किया जा सकता।

भावोदय—बनारसके राजाकी विरहिणी काम-पीड़ित रानीने चंग नामक सुंदर सुनार पुत्रको राजमार्गसे जाते देखा। उसे देख रानीका रतिभाव सहसा उद्दीपित हो उठा। उसी समय राजा युद्ध विजय कर लौट आया, अत. रानीका रति भाव रसावस्थाको प्राप्त नहीं कर सका। इसे भावोदयका दृष्टांत माना जा सकता है; और उपनायक निष्ठ होनेसे इसमें भावाभास भी है।

भावशांतिका–उत्कृष्ट उदाहरण है—नागवसूके बोधपरक मार्मिक कथनको सुनकर भवदेवके रति-का शांत होना (२१ १८–१९)।

अपनी सारी कामोत्तेजक चेष्टाओंके उपरांत जंबूकुमारको सर्वथा निर्विकार देखकर वधुओंके रति-भावकी शांति और दुःख एवं लज्जाका बोध (९ २.१–२) भी भाव-शांति एवं भावोदयका सुंदर दृष्टांत है।

भावसंधि—इसी संदर्भमें जंबूस्वामीकी माँकी अवस्थाका चित्रण भाव-संधिका दृष्टांत है। जंबूस्वामी वासगृहके भीतर वधुओंके साथ निर्विकार भावसे कथा संलाप करते हुए बैठे हैं। बाहर माँ व्यग्र है। पुत्रके प्रात काल दीक्षा लेनेकी प्रबल संभावनाके उद्वेगसे उसकी आँखोंमें नींद कहाँ? वह बार-बार घरके भीतर जाती, बाहर आती और कपाटोंके छिद्रमेंसे झाँककर देखती कि क्या कुमार अभी भी दृढ-प्रतिज्ञ है, अथवा वधुओंको कुछ विद्या उनपर चल पायी, क्या अभी भी वह मोक्ष-वास चाहता है कि उसके गलेमें प्रियाओं-बाहुपाश पड़ गया (९ १४ ६-१२)।

इस प्रसंगमें माँके हृदयकी परम निराशा प्रकट होनेपर भी उसमें आशाकी जो अतिक्षीण, अव्यक्त झलक विद्यमान है, उससे इसे आशा-निराशा भावोंकी संधिका दृष्टांत कहा जा सकता है।

भावशबलता—इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण १२ वर्षोंके उपरांत अवसर पाकर काम भोगकी इच्छासे मुनि भवदेवके घरकी ओर चलनेके प्रसंग (२.१५ ७—१७) में मिलता है। उस समयकी उसकी मानसिक अवस्था और अंतर्द्वंद्व भावशबलताका सुंदर उदाहरण है। इन प्रसंगमें एक ओर भवदेवकी प्रबल भोगाभिलाषा तथा दूसरी ओर लज्जा, आत्मग्लानि, अग्रजके गौरवके नष्ट होनेकी शंका, आत्मालोचन, पत्नीकी वर्तमान अवस्था, और १२ वर्षोंके पति-विहीन दीर्घकालके संबंधमें यह आशंका कि न जाने इस बीच उसका आचरण कैसा रहा होगा ?, और इस दिगंबर मुनिके वेषमें नागवसू मुझे पहचानेगी भी या नहीं, यह संदेह, आदि अनेक संचारी भावोंकी एकत्र शबलताका यह अत्यंत सुंदर सटीक उदाहरण है।

भावयोजना—जं० सा० च० में भक्ति, प्रीति, प्रशम, रति एवं निर्वेदादि अनेक भावोंकी अभिव्यक्ति स्थान-स्थान-पर हुई है। काव्यका प्रारंभ मंगलाचरणके रूपमें देवता विषयक रति या भक्ति-भावसे होता है (१. मं० १-१४)। बीच-बीचमें भी कई स्थलों (एवं ४.४ १०—१३ देव भक्ति; ८ ६ ४—१० गुरु भक्ति आदि) पर भक्ति-भावकी अभिव्यक्ति पायी जाती है। राजा श्रेणिक-द्वारा भ० महावीरकी स्तुति (१.१८) देवविषयक रतिका सुंदर उदाहरण है।

पतिविषयक शुद्ध रति—कुष्ठ रोगसे आक्रांत होकर भवदत्त-भवदेवके पिता आर्यवसूने जीवित ही अपनेको अग्निको समर्पित कर दिया। एकनिष्ठ परम-पतिव्रता और पति-सर्वस्व, पति-प्राणा उनकी माँ सोमशर्माने भी अपने पतिकी चितामें जीवित ही जलकर परलोकमें भी पतिका अनुगमन किया (२ ५.४, ६,१५)। यह प्रसंग पतिविषयक शुद्ध रतिका एक श्रेष्ठ उदाहरण है। शिवकुमारके प्रति उसकी पत्नियोंके अनुरागका चित्रण भी इसीका एक और दृष्टांत है (३ ७.५—६)।

भ्रातृविषयक रति—भवदत्त और भवदेव दोनोंके रग-रगमें परस्परके प्रति-अनुराग भरा था, तथा उनमें शब्द और अर्थके समान अविभक्त, अखंड एवं अविच्छेद्य संबंध था (२.५ ९), यह तथा आगेके दो और प्रसंग (२ ९ १९—२०,२.१०.९—१०) भ्रातृविषयक रतिके उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

अन्य भाव—अब तक चर्चित भावोंके अतिरिक्त जं० सा० च० में अन्य भी अनेक भावोंकी अभिव्यक्ति मिली है। उदाहरणार्थ—विस्मय (२ ३ २—३ एवं ३ ६.६—७), आशंका (२.१३ ४) अत्यंत करुणापूर्ण दीनता-विवशता (२ १३ ९); पतिविषयक निष्काम स्नेह (२ १९ ३); खेद (३.३.१६); करुणाजनक जुगुप्सा (३ ११ ३-४); सुंदर, युवा पत्नियोंके प्रति रुग्ण पतिकी ईर्ष्या व शंका (३.११.५—११), पत्नियोंका क्षोभ व खेद (३ ११ १२-१३); देवभक्ति, श्रद्धा और दैन्य (३ १३.३-४); पश्चात्ताप (४ ३ ४-५), उपहास (५ ४ १२-१३), चित्तका उतावलापन (५ ५ १६-१७,५ ७.१६-२७); उत्साह (५ ६ १६-१७) तथा वीरभाव पूर्ण गर्व (५ १२.२३-२५,-५ १३ १-८; ५.१४.१-५) आदि अनेक स्थायी एवं संचारी भावोंकी जं० सा० च० में आद्योपांत सुंदर रीतिसे योजना की गयी है।

(च) अलंकार-योजना

जंबूसामिचरिउमें प्रमुख रूपसे निम्नलिखित अलंकारोंका प्रयोग पाया जाता है :—अनुप्रास (१), यमक (२), श्लेष (३), उपमा (४), उत्प्रेक्षा (५), रूपक (६), निदर्शना (७), दृष्टांत (८), वक्रोक्ति (९), विभावना (१०), विरोधाभास (११), व्यतिरेक (१२), संदेह (१३), भ्रांतिमान् (१४), सहोक्ति (१५) एवं अतिशयोक्ति (१६)।

शब्दालंकारोंमें अनुप्रास और यमक अलंकारोंका प्रयोग पूरी रचनामें प्रारंभसे अंत तक हुआ है। मगधदेश (१.६ १-७) तथा पुंडरिकिणी नगरी (३ २ ४-९) के वर्णन इस दृष्टिसे विशेष उल्लेखनीय हैं। पादांत यमकोंमें शाब्दिक श्लेषके उदाहरण अत्यधिक संख्यामें उपलब्ध हैं।

अर्थालंकारोंमें उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपकोंसे रचना आद्योपात विभूषित है। कुछ विशेष संदर्भ इस प्रकार हैं—

उपमा—नाणम्मि फुरइ भुअणं एक्कं नक्खत्तमिव गयणे। (१ मं० १०); विजयंतु जए कइणो जाण वाणी अइट्ठपुव्वत्थे। उज्जोइयधरणियला साहुयवट्टि व्व निव्वडइ (१ ६ ७-८)।

मालोपमा—नीलकमलदल कोमलिए सामलिए नवजोव्वणलीला ललिए पत्तलिए (२ १५ ३)। अन्य संदर्भ : विंध्याटवी वर्णन (५ ८ ३०-३५); भोजन वर्णन (८ १३ ९-१३, श्लेषगर्भित मालोपमा)। इन दोनो संदर्भोंमें एक ही उपमेयका विविध रीतिसे नाना उपमानो-द्वारा वर्णन किया गया है।

उत्प्रेक्षा—डोल्लहरि व लग्गी कंठहें लग्गी वल्लहमुहचुंबणु करइ।
थणरमणविडविणि का विनियंविणि निहुअणकेलिहि अणुहरइ।
(वसंत ऋतुमें मिथुनोकी उद्यान-क्रीडा ४ १६.११-१२)

अन्य प्रमुख सदर्भ हैं—कामिनियोंकी विह्वलता (४ ११ ४-५), नारी सौंदर्य वर्णन (४ १२ १५-१६; ४.१३.१-१६, तथा ४-१४ ७-८ (रूपक गर्भित उत्प्रेक्षा), मलयपवनका (उत्प्रेक्षाओंकी निरंतर-शृंखलाओं द्वारा) वर्णन (४.१५ १-५,७-१६); फूला पलाश (४ १५ १५-१६) अलकावली (५ २ १७), धूलिका उडना (६ ४ १०-११, ६ ५ १०.१० एवं ६ ६ १-२), सवाहन नगर (८ ३ ६-१३); वर्षा ऋतु एव वर्षा (९ ९ ६-१२); सध्या सूर्यास्त एवं रात्रि-आगमन और अधकार वर्णन, (८ १४ १०-२१); तथा चादनी (८ १५ ६-१४)। ये सब वर्णन उत्प्रेक्षालंकारके प्रयोगकी दृष्टिसे पठनीय हैं। इनके अतिरिक्त कामिनियोंकी जल-क्रीडाका उत्प्रेक्षामाला सदृश शृखलामें पिरोया हुआ वर्णन (४ १९.८-१७,२१-२२) भी अवश्य पठनीय है।

मालोत्प्रेक्षा—मालोपमाके समान मालोत्प्रेक्षाके भी अनेक प्रयोग ज० सा० च० में प्राप्त होते हैं। जंबूस्वामीका दीक्षा लेनेका निश्चय जानकर पद्मश्री आदि चार वाग्दत्त कन्याओंके माता-पिता-स्वजनोंकी अवस्थाका मर्मस्पर्शी वर्णन (८ १० १-५) मालोत्प्रेक्षाके प्रयोगका बहुत सुदर उदाहरण है।

फलोत्प्रेक्षा—मालोत्प्रेक्षाकी तरह फलोत्प्रेक्षाका प्रयोग भी दर्शनीय है। (४ १४ ३-६)

रूपक—काव्यमें रूपकालंकारका प्रयोग आद्योपात सख्यातीत परिमाणमें हुआ है। इसके कुछ छोटे-छोटे उदाहरण हैं—नहमणि (१ मं० ५), झाणग्गि (१ १ ८) ससारसमुद्दुत्तारसेउ(१ १ ४), भव्वयणकमल-कंदोट्ट वधु (१ १ ८) एव माणुसपसु, सम्मत्तनिधि, सिरकमलु, वयणसुहा, ससारतरगिणी, चरणजुयल-पंकयभसलु, जिणवरगरुड, विरहाणल, आदि।

रूपकमाला—रूपककी तरह रूपकमालाके उदाहरण भी उपलब्ध हैं (३ ७ १२-१४)।

निदर्शना—महाकवि कालिदासके अनुकरणपर कविका विनय प्रदर्शन (१ ३ ७-१०), नागवसूकी बोधप्रद वार्ता, (२-१८ ५-७) बालककी वृद्धि (४ ९ १-३), बालक (जंबूस्वामी) की कीर्ति (४ ९ ९-१०) एव जंबूस्वामी द्वारा रत्नशेखरको आह्वान (५ १४ १-३) आदि स्थलोंमें निदर्शनाके उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

दृष्टात—कविके आत्मनिवेदनकी निम्न पक्तियोंमें इस अलंकारका सुंदर प्रयोग हुआ है :—
कव्वु जे कइ विरयइ एक्कगुणु अण्णेक्कु पउंजिव्वइ निउणु।
एक्कु जे पाहाणु हेमु जणइ अण्णेक्कु परिक्खा तासु कुणइ। (१ २ ८-९)

वक्रोक्ति—वसत महीनेमें मिथुनोंकी उद्यान क्रीडाके अवसरपर जंबूस्वामी और किसी कामिनीके मध्य वक्रोक्ति पूर्ण सवाद बड़ा ही चित्ताकर्षक और मधुर है (४ १८ १-१३)।

विभावना—जंबूस्वामीका जन्म हुआ तो कार्तिक न होनेपर भी आकाश निरभ्र हो गया, वर्षा न होने पर भी धूलि शान्त और वसंत न होनेपर भी संपूर्ण वनराजि स्वयं फूल उठी (४ ८.१२-१४)।

भ० महावीरका समोशरण राजगृहके विपुलाचल पर्वतपर आया और वनमालीने राजा श्रेणिकको आकर समाचार दिया—'महाराज, आज असमयमें ही वनस्पति सब फल-फूलोसे समृद्ध हो उठी हैं, तालावोंमें तटो तक भर आया जल हिलोरें मार रहा है, बिना बोये ही खेत नाना प्रकारके पके धान्यसे भरपूर हो गये हैं और बिना दुहे ही गायें प्रचुर दूध क्षरण कर रही हैं (१.१३ ३-७) ।' इन प्रसगोमें विभावना अलंकार का सुंदर प्रयोग हुआ है।

विरोधाभास—विद्युच्चर चोरीके उद्देश्यसे कामलतावेश्याके घरसे वेश्यावाट छोडकर निकला। इस प्रसंगमें वेश्यावाटका वर्णन विरोधाभासका एक विशिष्ट उदाहरण है (९.१२ ७-८,१२) ।

व्यतिरेक—इस अलंकारके बहुत-से प्रयोग काव्यमें उपलब्ध हैं—जंबूस्वामीकी यौवन प्राप्ति (४ ९ ७-८) नारी सौदर्यका वर्णन (४ १७ १९-२२) पुन. नारी सौंदर्य (५ २ २०-२१,८.५ ५-६); रत्नशेखरकी वीरता (५ ११.१६-१७) तथा जबूस्वामीके त्याग संबंधी वर्णन (१० १.९) ।

संदेह—जलक्रीडाके समय तैरती हुई किसी कामिनीके मुखको देखकर एक भ्रमर सदेहमें पडा रहा कि यह मुख है या कमल (४.१९.९) इसी प्रकारके मंगलाचरणकी निम्न पंक्तियाँ शुद्ध संदेहालंकारके उदाहरण हैं :—

सो जयउ जस्स जम्माहिसेयपयपूरपंडुरिज्जंतो ।
जणियहिमसिहरिसंको कणयगिरी राइओ तइया ॥
भमिरभुअवेयभामियजोइसगणजणियरयणि-दिणसंकं ।
इय जयउ जस्स पुरओ पणच्चियं चारु सुरवइणा ॥ (१ मं० ३-६)

भ्रांतिमान—मृगाकराजाकी पुत्री और अपनी भागिनेया विलासवतीके सौंदर्यका संक्षिप्त वर्णन करते हुए गगनगति विद्याधर कहता है—'वह कन्या अपने विवाधरोके अपनी शुद्ध धवल दंतपंक्तिमे प्रतिबिंबित होती हुई कांतिको पहचान नही पाती। अतः उन्हें धवल बनानेके लिए बार-बार छीलती रहती है—न मुणइ रत्ताहर रंगगुणु जा छोल्लइ सुद्ध वि दंत पुणु (५ २ १८) ।

उद्यानक्रीडा करते समय किसी धूर्त्त नायकने अपनी मुग्धा नायिकाका प्रणयकोप दूर करनेके लिए कहा, 'तउ मुहहो जणियसयवत्तभंति आवति निहालहि भमरपंति ।' (४.१७ ६)

सहोक्ति—चद्रोदयका सहोक्त्यलंकारमय वर्णन—'जालियाउ गयवइहियर्यहिं सहुँ उइउ नहंगणे मयलंछणु लहु ।'

अतिशयोक्ति—काव्य रचनाओमे अतिशयोक्ति एक सहज, सामान्य और सर्वाधिक प्रचलित अलंकार रहा है। वीर कविने भी जं० सा० च० में अनेक स्थलोपर प्रचुरतासे इस अलंकारका प्रयोग किया है। काव्यका आदि मंगलाचरण आद्योपात अतिशयोक्तिसे भरपूर है। इसके कुछ अन्य संक्षिप्त उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते है .—

समोशरणमें स्थित महावीरके विषयमें एक पंक्ति है :—

अलिउलकेसुब्भासियवरसिरु दंतदित्तिधवलियजयमंदिरु । (१ १७ ७)

नारी सौदर्य—विहिँ बाहहिँ अवरुंडणु चंगइ दुक्करु पुज्जइ वियडनियंबइ ।
मसिणोरुयहिं जगु जि वसि किज्जइ नहदित्तिए महियलु कवलिज्जइ ।(२ १४.९-१०)

इसी प्रकार वीताशोक नगरीका अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन पठनीय है (३.४ ७-१०) ।

(छ) बिंब-योजना

काव्यालोचनमें बिंब-योजना शाब्दिक दृष्टिसे आधुनिक है। परंतु कल्पनाकी अपेक्षा किसी भी काव्य-सिद्धातके समान प्राचीन है। बिंब-योजनाका अर्थ है कवि किसी वस्तुका नख-शिख, या द्रव्यगत भौतिक वर्णन न करके उसका एक भाव-चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित करता है, जिसे 'बिंब' नामसे अभिहित किया जाता है।

बिंब दो प्रकारके होते हैं, (१) एक तो स्मृति-जन्य जो पूर्वकालिक अनुभूतिका पुनरुत्पाद मात्र होते हैं, जैसे अपने किसी पूर्व-मित्रकी साक्षात् चित्रवत् स्मृति, जो उसकी शाब्दिक भावमय प्रतिमा हमारे मनमें निर्मित कर देती है, अथवा किसी नायक-द्वारा अपनी प्रियतमा नायिका और उसके विविध अङ्ग एवं भाव-भंगिमाओंकी तीव्र स्मृति। (२) दूसरे प्रकारके बिंब पूर्वानुभूत नहीं होते। वे कवि या साहित्यकारकी निज नवनिर्मित और मौलिक कृति होते हैं। महाकवि कालिदास कृत मेघदूत इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। यह नूतन प्रतिमा निर्माण या बिंब विधान-समस्त काव्य-कला संगीत और नवनिर्माणका मूलाधार है। भाषा और चिंतनके मूल उपादान बिंब ही हैं।[1] 'जंबूसामिचरिउ' में ऐसे अनेक वर्णन उपलब्ध हैं, जिन्हें बिंब-योजनाके अंतर्गत रखा जा सकता है।

(१) जं० सा० च० १ ११ में कविने राजा श्रेणिकका नख-शिख वर्णन न करके उसकी शूरवीरता एवं प्रचंड प्रताप आदिके वर्णन द्वारा उसका एक भावात्मक बिंब खींचा है।

(२) इसी प्रकार आगे चलकर राजा श्रेणिकके सुंदर, सौम्य, रमणियोंके हृदयहारी एवं धर्म और न्याय-नीति परक रूपको शब्दोंमें प्रकट कर उसके कोमल एवं उदार व्यक्तित्वको प्रकट किया गया है।

(३) इसी प्रकार केरलराज मृगांकके शत्रु-राजा विद्याधर रत्नशेखरके प्रचंड तेजस्वी, कालके समान भयानक, महान् विकाशकारी एवं अपराजेय व्यक्तित्वका भी यथार्थ बिंब पाठकोंके समक्ष खींचा गया है (५ ४.२०-२१, तथा ५-५.१-५)।

(४) भवदेवने अग्रजकी लाज रखनेके लिए दीक्षा ले तो ली, पर क्षण-भरके लिए भी प्रियतमा नागवसूका रूप उसके मानसपटसे ओझल नहीं हुआ, और वह निरंतर नागवसूका जो भावात्मक बिंब उसके हृदयमें बन गया था, उसीका स्मरण करता रहा (२.१४ ६-११)।

(५) भवदेवके हृदयपर बने हुए नागवसूके एक और बिंबका वर्णन (२ १५ १-२)।

(६) 'बारह वर्षोंकी दीर्घ-अवधिमें मेरे वियोगमें नागवसूकी अवस्था कैसी हो गयी होगी' भवदेवकी इस चिंताका बिंबात्मक वर्णन (२ १५ ३-४)।

(७) श्रेष्ठिकी चार-पत्नियोंका अत्यंत सुंदर बिंबमय वर्णन, कुल दो पंक्तियोंमें (३ १० १४-१५)।

(८) गर्भवती माँकी अवस्था दिनोंदिन कैसी होती जाती है, इसका सातिशय यथार्थ बिंब (४ ७.३-९)।

(९) द्वितीयाके चंद्रमा, चलते-चलते महानदीके विस्तार, और पिंगल शास्त्रके फैलाव और व्याकरणकी व्याख्याओंके समान दिन-प्रतिदिन बालक जंबूस्वामीके बढ़नेका बिंबात्मक वर्णन। (४.९ १-३)

(१०) 'जंबूस्वामीके युवावस्थाके प्राप्त होनेके साथ-साथ उनके रूपगुणोंका यशोगान हर गली-कूचे, घर और बाहर, एवं चौक-चौरस्तेपर सर्वत्र गाया जाने लगा। उनके धवल-यशसे सारा-भुवन ऐसा धवलित हो उठा मानो पूर्ण चंद्रमाके ज्योत्स्ना रससे लीप दिया गया हो। सारे हाथी ऐरावतके समान, सब नदियाँ गंगाके समान, सभी पर्वत हिमालयके समान, सबके सब पक्षी हंसोंके समान और सारी मणियाँ (श्वेत) मणियोंके समान दिखलायी पड़ने लगीं', बालककी यशोवृद्धिका यह मनोहारी बिंबात्मक वर्णन (४.१०.३-७)।

(११) जंबूस्वामीको देखकर पुर-नारियोंकी काम-विह्वल अवस्थाका बिंब (४ ११ १-१३)

(१२) इसी प्रकार जंबूस्वामीकी चार भावी वधुओं पद्मश्री, कनकश्री, विनयश्री एवं रूपश्रीका नख-शिख वर्णन विषयगत होते हुए भी उनके वर्ण्य अंगोंका कोई अपूर्व बिंब पाठकके हृदय-पटलपर चित्रित करता प्रतीत होता है (जं० सा० च० ४ १४.१-८)।

---

१. हिंदी साहित्यकोश 'बिंब'

(१३) केरल विजयसे लौटनेके उपरांत जंबूस्वामीके साथ अपनी कन्याओंका विवाह करनेकी उत्साह एवं आतुरता पूर्वक प्रतीक्षा करते हुए श्रेष्ठियोंने जब समाचारवाहकसे जंबूस्वामीके दीक्षा लेनेका निश्चय जाना, तो उनके हृदय करौंतसे विदीर्ण किये-जैसे, अथवा विष-भक्षणसे मूर्च्छित-जैसे हो गये। सब लोग इस प्रकार अधोमुख होकर बैठ रहे, जैसे इंद्रके वज्रायुधसे भग्न किये हुए पर्वत, गरुडसे झपेटा हुआ सर्पकुल, सिंहके द्वारा विदीर्ण कुंभस्थल हस्ति-समूह अथवा तीक्ष्ण परशुके द्वारा छिन्न की हुई शाखाओंवाला वृक्ष हो जाता है। यह वर्णन भी विषयगत है, तथापि इतना अधिक भावमय है कि वह पाठकके हृदयपर ऐसा गहरा बिंब निर्माण करता है, जिससे पाठक स्वतः उन श्रेष्ठियोंके साथ एकाकार हो जाता है, और वह सहानुभूतिकी रसात्मक अवस्थाको प्राप्त हो जाता है (८ १० १-५)। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जं० सा० च० की रचनामें वीर कविने बिंब-योजनामें भी अद्भुत सफलता प्राप्त की है।

(ज) छंद-योजना

जंबूसामिचरिउकी रचना प्रमुख रूपसे १६ मात्रिक अलिल्लह एवं पज्झटिका छंदोंमें हुई है। इनके उपरांत १५ मात्रिक पारणक अथवा विसिलोय छंदका स्थान है। इनके साथ बीच-बीचमें अन्य छंदोंका भी प्रयोग हुआ है। अधिकांशतया वीर कविने समवृत्त मात्रिक छंदोंका उपयोग किया है। वार्णिक छंदोंमें कुल पाँच समवृत्त छंदोंका प्रयोग मिलता है। विषमवृत्त मात्रिक छंदोंमें गाथा छंदके विविध प्रकार, दोहा, रत्नमालिका, वस्तु एवं मणिशेखर केवल ये पाँच छंद पाये जाते हैं। पाँच स्थलोंपर दंडक-छंद भी उपलब्ध होता है। काव्यमें प्रयुक्त छंदोंका मात्रा तथा वर्णोंकी संख्यानुसार पहले समवृत्त, फिर विषमवृत्त, इस क्रमसे यहाँ विश्लेषण किया जा रहा है :—

समवृत्त : मात्रिक

१. करिमकरभुजा ८ मात्रिक अंत ल ल ७-१०

(क) उदा०—विहडफ्फडु अरि करिखंधोवरि।
कड्ढिउ विसहइ थाहर न लहइ। (७-१०-२०-२१)
अपवाद : (पंक्ति ५,१६,१७ में अंत ग ग)

(ख) ८ मात्रिक अंत ग ग २.९
उदा०—ता भवएओ कयसंखेओ।
विणयविमीसो पणवियसीसो।
भोलिरवत्थो जोडियहत्थो।
सुघणसहाओ वाहिरि आओ। (२ ९ १५-१८)
अपवाद . पंक्ति १,४,६,१२ अंत ल ग।

२. दीपक १० मात्रिक अंत ग ल ४ २२
उदा०—संतेण ता मुक्कु वसि होवि पुणु थक्कु।
जो नट्ठु सर्नारिंदु पडिमिलिउ जणविंदु। (४.२२.२३-२४)
अपवाद . (पंक्ति १४,१८,१९,२१ व २२ अंत ल ल)

३. (?) १० मात्रिक त्रिपदी अंत रगण (–ᴗ–) १०.१९
उदा०—एम नंदणवणं फुल्लफलदलघणं वंदियुव्वंतओ।
रुक्खसपण्णयं मुणिगणाइण्णयं आसमं पत्तओ। (१०.१९ १५-१६)

४. खडयं १३ मात्रिक अंत रगण (–ᴗ–) ८.२ १-२.
(संधि ८, कडवक २ से प्रत्येक कडवकका आदि छंद)।

उदा०—पहु तउ दंसणकारणं लहिवि वियप्पइ मे मणं।
सहुँ तुम्हेहिँ समुच्चयं चिरमवि कहि मि परिच्चयं। (८.२ १-२)

५. पारणक या विसिलोय (पद्धडिया) १५ मात्रिक अंत नगण (uuu)
१,२,४,१२;२ ६—८,१०,१६—१८,२०;३ १,३,७,९,५ २,४;८.३—४,९;९.३,६—७,१८,१० १६.

उदा०—रसभावहिं रंजियविउसयणु सो मुयवि सयभु अण्णु कवणु।
सो चेय गव्वु जइ नउ करइ तहो कज्जे पवणु तिहुयणु धरइ। (१ २.१२-१३)

अपवाद : ८ ९ ९—११ अंत जगण।

६. (?) १५ मात्रिक अंत रगण (—u—) ४ ८.१२—१५

उदा०—अयालरुक्खसंतई तई पहुल्लिया वणासई सई।
सुवण्णविट्ठीभासुरासुरा मुलंति तस्थ सासुरासुरा। (४ ८.१४-१५)

७. पद्धडिया (पज्झटिका) १६ मात्रिक अंत जगण (u—u)
१.८,१४,२ ५,१३;२.११;४ ११-१२,१५,१७-२०,५.३,७-८(२४—२९,३१—३६), ११-१२,६ २, ४—५,८, ११—१३,७.७—९, १२,८.८,१०; ९.२,९,१४,१०.१,३, ६-८,१०,१२-१३,१७,२१,२४-२५

उदा०—सरलंगुलि उब्भिवि जंपिएहिं पयडेइ व रिद्धिकुडुंबिएहिं।
देउलहिं विहूसिय सहहिं गाम सग्ग व अवइण्ण विचित्तधाम। (१.८ ७-८)

अपवाद : उपर्युक्त अधिकांश कडवकोंमें एक-एक पंक्ति व किन्हीं-किन्हींमें २,३ या ४ पंक्तियोंमें अंतमें सर्व लघु नगण (uuu) पाया जाता है।

८. अलिल्लह १६ मात्रिक अंत ल ल १.६ (१५-२३), ७, १०—११, १३, १७, २.२, ४, १३—१५, ३.२,६,८, १२—१४; ४.१-४, १०, १३—१४; ५.१३; ६.१, १, ३,९,१४, ७.१—३, ११, १३; ८.२, ७, ११—१६; ९.१, ४—५, ८, १०—१३, १५, १०.२, ४-५, ११, १४-१५, २०, २२-२३; ११ १-१५, (पूर्णसंधि)।

उदा०—जलगयकुंभथोरथणहारउ फेणावलिसोहियसियहारउ।
उहयकूलदुमनियसियवसणउ जलखलहलरवसज्जिय रसणउ। (१ ६ २२-२३)

अपवाद : अलिल्लहके अधिकांश कडवकोंमें एक-एक व किसी किसीमें २, ३, पंक्तियोंमें अंतमें दो गुरु (ग ग) पाये जाते हैं।

९. सिंहावलोक १६ मात्रिक अंत सगण (u u-) ३ ५, ६.६; ९ १६

उदा०—विग्घंति जोह जलहरसरिसा वावल्लभल्लकण्णियवरिसा।
फारक्क परोप्परु ओवडिया कोंताउह कोंतकरहिँ भिडिया। (६ ६ ७-८)

१०. त्रोटनक १६ मात्रिक अंत ल ग १ ५; ४ ७, ८.६

उदा०—पंचमिहे वसंते पक्खे धवले रोहिणिठिए मयलंछणे विमले।
पच्चूसे पसूय सलक्खणउ कुलमंगलु जयवल्लहु तणउ। (४ ७.१०-११)

११. पादाकुलक १६ मात्रिक (क) अंत ग ल १.१; १ ३, २ १

उदा०—वरकमलालिंगियचारुमुत्ति रयणत्तयसाहियपरममुत्ति।
तइलोयसामि-समभित्तसत्तु वयणसुहासासियसयलसत्तु। (१ १ ९-१०)

अपवाद : १.१ ७, १ २ ३; २ १.६, ७, १३ पंक्तियोंमें अंत ल ल।
(ख) अंत ग ग ४.६; ८.५

उदा०—दिट्ठें जलणें जालइ कम्मं सालीछेत्तें लच्छीहम्मं।
सरवरदंसणें रयणाहारो उवहिप्पि भवसमुद्दगयपारो। (४.६.१२-१३)
अपवाद : ४.६.९ अंत ल ग
(ग) अंत × १.१६; २.११; ३ १०; ४ ९; ५ १०
उदा०—बहुकालेण थिराप्पि सइत्तिप्पि तिहुअणभमि गमु सज्जिउ कित्तिप्पि।
नरसंकमणपरंपरचवलप्पि किउ वीसामथामु थिरु कमलप्पि।

१२. उर्वशी २० मात्रिक अंत रगण (–u–) ३.४; ५ ६, ९; ७.४
उदा०—जम्मदिवसम्मि पुत्तस्स बहुपरियणो चक्कवट्टी-कयाणंदवद्धावणो।
नियवि पुत्ताणणं गहिरसरवाहणा सिवकुमाराहिहाणं कयं राइणा। (३ ४.३-४)
अपवाद : पंक्ति ५.६ ८ अंत सगण (u u–)।

१३. सारीय २० मात्रिक अंत ग ल ५.१४; १०.१८
उदा०—तो महितलप्पंतविज्जाहरिंदेण उक्खित्तहत्थेण णं वणकरिंदेण।
नवनिसियपहरणफडाडोयनाएण पंचमुहगुंजारसन्निहनिनाएण (५.१४ ६-७)
अपवाद : ५.१४ १९ व १०.१८.९ पंक्तियोंमें अंत ल ल।

१४. सग्गिणी (स्रग्विणी) २० मात्रिक अंत ल ग १.९, १५; ४.१६
उदा०—कसणमणिखंडचिंचइयधरणीयलं सप्पसंकाइचलवलियकिरणुज्जलं।
पयहिं चंपेवि आहणइ जा किर थिरं घुणइ कुंचइय-चचूमऊरो सिरं।
सग्गिणीनामछंदो।

१५. मदनावतार २० मात्रिक अंत यगण (–u–) १.१८; २.१९; ६.७; १०.९,२६
उदा०—तुमं देव सव्वण्णु लच्छीविसालो अहं वण्णिऊणं न सक्केमि बालो।
समुज्जोइयासोह वा तेयपूरो न पुज्जिज्जए किं पईवेण सूरो। (१.१८.१-२)

१६. ? २० मात्रिक अंत × ६.१०
उदा०—एरिसम्मि दुद्धरम्मि भीसणे रणे गयनाय-दिण्णघाय-तुट्टपहरणे।
सुहडसंड-बाहुदंडमुंडमंडिरे लुणियटंक-जणियसंक-बाहुहिंडिरे (६.१०.१-२)

समवृत्त : वार्णिक

१७. त्रिपदी शंखनारी (या सोमराजी) ६ + ६ + ६ वर्ण गणः य य + य य + य य ४.५
उदा०—नमंसेवि वीरं महामेरुधीरं तिलोयग्गथक्कं।
विलीणासुहाणं जणंभोरुहाणं पबोहिक्कअक्कं। (४.५.१-२)

१८. समानिका ८ + ८ वर्ण गण र ज ग ल + र ज ग ल ९.१७
उदा०—मे कणिट्ठु भाइ एक्कु मंडलंतरम्मि थक्कु।
वच्छरेसु आउ अज्जु जाणिऊण तुज्झ कज्जु। (९ १७.८-९)

१९. भुजंगप्रयात १२ + १२ वर्ण गण य य य य + य य य य ४.२१.१३-१७, ५.५
उदा०—तओ पेल्लियं झत्ति जाणेण जाणं गइंदेण अण्णं गइंदं सदाणं।
तुरंगेण भग्गम्मि तुंगं तुरंगं भुयंगं भुयंगेण वेसासु रंगं। (४.२१.१३-१४)

२०. ? १४ + १४ वर्ण गण ज र ज र ल ग + ज र ज र ल ग २ ३
उदा०—इमं कहंतरं जिणेसरे कहंतए नरामरे विसुद्धभावणं वहंतए।
तओ नियच्छियं नहंगणाउ एंतयं फुरंततेयवारिपूरियादियंतयं। (२ ३.१–२)

२१. धवला अथवा दिनमणि १९ + १९ वर्ण गण ६ × न गण + ग ७.५

उदा०—उहयवलमिलणपडिखुहियजलयरवलं ।
समय-त्तडफिडवि झलझलइ जलनिहिजलं ।
तुरय-करि-सुहड-रह-फुरियरइपहरणं ।
गिलइ तिहुवणु व कलयलेण पुणरवि रणं (७ ५.११-१४)

विषमवृत्त : मात्रिक

२२ गाथा (क) गाहू (उपगीति) : मात्राएँ १२, + १५; १२ + १५ प्रथम, तृतीय यतियाँ शब्दके बीच, ९ १ ५-६ तथा संधिके प्रत्येक कडवकका घत्ता ।

उदा०—मयरद्धयनच्चु नडंतिउ जंबुकुमारें भेल्लियउ ।
वहुवाउ ताउ ण दिट्ठउ कट्ठमयउ वाउल्लियउ ॥ (९ १ ५-६)

(ख) ? मात्राएं १२ + १६; १२ + १४ प्रश० १३-१४

उदा०—जस्स य पसण्णवयणा लहुणो सुमइ सहोयरा तिण्णि ।
सीहल्ल-लक्खणंका जसइ नामेत्ति विक्खाया ॥

(ग) पथ्या : मात्राएँ १२ + १८, १२ + १५ १ मं० ९-१०, १ ६.१—८; १.११.१५—१८, ४ १४.३-४,७-८, ५ १ १-४, ७ १.५-६, ८.१.९-१०; प्रश० १-४, ११-१२,१५-१८

उदा०—सो जयउ महावीरो झाणानलहुणियरइसुहो जस्स ।
नाणम्मि फुरइ भुवणं एक्कं नक्खत्तमिव गयणे ॥ (१. मं० ९-१०)

(घ) परपथ्या (१) . मात्राएँ १२ + १८, १२ + १५ प्रथम चरणकी यति शब्दके मध्य १ मं० ७-८, १.६ ९-१०,१ ११.१३-१४, ३.१ १-४, ७ ४ ४-७; ७ ६ १६-१७,२२-२५; १० १ १—२, प्रश० ५-१०

उदा०—जाणं समग्गसद्दोहज्झेंदुउ रमइ मइफडक्कम्मि ।
ताणं पि हु उवरिल्ला कस्स व बुद्धी परिप्फुरइ ॥ (१ ६ ९-१०)

परपथ्या (२) . मात्राएँ १२ + १८, १२ + १५ तृतीय चरणकी यति शब्दके बीच

उदा०—मा वण्णउ असमत्थो धारेउ सव्वकव्वरसपूरं ।
नियसत्तिरूवसगहियरसकणो द्वाउ तुण्हिक्को ॥ (८ १ ५—६)

(ङ) विपुला मात्राएँ १२ + १८, १२ + १५ प्रथम, तृतीय चरणोंकी यति पद या शब्दके मध्य १ म० ११-१२, ४ १४ १-२, ७ ६ २८-२९ ।

उदा०—रइविप्पओयसतत्तमयणसयणं व कुसुमसवलियं ।
धारंति ताउ विदुदुमहीरयरइदंतुर अहर ॥ (४ १४ १-२)

(च) उग्गाहा (उद्गाथा या गीति) (१) : मात्राएँ १२ + १८, १२ + १८, ७ १ ३-४, ८ १ १-४

उदा०—अत्थाणुरूवभावो हियए पडिफुरइ जस्स वरकइणो ।
सत्थं फुडु गिरइ निरा ललियक्खरनेम्मिएहिं तम्म नमो ॥ (७ १ ३-४)

उग्गाहा (२) मात्राएँ १२ + १८; १२ + १८ प्रथम चरणकी यति पदके बीच १. मं १-४

उदा०—विजयंतु वीरचरणणचपिए मंदरम्मि परहरिए ।
पन्ममुच्छ अंततोए गुतरणिलग्गतविदुछंकारा ॥ (१ मं० १-२)

उग्गाहा (३) मात्राएँ १२ + १८, १२ + १८ तृतीय चरणकी यति पदके बीच

उदा०—जयउ सिरिपासणाहो रेहइ जस्संगनीलिमाभिन्नो ।
फणिणो उडिछद्दियनवघणो व्व मणिगब्भिणो फणकडप्पो ॥

उग्गाहा (४) मात्राएँ १२ + १८; १२ + १८ प्रथम, तृतीय चरणोको यतियाँ पदोके बीच १. मं० ५-६; १ ११.९-१२

उदा०—चंडभुअदंडखंडियपयंडमंडलियमंडलोविसढे ।
धाराखंडणभीय व्व जयसिरिवसइ जस्स खग्गंके ॥ (१.११.९-१०)

(छ) मात्राएँ १२ + १८; १२ + १६

(१) यति सामान्य ४.१ १-२; ७ ६.२०-२१

उदा०—धवलेण तेण विसमे धुयकंधरडंतकसरमुक्कभरो ।
लीलाए कड्ढिओ तह जह फुट्टइ कुसामिणो हिययं ॥ (७.६.२०-२१)

(२) प्रथम चरणकी यति पदके बीच ४.१४.५-६

उदा०—चलणच्छविसामफलाहिलासिकमलेहिँ सूरकरसहणं ।
चिज्जइ तवं व सलिले निययं घित्तूण गलपमाणम्मि ॥

(ज) मात्राएँ १४ + ११,१२ + १५ ७.१.१-२

उदा०—चिरकइकव्वामयमुहाण रुइभंगरसणाणं ।
सुयणाण मए वि कयं अल्लयकसरक्कउक्कव्वं ॥

(झ) मात्राएँ १६ + १२,१६ + १२ ६.१.३-६

उदा०—हत्थे चाओ चरणपणमणं साहुसीलाण सीसे ।
सच्चावाणी वयणकमलए वच्छे सच्छापवित्ती ॥ (६.१.३-४)

(ञ) मात्राएँ १८ + १२;१२ + १५ ६-१ १-२,

उदा०—देंत दरिद्दं परवसणदुम्मणं सरसकव्वसव्वस्सं ।
कइवीरसरिसपुरिसं धरणि धरंती कयत्थासि ॥

२३. दोहउ : मात्राएँ १३ + ११;१३ + ११ ४.१४.९–१०;७ ६.३०–३१

उदा०—जाणमि एक्कुजि विहि घडइ सयलु वि जगु सामण्णु ।
जें पुणु आयउ निम्मविउ को वि पयावइ अण्णु ॥ (४.१४.९–१०)

२४. रत्नमालिका (चतुष्पदी) : मात्राएँ १४ + ६;१४ + ६ प्रत्येक पदके अंतमें सगण (υ υ–)

उदा०—नीलकमलदलकोमलिए सामलिए नवजोव्वणलीलाललिए पत्तलिए ।
रूवरिद्धिमणहारिणिए मारिणिए हा मईं विणु मयणें नडिए मुद्धडिए ॥
(२ १५.३–४)

२५. वस्तु : मात्राएँ १५ + २५ + २७ + दोहा ५ १ ७-११ तथा संधिके प्रत्येक कडवकका आदि छंद

उदा०—ताम राए दिण्णु अत्थाणु
सिंहासणु विहि मि ठिउ एक्कु पासि कामिणि जणावलि ।
पज्जलियमणिमउडसिर पुणु निविट्ठ मडलियमडलि ।
पुणु सामत महंत थिय सेणिउ इयराउत्त ।
भडथड थक्क विणीयकर नरनाणाविहवुत्त ॥ (५ १ ७–११)

२६. मणिशेखर : मात्राएँ २२ + १० दोनो पदोमें अत रगण (–υ–) ५ ८ ६–२३

उदा०—कहिं मि महिपडियतरुपण्णसछन्नया संठिया पन्नया ।
कहिं मि फणिमुक्कफुक्कारविससामला जलिय दावानला । (५-८.२२-२३)

२७. मालागाहो : मात्राएँ ४० + ३० + २६

उदा०—नहकुलिसदलियमायंगतुंगकुंभयलगलियकीलाललित्तमुत्ताहलोह—
विप्फुरियकविलकेसरकलावघोलंतकंधरद्देसा ।
रजंति ताम सीहा जाम न सरहं पलोयति ॥ (७ ४ १-३)

२८. दंडक : ४.८.१-११; ४.२१.१-१२; ५.१.१२—२९;७.६.१-१५; ९ १९

उदा०—अलंकियनिरांतेण तरुणारुणदित्ततेएण बालेण पसरेण वा तेण सूयाहरे दिण्णदीवोहदित्ती-निहित्ता सुदूरे किया निप्पहा । विद्धिवद्धावणावंतलोएहिं वज्जंतपडुपडहपसरतरडसर-मदवहुमद्दलुद्दामकलवेणुवीणागुणोसालकंसालतालानुसारेण आणददरमत्तघुम्मंतवर-लच्छिनच्चततरुणीमहाथट्ट सघट्टतुट्टंतआहरणमणिमडिया चउप्पहा ।

(घ) ध्रुवक एवं घत्ता

संधि	कडवकोके आदिमें ध्रुवक-प्रकार	कडवकोंके अतमें घत्ता-प्रकार
१.	चतुष्पदी १५+१२ (केवल कडवक १ के आदिमें)	चतुष्पदी १५+१२
२.	चतुष्पदी १८+१३ (केवल कडवक १ के आदिमें)	चतुष्पदी १८+१३
३.	दुवई १६+१२ (१.७-८) (प्रत्येक कडवकके आदिमें)	पट्पदी ६+८+१३
४.	पट्पदी १०+८+१३ (१.३-४) (केवल कडवक १ के आदिमें)	पट्पदी १०+८+१३
५.	वस्तु (१.७-११) (प्रत्येक कडवकके आदिमें)	पट्पदी १२+८+१२
६	पट्पदी ९+७+१४ (१.७-८) (केवल कडवक १ के आदिमें)	पट्पदी ९+७+१४ (कडवक १ की पट्पदीमें १०+८+१४ मात्राएँ है ।)
७.	पट्पदी ९+७+१४ (१.७-८) (केवल कडवक १ के आदिमें)	पट्पदी ९+७+१४
८.	खडयं १३+११ (२ से १६ प्रत्येक कडवकके आदिमें)	पट्पदी १३+७+१४
९.	चतुष्पदी १४+१३ (१.५-६) (केवल कडवक १ के आदिमें)	चतुष्पदी १४+१३
१०.	सम-चतुष्पदी १५+१५ (१५-६) (केवल कडवक १ के आदिमें)	सम-चतुष्पदी १५+१५
११,	चतुष्पदी १३+१६ (१.३-४) (केवल कडवक १ के आदिमें)	चतुष्पदी १३+१६

पाठक्रमानुसार छंद-योजना

संधि

१. १,३,१६ पादाकुलक (११); २,४,१२ पारणक (५), ५ त्रोटनक (१०); ६,७,१०-११,१३, १७ अलिल्लह (८); ८,१४ पद्धडिया (७), ९,१५ सग्गिणी (१४), १८ मदनावतार (१५) ।

२. १,११ पादाकुलक (११); २,४,१३–१५ अलिल्लह (८); ३ : १४ वर्णिक (ज र ज र ल ग) छंद (२०); ५,१२ पद्धडिया (७); ६–८,१०,१६–१८,२० पारणक (५), ९ करिमकरभुजा (१); १९ मदनावतार (१५) ।

३. १,३,७,९ पारणक (५); २,६,८,१२–१४ अलिल्लह (८); ४ उर्वशी (१२); ५ सिंहावलोक (९); १० पादाकुलक (११); ११ पद्धडिया (७) ।

४. १–४,१०,१३–१४ अलिल्लह (८); ५ त्रिपदी झंझनारी (१७); ६,९ पादाकुलक (११); ७ त्रोटनक (१०); ८ १–११ दंडक (२८); ८ १२–१५ : १५ मात्रिक (अंत रगण) छंद (६); ११–१२,१५,१७–२० पद्धडिया (७); १६ स्रग्गिणी (१४); २१.१–१२ दंडक (२८); २१.१३–१७ भुजंगप्रयात (१९); २२ दीपक (२) ।

५. १.१२–२९ दंडक (२८), २,४ पारणक (५), ३,७,८(२४–२९,३१–३६),११,१२ पद्धडिया (७); ५ भुजंगप्रयात (१९); ६,९ उर्वशी (१२); ८-६–२३ मणिशेखर (२६); १० पादाकुलक (११); १३ अलिल्लह (८); १४ सारीय (१३) ।

६. १,३,९,१४ अलिल्लह (८); २,४,५,८,११–१३ पद्धडिया (७); ६ सिंहावलोक (९); ७ मदनावतार (१५), १० : २० मात्रिक (अंत ×) छंद (१६) ।

७. १–३,११,१३ अलिल्लह (८); ४.१–३ मालागाहो (२७); ४ उर्वशी (१२), ५ धवला या दिनमणि (२१), ६.१–१५ दंडक (२८), ७–९,१२ पद्धडिया (७), १० करिमकरभुजा (१) ।

८. २,७,११–१६ अलिल्लह (८), ३,४,९ पारणक (५); ५ पादाकुलक (११), ६ त्रोटनक (१०); ८,१० पद्धडिया (७) ।

९. १,४–५,८,१०–१३,१५ अलिल्लह (८); २,९,१४ पद्धडिया (७); ३,६,७,१८ पारणक (५) १६ सिंहावलोक (९); १७ समानिका (१८); १९ दंडक (२८) ।

१०. १,३,६–८,१०,१२–१३,१७,२१,२४–२५ पद्धडिया (७); २,४–५,११,१४–१५,२०,२२–२३ अलिल्लह (८), ९,२६ मदनावतार (१५), १६ पारणक (५); १८ सारीय (१३); १९ : १० मात्रिक (अंत रगण) त्रिपदी (३) ।

११. १–१५ अलिल्लह (८) ।

७. 'जंबूसामिचरिउ' की गुण और रीति युक्तता
(माधुर्य, ओज, प्रसाद); रचनाशैली (वैदर्भी, पांचाली, गौड़ी, लाटी) एवं सुभाषित और लोकोक्तियाँ

साहित्य शास्त्रमें गुणके प्रथम प्रस्तुत कर्त्ता आचार्य भरत मुनि (४ श० ई०) ने दोषोंके विपर्ययको ही गुण माना है (नाट्य १७.९५), जिनमें कुछ गुण तो दोषोंके अभाव रूप हैं, पर अधिकांश भावात्मक गुण हैं। दंडी (७ श० ई० काव्या० २.३) एवं गुणोंके प्रतिष्ठाता आचार्य वामन (९ वीं शतीका मध्य काव्या० ३,१,१) के अनुसार गुण काव्यको शोभा प्रदान करनेवाले तत्त्व हैं। तथा ध्वनिसिद्धांतके प्रवर्तक आचार्य आनंदवर्द्धन (९ श० ई०) एवं उनके अनुवर्त्ती आचार्य मम्मट (११ श० ई०) ने गुणोंका स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार न कर उन्हें रसाश्रित माना है, और परवर्ती विश्वनाथ (१४ श० ई० पूर्वार्द्ध) आदि आचार्योंने इन्हींका अनुकरण किया है। इस प्रकार काव्यकी शोभाको संपादित करनेवाले या काव्यकी आत्माको प्रकाशित करनेवाले तत्त्व या विशेषताएँ गुण है। ये गुण शब्द और अर्थके धर्म हैं और वर्ण-संघटन, शब्दयोजना, शब्दचमत्कार, शब्दप्रभाव तथा अर्थकी दीप्तिपर आश्रित हैं।[1]

---

१. हि० सा० कोश 'गुण'।

गुणोंकी संख्याके संबंधमें भी विद्वानोंमें मतभेद है। आचार्य भरतने (१) श्लेष (२) प्रसाद (३) समता (४) समाधि (५) माधुर्य (६) ओज (७) पदसौकुमार्य (८) अर्थ व्यक्ति (९) उदारता और (१०) कांति, इन प्रसिद्ध दस गुणोंको स्वीकार किया; अग्निपुराणमें १८; एवं भोजने २४, तथा प्रत्येकके बाह्य आभ्यंतर और वैशेषिक तीन-तीन भेद, इस प्रकार यह संख्या बढ़कर ७२ तक जा पहुँची। अंततः आनंद-वर्द्धन आचार्यने रसके धर्मरूपमें गुणको मानकर, चित्तकी तीन अवस्थाओं द्रुति, दीप्ति और व्यापकत्वके आधारपर केवल तीन गुणों माधुर्य, ओज और प्रसादको स्वीकार किया। मम्मटाचार्यने भी दसगुणवाद-का खंडन कर दसोंका इन्हीं तीन गुणों माधुर्य, ओज एवं प्रसादके अंतर्गत समावेश किया है[1] और गुणोंकी यह सामान्य परिभाषा दी है—"जिस प्रकार वीरता आदि आत्माके गुण हैं, देहके नहीं, उसी प्रकार माधुर्य, ओज आदिक भी रसके ही गुण हैं, पदसमुदायके नहीं।"[2] जंबूस्वामिचरिउ माधुर्य, ओज तथा प्रसाद गुणोंसे सर्वत्र ओत-प्रोत है।

माधुर्य—जिसमें अंत.करण द्रुत[3] (गलित) हो जाये ऐसा आनंद-विशेष माधुर्य कहलाता है।[4] सा० को० के अनुसार 'माधुर्यका अर्थ है श्रुति सुखदता, समासरहितता, उक्ति वैचित्र्य, आर्द्रता, चित्तको द्रवित करनेकी विशेषता, भावमयता और आह्लादता। ट ठ ड ढ को छोडकर क से म तकके स्पर्श वर्ण, मूर्धन्य वर्ण और अंत्य (पंचम) वर्णों तथा समासोंके अभाव एवं छोटे-छोटे समस्त पदोंके प्रयोगसे माधुर्य गुणका संपादन होता है। इस प्रकारका वर्ण प्रयोग संयोग, वियोग, करुण एवं शांत रसोंमें क्रमसे आधिक्यके साथ पोषक होता है, अर्थात् संभोग शृंगार और विप्रलंभ शृंगार तथा करुण एवं शांत रसोंकी स्थितिमें माधुर्य गुण क्रमसे बढ़े हुए उत्कर्षके साथ प्रकट होता है। इस प्रकारकी रचना समास रहित या अल्प समास होनी चाहिए, तभी माधुर्यगुण युक्तता कही जा सकती है[5]।

जंबूसामिचरिउमें माधुर्य गुणयुक्तताके निम्न उदाहरण प्रमुख हैं—भवदेवका पत्नी स्मरण-(२.१४), रस-विप्रलंभ शृंगार, मिथुनोंकी उद्यान-क्रीड़ा (४ १७—१८), रस-संभोग शृंगार, जंबूके प्रव्रज्या लेनेकी इच्छा जानकर माँकी अवस्था (८ ७ ९–१४), रस-वात्सल्य, नागवसू-द्वारा भवदेवको बोध-प्रदान (२ १८), रस-शांत, भवदेवका अंतर्द्वंद्व (२.१६) भाव—रतिभावमें परिणत होती हुई भावशबलता। अन्य संदर्भ हैं :—भ० महावीरका उपदेश (२.१); संधि ३ लगभग संपूर्ण, जंबूस्वामीको देखकर नारियोंकी काम-विह्वलता ४ ११; संधि ८ और ११ लगभग संपूर्ण, एव ९ १,३; १०.२,६,१८,२० एवं २५।

इन सब उदाहरणों एवं संदर्भोंके अतिरिक्त एक अनिर्वचनीय माधुर्यकी ध्वनि और आस्वादन संपूर्ण रचनामें विद्यमान है, और यही रचनाका सर्वप्रधान गुण है। माधुर्यके साथ प्रसादगुणका भी घनिष्ठ संबंध है। जहाँ-जहाँ श्लेषादि अलंकारोंका विशेष प्रयोग हुआ है, जैसे कि उपर्युक्त उदा० २ में, और अर्थ सुनते ही

---

१. हि० सा० कोश 'गुण'।

२. मम्मट काव्य प्र० 'गुण'।

३. द्रवीभाव : रसकी भावनाके समय चित्तकी चार अवस्थाएँ होती हैं—काठिन्य, दीप्तत्व, विक्षेप और द्रुति। किसी प्रकारका आवेश न होनेपर अनाविष्ट चित्तकी स्वभावसिद्ध कठिनता वीर आदि रसोंमें होती है। क्रोध और मन्यु (अनुताप) आदिके कारण चित्तका दीप्तत्व रौद्र आदि रसोंमें होता है। विस्मय और हास्य आदि उपाधियोंसे चित्तका विक्षेप अद्भुत और हास्यादि रसोंमें होता है। इन तीनों दशाओं काठिन्य, दीप्तत्व और विक्षेपके न होनेपर रति आदिके स्वरूपसे अनुगत आनंदके उद्बुद्ध होनेके कारण सहृदय पुरुषोंके चित्तका पिघल-सा जाना (आर्द्रप्रायत्व) द्रवीभाव या द्रुति कहलाता है। (सा० द० अष्टम परि० 'गुण')।

४. मम्मट का० प्र० 'गुण'।

५. हि० सा० कोश; मम्मट का० प्र०।

तुरंत पूर्ण रूपसे स्फुट नहीं होता, कुछ चिंतनकी आवश्यकता जिसमें होती है, ऐसे स्थलोंको छोड़कर माधुर्यके साथ प्रसाद गुणका सहभाव स्वीकरणीय है।

ओज गुण—ओजका शाब्दिक अर्थ है तेज, प्रताप, दीप्ति। काव्यके अंतर्गत जो गुण सुननेवालोंके मनमें उत्साह, वीरता, आवेग आदि जाग्रत करनेकी क्षमता रखता है वह ओज कहलाता है।[1] ध्वनि अनुयायी आचार्योंके मतसे चित्तका विस्तारक या दीप्तिकारक गुण 'ओज' है; अथवा दूसरे शब्दोंमें चित्तको फड़क उठने रूप भड़कानेवाले गुणका नाम ओज है।[2] वीर, बीभत्स और रौद्ररसोंमें क्रमसे इसकी स्थितिमें उत्कर्ष और प्रखरता बढ़ते जाते हैं। इसके लिए वर्णोंके आद्य और तृतीय (प्राकृत, अपभ्रंशमें तृतीय-चतुर्थ) वर्णोंकी संयुक्ताक्षरता; ट,ठ,ड,श,ष (प्राकृत अपभ्रंशमें स) आदिका प्रयोग, लंबे-लंबे समास और विकट या उद्धत पदरचना आवश्यक मानी गयी है। इस प्रकार ओज गुणमें उदात्त भाव तथा कर्कश, क्लिष्ट वर्ण संघटन और संयुक्त अक्षरोंका प्रयोग होता है।[3] जंबूसामिचरिउमें इस गुणके प्रयोगके कुछ प्रमुख संदर्भ निम्न हैं :—

हस्तिका उपद्रव (४ २१), रस-भयानक; युद्ध वर्णन (५ १४,६.११), रस-वीर, युद्धवर्णन (६.७.५-७; ६.१० १-४; ७ १.९-२२) रस-भयानक एवं बीभत्स, तथा अन्य रौद्र रसात्मक वर्णन ५ १३ ९-११; (५.१४ १-१४); संधि ६ का शेषांश; संधि ७ १-११ एवं १०.२६।

प्रसाद गुण—प्रसादका शाब्दिक अर्थ है प्रसन्नता, खिल जाना या विकसित हो जाना। सभी रसोंमें और सभी रचनाओंमें ऐसा धर्म या प्रसिद्ध अर्थोंमें शब्दका ऐसा प्रयोग जिसे सुनते ही सामाजिकके हृदयमें भाव या अर्थ क्षण-भरमें व्याप्त हो जाय, वह प्रसाद गुण है। जैसे सूखे ईंधनमें अग्नि और जैसे स्वच्छवस्त्रमें जल तुरंत फैल जाता है, उसी प्रकार चित्तको रसोंमें और रचनामें जो तुरंत व्याप्त कर दे, वह गुण प्रसाद है। अर्थात् प्रसाद गुण वहाँ होता है जहाँ सरल, सहज, भावव्यंजक शब्दावलीका प्रयोग किया जाता है। अर्थकी स्वच्छता या निर्मलता इसकी विशेषता है और यह सभीमें व्याप्त रहता है।[1]

जं० सा० च० में इस गुणके प्रयोगके शताधिक उदाहरण हैं; जिनके कुछ प्रमुख संदर्भ ये हैं :—कविका विनयप्रदर्शन (१ २); मगध देश वर्णन (१ ८), रानियोंका सौंदर्य (१ १२); सागरचंद्रका मुनिदर्शनोंको जाना (३ ५), कन्याओंका सौंदर्य (४ १३), वसंतागमन (४ १५ ७-१६); जंबूका आत्मचिंतन (९ १); अंतर्कथाएँ (९ २-११ एवं १० ७-१७)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि वीरने अपनी रचनामें माधुर्य, ओज एवं प्रसाद तीनों गुणोंका प्रचुर समावेश किया है। इनमें माधुर्यका प्राधान्य है, इसके उपरांत ओज एवं प्रसाद गुणोंका।

रचना-शैली—'जंबूसामिचरिउ'की रचना-शैली या रीतिकी दृष्टिसे विश्लेषण करनेके प्रसंगमें 'शैली' शब्द और उसके स्वरूप, संख्या आदिपर प्रकाश डालना आवश्यक है। संस्कृत साहित्यमें शैलीके स्थानपर 'रीति' शब्दका प्रयोग हुआ है। हिंदी साहित्यकोशमें साहित्य शास्त्रके प्राचीन ग्रंथोंके आधारपर शैलीकी परिभाषा इन शब्दोंमें दी गयी है—"शैली अनुभूत विषयवस्तुको सजानेके उन तरीकोंका नाम है जो उस विषयवस्तुकी अभिव्यक्तिको सुंदर एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं।" 'अर्थात् शैली किसी भी काव्यादि साहित्यिक कृतिके रस-पोषण संवर्द्धन एवं प्रेषण अर्थात् सहृदय सामाजिकको पूर्ण रसानुभूति आदि विविध रूपोंमें रसोपकारक उपादान है। इसी हेतुसे संस्कृत साहित्यमें रीति (शैली) को काव्यकी आत्मा माना गया है। संस्कृतके साहित्यप्रणेता आचार्योंने रीतिके स्वरूपपर भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किये हैं।[1] उन सबका साराश यह है कि रीतिका संबंध 'विशिष्ट पदरचना' अर्थात् गुणों एवं 'पदरचना' जो कि समासपर निर्भर

१. हिन्दी साहित्य कोश 'गुण'।
२. सा० द० अष्टम परिच्छेद।
३. हि० सा० कोश एवं सा० द० ८.४.६।
१. हि० सा० कोश; तथा सा० द० अष्टम परिच्छेद।

है, तथा वर्ण संघटनसे है। अत. कुछ आचार्योंने 'समासहीनता' 'स्वल्पसमासता' व दीर्घ समासताके रूपमें शैलीको देखा है, और भामह तथा दंडी (७-८ श० ई० काव्यालंकार, काव्यादर्श) ने भरतके प्रदेशानुसार आवंती, दाक्षिणात्यादि (ना० शा० १४.३६ ४९) प्रवृत्ति विभाजनके अनुकरणपर, रीतिका भी देशोसे संबंध स्थापित किया है। जैसे वैदर्भी अर्थात् विदर्भदेशमें[1] प्रचलित शैली, गौडी गौड़ देशमें, पांचाली पाचाल जनपदसे और लाटी अर्थात् (गुजरात) प्रदेशमें प्रचलित शैली। उपर्युक्त चारो रीतियोके अलग-अलग स्वरूपके संबंधमें भी साहित्यशास्त्राचार्योंमें पर्याप्त मत विभिन्नता दिखलायी देती है।[2] पर वैदर्भी और गौडी रीतियोंके स्वरूपपर जो कुछ मतैक्य प्रकट होता है, उसपरसे यह कहा जा सकता है कि 'वैदर्भी वह रीति है जिसमें माधुर्य गुणका उसकी समस्त विशेषताओ श्रुति सुखदता, चित्तको द्रवित करनेकी क्षमता भावमयता एवं आह्लादता आदि सहित प्राधान्य हो, जो संयोग एव विप्रलम्भ-शृंगार, करुण, वात्सल्य एवं शातरसोकी उपकारक हो; जिसमें समास-साहित्य अथवा अल्पसमासता हो, जिसमें ट, ठ, ड, ढ वर्णोको छोडकर वर्गोके पंचमाक्षरोंसे युक्त क से म तकके स्पर्श वर्णोका प्रयोग हो तथा श, ष, एवं अन्य कठोर महाप्राण ध्वनियोका अभाव पाया जाता हो; और इस प्रकार जिसकी संपूर्ण रचना सुकुमार एवं मधुर हो।' गुणोकी अपेक्षासे माधुर्यके समान प्रसाद गुणका भी इसमे पूर्ण समावेश होता है। इस संबंधमें एक ध्यान देने योग्य बात यह है कि दंडी और वामनके अनुसार वैदर्भी रीतिका काव्यके श्लेष, प्रसाद, समता, माधुर्य, सुकुमारता, अर्थव्यक्ति, उदारता, ओज, कांति, और समाधि इन दसो गुणोसे युक्त होना कहा गया है, वह समीचीन प्रतीत नही होता। क्योकि श्लेष, समाधि, उदारता एवं ओज, जिन्हें मम्मटादि सब आचार्योंने ओजगुणके अतर्गत माना है, तथा ओजगुणके जो लक्षण किये है, वे वास्तवमें वैदर्भीके स्वरूपमें घटित नही होते। रुद्रट इस संबंधमें मौन है। लगता है कि प्राचीन आचार्योंके इस मतको स्वीकार न करते हुए भी उन्होने इसका स्पष्ट खंडन नही किया और यदि ओज गुणको भी वैदर्भीके अतर्गत मानना हो, तब या तो ओजगुणकी परिभाषा ही बदलनी होगी, जिससे उसमें कठोरता एवं परुषवर्णताकी अपेक्षा माधुर्य और सुकुमारताका प्रवेश हो, अथवा फिर सभी रीतियोको वैदर्भीमें ही समाहित करना होगा, या फिर अल्पसमासता एवं बहुलसमासता, यही रीतिविभाजनका एक मात्र निर्बल आधार शेष रहेगा। यदि वैदर्भीमे दसो या तीनो गुणोका समावेश होता है, तो एक ओर रुद्रट एवं दूसरी ओर विश्वनाथ, इन दोनोने ही वैदर्भी रीतिमें, विशेष रूपसे, शृंगार, करुण, वात्सल्य एवं शातरसोका ही अस्तित्व क्यो स्वीकार किया ? वीर, रौद्र, बीभत्स एव भयानक इन उग्ररसोको भी उसमें समाहित क्यो नही माना ? इस विषयपर अधिक चर्चा करना इस प्रबंधकी सीमाओके बाहर है, फिर भी प्रसंगोपात्त होनेसे इतना लिखना आवश्यक हुआ। इस चर्चाका तात्पर्य यह है कि वीर कविने इस विषयमें वैसे ही अन्य रीतियोके संबंधमें भी रुद्रटके मतको ही स्वीकार किया है तथा ऐसा लगता है कि वैदर्भी रीतिको सुकुमारता एवं माधुर्य के वैशिष्ट्यके निमित्तसे काव्यरचनामें सर्वाधिक उपयुक्त होनेके कारण इसे जो महत्ता प्रदान हुई, उससे प्रभावित होकर आचार्योंने अतिशयोक्तिपूर्वक इसे सर्वगुण संपन्न लिख डाला है।

गौड़ी रीतिके स्वरूपके संबंधमें कुछ अधिक स्पष्टता और मतैक्य है : जिसके अनुसार ओजको प्रकाशित करनेवाले कठिन वर्णोसे बनाये हुए, बडे-बड़े महाप्राण प्रयत्नवाले अक्षरोसे युक्त, शब्दाडंबरसे पूर्ण एवं दीर्घसमासोसे रचित उद्भट बंध अर्थात् ओजपूर्ण शैली, मधुरता, सुकुमारताका अभाव और लंबे-लंबे समासोसे पूर्ण रचनाको गौडी शैली कहना चाहिए। पर 'जंबूसामिचरिउ'के अध्ययनके परिप्रेक्ष्यमें यहाँ भी यह अवश्य कथनीय है कि यहाँ ओजगुणका प्रचुर सद्भाव होनेपर भी अधिक लंबे समासोका प्रयोग गिने-चुने आठ-दस कडवकोमें ही हुआ है तथापि अन्य लक्षणोसे वहाँ गौड़ी रीति ही सिद्ध होती है। अत. वीरके मतसे गौड़ी रीतिमें लंबे समासोके प्रयोगकी अनिवार्यता प्रतीत नही होती।

पाचाली और लाटी रीतियोको लेकर आचार्योंमें अत्यधिक मत विभिन्नता है। इस कारण इनका

---

१. हिंदी-साहित्य कोशः 'रीति'।

२. वही, एवं साहित्यदर्पण : विमला (हिंदी) व्याख्या परि० ९।

अलग-अलग स्वरूप और उनकी विभाजक रेखा या तत्त्व भी स्पष्ट नही है। परंतु सब मतोपर कुछ गहराईसे विचार करनेसे पाचालीका स्वरूप कुछ इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है—'पाचाली वह रीति है जो माधुर्य एवं सुकुमारतासे संपन्न हो और जिसमे पाँच-छह पदों तकके लघुसमास हो। भोजने इसे ओज एवं कांति गुणोसे संपन्न माना है, और उसीसे किसी अन्य आचार्यने इस रीतिको वैदर्भी एवं गौड़ीके बीचकी रीति भी कहा है। परन्तु रुद्रटकी परिभाषा और वीरकी प्रस्तुत कृतिको ध्यानमें रखकर व अन्य भी साहित्यिक उल्लेखोसे यह मत समाचीन प्रतीत नही होता। अपने भाव और भाषा संघटन दोनों दृष्टियोसे पांचाली रीति वैदर्भीके बहुत निकट प्रतीत होती है, और इसकी प्रवृत्ति वैदर्भीकी ओर ही झुकने की है। पांचाली श्रेष्ठ वैदर्भी रीतिकी अपेक्षा एक मध्यम रीति है।

अब हम लाटी रीतिको लें। रुद्रटके अनुसार यह मध्यम समासवाली उग्र रसोके वर्णनके लिए उपयुक्त है और विश्वनाथ (१४ श० उत्त०, सा० द०) ने इसे वैदर्भी तथा पांचालीके बीच स्थापित किया है। इस कथनसे लाटीका स्वरूप और भी अधिक अबूझ व अस्पष्ट हो जाता है। इसी कारण साहित्य कोषमें भी इसके संबंधमें कहा गया है कि 'लाटीकी कोई अलग विशेषता ज्ञात नही होती'। पर इससे तो हम और भी भटक जाते है तथा लाटीको समझनेका कोई मार्ग ही हमारे सामने नही रह जाता। यहाँ भी हमें वीरकी यह कृति कुछ आलोक प्रदान करती है और रुद्रटकी परिभाषाके प्रकाशमें इसका अध्ययन करनेपर हमें ज्ञात होता है कि 'मध्यम समासरचना, वर्ण-संघटन, ओजगुणात्मकता (प्रभाव) एवं भावोकी अभिव्यक्ति इन सभी दृष्टियोसे लाटीरीति गौड़ीके सबसे निकट है, तथा इसकी प्रवृत्ति निरंतर उसीकी ओर झुकने की है।'

उपर्युक्त चर्चासे पाचाली एवं लाटीका स्वरूप भी कुछ स्पष्टतर हो जाता है, और उनकी विभाजक रेखाका भी कुछ संकेत उपलब्ध होता है जिसके अनुसार इन चार रीतियोके दो वर्ग बनाये जा सकते हैं—(१) वैदर्भी एवं पांचाली और (२) गौड़ी तथा लाटी। वीरकी प्रस्तुत अपभ्रंश रचनाकी आलोचनाकी दृष्टिसे यह कहना भी आवश्यक है कि संस्कृत भाषाकी अपेक्षा प्राकृत-अपभ्रंशके अनिवार्य वर्णपरिवर्तनोको दृष्टिगत रखकर प्रस्तुत रचनामें वैदर्भी रीतिमें भी ट, ठ, ड, ढ मूर्धन्य एवं थ, झ, घ भ, ह महाप्राण वर्णोंका प्रयोग बहुश. उपलब्ध होता है।

ऊपरकी आलोचनासे यह भी प्रकट होता है कि 'जंबूसामिचरिउ' की सपूर्ण रचना किसी एक ही शैलीमें नही बल्कि चारो शैलियोमें मिश्रितरूपा है। नीचेके विश्लेषणसे यह तथ्य और भी अधिक स्पष्ट होगा। निम्न पंक्तियोमें जं० सा० च०मे चारो रीतियोके प्रयोगके कुछ सदर्भ प्रस्तुत हैं—

वैदर्भी रीतिके उदाहरण :

कविके प्रेरणा-दायकका वंश परिचय (१.५), संधि २ का अधिकाश भाग, विशेष रूपसे भ० महावीरका उपदेश (२.१); भवदेवकी दीक्षा और पत्नी-स्मरण (२.१४); भवदेवका अंतर्द्वंद्व (२.१६); एवं नागवसू द्वारा भवदेवको बोध प्रदान (२.१८); मिथुनोकी उद्यानक्रीड़ा (४.१७-१८), श्रेणिककी सभामें गगनगति-द्वारा विलासवतीका वंश आदि परिचय (५ २.१२-२०); रत्नशेखरकी सेना-द्वारा केरलपुरीकी घेराबंदी और लूटपाट (५.३.४-१३), रत्नशेखरको पराजित करके जंबूस्वामी आदिका राजगृहकी ओर वापिस प्रस्थानसे लगाकर सुधर्म स्वामीके दर्शनो तकका वृत्त (७.१३); संधियाँ ८ व ९ लगभग संपूर्ण, अंतर्कथाएँ (१० १-१७); जंबूस्वामीकी दीक्षासे लेकर विद्युच्चर मुनिपर उपसर्ग तकका वृत्तात (१०.२०-२६); एवं मुनि विद्युच्चर-द्वारा बारह भावनाओंका चिंतन तथा मरकर सर्वार्थसिद्धिको गमन (११.१-१५)। माधुर्य गुणके प्रसंगमें दिये हुए शेष संदर्भ भी इस रीतिके अंतर्गत आते है।

पांचाली रीतिके उदाहरण :

भ० महावीरके दर्शनोके लिए आनंदभेरी आदिका बजवाया जाना (१ १४), भवदेवके घरमें मुनि भवदत्तका आगमन (२ १२), पूर्वविदेहमें पुष्कलावती प्रदेश, पुंडरिकिणी नगरी एवं वीतशोक नगरी तथा

१. द्रष्टव्य : सा० द० विमला व्याख्या परि० ९, एवं हि० सा० कोश।

सागरदत्त, शिवकुमारके जन्मके वृत्तांत (३ १-४), मुनि सागरदत्तका वीताशोक नगरीमें आगमन (३.६); अणाढियदेवका वृत्त (४.२), जंबूकी माँके स्वप्न (४ ६), वसंतके आनेपर उद्यानका सौंदर्य (४.१६), सैन्य प्रयाण (५ ७), विंध्यदेश वर्णन (५.९); रेवा नदी वर्णन (५ १०), जंबूस्वामीका दूत बनकर रत्नशेखरसे वाद-विवाद (५ १२) आदि। तीसरी संधि अधिकांशमें वैदर्भीकी ओर झुकती हुई पाचाली शैलीमें रचित है।

गौड़ी रीतिके उदाहरण :

जंबूस्वामीका जन्म (४.८), हस्तिका उपद्रव (४.२१), श्रेणिककी राजसभा (५.१); गगनगति-द्वारा रत्नशेखरकी वीरताका प्रतीकात्मक वर्णन (५ ५ १-५), सैन्य प्रयाणकी तैयारी (५ ६), युद्ध (५.१४, संधि ६; संधि ७ १ से १२), एवं विद्युच्चरका देश-दर्शन (९ १९)।

लाटी रीतिके उदाहरण:

जंबूस्वामीकी माँकी गर्भावस्था (४.७), बालक जंबूका दिनोदिन बढना (४.९.१-४); विंध्याटवीका वर्णन (५ ८.६-३६) आदि।

उपर्युक्त विश्लेषणसे यह बिलकुल स्पष्ट है कि वीर कविने अपनी संपूर्ण रचनामें सबसे अधिक प्रयोग किया है वैदर्भीका, जो कि इसके प्रधान रसो शृंगार एवं शातके सर्वथा अनुकूल तथा पोपक है। आरंभकी संधि २ व ३ का अधिकाश भाग, और संधि ८,९,१० व ११ लगभग संपूर्ण वैदर्भी शैलीमें रचित है। माधुर्य एवं प्रसाद गुणोका प्राधान्य होनेसे ऐसा होना स्वाभाविक है। वैदर्भीके उपरांत पाचालीका प्रयोग है। परतु वीर-रस रचनाका एक प्रमुखरस होनेसे परिमाणमें गौडीका प्रयोग अधिक हुआ है। संधि ६ और ७ लगभग संपूर्ण गौड़ी शैलीमें रचित है और लाटीका प्रयोग सबसे कम किया गया है, जो कि लाटीकी अपनी अनि-श्चित-सी स्थितिके कारण स्वाभाविक है।

'जंबूस्वामिचरिउ' में प्रयुक्त सुभाषित और लोकोक्तियाँ

वीर कविने अन्य महाकवियोके समान अपनी रचनामें सुभाषित और लोकोक्तियोका भी प्रचुर प्रयोग किया है। उनका हिंदी रूपातर यहाँ प्रस्तुत है।—

सज्जन-दुर्जन—

सज्जन व्यक्ति दूसरेके गुणग्रहणके लिए ही जीता है। वह स्वप्नमें भी किसीका लेशमात्र दोष नही देखता। इसे यू भी रख सकते है—दूसरेके गुण ग्रहण मात्रकी ओर लगी हुई सज्जन पुरुषकी दृष्टि कभी किसीके लेशमात्र दोषको नही देखती (१ २२)।

(ऐसा) स्वभावसे पवित्र हृदय सज्जन किसीके गुण दोषोकी परीक्षाके पचडेमें नही पडता (१ २.३)।

दुर्जन व्यक्ति अपने स्वभावसे ही जानते हुए भी दूसरोके गुणोको तो झाँपता है और झूठे दोषोको प्रकट करता है (असद्भूतदोपोद्भावन) (१ २ ४)।

सच्चा मित्र—

जिसके पास अपने ही दूसरे हृदयके समान मित्र न हो, उसके लिए राज्य एक रज्जुबंधनका निमित्त-मात्र है, अर्थात् राजाके लिए सच्चे मित्रकी सर्वोच्च महत्ता है (६ १२-४)।

फलहीन होनेपर भी अपनी घनी छायासे युक्त महान् वृक्ष विटके कार्यके लिए तो सफल होता ही है (६ १२-३), अर्थात् जो हृदयसे महान् है, उसके पास कुछ भी न रहे तो भी वह अनेकोका आश्रयभूत बनता है।

सुभटोका रुधिर, हाथियोका मद, और घोडोके फेनके प्रवाहसे (युद्ध भूमिमें) धूल उसी प्रकार शात हो जाती है जिस प्रकार सुहृदो (सज्जनमित्रो) का रक्त (धन एवं यश) पीकर दुर्जन शात हो जाता है। (६ ५-१०-११)।

सच्चा बंधु—

जो महान् विपत्तिमें सहारा देता है उसके समान और कोई बंधु नही होता; अथवा बंधु वही जो महान् विपत्तिमें सहारा दे (६.१२.२)।

दरिद्रोको दान देने वाले, परदु ख कातर और सरस काव्य रचनाके धनी पुरुषोंको धारण करनेसे ही यह धरित्री कृतार्थ होती है (६ १ गाथा १)।

हाथमें धनुष, साधुशील पुरुषोके चरणोको शिरसा प्रणाम, मुखमें सच्चीवाणी, हृदयमें स्वच्छ प्रवृत्ति, कानोंसे सुने हुए (सच्चे) श्रुतका ग्रहण तथा दो भुजलताओंमें विक्रम, यह वीरपुरुषका सहज (वास्तविक) परिकर होता है, शेष तो बाह्य-साधन मात्र होते है (६ १ गाथा २-३)।

विद्याधरको छोड़ी हुई बाणावली जबूस्वामीके पास इस प्रकार गयी, जैसे कोई असती किसी सत्पुरुषके पास जाये, अर्थात् निरर्थक लौट गयी। तात्पर्य यह कि किसी सत्पुरुषके प्रति शत्रु-द्वारा की गयी कोई बुराई उसका कुछ नही बिगाड सकती (९.२)। हिंदीमें—'चदन विष व्यापत नही लिपटे रहत भुजंग'।

गुणहीन लोग गुणोको समझते नही और गुणवान लोग दूसरोके गुणोको देखना तक नहीं सह सकते। स्वयगुणी और परगुण-प्रिय ऐसे लोग तो कोई विरले ही होते है (४.१ १-२)।

कवि और काव्य—किसीमें केवल काव्य रचनेकी शक्ति होती है, और कोई उसका व्याख्यान, आलोचना या अभिनय करनेमें ही निपुण होता है। (१.२,८)

एक पाषाण (आकर) सोनेको जन्म देता है, दूसरा (कसौटी, पत्थर) उसकी परीक्षा करता है (१ २ २)। दोनो प्रकारकी प्रतिभासे संपन्न व्यक्ति विरले ही होते हैं; अर्थात् सबमे सब गुण नही होते। किसीमें कोई गुण होता है, और किसीमें कोई। जिसमें जो गुण हो, उसे उस गुणका पूरा लाभ उठाना चाहिए (१ २-१०)।

दूसरोकी काव्यरचनाओमें वर्ण या शब्दपरिवर्तन करके काव्यरचना करनेवाला कवि बिना कहे ही अपने काव्य संगठनमें, बुधजनोके द्वारा पहचान लिया जाता है कि यह चोर कवि है (१.२.१४-१५)।

अपने भोलेपनसे ऐसा मान कर कि मैं काव्य रच सकूँगा कवि कर्ममें प्रवृत्त होना भुजाओंसे सागर तर जानेकी कल्पनाके समान है। ऐसे प्रयास लोगोंमें उसी प्रकार उपहासके पात्र बनते हैं, जिस प्रकार ऊँचे वृक्षके फलोकी ओर हाथ बढानेवाला कोई श्रद्धावान् पगु (१.३ ७.८)।

जिस प्रकार हीरेसे बींधे हुए मणिमें कच्चे सूतका धागा भी सरलतासे प्रवेश कर जाता है, उसी प्रकार किसी विषयपर महाकवियो-द्वारा रचित प्रबंधोको देखकर अल्पमति कवि भी उस विषयपर काव्य रचना कर सकता है (१ ३ ९-१०)।

सरिता, सरोवर और चरहियो (खड्डो)में जो बहुत-सा (अस्वच्छ, अपथ्य) जल है, वह किस काम-का। उससे तो मिट्टीके करवेमें रखा हुआ थोडा-सा निर्मल, शीतल एवं सुस्वादु जल कही अच्छा, जो लोगोके द्वारा अभिलाषा पूर्वक पिया जाता है; अर्थात् किसी विषय पर ऐसे बडे-बडे महाकाव्योंसे क्या?, जो साधारणजनकी समझके बाहर हो। उनसे तो वह लघुकाव्य अच्छा जिसका सर्व साधारण लोग भी पूर्ण स्वाद (आनद) ले सकें (१ ५,११,१ १८,२०-२१); अथवा किसी धनिकका वह अपार धन किस कामका जिसका उपयोग कोई भी न कर सके, इससे तो किसी साधारण व्यक्तिकी वह तुच्छ संपदा भली जो सबके काम आये।

जिनके मुख प्राचीन कवियोके काव्यामृतपानसे भरे होनेसे उनकी (काव्य) रसनाका स्वाद बिगड़ गया है, वे अदरकके फूलकी कलीके समान भिन्न व चटपटे स्वादवाले (जंबूसामिचरिउ सदृश) काव्योंका रसपान करें (७ १ गाथा १)।

चिंतनशील कवियोके-द्वारा काव्यके (अलंकारादि) अंगो व रसोसे समृद्ध जो कुछ युक्तियुक्त कहा जाता है, वह सब (चाहे वास्तवमें घटित हुआ हो या न हुआ हो) सच्चरित्रमें घटित (समाहित और उचित) होता है (८ १ गाथा २)।

जिनमे समस्त काव्यरसोके पूरको धारण करने (और व्यक्त करने) की शक्ति नहो है, उन्हें निज शक्तिके अनुसार (काव्य रचनाकी अपेक्षा) काव्योके अध्ययनके द्वारा उनका यथासंभव रसास्वाद लेकर ही चुप बैठना चाहिए; अर्थात् निकृष्ट काव्य रचनाका व्यर्थ प्रयास नही करना चाहिए। (८ १ गाथा ३)

कसौटी, ताप और छेदोंसे परीक्षित शुद्ध सुवर्णके समान सज्जनोंके द्वारा सुपरीक्षित प्रवीण काव्योंको तुलापर तौले हुए तथा बुद्धिरूपी कसौटीपर कसे हुए काव्य-रत्नोंसे देदीप्यमान एवं सुंदर शब्दसमूहसे युक्त काव्योंको ही ग्रहण करना चाहिये; (सुवर्ण मात्र या काव्य मात्रको) स्नेहसे नहीं (९.१. गाथा १)।

वैभवसे, राजाके नैकट्य(सान्निध्य या आश्रय)से अथवा कलह(दुष्कर्म)से ही, जिसमें काव्यगुण उत्पन्न होता है ऐसे काव्यको धिक्कार है (१०.१ गाथा १)।

ओजपूर्ण उक्तियाँ—

चंद्रमाकी किरणोंको कौन छू सकता है ? (५.४.१२)
सूर्य (के घोड़ों) की गति कौन रोक सकता है ? (५.५.१)
यमराजके भैंसेके सींग कौन उखाड़ सकता है ? (५.५.२)
गरुड़के मुखमें कौन प्रवेश कर सकता है ? (५.५.२)
क्रूरग्रह (राहु, केतु, शनि आदि) का निग्रह कौन कर सकता है ? (५.५.३)
जलते हुए अग्निमें कौन प्रवेश कर सकता है ? (५.५.३)
शेषनागके फनमणिको बलात् कौन अपहरण कर सकता है ? (५.५.४)

प्रलयकालमें मर्यादोल्लंघित ऊपर उठती हुई भयंकर लहरोंसे युक्त समुद्रको भुजाओंसे कौन तैर सकता है ? (५.५.४); अर्थात् ऐसे असंभव कार्योंका संपादन कौन कर सकता है ?

दर्प-दुर्नीति—

शुक्र, सूर्य और चंद्रमाको कंपा देनेवाले रावणका सीताके कारण मरण हुआ (५.१३.६)।

झूठे दर्पसे गर्वित मदांध दुर्योधनका द्रौपदीके कारण सर्वनाश हुआ (५.१३.७); अर्थात् दर्प और दुर्नीतिकारोंका निश्चित नाश होता है।

कौवेके (शरीरके) आकाशमें उड़ सकने मात्रसे ही वह गुणी नहीं हो जाता (५.१३.३०); अर्थात् शारीरिक गुण या क्षमता मात्र किसीके गुणी या शक्तिशाली होनेके द्योतक नहीं हैं।

हस्ति समूहका संहार करके सिंह पर्वत कंदराओंमें जाकर सोता है, यह उसकी प्रवृत्ति या स्वभाव ही है, न कि गीदड़ोंके भयसे वह ऐसा करता है (५.१३.३२.३३) अर्थात् सोते हुए या शांत शत्रुको कायर अथवा दुर्बल नहीं मान लेना चाहिये।

हाथके पंजेसे कुंभीके कुंभस्थलको विदीर्ण करके जानेवाले सिंहके नखोंसे गिरे हुए गजमुक्ताओंको देखकर जो उस सिंहको मारकर उन्हें प्राप्त करना चाहे, वह अवश्य यमराजका बंधु (मौतका ग्रास) है (५.१४.२-३)।

जो सैनिक हृदय सहित अपना सिर तो स्वामीके लिए दे देता है, मांस बोटी-बोटी टुकड़े करके मांसभोजी पशु-पक्षियों एवं राक्षसोंको दे देता है, अपना जीवन स्वर्गलोककी सुररमणियोंके लिए त्याग देता है, और शेष जो बच रहता है, उसे भी पृथ्वीको अर्पित कर देता है, उस भटके समान और कौन धन्य हो सकता है ? (६.८९-११)।

वीर-प्रशंसा—

श्रेष्ठ नखोंसे युक्त एक केसरी अच्छा, महागर्जन करनेवाला हरिणोंका मेला नहीं (७.२.११)। आकाशमें भासमान एक अकेला दिनमणि (सूर्य) अच्छा; खद्योत (जुगनूं) कीड़ोंका समूह नहीं (७.२.१२)। बढ़ा हुआ विकराल अकेला बड़वानल अच्छा भस्म करता उल्कासमूह नहीं (७.२.१३)।

झपट मारनेवाला एक गरुड़ अच्छा; महान् फनधारी विषधर समूह नहीं (७.२.१४)। अर्थात् दुर्दम शत्रुओंको जीतनेवाला अकेला वीर पुरुष सहस्रावधि सैन्यसमूहसे कहीं अच्छा।

अपने नखरूपी वज्रसे हाथियोंके विदीर्ण किये हुए उत्तुंग कुंभस्थलोंसे गलित होनेवाले रक्तप्रवाहसे कपिलवर्ण हुए केसर कलाप जिनके स्कंध प्रदेशपर लहराते हैं, ऐसे सिंह दर्शनीय कहलाते हैं, जबतक वे

शरभको नही देख लेते (७ ४ १-३); अर्थात् श्रेष्ठ नरसिंह भी नरशार्दूलोंसे निश्चित रूपसे भय खाते हैं, परास्त होते हैं।

अपनी पत्नीके वासगृहमें बैठकर बहुत लोग भटजनोचित समुल्लाप अर्थात् अपनी बहादुरीका विशद बखान करते रहते हैं, पर मित्रका कार्य सम्पन्न करनेवाले (सच्चे वीर) पुरुष बहुत विरले होते हैं (७ ४ ४-५)। हिंदी : अपने घर कुत्ता भी शेर होता है।

दूसरेके कार्यभारकी धुराको धारण करनेसे उसके गुरुतर घर्षणसे जिनके कंधोपर चिह्न बन गये हैं, ऐसे लोग जगत्में दो ही तीन होते हैं या कोई एक ही होता है (७.४. ६-७)।

अपने धवल (श्रेष्ठ) वृषभ (प्रतीक-श्रेष्ठपुरुष) का अपमान करके गरें (अधम) बैल (प्रतीकार्थ अधम पुरुष) पर अनुराग करनेवाले स्वामीका परिचारक वर्ग भी उसकी भार (कार्य) निर्वाह करनेकी क्षमताको न जानते हुए उस श्रेष्ठवृषभको हृदयसे सर्वथा भुलाकर गरें बैलके ही प्रतिपालनमें लग जाता है। परन्तु चिक-चिक-चिकने कीचड (प्रतीकार्थ महान् सकट) में चक्का फँस जानेसे गाडीके रुक जानेपर जब अधम बैल कंधेको गिराकर मुक्त हो जाता है (भाग जाता) है, तब वही श्रेष्ठ वृषभ गाड़ीको क्षणभरमें इस प्रकार निकाल देता है कि कुस्वामी (पृथ्वीपति, प्रतीकार्थ कुराजा) का हृदय प्रसन्नता (या पश्चात्तापकी अग्नि) से फूट पडता है (७ ६ गाथा १-३)।

अत्यंत अधम बैलोके प्रतिपालनमें लगे हुए स्वामीके द्वारा अपने अपमानको भी जो नही गिनता, और आपत्तिमें धुराको धारण करता है, उस श्रेष्ठ वृषभको बार-बार नमस्कार (प्रतीकार्थ वही, ७ ६ गाथा ४)। गरें बैलके साथ जोते जानेपर श्रेष्ठ वृषभ अपने पार्श्वमें देखता है कि गुरुभार खीचनेमें यह गर्रा बैल मेरा अतिरिक्त भार मात्र होगा (प्रतीकार्थ वही, ७.६ गाथा ५)। गरें बैलवाला एक चक्का रुक जानेपर श्रेष्ठ वृषभ अपने हृदयमें इस प्रकार झूरता है, हाय ! मुझे ही काटकर दोनो दिशाओ (पार्श्वों) में क्यो नही जोत दिया गया, अर्थात् मैं अकेला ही भार भली भाँति खीच लेता (प्रतीकार्थ वही, ७ ६ गाथा ६)

जिसके धुरा धारण करके खुरोसे आहत मार्गमें प्रवेश करनेसे समुद्र भी शका (भय) करता है (कि उसमें जानेसे मुझे भी पादाक्रांत होना होगा), वैसे श्रेष्ठ वृषभके साथ स्पर्द्धा करने या जुतनेसे गर्रा बैल निश्चित मरेगा (प्रतीकार्थ वही, ७ ६, गाथा ७)।

शशधरने मृगशिशुके स्थानमें यदि सिंहशावकको अपने अकमें धारण किया होता, तो उस सिंहशावकके जीते जी राहुके लिए चद्रमाका मर्दन करना दुष्कर होता, अर्थात् कायरोकी अपेक्षा वीर पुरुषोको आश्रय देना निश्चित अच्छा होता है (७-६ दोहा)।

क्षत्रियका एक यही परम धर्म है कि युद्धमें कभी क्षात्रधर्म भंग न हो, विजय और पराजय तो दैवाधीन होती है, पर पीठ दिखानेसे तो लोगोमें लज्जा व निंदाका पात्र बनना पडता है (७ १२ १३-१४)।

ऐसा कोई घर नही जिसमें पाप न हो (सुदर एव युवा पत्नियोके प्रति शंकाग्रस्त ईर्ष्यालु तथा व्याधिग्रस्त सेठकी उक्ति ३ ११ ६)। हिंदी: कोई दूधका धोया नही।

पुत्र ही वशकी सतानोको धारण करनेवाला आशावृक्ष होता है। वही कुलके गुरुभारको अपने कधोपर उठाता है और पुत्र ही कुलका नाश करनेवाली आपदारूपी वल्लरीको विध्वंस करनेवाला श्रेष्ठ हस्ति होता है (८ ७.१५–१६)।

सत्पुत्र लक्षण—

जो कुलको उज्ज्वल करे, गुणियोकी गणनामें प्रथम हो, और आचारवान हो वही (सच्चा) पुत्र है (८.८ ४)।

कुपुत्र लक्षण—

जिसके पैदा होनेसे शत्रु क्रदन न करने लगें, सज्जन सदा सुखसे आनंद न करें (८.८.५) और जिसके दान देनेसे अथवा युद्ध जय करनेसे, सुकवित्वसे अथवा जिन (देव) कीर्तनसे (८ ८ ६), जिसका यशोहस इस ससारके पिंजडेमें न समाकर सारे ब्रह्माडका अतिक्रमण न करे (८.८ ७), उस सततिमात्रकी वृद्धि

करनेवाले और निजमाताके यौवनको लूटनेवाले पुत्रसे क्या (लाभ) ? (८ ८ ८)

दुर्व्यसनोंसे भोगा हुआ पुत्र कुलरूपी अंकुरको समूल उखाडनेवाला और धनके लिए निजके माँ-बाप को मार डालनेवाला होता है (८ ८ ४—९)।

माँके लिए पुत्रके दीक्षा लेने विषयक वचन पर्वत शिखरपर वज्रपतनके समान कठोर होते है (८ ७ १३)।

श्वसुरके लिए जामाताका गृहत्याग विषयक समाचार हृदयको करौतसे चीर देनेके समान अथवा विषभक्षण-द्वारा मूर्च्छित कर देनेके समान दु खद होता है (८.१० १ २), और संबधीजन—

वज्रपातसे विध्वस्त पर्वतराजके समान (८ १०-३) अथवा गरुडसे झपेटे हुए सर्पसमूहके समान (८ १० ४) अथवा सिंहके द्वारा विदीर्ण-कुभस्थल-हस्तियूथके समान (८ १०-४) एव तीक्ष्ण परशुसे काटी हुई शाखाओंवाले (ठूठ) वृक्षके समान अधोमुख होकर बैठ रहते है (८ १०-५)।

पुत्र वियोगके कुठारसे माँका हृदय इस प्रकार विदीर्ण कर दिया जाता है, जिस प्रकार अग्निपुजमें डाला हुआ लवण टूक-टूक हो जाता है (९ १५.१४ १५)।

उच्चकुलीन कन्या—

निर्मलगुण और उच्चगोत्रवाली कन्याओंका एक ही पति होता है, एक ही माँ, एक ही पिता, एक ही देव (वीतराग) जिन, एक श्रेष्ठ (वीतराग) साधु ही गुरु, और एक ही (सखा) जिससे धर्मका लाभ हो (८ १०.१३ १४)।

तपकी निरर्थकता—

यदि मनमें राग-द्वेष नहीं है तो फिर वनमें तप लेकर ही क्या करना है; अर्थात् उसकी कोई आवश्यकता नही (३ ९-३)।

यदि मन कषायों (राग-द्वेषादि) से रगा है तो फिर तपश्चरणसे ही क्या सिद्ध होनेवाला है, अर्थात् ऐसी स्थितिमें तपश्चरण निरर्थक है (३ ९ ४)।

अद्भुत घटना—

कार्तिक आये विना अबरका निरभ्र होना (४ ८ ९)।
विना वर्षाके धूलि शात होना (४ ८ १०)।
विना वसतके वनस्पतिका फूल उठना (४ ८-११)।
हिंदी—(बिन बसंत बहार), अकस्मात् अकारण शुभ कार्योंका संपन्न होना।

मनोहर देशोंको छोड़कर भी नदियाँ (खारे) जलपूर्ण सागरका अनुसरण करती हैं। इससे तो यही सिद्ध होता है कि जलमयी (नदियों) एवं जड़मति स्त्रियोंमें विवेक नहीं होता, उनका आदर सगुण (गुण सम्पन्न) के प्रति नहीं, सलोने (सलवण अर्थात् सागर, पक्षमें—सुंदर पुरुष) के प्रति होता है (१ ६ [illegible]-२५)।

बुद्धिमान् लोग समान (कुल, वयस् आदि) विवाहकी प्रशंसा करते हैं (२ ११-२)।

[illegible] कोई रत्न नहीं परखता और पीतलके लिए कोई स्वर्ण नहीं बेचता (२ १८-५)।

[illegible] धन ला-लाकर घर भरना (३ १८ [illegible])

[illegible] : यदि मरनेपर एक पग भी आगे रखा हो तो मैं अपना (सार्थक) नाम छोड़ दूँ (८ [illegible])।

दुष्टके साथमें समान बालकका बढ़ना (८ ९ [illegible])।

[illegible] सारे लोक सामान्यको घटना है, पर सुंदर कन्याओंकी [illegible] प्रशंसनीय होता है (८ १८ [illegible])।

[illegible] (४ १८ २०)।

[illegible] (९ ८ ४)।

[illegible] (९ ४ १२)।

शत्रुको देखते ही बिना प्रतीक्षा किये तुरत पहले स्वयं भिड़ जाना चाहिए, अर्थात् शत्रुको देखते ही, उसे अवसर दिये बिना, जो शत्रुपर प्रथम आक्रमण करता है, उसकी विजय निश्चित है (६.५ ८)।

कहावतोंकी कहानियाँ—

वर्तमानमें उपलब्ध सुखोंको त्याग कर जो भविष्यत् सुखोंकी अभिलाषा करता है वह दोनोंसे हाथ धो बैठता है जैसे—(१) मूर्ख किसान (९ ४); (२) विद्याधर (९ ६) एवं (४) सर्प (९ १०)।

विषयलोलुप जीव सर्वनाशको प्राप्त होता है जैसे (१) मांस लोभी कौवा (९ ५), (२) कामातुर वानर (९.७); (३) कमलगंधलोभी भ्रमर (९ ९), (४) मांस लोभी शृगाल (९ ११), हिंदी: मौतका मारा शृगाल गाँवकी ओर दौडता है, (५) मधु लोभी ऊँट (१० ७) एव (६) विषय लोलुप खग।

अति लोभी शृगाल मृत्युको प्राप्त हुआ (१० १२)। जो सोवै सो खोवै (१०.११)।

लकड़हारेको स्वप्नमें राज्यप्राप्ति (१० १३)।

मुँहका मांसखण्ड छोडकर मच्छको पकडनेका असफल प्रयत्न करनेवाला शृगाल मांस (जिसे बाज उठा ले गया) और मच्छ (जो पानीमें कूद गया) दोनोंसे गया (१० १६); हिंदी . आधी छोड़ सारीको धावे, आधी रहे न सारी पावे।

धूर्त स्त्रीका कपटभरा प्रेम उसे भोगकर छोड़ दिया जाता है (८ १३ १४ १५)।

पतिको त्याग, जारको भी मरवा डालनेवाली असती चोरसे भी गयी और धन तथा वस्त्रोंसे भी हाथ धो बैठी (१० ८-१०)।

वेश्याएँ धन, वैभव संपन्न पुरुषको चिरकाल तक आदरपूर्वक आलिंगनादिके द्वारा मधुके छत्तेके समान पूर्णतया चूस कर छोड देती है, और नये क्षुद्र पुरुषोंको चूमने (चूसने)में लग जाती है (९ १२ १८-१९)।

'जंबूसामिचरिउ'मे प्रयुक्त सुभाषितो एवं लोकोक्तियोका विषय क्रमसे अध्ययन करनेपर ज्ञात होता है कि वीर कविने जिस प्रकार अपनी सपूर्ण रचनामें और उसकी अंतर्कथाओंमें समाज जीवनके विविध पक्षोका सर्वांगीण उद्घाटन किया है, उसी प्रकार सुभाषितोंमे भी उन्होंने उसका कोई पक्ष छोडा नहीं। कविसमयके अनुसार सज्जन और दुर्जनोकी प्रकृतिका प्रथम उल्लेख, गुण-दोषोंकी चर्चा; कवि और काव्य-विषयक स्थापनाएँ, ओजपूर्ण उक्तियाँ, जिनके आलंबन सुर, नर, पशु सभी हैं; पारिवारिक जीवन, सुखद-दुःखद दोनों प्रकारका, माता-पिता, सबंधियोका वात्सल्य, कुलीन कन्या व कुलपुत्रोंके लक्षण; आध्यात्मिक-धार्मिक विश्वासोंसे सबद्ध उक्तियाँ, सामान्य लोक प्रचलित उक्तियाँ और कहावतोंकी कहानियाँ, यह सब कुछ कविने अपने काव्यमें प्रयुक्त सुभाषितोंके आयाममें पिरोया है। इन सबके कारण 'जंबूसामिचरिउ' के महाकाव्यत्वमें और भी अधिक निखार आ गया है।

८. जंबूसामिचरिउका भाषा एवं व्याकरणात्मक विश्लेषण

गत-पचास वर्षोंमें अपभ्रंश भाषा और साहित्यके क्षेत्रमें पर्याप्त कार्य हुआ है। इस बीच दलाल और गुणे-द्वारा 'भविसयत्तकहा'; लालदास भगवानदास गांधी-द्वारा अपभ्रंश काव्यत्रयी, डॉ० उपाध्ये-द्वारा परमात्मप्रकाश और योगसार, प० ल० वैद्य-द्वारा पुष्पदंत कृत अपभ्रंश महापुराणके तीन भाग और 'जसहर चरिउ', डॉ० ही० ला० जैन-द्वारा सावयधम्म दोहा, पाहुडदोहा, णायकुमारचरिउ, करकंडचरिउ, मयणपराजयचरिउ, सुगंधदशमीकथा और सुदंसणचरिउ[1] तथा सिरिचंद कृत अपभ्रंश कहकोसु, डॉ० ह० व० भायाणी-द्वारा स्वयंभू कृत पउमचरिउ (तीन भाग), स्वर्गीय राहुल-द्वारा अपभ्रंश दोहाकोसु तथा अब्दुर्रहमान कृत सदेशरासक आदि अनेक अपभ्रंश रचनाएँ प्राकृत-अपभ्रंशके उपर्युक्त मूर्द्धन्य विद्वानों-द्वारा

१-२. शीघ्र प्रकाश्यमान।

सुसंपादित होकर प्रकाशित हुई है। इनके संपादकों-द्वारा इन ग्रंथोंकी भूमिकामें प्रत्येक ग्रंथकी भाषापर विशेष और अपभ्रंश सामान्यके स्वरूपपर बहुत विस्तार और सूक्ष्मतासे प्रकाश डाला गया है। इन रचनाओंके अतिरिक्त स्व० पिशल महोदयके व्याकरण, डॉ० तगारे कृत अपभ्रंशका ऐतिहासिक व्याकरण, डॉ० देवेन्द्र कृत अपभ्रंशप्रवेश, डॉ० नेमिचंद शास्त्री कृत अभिनव-प्राकृत व्याकरण, मधुसूदन चिमनलाल मोदी-द्वारा संपादित अपभ्रंशपाठावलीकी भूमिका, डॉ० नामवरसिंह कृत 'हिन्दीके विकासमें अपभ्रंशका योगदान'; डॉ० देवेन्द्र कुमार कृत 'अपभ्रंश भाषा एवं साहित्य', डॉ० हरिवंश कोछड़ कृत 'अपभ्रंश साहित्य' डॉ० तोमर कृत 'प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य' प्रभृति ग्रंथोंमें भी अपभ्रंश भाषाके स्वरूपपर बहुत ही गहराई और सूक्ष्मतासे विवेचन किया गया है। सामान्यतः 'जंबूसामिचरिउ'की भाषा वही नागर अपभ्रंश है, जिसमें स्वयंभू और पुष्पदंत जैसे श्रेष्ठ अपभ्रंश महाकवियोंकी काव्य कृतियाँ हैं। इसकी भाषामें इन कवियोंकी रचनाओंसे जो विशिष्ट भेद है, वह प्रारंभिक और मध्यवर्ती संयुक्त न, ण के प्रयोग विषयक है। इस विषयमें 'पाठ संपादन पद्धतिके अंतर्गत विवेचन किया गया है। भाषा और व्याकरणका स्वरूप संक्षेपमें निम्नप्रकार है—

§ १ प्रयुक्त स्वर : अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऍ, ओ, ऑ, – (अनुस्वार) एवं ँ (अनुनासिक)।

§ २ व्यंजन : क् ख् ग् घ्, च् छ् ज् झ्, ट् ठ् ड् ढ् ण्, त् थ् द् ध् न्, प् फ् ब् भ् म्, य् र् ल् व् स् ह्,

स्वर विकार

§ ३ अ>इ अकहिज्जमाण (१ २) उप्पिड (५ १०)।

अ>उ मुणइ (५.१३) अरुहयास (४.३) अरुहणाह (३ १३)

अ>ए एत्थंतरे (१.५) एत्यु (२ ११) वेल्लि (५ १३)

§ ४ आ>अ सीय ३ १२ मालिइलय ५ २

आ>उ उल्लिय ९ १५

§ ५ इ>अ सिरस ८ ९

इ>उ उच्छु ५ ९

इ>ए उत्तेडिय ५ ७, जि>जे, विंध>वेंध

§ ६ ई>आ आरिस ९ १६

ई>ए एरिस ८ १०

§ ७ उ>अ कत्थ ७ १, कुरु>करि ८ १, गरुयारउ १ ५, मउड, कुसम ८ ९

उ>इ कुरु>करि ८ १०, किंपुरिस ९ १२

उ>ई सुणी १ १५, दुहिता>धीय ११ ३

उ>ओ सुकुमारिका>सोमालिया ८ १०, पोग्गल १० ५, मोग्गर ६ १०, कोत५ १४

§ ८ ऊ>उ अउव्व ९ २, फुक्कार ५ ८

ऊ>ए नेउर ८ ९

ऊ>ओ बहुमोल्ल १० २१, थोर ८ ११, तंबोल ८ ९

§ ९ ऋ>अ कय ९ ४, कयत ३ ७

ऋ>इ किण्ड ४ १३, अलकिअ ३ ८, अतित्त १ १०, अमिय ८ २; किउ ४ ९ आदि

ऋ>उ पुहइ १० ११, अपाउस ४ ८

ऋ>ए स्वगृह>सगेह ४ ५

ऋ>रि रिद्धि ३ ६

ऋ>अरि उद्भृत>उब्भरिय ३ ७

§ १० ए>इ अणिमिस ८-९; अमरिंद ४.१
ए>ई लोह ५.१४
ए>ए जंति; जगें १.१; कज्जें १ २; जणें १.३ आदि
§ ११. ओ>उ अवरुघरु ५ २; अण्णुण्ण २ ५, उट्ठचम्म ९ १
ओ>ऊ ऊमारिय ७.७
ओ>आ तहाँ १.३; वीरहाँ १.२; विउसहाँ १ २
ओ>ए करोमि>करेमि १.३
§ १२ ऐ>ए अवरेक्क ९ १६
ऐ>इ अवरिक्क ९ ६
ऐ>अइ कइलास ९ ६; कइरव ८ १५; दइव ५.१३
§ १३. औ>ओ जोव्वणु ४ १३; अवमोयरु १०.२१; ओसही ३.१४
औ>अउ पउरजण १ १५
§ १४. ह्रस्वस्वरका दीर्घीकरण : जहाँ किसी मध्यवर्ती संयुक्त व्यंजनमें-से एकका अथवा प्रथम स्वरके अनुस्वारका अथवा अंत्य व्यंजनका लोप कर दिया जाता है, वहाँ पूर्वका ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाता है—
अड्ढाइय ११.११, वीसमण ४ ९, वीया ४ ९, सीस (शिष्य) ७ १३, वीसोवहि ११ १२; सिहो २ ५८
§ १५. दीर्घस्वरका ह्रस्वीकरण : संयुक्त व्यंजनके पूर्वका दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है—
अप्फालिय १ १५; अच्छेरज ९.१०; अज्ज (आर्य) १ ५, चरणग्ग १.१; तित्थु १.७; परिक्खा १ २, रज्ज ३ १४ आदि। अन्यत्र भी जैसे विरयर १.५; अडइ १० १३; विण ७ ३, कुमर ५ ७; गहिय १ १ मं०, गहिर ४ १९, थविय ११ ६ आदि। छंदार्थ—महकइ १.३, संतुव १ ४
§ १६. ह्रस्वस्वरका अनुस्वारत्व : अंसु ४ ११, उंट १० ७, उंवर ५.८, कंचाइणी ७ ६; करफंसण ५ ४, दंसण ८ २
§ १७. स्वरलोप :
(क) आदि स्वरलोपः हउं ३ ७; हेट्ठामुहु २ १८, हेट्ठिल ११ १०
(ख) मध्य स्वरलोप : उविट्ठ १०.२, देवदत्त १ ५, पत्ति ४ २१, पोफल १ ८
(ग) अंत्य स्वरलोप . अव्मासें १ २, इयरें १.४, चलणग्गें १ १, सहावें १.२ आदि।
§ १८ आदि स्वरागम : इत्थिरज्ज ९ १९
§ १९. स्वरभक्ति : आयरिय २.८, दीहर १ ३, सलहिज्जइ ४ ९, सिविण १ ३; दरिसिय ३ १२, किलेस १० १२
§ २०. स्वरव्यत्यय : आश्चर्य>अच्छरिय>अच्छेर ९ १०, ब्रह्मचर्य>वंभचरिय>वंभचेर ३ ९;
§ २१. स्वरागम : जव किसी शब्दमें पहले आया हुआ कोई स्वर उसीके पीछे आनेवाले स्वरसे प्रभावित होता है, तो उसे स्वरराग कहा जाता है। जैसे —इक्षु—उच्छु>उच्छु ५ ९; कृत्वा—करवि, करेवि, करिवि इसी प्रकार अप्पिवि, आयण्णिवि ९ ७; पइसिवि ९ १०; पेक्खिवि, मेल्लवि, मेल्लेवि, मिल्लिवि ६ १३ ८ १०, आदि।

व्यंजन विकार

§ २२. (क) आदि असंयुक्त व्यंजन साधारणत यथास्थित सुरक्षित रहते है पर कुछ विशिष्ट शब्दोंमें उनमें परिवर्तन या व्यत्यय हो जाता है, जैसे .—धृति>दिही १ ६, दुहिता> धीय ११ ३, दग्ध-डज्झ २ १४, डहण ७ ९, डाढ ३ ८, निलाड ४ १३।

(ख) आदि 'य' को 'ज' : जमल १० १६; जयुल १.१ मं०; जत्तुन्छन ३.१३; जहा १०.१, जप्पंति ५ ६।

(ग) आदिमें संयुक्त व्यंजन रहनेपर एकका लोप हो जाता है : पडिवयण, पडिवया· वोयड; थंभ, खंभ, छुह, कणिर; फार ४ ५ इत्यादि।

§ २३. मध्यवर्ती असंयुक्त व्यंजनोंमें क् ग् च् ज् त् द् प् व् य् व् का प्राय. लोप होता है, उनके स्थानमें कही तो केवल उद्‌वृत्त स्वर ही शेष रहता है, और कही 'य' श्रुति या 'व' श्रुति होती है।

§ २४. 'य' और 'व' श्रुतिका नियम : हेमचन्द्रके अनुसार उद्‌वृत्त 'अ' और 'आ' स्वरोंके बीच 'य' श्रुति होती है, कभी नही भी होती है। परंतु 'जंबूसामिचरिउ' में ऐसे उदाहरण नहीं मिलते जिनमें 'अ', 'आ' स्वरोंके बीच इन्ही शुद्ध स्वरोका प्रयोग हो अर्थात् अ-आ स्वरोंके बीच यहाँ सर्वत्र य श्रुति होती ही है। अन्य स्वरोके बीचमें अविरोधतया य श्रुतिका सद्भाव दिखाई देता है, जैसे :—इ-ई और अ-आके बीच, उ और, अ-आ के बीच, ए और अ-आ के बीच तथा ओ एवं अ-आ के बीच इन सबके उदाहरण नीचे दिये गये हैं।

'व' श्रुतिकी स्थिति बहुत अनिश्चित है। सामान्य रूपसे उ और ओ के बीच 'व' श्रुति होती है, ऐसा माना जाता है। परंतु प्रस्तुत रचनामें स्थिति इससे भिन्न है। विशेष बात यह है कि अनेक स्थलोंपर 'य' और 'व' श्रुतिके प्रयोगमें कोई भेद दिखलायी नही देता। बल्कि यह वास्तवमें लेखकके स्वच्छंद अर्थात् स्वेच्छापर निर्भर करता है कि अ-आ स्वरोके बीचकी स्थितिको छोड़कर इनमें-से किसी भी श्रुतिका प्रयोग करे अथवा केवल उद्‌वृत्त स्वर ही रहने दे। मूल लेखकों-द्वारा श्रुतियोंके प्रयोगमें यह स्वच्छंदता देखकर ही प्रतिकारोंने कुछ स्वछंदताका वर्तन किया है, यह प्रतियोंके पाठभेदोपर-से स्पष्ट प्रतीत होता है। कहीं एक प्रतिमें 'य' श्रुति है तो दूसरीमें 'व' श्रुति और तीसरीमें केवल उद्‌वृत्त स्वर। पाठभेदोपर ध्यान देनेसे ऐसे अनेक उदाहरण दृष्टिगत होगे। अब कुछ चुने हुए उदाहरण प्रस्तुत है :—

'य' श्रुतिके उदाहरण

(क) अ-आ के बीच : अरुहयास ४ १; आय १०.२५; कयकिणिय ६.३; कयावि ३ ६; कायरी ९ १७; नायणु १४.४, पायार ४.१४, भवयत्त ३ ३, मायरी ९ १७; लयउ ९.१३; लायण्णु ४.१४, वयणुल्लउ ५.२, सयल ७ १३।

(ख) इ-ई एवं अ-आ के बीच . किणिय ६ ३; तावीयउ ९.९; दरियाणवि ७.१३, पाहरिय; वोयउ २ ५; मियंक ७ १३· लइयं ८.१५· वइरियाण ६ १२· वियार ९ १३; सोव्वल १ १३; सम्माणिय ७ १३ हुणिय १ १ म०।

(ग) उ-ऊ एवं अ-आ के बीच . गरुयारउ १५, जुयलुल्लउ ८ १६· भुयण ६.२, भुयदंड ६ २, जूय ४ ३, जूयार ४ २, हूय ५ १३ दूयडिया ८ १५· धूयविलंबण ११ ६, पूया १-१८, रुयक्मु ९ १८ सूयाहर ४-८।

(घ) ए एवं अ-आ के बीच : केयार ५ ९; तेयमाल १० १ तेयवारि २ ३· पेयलउ ५ ४४, भेय ५ ३, सेय ३ ८; हेमेयउ ८ १५।

(च) ओ एवं अ-आ के बीच : कोयउ १०.१२, खोयणु ९ ८ भोय १.१०; भोयण ८ १३ भेया· चर ५ २; मोयण ६ ३; लोयाण ९-८, लोगयार ८ ७; लोयग्ग ११ १२, लोय ३ १; लोयाहाण ५ ४. सोयाहर ३ ७।

'व' श्रुतिके उदाहरण

(अ) अ-आ के मध्य · भवयत्त २ ५

(ब) आ-इ के मध्य : परिणाविव ३ ४

(स) उ-ऊ एवं अ-आ के मध्य : उवय ११.९, उवयागउ ९ १, उवहि ४ १६, छुवहि ५ १३, जूवार ८.२, भुवडालिग्ग ५ ९· लहुवारउ ३.५, विलवउ ५ १३; मसिगोरव ८ १६

(द) ओ एवं अ-आ के बीच : जोवइ ९.१४

इन उदाहरणोपर-से 'य' और 'व' श्रुतियोका इस रचनामें प्रयोग बाहुल्य तो स्पष्ट होता ही है, उनकी अनियमबद्धता भी प्रकट होती है। और साथ ही 'व' श्रुतिका एक भी ऐसा दृष्टांत उपलब्ध नही होता जहाँ 'उ' और 'ओ' स्वरोंके बीच 'व' श्रुतिका प्रयोग हुवा हो।

§ २५ 'य' और 'व' से सबद्ध एक और नियमका यही उल्लेख करना उचित है। वह है सप्रसारण-का नियम। इसका अर्थ है 'य' के स्थानपर 'इ', एवं 'व' के स्थानपर 'उ' होना। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

(क) कात्यायनी—कंचाइणी ७ ६, उप्पाइवि ४.३; विउस् १.२

(ख) 'इ' के स्थानपर 'य' और 'उ' के स्थानपर 'व' का प्रयोग संप्रसारणके ही समीपवर्ती स्थिति है। जैसे–देवालय—देउल ४ १०, देवल १० ८, पइज्जु ४.२; पयज्जु ५ ११।

§ २६ व्यंजन परिवर्तनोके व्यवस्थित उदाहरण प्रस्तुत करनेके पूर्व एक और विशेष नियम उल्लेख-नीय है, जिसे वर्णप्रक्षेप कहा जाता है। जिसका अर्थ है किसी शब्दमें किसी वर्णके स्थानपर किसी अन्य अविद्यमान वर्णका आना जैसे—आम्र—अंब ४.२; ताम्राचर—तंवाहर ४ १८, तंबिर ५.१२, ललाट—निलाड ४-१३, चिकुर-चिहुर ४ १३।

व्यंजन परिवर्तन और विकारोके उदाहरण

(क) क् और ग् आउंचिय ४ १३, आउल ५.६, आय (आगता) ८ ४, आयम ३.९ आदि

(ख) च् और ज् आयरिय २ ८, आयार ८ ८; परिच्चय—परिचय ८ १, भुयंग ३ ८

(ग) त् और द् आगया ९ १७, आहय ८.७, आसाइय १०.१, आइट्ठ ५ ६, आएस १ १६, आसाइय १० १; उवयाण ५ ३

त्>ड् उप्पिड ५ १०, पडिय ५ १०, पडियार ७.८

त्>ह् भरह (भरत) १.५, भारह १ ६

द्>ड डुज्झ, डहण, डाढ

(घ) प>उ आउण्ण ४ ६, आऊरिय १०.२४

प>व आवण्ण ५ १, आवाणअ, ४.२, उवभुजइ २.१३, थवइ (स्थपति) ३.४; मवइ (मापयति) ४ १९

प>फ फुल्ल १० १९, फोफल १ ८

(च) ट>ड आरडिअ ७ ८; उग्घाडइ ९ ८, उप्पाडण १० २०, कण्णाड ६ ६

(छ) ड्,ट्>ल कामकोल १० २३, चलण ६.१४

(ज) न्>न् झाणानल ११ म०, महानल ३ ८

न लोप स्थान>ठाय ५ ४

म्>व् कद्दविय ४ २२, दवण ४.२०, रवण्ण ३.१३, सवण २.१९

(झ) व्>म् एवमेव>एमइँ २ १८

व लोप कइ, कइत्त आदि

(ट) म्>उ नम्र>नउर ४ ६

(ठ) र्>ढ् आढविअ (आरब्ध) ३ ९

(ड) श्>ह दहलक्खण ११-१३; दहविह ११ २

(ढ) श्>स (सर्वत्र) दसमए ८ ५; सरीर ८ ७

§ २७ अघोष महाप्राण वर्णो ख् घ् थ् ध् फ् भ् के स्थानपर शुद्ध महाप्राण ह् का आदेश :—

(क) ख्>ह् : अहिमुह ७ १०, आहडल, २ ४, सिहंडि ५ ८; सिहि (शिखिन्) ९ ९

(ख) घ्>ह् विहडंत १०.१८

(ग) थ्>ह् अहव १० २३; आरिसकहा ८ १, जहा, तहा आदि

(घ) ध>ह् अहरत्त ११.६; अहरुल्ल २.१४, अहिउ ९.१०

(च) फ्>ह् अहल ८.१४

(छ) भ्>ह् अविहत्त २ ५, अहिणंदिउ ४.४, अहिमुह, अहिराम १०.१, अहिसारिआ ८-५

§ २८. मध्यवर्ती संयुक्त व्यजनोके विषयमें असवर्ण संयोगके स्थानपर सवर्णसंयोगके द्वारा समीकरण-की विधि सर्वप्रधान है। इस समीकरणमें सदैव प्रबलतर ध्वनि दुर्बल ध्वनिको अपनेमें समीकृत कर लेती है, चाहे वह संयुक्त व्यंजनमें पूर्व हो या पीछे। जब पीछे आनेवाला व्यंजन अपनेसे पूर्ववर्ती व्यंजनको समीकृत कर लेता तो उसे पुरोगामी समीकरण कहते हैं :—

(क) पुरोगामी समीकरण—आरुट्ठ ७.६; उक्कठिय ७.१२, उक्कत्तिय ५.८; उक्खय ५.११ उग्गंठिय ९ १८, कम्म, जम्म, धम्म आदि।

(ख) पश्चगामी समीकरण जब पुरोगामी व्यंजन अपने पश्चवर्ती व्यजनको अपने रूपमें समीकृत करता है, जैसे, अज्ज, अग्गि, आमुक्क, कत्थ, जोग्ग आदि।

(ग) जब ऊष्मोका समीकरण होता है तो वे दूसरे व्यंजनको सप्राण कर देते है . जैसे—अत्थइरि ६ १०, अत्थाण ५ १, कुच्छिय २ २, खंध ६ ११, थम ५ १२, पासत्थ २-५ आदि।

(घ) स्वरभक्तिसे विसयोजन : आयरिय २.८, आरिसकहा (आर्षकथा) ८ २ उब्भरिय ३.७; किलेस १०.२२, दरिसिय ३.१२

(च) संयुक्त व्यजनका सरलीकरण करके अनुनासिकीकरण : कंचाइणि ७.६, पडिजपइ ८.१६; जिणदंसण २.१८, विंभिय ३.१ आदि।

§ २९. कुछ विशिष्ट सयुक्तव्यंजनोके परिवर्तनके उदाहरण

ख्य्>ह् लोयाहाणउ ५ ४

क्व्>क् कणिर ४.१५

क्ष्>क्ख उक्खित्त ९.१२, दहलक्खण ८ ३; क्खालिय १ १३

क्ष्>ख् खयकर ३.७, खज्जोयय ७.२, खतञ्चु ७.१२, खत्ति ११ ८; खोणिमडल ४.२१

क्ष्>ह् छुह १ ८, छत्त ५ ९

क्ष्>झ् झर ६ ९

ध्य्>ज्झ् डज्झमाण ४ १४

ज्ञ्>न् नाणावरण १० २४

>ण् आणत्त ४.१६

>ण्ण् विण्णाण ८ ४, अण्णाणुवएस ८ ३

त्म्>प्प् अप्पणु १० ५, अप्पउ ९.११

त्य्>च् कचाइणि ७.६, कचायणि १० २५

>च्च् सच्चावाणी ६.१

त्स्>च्छ् उच्छव ४.८, उच्छाह ७ १२, उच्छेह ३.१

द्य्>ज्ज् उज्जाण-३ १२, उज्जोइय १ १५, विज्जुमालि २ ३

ध्य,ध्व्>ज्झ् उज्झाउ १० ५, वुज्झइ ८ ९, अज्झाण (अध्वान) २ ८

श्च्>च् श्चिकुर>चिकुर>चिहुर ४ १३

ष्ट्>ट्ठ् अहरोट्ठ ९ १८, आरुट्ठ ७ ६, दिट्ठ ६ १

ष्ट्>ढ् वेढिउ ६ १

ष्ट्>ढ् असिदाढ ६ १

>ट् उट

ष्ठ्>ट्ठ् अहिट्ठिउ ४ १३

ष्ण्>ट्ठ्, ण्ह् विट्ठु २ ६; उण्ह १० १५
स्क्>ख् खंध ६ ११
स्ख्>ख खलइ
स्त्>ख् खंभ ४.१३
>थ् थंभ ५.१२
>त्थ् कत्थूरिय ८ १४; विशेष : त्रस्त>ल्हसिय ४ १९
स्थ्>थ् थाम ४.११, थवइ ४ २; थाण ७·१०, थिउ ५.१४, थोत्त १ २९, थोर ८ ११
>ठ् ठविय ४ १४, ठाण ५.१०; ठाय (स्थान) ५ ४
स्फ्>फ् फाडिय ७ १; फलिहवण्णु १.१७, फार ४.५
स्म्>म्, स्, म्ह् विंभिय २ १३, विंभउ ३.६, सरिम ६.९; अम्हइं ५.१३
ह्>घ् संघरेवि ६ १
ह्व>ह विहलंघल ८.११; विहडप्फड ३ ८

कारक रूप

संज्ञाएँ : अकारांत पुल्लिंग व नपुं० लिंग :

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा :	अंतेउरु, आउसु, कुंजरो, चोरु, जणो, जिणो, तउ, तित्थंकर, तेयं, दिउ, देउ, देवदत्तु, नरु, निउणु, परम गुरु, वालो, मऊरो, मुहं, रज्जु राउ, रिसहो, वड्ढमाणु, वरहत्तु, वीरु, वेसरो, सुयणु, सेणिउ, सूरो	गामार, गोवाल, जणु, नायरा, वाला, °पहरणा, रिउणो, विरला, सवा (शवाः)
द्वितीया :	देवसहुँ, फलुरयणसिहुँ, (शेष प्रथमानुसार)	उज्जाणइँ, गयउलाइँ, जणाइँ, तलायइँ, तीरइँ, देसइँ, वणइँ (प्र० द्वि० दोनोंमें)
तृतीया :	कुमरें, जणेण, जिणेसरे, ताएँ, देवें, धम्में, नाहें, पाविणं, पियरें, भाविणं, राइणा, राएं, राएण, सुत्तेण, सेणिएण, हीरेण	

इकारांत-उकारात पु० व नपु० लिंग :

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा :	कइ, नरवइ, नराहिवइ, परिमिट्ठि	अयाणा, कईदा, गुणिणा
द्वितीया .	मेरु, रवि, रिसि, सामी	वइरिणो, अहारहिँ, उरुयहिँ, कुडुंबिएहिँ, जूयारहिँ, तेहिँ, दिक्खिएहिँ, धण्णहिँ, मारइयहिँ, पहियहिँ, भावहिँ भिल्लेहिँ, मुहेहिँ, सत्थहिँ
तृतीया :	मुणिणा, सट्ठिणा, हत्थिणा	सेवयहिँ । कहहिँ, पाइहिँ
पंचमी :	कुगइपहें, घराउ, ठायहो तत्थहो, तहिँ, नियडउ, नयरहो, मुहहो, वामहो	
चतुर्थी एव षष्ठी	अज्जेणप्प, कज्जे, कज्जहो, केवलिहि, जणेरहु, तेल्लियहो, दइयहो, देवत्तहो, देपहो, निवहो, पएसहो, रज्जहो, राउलउ, रायहो, वीरहो, सामिहि, हत्थिहे, नरस्स, पुरिसस्स, पुरुसोत्तमस्स, वीरस्स, समुद्दस्स	कामुयाण, खयराण, चंदसूराण, भव्वाण, मुणिंदाण, 'रायाण, तियसहु, मिहुणहँ, कठहँ (षष्ठयार्थे सप्तमी)

इका-उका : नरवइणो, पहुणो, विहिणा

	एकवचन	बहुवचन
सप्तमी	: अहरए, खग्गंके, गोट्ठंगणे, तरुवरे पच्चूसे, मग्गे, रयणि, रज्जे रमणीये, रवण्णइ, सलोणए, सिहरि सुयणे, सोत्ते, हत्थि (हस्ते), हियवइ घरम्मि, दारम्मि, नाणम्मि, फडक्कम्मि	घरहिँ, दवखहिँ, नयणेहिँ नारइयहिँ, पाडलियहिँ भूभंगहिँ, °भोयणहिँ लोयणहिँ, विमाणहिँ घरेसुं, वणेसुं
संबोधन	: केवलनाणधर, ताय, तित्थंकर, देउ, देव, परमेसर, पुत्त, पुरंदर, भवएव, राय	
निर्विभक्तिक	: सेणिउ (पष्ठयार्थे), पडिहारय (तृतीयार्थे)	

स्त्रीलिंग : आकारांत, ईकारांत

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	: अच्छर, कुमारी, खोणी,	अज्जियाउ, कवोला, कामिणिउ
द्वितीया	: तिय, पियारी, पुहवि, वसुमइ सतुव, सिवएवि	कुमारियाउ, गोरिउ, ताउ, देविउ, वाविउ, साहउ, सणाहउ, सुरमणिउ, बालियाहँ, राणियणु
तृतीया	: अहिलासें, उत्तालियाए, ओसहीए कुट्टणियइ, °जोईए, ताए, दितिए दिट्ठिए, पढाए, भत्तिए, भित्तिए मुद्धियए, °रिद्धिए, लच्छीए, वाणिए संकए, सुहाए	अतेउरिहिँ, अच्छिहिँ गोविहिँ, तरुणिहिँ, दिट्ठिहिँ नियवणोहिँ, पायारहिँ वाहहिँ, वेल्लिहिँ
पंचमी		
चतुर्थी एवं षष्ठी	: अवादेवयहिँ, कतहे, कोइलाए, घणियहे, पुट्ठिहे, महिलहे, मुद्धहे, वणमालहे, विहूइहे, सरिहे, सुद्धिहे	घरिणिहुँ, पउसियदइयहँ, रमणिहुँ, घणोच्चत्थणोणं, °लोयणीण, दूरपियाण
सप्तमी	: आउसि, कण्णए, सेणि, निसहि	करिणिहे, जडमइयहिँ, तियहिँ, पालंबहिँ, भुएहिँ, मंदुरहिँ, कीलासु
संबोधन	: कंत, मुद्धडिए, मुद्धि, मुद्ध, सुंदरि.	

सर्वनाम : पुल्लिंग-नपुंसकलिंग :

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	: हउँ, तुमं, तुहुँ, सो, जं, तं, इहु एहु, काइँ, किं	तृ० पु० जे
द्वितीया	: मइँ, तउ, तुमं, तं	जाइँ ताइँ
तृतीया	: मइँ, मइ, पइँ, तेण, आए, एण, जेण	अम्हारिसिहिं, इयरहिं
चतुर्थी एव षष्ठी	मज्झु, मम, महु, महु तणउ, मे, मोर तउ, तव, तुह, तुहार, तोर तस्स, तहो, तासु, आयहो, इमस्स, एयहो, कस्स, कहो, कहो, कासु, जस्स, जसु, जासु, तस्स, तहो, तासु	अम्हहँ, तुम्ह तुम्हहँ, तहु (तेषां) ताणं, जाण, जाणं
संबोधन	: तुम	

स्त्रीलिंग :

प्र० एह, क (का), जा (या)

द्वि० क (काम्)

तृ० तेहिं (ता भिः)

च० प० : तहे, तहे, ताहे, तिहे, कहे, काहि, जाहे तहुँ (तासाम्), एयाण

सर्वनाम, विशेषण और अव्यय :

[१] (अ) परिमाण वाचक विशेषण एत्तिउ, केत्तिउ, जेत्तउ, तेत्तउ एतडउ, तेत्तडउ, एवडा।
(ब) गुणवाचक विशेषण . एहउ, जेहउ, तेहउ, अम्हारिस, ऐरिस, केरिस, केरिसी (स्त्री०) जारिस, तुम्हारिस ।

[२] अव्यय : (क) स्थल वाचक : एत्थु, केत्थ, जित्थु, जेत्थ, तत्थ, तित्थु, तेत्थु, केत्थुहो, जेत्तह, तेत्थहो; इह, कहिँ, जहिँ, तहिं, कउ (कुतः) तउ (तत.); अण्णेत्तहे, एत्तहिँ, एत्तहे, जेत्तहे ।
(ख) समय वाचक जा, ता, जाम, ताम, जाव, ताव, एमहि, एवहिँ, जामहिँ, तामहिँ, तावहि, जइयहु, तइयहु, तइया ।
(ग) रीतिवाचक अह, किह, जह, जिहा, जिह, तह, तहा, तिह, जिम, जेम, तेम
(घ) अस्मद् और युष्मद्के षष्ठी रूपोमे 'आर' प्रत्यय युक्त अव्यय : अम्हारउ, तुम्हारउ, महारउ
(च) संज्ञा और सर्वनामोके षष्ठी रूपोके साथ 'केरउ' और 'तणउ' प्रत्यय लगाकर भी अव्यय बनते हैं · अम्हकेरउ, करवालकेरउ, महुतणउ ।
(छ) संबंधवाचक अव्यय : सहुँ (सार्द्धम्) ।

संख्यावाचक शब्द :

एक्क, एक्कु, दो, बे, बिण्णि, तिउ, तिण्णि, चयारि, पंच, छ, सत्त, अट्ठ, नव, दस, दह, एयारस, एयारह, बारह, तेरह, चउदह, चउदस, पण्णारह, सोलह, सत्तारह, अट्ठारह, वीस, बावीस, पंचवीस, तीस, तेतीस, चउसट्ठि, सय, सहस, लक्ख ।

संख्यावाचक विशेषण पढमु, पहिलउ, पहिलारउ, बीयउ, तइयउ, चउत्थु, चउत्थउ, पंचमु, छट्ठम, सत्तम, अट्ठम, नवम, दसम, एयारसम ।

तृतीया बहुवचन—तिहिँ ।

सप्तमी एकवचन—एक्कहिँ, तइयइ, चउथइ, पंचमे, छट्ठऍ, सत्तमे, अट्ठमि, नवमइ, दसमइ, एयारसमइ, एयारहमे, बारहमऍ ।

सप्तमी बहुवचन—तिहिँ, पंचहिँ । अन्य रूप- चउक्क, चउक्कउ (चतुष्क) ।

तद्धित प्रत्यय :

अल्ल : एक्कल्ल, नवल्ल (स्वा० प्र०) । आर : गरुयार (स्वा० प्र०) लहुवार । आल : सोहालिया (नामसे विशेषण) । आवण : भयावण, सुहावण, सुहाविणि (विशेषण) । इक्क : तिडिक्किय, पाइक्क (स्वा० प्र०) । इण : अज्जेणअ । इर : उव्वेविर, कंखिर, कणिर, कोक्किर, नमिर, विच्छुड्डिर, विवरेर (क्रियासे विशेषण) । इल्ल : जइल्ल, रसिल्ल, (नामसे विशे०) । उल्ल : खहरुल्ल, फलिहुल्ल, भुवणुल्लउ, रमणुल्लउ । एर : जणेर । डिय : बारहडिय (स्वा० प्र०) । त्तण : नरत्तण, वुड्डत्तण (भाववाचक संज्ञा) ल : अंधलउ, जमल, विज्जुल (स्वा० प्र०)

क्रिया रूप

अपभ्रंशमे वर्तमान, भूत और भविष्य, कुल ये तीन 'लकार' हैं। इनमे भी वास्तवमें कुल दो, वर्तमान और भविष्यके ही रूप उपलब्ध होते हैं। भूतकाल वाचक बहुत थोडे गिने-चुने शब्द उपलब्ध हैं। शेष भूतकालका सारा कार्य कृदंतोसे लिया जाता है और केवल वर्तमान तथा भविष्यके ही अधिक रूप अपभ्रंश काव्योंमे उपलब्ध होते हैं। आत्मनेपद और परस्मैपदका भेद भी अपभ्रंशमे नही है और वृत्तियोंमे प्रमुख रूपसे विध्यर्थ और कुछ थोड़े-से आज्ञार्थकरूप प्राप्त होते हैं। इच्छार्थक और आज्ञार्थकके रूप समान ही हैं। इनके अतिरिक्त कर्मणि-प्रयोगके अनेक रूप उपलब्ध होते हैं। इन तत्वोसे ही अपभ्रंशका क्रिया संबंधी संघटन-संविधान और प्रयोगोका प्रामाणिक विवरण उपलब्ध हो जाता है।

वर्तमान काल

	एकवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अणुसरमि, उक्कीरमि, जामि, भणमि, भुजमि, लेमि, होमि।	
द्वि० पु०	जाणसि, मुणहि, होसि।	
तृ० पु०	अणुणइ, अब्भिट्टइ, आउच्छइ, ईहइ, उप्पज्जइ, करइ, कुणइ, गच्छइ, जाइ, पढइ, सि (अस्ति), होइ	उप्पज्जंति, फंदहिँ, कीलहिँ, गुडंति जुप्पंति, दीसंति रणरणहिं, रमति

भूतकाल

आसि (आसीत्)

तृ० पु० : अच्छोडिउ, अब्भसियउ पइट्ठु आय—आगता (स्त्री०) गय—गता (स्त्री०)

भविष्यत् काल

प्र० पु० : जाएसमि, लेसमि

द्वि० पु० :

तृ० पु० : उप्पज्जेसइ, करेसइ, जाएसइ, पडिहहिं, भमेसइ, लेसइ, विज्झाएसइ, होसइ।

बहुवचन : होएसहिँ, होसति।

आज्ञार्थ

द्वि० पु० : करउ, करहु, करि, करु, कहु, जाणाहि, जाहि, भणु।

विध्यर्थ

उ० पु०

द्वि०पु० : करिज्जहि, दिक्खंकहि, दिज्जहि, देहि देहु, पभज्जहि, पेक्खु, पेक्खहु, भणहि, भमिसज्जउ।

बहुवचन : करहु

तृ० पु० : किज्जउ, जयउ, दिज्जउ विजयतु, होउ।

कर्मणि प्रयोग

विध्यर्थ कृदंत—अच्छेवउ, अणुचेट्ठेवउ, करिव्वउ, जाएव्वउ, होएव्वउ, खंचेवाइँ, वंचेवाइँ।
हेत्वर्थ कृदन्त—अणुसासिउं, अहिणेउं, गंतु, गंतूण (गतमर्थे) जिणेवए, पवोत्तुं।
संबंधक या पूर्व कृदत—अंचवि, अडोहिय, अणुमण्णिवि, संरेवि, अप्पिवि, आयणवि, आयण्णिवि; उप्पाइवि, करवि, करिवि, खंचवि, गंपि, जणवि, तरवि, नमंसेवि, पइसरेवि पइसिवि, पेक्खवि, पेक्खिवि; वइसरेवि, वंचिवि भणवि, मेल्लवि, मेल्लिवि, मेल्लेवि
ऊण: तज्जिऊण, मुत्तूण; प्पिणु · आउच्छेप्पिणु करेप्पिणु, जाएप्पिणु, देप्पिणु, पणवेप्पिणु मरेप्पिणु, हरेप्पिणु, होएप्पिणु; विणु· उट्ठेविणु, देविणु, लएविणु।

धातुएँ

प्रे० धातु—कारियं, नच्चावइ, नच्चाविय (विशे०) बुज्झाविउ (विशे०) पइसारइ, पाविज्जइ।
पौनःपुन्यदर्शक धा०:—पेक्खु पेक्खु, वल-वल, वलु-वलु।
नामधातु : फुक्कारइ, सहावइ, हुक्कारइ।
ध्वनिधातु[1]—करयरइ, कसमसइ, कुलकुलइ, गडयडइ, गुमगुमइ, घवघवइ, छमछमइ, रणरणहि, डमडमिय, तडतडिय, घुमघुमिय, सलसलिय

उपर्युक्त प्रकारसे प्रस्तुत काव्यमे प्रयुक्त स्वरो, व्यजंनो, उनके परिवर्तनों, विकारो, 'य' 'व' श्रुति आदि नियमों, कारक व क्रिया रूपो, तथा तद्धित और कृदंत प्रत्ययो आदिका विश्लेपण 'जंबूसामिचरिउ' की भाषा और व्याकरणका स्वरूप स्पष्ट कर देता है।

९. वीर तथा अन्य कवि

(क) 'जंबूसामिचरिउ' पर पूर्वकालीन सस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश कवि तथा साहित्यकारोंका प्रभाव : अश्वघोष, कालिदास, प्रवरसेन, वाण, भवभूति, स्वयंभू(७००ई०), सोमदेव, पुष्पदंत, और गुणपाल।

(ख) 'जंबूसामिचरिउ' का पश्चात्कालीन संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश कवियोंपर प्रभाव : नयनंदि, रइधू, ब्रह्म जिनदास और राजमल्ल।

प्राय: उच्चकोटिका प्रत्येक कवि-साहित्यकार अपने पूर्ववर्ती महाकवि एव साहित्यकारोसे अपनी रचनामे अनेक प्रभावोको ग्रहण करता है। ये प्रभाव काव्यके शरीर जैसे शब्द-संचय, पद संघटन और अलकार योजना आदिपर भी कार्य करते हैं; और काव्यकी आत्मा, जो उसकी शैली गुण, रस, भाव, कथावस्तु एवं काव्यात्मक कल्पनाएँ हैं, उनपर भी। और इस प्रकारसे धीरे-धीरे काव्यके शरीर और उसकी आत्माका अलंकरण-उद्योतन करनेके हेतु जिन तत्त्वोंका वार-वार अनेक महाकवियों-द्वारा प्रयोग किया जाता है, वे ही तत्त्व काव्य-साहित्य-भवनके मूल आधार स्तंभ बन जाते हैं। उन्हीको हम 'साहित्य-शास्त्रके सिद्धात' रूपसे स्वीकार करने लगते हैं। हिंदीके रीतिकालीन साहित्य तक प्राचीन एवं मध्यकालीन सपूर्ण भारतीय साहित्य इन्ही सिद्धातोकी भित्तिपर खडा हुआ है। 'जबूसामिचरिउ'का रचयिता कवि वीर सब अर्थोंमें रीतिवद्ध कवि है। अत. उसने अपनी रचनामे रीति अर्थात् साहित्यशास्त्रके सिद्धांतो विषयक उन सभी आदर्शोंका ग्रहण और पालन किया है जो उसके पूर्वकालीन महाकवियोने स्थापित और पोषित किये थे। इसीलिए वीर कविकी रचनामे जहाँ सभी प्रमुख रसो, भावो, माधुर्यादि गुणों, वैदर्भी आदि रीतियो एव उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, अतिशयोक्ति आदि अलंकारोके सुंदरसे सुंदर प्रयोग व उदाहरण उपलब्ध होते है, वही ऐसी अनेक काव्य कल्पनाएँ, भावनाएँ एवं वर्णन भी मिलते हैं, जो प्रमुख प्राचीन साहित्यकारोंकी रचनाओसे कही शब्दत, कही अर्थत और कही भावात्मक दृष्टिसे समानता रखते हैं।

[1] ध्वन्यात्मक शब्दकोश।

'जंबूसामिचरिउ'पर प्राचीन साहित्यकारोंके इस प्रभावको तुलनात्मक संदर्भोंके साथ यहाँ प्रस्तुत किया गया है—

अश्वघोष (प्र० श० ई० पू०) और वीर

यह पहले कहा जा चुका है कि 'जंबूसामिचरिउ'की मुख्य कथावस्तुमें भवदत्त-भवदेवकी कथापर सौंदर नंदके भगवान् बुद्ध और नंदकी कथाका प्रभाव बहुत गहरा और स्पष्ट है। नंदको घर वापस न लौटने देनेके लिए बुद्धके द्वारा उसके हाथमें अपना रिक्त भिक्षा-पात्र देने और ठीक उसी प्रकार जंबूसामिचरिउमें 'भवदेवके विवाहके समय ही मुनि भवदत्तका उसके घर आना एवं भिक्षा ग्रहण करनेके उपरांत मुनिके आदर एवं लोकमर्यादाके रक्षार्थ भवदेवका अत्यंत अनिच्छापूर्वक, प्रतिक्षण घर लौट चलनेको सोचते-सोचते मुनि भवदत्तके पीछे चलना', इस प्रसंगसे लेकर एक ओर भवदेव तथा दूसरी ओर नंदको सच्चा बोध एवं वैराग्य प्राप्त होने तकके वृत्तांतोंका मिलान निम्न संदर्भोंके अनुसार किया जा सकता है :—

जंबूसामिचरिउ	सौंदरनंद
अग्रजके साथ जाना २ १२.४	५ २ पूर्वार्द्ध
२.१२.५	५ ११ पूर्वार्द्ध एवं ५ १९
२.१२.१२	५ २०
भवदेवकी दीक्षा : २ १४ १-३	५ १५,३४,५१ नंदकी दीक्षा
अंतर्द्वंद्व व पत्नीका ध्यान : २.१३ ५-६,९-११; २ १४.५-१२; २.१५.१-४ १०-१९,२. १६ १-९,२.१७ ८-९	४ ४२,४५,५ १९,५,५०; ७ १६,१७,४७, ५२; नंदका अंतर्द्वंद्व
भवदेवको नागवसूका उपदेश—२.१८ ४-१६	नंदको भिक्षुका उपदेश ८ २१,४७,४८,५२,५४; ९.६,२६,२९,४८

इन संदर्भों और संदर्भगत भावनाओं एवं वातावरणपर जितनी ही गहराईसे विचार किया जाय उतना ही यह विचार पुष्टतर होता चला जाता है कि भवदत्त-भवदेवका कथानक सारी जैन-परंपरामें और भवदेवका अंतर्द्वंद्व वीर कविने अवश्यमेव सौंदरनंद काव्यसे ही ग्रहण किया है।

कालिदास और वीर

वीरकी रचनामें आत्मनिवेदन, जंबूका जन्म, जंबूको देखकर पुरनारियोंकी काम-विह्वल अवस्था और विक्षोभ, सेनाके प्रयाणके समय धूलिका उड़ना और शांत होना तथा युद्ध-वर्णन इन-विषयोंपर कालिदासके रघुवंश एवं कुमारसंभव महाकाव्योंका प्रभाव स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। उनके तुलनात्मक संदर्भ निम्न-प्रकार हैं :—

जंबूसामिचरिउ	कालिदास . रघुवंश तथा कु० सं०
आत्मनिवेदन १ ३ ७-१०	वही : १ २-४ रघुवंश
भवदत्त-भवदेवका परस्पर स्नेह २ ५ ९	शिवपार्वती संयोग, रघुवंश १ १
जंबूका जन्म ४.८ १-२, १२-१४	रघुका जन्म, रघु० ३.१५; एवं कार्तिकेयका जन्म कु० सं० ११ ३९-३८
जंबूस्वामीके दर्शनसे पुरनारियोंकी विह्वलता ४.११.८-११	रघुदर्शन (रघु० ७ ५-९; ७ १२) तथा कार्तिकेयके दर्शनसे नारियोंकी अवस्था, कु० सं० ७ ५७

सेना प्रयाण और धूलि उड़ना ५ ७.१-५.६.५.४-८	रघुकी दिग्विजय यात्रामे युद्धके समय उड़ी धूलि : रघु० ७ ३९.४१, ४२, ४३
वंसतवर्णन ४ १-५.१४	वही : कु० स० ३.३२
श्रेणिककी राजसभाका वर्णन ५.१.१६-१८	रघुके प्रभावका वर्णन रघु० ९.१३
श्रेणिक राजाका वर्णन १ ११ १७-१८ गाथा ५	सुदर्शन राजाका वर्णन रघु० १८.४४
युद्धवर्णन ६.५ से ६.१०; ७.१; ७.६	वही : कु० स० १६.२; २९,३०,३२,३९,४९; १७,
माया युद्ध ६.१४.१-४, ७ ९ ५-११।	१६, १९, २२, १६.२६, ३५, ३७, ३९, ४१-४५
युद्धवर्णनमे कुमारसंभवके १६वें और १७वें सर्गो-की सर्वत्र छाया तथा उल्लिखित संदर्भोंमे बहुत अधिक साम्य है।	

प्रवरसेन (लगभग ४५० ई०) और वीर

वीर कविने अपनी रचनामे जिन थोडी सी कृतियोंके नामोल्लेख (जं० सा० च० १.३) किये हैं, उनमें प्रवरसेन कृत सेतुबंध भी एक है, और उसके रचियताको महाकवि कहकर वीरने प्रवरसेनके प्रति अपना सम्मान प्रदर्शित किया है। प्रभावकी दृष्टिसे निम्न संदर्भ उल्लेख्य है :—

जंबूसामिचरिउ	सेतुबंध
३.१२.१-२ वसंत वर्णन	१ ३५-३६ हनुमानागमन
५.७.१-५ सेनाके प्रयाणसे उड़ती हुई धूलिसे मध्याह्नमें ही सूर्यास्तका दृश्य	१३ ३९, १३.६१ युद्धमे उडती हुई धूलिका दृश्य
७ १२ विद्याधर सैन्यके पराजयका दृश्य। इन उल्लिखित संदर्भोके अतिरिक्त ६वी और ७वी संधियोमे युद्ध-पुनर्युद्धके वर्णनपर सेतुवंधके १३वें आश्वासका प्रभाव परिलक्षित होता है।	१३.७५ राक्षस सैन्यके पराजयका दृश्य

बाण (७वी शती ई०) और वीर

हर्षचरितकार महाकवि बाणका भी कुछ प्रभाव 'जंबूसामिचरिउ' की रचनामे दृष्टिगोचर होता है। निम्नलिखित प्रसंग विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं :—

जंबूसामिचरिउ	हर्षचरित
१.२.१४-१२ चोर कवि	१ ६ चोर कवि
१.११ १५-१८ श्रेणिकका प्रताप वर्णन	उच्छ्वास ४, हिं० अनु० पृ० १५५, हर्षका प्रताप वर्णन
५ १३ १६-२१ क्रोध और क्रोधीकी निंदा	उच्छ्वास १, हिंदी अनु० पृ० ११-१२, दुर्वासाके क्रोध-की निंदा।

भवभूति (८वी श० ई० पूर्वार्द्ध, लगभग ७००-७३३ ई०) और वीर

भवभूतिकृत उत्तररामचरितके पांचवें अंकमे चन्द्रकेतु और लवके युद्ध वर्णनका भी कुछ प्रभाव जंबूसामिचरिउपर दिखाई देता है। निम्न उद्धरण मिलाकर देखिए :—

जंबूसामिचरिउ	उत्तररामचरित
जंबू और रत्नशेखरकी वार्ता	चद्रकेतु और लवकी वार्ता
ज अट्ठसहसपहरणकराहँ माराविय वरविज्जाहराहँ। हेवाइउ इय सुहडत्तणेण घारहडि न मण्णमि एत्तडेण। जइ अत्थि अंगि तउ जुज्झ गव्वु तो अच्छउ सेण्णु नियतु सव्वु। तुज्झु वि मज्झु वि सगामु होउ अज्जु वि मा मरउ वराउ लोउ। ७.७ ५-७	भो भो लव महाबाहो किमेभिस्तव सैनिकैः। एषोऽहमेहि मामेव तेजस्तेजसि शाम्यतु॥ (५.७) तत्किं निजे परिजने कदनं करोषि नन्वेष दर्पनिकषस्तव चन्द्रकेतु॥५ ९ अंतके दो चरण

इन उद्धरणोमे परिस्थिति और वातावरण एव पात्रोके अनुसार जो परिवर्तन किये गये हैं वे सरलतासे समझे जा सकते हैं। जंबूसामिचरिउमे पक्षमे जबू हैं, और विपक्षमे रत्नशेखर नामक दर्पिष्ठ व दुष्ट रत्नशेखर। उत्तररामचरितमें पक्षमे हैं चद्रकेतु और विपक्षमें अबतक अज्ञात स्वय रामपुत्र लव। अतः पात्रोके स्वभाव, प्रकृति तथा परिस्थितिके अनुरूप वीर कविने अपनी रचनामे संवद्ध प्रसगमे उचित परिवर्तन कर उसके भावको ग्रहण कर लिया है; और वह यह है कि 'सामान्य सैनिक हमारे-तुम्हारे बल परीक्षाकी वास्तविक कसौटी नही हैं। अतः ये बेचारे व्यर्थ क्यो मरें? केवल हमारा तुम्हारा युद्ध हो जाय। उसमे हम लोगोकी वास्तविक शक्तिपरीक्षा हो सकेगी।' जबूसामिचरिउ (७ ९) मे जबू और विद्याधरके आग्नेयास्त्र और वारुणास्त्र युद्धमे भी उ० रा० च० (६ ६ के उपरात गद्य) की कुछ छाया देखी जा सकती है।

स्वयंभू (लगभग ७०० ई०) और वीर

वीरने महाकवि स्वयंभूका उल्लेख (ज० सा० च० १ २; ५ १) अत्यत आदरपूर्वक और अपभ्रंशके प्रथम श्रेष्ठ कविके रूपमे किया है। जंबूसामिचरिउपर उनके पउमचरिउका प्रभाव निम्न दो स्थलोंपर अत्यधिक स्पष्ट है। स्वयभू कृत राजगृह वर्णनको वीर कविने पर्याप्त विस्तार करके मगध देशके वर्णनके रूपमे अपनी रचनामें समाविष्ट कर लिया है। मिलाने योग्य प्रसग हैं —

वीरका आत्मनिवेदन १ ३ १-६	स्वयंभूका आत्मनिवेदन प० च० १ ३, २३ १ २-५, ९-१०
वीरकृत मगधवर्णन १ ६-७-८	स्वयभू कृत राजगृह एव मगध वर्णन (प०च०१ ४-५)

इनके अतिरिक्त सैनिक वाद्यो (ज० सा० च० ५ ६; प० च० ६३ १) तथा अनेक देश नामोमे भी साम्य है। प० च० (६५ १ और ६६ ९) के युद्धवर्णनोमे १, २ पक्तियोकी छाया भी वीरके युद्धवर्णनमें दिखलाई पडती है।

सोमदेवसूरि (वि० स० १०वीं शती) और वीर

सोमदेव कृत यशस्तिलकचम्पू (रचनाकाल वि० सं० १०१६) भारतीय साहित्यका एक अनमोल एव अनुपम रत्न है। 'गद्यं कवीना निकष वदन्ति' यह उक्ति इस रचनामे उसी प्रकार चरितार्थ होती है, जिस प्रकार कि बाणकृत हर्षचरित और कादंबरीमें। अपभ्रश महाकवि पुष्पदत इनके लगभग समकालीन रहे हैं। पुष्पदंत कृत महापुराणकी रचना सोमदेव कृत यशतिलकचम्पूसे छह-सात वर्ष बादकी तथा जसहरचरिउ एव णायकुमारचरिउ और भी पीछेकी रचनाएँ हैं। अत प्रतीत होता है कि पुष्पदतने अपने

'जसहरचरिउ' की सपूर्ण कथावस्तु यशस्तिलकसे ली है। हाँ, पुष्पदंतकी काव्यप्रतिभा अपनी अद्वितीय है, यह निर्विवाद तथ्य है। वीर कृत 'जम्बूसामिचरिउ' की रचनामे यशस्तिलकका प्रभाव निम्न-संदर्भोमे विशेष रूपसे दिखाई पडता है —

जंबूसामिचरिउ	यशस्तिलकचंपू
चोरकवि १ २ १४ १५	वही : १.१३
कय अण्णवण्ण परियत्तणु वि ''	कृत्वा कृतीः पूर्वकृताः पुरस्तात् प्रत्यक्षरं ता. पुनरीक्षमाणः। तथैव जल्पेदथ सोऽन्यथा वा स काव्यचोरोऽस्ति स पातकी च।
कवि और काव्य : कव्वु जे कइविरयइ एक्कगुणु'''' १.२.८	१.१६
वही . चिरकइकव्वामयमुहाण ''' ७.१गाथा १	१.३३
वही : विजयंतु जए कइणो'''' १ ६.७-८	१.२५
१.५ १०-१५ एवं १ १८ २०-२१ संस्कृत पद्य	
आत्मनिवेदन · एक्कु जे पाहाणु हेमु जणइ'''' १.२ ९	१.२८
कवि और काव्य तुम्हेहिं वीर कव्वं '''चिरकव्वतुलातुलियं ९.१ गाथा १-२	१.२९
वही : विहवेण रायनियडत्तणेण'''' १०.१ गाथा १-२	१.३०
आत्मनिवेदन -करजोडिवि विउसहो अणुसरमि''''। अवसद्दु नियवि मा मणि धरउ'''। १.२.६-७	१.३६
वसंत वर्णन : मलयपवनके पक्षमे : कुंतलि कुतलभरपत्तखलणु ४.१५ ११	राजाके पक्षमे : कुन्तलकान्तालकभङ्गनिरत १.२११

पुष्पदंत (११वी शती विक्रम पूर्वार्द्ध) और वीर

अपभ्रंश महापुराण (रचनाकाल वि० सं० १०२२), जसहरचरिउ एवं णायकुमारचरिउके रचयिता महाकवि पुष्पदंत अपभ्रंशके मूर्द्धन्य कवि है। ये ही दूसरे व्यक्ति हैं, जिनका नाम स्वयंभूके पश्चात् द्वितीय-कवि (जं० सा० च० ५.१) के रूपमे वीर कविने अत्यंत आदरपूर्वक लिया है। और यह सच भी है कि अपभ्रंश साहित्यके इतिहासमे रचनाओंकी साहित्यिक उत्कृष्टताकी अपेक्षासे स्वयंभूके उपरात स्वत पुष्पदतका नाम मुखपर आ जाता है। जंबूसामिचरिउकी रचनामें पुष्पदंतके महापुराण और णायकुमारचरिउका प्रभाव अत्यंत व्यापक और गहरा परिलक्षित होता है। देश-ग्राम अटवी एवं नारीका नख-शिख वर्णन, सुदर नायकके दर्शनसे पुरनारियोकी विह्वलता, युद्ध, नायकका गृहत्याग आदि सभी प्रकारके वर्णनोंपर पुष्पदंतके ऐसे वर्णनोंकी गंभीर छाप सर्वत्र झलकती है। उदाहरणार्थ निम्न संदर्भ प्रस्तुत हैं:—

जंबूसामिचरिउ	पुष्पदंत
१ ६.१६–१ ८ ८ मगध देश वर्णन[1]	वही : णा० कु० च० १ ६ ४-११
५.९ १, ३-१० विन्ध्य देश वर्णन	जस० च० संधि १ यौधेयभूमि वर्णन

---

१ मगध देशका वर्णन स्वयंभू, पुष्पदंत और वीर तीनोंने लगभग एक समान, पर एकसे दूसरेसे बढ़ते हुए क्रमसे किया है।

तथा ३ १ १८-१९ पुष्कलावती विषय वर्णन	'मंथररोमथणचलिय ''' '''से लगाकर जहिं उच्छुवणइँ रससदिराइँ ... . जहिं जणधणकणपरिपुण्णगाम पुर-णयर-सुसीमाराम-साम', तक तथा ज० च० मालव-ग्राम वर्णन : 'जहिं हालिणिरूवणिवद्धचक्खु'''' से लगाकर 'णगउ दक्खालिवि वयणचंदु' तक
५ ८ ३१-३४ विन्ध्याटवी वर्णन	णा० कु० च० ८.३ ८ विजय नगरके समीप नंदनवन
१ १२.१-५ श्रेणिककी रानियोंका सौंदर्य वर्णन तथा ४.१२ १५-१६ एवं ४.१३ कन्या सौंदर्य वर्णन	णा० कु० च० १.१७ ८ से १२, १५-१६ कन्या-सौंदर्य वर्णन
४.१०.८ से ४.११.१३ जंबूके दर्शनसे पुरनारियोंकी विह्वलता	महापुराण ८.३.२-३ वसुदेवके दर्शनसे नारियोंका कामोन्माद एवं णा०कु०च० ५-८ नागकुमारके दर्शनसे काश्मीरकी नारियोंकी मदनोन्मत्तता
५-१.१९ राजदरबारका प्रतिहार	जस० च० वही तहिं अवसरि पडिहारें वरेण कणयमयवंडमंडियकरेण।
युद्धवर्णन '—	
५.१३ १-५ जंबूका दौत्य और रत्नशेखरको विलासवतीके लिए दुराग्रह एवं दुर्नीतिको छोड़नेके लिए प्रेरणा तथा उसकी भर्त्सना	णा० कु० च० ७.१३-५-६ नागकुमार-द्वारा अलध-नगरके राजाकी भर्त्सना भणियं कुमारेण कयतियसतोसेण पाविट्ठ लद्धो सि एएण दोसेण। परधरणि परतरुणि परदविण कखाए मरिहिसि दुच्चार-खलचोरसिक्खाए।
६-९. ३-९, ७-५. १-१४, ७-६ युद्ध	णा० कु० च० ७.७ गिरिनगरमें युद्ध भडमुहमुक्क''''''' '''''''''''''''''''''''''' मोडियछत्तदडयसंडइ '''''' '''''''. ''''' मुडखडखाविय चामुंडइ''''''''''''''''''''''
६.८.५-७, ६.१० १—४, ७ १ १०-२२ युद्ध भूमिका दृश्य	णा० कु० च० ४ १०; ४ १५ १-८ युद्ध एवं युद्ध-भूमिका दृश्य
७.१० जंबू-रत्नशेखर युद्ध	णा० कु० ५.४ नागकुमार-दुर्वचन युद्ध
८. ४ ५-८ सत्पुत्रलक्षण	,, ७ १५ ७-१० नागकुमारके जन्मकी सार्थकता
९ १४.६-७ पुत्रके वैराग्य लेनेकी संभावनासे मांकी विकलता[1] तावेत्तहिं जंबूकुमारजणणि ''' '''' '''' '''	म० पु० ८३.७ वसुदेवके गृहत्यागसे भाभी शिवदेवीकी विकलता सिवएवि जेम दुहवियलपाण '''''''..''''

१ इस प्रसंगको वीरने परिवर्तित रूपमें लिया है। महापुराण (८६.?) में जहाँ नेमिके गृहत्यागपर माता शिवदेवीके दुःखसे विकल होनेका प्रसंग आता था, उसे पुष्पदंतने पूर्णरूपसे टाल दिया है। वल्कि म० पु० ८३.७ में अपने देवर वसुदेवके गृहत्यागपर शिवदेवीकी शोकविह्वलताका मार्मिक वर्णन किया है। वहाँसे संकेत ग्रहण कर वीर कविने उसे वहाँसे उठाकर नेमिनाथके गृहत्यागके साथ संबद्ध कर दिया है, जो इस प्रसंगमें अधिक उचित भी है।

गुणपाल (वि० की ११वी शती या उससे पूर्व) और वीर

'जंबूसामिचरिउ' की कथाकी पूर्वकालीन दीर्घ परंपरा और कथास्रोतोंके अध्ययन (प्रस्ता०—३ पृ० ३५–३७) मे यह कहा जा चुका है कि मूल कथावस्तुके गठन एवं अंतर्कथाओंके चयन इन दोनों ही तत्त्वोंमे वीर कविकी प्रस्तुत रचनापर गुणपाल कृत प्राकृत 'जंबूचरियं'का अत्यधिक प्रभाव है, और यही 'जंबूसामिचरिउ'का आदर्श आधार ग्रंथ है। इसी प्रकार काव्य-रचनामें भी अनेक स्थलोंपर जं० सा० च० पर 'जंबूचरियं'का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। मूर्ख हाली (अंतर्कथा क्र० १); कामातुर वानर (कथा क्र० ४) तृषित वणिक् पुत्र (कथा क्र० १०; जंबूचरियं में इंगालदाहक) एवं व्यभिचारिणी वणिक् वधू (कथा क्र० ११; जंबूचरियंमे व्यभिचारिणी रानी, कथा क्र० १६) के आख्यानोंकी काव्यात्मक रचनामे भी वीर कविने गुणपालसे बहुत अधिक प्रभाव ग्रहण किया है। इनके अतिरिक्त इन रचनाओंके निम्न संदर्भ तुलनीय हैं :—

जंबूसामिचरिउ	जंबूचरियं
सज्जन स्तुति १.२ ३.	वही : १.१८
कविका आत्म-निवेदन, रचनाकी पूर्वपरपरा : महाकवि-रचित ग्रंथ	वही : १.४१
संध्यावर्णन ८.१४.१३-१५; २१; एवं १०.२५.१०-११ आदि।	वही : ७.११-१२

वीर और नयनंदि

जं० सा० च० की प्रस्ता०—२, पृ० १३ पर यह लिखा गया है कि "वीर कविका समय वि० सं० ११०० से पूर्व होनेका एक अति प्रबल एवं अकाट्य प्रमाण यह है कि वि० सं० ११०० होनेवाले मुनि नयनंदिके 'सुदंसणचरिउ' पर 'जंबूसामिचरिउ'का अत्यंत गंभीर और प्रचुर प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।" वहाँ इस कथनकी परीक्षाका स्थान न होनेसे इसकी पुष्टि नही की जा सकती थी। यहाँ नयनंदिकी रचना-पर 'जंबूसामिचरिउ' के प्रभावकी जाँच विस्तारसे की जा सकती है।

मुनि नयनंदिने अपने 'सुदंसणचरिउ' की रचना, भोजराजके समयमे, वि० सं० ११०० व्यतीत होनेपर धारा नगरीमे रहकर पूर्ण की थी। 'सुदंसणचरिउ' पर 'जंबूसामिचरिउ'के प्रभावकी जाँच करने हेतु सु० च० की कथावस्तुकी संक्षिप्त जानकारी आवश्यक है। वह इस प्रकार है—

भ० महावीरकी स्तुति और विनय प्रदर्शनके उपरांत मुनि नयनंदि कथा प्रारंभ करते हैं। मगध-देशके राजगृह नामक नगरमें राजा श्रेणिक राज्य करता था। उसकी महादेवीका नाम चेलना था। एक दिन एक पुरुषने दरबारमे आकर विपुलाचल पर्वतपर भ० महावीरके समोशरण सहित शुभागमनकी सूचना दी। राजाने सेना व प्रजासहित भगवान्‌की वंदनाके निमित्त प्रस्थान किया। उन्हें विपुलाचलके दर्शन हुए और वे सब भ० महावीरके समोशरणमे पहुँचे। भगवान्‌की स्तुति-वंदनाके पश्चात् राजा श्रेणिकने गौतम गणधरसे पंचनमस्कार मत्रके प्रभावके संबंधमे प्रश्न किया। इस प्रश्नके उत्तरमे गौतमने निम्न-लिखित कथा कहनी प्रारंभ की :—

अगदेशकी चंपानगरीमे धाईवाहण नामका राजा था। उसकी महादेवीका नाम अभया था। इसी नगरमे ऋषभदास नामक सेठ अपनी अर्हद्दासी नामक सेठानीके साथ सुखपूर्वक रहता था। उनके घर सुभग नामक एक सरल हृदय ग्वाल युवक रहता था। एक दिन सुभग गोपने वनमें एक महान् मुनिराजसे पैंतीस अक्षरोंवाला पच नमस्कार मंत्र सुन लिया और मुनिराजकी तेजस्वितासे प्रभावित होकर हर समय सोते, उठते, बैठते, चलते, जाते, रोते, हँसते दिन-रात उसीका पाठ करने लगा। ऋषभदास सेठने गोपके मुखसे मत्र सुनकर उसका बड़ा माहात्म्य बतलाया, और श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उस मंत्रका पाठ करनेको कहा। एक दिन गंगामे जलक्रीडा करते समय सुभग गोप एक हृदय विदारक खूंटमे फँसगया। वह भक्तिपूर्वक णमोकार मंत्रका पाठ करते हुए यह निदान (इच्छा) करके मृत्युको प्राप्त हुआ 'यदि इस मंत्रका कोई

प्रभाव हो तो मरकर मैं पुनः इसी वणिक् कुलमे जन्म लूँ।' उसका यह निदान सफल हुआ। उसी रातको सेठानी अर्हद्दासी (जिनदासी) ने 'एक विशाल-पर्वत, नया-कल्पवृक्ष, इद्रका घर, विशाल समुद्र और जाज्वल्यमान अग्नि', ये पाँच स्वप्न देखे। प्रातःकाल मदिर जाकर मुनिराजसे स्वप्न-फल पूछनेपर उन्होने कामदेवके समान सुदर, यशस्वी और मोक्षगामी (चरम शरीरी) पुत्र होना बतलाया। उचित समयपर शुभ मुहूर्त्तमे पुत्रजन्म हुआ और उसका बडा उत्सव मनाया गया। उसका नाम सुदर्शन रखा गया। बाल-क्रीडाएँ करता हुआ वह दिन-प्रतिदिन बडा होने लगा। समय आनेपर उसे विद्याध्ययनके लिए भेजा गया। उसने नाना विद्याओमे दक्षता प्राप्त कर ली। उसका शरीर अनेक शुभलक्षणोसे मडित था। युवा होनेपर नगरकी कामिनियाँ उसके दर्शन मात्रसे कामरागसे उत्तेजित, विह्वल और विक्षुब्ध होने लगी। सुदर्शनकी कपिल नामका ब्राह्मणसे मित्रता हो गयी। एक दिन सुदर्शनने सागरदत्त सेठ और सागरसेना सेठानीकी पुत्री मनोरमाको देखा। वह उसपर अत्यत आसक्त हो गया। मनोरमा भी उसे देखते ही उसपर मुग्ध हो गयी। दोनो एक-दूसरेके विरहमे व्याकुल रहने लगे। सारिद्यूत खेलते समय की हुई प्रतिज्ञानुसार उनके पिताओने दोनोका विवाह-सबध निश्चित कर दिया। दोनो घरोमे विवाहकी तैयारियाँ होने लगी। विवाह हुआ, और मध्याह्न कालमे वैवाहिक भोज। उसके उपरात मुख-शुद्धि आदि। इतनेमे सध्या हो गयी। वर-वधू घर आये। रात्रि हो गयी। वर-वधू दोनोने यथेच्छ रति-क्रीडा की। समय व्यतीत होनेपर उन्हे एक सुदर पुत्र उत्पन्न हुआ। सुदर्शनके पिता ऋषभ-दासको समाधिगुप्त मुनिके दर्शन कर, उनके धर्मोपदेशसे वैराग्य हो गया। उन्होने अपने पुत्र सुदर्शनको लोक-व्यवहारकी उचित शिक्षा दी और अपना दीक्षा लेनेका निश्चय प्रकट किया। सुदर्शनने भी दीक्षा लेनेकी इच्छा व्यक्त की। 'सत्पुत्र ही कुलका रक्षक होता है'" आदि रूपसे सुदर्शनको समझाकर, उसे गृहस्थीका भार सौंपकर सेठ ऋषभदासने दीक्षा ले ली। सुदर्शन सुखपूर्वक रहने लगे।

सुदर्शनके मित्र कपिल ब्राह्मणकी स्त्री कपिला उसके रूप-गुणोकी ख्याति सुनकर उसपर मुग्ध हो गयी। एक दिन कपिलकी अनुपस्थितिमे चतुराईसे उसने सेठ सुदर्शनको अपने घर बुलवाया और उससे अपनी कामेच्छा प्रकट की। 'मैं नपुसक हूँ' ऐसा कहकर सेठ सुदर्शन वहाँसे बच निकला।

इधर वसंत ऋतुका आगमन हुआ। वनपालने राजाको इसकी सूचना दी। राजाने उद्यान-क्रीडार्थ नगर-निर्गमनकी तैयारी की। नाना वाद्योका मधुर वादन किया गया। राजा-प्रजा सभी उद्यान-क्रीडाके लिए गये। सुदर्शनकी पत्नी मनोरमा भी उद्यान-क्रीड़ाके लिए आयी। अभया रानीने उसके सौंदर्य, सौभाग्य एवं पुत्रवती होनेकी अपनी सखी कपिलाके समक्ष बहुत सराहना की। कपिलाने कहा, 'इसका पति तो षढ है, ऐसा मैंने किसीसे सुना है। फिर इसे पुत्र कहाँसे हुआ।' कपिलाके यह कहनेसे उसका रहस्य खुल गया। उसने रानीके समक्ष स्वीकारोक्ति की। इसपर रानीने उसकी बुद्धिका बडा उपहास किया, और कपिलाके व्यग्य करनेपर यह दुष्प्रतिज्ञा की 'या तो मैं सेठ सुदर्शनसे रमण करूँगी, या फाँसीमे लटककर प्राण दे दूँगी'। प्रेमियोने खूब उपवन क्रीडा की। परस्पर छलोक्तियाँ कही गयी। तदुपरात सरोवरमे जलक्रीडा की गयी। यथेच्छ क्रीडा करके सब लोग नगरको लौट आये।

अभया रानी सुदर्शनके विरहमे दिन-रात झूरने लगी। अतःपुरकी पडिता नामक धायने उसकी यह दशा देख, इसका कारण पूछा, और उसे जानकर अभया रानीको अपने कुनिश्चयसे टालनेका बहुत सत्प्रयास किया। अभयाने अपना दुराग्रह नही छोडा। हारकर पडिताने सुदर्शनको महलमे लानेकी योजना बनायी। एक अष्टमीके दिन जब सुदर्शन सेठ रात्रिमे श्मशानमें ध्यानस्थ बैठा था, पडिता वहाँ गयी। सुदर्शनको बहुत प्रलोभन दिये, पर सुदर्शनने अपना ध्यान नही तोड़ा। तब पडिता उसे सशरीर कधोपर डालकर उठा ले गयी और पुतलेके बहाने रानीके अत पुरमे पलगपर ले जाकर बैठा दिया। अभया रानीने सुदर्शनको बहुत प्रलोभन दिये। स्त्रीसुलभ सभी काम-चेष्टाएँ की। डराया धमकाया भी। पर सुदर्शन ध्यानसे नही डिगा। तब हारकर रानी उसे वापस श्मशानमे पटकनेको चली। इतनेमें सूर्योदय हो गया। अब रानीने अपनी प्राणरक्षाके निमित्त स्त्री-चरित्र किया। अपने सारे शरीरको नखोसे नोच

डाला, केश विशीर्ण कर लिये, वस्त्र फाड लिये और शोर मचा दिया कि यह दुष्ट सुदर्शन न जाने कहाँसे आकर मुझसे बलात्कार करनेपर तुला हुआ है। राजाको यह समाचार मिलते ही उसने अपने भटोंको सुदर्शनको पकडकर मार डालनेकी आज्ञा दे दी।

इधर सुदर्शनके धर्मध्यानके प्रभावसे एक व्यंतर उसकी रक्षाको आ गया। उसकी माया-निर्मित सेना और राजाकी सेनामे बडा भयानक युद्ध हुआ। भटोंकी पत्नियोंने वीरतापूर्ण कामनाएँ व्यक्त की। फिर राजा और व्यंतरमे युद्ध हुआ। दोनोंने एक दूसरेको खूब ललकारा। राजाने व्यंतरको एक दो बार घायल और मूर्च्छित भी कर दिया। पर अंतमे अपनी मायासे व्यंतरने राजाको परास्त कर दिया, और सेठ सुदर्शनसे अपनी प्राणरक्षाके निमित्त क्षमा माँगनेको कहा। राजाने सुदर्शनसे क्षमा माँगी। व्यंतरने राजाको अभयाकी सारी सत्य-कथा सुनायी। इसके बाद राजाने सुदर्शनको आधा राज्य आदि देनेके अनेक प्रलोभन दिये, पर सेठ सुदर्शनको वैराग्य हो गया और उसने जीवन तथा संसारकी क्षणभगुरता जानकर दीक्षा ले ली। अभया रानीने फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली, और मरकर एक व्यंतरी हो गयी।

पडिता धाय भागकर पाटलिपुत्र पहुंची और देवदत्ता गणिकाके यहाँ रहने लगी। उसने उसे मुनि सुदर्शनका वृत्तात सुनाया। यह सुनकर देवदत्ताने भी सुदर्शन मुनिसे रमण करके दिखलानेकी प्रतिज्ञा की। मुनि सुदर्शन घूमते-घूमते पाटलिपुत्र आये और भिक्षार्थ नगरमे गये। देवदत्ता गणिकाने दासीसे कहकर उन्हे घरमें बुलवा लिया। पहले उन्हें स्त्रीसुखके सारे प्रलोभन दिये। फिर तीन दिनो तक उन्हे घरमे बद करके वेश्यासुलभ सभी कामचेष्टाएँ की। अंतमें निष्फल, निराश होकर मुनि सुदर्शनको ध्यान-चिंतनकी अवस्थामे श्मशानमे पटकवा दिया।

इस प्रकार जब मुनि सुदर्शन ध्यानमे लीन थे, उसी समय अभया (रानी) व्यंतरीका विमान आकाशमार्गसे जाते हुए मुनि सुदर्शनके ऊपर आकर ठहर गया। उसने इसका कारण जाननेके लिए सब ओर देखकर नीचे सुदर्शनको ध्यानस्थ देखा। उन्हे देखकर उसे महान् रोष हुआ, और अपना पूर्वभव (रानीका जन्म) स्मरण हो आया। उसने अपने भूत-वैतालो सहित मुनिपर भयानक उपसर्ग करने प्रारंभ कर दिये। यहाँ भी उसी व्यंतरने आकर मुनिकी रक्षा की और उस व्यंतरीको पराजित कर भगा दिया। ध्यानावस्थित मुनिको कुछ ही समयमे केवलज्ञान हो गया। इंद्रादि देवोने उनकी पूजा-वदना की। मनोरमाने भी दीक्षा ले ली, और तप करके मरकर स्वर्ग गयी। सुदर्शन मुनि आठो कर्मोका नाश कर मोक्षको प्राप्त हुए।

'सुदसणचरिउ' की इस संक्षिप्त कथावस्तुके अध्ययनसे हमे ज्ञात होता है कि यद्यपि इस कथाका केंद्रीय तत्त्व 'स्त्रीका किसी पर-पुरुषपर अनुचित अनुराग' है, तथापि जिस रीतिसे 'सुदंसणचरिउ' की कथाका काव्यात्मक वर्णन और विकास किया गया है, 'जबूसामिचरिउ' की कथावस्तुसे मिलान करनेपर उसमे आदिसे अत तक 'जबूसामिचरिउ' की काव्यात्मक शैली, वर्णनक्रम और वस्तु-व्यापार वर्णनोका अत्यत स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। इन्हे समानातर वर्णनोके संदर्भोमे निम्नप्रकारसे दिखाया जा सकता है —

जंबूसामिचरिउ	सुदसणचरिउ
भ० महावीरकी स्तुति १. मं० ५-६, १ १ ५	वही १ १.५-६
कवित्व, त्याग और पौरुषसे यशकी उपलब्धि ८८. ६-७	वही १ १. १४
कवि विनय १ ३.१ ७	वही १.२ १-३
मगधवर्णन १ ६. २४-२५	वही १.२ १३-१४
राजगृह वर्णन १.८ ९	वही १ ३ ९
हस्ति-उपद्रवका दृश्य ४ २१ १३-१७	भगवद्दर्शनार्थ सैन्यप्रयाण १ ७ ९-११

श्रेणिकका विपुलाचलदर्शन १ १५.१०-१२; १ १६ ३	वही १.८.६-१०
श्रेणिक्का कुरुलपर्वतको देखना ५.१२-१५	श्रेणिकका विपुलाचल दर्शन १.८.१-५
सवाहन नगर वर्णन ८ ३ ६-९	चंपापुर वर्णन २ ३.२,३,७
सुहृयवीरकथाका उल्लेख १ ४.४	सुद्धयकथाका उल्लेख ३ १ ७
जंबूके दर्शनसे पुर-नारियोकी कामोत्तेजना ४ ११.१२-१३	वही (सुदर्शनके दर्शनसे) ३ ११ २-५
पद्मश्री आदि चार कन्याओका सौंदर्य ४.१४.५-६	मनोरमाका सौदर्य ४.२ १
जवूके माता-पिता · सेठ ऋषभदास-जिनमती	सुदर्शनके माता-पिता . सेठ ऋषभदास-अर्हद्दासी (जिनदासी)
जंबूकी पत्नी पद्मश्रीके पिताका नाम : सागरदत्त	सुदर्शनकी पत्नी मनोरमाके पिताका नाम : सागरदत्त
ऋषभदास और सागरदत्तादिश्रेष्ठियोकी विवाह सबधी-वार्त्ता ४ १४.११-२१	वही ५.२.५-६; ५.३ ४-१०
विवाहकी तैयारी ४ १५ १-५	वही ५ ४.७-९
विवाह-आगमन और विवाह ८.१२ ३-४	वही ५ ५ १-२
पद्मश्रीकी रागात्मक उक्ति ८.११.१०	वर-वधू-मिलन ५ ५ ६; एवं जलक्रीडा ७.१७.१०
मध्याह्नकालमे वैवाहिक भोज ८ १३.८-१५	वही ५.६
भोजनके उपरात छोडा हुआ उच्छिष्ट ८ १३. १४-१५	वही ५.६ १५-१६
भोजनोपरात मुखशुद्धि ८.१४ १-२	वही ५ ७,१-२
सध्या-आगमन ८.१४ ८,९,१२	वही ५ ७.९-१६
सूर्यास्त ८ १४.५	वही ५.८. १-२
सत्पुरुष लक्षण ८ ७ १४-१५; ८.८ ९	वही ६ २०.३-१०
वसंत-आगमन ३.११.१४-१५, ३.१२.५, १०-११	वही ७ ५.१-४, ११-१२
वनपालसे सूचना मिलनेपर भगवद्दर्शनार्थ	उसी प्रकार वसंतमे उद्यान क्रीडार्थ
प्रयाणकी तैयारी, नाना वाद्य-वादन २.१४	गमनकी तैयारी ७.६
उद्यान क्रीडार्थ गमन ४ १६.१	वही ७.७.३
उद्यान क्रीडामे प्रेमियोकी वक्रोक्तियाँ ४ १७.४,१७	वही ७.१५ ४
मिथुनोकी जलक्रीडा जलका मुभग युवकके समान आचरण ४.१९.११,२१-२२ एवं ४.१९.१८	वही ७.१७ ३-७,१०
कामिनीके नख-व्रण युक्त स्तनोकी शोभा ४.१९.१५	वही ७.१७ ११-१२
लोगोका सरोवरसे निर्गमन ४ २० १	वही ७ १७.१९
वेश्यावाटका चित्र ९ १३ १-२, ३-४, ५	वही ८.१९.२, ३, ५,
वधुओकी कामचेष्टाएँ ८ १६.६-१०	अभयाकी कामचेष्टाएँ ८ २८ ३-५, ८-१०
रत्नशेखरकी अप्रमाण सेना-द्वारा केरलकी घेरेबदी ५ ३ ७	व्यतरकी मायानिर्मित अप्रमाणसेना९ १.११
मिथुनोकी युद्धके समान कामक्रीडा ९ १३ १०, ११, १४-१६	मिथुनोकी कामक्रीडाके समान युद्ध ९ ४.३, ६,७,८
युद्धमे धूलिका शात होना ६ ५ २,१०	वही ९ ६ ९-१०
हस्तियोपर स्थित जंबू और रत्नशेखरकी शोभा ७ ८ ६	वही (व्यंतर और राजा धाईवाहन) ९.८. ९-१०
उन्हीका युद्ध · चाप आस्फालन आदि ७.८.८, १०, ११-१२	वही ९ १२ ३,४, ६-७

विद्युच्चर मुनिपर व्यंतरीका उपसर्ग और मुनिकी दृढ़ता १०.२६ | मुनि सुदर्शनपर व्यंतरीका उपसर्ग और सुदर्शनकी दृढ़ता ९.१७-१९

जंबूको कैवल्य और मोक्ष | सुदर्शनको कैवल्य और मोक्ष

उपर्युक्त संदर्भोंमे इन रचनाओंमे केवल भावात्मक ही नही, वल्कि वातावरण, प्रसंग तथा शब्द और अर्थ सभीमें स्पष्ट समानता है।

वीर और ब्रह्म जिनदास

ब्रह्म जिनदासका कुछ परिचय ऊपर आ चुका है।[1] इनका समय वि० सं० १४५० के लगभग है और इनकी अनेक रचनाओंमे जंबूस्वामीचरित (संस्कृत) तथा जंबूस्वामीरास भी हैं। इनमे-से जंबूस्वामिचरित (सं०) लगभग शब्दशः 'जंबूसामिचरिउ' का संस्कृत रूपातर है। 'जंबूस्वामीरास' के संबंधमे उसके उपलब्ध न हो सकनेसे कुछ कहना कठिन है।

वीर और राजमल्ल (वि० की १७वीं शती पूर्वार्द्ध)

पं० राजमल्लकी एक रचना 'जंम्बूस्वामीचरित्रम्' (संस्कृत) है, जिसका रचनाकाल वि० सं० १६३२ है। यह रचना भी कही विस्तारसे, कही संक्षेपमे 'जंबूसामिचरिउ' का संस्कृत रूपांतर है।

उपर्युक्त दो रचनाओंके अतिरिक्त हेमचंद्र (१२वी शती ई०) के परिशिष्ट पर्वकी रचना पूर्णतः गुणपालके 'जंबूचरियं'के आदर्शपर की गयी है। संभव है हेमचंद्रको 'जंबूसामिचरिउ' भी उपलब्ध रहा हो। एक महत्त्वकी बात यह है कि हेमचंद्रके प्रसिद्ध प्राकृत व्याकरणमें जो अनेक दोहे उद्धृत किये गये हैं, उनमे-से कुछ 'जंबूसामिचरिउकी गाथाओंसे पूर्ण समानता रखते हैं। इससे हेमचंद्र-द्वारा वीरकी इस रचनाको देखने व उसका ऋणी होनेकी संभावनाको कुछ अधिक वल मिलता है। वे दोहे निम्नलिखित हैं:—

धवलु विसूरइ सामिअहो गरुआ भरु पिक्खेवि।
हउँ कि न जुत्तउं दुहुं दिसिहिं खंडइं दोण्णि करेवि ॥८५॥
मइँ वुत्तउँ तुहुं धुरु धरहि कसरेहिँ विगुत्ताइँ।
पइँ विणु धवल न चडइ भरु एम्वइ वुन्नउ काइँ ॥१६१॥
पाइ विलग्गी अन्त्रडी सिरु ल्हसिउँ खन्धस्सु।
तो वि कटारइ हत्थडउ वलि किज्जउँ कंतस्सु ॥१९९॥

—डॉ० नामवर सिंह : (हिंदीके विकासमे अपभ्रंशका योगदान, तृ० संस्करण)

इन दोहोंका मिलान क्रमशः जं० सा० च० के ७ ६ २६-२७ (गाथा ६), ७ ६ २०-२१ (गा०३) तथा ६.३ ९-१० से करणीय है।

वीर और रइधू:—अनेक अपभ्रंश ग्रंथोंके कर्त्ता रइधू विक्रमकी १५वी शतीके हैं। इन्होंने अपनी दो रचनाओंमें वीरकविका उल्लेख किया है। परन्तु उनकी रचनाओंपर वीरकी कृतिका कितना प्रभाव है, इस संबंधमे कुछ कहना शक्य नही है, क्योंकि संपादकको रइधूकी रचनाओंका अध्ययन करनेका सुअवसर प्राप्त नहीं हो सका।

---

1. प्रस्ता०—५

१०. समसामयिक अवस्था

भौगोलिक स्थिति, भारतकी चतुर्दिक् सीमाएँ, पर्वत, वन, वन्य जीवन; ग्राम और ग्रामीण जीवन; नगर और नागरिक जीवन; आर्थिक अवस्था, सामाजिक स्थिति, शिक्षा और साहित्य; एव धार्मिक स्थिति

प्रत्येक युगका सच्चा साहित्यकार, कवि या महाकवि स्वयं अपने समयकी सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक परिस्थितियोके परिप्रेक्ष्य एवं पृष्ठभूमिके पटपर ही अपने वर्ण्यविषयके कालकी अमुक स्थितिके-चित्रकी रेखाएँ अंकित करता है। वह किसी भी कालकी स्थितियोका वर्णन करे, परंतु उसके अनुमानका आधार तो उसका वतमान ही होता है। इसी वर्तमानके पटपर, उसकी कल्पना रूपी तूलिका मनमाने रंग भर-भरकर नये-नये चित्र बनाती है। उसका सजागरूक यत्न रहता है कि वह पाठकको वर्तमानसे उठाकर उसके मानसको अपने वर्ण्य कालके स्तरपर ले जाये और इस यत्नमें उसे जितनी सफलता मिलती है, वही उसके साहित्यिक साफल्यका मापदड बनती है। पर सम-सामयिक युगकी स्थितियोका सही-सही चित्रण भी उसके साफल्यकी उतनी ही महत्त्वपूर्ण कसौटी है जितनी कथा-वस्तुगत वर्ण्य कालके चित्रण की। इस दृष्टिसे वीर कविने तत्कालीन भारतकी भौगोलिक स्थिति, देश, प्रात और मंडलोमे विभाजन, प्रमुख पर्वत, नगर, नदियाँ, वृक्ष-वनस्पतियाँ, पशु-पक्षी, दक्षिणसे लगाकर उत्तरपूर्व और उत्तर-पश्चिमके दक्षिणापथके मार्ग और विंध्यके उत्तरमें उत्तरके प्रमुख महाजनपथोके सबधमें प्रभुत व प्रामाणिक जानकारी प्रदान की है। देशके तत्कालीन सामाजिक जीवन, व्यापार, कृषि, शिक्षा, साहित्य, सामाजिक रीति-रिवाज एवं धार्मिक विश्वासों तथा ग्रामीण व नागरिक जीवनका सटीक परिचय प्राप्त करनेकी दृष्टिसे भी यहाँ प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है। देशकी राजनीतिक अवस्थाके सबधमे कविने प्रत्यक्ष तो नही परतु अप्रत्यक्ष रूपसे जो सकेत दिये हैं, उनसे तत्कालीन मालवाकी राजनीतिक अवस्थाका अच्छा बोध हो जाता है। परंतु देशके शेष भागोमें इस दृष्टिसे कैसी अवस्था थी, इस विषयमे जं० सा० च०से कोई सामग्री उपलब्ध नही होती।

भौगोलिक स्थिति

भारतवर्षके भौगोलिक विभाजनोका कविका ज्ञान विशद और प्रामाणिक था। इसकी अनुभूति हमें 'जबूसामिचरिउ'की नवम सधिके अतमे विद्युतच्चरके यात्रा-वर्णन अथवा देश-दर्शनके रूपमें उपलब्ध होती है। इस बहाने कविने अपने महाकाव्यमे मात्र 'देशदर्शन' विषयक रूढिका पालन ही नही किया, अपितु विक्रमकी ग्यारहवी शतीके भारतका भौगोलिक मानचित्र हमारे सामने खीच दिया है। इस विषयमे उसने वृहत्सहिताकार वराहमिहिरका अनुकरण नही किया, क्योंकि संपूर्ण देशो, नगरो, पर्वतों, वनों, नदियो और जातियोका वर्णन करना यहाँ कविका अभीष्ट नही था। उसे तो देशकी भौगोलिक स्थितिका सामान्य ज्ञान कराना इष्ट था, और उसमे वह सफल हुआ है।

कविने प्रमुख त्रेपन देशो व मडलो, तैंतीस नगरो, दस बंदरगाहो व पत्तनो (तीर्थो), अठारह पर्वतो और पर्वत श्रेणियो, दस नदियो, आठ उत्तरीय एव उत्तर-पर्वतीय जातियो, पाँच द्वीपो एव चार सागरो (पूर्वोदधि, पश्चिोदधि, क्षीरोदधि एवं लवणसमुद्र)का उल्लेख किया है। इन सबका संक्षिप्त परिचय और पहचान अंतमें भौगोलिक नामकोशके अतर्गत दिये गये हैं।

भारतके दक्षिण समुद्रसे लेकर उत्तर-पश्चिमकी ओर चलते हुए गुजरात तक, फिर पश्चिममे राजस्थानसे लेकर दक्षिण-पूर्वमें ताम्रलिप्ति (तमलुक) तक, उत्तरमे शाकभरी (अजमेर) से लगाकर सुदूर उत्तरमे काश्मीर और इससे भी ऊपर उत्तर-पश्चिममे फारस देश तक; एवं पूर्व (उ० प्र०) मे गौड-(गौंडा प्राचीन राजधानी श्रावस्ती) से प्रारभ करके कामरूप तक जाकर, गगासागर होते हुए

सप्त-गोदावरी भीमतीर्थ तकके जिन यात्रा-महापथोका संकेत वीर कविने किया है, पांचवी शती ई० पूर्वसे ग्यारहवी शती ई० तक भारतके ऐतिहासिक व्यापारिक, महाजनपथोसे उनकी तुलना की जा सकती है।[1]

विद्युच्चरके यात्रा वर्णनसे विक्रमकी ग्यारहवी शतीमें बृहत्तर भारतवर्षकी भौगोलिक सीमाएँ, उत्तरमे आधुनिक पर्शिया (फारस) से लगाकर, हिमालयकी अनेक पहाड़ी जातियोके प्रदेशोको सम्मिलित करते हुए काश्मीरको लेकर, उसके उत्तरसे सिंधु नदीके किनारे-किनारे चलते हुए कैलाश पर्वत तक; उत्तर-पश्चिममे पूरा सिंध व पंजाव, पश्चिममे द्वारिका एवं प्रभास (सोमनाथ) तीर्थ, और सीधे दक्षिणमे समुद्र (हिंद महासागर); तथा दक्षिण-पूर्वमें बंगाल सागर (पूर्वोदधि) के तटपर ताम्रलिप्तिसे उत्तर-पूर्वमे कामरूप (आसाम) पर्यंत प्रतीत होती हैं। अर्थात् तीन ओर सागर एवं उत्तरमें हिमालयके सुदूर उत्तरीय प्रदेश।

पर्वत—ऊपर कहा गया है कि जं० सा० च० मे देशके लगभग अठारह पर्वतो और पर्वत श्रेणियोका उल्लेख है, जिनमे मुख्य हैं—हिमालय, कैलाश, मंदारगिरि, विपुलाचल, अर्बुद (आबू) विंध्य, वक्षाकर (विंध्यपाद, सतपुड़ा), पारियात्र, सह्याद्रि, श्रीशैल और मलय। कविने अधिकांशतया इन पर्वतोका उल्लेखमात्र करके छोड दिया है।

वन—जं० सा० च० में भारतके वन भागोकी बहुत अल्प चर्चा मिलती है। राजगृहके समीप एक प्राचीन नंदनवन नामक उद्यान और विंध्य अटवी इन दोका उल्लेख कुछ विस्तृत वर्णनके साथ उपलब्ध होता है। नदनवनके वर्णनमे केवल विभिन्न वृक्षों व लताओके नाम मात्र हैं, जैसे ताल, कदली, पनाक्ष, आम्र, जंबीर, जंबू, कदंब एवं न्यग्रोध आदि[2]; लताओमें नागलता (पानकी बेल) तथा द्राक्षा अर्थात् अंगूरकी बेल। ये अधिकाश वृक्ष मगध और विदेहमे आज भी बहुतायतसे मिलते हैं। नागलताकी खेती बिहारके उत्तर और दक्षिण दोनो भागोमे कई जगहोपर व्यापारिक स्तरपर की जाती है। कुछ स्थानोंमें अब अंगूर भी उगाया जाता है। संभव है विहारमे प्राचीन कालमें भी अगूरका उत्पादन किया जाता रहा हो। और केले तथा आमके उद्यान तो आज भी विहारके कृषकोकी आयके प्रमुख स्रोत हैं।

विंध्याटवीका वर्णन कुछ अधिक विशद है। उसमें खदिर (खैर) और बाँसोके बड़े-बड़े गुल्म, कटीली झाड़ियाँ, शीसम और अजन आदि अनेक वृक्षोके नामोके[3] अतिरिक्त विंध्याटवीके बहुतसे पशुओंका भी नामोल्लेख कर आदिवासी भीलोके जीवनका अत्यंत सजीव और वास्तविक चित्र खीचा गया है। पशुओमें हाथी, सिंह, गवय (नील गाय), कोल (सूअर), शृगाल, जंगली भैंसे और वानर प्रमुख हैं, पक्षियोमे कौआ और घूक (उल्लू)। 'जहाँ-जहाँ पानी वहाँ-वहाँ कमल,' इसी प्रकार 'जहाँ-जहाँ वन वहाँ-वहाँ अष्टापद-शरभ या शार्दूल', इस कविसमयके अनुसार शरभका भी नाम कविने लिया है।

विंध्याटवी और वन्य जीवन—विंध्याटवीमे चोरोके निवास योग्य घने काँटेदार वृक्ष और झाडियोके जंगल थे, जैसा कि आज भी विंध्यकी चंबलघाटी बड़े भयानक डाकुओका दुर्गम व दुर्भेद्य अड्डा बनी हुई है। अटवीमे भीलोके एक-सरीखे घर-द्वार थे, जिनमे पशुओको पकडनेके जाल और फाँस तथा मछली पकडनेके काँटे और जाल लटके रहते थे। मृगोका मास सूखता रहता था, और मारे हुए चीतोंके शव या खालें पड़ी रहती थी। उनकी मूछोमे बाल नही होते, पर दाढ़ी लंबी रहती और भीलोकी मंडली आपसमे बैठकर परस्परके जंघाबलकी प्रशंसा किया करती। उस विंध्याटवीमे कही पर्वत तटोंपर हाथियोकी चिंघाड सुनकर सिंह क्रुद्ध होते और कही शस्त्रसे आहत, दहाड़ते हुए व्याघ्र नील गायोंको विदीर्ण कर डालते। कहीपर घुर-घुराते हुए कोलोके दाढोसे उखाड़े हुए कंद-मूल सूखते रहते, और कही

१. डॉ० मोतीचंद्र : सार्थवाह

२. जं० सा० च० वृक्ष-वनस्पति-कोश

३. वही

हुंकार करते हुए प्रचंड बली भैंसोके सीगोसे उखाडे हुए वृक्ष भूमिपर गिर पडते। कही दीर्घ हुंकार छोडते हुए वानर भागते दिखाई देते और कही सैकडो घूको (उल्लू) की घू-घू ध्वनिसे क्रुद्ध हुए कौवे कांव-कांव करते रहते। कही शृगालीकी फेत्कारसे आकृष्ट शृगाल पकड़े जाते। कही कल-कल कर झरते हुए झरने, तो कही काले शरीरवाले भील दिखाई पडते। कही वृक्षोके पत्तोसे ढके हुए सर्प पड़े रहते और कही फणधारी नागोके तीक्ष्ण फूत्कारोंसे भयानक दावानल जल उठते। विंध्याटवी एवं वन्य जीवनका यह चित्रण अपनी सजीवतासे स्वयमेव फडकता हुआ प्रतीत होता है।

देशके वृक्षो और वनस्पतियोके संबंधमें अधिक कथ्य नही है, क्योकि उनके नाममात्र उल्लिखित[1] हैं, परंतु यह सत्य है कि मगध और विंध्यमें आज भी उनमें-के लगभग शत-प्रतिशत वृक्ष-वनस्पतियोको उपलब्ध किया जा सकता है।

ग्राम और ग्राम्य जीवन—जं० सा० च० मे बहुत अधिक ग्रामोका उल्लेख नही है। गिने चुने दो गाँवोंका नाम मिलता है। एक गुलखेड जो कविका जन्म स्थान था, इसका भी कोई वर्णन कविने नही किया। दूसरा है मगधमे वर्द्धमान नामक गाँव। यह ब्राह्मणोका कुल-क्रमागत अग्रहार (दान-स्वरूप प्राप्त) ग्राम था। यहाँकी रमणियाँ बहुत सुंदर होती थी, और ब्राह्मणोके समूह मिलकर वेदपाठ किया करते थे। नव-दीक्षित पुरोहित पशुहोम किया करते तथा प्रतिदिन खूब सोमपान किया जाता (दिक्खिएहिँ जहिँ पसु होमिज्जइ दिवि-दिवि-सोमपाणु जहिँ किज्जइ २.४ १०) और शिष्यवृंद अपनी लंबी-लंबी चोटियोंको पूँछके समान हिलाते हुए वानरोके समान वृक्षोपर क्रीडा किया करते। यह एक शुद्ध ब्राह्मण गाँवका पूर्णतः वास्तविक वर्णन है। विंध्य देशके ग्रामोके संबंधमें कविने लिखा है कि वहाँके ग्राम नगरोके समान, तथा ग्रामीण नागरिकोंके समान सर्वसुख साधन सपन्न और श्रद्धालु थे। इन गाँवोके ग्वाले बड़े-बड़े व्रजों (गोमंडल) का पालन करते थे। व्रजोंके लिए गाँवोमे बड़े-बड़े सरोवर थे। महुएके वृक्ष बहुतायतसे थे, और धानकी खेती होती थी। खेतीकी रक्षा कृषक वधुएँ किया करती थी। स्थान-स्थानपर पथिकोके लिए प्याऊ लगी रहती, जिनमें स्त्रियाँ पानी पिलाया करतीं। गावोके लोग सुंदरवस्त्र धारण करते और स्थान-स्थानपर गोपियाँ गहरे रंगोंके वस्त्रोको धारण कर रास रचाया करती।

साधारण दरिद्र ग्रामीणोके जीवनका एक अति मार्मिक चित्र प्रस्तुत करते हुए कविने लिखा है—सात दिनोंतक दिनरात घनघोर वर्षा होती रही। जल-थल सब एक हो गये और मार्ग दुर्लभ। तालावोकी पाल फोडकर जलका प्रवाह बह निकला। सब व्यवसाय समाप्त हो गये और आहार अत्यंत दुर्लभ। भूखसे क्रंदन करते हुए बच्चे और बूढे सब तृणोसे निर्मित गलती हुई कुटियोकी दीवारोंसे चिपक-कर तडफते हुए बैठे रहे। पक्षी अपने घोसलोंमें ही रुके रह गये और बार-बार मूर्छित होने-लगे ''' आदि। वर्षाकालमे भारतके किसी दरिद्र गाँवका यह वर्णन कितना सच्चा, सजीव और मर्मस्पर्शी है।

नगर और नागरिक जीवन—नगरोका वर्णन बहुत कुछ कवि-स्वभाव और काव्य-रचनाजन्य अतिशयोक्तिसे अतिरंजित होनेपर भी उसमे वास्तविकताका अंश भी प्रचुर परिमाणमे है। कविने मगधमे राजगृह और संवाहन तथा (पौराणिक) पूर्व-विदेहमे पुंडरिकिणी और वीतशोका नगरियोका सुंदर वर्णन किया है। इन वर्णनोसे ज्ञात होता है कि बडे नगर सुरक्षाकी दृष्टिसे परिखा और प्राकारसे युक्त होते थे, जिसमे विशाल गोपुर बने रहते। नगरोमें गवाक्षोसे युक्त कई-कई तलोके प्रासाद, ऊँचे-ऊँचे देवालय, चैत्यगृह, दानशालाएं, (३ ३ ९) द्यूतगृह (टेंटा ८ ३ १३) वेश्यागृह, (३ २.५-६) एव बडे-बडे हाट होते थे। नगरोके बाहर वृक्ष-गुल्मो व लता-गुल्मोसे युक्त बड़े-बड़े उद्यान एव सरोवरयुक्त वाटिकाएँ रहती थी। नगरोके बाहर घुडदौडके मैदान (वाहियालि ३.२.१०) भी रहते थे। नगरोके बाहर हरे-भरे खेत रहते और

१. वृक्ष-वनस्पति कोश

कृषक-वधुएँ उनकी रक्षा किया करती। बाहर उद्यानों और खेतोंमें हरिण खूब छलांग लगाया करते और वाटिकाओंमें मयूर नाचा करते। नगरके लोगोंका जीवन निश्चित रूपसे ग्रामीणोंकी अपेक्षा अधिक धन-समृद्धि-संपन्न, अत. भोग-विलास पूर्ण हुआ करता। नगरकी कामिनियाँ और बालक सुंदर-सुंदर सुवर्ण एवं रत्न-आभूषण धारण करते थे। और घर-घर लोगोंको संगीत, वाद्य तथा नृत्यमें प्रगाढ़ रुचि रहती थी। पनिहारिनें कुओंसे पानी लाया करती, जैसा कि आज भी गाँवोंमें देखा जाता है। द्यूत लोगोंका एक समाज एवं राजमान्य मनोविनोदका साधन था (८.३.१३) तथा वेश्याएँ भोगकी सर्वसम्मत सामग्री (३ २.६; ९ १२-१३)। स्त्रियाँ प्रसाधनके लिए दर्पणोंका, सुगंधित चंदन द्रव्य आदि लेपोंका व कुंकुम इत्यादिका प्रयोग किया करती थी, और मुख-शुद्धिके लिए लोग दातूनका प्रयोग करते थे। बड़े नगरोंमें कवि और जुआड़ी समान रूपसे नगरकी शोभा बढ़ाते थे (८.३.१३)। यही नगरोंका सामान्य जीवन था। सामाजिक जीवन रीति-रिवाज, रूढि, धार्मिक श्रद्धा और अंधविश्वास आदिकी चर्चा आगे की गयी है।

देश—नौवीं सधिके अंतमें बहुतसे देशों, नगरों आदिके जो नाम उल्लिखित हैं, उनमें-से किसीका भी कुछ विस्तृत वर्णन कविने नहीं किया है। जिन देशोंका थोड़ा-सा वर्णन मिलता है, वे हैं—भारतमें मगध और विंध्य तथा पूर्व विदेहमें पुष्कलावती। राजगृह, संवाहन तथा पुंडरिकिणी और वीतशोका नगरों तथा विंध्य देशके गाँवोंके प्रसंगमें वर्णित ग्रामीण जीवनके वर्णनोंसे ही इन देशोंका भी चित्र उपस्थित हो जाता है। इनमें कुछ विशेषताएँ हैं, जैसे मगधके लोगोंमें धार्मिक श्रद्धाका प्राबल्य; अत्यंत उपजाऊ भूमि, सरोवर, नदियों और उद्यानोंकी प्रचुरता, नागलता, कदली, द्राक्षा, मिरिच, सन और धानकी खेती (१.६-८)। पुष्कलावती देशकी कोई अलग विशेषता नहीं है। इतना ही है कि वह बहुत समृद्ध देश था। विंध्य देशके वर्णनमें और कोई विशेषता नहीं है। उसमें भी प्रमुख रूपसे धानकी खेती, महुएके वृक्षोंकी अधिकता आदि कही गयी है। विशेषता है एक बातमें कि इस देशमें प्याऊओंका प्रचलन बहुत था। मगधराज्यके वर्णनमें एक और ध्यान देने योग्य सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वहाँ पथिक पाथेय लेकर नहीं चलते थे (१.७ ७)। इसका तात्पर्य यह है कि ग्रीष्मकालमें तीन-चार महीने आम तथा वर्षके बारहों महीने इतना केला विहारमें होता है कि वास्तवमें वहाँ कभी घरसे पाथेय लेकर चलनेकी आवश्यकता नहीं होती। इसका पोषक एक और तथ्य यह है कि बिहार प्रांतमें सदासे ही अतिथिको देवतुल्य मानकर उसका यथासंभव उच्च सम्मान-सत्कार किया जाता रहा है। भोजन, पान और निवासके संबंधमें यह बात विशेष रूपसे सत्य है। और इन सुविधाओंके बदलेमें उस प्रांतमें किसी घरमें कभी कुछ नहीं लिया जाता था। आज भी कुछ अंशोंमें यह स्थिति विद्यमान है।

आर्थिक अवस्था

'जंबूसामिचरिउ'में उपलब्ध सामग्रीपर-से भारतकी तत्कालीन आर्थिक अवस्थाका अध्ययन करने-पर ज्ञात होता है कि साधारणतः देशके अधिकांश भागोंमें कृषि ही आजीविकाका सर्व-प्रमुख साधन थी। बड़े-बड़े नगर, राजगृह,सवाहन, सिंधुवरिपी और केरल आदि, व्यापारके बड़े केंद्र थे, और उनके विशाल हाट-बाजारोंमें भिन्न-भिन्न स्थानों, व देशोंसे व्यापारार्थ आये हुए लोगोंकी भीड़ लगी रहती थी। कभी-कभी व्यापारमें किन्हीं कारणोंसे गिरावट या रुकावट आ जानेपर व्यापारियोंको एक स्थानपर ही रुकना पड़ जाता था। बनिये संभवत. नौकाओंसे भी व्यापार करते थे। मापकी वस्तुओंके लिए द्रोण एवं प्रस्थ नामक माप व्यवहारमें लाये जाते थे (८.३.९)। स्थल मार्गसे कांस्य व अन्य धातुओंके बरतनोंका व्यापार बहुत प्रचलित था। राज-सैन्यके मार्ग या पड़ावमें आ पड़नेपर व्यापारियोंकी बहुत हानि होती थी, क्योंकि शस्त्रोंकी चमक-दमक, रथोंकी घर्घराहट और हाथियोंकी चिंघाड़से उनके वाहन, जो अकसर बैल होते थे, वे भड़क उठते थे और उनका सामान पटक देते थे, जिससे कसेरोंके बरतन-बासन फूट जाते, सब सामान बिखर जाता और कभी-कभी तो बैल भाग भी जाते (५.७.१४-२३)। तेली और कलाल (मद्यका व्यापार करनेवाले)

का भी इसी प्रसंगमें उल्लेख आया है। कोई-कोई दीन-अनाथ स्त्री दूसरोंका खाना बनाकर भी आजीविका करती थी (५ ७.१६)। द्यूत संभवतः व्यसनमात्र ही नहीं बल्कि कुछ लोगोंकी आजीविकाका नियमित साधन था (८ ३ १३)। नट अपना पारिश्रमिक या पुरस्कार लेते और वेश्याएँ अपना भाड़ा (भाडि ९.१३ ५)। वेतनभोगी भृत्योंका कोई उल्लेख उपलब्ध नहीं होता। संभवतः सैनिकों या परिजनोंका वेतन नगद धनके रूपमें नहीं, बल्कि जीवनोपयोगी सामग्रीके रूपमें दिया जाता था। ब्राह्मणोंके लिए पौरोहित्य और अध्यापन ये दो ही आजीविकाके साधन थे, ऐसा प्रतीत होता है। नगरोंका जीवन अधिक साधन-समृद्ध होनेसे ग्रामोंकी अपेक्षा अधिक सुखकर और विलासमय रहा होगा। परंतु ग्रामोंमें भी लोग धर्मपूर्वक अपनी आजीविका करते हुए सुखपूर्वक रहते थे, प्रासाद निर्माण, मंदिर निर्माण, मूर्ति निर्माण और गृह निर्माण भी आजीविकाका एक प्रमुख साधन रहा होगा।

सामाजिक स्थिति

वर्ण, जाति, आजीविकाके साधन, विवाहकी पद्धति व स्थिति, वरका चुनाव, पारिवारिक व्यवस्था (संयुक्त), कुलपतिका स्थान, घर और समाजमें कन्या; बहन, पत्नी व माँके रूपमें नारीकी प्रतिष्ठा, दैनिक उपयोगकी वस्तुएँ, रीति-रिवाज और मनोरंजनके साधन

'जंबूसामिचरिउ'में उपर्युक्त विषयोंपर निम्न जानकारी उपलब्ध होती है :—

वर्ण—चार : ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ब्राह्मण यज्ञ-यागादि करते और वैदिक साहित्यका अध्ययन-अध्यापन करते थे। राजा और श्रीमंतोंका पौरोहित्य भी उनकी आजीविकाका साधन था। सेनाके प्रयाणके साथ भी कुछ विद्वान् पंडित जाते थे, जो स्नानोपरांत टीका लगाकर गलेमें फूलोंकी माला डालकर शरीरपर चंदनका लेप करके दर्भसे संध्यावंदन किया करते थे (५ ११)। तिल और जौ देकर पितरोंको पिंडदानकी क्रिया प्रचलित थी (२ ६)। समाजके अन्य वर्णोंमें ब्राह्मणोंकी क्या स्थिति थी, इस सबंधमें जं० सा० च० से कोई अनुमान नहीं लगता।

क्षत्रिय—क्षत्रियोंका प्रमुख कार्य युद्धोंमें लड़ना था। यही उनकी आजीविका थी। केरलके राजाको क्षत्रिय कहा गया है (५.२)। जं० सा० च० से क्षत्रियोंके संबंधमें इतनी ही जानकारी उपलब्ध होती है।

वैश्य—वैश्य जातिके उल्लेख वणिक् गोत्र, वणिक् या वनियेके नामसे जं० सा० च० में अनेक बार आये हैं। स्वयं वीर कवि वणिक् वंशके ही थे। व्यापार-वाणिज्य वनियोंका प्रमुख व्यवसाय था। विद्युच्चरके देश-दर्शनके बहानेसे कविने हमें यह बतलाया है कि व्यापारी जल और स्थल दोनों मार्गोंसे व्यापार करते थे। अन्य वर्णोंकी अपेक्षा वैश्योंकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी, यह अनुमान लगाना उचित है।

शूद्र—जं० सा० च० में शूद्र 'शब्द'का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। वगकी अंतर्कथामें (१० १५-१७) मेहतरोंके लिए 'कर्मकर या कर्मकार शब्दका प्रयोग आया है, प्राचीन कालमें उसका प्रयोग सामान्य रूपसे सभी नौकर-चाकरोंके लिए होता था। 'मेहतर' अर्थमें इस शब्दका प्रयोग बहुत पुराना नहीं मालूम पड़ता। आजकल उत्तर-प्रदेशके मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुरके जिलोंमें मेहतरोंको 'कमानेवाला' और उसके कामको 'कमाना' कहते हैं। इस 'कर्मकार' शब्दसे शूद्रोंकी स्थितिका कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

अन्य जातियाँ, एवं आजीविकाके साधन—इन चार वर्णोंके अतिरिक्त कृषकों (हाली या कुटुंबी) और ग्वालों तथा कृषक वधुओं (हालीवधू, पामरी) और गोपियोंके उल्लेख कई बार (१ ७,१ ८,३ १; ५ २) हुए हैं, और इनके सुखी जीवनका सुंदर चित्र खींचा गया है। 'तेली' और 'कलाल' (मद्यका व्यापारी) का उल्लेख (५ ७) इन जातियोंके होनेकी सूचना करता है। भट, नट विट, डोम और कुट्टनियों (४ २१, ५.७; ५ ११)के उल्लेख जातियोंके नहीं बल्कि अमुक-अमुक आजीविकाके साधनोंके सूचक हैं। भट्ट पहले

राजाओं आदिकी विरुदावली गायन करनेवाले ब्राह्मण होते थे। बादमें अन्य जातियोंने भी इसे अपना लिया।[1] डोम शूद्रोंकी कोटिमें रखे जा सकते हैं। लेकिन नट, विट और कुट्टनियोंकी जाति कौन जान सकता है?

विवाह संस्था—भारतवर्षमें बहुत प्राचीन समयसे ही विवाह संस्थाका सम्मान और महत्त्व बहुत अधिक रहा है तथा आज भी है। संस्कृत साहित्यमें आठ प्रकारके विवाहोंका उल्लेख है[2]। इन सभीको सामाजिक मान्यता प्राप्त थी। पर सबसे अधिक प्रचलन और आदर विवाहके उस प्रकारका था जिसमें वर और कन्या दोनोंके माता-पिता एवं परिवारके लोग सब-कुछ सोच-विचारकर विवाह संबंधोंका निर्णय करते थे, और ग्राम या नगरके सब प्रमुख लोगों एवं स्वजातीय तथा जातीयेतर विशाल समाजकी साक्षीमें जिसे विवाह रूपमें परिणत किया जाता था। इसी प्रकारके विवाहोंका परिचय हमें 'जंबूसामिचरिउ'से प्राप्त होता है। भवदेवका नागवसूसे विवाह (२ ९—१०) और जंबूस्वामीका चार श्रेष्ठि कन्याओंसे विवाह (४ १४, एवं ८.१२-१४) उसकी समकालीन सामाजिक विवाह पद्धतिके द्योतक हैं। इस प्रकारके विवाहमें वरकी खोजका कार्य कन्याके पिताका ही होता था। कभी ऐसा भी होता था, जैसा कि जंबूस्वामीके संबंधमें हुआ (४ १४), कि वर और कन्याके पिताओंमें मैत्री-संबंध रहनेसे उन संबंधोंको स्थायी करने हेतु वे आपसमें एक दूसरेके पुत्र-पुत्रियोंके विवाह संबंध निश्चित कर लेते थे। अभी भी घनिष्ठ मित्रोंमें ऐसे संबंध होते देखे जाते हैं। विवाह संबंधोंकी स्थापनामें दोनों ओरसे पिताका ही महत्त्व सर्वोपरि दिखाई देता है, तथापि माताओंसे भी सलाह अवश्य ली जाती रही होगी, जैसाकि एक अन्य जंबूस्वामीचरितमें उल्लेख है।[3] मित्र, बांधवों, परिजनोंकी सलाहको भी पूर्ण महत्त्व और आदर दिया जाता था।

वैवाहिक पद्धति—जं० सा० च० के रचनाकालमें भी विवाह लगभग इसी रीतिसे, कुलाचारोंके अनुसार संपन्न होते थे, जैसे कि आज वणिक् और ब्राह्मण समाजमें संपन्न होते हैं। घरकी चूनेसे पुताई, गोबरसे लिपाई और घर पर शिखर हो तो उसे गेरु(या चूने) से चमकाना, तोरण और वंदनवार बाँधे जाना, मडप बनवाना और सजवाना, स्थान-स्थानपर सुगंधित चूर्ण या द्रव्य छिड़के जाना, विविध रंगोंसे चौक पूरना, सुगंधित पुष्पोंकी मालाएँ लटकाना और भेंट करना आदि सारी बातें आज भी उसी प्रकार होती हैं। नाना प्रकारके मंगलोपचार, मंगलगान, वाद्य एवं संगीत, तथा कामिनियोंके मनोभिराम नृत्य, ये सब आज भी प्रचलित हैं। वरके घरसे आये हुए समाचार-वाहकोंके स्वागतकी विधि—आगे जाकर साथ ले आना और आसन देना; फिर अक्षत, कुसुम, तांबूल आदि औपचारिक स्वागत करनेकी बातें ऐसी वर्णित हैं (८.९) मानो साक्षात् घटित हो रही हो। वरके हाथमें ऊर्णामय कंगन बाँधना, नये कपड़ेका जोड़ा पहनाना, सुगंधित पुष्पोंका मुकुट पहनाना, और शरीरपर चंदनादि सुगंधित द्रव्योंका लेप करके अनेक आभूषणोंसे सजाना, कन्यादानके निमित्त कन्याके पिता-द्वारा जलांजलि दी जाना, और वरको यथासंभव अधिकसे अधिक दायज्ज (दहेज) देना। ये सब आज भी समाज-प्रचलित व्यवहार हैं। समृद्ध कन्याओंके पिता अब भी वधू-वरकी सेवाके लिए दास-दासी भेंट स्वरूप साथमें भेजते है। उस कालमें पाणिग्रहणकी विधि संभवतः प्रातःकालके समय संपन्न की जाती थी।

वैवाहिक भोज—कविने लिखा है कि लोग तृणमय आसनोंपर बैठे। ग्रीष्म ऋतु होनेसे तालपत्र निर्मित और सुगंधित जलसे भीगे हुए पंखोंसे हवा की जाने लगी तथा नाना प्रकारके मीठे, खट्टे, चरपरे व मिश्रित व्यंजन परोसे गये। कूर नामक (धानके) चावलसे बनाया हुआ तथा खूब घीसे सिक्त भात; खट्टे अचार, चटनी, तक्र (मट्ठा, पर यह यहाँ दहीके लिए प्रयुक्त मालूम पड़ता है, क्योंकि आजकल भी देशके कई प्रान्तोंमें जैसे बिहार, बंगाल एवं महाराष्ट्र आदिमें भोजनके साथ दही परोसा जाता है, मट्ठा अर्थात् छाछ नहीं।)

---

१ Encyclopaedia of Religion and Ethics Vol 2. bhāt and chāran

२. मनु० अ० ३ श्लो० २१

३. ब्रह्म जिनदास कृत संस्कृत : जम्बूस्वामिचरित्र

और मूंगसे बने हुए नाना व्यंजन बहुत-सी कटोरियोंमें रखकर परोसे गये। मगध, मालवा और उत्तर-प्रांतोंमें मूगकी उपज अधिक होनेसे मूगके मीठे व नमकीन दोनों प्रकारके व्यंजनोंका अब भी खूब प्रचलन है। भोजन-से तृप्त होकर जलसे मुख शुद्धि कर लेनेपर सुगंधित द्रव्य और तांबूल भेंट किये गये। विवाहके उपरांत वर-वधुओंके साथ अपने घर आया। मित्र एवं बांधवोंका उचित सम्मान करके, भेंट आदि देकर उन्हें आदर पूर्वक बिदा दी गयी और प्रदोषकाल आ जानेपर वर, वधुओंके साथ सुंदर रूपसे सजे हुए शयनकक्षमें प्रविष्ट हुआ। उपर्युक्त संपूर्ण वर्णन मानो आज ही किसी विवाहका साक्षात् चित्र हमारे सामने खींच देता है। वणिक् परिवारके विवाहमें वणिकोंका सामाजिक भोज और विप्र विवाहमें विप्रोंका भोज जानी-पहचानी बातें है।

इन्हीं वर्णनोंसे यह भी स्पष्ट होता है कि उस कालमें संयुक्त परिवार प्रणाली थी। घरमें पिता ही कुलपति होता था और परिवारमें उसका स्थान सर्वोच्च था। विवाह एक साथ एकाधिक कन्याओंसे किये जा सकते थे। पचीस-तीस वर्ष पूर्वतक भारतमें यह प्रथा सुप्रचलित थी, विशेषकर समृद्ध क्षत्रिय एवं राजघरानों-में। सूरसेन श्रेष्ठीकी चार युवा सुंदर पत्नियोंकी जो मार्मिक कथा वीर कविने लिखी है (३.१० १३) वह एक सत्य घटनाके समान प्रतीत होती है। स्वयं वीर कविने चार विवाह किये थे। परंतु कन्याओंके लिए निरपवाद रूपसे एक बार माता-पिता-द्वारा निर्धारित व्यक्ति ही आजन्म एकमात्र पति, स्वामी सब कुछ होता था। जो कुछ पतिका भाग्य वही पत्नीका। हाँ, कोई कन्या या वधू पतिके साधु बन जानेपर संभवतः दूसरा पति कर सकती थी (२ १६); पर इसे अच्छा नहीं माना जाता था। कभी यदि पिता-द्वारा पूर्व निश्चित व्यक्तिसे संबंध होनेकी संभावना न दिखाई दे, तो सुशिक्षित कन्याओंसे दूसरा वर ढूंढनेके सबधमें सलाह ली जाती रही होगी (८.१०)। घरमें पिताके पश्चात् मांकी स्थिति सर्वोच्च थी, और फिर बड़े पुत्रकी। छोटा भाई बड़े भाईको पिता तुल्य मानता था (२.१०.११) और बड़ा भाई छोटेको पुत्रवत् स्नेहसे रखता व उसके साथ गृहस्थीका संचालन करता था (२.६)। पुत्री और बहूका स्थान समान अधिकारकी दृष्टिसे बादमें आता था।

अन्य सामाजिक प्रथाएँ, दैनिक जीवन एवं मनोरंजनके साधन

मृत पतिके साथ पत्नीके द्वारा जीवित ही उसकी चितामें जल मरनेकी प्रथा इस देशमें सन् १८२९ में राजा राममोहनरायके जीवनकालमें अंगरेजी सरकारने कानून-द्वारा बंद करायी थी। यद्यपि अथर्व वेदमें पतिकी मृत्युके बाद उसकी विधवा पत्नीके लिए मर जाना ही धर्म कहा गया है, परंतु पतिकी चितामें एक बार उसके साथ लेटनेपर, उसे संतति और संपत्ति रूपी वरदानकी प्राप्ति बतलायी गयी है। ऋग्वेदके समान ही अथर्ववेदमें भी विधवाको चितासे उठकर नये पतिका अनुसरण करनेको कहा गया है। और इस प्रकार मृत पतिकी चितामें एकबार उसके साथ लेटनेपर विधवा पत्नीको उसमें-से उठाकर उसका दूसरा विवाह वहीं सबकी साक्षीमें कर दिया जाता था। परंतु कुछ अशुभ कारणोंसे इस प्रथामें परिवर्तन आया, तथा विधवा पत्नीको मरे हुए पतिके साथ उसकी चितामें ही जल-मरनेको बाध्य किया जाने लगा।[१] भवदत्त-भवदेवके पिताकी मृत्युके उपरांत उनकी माँ जीवित ही उनके पिताकी चितामें जल मरी (२ ५)। यह उल्लेख कविके समयकी किसी घटनाकी ओर संकेत करता है। उनके पिता धार्मिक ब्राह्मण होनेसे कुष्ठरोगसे पीड़ित हो जानेपर विष्णुका स्मरण करते हुए जीवित ही स्वयं अपनी चिता रचकर अग्निमें प्रविष्ट हुए थे। कुष्ठ व्याधिका कोई उपचार न होनेसे एक धार्मिक व्यक्तिके लिए इस जीवनको समाप्त कर देनेके सिवाय और श्रेष्ठतर उपाय क्या हो सकता था? और शायद यह समाजमान्य भी रहा होगा। सती प्रथाके प्रचलनका एक और संकेत युद्ध वर्णनमें (जं० सा० च० ६ ८) में मिलता है कि प्रियतमके साथ मरनेकी इच्छासे आयी हुई एक सुभटप्रिया शस्त्रोंसे अत्यंत क्षत-विक्षत योद्धाओंके शवोंमें अपने प्रियतमको पहचान नहीं पायी, और झूरती हुई बैठ रही।

१. इस प्रथापर विशेष जानकारीके लिए देखें : Encyclopaedia of Religion & Ethics.

दैनिक उपयोगकी वस्तुओंमें जल रखनेके निमित्त (मृत्तिका निर्मित) करवेका प्रयोग विशेष उल्लेखनीय है (१५, १.१८)। विन्ध्य देशकी स्त्रियोंका कटिवस्त्र (धोती, नाडी) में कछौटा लगाना, और लोगोंका मोटे वस्त्रसे शिरपर गोलाईदार दुपट्टा (पगडी) बाँधना (५ ७) ये सच्ची बातें हैं। नगरमें हस्ती आदि कृत कोई आकस्मिक उपद्रव खडा होनेपर जान रक्षाकी दौड-धूपमें विट और कुट्टनियों तथा स्वेच्छाचारिणी कामिनियों-द्वारा इस विकट परिस्थितिका लाभ उठा लेना (४ २१), जल-क्रीड़ाके समय किसी विटके द्वारा डुबकी लगाकर किसी दासीको पैर पकडकर घसीट ले जाना और दासीके चिल्लानेपर पास ही खड़ी कुट्टनीका और जोरसे चिल्ला पडना (जिससे कोई दासीकी पुकार सुन न सके, ४.१९) ये सामाजिक जीवनके मनोरंजक चित्र हैं।

सेनाके प्रयाणके समय मार्गके नगरो व ग्रामोंमें संक्षोभकी स्थिति, सैनिकोंका लोगोंके घरोंमें घुस पडना, कहो अति साहसी लोगोंके द्वारा क्रुद्ध होकर राजसेनाका कोई हाथी पकड़ लिया जाना अथवा खेतोंमें हानि पहुँचानेपर किसी घोडेको पीटना या मार डालना (५.७) तत्कालीन लोकजीवनकी वास्तविक झांकी प्रस्तुत करते हैं।

मनोरंजनके साधनोंमे जल-क्रीडा, उद्यान-क्रीडा, गोपियोंके रास व चर्चरी नृत्य, कामिनियों-द्वारा गायन, वादन व नृत्यादि सर्व-प्रचलित थे, तथा द्यूतक्रीड़ा और वेश्यागमनको भी शासन व समाज दोनोंसे मान्यता प्राप्त थी, और कुछ लोगोंके लिए ये आजीविकाके साधन भी थे (४.२,८.३,९.१२-१३)।

शिक्षा और साहित्य

जं० सा० च० के अध्ययनसे तत्कालीन भारतमें शिक्षा और साहित्यके संबंधमें निम्न जानकारी उपलब्ध होती है :—

(क) ब्राह्मणोंकी शिक्षा-दीक्षा : प्राचीन आश्रम पद्धतिपर आधारित थी। परंतु आश्रमोंका कोई उल्लेख नही है। विद्यार्थी गुरुके घरपर ही शिक्षा ग्रहण करते थे। श्रुति, स्मृति, वेद, कथा (पुराण), व्याकरण और ज्योतिष और निघंटु तथा छंद.शास्त्रकी पारंपरिक शिक्षा शिष्योंको प्रदान की जाती थी। यज्ञ, पशुबलि और सोमपानका प्रचलन था। चौर्यविद्याका भी, संभवतः किसी रूपमें शिक्षण रहा होगा (३ १४), जैसा कि मृच्छकटिककार शूद्रकके समय तक होनेके निश्चित संकेत मिलते हैं।

(ख) जैन बालकोंकी शिक्षा गुरुओंके घरपर जैन साहित्यमें होती। परंतु व्याकरण, निघंटु, काव्य और छंद तथा दर्शन शास्त्र और तर्क शास्त्रकी शिक्षा सबके लिए समान रूपसे प्रचलित थी। बड़े घरानोंके युवकोंको हस्तिशिक्षा, अश्वशिक्षा, युद्धकला आदि क्षात्र विद्याओंका भी अभ्यास कराया जाता था। समृद्ध व सुसंस्कृत जैन परिवारोंमें संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तीनों भाषाओंकी शिक्षा देनेका प्रचलन था (४ १२.११)।

(ग) धनवान् कुलीन घरानोंमें कन्याओंको भी शिक्षा दी जाती थी और सामान्य शिक्षाके अतिरिक्त उन्हें वाद्य-वादन, गायन, नृत्य एवं कामशास्त्रकी भी शिक्षा प्रदान की जाती थी (४.१२)।

(घ) साधारण समाजमें रास क्रीडा (१ ७ ९-१०) और चर्चरी नृत्योंका प्रचलन था (१ ४ ५)। अर्थात् ११वी शतीमें प्रचुर परिमाणमें रास एवं चर्चरी साहित्य उपलब्ध था।

(ङ) रामायण, महाभारत, वेद, श्रुति, स्मृति, पुराण, व्याकरण, निघंटु, छंद, अलंकार, दर्शन, न्याय और तर्क एवं रास और चर्चरीके एकाधिक बार उल्लेख होनेसे प्रतीत होता है कि उपर्युक्त विषयोंपर प्रभूत साहित्य देशमें उपलब्ध तथा पठन-पाठनमें प्रचलित था। व्याकरणोंमें कविके समय पाणिनीय व्याकरण-के पंतजलि कृत महाभाष्यपर कैयट (विक्रम ११वी शतीके पूर्व) कृत 'महाभाष्य प्रदीप' (प्रचलित नाम प्रदीप) का विशेष प्रचलन रहा ज्ञात होता है, क्योंकि वीर कविने विशेष रूपसे - प्रदीपका नामोल्लेख शब्द-शास्त्र कहकर किया है (जं० सा० च० १ ३ २)। संस्कृत साहित्य एवं संस्कृत व्याकरण साहित्यके इतिहासोंसे भी इस तथ्यकी पुष्टि होती है।[1]

[1] वाचस्पति गैरोला—सं० सा० का संक्षिप्त इति०, पृ० ३७६ 'कैयट'; युधिष्ठिर मीमांसक—सं० व्याकरण सा० का इति० भा० १; शालग्राम शास्त्री—साहित्य दर्पण हिन्दी विमला व्याख्या। (प्रथमावृत्ति) भूमिका पृ० ५

धार्मिक स्थिति

अत्यंत प्राचीनकालसे ही यह देश धर्मप्राण रहा है, और इस भारतभूमिने न केवल मानवजगत्, अपितु सृष्टिके जीवमात्रके हित-सुख-कल्याणकी भावना रखनेवाले महान् धर्मोको जन्म दिया है। पशुबलि प्रधान यज्ञ-यागादिका धर्म यहाँ अधिक युगो व शतियो तक ठहर नही सका। बुद्ध और महावीरने एक बार इसके विरुद्ध जो अहिंसाकी ध्वजा उठायी, तो फिर वह निरंतर उन्नत ही होती गयी। दसवी-ग्यारहवी शती ई० तक क्वचित् पशुबलि प्रधान यज्ञ होते रहे, पर उनकी संख्या और परिमाण बहुत कम हो गये।- इस बाह्य कर्मकाडमय धर्मके विरुद्ध यहाँ आभ्यतर आचारशुद्धि या भावशुद्धि प्रधान धर्मोका प्रचार-प्रसार हुआ और वैदिक परपराके धर्मोने भी अहिंसा प्रधान आचारको अपनेमें पूर्णतः आत्मसात् कर अपनेको उसके अनुरूप बना लिया। वैदिक शैव और वैष्णव धर्म या पाशुपत और भागवत संप्रदाय पूर्ण-रूपसे अहिंसा प्रधान है। आधुनिक काल तक योगियो और साधु-सतोकी परंपरा पूर्ण अहिंसा एव सर्वजीव-कल्याणकी भावनासे ओतप्रोत है। आत्मा और पुनर्जन्म, अत स्वर्ग-नरक एव मोक्षमें विश्वास इन समस्त अहिंसा प्रधान भारतीय धर्मोकी आधारभूमि है और इसी विश्वाससे प्रेरित हो यहाँ लौकिक जीवन और सासारिक कर्मोका नियमन, निर्धारण किया जाता रहा है। इसी विश्वासके अनुरूप दैनिकचर्या और नाना प्रकारके धार्मिक विश्वास यहाँके लोकजीवनमें प्राचीनकालसे अखंड परपरासे चलते आ रहे है, और प्रत्येक संप्रदाय अपने-अपने इष्ट देवताओकी अपनी-अपनी रीतिसे पूजा-भक्ति करता चला आया है। जं० सा० च०-में भी ऐसे अनेक धार्मिक विश्वासो व क्रिया-कलापोका उल्लेख किया गया है। तीसरी संधिमें जिन-मूर्तियोका न्हवन व श्रमणोकी वंदना आदिके पुण्यप्रभावसे भवदेवका देवगतिमें जाना और वहाँसे आयु पूर्ण होनेपर वीतशोक नगरीके महापद्म नामक राजाकी महादेवी वनमालाके गर्भमें आना एक ऐसा ही विश्वास है। जंबूकुमारके गर्भमें आनेसे पूर्व उसकी माँ जिनमतीको जंबूफलोका गुच्छा, निर्धूमाग्नि, धानसे लदा हरा-भरा खेत, खिले फूलोसे परिपूर्ण कमल सरोवर और जलजीवोसे संकीर्ण सागर, ये स्वप्न होना, ऐसे ही धार्मिक विश्वासोके प्रतीक हैं। शुभ घटनाएँ, जैसे महापुरुषोका जन्म आदि, अथवा कोई महान् दुर्घटनाएँ भी काल चक्रमें किसी-न-किसी रीतिसे अपने आगमनके पूर्वसकेत दे देती है। शुभ नक्षत्र और तिथिमें शिशुका जन्म लेना और जन्मके साथ आकाशका स्वच्छ, धवल, निरभ्र हो जाना, दिशाओका धूलिरहित निर्मल हो जाना और समस्त वृक्ष, वनस्पति एवं शस्यका हरा-भरा हो जाना, फूल उठना, इन मान्यताओमें यही विश्वास है कि महापुरुषोके पुण्य और धर्मकी शक्ति महान् होती है और वह सारी चराचर सृष्टिको प्रभावित करती है, क्योकि धर्मका लोकजीवनसे और लोकका समयसे अभिन्न एव अन्योन्याश्रयी संबंध है। अत महापुरुषोकी धार्मिक शक्तिका प्रभाव लौकिक घटनाओपर पडना स्वाभाविक है। पुत्र-जन्म, विवाहादि अवसरोपर बधाई देनेकी लोकरीतिके पीछे भी यही धार्मिक भावना है कि शुभ भावनाओकी शक्ति अनंत होती है और उसका प्रभाव शिशु और नये वर-वधू आदिके भविष्य जीवनमें मंगलकारक होता है।

ये ही विश्वास जब आत्मासे बढकर परमात्मा और देवोमे केंद्रित हो जाते है, तब ये इष्ट देवताओ-की भक्तिपूर्वक पूजा, उनसे कोई वरदान मिलना या माँगना अथवा पुण्यके प्रभावसे महान् सततिका जन्म होना आदि लौकिक मान्यताओके रूपमें प्रस्फुटित होते है। जिनपूजा आदिके प्रभावसे शिवकुमार-का जन्म, और सेठकी चार पत्नियोका नागयक्षसे यह वर माँगना कि शूरसेनके समान पति पुन न मिले (३.१३), इसी प्रकारके विश्वास है। इससे यह भी पता चलता है कि नागपूजा इस देशमें कितनी प्राचीन है।

विद्याधरोका आकाशगमन, आलोकिनी आदि दिव्यविद्याएँ, आग्नेयास्त्र, वारुणास्त्र, केरलमें जंबूकी विजयपर आकाशमें देवताओका नृत्य करना और जबूको केवलज्ञान प्राप्त होनेपर देवोका आना व हर्ष मनाना ये सब बातें पुण्यकी महत्ताकी द्योतक है। क्योकि कहा गया है कि पुण्यवानोको ही ये विशिष्ट शक्तियाँ, दिव्यास्त्र एव केवलज्ञान आदि उपलब्ध होते है।

साधुओं या गृहस्थोंपर दैवीकृपा या दैवीप्रकोप भी पुण्य या पापके प्रभावसे ही माना जाता है। विद्युच्चरके ऊपर चंडमारीदेवीका अपने गणों सहित उपसर्ग (१० २६), यद्यपि स्वयं चंडमारी देवीकी दूषित भावनासे उत्पन्न नहीं है, तथापि विद्युच्चरके चोरके रूपमें किये हुए महान् कुकृत्य व पाप उसके मूल कारण रूपमें विद्यमान हैं।

कुछ शुद्ध लौकिक विश्वासोंका भी जं० सा० च०में उल्लेख है, जिनमें तंत्र, मंत्र, अद्भुत ओषधियों आदि विषयक मान्यताएँ हैं। शृगालकी कथामें आता है कि एक कामुकने शृगालका दाँत लेकर उससे अपनी प्रियाको वशमें करनेके लिए उसका दाँत तोड डाला (९.११)। विद्युच्चरने ओषधिके प्रभावसे अपने पिताके पहरेदारको स्तंभित कर दिया (३ १४); जागते हुए राजाको भी सोते सरीखा बना दिया (३ १४); जंबूकी माँसे कहा कि मैं ऐसे श्रुति-शास्त्रोंको जानता हूँ जिनसे दूसरोंका चित्त जान लेता हूँ और जिनमें लोगोंका वशीकरण, स्तंभन और मोहन, प्रेमी व प्रेमिकाको मिलाने और विघटित करने; जागे हुओंको सुलाने व सोते हुओंको स्वप्नमें जागरणका सुख देनेकी शक्ति है (९ १६)। ये सब बातें शुद्ध लौकिक विश्वास हैं। तथापि इनके साथ भी धर्मका संबंध किसी-न-किसी रूपमें जुड़ा हुआ है।

व्रत, उपवास, तप आदिका धार्मिक साधनासे अभिन्न संबंध है। इस देशमें लोग नाना प्रकारके व्रतोपवास आदि धर्मभावनासे करते रहे हैं। जैनेतर संप्रदायोंमें चांद्रायण व्रत[1] करनेका प्रचलन रहा है। स्वयं चंद्रमाके द्वारा चांद्रायणव्रत किये जानेके व्याजसे वीर कविने इस व्रतके प्रचलनका उल्लेख किया है (४ १४)।



[1]. इस व्रतमें कृष्ण प्रतिपदाके दिनसे चंद्रमा घटनेके साथ-साथ प्रतिदिन एक-एक ग्रास भोजन घटाते हुए अमावस्याके दिन पूर्ण निराहार रहा जाता है; और शुक्ल प्रतिपदाको एक ग्रास भोजन लेकर प्रतिदिन एक-एक ग्रास बढ़ाते हुए पूर्णिमाके दिन केवल १५ ग्रास आहार लिया जाता है। इस प्रकार यह व्रत एक मासमें पूर्ण होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ एवं संकेत सूची

१. अपभ्रंश काव्यत्रयी, जिनदत्तसूरि, संपा० लालचंद भगवानदास गाधी, गा० ओ० सि० क्र० ३७, १९२७ ई०

२. अपभ्रश पाठावली; संपा० मधुसूदन चिमनलाल मोदी, गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी, अहमदावाद सन् १९३५ ई०

३. अपभ्रंश भाषा और साहित्य; डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन; भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, सन् १९६५ ई०

४. अपभ्रश साहित्य; डॉ० हरिवंश कोछड; भा० सा० मदिर, दिल्ली, वि० स० २०१३

५. अनुत्तरोपपातिक दशासूत्रं, सुत्तागमे भाग १, सपा० पुप्फभिक्खु

६. अन्तकृद्दशासूत्र; वही

७. अभिनव प्राकृत व्याकरण, डॉ० नेमिचंद्र शास्त्री; तारा प्रकाशन वाराणसी, सन् १९६३ ई०

८. आख्यानकमणिकोश, नेमिचद्र सूरि, प्रा० टै० सो० ग्रंथाक ५, सन् १९६२ ई०

९. आचाराङ्गसूत्र; अनु० सौभाग्यमलजी महाराज, जैन साहित्य समिति उज्जैन, वि० स० २००७

१० उत्तररामचरित; भवभूति, हिंदी अनु० सहित, चौ० स० सिरीज, वाराणसी।

११. उत्तराध्ययन; सपा० जे० चार्पेन्टियर, उपसाल विश्वविद्यालय जर्मनी सन्, १९२२ ई०

१२. उत्तरपुराण (उ० पु०); गुणभद्र, संपा० अनु० प० पन्नालाल साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, सन् १९५४ ई०

१३. उपासकदशाङ्ग सूत्र; सपा० एन० जी० गोरे,

१४. उपासकाध्ययन (भूमिका); सोमदेव, सपा० अनु० प० कैलाशचद्र शास्त्री; भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, सन् १९६४ ई०

१५. कथासरित्सागर, सोमदेव (हिंदी) अनु० बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना

१६. कल्पसूत्र; स्थविरावलीचरित

१७. कहकोसु, (अपभ्रश); श्रीचन्द्र, सपा० डॉ० ही० ला० जैन, प्राकृत टैक्स्ट सोसायटी, वाराणसी, द्वारा शीघ्र प्रकाश्यमान

१८. कालिदासग्रन्थावली; सपा० अनु० प० सीताराम चतुर्वेदी, अलीगढ

१९. काव्यप्रकाश; मम्मट, हिंदी अनु० व टीका डा० सत्यव्रत सिंह, चौ० वि० भ० वाराणसी, ग्र० १५, वि० स० २०१२

२०. जंबू अतरगरास अथवा जबूकुमार विवाहलो, सहजसुंदर, हस्तलिखित प्रति लाल० दल० शोध स०, अहमदाबाद

२१. जंबूकुमार चौपाई, अथवा जंबूस्वामीरास, पाठक भुवनसुदरगणि हस्तलिखित प्रति, प्रासिस्थान, वही

२२ जबूकुमार रास; वाचक जसविजय हस्तलिखित प्रति, प्रासिस्थान, वही

२३. जबूकुमार रास, मुनि भूधर, हस्तलिखित प्रति, प्रासिस्थान वही

२४. जबूचरित, अथवा जबूस्वामि अज्झयण (प्राकृत) हस्तलिखित प्रतियाँ, प्रासिस्थान, (१) वही, (२) प्राच्य संस्थान वडौदा, (३) भंडारकर प्राच्य शोध सस्थान, पूना

२५. जबूचरियं (प्राकृत), गुणपाल, सपा० मुनि जिनविजय, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, भारतीय विद्याभवन, बंबई

२६. जबूपृच्छा रास; अथवा कर्मविपाक रास, वीरजी मुनि, हस्तलिखित प्रति, प्रासिस्थान ला० द० शो० सं० अहमदाबाद

२७. जंबूसामिचरित्तं (प्राकृत); पूर्व मुनि जिनविजय; जैन साहित्यवर्द्धक सभा, भावनगर, वि० सं० २००४
२८. जंबूस्वामीकथा; विजयशकर विद्याराम, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान ला० द० शो० सं०, अहमदाबाद
२९. जंबूस्वामीगीता; उपा० यशोविजय, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
३० जंबूस्वामीगुणरत्नमाला; जेठमल चोरडिया, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
३१. जंबूस्वामी चरित; अज्ञात कर्तृक, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
३२ जंबूस्वामी चरित्र, भावशेपर साह, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
३३. जंबूस्वामी चरित्र; धर्ममुनि, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
३४. जंबूस्वामी चरित्र; काव्य, जयशेखर, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
३५. जंबूस्वामी चरित्र; भापा, पाडे जिनदास, हस्तलिखित प्रति, पंचायती दि० जैन मंदिर, सरधना
३६. जम्बूस्वामी चरित्र; ब्रह्म जिनदास, हस्तलिखित प्रतियाँ (१) जयपुर शास्त्रभंडार, (२) ऐलक पन्नालाल जैन, सरस्वती भवन व्यावर, (३) भ० ओ० रि० इन्स्टी०, पूना
३७. जम्बूस्वामी चरित; पं० राजमल्ल, संपा० डॉ० जगदीशचन्द्र जैन, मा० दि० जैन ग्रन्थमाला, क्र०, ३५, वि० सं० १९९३
३८. जम्बूस्वामी चरित; मानसिंह, हस्तलिखित प्रति, भ० ओरि० रि० इन्स्टी०, पूना
३९. जम्बूस्वामी चौपाई; जिनप्रभसूरि, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान ला० द० शो० सं० अहमदाबाद
४०. जम्बूस्वामी चौपाई; अज्ञात कर्तृक, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
४१. जम्बूस्वामी रास; नयविमल, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
४२. जम्बूस्वामी रास; उपा० यशोविजय, सपा० डॉ० र० ला० ची० ला० शाह, प्रकाशित
४३. जम्बूस्वामी रास; नयविमल, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान; ला० द० शो० सं०, अहमदाबाद
४४. जसहरचरिउ, पुष्पदंत, संपा० डॉ० प० ल० वैद्य, अम्बादास चवरे, दि० जैन ग्रन्थमाला १, वि० सं० १९८७
४५. जातक, हिंदी अनुवाद, भाग १-६, अनु० भ० आ० कौसल्यायन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सन् १९४१ से १९५६ तक
४६. जिनरत्नकोश, संपा० डॉ० एच० डी० वेलणकर, भ० ओरि० रि० इन्स्टी०, पूना १९४४
४७. जैन ग्रन्थ और ग्रन्थकार, फतेहचंद वेलाणी, जै० सं० सशो० मंडल, वाराणसी, सन् १९५०
४८. जैन ग्रन्थावली, जैन श्वे० कान्फरेन्स, मुंबई, वि० सं० १९६५
४९. जैन सत्यप्रकाश, वर्ष ४, अंक १-२, वि० सं० १९९४
५०. जैन साहित्य और इतिहास (द्वि० संस्करण), नाथूराम प्रेमी, संशोधित साहित्यमाला प्रथम पुष्प, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बंबई वि० सं० २०१२
५१. जैन साहित्यका इतिहास, पूर्व पीठिका, पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, गणेश० वर्णी दि० जैन ग्रन्थमाला वाराणसी, वीर नि० सं० २४८९
५२. णायकुमार चरिउ, पुष्पदन्त, संपा० डॉ० ही० ला० जैन, देवेन्द्रकीर्ति दि० जैन ग्रन्थमाला १, वि० स० १९८९
५३. तत्त्वार्थसूत्र, ज्ञानपीठ पूजाञ्जलि, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, सन् १९५७
५४. तिलोयपण्णत्ति, यतिवृषभ, जीवराज जैन ग्रन्थमाला, शोलापुर, ग्रन्थाक १-२, वि०सं० २०००,२००७
५५. तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारु, (महापुराण)—पुष्पदंत, सपा० डॉ० प० ल० वैद्य, मा० दि० जैन ग्रन्थमाला ३७,४१,४४, सन् १९३७, १९४०, १९४१
५६ दशवैकालिक चूर्णि, जिनदासगणि, ऋषभदेव केशरियाजी, श्वे० संस्था० रतलाम, वि० सं० १८८९
५७. धर्माभ्युदयमहाकाव्य, उदयप्रभ, सिंघी जैन ग्रन्थमाला ४, भारतीय विद्याभवन बंबई, वि० सं० २००५
५८. धर्मोपदेशमाला विवरण, जयसिंहसूरि, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, भारतीय विद्याभवन बंबई, वि० सं०....

५९. नायाधम्मकहाओ, संपा० एन० व्ही० वैद्य, पूना
६०. नदीसूत्र, आगमोदय समिति प्रकाशन
६१. निरयावलियाओ, सुत्तागमे भाग २, संपा० पुप्फभिक्खु
६२. निशीथचूर्णि (सभाष्य) भाग १–४, उपा० अमरमुनि, सन्मति ज्ञानपीठ आगरा, १९५७–६०
६३. पउमचरिउ, स्वयम्भू, संपा० डॉ० ह० व० भायाणी (भाग १–३), सिंघी जैन ग्रन्थमाला ३४–३६, भारतीय विद्याभवन, बंबई १९५३, १९६०
६४. पउमचरिय, विमलसूरि, प्रा० टै० सोसा० वाराणसी, ग्रन्थाक ६, सन् १९६२ ई०
६५ परिशिष्ट पर्व, हेमचन्द्राचार्य, सपा० डॉ० हर्मन जैकोबी, एशिया० सोसायटी कलकत्ता, ग्रन्थाक ५७, सन् १८८३ ई०
६६ प्रश्नव्याकरण, सुत्तागमे भाग–१, सपा० पुप्फभिक्खु
६७. प्रभवजंबूस्वामिवेलि, अज्ञात कर्तृक, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान, ला० द० शो० स० अहमदाबाद
६८ प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य, डॉ० रामसिंह तोमर
६९. प्राकृत-पैङ्गलम्, भाग १, डॉ० भोलाशंकर व्यास, प्रा० टै० सोसा० वाराणसी, ग्रन्थाक २, सन् १९५९ ई०
७०. प्राकृत-प्रकाश, वररुचि, सी० कुन्हन राजा, अड्यार लायब्रेरी सिरीज, क्र० ५४, सन् १९४६ ई०
७१. प्राकृत व्याकरण, हेमचन्द्र, सपा० डॉ० प० ल० वैद्य, विलिंगडन कोलेज सागली, सन् १९२८ ई०
७२. प्राकृत भाषा और साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास, डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, तारा प्रकाशन, वाराणसी १९६५
७३. बृहत्कथाकोश, हरिषेण, संपा० डॉ० आ० ने० उपाध्ये, सिंघी जैन सिरीज, भारतीय विद्या-भवन, बंबई
७४. भगवती सूत्र, (व्याख्या प्रज्ञप्ति), अभयदेव कृत टीका सहित, आगमोदय समिति प्रकाशन
७५. भट्टारक सम्प्रदाय, डा० विद्याधर जोहरापुरकर, जीवराज जैन ग्रन्थमाला ८, शोलापुर वि०सं०२०१४
७६. भविसयत्तकहा, धनपाल, सपा० सी० डी० दलाल, पी० डी० गुणे, गा० ओ० सिरीज XX, सन् १९२३ ई०
७७. भारतीय सस्कृतिमे जैनधर्मका योगदान, डॉ० ही० ला० जैन, म० प्र० शा० सा० परिषद्, भोपाल, सन् १९६० ई०
७८. भोजप्रबन्ध, बल्लाल, हिन्दी अनुवाद (भूमिका), पं० जगदीश लाल शास्त्री
७९. मनुस्मृति, संपा० पं० चिन्तामणि शास्त्री, चौ० सं० सिरीज ११४, वाराणसी, वि० सं० १९९२
८०. मुद्रित जैन श्वेताम्बर ग्रन्थ नामावली
८१. यशस्तिलक चम्पू, सोमदेव, हिन्दी, अनु० प० सुंदरलाल शास्त्री, महावीर जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी सन् १९६० ई०
८२. राजस्थानके जैन भण्डारोकी ग्रन्थसूची, भाग १–४, सपा० डॉ० कस्तूरचन्द्र काशलीवाल, जैन शोध सस्थान, महावीर भवन, जयपुर
८३ वसुदेव हिण्डी, (मूल प्राकृत), सघदासगणि, सपा० मुनि चतुरविजय पुण्यविजय, जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, सन् १९३० ई०
८४. वसुदेव हिण्डी, गुजराती अनुवाद, अनु० डॉ० भोगीलाल जे० साडेसरा, वडोदा
८५. विपाकसूत्र, सुत्तागमे भाग १, सपा० पुप्फभिक्खु
८६. व्यवहार भाष्य
८७. संस्कृत व्याकरण शास्त्रका इतिहास, युधिष्ठिर मीमासक, प्रका० पं० भगदत्त वै० साधनाश्रम, देहरादून
८८. सस्कृत साहित्यका इतिहास, वाचस्पति गैरोला चौ० सं० सि० ग्र० २९, सन् १९६०

८९. समराइच्चकहा, हरिभद्रसूरि, संस्कृत छाया, पं० भगवानदास, अहमदाबाद, सन् १९३८
९०. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, हिन्दी विमला व्याख्या, पं० शालिग्राम शास्त्री
९१. सुदंसणचरिउ, मुनि नयनंदि, संपा० डॉ० ही० ला० जैन, प्राकृत शोध संस्थान वैशाली-द्वारा शीघ्र प्रकाश्यमान
९२. सूत्रकृताङ्ग, सुत्तागमे भाग १, संपा० पुप्फभिक्खु
९३. सेतुबंध, प्रवरसेन, काव्यमाला ग्र० ४७, निर्णय-सागर प्रेस, मुंबई सन् १९३५ ई०
९४. सेतुबंध; हिन्दी अनुवाद, डॉ० रघुवंश, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
९५. सौन्दरनन्द काव्य, अश्वघोष, हिन्दी अनु०, पं० सूर्यनारायण चौधरी, संस्कृत भवन, कठौतिया, (जिला पूर्णिया, विहार)
९६. स्थानाङ्गसूत्र, सुत्तागमे भाग १, संपा० पुप्फभिक्खु
९७. हिन्दीके विकासमें अपभ्रंशका योगदान. डॉ० नामवरसिंह (द्वि० संस्करण)
९८. हिन्दी साहित्यकोश, संपा० डॉ० धीरेन्द्रवर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी
९९. हरिभद्रके प्राकृत कथा साहित्यका आलोचनात्मक अध्ययन, डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, प्राकृत शोध संस्थान वैशाली, १९६५
100. Encyclopaedia of Religion and Ethics.
101. Historical Geography of Ancient India, B. C. Law.
102. Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India, N. L. Dey.
103. Twenty five hundred years of Buddhism, P. V. Bapat, Govt. of India 1956 A. D.

संकेत

अप०—अपभ्रंश
आज्ञा०—आज्ञार्थक
आत्मने०—आत्मनेपदी
उ० पु०—उत्तमपुरुष
एकव०—एकवचन
जं० च०—जंबूचरियं
जं० सा० च०—जंबूसामिचरिउ
त० सू०—तत्त्वार्थसूत्र
तृ० पु०—तृतीयपुरुष
द्वि० पु०—द्वितीयपुरुष
दे—देशी
पु०—पुल्लिङ्ग
बहुव०—बहुवचन
भवि०—भविष्यत्काल
वसु० हिंडी—वसुदेवहिण्डी
विधि०—विधिलिङ्ग
विशे०—विशेषण
स्त्री०—स्त्रीलिङ्ग
हि०—हिन्दी

वीर-विरइउ

जंबूसामिचरिउ

[संधि—१]

विजयंतु वीरचरणग्गचंपिए मंदरम्मि थरहरिए ।
कलसुच्छलंततोए सुनगंणिलग्गंतचिदुछंकारा ॥ १ ॥
सो जयउ जस्स जम्माहिसेयपय[2]-पूरपंडुरिज्जंतो ।
जणियहिमसिहरिसंको कणयगिरी राइओ नइया ॥ २ ॥
जयउ[3] जिणो जस्सारुणनहमणिपडिलग्गचक्खुसहसक्खो ।
अणियच्छिय[4]-सव्वावयव दुत्थपरिकलियलोयणो जाओ ॥ ३ ॥
भमिरभुअ[5]वेयभामियजोइसगणजणिय रयणि-दिणसंकं ।
इय जयउ जस्स पुरओ पणच्चियं चारु सुरवइणा ॥ ४ ॥
सो जयउ महावीरो झाणाणल[6]हुणियरइसुहो जस्स ।
नाणम्मि फुरइ भुअणं एक्कं नक्खत्तमिव गयणे ॥ ५ ॥

संधि—१

[मंगलाचरण]

महावीर भगवान्‌के चरणाग्र (अंगुष्ठ) से आक्रान्त होनेपर मंदराचलके कंपायमान होनेसे (अभिषेक) कलशोंसे छलकते हुए जलकी सूंडमे टकराती हुई छिटकारे जयवंत हो ॥१॥ उन (महावीर भगवान्) की जय हो जिनके जन्माभिषेकनिमित्तक जलके पूरसे पांडुवर्ण होता हुआ कनकाचल (सुवर्णगिरि मेरु) हिमगिरिकी शंका उत्पन्न करता हुआ शोभायमान हुआ ॥२॥ वे जिन भगवान् जयवंत हो जिनके अरुण-नख रूपी मणियोमें ही अपने समस्त चक्षुओंको लगा देनेवाला सहस्राक्ष (इन्द्र) भगवान्‌के शेष सब अवयवोंको न देख सकनेके कारण दुस्थ अर्थात् दरिद्र व परिसीमित अर्थात् अपर्याप्त नेत्रों वाला हुआ ॥३॥ घूमती हुई (स्वऋद्धिनिर्मित सहस्र) भुजाओंके वेगसे समस्त ज्योतिर्गणोंको घुमा देने अर्थात् स्वस्थान-भ्रष्ट कर देनेके कारण रात्रि है या दिन ऐसी, अथवा रातमें दिन और दिनमें रात ऐसी; अथवा क्षण-क्षणमे कभी दिन कभी रात, ऐसी शंका उत्पन्न करनेवाले सुरपतिने जिनके सामने अभिराम नृत्य किया, ऐसे जिन भगवान् जयवत हो ॥४॥ उन महावीर भगवान् की जय हो जिनके द्वारा अपने (आत्म) ध्यानरूपी अनलमे रतिमुख अर्थात् विषयसेवन, अथवा रति अर्थात् निजभार्या, उसके साथ काम-भोगका भाव भस्मसात् कर दिया गया है और जिनके ज्ञानमे समस्त भुवन इस प्रकार स्पष्ट झलकता है जैसे आकाशमे एक नक्षत्र ॥५॥ अपने दोनों पार्श्वों में स्थित नमि तथा विनमिकी कृपाणोंमें

---

[१] १ क ड चल°, ख ग °गि। २ क ड °पइ। ३ क ड °इ। ४ ख ग °इच्छिय। ५. क थ भुअ°। ६ ख ग घ झाणानल।

जयउ जिणो पासट्ठियनमिविणमिकिवाणफुरियपडिबिंबो।
गहियण्णरूवँजुयलो व्व तिजयमणुसासिउं[8] रिसहो॥ ६॥
जयउ सिरिपासणाहो रेहइ जस्संगनोलिमाभिन्नो।
फणिणो [9]तडिछद्दियनवघणो व्व मणिगब्भिणो फणकडप्पो॥ ७॥

[१]

पंच वि पणवेप्पिणु परमगुरु मोक्खमहागइगामिहि।
पारंभिय पच्छिमकेवलिहि[10] जिह[11] कह[12] जंबूसामिहि[13]॥ ध्रुवकं॥

पणमामि जिणेसरु वड्ढमाणु किउ जेण तित्थु जगे वड्ढमाणु।
ससुरासुरकयजम्माहिसेउ संसारसमुद्दुत्तारसेउ।
चलणग्गे[14] टोलियमेरुधीरु [15]निन्नासियसक्कासंकवीरु[16]।
नहकंतिजित्तससिसूरधामु परियाणियलोयालोयधामु।
जयसासणु विहरियसमवसरणु चउगइदुहपीडियजीवसरणु।
झाणग्गिभूइकयकम्मबंधु भव्वयणकमलकंदोट्टबंधु।
वरकमलालिंगियचारुमुत्ति रयणत्तयसाहियपरममुत्ति।

जिनका प्रतिबिम्ब पड़ रहा है, जिनसे ऐसा लगता है कि मानो तीनों लोकोका धर्मानुशासन करनेके लिए उन्होने अपने ही अन्य युगल रूप निर्माण किये है, उन ऋषभजिनकी जय हो ॥६॥ श्रीपार्श्वनाथकी जय हो जिनके शरीरकी नीलिमासे विलक्षण सर्प (धरणेन्द्र) का मणिगर्भित फणाटोप विद्युत्की छटासे युक्त (आषाढ़के) नये मेघके समान शोभायमान है ॥७॥

[१]

पाँचों परमगुरुओ (अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु)को प्रणाम करके मोक्षरूपी महागति अर्थात् श्रेष्ठगतिको जानेवाले अन्तिम केवली जंबूस्वामीकी कथा यथा परम्परा प्रारम्भ की जाती है। मै उन वर्द्धमान् जिनेश्वरको प्रणाम करता हूं जिन्होने लोकमे वर्द्धमान् अर्थात् सर्वोत्कृष्ट धर्मरूपी तीर्थका प्रवर्तन किया व देवताओंसहित असुरो-द्वारा जिनका जन्माभिषेक किया गया और जो संसाररूपी समुद्रसे पार उतारनेके लिए सेतु रूप हैं; जिन्होने अपने चरणोके अग्रभाग (अंगुष्ठ) से स्थिर मेरुपर्वतको भी कम्पायमान कर दिया व इस प्रकार शक्रदेवेन्द्रकी शका (कि यही जिन है या नही; अथवा कही भगवान्का शिशुशरीर इतने सुदीर्घ प्रमाणवाले एक हजार आठ कलशोके जलाभिषेकके पूरमे बह तो नही जायेगा–टि०) को नष्ट कर दिया; तथा जिन्होने अपने नखोकी कान्तिसे चन्द्रमा व सूर्यकी प्रभाको जीत लिया है और समस्त लोकालोककी स्थितिको जान लिया है; जगत्को (धर्मका) शासन देनेके लिए जिन्होने समवशरणके साथ विहार किया, एवं जो चतुर्गति (देव, मनुष्य, तिर्यंच व नरक) के दु खोसे पीडित जीवोके लिए शरणभूत हैं, तथा जिन्होने अपने ध्यानरूपी अग्निसे कर्मबंधको भस्मसात् कर दिया है और जो भव्यजनो रूपी कमलसमूहके लिए सूर्यके समान है, व जिन्होने चारुमूर्त्ति अर्थात् अत्यन्त शोभावती, शुद्धवर्णा व श्रेष्ठ शुद्धात्मस्वरूप लक्ष्मीका आलिंगन किया एव रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र) के द्वारा परममुक्ति अर्थात् सम्यक्त्वादि अष्टगुणोसहित सिद्धावस्थाको प्राप्त

---

७ क ड °रूय। ८ क ड °सासिउ। ९. ख ग °छिद्दिय°। १०. ख ड °लिहिं। ११ ख ग घ जिह। १२. क ड कइ। १३. क ख ड °हिं। १४. क ड °णग्ग। १५ क ड णिण्णा°। १६ ख ग °धीर।

[17]तइलोयसामि-समसित्तसत्तु [18]वयणसुहासासियसयलसत्तु।

घत्ता—तित्थंकरु केवलनाणधरु सासयपयपहु सम्मइ[19]।
जरमरणजम्मविद्धंसयरु देउ देउ महु सम्मइ[19] ॥ १ ॥

[२]

वीरहो पय पणविवि मंदमइ सविणयगिरु जंपइ वीरु कइ।
जो परगुणगहणकज्जे जियइ सिविणे वि न दोसु लेसु नियइ[1]।
सो सुयणु सहावे सच्छमइ गुणदोसपरिक्खहि[2] नारुहइ।
गुण झंपइ पयडइ दोसु[3] खलु अब्भासे जाणंतो वि खलु।
परगुणपरिहारपरंपरए ओसरउ हयासु सो वि परए।
करजोडिवि विउसहो अणुसरमि अब्भत्थण मज्जत्थहो करमि।
अवसद्दु[4] नियवि मा मणि धरउ परिडंछिवि[5] सुंदरु पउ करउ
कव्वु जे[6] कइ विरयइ एक्कगुणु[7] अण्णेक्क[8] पउंजिव्वइ[9] निउणु।
एक्कु जे पाहाणु हेमु जणइ[10] अण्णेक्कु परिक्खा तासु कुणइ[10]।
सो विरलु को वि जो उहयमइ एवं विहो वि पुणु हवइ जइ।

किया; जो त्रैलोक्यके स्वामी हैं तथा शत्रु व मित्रमें समान भाव रखते हैं व जिन्होंने अपनी वचनसुधासे सभी जीवोंको (सद्गति रूप उपलब्धिका) आश्वासन दिया है। ऐसे धर्मरूपी तीर्थके प्रवर्तक होनेसे तीर्थंकर, केवलज्ञानके धारक, शाश्वतपद (मोक्ष) के स्वामी, जरा, मरण व पुनर्जन्मका विध्वंस करनेवाले सन्मति (महावीर) देव मुझे सन्मति अर्थात् सद्बुद्धि प्रदान करें ॥ १ ॥

[२]

वीर भगवान्‌के चरणोंको प्रणाम करके मंदमति वीर कवि विनयपूर्वक कहते हैं—जो दूसरोंके गुणग्रहण करनेके लिए ही जीवित अर्थात् जागृत व उद्यत रहता है और स्वप्नमें भी लेशमात्र दोष नहीं देखता, ऐसा स्वभावसे स्वच्छमति सज्जन (किसीके) गुणदोषोंकी परीक्षामें अयोग्य होता है—अर्थात् उस ओर उसकी प्रवृत्ति नहीं जाती। परन्तु दुर्जन अपने अभ्यास (आदत) दोषसे जानता हुआ भी दूसरोंके गुणोंको तो ढांकता है और झूठे दोषको प्रकाशित करता है। दूसरेके गुणोंका निराकरण करनेका जिसका स्वभाव है, ऐसा दुर्जन मेरे इस निर्दोष काव्यमें दोष न ढूंढ़ सकनेके कारण निराश होगा। मैं हाथ जोड़कर विद्वानोंका अनुस्मरण तथा मध्यस्थ जनोंकी अभ्यर्थना करता हूँ। कोई अपशब्द देखकर उसे मनमें धारण न करे। उसे दूरसे ही छोड़कर सुंदर पदरचना कर लेवे। काव्यकर्तृत्व ही जिसका एकमात्र गुण है, वह काव्यरचना ही करता है; और कोई अन्य उसका व्याख्यान करनेमें निपुण होता है। एक पाषाण स्वर्णको उत्पन्न ही करता है, और एक अन्य पाषाण (कसौटी) उसकी परीक्षा ही करता है। ऐसा तो कोई विरला ही होता है जो उभयमति अर्थात् दोनों प्रकारकी (काव्य-रचना व काव्य-परीक्षा अथवा व्याख्यान करनेकी) प्रतिभासे सम्पन्न हो।

१७ ख ग °लोक°। १८ वयणामय°। १९ ख ग °इ।

[२] १. ख ग °इं। २. घ °क्खहिं। ३ क ख ड दोसि, ख दोस। ४ क ड °सद्द। ५ क ड °उञ्छिवि; ख ग उछवि। ६ क वि। ७. ख ग एक्कु°। ८. ख ग अण्णेक्कु। ९. ख ग °जेवइ। १०. प्रतियों में °इं।

सुइसुहयरु पढइ फुरंतु मणे कव्वत्थु निवेसइ नियवयणे ।
रसभावहिँ रंजियविउसयणु सो मुयवि सयंभु अण्णु[11] कवणु ।
सो चेय[12] गव्वु जइ नउ करइ तहो कज्जे पवणु तिहुयणु धरइ
घत्ता—[13]कयअण्णवण्णपरियत्तणु वि पयडवंधसंधाणहिँ ।
अकहिज्जमाणु कइ चोरु जणे लक्खिज्जइ वहुजाणहिँ ॥ २ ॥

[३]

सुकवित्तकरणि[1] मणवावडेण सामग्गिकवण किय मइं[2] जडेण ।
परिकलिउ पईउ जि सद्दसत्थु सुत्तु वि निप्पज्जइ जेत्थु वत्थु ।
वणगउ सच्छंदु निघंटु सुणिउ गोरसवियारु पर तक्कु सुणिउ[3] ।
महकइविनिवद्धु[4] न कव्वभेउ रामायणम्मि पर सुणिउ[5] सेउ ।
गुणु सुयणे विद्धि सुयनामकरणे चारित्तु[6] वित्तु पयवंधु वरणे ।

ऐसा यदि कोई हो भी जो श्रुति-सुखकर (कर्णमधुर) स्वरसे उसे पढे और मनमे स्फुरायमान होनेवाले काव्यार्थको अपने वचनमे रखे तथा रस और भावोसे विद्वज्जनोका अनुरंजन करे तो वह (महाकवि) स्वयम्भूको छोडकर अन्य कौन हो सकता है ? ऐसा विद्वान् भी यदि (अपने ज्ञानका) गर्व नही करता, तो उसके लिए ही ये वातवलय त्रिभुवनको धारण करते है (अर्थात् ऐसे विद्वान्से ही यह त्रैलोक्य अलकृत व सार्थक होता है।)। जिस प्रकार कोई चोर अपना स्वरूप परिवर्तन (ब्राह्मणादिका वेष बनाकर) करनेपर भी प्रकट सैंध लगानेके कारण बिना कहे भी विशेषज्ञो-द्वारा पहचान लिया जाता है, उसी प्रकार दूसरोकी काव्यरचनाओमे वर्ण या शब्द-परिवर्तन करने मात्रसे काव्यरचना करनेवाला कवि अपने काव्यगठनमे बिना कहे ही काव्यालोचको-द्वारा पहचान लिया जाता है (कि यह चोर कवि है) ॥ २ ॥

[३]

सुन्दर काव्यरचनामे लगे हुए मनवाले मुझ जडबुद्धिने कौन-सी सामग्री एकत्र की है ? क्या मैंने प्रदीप नामक शब्दशास्त्रको प्राप्त कर लिया है जिससे कि वस्तुका शुद्धवचनो-द्वारा वर्णन किया जा सके ? अथवा क्या मैंने वनमे जाकर (ऋषि-मुनियोसे) छदसहित निघटु नामकोशको सुना है ? बल्कि वनमे स्वच्छन्द तथा निर्घट—घंटारहित गज होता है, ऐसा मैंने सुना है। अथवा क्या मैंने गो—अर्थात् वाणीमे रसके विचार तथा तर्क (शुद्धता) को जाना है ? बल्कि गोरस-अर्थात् दुग्धका विकार तक्र होता है, यही मैंने जाना है। महाकवि-द्वारा रचे गये काव्यभेद (काव्यविशेष) सेतुवधको भी मैंने नही सुना, केवल रामायणमे सेतु (बधन) की बात सुनी है। शास्त्ररचनामे गुण और वृद्धि (व्याकरणकी प्रक्रियाएँ) के नामपर, मैंने सज्जनमे गुण तथा सुतके द्वारा ख्याति-प्राप्त करनेमे वृद्धि (अर्थात् वंशवृद्धि-वंशोन्नति) की बात सुनी है, और वृत्तका अर्थ मैंने केवल चारित्र-अर्थात् आचरणसे समझा है, वृत्त अर्थात् एकाक्षरादि छदसमूहको मैंने नही समझा, उसी प्रकार वरण अर्थात् पाणिग्रहणमे पयःवध अर्थात्

११ क अण्ण, व अन्नु। १२ क ड वेय°। १३ घ °अन्नवण्ण°।
[३] १ ख ग °करण। २ क ड मइ। ३ क घ ड °उ। ४ ख ग °बद्धउ। ५ क घ ड मुणिउ। ६ क घ ड °त्ति, ख °त्त।

दुव्वयणु पिसुणु जाणिउ हयासु उवलक्खिउ संवच्छरु समासु।
मुहियएण कव्वु सक्कमि करेमि[8] इच्छमि भुयहिं सायरु तरेमि।
दीहरतरुफलि[9] दोयंतु हत्थु सद्धालुउ पंगु व जणे निरत्थु।
घत्ता—अह महकइरइउ पबंधु मइं कवणु[10] चोज्जु[11] जं किज्जइ।
विद्धइ हीरेण महारयणे सुत्तेण वि पइसिज्जइ॥ ३॥

[४]

इह[1] अत्थि परमजिणपयसरणु गुलखेडविणिग्गउ सुहचरणु[2]।
सिरिलाडवग्गु तहिं विमलजसु कइदेवयत्तु निव्वूढकसु[3]।
बहुभावहिं[4] जें वरंगचरिउ पद्धडियाबंधें उद्धरिउ।
कविगुणरसरंजियविउसह[5] वित्थारिय सुद्दयवीरकह[6]।
चच्चरियबंधि विरइउ सरसु गाइज्जइ संतिउ तारजसु[7]।
नच्चिज्जइ जिणपयसेवयहिं किउ रासउ अंबादेवयहिं।
सम्मत्तमहाभरधुरधरहो तहो सरसइदेविलद्धवरहो।

जलार्पणके द्वारा वर-वधूका संयोग कराया जाता है, यही मैंने जाना है; परन्तु गद्य-पद्यमय पदबंध अर्थात् पदरचना-द्वारा महाकाव्योकी रचना करना मैं नही जानता। दुर्वचन अर्थात् (वैयाकरणोके अनुसार) 'अपशब्द'के नामपर मैं दुर्वचन बोलनेवाले दुष्ट–चुगलखोरको ही समझता हूँ व समास (कर्मधारय, तत्पुरुष आदि) के नामपर मासयुक्त संवत्सरको। भोलेपनसे ऐसा समझकर कि मैं काव्य रच सकूँगा, मैं कविकर्ममें प्रवृत्त होता हूँ, और इस प्रकार मैं भुजाओं-द्वारा सागरको तर जानेकी इच्छा करता हूँ। दीर्घवृक्षके फलोकी ओर हाथ बढानेवाले श्रद्धालु पंगुके समान ही मैं लोकोमें विकलप्रयास अर्थात् असफल प्रयत्न होऊँगा। अथवा महाकवियो द्वारा इस विषयके प्रबन्ध (महाकाव्य) की रचना की गयी है, तब क्या आश्चर्य जो मैं भी वैसी ही रचना करूँ, क्योंकि हीरेसे विंधे हुए महारत्नमें धागा भी प्रवेश कर जाता है॥ ३॥

[४]

इस देशमें अन्तिम तीर्थंकर-महावीरके चरणोका भक्त, गुलखेडका निवासी, शुभ आचरणवाला, श्री लाडवर्गगोत्री, निर्मल यशवाला और (काव्यरचनारूपी) कसौटीपर कसा हुआ महाकवि देवदत्त था, जिसने पद्धडिया छंदमें नाना भावोसे युक्त वरांगचरितका उद्धार किया तथा काव्यगुणो व रसोसे विद्वत्सभाका मनोरंजन करनेवाली सुद्धयवीरकथा (?) का विस्तारसे वर्णन किया। उन्होने सरस चच्चरिया बंधमें शान्तिनाथका महान् यशोगान किया; तथा जिन भगवान्‌के चरणोकी सेविका अंबादेवीका रास रचा जिसका जिनभगवान्‌के चरणसेवको-द्वारा नृत्याभिनय भी किया जाता है। ऐसे सम्यक्त्वरूपी महद्भारकी धुराको

७ क घ ङ °उ। ८ ख ग °वि। ९ ख ग °फल। १० क °ण। ११ ख ग चोज्ज।

[४] १ घ अह। २ ख ग गुड°। ३ ख ग निवुड्ढ। ४. के °भावहि। ५ क घ ङ °सहा। ६ क घ ङ °कहा। ७ ख ग तार°।

नामेण वीरु हुउ विणयजुउ संतुव-गब्भुब्भउ[8] पढमसुउ ।
घत्ता—अखलियसर[9]-सक्कयकइ कलिवि[10] आएसिउ सुउ पियरें ।
पाययपबंधु[11] वल्लहु जणहो विरइज्जउ किं इयरें ॥ ४ ॥

[५]

अह मालवम्मि धणकणदरिसी नयरी नामेण सिंधुवरिसी[1] ।
तहिं धक्कडवग्गे वंसतिलउ महसूयणनंदणु[2] गुणनिलउ ।
नामेण सेट्ठि तक्खडु वसइ जसपडहु जासु तिहुयणे[3] रसइ[4] ।
महकइदेवत्तहो परमसुही ते भणिउ वीरु कयसुयणदिही ।
चिरु कइहिं[5] बहुलगंथुद्धरिउ संखिल्लहिं[6] जंबुसामिचरिउ ।
पडिहाइ न वित्थरु अज्ज[7] जणे पडिभणइ[8] वीरु संकियउ मणे ।
भो भव्वबंधु किय तुच्छकहा रंजेसइ केम विसिट्ठसहा ।
एत्थंतरे पिसुणसीहसरहु तक्खडकणिट्ठु बोल्लइ भरहु ।
वित्थरसंखेवहु दिव्वझुणी गरुयारउ अंतरु वीर सुणी ।
घत्ता—सरि-सर-निवाण[9]-ठिउ बहु वि जलु सरसु न तिह मण्णिज्जइ ।
थोवउ करयत्थु विमलु जणेण अहिलासें जिह पिज्जइ ॥ ५ ॥

धारण करनेवाले और सरस्वती देवीसे वर प्राप्त करनेवाले उस (देवदत्त) कविको सतुवा (भार्या) के गर्भसे विनयसम्पन्न वीर नामका प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्रको अस्खलितस्वर अर्थात् अव्याबाध सस्कृत कवि जानकर पिताने आदेश दिया—लोकप्रिय प्राकृत प्रबन्ध (शैली) में काव्य-रचना करो अन्य रचनासे क्या ? ॥४॥

[५]

मालवदेशमे धनधान्यसे समृद्ध सिधुवर्षी नामकी नगरी है। वहाँ धाकडवर्गवशका तिलकभूत, मधुसूदनका गुणनिधान पुत्र तक्खड नामका श्रेष्ठि रहता है, जिसके यशका डका तीनो लोकोमे बजता है। महाकवि देवदत्तके सज्जनोको सुख देनेवाले उस परम सुहृत्ने वीर कविको कहा—चिरकालसे कवियो-द्वारा अनेक ग्रन्थोमे उद्धृत जबूस्वामीचरित्रका सक्षेपमे कथन करो। तब 'आर्यजनोको व्यर्थ विस्तार—अर्थात् पुनरुक्ति न मालूम हो' इस प्रकार मनमे शकित होकर वीर कविने कहा—हे भव्यबघु! (मेरे-द्वारा) रचित सक्षिप्त कथा विशिष्टसभा अर्थात् विद्वज्जनोका अनुरजन कैसे कर सकेगी ? इसके अनन्तर पिशुनरूपी सिहोके लिए अष्टापदके समान, तक्खडके कनिष्ठभ्राता भरतने कहा—हे दिव्यध्वनि (देवोके समान सुमधुर वाणी) वाले वीर कवि सुनो, विस्तार और सक्षेपमे बड़ा भारी अन्तर होता है, नदी, सरोवर और चरहियोमे बहुत सा जल है, वह सभी सरस नही माना जाता; परन्तु करवे-में रखा हुआ थोडा-सा विमल जल लोगोके द्वारा अभिलाषापूर्वक पिया जाता है ॥५॥

८ ख ग °गब्भ°। ९ क ग घ ड °सरु°। १० क ड कलवि। ११. क ड पायव°।
[५] १ क घ ड °करिसी। २ क °णदण। ३ क ड °वणे। ४ ग °इ। ५ ख घ °हिं। ६ ख ग °हिं। ७ ख ग घ अज्जु°। ८ क घ ड °इं। ९. ख ग निवाणु।

[६]

अवि य-सेट्ठिसिरितक्खडेणं भणियं च तओ समत्थमाणेण ।
वड्ढइ[1] वीरस्स मणे कइत्तकरणुज्जमो जेण ॥ १ ॥
मा होंतु ते कइंदा गरुय[2]पबंधेहिँ[3] जाण निव्वूढा ।
रसभावमुग्गिरंती विप्फुरइ[4] न भारई[5] भुवणे[6] ॥ २ ॥
संति कई वाई विहु वण्णुक्करिसे सुफुरियविण्णाणा[7] ।
रससिद्धिसंचियत्थो[8] विरलो वाई कई एक्को ॥ ३ ॥
विजयंतु जए कइणो जाणं वाणी अइट्ठ[9]पुव्वत्थे ।
उज्जोइयधरणियला[10] साहय[11]-वट्टि व्व निव्वडई ॥ ४ ॥
जाणं समग्गसद्दोहज्झेंदुउ[12] रमइ मइफडक्कम्मि ।
ताणं पि हु उवरिल्ला कस्स व बुद्धी परिप्फुरइ[13] ॥ ५ ॥

किं च स्वकृतमपि वृत्तं न स्मरसि—

स कोऽप्यंतर्वेद्यो वचनपरिपाटीं घटयतः[14]
कवेः कस्याप्यर्थः स्फुरति हृदि वाचामविषयः ।
सरस्वत्यप्यर्थान् निगदनविधौ यस्य विषमा-
मनात्मीयां चेष्टामनुभवति कष्टं च मनुते ॥ ६ ॥

[६]

और भी—भरतके इस वचनका समर्थन करते हुए श्रेष्ठि श्रीतक्खडने ऐसे वचन कहे जिनसे वीरके मनमें काव्यरचनाका उद्यम (उत्साह) बढे। उन्होने कहा—वे श्रेष्ठ कवि नही हो सकते जिनकी परिपुष्ट भारती महान् प्रबन्धो (महाकाव्यों)-द्वारा रस व भावोंकी वृष्टि करती हुई लोकमे विस्फुरायमान नही होती। वर्णो (रंगों) के उत्कर्षमे (अर्थात् चटकदार रंग चढानेमे) अत्यन्त चतुर धातुवादी तथा वर्णोके उत्कर्ष अर्थात् बडे-बड़े व सुंदर शब्दोके प्रयोगमे चतुर कवि इस लोकमें बहुत है; परन्तु रस (धातुरस) की सिद्धिसे अर्थ अर्थात् सुवर्णका संचय करनेवाला धातुवादी तथा काव्यरसोंको सिद्धिसहित सुंदर अर्थका संचय करनेवाला कवि कोई एक विरला ही होता है। जगत्में वे कवि विजयी हों जिनकी वाणी अदृष्टपूर्व (अभूतपूर्व) अर्थोके विषयमें धरणीतलको प्रकाशित करती हुई तथा उपयोग-विशेषके द्वारा गूढ़धनको प्रकाशित करनेवाली साधकवर्तिकाके समान प्रवृत्त होती है। जिनके मतिरूपी फलकपर समग्र शब्दसमूह (संस्कृत, प्राकृत व अपभ्रंश) रूपी कन्दुक नाना अर्थोमे प्रवृत्त होती हुई क्रीडा करती है, उनके भी ऊपर और किसकी बुद्धि प्रतिस्फुरित हो सकती है। और क्या तुम अपने ही रचे हुए इस वृत्तको स्मरण नहीं करते—'ऐसा कोई विरला ही अन्तर्वेदी कवि होता है जिसके हृदयमे वचन-परिपाटीकी घटना करते हुए वाणीके अगोचर कोई अभूतपूर्व ही अर्थ स्फुरित होता है, जिसके अर्थोको कहनेके प्रयासमें सरस्वती भी बड़ी विषम अनात्मनीय (असाधारण) चेष्टाका अनुभव करती है और कष्ट मानती है।

[६] १. क ङ वट्टइ। २. क घ ङ °व। ३ ग °वेवि। ४. ख ग विथरइ। ५. क घ ङ °ही। ६. क ङ भुवणे। ७. ख ग °णो; घ °विन्नाणा। ८. क ङ सव्व°; घ संधि°। ९ क पुव्व°; घ °रथो। १०. प्रतियोंमें °यलो। ११. ख ग °ह। १२. क ङ °हम्मेंदुउ। १३. क घ ङ पडि°। १४. ख ग गम°।

इय निसुणेवि वयणु[15] उच्छाहे पारंभिय कह जिणवइ नाहे।
अत्थि एत्थु[16] धणकणयसमिद्धउ मगहदेसु महियलि सुपसिद्धउ।
धम्मायारजुत्तु निदूसणु पंडवनाहु व भारहभूसणु।
विसयसारु वण्णिज्जइ हंसु व कि न[17] तरुणिथणमंडलफंसु व।
कुकइकव्वकहबंधु व वीसरु[18] भावइ नीरसस्स सुमनोहरु।
जहिं[19] जलवाहिणीउ थिरगमणउ गुरुगंभीरवलाहियरमणउ[20]।
तरलमच्छदीहरचलनयणउ वियसियइंदीवरवरवयणउ।
जलगयकुंभथोरथणहारउ[21] फेणावलिसोहियसियहारउ।
उहयकूलदुमनियसियवसणउ जलखलहलरवसज्जियरसणउ।

ये वचन सुनकर जिनमतिके पति (वीर कवि) ने उत्साहसे कथा प्रारम्भ की। यहाँपर धनकणसे समृद्ध, महीतलमे सुप्रसिद्ध मगध नामका देश है। वह धर्माचारसे युक्त है और दूषणरहित है, अत पाडवनाथ युधिष्ठिरके समान भारत (महाभारत, पक्षमे भारतदेश) का भूषण है। वह सब देशोमे श्रेष्ठ कहा जाता है, अतएव सैकडो पक्षियोमे हंसके समान तथा विषयोमे श्रेष्ठ तरुणिजनोके स्तनमण्डलके संस्पर्शके समान क्यो न वर्णनीय हो? अपने उद्यानादिकोमे वह पक्षियोके स्वर (वी+स्वर) से सयुक्त तथा जल और शस्य (नीर+शस्य)-से अति मनोहर होता हुआ कुकविकृत काव्यकथाबंधके समान स्वरहीन (विस्वर) है जो काव्यरसके ज्ञानसे हीन ग्राम्यपुरुषको खूब मनोहर लगता है। जहाँकी जलवाहिनियाँ जलवाहिनी (पनिहारिन) कामिनियोके समान है; वहाँकी पनिहारिने मद-मद गमन करनेवाली तथा विशाल, गभीर व सुपुष्ट नितम्बोवाली हैं, उसी प्रकार वहाँकी जलवाहिनियाँ मद-मंद प्रवाहवाली तथा अति विशाल व गम्भीर ह्रदो रूपी सुपुष्ट नितम्बोको धारण करनेवाली है। वहाँकी पनिहारिने चचल मत्स्योके समान दीर्घ व चचल नेत्रोवाली, तथा विकसित इंदीवरके समान प्रफुल्लित एव सुदर मुखवाली है, उसी प्रकार वहाँकी जलवाहिनियाँ चंचल-मत्स्योरूपी दीर्घ व चंचल नेत्रोवाली तथा विकसित इदीवरोरूपी प्रसन्न व सौम्य मुखवाली हैं; वहाँकी पनिहारिने जलगजोके कुभस्थलोके समान स्थूल स्तनोको धारण करनेवाली तथा फेणावलिके समान शोभायमान श्वेत (मुक्ता) हारोको धारण करनेवाली हैं, उसी प्रकार वहाँकी जलवाहिनियाँ जलहस्तियोके कुभस्थलरूपी स्थूलस्तनोको धारण करनेवाली तथा फेणावलिरूपी धवलहारोसे शोभायमान है; जिस प्रकार पनिहारिने पहने हुए वस्त्रो तथा घडोमे छलकते हुए जलके खल-खलरव एवं कटिमेखला (की किंकिणियोके मधुर कलरव) मे सुसज्जित रहती हैं, उसी प्रकार जलवाहिनियाँ उभयतटोके द्रुमोरूपी पहने हुए वस्त्र एव जलके खल-खल रव रूपी कटिमेखला (की किंकिणियोके मधुर रव) से सुसज्जित है। उस मनोहर देशको छोडकर नदियाँ अपेय विष (जल व हालाहल) के आकर (सागर) का अनुसरण करती है, अथवा

---

१५ क ड °ण। १६ ग एत्थ। १७ ख ग किनु। १८ क ड वा°। १९. क ड जहि। २० क ट °गंभीर°।
२१. क घ ड °गयकुंभिकुभथण° २२ ख ग °णिवसिय°।

घत्ता—तं देसु मणोहरु परिहरेवि सरिउ अपेउ विसायरु।
जडमइयहिं अहव विवेउ कहिं तियहिं[23] सलोणए[24] आयरु ॥ ६ ॥

[७]

[1]जहिं सरवरइँ हसियसयवत्तइँ कुकलत्ता इव अविणयवंतइँ[2]।
तडतरुछाइयसीयलनीरइँ[3] सज्जणहियया इव गंभीरइँ[3]।
उज्जाणइँ[4] परिवड्ढियमारइँ[5] जोव्वण इव पियालवणसारइँ।
इक्खारसु वियलंतु न खिज्जइ थलकमलिणिदलनिवडिउ पिज्जइ।
जहिं खज्जंति कीरमुहचुंबिउ परिपक्कउ कयलीफललुंबिउ। ५
असुहावियमुहेहिं[6] रुइरहियहिं मिरियवेल्लि चक्खिज्जइ पहियहिं।
इय आहारहिं[7] जहिं छुह[7] छिज्जइ संबलु नियघराउ न वहिज्जइ[8]।
ओणामिज्जइ[9] पावियफलभरु नायवेल्लिवेढिउ फोफलतरु।

जडमति (पक्षमे जलमयी) स्त्रियोंमे कही विवेक देखा जाता है ? वे तो केवल सलोने (सुन्दर, पक्षमें सलवण-खारा) का आदर करती हैं ॥६॥

[७]

जहांके सरोवर कुकलत्रोके समान हैं; कुकलत्र सैकडों उपहसनीय मुखों (या पात्रों अर्थात् उपपतियो ?) वाली तथा अविनयशील होती हैं; उसी प्रकार वहाँके सरोवर हसित अर्थात् विकसित शतपत्रोसे युक्त तथा अविनयशील अर्थात् जलके निरन्तर गमनागमनसे युक्त हैं। वे सरोवर तटवर्ती वृक्षोसे छाये रहनेके कारण शीतल जलवाले तथा सज्जनोके हृदयोके समान गंभीर हैं। वहांके उद्यान यौवनके समान हैं; यौवनमे मार अर्थात् काम खूब बढता है और प्रिय जनोंका कामोद्रेककारी आलाप ही उसमें सार होता है; उसी प्रकार वहाँके उद्यानोमें मार (हड) वृक्ष खूब बढ़ रहे है और प्रियाल वृक्षोकी पंक्तियों तथा पानीसे सार युक्त अर्थात् समृद्ध हैं। वहां (पके हुए फलोंके गुच्छोंसे) निरन्तर गिरता हुआ द्राक्षारस कभी क्षय नहीं होता और स्थल कमलिनियोंके पत्रों पर पडा हुआ पिया जाता है। जहाँ शुकोके द्वारा मुख चूंबे हुए (चोच मारे हुए) लटकते हुए परिपक्व कदली फलोके गुच्छे (केले) खाये जाते है। और जहाँ (सुधातुल्य मीठा द्राक्षारस पीने व मीठे फल खानेसे जिनका) मुँह बेस्वाद हो जानेसे जिन्हें और कुछ खानेसे अरुचि उत्पन्न हो गयी है, ऐसे पथिकोके द्वारा मिरिचकी वेल चखी जाती है। ऐसे (प्राकृतिक) आहारोसे जहाँ क्षुधा क्षय हो जाती है, वहाँ अपने घरोसे संबल (पाथेय) लेकर नही चला जाता। तथा जहाँ नागलता (पानकी बेल) से वेष्टित पूगवृक्ष फलोके भार-रूप पूर्ण सफलताको प्राप्त कर झुक रहा है। उस देशमे गोकुलके आँगनोमें नीले वस्त्रोंको

२३ क ड °हिं। २४. क घ ङ °णइं।

[७] १ क ड जहिं सरवरइ हसियरयवत्तइ। २ क ख ग ड °वतइ। ३. क ङ °रइ। ४. क ख ग ढ °णइ। ५ क °सारडं, ख ग °वड्ढिर°। ६. क ग ड °हिं। ७ क जिह छुहा°। ८. क °ज्जइ। ९ क ढ अणाविज्जइ, ख ग उण्णा°।

घत्ता—गोट्ठंगणे नीलनियंसणिहिँ घणथणरमणुकंतिहिँ[10] ।
पहि[11] किज्जइ[12] गमणविलंबु जहिं गोविहिं रासु रमंतिहिं ॥ ७ ॥

[८]

जहिँ कलमसालिफलेक्कयसुयंधु[1]　　वावरइ समीरणु भरियरंधु।
हल्लिरमहल्लमंजरिवसेण　　घुम्मइ[2] व धरणि रंजियरसेण।
उद्धूस इव्व वरधूसरेहिँ　　उच्चलइ व चवलयँवल्लरेहिँ[3]।
हसइ व विसट्ट[4]मुहवणफलेहिँ[5]　　नच्चइ व [6]नमंतहिँ जो नलेहिँ[7]।
मंडइ व वयणु कुसुमियसणेहिँ[7]　　सव्वंगुकरसिय करिसणेहिँ[8]।
पुंडच्छुजंतचिक्कारएहिँ[9]　　गायइ व मुक्कसिक्कारएहिँ।
सरलंगुलिउब्भिवि[10] जंपिएहिँ[11]　　पयडेइ व रिद्धि कुडुंबिएहिँ[12]।
देउलहिँ विहूसिय सहहिँ गाम　　सग्ग व अवइण्ण[13] विचित्तधाम।

घत्ता—परिहापायारहिँ परियरिउ सुरपुरसिरिदलवट्टणु ।
[14]ताहिँ देसि मणोहरु रायगिहु नामेँ निवसइ पट्टणु ॥ ८ ॥

धारण करनेवाली तथा अत्यन्त घने स्तनों व रमणोके भारसे आक्रान्त रास खेलती हुई गोपियों के द्वारा (पथिकोके लिए) पथमे गमन करनेमे विलंब कर दिया जाता है।

[८]

जहाँ कलम नामक धानकी वालोकी सुगंधिसे युक्त, समस्त रंध्रोको भरनेवाला (व रोम-रोम पुलकित करनेवाला) समीर वहता है। जिस देशकी भूमि बडी-वड़ी हिलती हुई मंजरियोके वहाने मानो रसरजित (मदमत्त) होकर घूम रही है; श्रेष्ठ मूंगकी कोमल सेमयुक्त फलियोसे मानो रोमाचित हो रही है; चपल कोपलोके ऊपरके फलियोके गुच्छोके द्वारा मानो उछल रही है; विकसित मुख अर्थात् खिले हुए कर्पासफलोसे मानो हँस रही है और झुकते हुए नलो (सरकंडे) के द्वारा मानो नाच रही है; फूले हुए सण से मानो मुखको सजा रही है और फूली हुई खेतीसे मानो सर्वाग उत्कर्षित अर्थात् उल्लसित हो रही है—ऐसा वह देश इक्षु रस निकालनेके यन्त्रोकी चीत्कारो-द्वारा मानो सीत्कारें छोड़ते हुए नाच रहा है। अपनी सरल अंगुलियोको उठा-उठाकर वोलनेवाले अपने कुटुम्वी अर्थात् किसान गृहस्थोके द्वारा जो अपनी ऋद्धि-समृद्धिको प्रकट करता है। देवकुलोसे विभूषित वहांके ग्राम ऐसे शोभायमान है मानो विचित्र भवनोवाले स्वर्ग अवतीर्ण हो गये हो। उस देशमे परिखा और प्राकारोसे घिरा हुआ इंद्रपुरीकी शोभाको भी मात करनेवाला अत्यन्त मनोहर राजगृह नामका पत्तन है ॥८॥

१० क ग ड रमण°। ११. ख ग पहिं। १२ ख ग °इं।

[८] १. ग °सालिकल°। २ ख ग °इ। ३ ख ग °लइ। ४ क ड °ट्ठ। ५ ग °ण, ड, °हिं। ६. क ड °तिहिं। ७ ड °हि। ८. क ड °करिसिय। ९ क ड °विक्कार°। १०. ख °उसिवि। ११. क ग ड उवि°। १२ क ड °रेहिं। १३ क °हिण्ण; ग °इन्न। १४ क तहिं।

[९]

गोउरं जत्थ भडरक्खियं[1] दुद्दमं कुंभविलयाण जंतीण कयकद्दमं।
हट्टमग्गं पि चल्लंतु नायरजणो एक्कमेक्केसु संघट्टियंगो घणो।
कामिणीसेयचुयकुंकुमे खुप्पए ल्हसियसिरकुसुमदामेहिं तह गुप्पए।
उवरितणभूमिधवलहरअब्भंतरे कामपंडुरकवोला गवक्खंतरे।
सासमरुमिलियभमरं मुहं[3] दावए [4]राहुससिजोयभंतिं समुप्पायए।
फलिहसिलघडियवरपंगणुम्मीसिया पोमराएहिं रंगावली दीसिया
दित्तरविकंतकिरणेहिं तमु खिज्जए जामिणी जत्थ निद्दाए जाणिज्जए
कसणमणिखंडखचियइयधरणीयलं सप्पसंकाइ चलवलियकिरणुज्जलं।
पयहिं चंपेवि[8] आहणइ जा किर थिरं धुणइ[9] कुंचइय[10]-चंचूमऊरो सिरं।
[11]सग्गिणीनामछंदो।

घत्ता—घरि घरि गोरिउ सीमंतिणिउ सक्कु धणउ[12] ईसरु जणु।
नियरिद्धिए मण्णइ[13] तुच्छसिरि सग्गु वि दुत्थु दयावणु[14] ॥९॥

---

[९]

जहाँके गोपुर भटोसे सुरक्षित होनेसे (शत्रुओके लिए) दुर्दम्य अर्थात् दुर्जेय है और जहाँ गमन करती हुई पनिहारिनोके द्वारा कर्दम कर दिया जाता है; वहाँ हाट-मार्गोसे चलता हुआ नागर समुदाय परस्परके अंगोसे खूब संघट्टित होता है; कामिनियोके स्वेदसे चूये हुए कुंकुम (की कीचड़) में वह धंस जाता है और शिरसे खिसकी हुई पुष्पमालाओमें स्खलित होता है। जहाँ ऊपरीतलके प्रासादके भीतरके गवाक्षोमें कामोद्रेकसे पांडुरवर्ण कपोलवाली कामिनी अपने स्वासकी (सुगंधित) मरुत्से आकृष्ट हुई भ्रमरपंक्तिसहित मुखमंडल दिखला रही है और राहु-शशि संयोग अर्थात् चन्द्र-ग्रहणकी भ्रान्ति उत्पन्न करती है वहाँ स्फटिक शिलाओसे घटित घर-प्रागणमे पद्मरागसे मिश्रित मणियोकी रंगोली दिखाई देती है। देदीप्यमान रविकातमणिकी किरणोंसे जहाँ अन्धकार नष्ट हो जाता है, अत· वहाँ यामिनी केवल निद्रासे ही जानी जाती है। उन घरोके पृथ्वीतल इन्द्रनीलमणियोसे खचित हैं, जिनकी लहराती हुई किरणें चंचल सर्पोकी शंका उत्पन्न करती हैं; इसलिए वहाँ मयूर पुनः-पुन अपने चरणोसे भूमिको आक्रान्त (आहत) करके (वास्तविक सर्पको न पाकर) अपने चंचुको कुंचित करके सिर धुनता है। (सग्गिणी नामक छंद)। वहाँ घर-घरमें गोरी सीमन्तिनियाँ है (स्वर्गमे एक ही गौरी है) तथा घर-घरमें शक्र और धनद-कुबेर जैसे धनी लोग है (स्वर्गमे एक ही शक्र और एक ही धनद है)। इस प्रकार अपनी ऋद्धिकी तुलनामें वह नगर स्वर्गको तुच्छ धनवान्, दुःस्थित और दयनीय मानता है (विशेपके लिए देखो आगे टिप्पण)।

---

[९] १ क °सिय। २ क ङ °वब्भं। ३ क ङ सुह। ४ क ङ °जोय तहि भतिमुप्पायए। ५. क ख ङ दं। ६. ख ग °इ। ७ ख °संड। ८. क ङ चपेहि, घ चप्पेहि। ९. ख ग °डं। १० ख ग कुचइ। ११ क घ ङ में छद नाम नही। १२ ख ग व °उ। १३ क घ ङ °इ, ख ग मन्नइ। १४. ख ग °वणउ।

[१०]

घरे घरे तूरु मणोहरु वज्जइ[1] पुरवरि नं अयालि घणु गज्जइ।
घरे घरे सुम्मइ[2] सवणसुहावणि गंधव्वाणुलग्गआलावणि।
घरे घरे जहिँ[3] नेउररवभामिणि दावइ हंसहो गइ गोसामिणि।
जहिँ दप्पणकराए[4] आमत्तिए अहरोवाहिरंगु असुणंतिए[5]।
मुद्धियाए[6] ईहंतिए[7] सियगुणु[8] दंतपंति[9] छोलिज्जइ पुणु पुणु।
कामिणीउ णं चंदणसाहउ विरइयभोयभुअंग[10]-सणाहउ।
जाहँ रूउ[11] पेक्खेवि[12] कलइत्तउ हेलइ[13] जित्तु[14] महेसरचित्तउ[15]।
जयकंखिरु तिनयणभयतट्ठउ[16] सरणउ अंगि अणंगु पइट्ठउ।
घणथणकलसहिँ[17] मुद्दरएप्पिणु[18] नियसव्वसु[19] सिंगारुँ[20] ठवेप्पिणु।
अहरए महु[21] छुहेवि[22] मयसंगहिँ[23] धणु सज्जीउ मुक्कु[24] भूभंगहिँ।
कामुअजणमणजगडणदक्खहिँ[25] वाणसमप्पिय[26] नयणकडक्खहिँ।
ऊरुखंभमंडियभुवणुल्लए रइआवासु कियउ रमणुल्लए।

[१०]

उस श्रेष्ठ नगरमे घर-घरमे ऐसा मनोहर तूर बजता है, मानो दुर्दिनमे मेघ गरजता हो। घर-घरमे गधर्वो-जैसा श्रवण सुखद वीणाका सगीत सुनाई पड़ता है। जहाँ घर-घरमे नूपुरध्वनि करती हुई गोस्वामिनियाँ (गोपियाँ), (नूपुर ध्वनिकी हसोकी ध्वनिसे समानताके कारण) हसोको (भ्रान्ति उत्पन्न करके अपने पीछे-पीछे अनुगमन कराती हुई मानो उन्हे) चलना सिखलाती है। जहाँ हाथमे लिए हुए दर्पणमे अपनी ही सूरत देखकर आसक्त अर्थात् मत्त हुई मुग्धाके द्वारा अधरोकी उपाधि अर्थात् सामीप्य जन्य ईषत् लालिमाको न समझकर धवल बनाने की इच्छासे अपनी दतपक्तिको पुन.-पुन छीला जाता है। जहाँकी कामिनियाँ सभोग सुख देने वाले (अथवा विरचित भोग अर्थात् नाना प्रकारके वस्त्राभरणादिसे सजे हुए) अपने प्रेमियोसे सनाथ है, अत वे चदनवृक्षोकी उन शाखाओके सदृश है जो विरचित भोग अर्थात् फैलाये हुए फणोवाले भुजगो (सर्पो) से युक्त होती है। जिनका सकलकला युक्त रूप देखकर हेलासे अर्थात् अनायास ही महेश्वरका चित्त विजित हो गया, अतः विजयकी आकाक्षा करनेवाला अनग उन त्रिनेत्र (महादेव) के भयसे त्रस्त हुआ उन कामिनियोके अगोकी शरणमे प्रविष्ट हो गया। जहाँ कामदेवने घने स्तनोरूपी कलशोमे चूचकोरूपी मुद्रा (मुहर) लगाकर उनमे अपना सर्वस्व श्रृंगार (सौदर्य) स्थापित करके अधरोमे काममदसे भरा मधु डालकर अपना धनुष चढाकर उनके भ्रूभगोमे छोड दिया है, अर्थात् अपने धनुषको तो भौहोको समर्पित कर दिया और अपने बाण कामीजनोके मनकी कदर्थना करनेवाले उनके नयन-कटाक्षोमे समर्पित कर दिये है, उन रमणियोका जंघाओरूपी स्तम्भोसे मडित श्रोणितलरूपी भुवन मानो रतिका

[१०] १. क °इ। २. घ °इ। ३. क जहि। ४. क °करए। ५ क ड ण मुण° ६. क घ °याइ, ड °याइ। ७ क ड °तिय। ८ क °गुण। ९ क दति°। १०. क ङ °भुवग, घ °भुयग। ११. ख ग रूव। १२ क घ ड पिच्छिवि। १३ ग घ °इ। १४. ख ग जित्त। १५. ख ग सुराहिव°। १६ ख ग °थट्टउ। १७ क घ °सह, ड °मह। १८ क ड °रएविगु। १९ क सव्वसु, ड सव्वगु। २०. ख ग रौँ। २१ क °रइ मुहु, क ड °रइ महु। २२ ख ग छुएवि। २३ क ड मइ°। २४ क ट मुक्क। २५. क घ ड कामुय°। २६ क ङ °प्पइ।

घत्ता—तहिं[27] सेणिउ[28] नयरे नराहिवइ रूवविणिज्जियरइवरु।
लवणण्णवकूलावहि—सधरधरमंडल[29]—पालियकरु ॥१०॥

[११]

जेण वलिय मंडलियअसेस वि वणगिरिगहणनिरंतरदेस वि।
वसिकियलइयकप्पु वलिमंडए[1] जयसिरि वसइ जासु भुअदंडए[2]।
मरगय[3]वण्ण[4]किवाणुप्पण्णउ जसु जसु तो वि अमरगयवण्णउ।
जासु पयावहुयासु[5] अतित्तउ खीणारिंधणखोज्जु[6] नियंतउ।
विहवीहुयहिं[7] जं जि सुमरिज्जइ अवसु विपक्खु एत्थु पाविज्जइ।
इयकज्जेण डहणमणु चलियउ रिउ[8]घरणिहुं हियवइ पज्जलियउ।
जो निव नीइतरंगिणिसायरु सुयणसरोरुहसंडदिवायरु।
अरुहभत्तु सम्मत्तधुरंधरु धम्ममहारह[9]ओडियकंधरु।
अवि य—चंडभुअदंडे[10]–खंडियपयंडमंडलियमंडलीविसडे[11]।
धाराखंडणभीयव्व जयसिरि वसइ जस्स खग्गंके ॥१॥

आवास-भवन ही है। ऐसे नगरमे श्रेणिक नामका राजा रहता है, जो रूपमे रतिपतिको भी जीतनेवाला है, तथा लवणोदधिके कूल तक पर्वतोसहित समस्त धरामंडलका धारक अर्थात् स्वामी व करपालक अर्थात् कर ग्रहण करनेवाला है ॥१०॥

[११]

जिसने गहन वनों व पर्वतों तथा व्यवधानरहित देशों वाले समस्त माडलीकोको साध लिया है एव देवलोकको भी बलपूर्वक वशमे कर लिया है, तथा जिसके भुजदंडमे जयश्रीका वास है। जिसका यश मरकत (नील, कृष्ण) वर्ण कृपाणसे उत्पन्न होनेपर भी अमरगज अर्थात् ऐरावत हाथीके (धवल) वर्णका है, अथवा अमरगतवर्ण अर्थात् देवताओ तक भी उसकी स्तुति गायी जाती है। जिसका अतृप्त प्रतापाग्नि शत्रुरूपी ईंधनके क्षीण हो जानेपर (अतिरिक्त ईंधनकी) खोज करता हुआ—शत्रुओकी विधवा हुई पत्नियोके द्वारा अपने हृदयमे निरन्तर उनका स्मरण किया जाता है, अत. शत्रुपक्ष वहाँ अवश्य प्राप्त होगा, इस हेतुसे उसे दहन करनेकी इच्छासे चला व रिपु-गृहिणियोंके हृदयोमें (अपने मृतपतियोंके शोकाग्निके रूपमे) प्रज्वलित हो उठा। जो नृप नीतिरूपी तरंगिणिके लिए सागर है, वही सज्जनोरूपी कमलसमूहके लिए दिवाकर है। वह अरहंतोका भक्त है तथा धर्मरूपी महारथ (की धुरा) को कधोपर उठानेवाला है।

और भी—जिसके प्रचंड माडलीकोकी मडलीके अति बलशाली भुजदंडोंको काटनेवाले वीभत्स खड्गकी गोदमे जयश्री मानो उसकी धारासे खंड-खंड हो जानेके भयसे निवास करती है ॥१॥

२७. क ङ तहि। २८. क ङ °उं। २९. क ङ °मंडलु।

[११] १ क ङ °मंडइं; ध °वडए। २. क भुयदडइं; ख ङ भुय °दडइ। ३ क ङ °गइ। ४. ख ग °वण्णु, घ °वन्न। ५ ख ग व °हुयासु। ६. क ङ खोजु। ७. क ङ °हुयहि। ८ क ङ °णिहि, घ °णिहि। ९. क ङ °महाभर। १० क घ ङ °भुय०। ११. क ङ °विसटे।

रे रे[12] पलाह कायर मुहाइँ[13] पेक्खइ न संगरे सामी।
इय जस्स पयावघोसणाए विहडंति[14] वइरिणो दूरे ॥२॥
जस्स य रक्खियगोमंडलस्स पुरुसोत्तमस्स पद्धाए[15]।
के के सवा न जाया समरे गयपहरणा रिउणो ॥३॥

अण्णं च गाहा जुअलं[16]—

भग्गाभूवल्लिसोहो हरियाहरपल्लवारुणच्छाउं।
[17]ससियालयालिमालो अहलीकयपुप्फपरिणामो ॥४॥
हयचंदणतिलयरुई-रिउरमणीरम्मजोव्वणवणेसु।
कोहदुव्वायवेउ नरवइणो जस्स निव्वडिओ ॥५॥

घत्ता—जसु तणए रज्जे नहमग्गे ठिउ वाउ वहइ रवि तप्पइ[18]।
संपुण्णमणोरहु[19] चउदिसिहिँ[20] सइँ वसुमइ[21] फलु अप्पइ[22] ॥११॥

रे! रे! भाग (भागकर अपने प्राण बचा); क्योंकि स्वामी संग्राममे कायरोंके मुख नही देखते (पलके उठनेसे पूर्व ही तत्क्षण मार डालते है), इस प्रकारकी जिसकी प्रताप-घोषणासे ही वैरी दूरसे ही विघटित अर्थात् छिन्न-भिन्न हो जाते हैं ॥२॥

उस सरक्षित गोमंडल (गायोंका सघात अर्थात् ब्रजमंडल, राजाके पक्षमें पृथ्वीमंडल) वाले पुरुषोत्तम (विष्णु व पुरुषोमे उत्तम श्रेणिक राजा) की स्पर्द्धासे (कि हमारा भी पृथ्वीमंडल अच्छी तरह सरक्षित है) युद्धमे कौन शत्रु गतप्रहरण अर्थात् शस्त्रहीन होकर, गदाप्रहरण अर्थात् गदाशस्त्रको धारण करनेवाले केशव (केसवा) अर्थात् शवमात्र नही हो गये (के सवा = के शवाः न जाता. टि०) ॥३॥

अन्य और गाथायुगल—जिस नरपतिके क्रोधरूपी दुर्वातका वेग रिपुरमणियोके रम्य-यौवनरूपी वनोमे पड़कर इस प्रकार विनाशकारी हुआ—दुर्वात अर्थात् आंधीका वेग रमणीक वनोमें पड़कर भूमिलताओको शोभाको भग्न कर देता है, कोमल पल्लवोकी अरुण-आभाको हर लेता है, नवाकुरोपर-मे अलिमाला (भ्रमरपक्ति) को उपशान्त अर्थात् दूर कर देता है, पुष्पो-को गिराकर निष्फल-परिणाम कर देता है, तथा चंदन व तिलकवृक्षोकी रुचि (शोभा) को विनष्ट कर देता है; उसी प्रकार नरपतिके क्रोधरूपी दुर्वातके वेगने रिपुरमणियोके रमणीय यौवन कालमे ही उनपर पड़कर (उन्हे विधवा बनाकर) शृगारके अभावमे उनके अधर पल्लवोकी अरुण कातिको हर लिया है, पुष्पसज्जाके अभावमे उनको अलकोंपर आकृष्ट होनेवाली भ्रमरपक्तिको दूर कर दिया है, उनके 'पुष्पपरिणाम' अर्थात् ऋतुमती होनेको निष्फल कर दिया है, एव अंग-प्रत्यगमे चदन लेप व माथेपर तिलकको शोभाका हरण कर लिया है ॥४–५॥ जिस नरपतिके राज्यके नभोमार्ग व नीतिमार्गमे वायु व सूर्य मर्यादाका अनतिक्रमण करते हुए वहते व तपते है, एवं जहाँ स्वयं वसुमति चारो दिशाओमे 'सम्पूर्णमनोरथफल' अर्थात् सभी मनोरथोको पूर्ण करनेरूपी फल प्रदान करती है ॥११॥

१२ क रे ले। १३ क ड °इ। १४ क ड वि हुति। १५ क सद्धाए, ड सद्ध। ए १६ क ड जुवलं, घ जुयल। १७ क घ ड समयालि°। १८ ख ग °इ। १९ प्रतियो मे °मणोरह। २० क ड °दिसहिं। २१ ख ग °मइ। २२ ख ग °इ। विशेष—ग प्रति मे छठी पक्ति के पश्चात् 'ताह तहं सुजमेहिं उल्हवियउ सयणु विवत्थे हवइ मकुइयउ' यह पक्ति अतिरिक्त है।

[१२]

तहो अट्ठसहसदप्पियमयणु सोहग्गरूवनिहिराणियणु ।
छणरुंदचंदमंडलवयणु उत्तालबालहरिणीनयणु ।
कलयंठिकंठकलमहुरसरु वंधूयकुसुमतंबिरअहरु ।
कलहोयकलसनिब्भिंदथणु अइझीणमज्झु चक्कलरमणु ।
वरकामिणिकरचालियचमरु मुहमरुमिलंतगुंजियभमरु ।
सहुं तेहिं विलासें संचरइ नरवइ सत्तंगु रज्जु करइ ।
एक्कहे दिणि सक्कलीलें वहइ चामीयरसिंहासणि सहइ ।
सामंतमंतिपरिवारसहुं अत्थाणि परिट्ठिउ जाम पहु ।
घत्ता—अह कणयदंडविणिवद्धपडु दुउवारियजणपेसिउ ।
आयउ जुवाणु निरु एक्कु जणु नरवइ तेण नमंसिउ ॥१२॥

[१३]

अहो रायाहिराय जयसिरिरस चउरयणायरंतपसरियजस ।
पेक्खु पेक्खु अचंभउ वट्टइ नहयलु दुंदुहिसद्दें फुट्टइ ।

[१२]

उस राजाकी मदनको दर्प पैदा करनेवाली, सौभाग्य व रूपकी निधि अष्टसहस्र रानियाँ थीं। वे विशाल पूर्णचन्द्रमाके समान मुख तथा भयत्रस्त बालहरिणीके समान नेत्रोंवाली थीं। उनका स्वर कलकंठी (कोकिला) के समान मधुर था, व अधरोष्ठ वंधूक पुष्पके समान ताम्रवर्ण थे। उनके स्तन कलधौत कलशके समान निर्भेद्य अर्थात् कठोर व सुपुष्ट थे, कटिभाग अत्यन्त क्षीण व नितम्ब बड़े-बड़े चक्कोंके आकारके थे। सुंदर कामिनियोंके हाथोंसे उनके ऊपर चमर डुलाये जाते थे, एवं मुखकी सुगन्धित आश्वाससे आकृष्ट होकर एकत्र होते हुए भौंरे गुंजार करते थे। उन रानियोंके साथ विलासपूर्वक विहार करता हुआ राजा सप्त-अंगो (स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोश, बल एवं सुहृद) से पूर्ण राज्य करता था। इस प्रकार जब एक दिन शक्रके समान क्रीड़ा (विलास) धारण करता हुआ राजा स्वर्णसिंहासनपर विराजमान होता हुआ, सामंत व मंत्रियोंके परिवारसहित सभामंडपमें बैठा था, तब शलाकादंडसे कपड़ेको (मूठ बनाकर) बाँधे हुए दौवारिक द्वारा भेजा हुआ एक अत्यन्त जवान व्यक्ति वहाँ आया और उसने नरपतिको प्रणाम किया ॥१२॥

[१३]

हे जयश्रीमें रस लेने वाले व चारों रत्नाकरोंके अन्त तक प्रसृत यशवाले राजाधिराज देखिए! देखिए! एक बड़ा अचंभा हो रहा है कि नभस्तल दुंदुभिके शब्दसें फूटा जा रहा है। आज

[१२] १. ख ग °निब्भिट। २. घ °खीण। ३. ख ग °रइं। ४. ख °सणु। ५. क ङ दुउ°। ६. ख ग आइय। ७. ख ग नरु; क ङ णिरु।

अज्जु अयाले[1] वणासइ[2] रिद्धी अहिणवदलफलकुसुमसमिद्धी ।
अज्जु सुयंधु एहु सीयलु[3] घणु वाउ वाइ जं पूरियकाणणु ।
जं जि तलायइँ[4] वड्ढिय[5] नीरइँ विमलतरंगक्खालियतीरइँ[6] ।
अज्जु अकिट्ठपच्चकणधण्णहिं[7] छेत्तभूमिपसविय बहुवण्णहिं ।
दीसइ अज्जु सरसु जं एहउ गाविउ खीरु खिरंति अमोहउ ।
वड्ढुउ कोऊहलु उप्पायमि[8] कारणु एउ देव वद्धावमि[9] ।
घत्ता—इय समवसरणसंपयसहिउ चउगइकम्मखयंकरु ।
संपाइउ[10] विउलमहासिहरे वड्ढमाणु[11] तित्थंकरु ॥१३॥

[१४]

आयण्णिवि तं मगहेसरेण सिरिकमलविरइयंजलि[1] करेण ।
जय-जय-गहिरक्खरभासणेण सहसत्तिमुक्कसिंहासणेण ।
केऊरकडयमणिकुंडलेहिं वद्धावउ पुज्जिउ उज्जलेहिँ ।
सम्मत्तभत्तिकंटइयगत्तु कइवयपयाइँ[3] जाएवि[4] नियत्तु ।
वहिरियकण्णंत-दियंतपूरु अप्फालिउ लहु आणंदतूरु ।
थगथुगि-थुगिथगदुगि-पडहसद्दु[5] घुमुघुमुघुम्मावियमुरयनद्दु ।

अकाल अर्थात् बिना ऋतुके ही समस्त वनस्पति हरी-भरी हो उठी है और वह अभिनव पत्रो-पुष्पों व फलोंसे समृद्ध हो गयी है । आज ऐसा सुगंधित शीतल व सघन वायु बह रहा है जिसने सारे काननको पूर दिया है । और जो तालाब हैं, सबमें पानी बढ़ गया है, तथा विमल तरंगोंसे उनके तीर प्रक्षालित हो रहे हैं । आज बिना कृषि किये हुए ही पके हुए कणवाले अनेक प्रकारके धान्यसे समस्त क्षेत्र भूमि (कृषि भूमि) प्रसवित (निष्पन्न) हो रही है । आज यह दिखाई देता है कि गायें (बिना दुहे ही) प्रचुर मात्रामें अत्यन्त सरस दूध क्षरण कर रही हैं । हे देव ! मैं आपको बड़ा भारी कौतूहल उत्पन्न कर रहा हूँ व इस हेतुसे आपको बधाई देता हूँ कि इस प्रकारसे समस्त समवशरण संपदाके साथ चारों गतियोंके कर्मोंका क्षय करने-वाले वर्द्धमान तीर्थंकर विपुलमहाशिखरपर पधारे हैं ॥१३॥

[१४]

उस शुभ समाचारको सुनकर मगधेश्वरने अपने शिरोकमलपर प्रणामांजलि करके जय ! जय ! का गंभीर घोष करते हुए सहसा सिंहासन छोड़कर अपने उज्ज्वल केयूर, कड़े और मणिकुंडलोंसे वर्द्धापकका पूजा-सत्कार किया । फिर सम्यक्श्रद्धायुक्त भक्तिसे रोमांचित गात्र होकर कुछ पद आगे (भ० के समवशरणकी दिशामें) जाकर वापिस लौटा । शीघ्र ही कानोंको बधिर करनेवाला तथा समस्त दिगन्तोंको पूरनेवाला आनंदतूर्य बजाया गया । थग-थुगि, थुगि-थग-दुगि करते हुए पटहका शब्द होने लगा, व घुम-घुम करते हुए मुरजका नाद [सब

[१३] १. ख ग °लें । २. ख ग वण° । ३ क व ड °ल । ४ ख व ड °यह । ५. ख ग वड्ढिय° । ६. क °इ । ७ क °हं । ८. क ड पआोयमि । ९. क ड °यमि । १०. क ड °यइ । ११ क ड वद्ध° ।
[१४] १. ख ग °अंजलि । २ ख ग कय° । ३. क ड °इ । ४. क जायवि । ५. ख ग घ थगदुगे

[६]खडतड-तडिखरतडि-तरडखोहु रणझण[७]झणंतकंसालसोहु ।
त्रं त्रं त्रं ताडिय ढक्कसारु रुं रुं रुं रुंजिय [८]रुंजफारु ।
तडतडणत[९]डिय काहलविलासु हूहुयइँ[१०] संख पूरंतसासु ।
जणु चलिउ सयलु परिघुट्ठ नाउ वारुअकरिणिहे[११] संचडिउ राउ

घत्ता—मंडलवइतारापरियरिउ[१२] पुण्णिमचंदु व उग्गउ ।
जिणवंदणहत्तिए तुट्ठमणु नरवइ नयरहो निग्गउ ॥१४॥

[१५]

ताम चलियं चलंतेण कियकलयलं पउरजणसंकुलं चाउरंगं वलं ।
कहिँ मि पज्झरियमयकुंजरो[१] धाविउ दंसियारेहिँ[२] वीरेहि रोसाविउ ।
कहिँ मि निवकुमरकस[३]घायताडियहओ खु[४]रपहारेण खोणी खणंतं गओ[५] ।
क[६]हिँ मि घरहरियरहत्तास[७]मिल्लियसरो वियलियासणनरं नासए वेसरो ।
कहिँ मि कुंतासि-कडिसल्ल[८]-करतक्कडं[९] धंतखेल्लंतपाइक्कघडसंकडं ।[१०]
कहिँ मि भूमीकमं छड्डिरो वारिया दंडधारेहिँ[११] निरवीरमोसारिया[१२] ।

दिशाओंमें) घूमने लगा। खर-तड, तडि-खर-तडि करते हुए तरड वाद्य (लोकोंमें) क्षोभ अर्थात् आश्चर्यपूर्ण हलचल उत्पन्न करने लगा; व रण-झण रण-झण झंकार उत्पन्न करते हुए कांस्य वाद्य सुंदर लगने लगा, त्रं त्रं त्रं करते हुए श्रेष्ठ ढक्का (डमरु) बजाया जाने लगा, व रुं रुं रुं करते हुए रुंजा वाद्य उच्चस्वरसे रुंजायमान हुआ। तड-तड-तड करते हुए काहल वाद्यका विलास हुआ व दीर्घ आश्वाससे आपूर्यमाण शंख हू हू करके बज उठे। सब लोग चल पड़े, बड़े उच्चस्वरका परिघोष हुआ व राजा भी शीघ्रगामी-हथिनी पर सवार हो गया। जिस प्रकार नक्षत्रमंडलका पति पूर्णिमा का चंद्रमा तारोसे परिवारित अर्थात् चारों ओरसे घिरा हुआ उदित होता है, उसी प्रकार पृथ्वीमंडलका स्वामी वह राजा भी परिजन, पौरजन व मंत्रि-सामंत इत्यादिसे परिवरित होकर जिनवदनाकी भक्तिसे प्रसन्न मन होकर नगरसे निकला ॥१४॥

[१५]

तब पौरजनोसे युक्त चतुरग सैन्य चल पड़ा, व उसके चलनेसे बड़ा कलकल हुआ। कहीपर मद झराता हुआ हाथी आर दिखानेवाले अर्थात् महावत वीरोसे क्रुद्ध होकर दौड पड़ा। कहीपर नृपकुमारो द्वारा कशाघातसे आहत हुआ अश्व खुरप्रहारसे क्षोणी (पृथ्वी) को खोदता हुआ गया। कहीपर रथकी घर-घराहटसे त्रस्त हुआ खच्चर हिनहिनाकर सवारको आसनसे गिराता हुआ भाग खड़ा हुआ। कही कुंत, असि व कटिशूल आदि शस्त्रोको धारण करनेवाले समर्थ भुजाओंवाले पदातियोंका समूह खेलता हुआ दौड़ पड़ा। कही भूमिक्रम अर्थात् पंक्ति

थगदुगे पडपडहसद्दु। ६. ख ग खरतड तडखर तड टरड वाहु; घ खरतड तडिखर तडि टरडखोहु। ७. क ङ रणखण°। ८. क ङ हुंज°। ९. क घ ङ पडिय°। १०. ख ग हूहुहुय। ११. क ङ °करणि, ख ग घ °णिहि°। १२ क ङ °पडिउरिउ।

[१५] १. क °कुंभिरो। २ क ङ °यारेहि। ३. क °कुस। ४. क खर°। ५. क खणंतगउ। ख ग खणंतउ गओ। ६. क ख ग ङ कहिमि। ७ ख ग घ °तास। ८. ख ग °तल्ल। ९. क घ ङ करि°। १०. घ °पाइल्लयङ°। ११ क °करेहि। १२. क ङ निरवीसमो°।

कहिँ मि मणिखइयचंदोवयाडंबरं सिक्किरीधवलधयछत्तछइयंबरं ।
ताव[13] थोवंतरे विउलगिरि लक्खिओ हत्थपसरेण अवरोप्परं अक्खिओ ।
जो समोसरण[14] लच्छीए उज्जोइओ[14] उद्धदिट्ठीहिँ नियडेहिँ[15] पुणु जोइओ ।
[16]नियचंगत्तणाहिट्ठओ गज्जए कणयसेलो इमो केम मह पुज्जए ।
घत्ता—इहु कंचणु[17] तुंगिम परए करु [18]निवसियदेवणिकायहो ।
देवाहिदेउ[19] महु सिहरि ठिउ किम समसीसी[20] आयहो ॥१५॥

[१६]

दूरुज्झियहयगयरहपत्तें[1] परियणपउरजुएण सकलत्तें ।
दीसइ समवसरणु[2] महिनाहें मोक्खदुवारु व केवलवाहें ।
इंदाएसें धणयविणिम्मिउ जोयणेक्कु चउगोउरपरिमिउ ।
मणिकुड्डंतरु दिण्णपयाहिण[3] वारहकोट्ठा दिट्ठसुहावण ।
गणहरपमुहसवण ठिय एक्कहिँ कप्पवासिदेविउ अण्णेक्कहिँ ।
तइयइ अज्जियाउ चउथइ पुणु फुरियकंतिजोइसजुवईयणु ।
पंचमे वितंरविलयउ सारिउ छट्ठए दिट्ठउ भावणनारिउ ।

संगठनाका परित्याग करनेवाली अपनी वीर मंडलीको रोककर दंडधारी नायकोने उन्हे पंक्तिमें स्थित रखा; आकाश कहींपर तने हुए मणिखचित चंदोवो व कही पताकाओ तथा धवल ध्वजा और छत्रोंसे छा गया । तव थोड़ी दूरपर विपुलगिरि देखा गया और लोगोने हाथ पसार पसारकर एक दूसरेको वतलाया । जो (विपुलगिरि) समोशरणकी विभूतिसे शोभायमान था, उसे निकट गये हुए लोगोने आँखे उठाकर देखा । वह अपनी श्रेष्ठतासे हर्षित होकर (मानो) गरज रहा था कि यह कनकशैल (सुवर्णाचल-मेरु) मेरी तुलना कैसे कर सकता है ? इसका यह सुवर्ण और यह तुंगिमा दूर हटाओ ! नाना देवनिकायोसे वसे हुए इसको मेरे साथ तुलना ही क्या ? मेरे शिखरपर तो देवाधिदेव (तीर्थंकर) विराजमान हैं ॥ १५ ॥

[१६]

हाथी, घोड़े व रथ आदि वाहनोंको दूर ही छोड़कर परिजन, पौरजन एवं रानियोंके साथ भूपतिने समोशरणको देखा, जो केवलज्ञानको वहन करनेवाले तीर्थंकरसे मानो मोक्षका द्वार ही था । वह समोशरण इंद्रके आदेशसे धनदके द्वारा निर्मित किया गया था, तथा एक योजन विस्तार और चार गोपुरोंसे परिमित था, व मणिनिर्मित भित्तियोके बीचमे प्रदक्षिणा बनी थी, उसमे राजाने वहुत सुहावने वारह कोठे देखे । एक कोठेमें गणधरको प्रमुख करके सब श्रमण वैंठे थे, और दूसरेमें कल्पवासी देवियाँ, तीसरे कोठेमे आर्यिकाएँ और चौथेमे स्फुरायमान् कांतिवाली ज्योतिष्क-युवतियाँ, पाँचवेंमे सुदर व्यन्तर नारियाँ थी, तो छठेमे भवनवासी

---

१३. क घ ड ताम । १४ क °लच्छीपउज्जोइयो । १५. क ड °डेहि । १६ क ड नियगलत्तणा । १७. क ड °ण । १८. क ड णियडिय° । १९ क ड °देव । २० क ड °रीसो ।

[१६] १. क ख ड °छत्तें । २. क ड °सरण । ३. क ड °हुण । ४. क ड जुयई° । ५ ख ग वें° । ६. क ड भाविणु° ।

सत्तमे जोइस अट्ठमि वितरें[6] नवमइ भावण थक्कनिरंतर।
दसमइँ[7] कप्पवासि थिय सुरवर एयारहमइँ[8] मणुयमणोहर।
मुक्कविरोहतिरियसुहभावण वारहमएँ[8] संठिय सुत्थियमण।
घत्ता—मरगयमउ पोमरायकुसुमु[9] इंदनीलदलसुंदरु[10]।
अह कोमलचलपल्लवबहलु दिट्ठु असोयमहातरु ॥१६॥

[१७]

तहो तले कणय रयणहरि[1] विट्ठरे किरणाहयसुरिंदसेहरकरे।
पत्तपहुत्ततिछत्तालंकिए[2] देवकुमारमुक्ककुसुमंकिए।
चामरकरजक्खेसरभद्दए दुंदुहिसद्दनिहयपडिसद्दए[3]।
दिव्वए[4] सव्ववाणिपरियाणिए सयलभाससंवलियए[5] वाणिए।
भामंडलमज्झट्ठिउ छज्जिउ[6] फलिहवण्णु पडिबिंबविवज्जिउ[7]।
अलिउलकेसुब्भासिउ वरसिरु दंतदित्तिधवलियजयमंदिरु।
उग्गयधम्मचक्कमंडियसहु वीयराउ तइलोक्कपियामहु।
दिट्ठु जिणंदु[8] पयाहिणदेंते[9] पुणु पणविउ उच्चारियथोत्ते।

देवोंकी स्त्रियाँ, तथा सातवेमें ज्योतिषी देव; आठवेंमे व्यन्तर देव और नौवेमे भवनवासी देव स्थित थे। दसवें कोठेमे कल्पवासी देव तथा ग्यारहवेंमें मनुष्य विराजमान थे। बारहवें कोठेमे परस्पर वैर—विरोधको भूलकर शुभभावनासे स्वस्थमन होकर सब तिर्यंच जीव बैठे थे। तब राजाने मरकतमणियोसे जड़े हुए पद्मरागमणिके समान पुष्पो व मरकतमणिदलोके समान अत्यन्त सुंदर, कोमल व चंचल पत्रोसे प्रचुर अशोक महावृक्षको देखा ॥१६॥

[१७]

उस अशोक वृक्षके नीचे अपनी किरणोसे सुरेंद्रके शेखरकी किरणोंको तिरोहित करनेवाले स्वर्णरत्नमय सिंहासनपर, (तीनो लोकोके) प्रभुत्वको प्राप्त व तीन छत्रो (अथवा तीर्थंकरत्व) से अलंकृत, देवकुमारो द्वारा वर्षाये गये पुष्पोसे सुशोभित, कल्याणप्रद यक्षेश्वरके द्वारा हाथोमे चवर धारण किये जाते हुए, (दिव्य) दुदुभिके शब्दसे समस्त प्रतिशब्दोके निहत होते हुए, एवं समस्त बोलियोंका परिज्ञान करानेवाली तथा (अठारह देशोत्पन्न) सर्वभाषा समन्वित दिव्यवाणीसे युक्त वे भगवान् भामंडलके मध्यमे बैठे हुए सुशोभित हो रहे थे। उनका वर्ण स्फटिकके समान था, जिसका कोई प्रतिबिम्ब नही पड़ता। उनका उत्तम शिरोभाग भ्रमरकुलके समान काले केशोंसे उद्भासित था, और उनकी दंतपंक्तिकी दीप्तिसे संपूर्ण लोकरूपी मंदिर उज्ज्वल हो रहा था। उत्पन्न हुए धर्मचक्रसे मंडित सर्वशक्तिमान वीतराग और त्रैलोक्यके पितामह उन जिनेंद्रको राजाने प्रदक्षिणा देते हुए देखा, और फिर स्तोत्रका उच्चारण करके

७. क ङ दह॰। घ ॰मइं। ८. घ ॰मइं। ९. ख ग पोमारयकुसमु। १०. क घ ङ॰ दलु॰।

[१७] १ क ङ ॰रइणहरि॰; ख ग ॰हरे॰। २ ख ग ङ तित्थता॰। ३. क घ ङ ॰इं। ४. क घ ङ ॰इं।॰ ५. क ङ संच॰, ख ग ॰सवलिए। ६. क छज्जइ; ङ छज्जउ। ७. क ॰ज्जइ, ङ ॰ज्जउ। ८. क घ ङ जिणिंदु। ९. क ङ दिंति; घ देंति।

घत्ता—संसारनिसिहिँ रइतमगहिउ मायानिद्दए[10] सुत्तउ।
पईं[11] केवलनाणदिवायरेणं[12] जगु संबोहिउ सुत्तउ ॥१७॥

[१८]

तुमं[1] देव सव्वण्हु[2] लच्छीविसालो अहं वण्णिऊणं न सक्केमि बालो।
समुज्जोइयँासोह[3] वा तेयपूरो न पुज्जिज्जए किं पईवेण सूरो।
न ते वीयरायस्स पूयाए[4] तोसो न वा संत वइरस्स[5] निंदाए रोसो।
परं ते समुग्गीरियं देव नामं पवित्तेउ चित्तं महं सुक्खथामं[6]।
तुमं पुज्जमाणस्स लोयस्स एसो महापुण्णपुंजम्मि सावज्जलेसो।
कणो जेम हालाहलस्सप्पसत्थो सुहासायरं दूसिउं[7] नो समत्थो।
अविग्घो तई देव सिद्धो समग्गो तिलोयग्गगामीण भव्वाण मग्गो।
पडंतो जणो मोहकालाहिखद्धो किओ देव वायासुहाए विसुद्धो।
तुमं पत्तसंसारकूवारतीरो तुमं सामि संपुण्णविज्जासरीरो।
तए नाणजोईए उद्दित्तमेयं[9] समुब्भासए चंदसूराण तेयं[10]।

प्रणाम किया—इस संसाररूपी निशामे रति (काम व मोह)रूपी अंधकारसे ग्रहीत और मायारूपी निद्राके वशीभूत होकर सोते हुए (अर्थात् आत्महितसे विमुख) जगतको आपने अपने केवलज्ञानरूपी दिवाकरसे प्रतिबुद्ध किया ॥ १७ ॥

[१८]

हे देव ! आप सर्वज्ञ है और (केवलज्ञानादिरूप) लक्ष्मीसे विशाल है। मैं अबोध-अज्ञानी आपका वर्णन करनेमे समर्थ नही हूँ। आपकी शोभा स्वयं प्रकाशित है, तथापि क्या तेजपूर्ण सूर्य दीपकसे पूजा नही जाता (अर्थात् मेरे द्वारा आपके गुणोका वर्णन सूर्यको दीपक दिखाने जैसा है)। वीतराग होनेसे, तुझे न तो पूजासे तोष (आनद) होता है और न शातवैर अर्थात् वीतद्वेष होनेसे निंदासे रोष। तथापि आपका नाम, जो कि सुखका धाम है, वह उच्चारण करने मात्रसे मेरे चित्तको पवित्र करे (अर्थात् पवित्र करता है)। तुम्हारी पूजा करनेवाले लोकके महापुण्य-सचयमे लेशमात्र पाप दूषण उत्पन्न करनेमे उसीप्रकार समर्थ नही होता, जिसप्रकार हालाहल विषका एक अमंगलकारी कण अमृतसागरको दूषित करनेमे। देव ! आपने त्रिलोकके अग्रभाग अर्थात् मोक्षको जानेवाले भव्य जीवोके लिये निर्विघ्न एवं समग्र मार्गका उपदेश किया तथा मोहरूपी कालसर्पसे खाये जाते हुए जीवोको अपनी दिव्यवाणी रूपी सुधासे (उसीप्रकार) शुद्ध किया (जिसप्रकार सर्पका विष सुधा अर्थात् अमृत अथवा चूनेसे उतारा जाता है)। हे स्वामिन् ! आप इस संसार सागरके तीरपर पहुँच गये हैं एवं संपूर्ण विद्यारूपी शरीर अर्थात् केवलज्ञानके धारक है। आपकी ही

---

१० क ड °णिद्दा। ११. क पइ। १२ क ड °यरिणा।

[१८] १ ख ग तुम्ह। २. क घ ड °न्हु। ३. ख °ज्जोइयं। ४. ख ग पुज्जाए। ५. क ड °वीरस्स। ६ क घ ड °धामं। ७ क °उ, ख ग °य। ८. क ड त्तए। ९. क ड उद्दिट्ठ° ख ग °मेए। १०. ख ग तेएं।

मुहाभासयं दप्पणे पेक्खमाणा मुहं चेव[11] मण्णंति बाला अयाणा।
तहा वत्थुरूवं[12] अहंबुद्धिलुद्धा[13] सरूवं निरूवंति ते नाह मुद्धा।
तुमं झायमाणस्स[14] नाणम्मि लीणं मणं होउ मे नाह [15]संकप्पखीणं।

घत्ता—अंतेउरपरियणपउरसहुँ[16] थोत्तसएहिं नरेसरु।
कोट्ठए निविट्ठ एयारहमे वंदेवि वीरु जिणेसरु ॥१८॥

जयति मुनिवृंदवंदितपदयुगलविराजमानसत्पद्मः।
विबुधसंघानुशासनविद्यानामाश्रयो वीरः ॥१॥
कथेयं पूर्वसिद्धेव भूयो यत्क्रियते मया।
तत्तस्या ग्रंथबाहुल्यात् सांप्रतं भीरवो जनाः ॥२॥
न बह्वपि[17] तथा नीरं सरो नद्यादि संस्थितं।
करकस्थं यथा स्तोकमिष्टं स्वादुश्च पीयते ॥३॥

इय जंबूसामिचरिए सिंगारवीरे महाकव्वे महाकइदेवयत्तसुयवीरविरइए सेणियसमवसरणागमो नाम [18]पढमो संधी समत्तो[18] ॥संधि– ॥

ज्ञानज्योतिसे उद्दीप्त होकर यह चंद्र और सूर्यका तेज उद्भासित होता है। मूर्ख लोग दर्पणमे मुखाभास अर्थात् मुखके प्रतिविम्बको देखकर यह मुख है, ऐसा मान बैठते है। उसीप्रकार अहं बुद्धि (मै और मेरा] से ग्रसित वे भोले लोग अपनी मतिके अनुसार वस्तुस्वरूपका [एकांगी] निरूपण करते हैं। हे देव! आपका ध्यान करते हुए सच्चे ज्ञानमें लीन होकर मेरा मन समस्त संकल्प-विकल्प रहित हो जाये। इस प्रकार सैकडों स्तोत्रो द्वारा वीर जिनेश्वरकी वंदना करके अन्तःपुर, परिजन, व पौरजनोके साथ राजा ग्यारहवें कोठेमें बैठ गया।

मुनिवृंद जिनके चरणयुगलकी वंदना करते हैं, जो कमलासनपर विराजमान है और जो ज्ञानियोके संघका अनुशासन करनेवाले है, ऐसे समस्त विद्याओके आश्रय वीर भगवान्की जय हो! (यहांपर श्लेषमे वीर कवि यह भी प्रगट करना चाहता है कि वह ज्ञानीजनोंके संप्रदायका अनुशासन करनेवाली विद्याओका आश्रयभूत था)। यहाँ यह कथा पूर्वकालसे प्रसिद्ध होनेपर भी, जो मेरे द्वारा पुन रची जा रही है, इसका कारण है—ग्रंथ बाहुल्य होनेके कारण लोग अब उसके पढ़नेसे घबराते हैं। सरोवर और नदी आदिमे स्थित प्रभूत जल भी उस प्रकार नही पिया जाता, जिसप्रकार करवेमे रखा हुआ थोडा सा, इष्ट अर्थात् स्वास्थ्यकर और स्वादु जल लोगोके द्वारा अभिलाषापूर्वक पिया जाता है (उसी प्रकार जंबूस्वामीकथाका पहलेसे बड़ा विस्तार होनेपर भी मेरी यह कथा सक्षेपमे होनेसे अभिलाषापूर्वक पढ़ी जायेगी) ॥ १८ ॥

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर कवि द्वारा विरचित जंबूस्वामीचरित्र नामक इस शृंगार-वीर रसात्मक महाकाव्यमें राजा श्रेणिकका समोशरण-आगमन नामक प्रथम संधि समाप्त ॥ संधि–१ ॥

---

११. क ङ देव, ख ग चेय। १२. क वत्थरूपं। १३. क ङ °लद्धा। १४ ख ग झाणं°। १५. क ङ संकाय°। १६. क ख ङ °सिहु। १७. क ख ङ नवह्वमपि। १८. क ख ङ पढमा इमा सधो; ख ग पढमो संधी।

सन्धि—२

[१]

सुरनरसमवाएं सेणियराएं सविणयललियक्खरगिरेणं[1]।
पुच्छिउ केवलधरु सम्मइजिणवरु जीवतत्तु पणवियसिरेणं[2]॥

गुरुगज्जिरघणगंभीरवाणि परमिट्ठि पयंपइ राय जाणि।
अत्थित्ति निरंजणु जीउ संतु सब्भावें दंसणनाणवंतु।
संवेइयप्प[3]परपरमतत्तु निरवहिसण्णाणपमाणमेत्तु[4]।
जाणंतु वि परु न परेण मिलिउ आयासपमुहदव्वहिं[5] न खलिउ।
नीसेसनिरत्थोवाहिं[6] सहइ जंगमेण अजंगमु जेम वहइ।
संते[7] गयणे नवभवसमत्थु[8] पावइ अवयासु धराइअत्थु।
दिवसयर[9]किरणकारणु लहंतु[10] रविकंतु व दीसइ अग्गिवंतु[11]।
तिहं[12] जोग्गकम्मपरमाणुखंधु[13] परिवड्ढियअहमिये[14]-बुद्धिबंधु।

[१]

देव और मनुष्य सबके अभिप्रायसे श्रेणिक राजाने विनयसहित ललितवाणी-द्वारा केवलज्ञानके धारक सन्मति जिन भ० महावीरसे शिर नवाकर जीवतत्त्वके विषयमे पूछा। तब महान् गर्जनशील मेघके समान गंभीर वाणीसे परमेष्ठी कहने लगे—हे राजन्! ऐसा जानो कि स्वभावसे यह जीव निरंजन (पूर्णतः कर्ममुक्त), शांत एवं दर्शन-ज्ञानसे युक्त है। यह आत्मा स्वयं और पर दोनोके परमतत्त्व (परमार्थ–सत्य) को संवेदन करनेवाला है तथा (सत्ताकी अपेक्षा अनादि-अनंत एवं (विस्तारकी अपेक्षा) स्वज्ञान-प्रमाण मात्र है। पर-पदार्थको जानते हुए भी यह 'पर' से मिलता नही और आकाश प्रमुख द्रव्यो (पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश व काल) से इसका स्खलन अर्थात् इसकी किसी क्रियाका विरोध नही होता। (तथापि) प्रत्येक शरीरीजीव सर्वथा अनात्मस्वरूप कर्मजनित शरीरसे सुख-दुःखात्मक उपाधिको उसीप्रकार सहन करता है, जिसप्रकार जगम (सजीव) बलीवर्दादिक प्राणी अजंगम (निर्जीव) शकटादि वस्तुको ढोता है। आत्म-परिणामोसे प्रादुर्भूत कर्मपरमाणु नया भव ग्रहण करने तथा आत्मप्रदेशोमे अवकाश पानेमे उसी प्रकार समर्थ होते हैं, जिसप्रकार पृथिव्यादि पदार्थ आकाशमे स्थान पाने व स्वकार्य करनेमे समर्थ होते हैं। और जिसप्रकार सूर्यकातमणि रविकिरणोके सपर्कसे अग्नियुक्त दिखाई देने लगता है, उसीप्रकार अचेतन पुद्गलात्मक कर्म-परमाणुओसे प्रादुर्भूत शरीर भी सचेतन आत्माके सपर्कसे चेतन व क्रियावान् दिखाई देने लगता है। आत्माके (भाव) कर्मसे तदनुरूप कर्मरूप परिणत हुए पुद्गल-परमाणुस्कध (से जो इद्रियाँ

[१] १ क घ ङ °गिरिणा। २. क घ ङ °सिरिणा। ३. क ङ °यप्पु। ४. क घ ङ °मित्तु। ५. ख ङ °दव्वहि। ६ ख °निरत्था°। ७ क ङ संगे। ८ क ङ °समत्य। ९. क दिवसयरु°। १० क ङ लहंति। ११. ख ग घ अग्गिवत्तु, ङ अग्गिवति,। १२. क ङ तिह, घ तिह। १३. क जोगकस्स°, ङ जोगकम्म°। १४. क ङ परिघट्टियअहिमिय।

जीवेण निमित्तें[15] मोहथामु सवियप्पु वियंभइ करणगामु।
इय जाव[16] जीव नइमित्तिओ वि ववहारें भण्णइ जीउ सो वि।
संसारनिबंधणु तेण जणिउ तं नासु निरामउ मोक्खु भणिउ।
घत्ता—उप्पज्जइ खिज्जइ[17] गुरु-लहु किज्जइ नरयपमुहगइ[18] अणुहवइ।
कम्मासयवारणु भावियकारणु[19] सो च्चिय मोहजालु खवइ ॥१॥

[२]

नरयगइहि[1] उप्पज्जइ जइयहु करवत्तहिं फाडिज्जइ तइयहु।
जलणकढंतए तिल्ले तलिज्जइ नारइयहिं अवरुप्परु खज्जइ।
पाविवि तिरियजोणि निक्कारणु लहइ निबंधणु ताडणु मारणु।
मणुयत्तणे वि धम्मु नावज्जइ[2] माणुसु[3] पावपिंडु निप्पज्जइ।
सुरलोए वि बालत्तवसाहणु[4] कुच्छियदेउ होइ सुरवाहणु।
अण्णे[5] वि जे हवंति सुरसुंदर[6] कंदहिं चवणसमए[7] दुक्खाउर।
छम्मासावहि आउसि ढुक्कइ हा विमार्ण-इट्ठच्छर मुक्कइ।

निर्मित होती हैं उनकी वृद्धिसे ही (आत्म-संबंधके कारण) 'मैं बढ़ रहा हूँ' ऐसा बुद्धिबंध अर्थात् बुद्धिविकल्प उत्पन्न होता है। जीवके निमित्तसे एवं मोहनीय कर्मके सामर्थ्यसे यह नाना-विकल्पात्मक इंद्रियसमूह उत्पन्न होता है। इस प्रकार जो भी जीवनिमित्तक (पर्याय) है, व्यवहारमें उस वस्तुको जीव ही कहा जाता है। उस जीवके द्वारा ही संसार-निबंधन और पुनर्भवको बाँधनेमें कारणभूत जो कर्म उत्पन्न किया जाता है, उस कर्मका निरामय-निर्व्याधि अर्थात् निःशेष नाश ही मोक्ष कहा जाता है। यह (व्यावहारिक) जीव उत्पन्न होता है, क्षीण होता है अर्थात् मरता है; छोटा-बड़ा होता है—अर्थात् छोटी-बड़ी शरीरपर्याय धारण करता है; एवं नरक-प्रधान गतियोंका अनुभव करता है। और वही जीव कर्मास्रवको निवारण करने वाले कारण (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र) की भावना करके मोहजालको खपाता है, अर्थात् नष्ट कर डालता है ॥ १ ॥

[२]

जब जीव नरकगतिमें उत्पन्न होता है, तो उसे करौतसे चीरा जाता है, अग्निसे खौलते हुए तेलमें तला जाता है और नारकियोंके द्वारा परस्परको खाया जाता है। तिर्यंच-योनिको प्राप्त होकर निष्कारण ही बाँधा, पीटा व मारा जाता है। मनुष्यत्वको पाकर भी मनुष्य धर्म नहीं करता, बल्कि पापके ढेरको ही इकट्ठा किया करता है। बाल-तपकी साधनासे देवलोकमें उत्पन्न होकर भी देवोंका वाहनरूप कुत्सित देव होता है। दूसरे भी जो सुंदर देव होते हैं, वे भी देवलोकसे च्युत होते समय दुःखातुर होकर क्रंदन करते हैं। छह मास पर्यंत आयु शेष रहनेपर देवोंको ऐसा होता है—हाय ! हमारा यह देवविमान और ये सुंदर अप्सराएँ छूट

१५. क ड णिमित्ति, ख घ निमित्ति। १६. ख ग घ जाउ। १७. घ निज्जइ। १८. ख ग नरइ°। १९ क ड भवियणकारणु।

[२] १ क ड °गईहिं, घ °गईहिं। २ क घ ड विणिवज्जइ। ३ ख ग माणुम। ४. घ बालतव°। ५. क ड अण्णु। ६ क सुरुसुंदरु; ड सुरसुंदरु। ७. ख ग चयण°। ८. ख ग विमाणे।

केम सरीरकंतिपरिभट्टें विसहेव्वउ[9] अणिट्ठ मइ कट्ठे।
हा हा रक्खहि[10] देव पुरंदर हा पुणु कहिँ[11] दीसेसहि मंदर।
घत्ता—इय जाणिवि नरवइ[12] चउगइपरिणइ[13] विविहाणंतदुक्खदरिसि[14]।
चारित्तु चरिज्जइ ताम हि छिज्जइ संसारिणि वड्ढंति[15] तिस[16] ॥२॥

[३]

इमं कहंतरं जिणेसरे[1] कहंतए नरामरे विसुद्धभावणं वहंतए।
तओ नियच्छियं नहंगणाउ एंतयं[2] फुरंततेयवारिपूरियादियंतयं[3]।
अतिव्वतावयं[4] न सूरगोनिउंजयं अगज्जिरं निरंतरं न विज्जुपुंजयं[5]।
किमेयमेरिसं वियप्पिऊण राइणा[6] पपुच्छिओ जिणो कहेइ साहुवाइणा।
इमो नरिंद नामविज्जुमालिभासुरो भमेइ वंदणाँ[7]समीहमाणओ सुरो।
सुरालयाउ सत्तमे[8] दिणे चविस्सए भवेण केवलीह पच्छिमो भविस्सए[9]।
तओ[10] रणंतकिंकिणीविरायमाणयं पराइओ सुरो मुयंतु खे विमाणयं।
पियाचउक्कपंचमो[11] सहाए दिट्ठओ नमंसिओ जिणेसरो[12] सकोट्ठे विट्ठओ[13]।

रही है; हाय ! हाय ! शरीर (की दिव्य) कांतिसे परिभ्रष्ट होकर, यह सब अनिष्ट मुझसे अत्यन्त कष्टसे किसप्रकार सहन किया जायेगा ? हाय ! हाय ! हे देव पुरंदर ! रक्षा करो ! हाय ! यह मंदराचल फिर कहाँ दिखाई देगा ? इसप्रकार हे नरपति ! यह चारों गतियोंके विविध-अनंत दुःखोंको दिखानेवाली (कर्म) परिणति जानकर जब (सम्यक्) चारित्रका पालन किया जाता है, तभी यह बढती हुई सांसारिक तृष्णा (भोगाकांक्षा) नष्ट होती है ॥ २ ॥

[३]

जिनेश्वरके इस कथानकको कहते समय जब मनुष्य और देव शुद्ध भावनाको धारण कर रहे थे, अपने तेजरूपी जलके पूरसे दिशाओंको पूरता हुआ, अतीव तेजस्वी होते हुए भी जो सूर्यरश्मियो का अत्यन्त तापयुक्त निकुंज नही था, तथा निरन्तर (मेघ) गर्जना न होनेसे पुंजीभूत विद्युत्पुंज भी नही था, ऐसा (एक देव) नभांगनसे आता हुआ देखा गया। यह कौन है ? इस प्रकारका विकल्प करके राजाके पूछनेपर साधुवचनोंसे जिन भगवान् बोले—हे नरेंद्र ! यह अत्यन्त भास्वर विद्युन्माली नामका देव है जो (जिन) वंदनाकी इच्छासे भ्रमण कर रहा है। यह स्वर्गसे सातवें दिन च्युत होगा और यही मनुष्यभवसे अन्तिम केवली होगा। इसके अनन्तर रण रण करती हुई किंकिणियोसे शोभायमान विमानको आकाशमे ही छोड़कर वह देव वहाँ आया। अपनी चार प्रियाओके साथ पाँचवा वह सभामंडपमें बैठे हुए लोगोके द्वारा देखा

९ ख ग विसहेव्वउ। १० ख ग रक्खहि। ११ क ड कहि। १२. क ड खणरइ। १३. क घ °परिणइं। १४. ख °दरिसे, घ °दरिसा। १५ क ग ङ वट्टंति। १६. घ तिसा।

[३] १. क ड जिणेसरो। २ क ड यतये; ख ग एंतए, घ इतयं। ३ क,ङ °दियंतये, ख ग °दियंतए। ४. क ड °तावये। ५ क ड °पुज्जपुंज्जयं, ख °पुंज्जपुंजय। ६. क ड रायणा। ७. घ वंदण°। ८. क सत्तम। ९ क घ ड हविस्सए। १० क रओ। ११. क सहापहिट्ठउ। १२. ख ग जिणं। १३ प्रतियोमें 'सकोट्ठए वइट्ठओ'।

घत्ता—गिव्वाणु कम्मकिसु विमलियदसदिसु [१४]रूओहामियदेवसहु ।
पेक्खिवि सुहतित्तउ विंभियचित्तउ पुणु आहासइ मगहपहु ॥३॥

[४]

परमेसर पइँ[१] साहिउ तियसहुँ[२] थक्कइ आउसंति छम्मासहु ।
कंतिविणासु सरीरहो ढुक्कइ मत्थइँ[३] कुसुममाल परिसुक्कइ ।
आउसु सत्तदिवसँ[४] पुणु आयहो तणु [५]लावण्णवण्णसच्छायहो ।
तिलुँ[६] वि न तेयसहावेँ मेल्लिउ दीसइ फुरियदेहु पच्चेल्लिउ[७] ।
कहहि भवंतरे केण पयारेँ चिण्णु चरित्तु एण वयधारेँ ।
आयण्णइ[८] सेणिउ ससुरासुरु अक्खइ चरिउ तासु तिहुवणगुरु[९] ।
[१०]रमणिरूवरंजियआहंडलि अत्थि गामु इह मगहामंडलि ।
नामें वड्ढमाणु विक्खायउ अग्गहारु[११] दियवरहँ कमायउ ।
वेयघोसु[१२] जहिँ बंभणसत्थहिँ उच्चारियइ[१३] भट्टपरमत्थहिँ ।
दिक्खिएहिँ[१४] जहिँ पसु होमिज्जइ दिविदिवि सोमपाणु[१५] जहि किज्जइ[१६] ।
घत्ता—जहिँ तरुवरे[१७] तरुवरे सघणलयाहरे अवरोप्परु [१८]कोक्किर-कडुय[१९]
पालंबहिँ[२०] झंपिर चलसिहकंपिर वाणरु व्व कीलहिँ[२१] वडुय[२२] ॥४॥

गया और जिनेश्वरको नमस्कार कर अपने कोठेमें बैठ गया। उस क्षीणकर्मोंवाले, दशों दिशाओंको विमल करनेवाले और अपने रूपसे देवोंकी सभाको भी तिरस्कृत करनेवाले देवको देखकर सुखसे तृप्त होकर, विस्मित मनसे मगधराज पुनः कहने लगे—॥ ३ ॥

[४]

हे भगवन् ! आपने (अभी) कहा है कि अन्तिम छः मास आयु शेष रहने पर देवोंके शरीरकी कांति विनाशको प्राप्त होती है, और मस्तककी कुसुममाला भी सूख जाती है। परंतु इसकी केवल सात दिन आयु शेष है, फिर भी शरीर अत्यन्त कांतिमान् और सुंदरवर्ण है। यह तिलभर भी अपने तेजस्वभावसे रहित नही हुआ, प्रत्युत इसकी देह प्रचुर तेजसे स्फुरायमान दिखाई देती है। तो कहिये कि पूर्वभवमें इस व्रतधारीके द्वारा किसप्रकारके चारित्रका पालन किया गया ? तब श्रेणिक देवों व असुरोंके साथ सुनने लगा और त्रिभुवनगुरु (जिन भगवान्) उसका चारित्र कहने लगे—रमणियोंके रूपसे इंद्रको प्रसन्न करनेवाला, वर्द्धमान नामसे विख्यात ब्राह्मणोंका क्रमागत अग्राहार ग्राम है, जहाँ बड़े-बड़े भट्ट समुदायके विशेषज्ञ ब्राह्मण-समूहों द्वारा वेद घोष किया जाता है, जहाँ दीक्षितोंके द्वारा पशु होम किया जाता है, और जहाँ प्रतिदिन सोमपान किया जाता है। जहाँ वृक्ष-वृक्षमें एवं सघन-लतागृहोंमें एक दूसरेको कर्कश वचनोंसे पुकारकर शाखाओंसे कूदते हुए, व अपनी (पूँछके समान) चंचल शिखाओंको नचाते हुए बटुक वानरोंके समान क्रीड़ा करते है ॥ ४ ॥

१४. क घ ङ रूवो° ।

[४] १. ख ग घ पइ । २. क घ ङ तियसहुं । ३. क मत्थइं । ४. क घ ङ° दिणइं । ५ क लावण्णु°; ङ लायण्णु° । ६. क तिल । ७. ङ पच्चेल्लउ । ८. घ आयन्नइं; ङ आयण्णइं । ९. क घ ङ तिहुयण° । १०. घ रमणं° । ११ क ङ अग्गहारु । १२. ख ग ङ वेयघोस । १३. ख ग उच्चारियउ । १४ क घ ङ दिक्खिएहि । १५ ख ग सोमवाणु । १६. ख ग पिज्जइ । १७. क ङ तरुवर । १८. क घ ङ कोक्किकय । १९. घ कडुया । २०. ख ग पालंबिहि । २१ क ख ग ङ कोलहि । २२. क वडया; घ ङ वडुया ।

[५]

तहिँ[1] गामि वसइ[2] जणलद्धसंसु गुणवंतु धणु व्व विसुद्धवंसु ।
सुइवेयकहालंकरियकंठु[3] नामेण अज्जवसु सुत्तकंठु ।
कमलायरो व्व गोविसनिहाणु मंडलवइ व्व महिसीपहाणु ।
तहो पंडवयधारिणि-कयसुकम्म[4] पियगेहिणि नामें सोमसम्म ।
समयणतणुरत्ती[5]-ललियकण्ण अइझीणमज्झ-वेणीरवण्ण[6] ।
वहुनेहवद्ध-पयलग्ग वहइ पाणहियकंत[7] को अण्णु लहइ ।
भयवत्तु जाउ तहे[8] पढमु पुत्तु[9] वीयउ भवएउ दिएहिँ[10] वुत्तु ।
वायरण-वेय-[11]जोइसपसत्थ[12] परियाणिय दोहिँ मि[13] सयलसत्थ[14] ।
अण्णुण्णनेहपरिपूरियंग सद्दत्थजेम अविहत्तसंग ।
अट्ठारहवरिसपमाणजिट्ठे[15] वारहसंवच्छरथिए कणिट्ठे[16] ।
एत्थंतरि सो तहो तणउ ताउ परिपीडिउ वाहिए भग्गछाउ ।
चिरजम्मावज्जिउ[17] पावकम्मु कोढेण घत्थु हुउ झसियचम्मु[18] ।

[५]

उस गाँवमे लोगोमें प्रशंसा-प्राप्त, विशुद्ध-वंश (बास) तथा गुण (प्रत्यंचा) युक्त धनुषके समान विशुद्ध-वंश (कुल) मे उत्पन्न और (शीलादि) गुणोसे युक्त, एवं श्रुति, वेद और कथाओसे अलंकृत-कंठ अर्थात् समस्त शास्त्रोको कंठमे धारण करनेवाला, आर्यवसु नामका सूत्रकंठ (ब्राह्मण) रहता था। वह जल (गो), और पद्मिनी (विस) के अकुरोके निधान कमलाकरके समान अनेक गायों (गो) और वृषभों (विस) का निधान था। (सब रानियो में) प्रधान अग्रमहिषीसे युक्त मडलपति राजाके समान वह ब्राह्मण प्रचुर दूध-घी देनेवाली प्रधान महिषियो (भैंसो) से युक्त था। उसकी पतिव्रतको धारण करनेवाली कृतपुण्य-अर्थात् पुण्यवान् सोमशर्मा नामकी गृहिणी थी। उसका शरीर समदन अर्थात् कामोत्तेजक था, और वह अपने पतिमे अत्यन्त अनुरक्त थी : उसके कान बहुत सुंदर थे, कटिभाग अत्यन्त क्षीण तथा वेणी बहुत रमणीक थी और गहरे स्नेहसे बंधी हुई वह पतिके चरणोका अनुगमन करती थी। ऐसी प्राणोसे भी अधिक प्यारी कांता अन्य कौन पा सकता है ? उसे भवदत्त नामका प्रथम पुत्र हुआ, दूसरा द्विजोकें द्वारा भवदेव कहलाया। उनका अंग-प्रत्यंग परस्परके स्नेहसे परिपूरित (ओत-प्रोत) था और वे शब्द व अर्थके समान सदा एक साथ रहते थे। जब जेठा (भाई) अठारह वर्षका हुआ और कनिष्ठ बारह वर्षका उसी समय उनका पिता व्याधिसे पीड़ित हुआ और उसकी कांति नष्ट हो गई। पूर्वजन्ममे अर्जित पापकर्मसे वह कुष्ठग्रस्त हुआ, उसका

[५] १. क तहि। २. ख ग वसइ। ३ क सुइवय°। ४ क ड पयवय°। ५. क समयमणु°; ड समयणमणु°। ६. क वीणी°। ७. घ पाणहिय°। ८. क तहि, स ग घ तहु, ड तह। ९ क घ ड पढम। १०. घ ङ दिएहि। ११ ख ग जोयस°। १२ क ड °पसत्थु। १३. क ख ग ड दोहिमि। १४. क ङ °सत्यु। १५. क ड °जिट्ठ। १६ क ड कणिट्ठ; ख ग कणेट्ठि। १७. ख ग °वज्जिय। १८. ख ग छसिय°।

करचरणंगुलि[19]-नासाहरेहिँ चिलिसावणु परथिउ[20] थाणु तेहि ।
जीवासाछिण्णु[21] सरंतु[22] विट्ठु चिय विरइवि[23] पुणु हुयवहे पइट्ठु ।
पियमरणविरहु[24] असहंति इट्ठ[25] मुय[26] सोमसम्म सा तहिँ[27] पइट्ठ ।

घत्ता—तं मरणु नियंतहिँ[28] धाहमुअंतहिँ[29] दुक्खु-दुक्खु [30]दुक्खग्घविय ।
वच्छयलु हणंता पुत्त रुअंता वेण्णि वि सयणहिँ संठविय ॥५॥

[६]

सोयाणलजालादड्ढहियएं[1] तिलजव देविणु वंभणकियए ।
पाडेवि पिंडु पियरहँ तुरिउ वहुदिणहिँ दुक्खभरु ओसरिउ ।
सकणिट्ठुं[2] गिहासमनयपवरु भयवत्तु[3] तत्थ पालेइ घरु ।
अह तहिँ[4] विसयाहिलासरहिउ सोहम्ममहामुणि[5] मुणिमहिउ[6] ।
विहरंतु पत्तु गणपरियरिउँ[7] [8]वारहपयारतवगुणभरिउ[9] ।
सो मुणिवरिंदु सुहदंसणहिँ[10] पणविज्जइ संतचित्तजणहि[11] ।
जो जं पुच्छइ तहो दिव्वझुणि जीवाइतत्तु[12] तं कहइ मुणि ।

चर्म गल गया, तथा हाथ व पैरोंकी अंगुलियाँ व नाक और अधर केवल जुगुप्सनीय चिह्न मात्र शेष रह गये। जीनेकी आशा छूट जाने पर वह विष्णुका स्मरण करता हुआ चिता रचकर अग्निमें प्रविष्ट हो गया। प्रियके मरणवियोगको न सह पाती हुई उसकी प्रिया सोमशर्मा भी उसी चिताग्निमें प्रविष्ट होकर मर गयी। उन दोनोंका मरण देखकर और धाड़ देखकर हा कष्ट! हा कष्ट! कहते हुए, छाती पीट-पीटकर रोते हुए उन दोनों पुत्रोंको स्वजनोंने धैर्य बंधाया ॥ ५ ॥

[६]

शोकानलकी ज्वालासे दग्धहृदय उन दोनोने ब्राह्मण-क्रिया अर्थात् वेदविहित-अनुष्ठानके अनुसार तिल और जौ देकर शीघ्र ही पितरोंको पिंड पाड़ा। बहुत दिनोंमें उनका दुःखभार कुछ कम हुआ, और गृहाश्रमकी नीतिमें कुशल भवदत्त, कनिष्ठ (भ्राता) के साथ घरका पालन करने लगा। अथानन्तर विषयोंकी अभिलाषासे रहित, मुनियों-द्वारा पूजित एवं बारह प्रकारके तपोगुणसे भरे हुए सौधर्म नामके महामुनि अपने गण (संघ) के साथ विहार करते हुए वहाँ पधारे। शातचित्त और शुभदर्शन अर्थात् सम्यग्दृष्टि लोगोंने उन मुनिवरको प्रणाम किया। वे मुनि जो कोई जो कुछ पूछता था, उसे अपनी दिव्य वाणीसे जीवादि तत्त्वोंको

---

१९. क ङ चरकरणंगुलि । २०. क ङ परि° । २१. क ङ जीवासाविणु । २२. क ङ सुमरंतु । २३. ख ग विरयवि । २४. क घ ङ °मरणु° । २५. ख ग इट्ठु । २६. ग मुइ । २७. क ङ तहि । २८. ङ णियंतहि । २९. क ङ °मुयंतहिं; ङ °मुयंतहि । ३०. क ङ अइधाविय ।

[६] १. क घ ङ °दड्ढहियए । २. क °ट्ठु । ३. क घ ङ भवयत्तु । ४. ख ग ङ तहि । ५. क घ ङ सोहम्मु° । ६. ख ग °सहिउ । ७. ख ग °यरियउ । ८ क ङ °पयारु° । ९. ख ग °भरियउ । १० ख °दंसणेंहि । ११. ख °जणेंहि । १२. क ङ °तच्चु ।

जगु सयलु वि इंदियचंचलउ मिच्छत्तमोहतिमिरंधलउ[13]।
जीवणनिओयसण्णालुयउ[14] कामाउरु[15] सुहतण्हालुयउ[16]।
रीणउ[17] दिणकम्महिं[18] खारियउ निसि सोवइ निद्दय[19] घारियउ[20]।
घत्ता—मरणभएणं लुक्कइ[21] अहव न चुक्कइ वंछइ सिवसुहुँ[22] नउ लहइ।
तहवि[23] हु माणुसपसु[24] भयकामहु वसु सहियउं[25] तप्पिवि तणु डहइ ॥६॥

[७]

अप्पाणु किलेसें[1] जेत्थु थवइ दुक्खेण परिग्गहु मेलवइ।
दुक्करु वि वियाणइ तं सुकरु नीसंगविति[2] पुणु गरुयभरु।
संतोसु[3] न को वि अहव मणहो[4] सुकरु वि दुक्करु भावइ जणहो[5]।
विवरीयविवेउ लोउ जियइ अब्भंतरु देहहो[6] जइ नियइ[7]।
बाहिरउ[8] तो वि अहिलासपरु[9] उड्डावइ वायस दंडकरु।
निसुणंतहो इय मुणिजंपियउ [10]भवयत्तहो[11] हियवउ कंपियउ।
विण्णत्तु परमगुरु सुहकरणु[12] तउ चरणजुयलु सामिय सरणु[13]।

बतलाते थे (और कहते थे)—यह सारा जगत् इंद्रियचंचल है, और मिथ्यात्व-मोहरूपी तिमिरसे अंधा है। जीवनके असि-मसि-कृषि आदि व्यापार व आहारादि संज्ञाओसे युक्त, कामातुर तथा सुखकी तृष्णावाला है। दिनभरके कामोसे थककर, श्रान्त होकर, रात्रिमे निद्रासे मूर्च्छित होकर सोता है। मरणभयसे यह लुकता है, परंतु किसी प्रकार उससे चूक नही पाता (बचता नही); शिवसुखको चाहता है, पर पाता नही। इसप्रकारका यह मनुष्यरूपी पशु भय और कामके वश होकर अपने हृदयमे ताप अनुभव करता हुआ तनको जलाता है ॥६॥

[७]

जिस परिग्रहमे मनुष्य अपने आपको बड़े क्लेशसे स्थापित करता है, अर्थात् बड़े कष्टसे जिसका संग्रह करता है, वह परिग्रह बड़े दुःखसे छोड़ा जाता है। यह लोक विपरीतविवेक (उल्टी मति) से जीता है, यद्यपि यह देहके भीतर देखता भी है तो भी बाह्याचरणमे शरीरादि परिग्रहके प्रति अभिलाषायुक्त होनेसे हाथमे दंड लेकर कौओंको उड़ाता रहता है। मुनिके इस कथनको सुनकर भवदत्तका हृदय काँप उठा और उसने उन परमगुरुसे विज्ञापना की, 'हे स्वामी! आपके शुभ अर्थात् हितकारक चरणयुगल ही मेरी शरण है, मुझ संसाररूपी

---

१३. ख ग मिच्छित्त°। १४. ग °लयउ, ङ लुइउ। १५. क घ कामाउलु। १६. क ङ सुहु तण्हासुवउ; घ सुह तन्हालुवउ। १७. क रीणइ, घ रीणउ। १८. क ग °कम्महि। १९. क णिदइ, घ निद्दइं, ङ णिदइं। २० ङ घारिवउ। २१. क घ ङ कह व। २२. ख ग °सुह। २३. ख ग तहु वि। २४. ख ग माणुसु°। २५ क ङ सुहियइ, ख सुहियए, घ मुहियइं।

[७] १. क घ ङ किलेसि, ख ग किलेसिं। २. ख ग नीसंगु°। ३ क घ ङ संकेसु। ४. घ मणहे। ५. घ जणहे। ६. क ङ देहहिं; व देहहिं। ७. घ नियइ। ८. घ वहिराउ। ९. घ °यरु। १० क में भवयत्तहो.....कंपियउ—यह अर्द्धपंक्ति नही। ११. घ भयदत्तहो। १२. क घ ङ °चरणु। १३. ख ग में इस पंक्तिके पश्चात् निम्नपंक्ति अधिक है:—'णिसुणिवि चितवइविसुद्धमई भयवत्तु चत्तु घरवासरई'।

भवकद्दमे खुत्तु[14] समुद्धरहि[15] पव्वज्जहि[16] महु पसाउ करहि ।
संताणे सहोयरु परिठववि[17] दिक्खंकिउ मणकसाय[18] खववि[19] ।

घत्ता—दंसणु सलहंतउ विसयचयंतउ[20] सुद्धचरित्तु[21] दियंवरु ।
गुरुवयण-सवणरइ दिढमइ[22] विहरइ कम्मासयकयसंवरु ।।७।।

[८]

हउँ[1] परकयत्थु संजणियदिहि जं लद्धु[2] दुलहु[2] सम्मत्तनिहि ।
जम्मंतरकोडिहिँ[3] पत्तु न वि तं दंसणु पाविउ भवे भमिवि ।
अणुदिणु सज्झाय-झाणु करइ तवचरणु[4] सुघोरु वीरु चरइ ।
आगमदिट्ठिए[5] विहरंतु सया संवच्छर बारह जाम गया ।
सो सवणसंघु वयखामियउ तहो गामहो नियडदेसे थियउ ।
उवयारबुद्धि सम-निय-परहो तो हुय भवदत्तदियंवरहो[6] ।
भवएउ अणुउ भवगुरुसरिहिँ[7] मा पडउ वराउ दुक्खदरिहिँ[8] ।
मइँ संतें[9] सावयवउ धरइ[10] मिच्छत्तभाउ[11] जइ परिहरइ[12] ।
चिंतवि[13] आयरियहो विण्णवइ जोयणअज्झाणु[14] गामुहवइ ।

कर्दममें पड़े हुए व्यक्तिका समुद्धार कीजिए, और प्रव्रज्या देकर मेरे ऊपर कृपा कीजिए ।' संतानोंपर (संरक्षक रूपसे) सहोदरको स्थापित करके, मनमें-से कषायोंका क्षय कर भवदत्त दीक्षित हो गया । सम्यग्दर्शनकी सराहना करते हुए, विषयोंका त्याग करते हुए, वह दृढ़मति व शुद्धचरित्र-दिगंबर, गुरुवचनोंको सुननेमें मन लगाता हुआ, कर्मास्रवोंका संवर करके विहार करने लगा ।।७।।

[८]

मै परम कृतार्थ हूँ जो कि धैर्य (साहस) धारण करके सम्यक्त्व जैसी दुर्लभनिधि को पा गया । कोटि-कोटि जन्मान्तरोंमें भी जो नही मिला, वह सम्यक्त्व अब भव-भ्रमण करते-करते पा लिया । वह वीर (भवदत्त) प्रतिदिन स्वाध्याय और ध्यान करता था, तथा अत्यन्त घोर तपश्चरण करता था । सदैव आगम-दृष्टिसे अर्थात् शास्त्रानुसार विहार करते हुए जब बारह वर्ष व्यतीत हो गये तो व्रतोसे क्षीण-शरीर वह श्रमणसंघ उस गाँवके निकट प्रदेशमें ठहरा । स्वयं और परके प्रति समान उपकारबुद्धिवाले उस भवदत्त दिगंबरको ऐसा हुआ—'मेरा अनुज बेचारा भवदेव दुःखकी गर्त्तस्वरूप ससाररूपी महानदीमे न पड़े, यदि मेरे रहते हुए वह श्रावक व्रतोको धारण कर ले और मिथ्यात्व-भावको छोड़ दे' । यह सोचकर भवदत्तने आचार्यसे

१४. ख ग खुत्त । १५. क सुसुद्धरहो; ङ समुद्धरही । १६. घ पव्वज्जहि । १७. क घ ङ °ठविवि । १८. क मणिकसाउ; ङ मणकसाउ । १९. क ङ खविवि । २०. क घ ङ °चवंतउ । २१. क घ ङ सुद्ध° । २२. क दिढ°; घ दिढ° ।

[८] १. ख ग ङ हउ । २. ख लद्धुचदुल्लहु; ग लद्धुदुल्लहु । ३ घ °कोडिहि । ४. क ङ °चरण । ५. क ङ आगमि° । ६. ख ग भवयत्त°; घ भयदत्त° । ७. ङ °सरिहि । ८. घ °दरिहि । ९. क ङ घ संति; ग सते । १०. ख ग धरइं । ११. खग °भाव । १२. खग °हरइं । १३. क घ ङ चितिवि । १४. घ जोयणे° ।

न पमाउ गमणे[15] जइ संभवइ . उवसावमि[16] जइ कणिट्ठु सवइ[17] ।
संघाडइ दिज्जउ[18] एक्कु[19] रिसि अणुमण्णिउ नत्थि पमाय दिसि ।
घत्ता—गच्छहु आएसिय गुरुसंपेसिय विण्णि व मुणिवर नीसरिया[20] ।
दियवरसंपुण्णउ[21] गामु रवण्णउ वड्ढमाणु खणे पइसरिया[22] ॥८॥

[९]

दीसइ पवरं भवएवघरं ।
गोमयलित्तं चुण्णयसित्तं[1] ।
गेरुयपिंगं दिप्पिरसिंगं[2] ।
तोरणकलियं मंडवललियं ।
वज्जियतूरं मंगलपूरं ।
धुयधयचवलं गाइयधवलं ।
मणअहिरामं नच्चियरामं ।
पयडियसिप्पं भुंजियविप्पं ।
चंदणसालं घुसिणवमालं ।
सत्थियबंधं कुसुमसुयंधं ।
दावियभोयं माणियलोयं ।
तो[3] तवपवलं मुणिवरजुयलं ।

विज्ञापना की—'यहाँसे एक योजनके अन्तरपर (मेरा) गाँव है, यदि वहाँ जानेमें कोई प्रमाद (दोष) न हो, और यदि कनिष्ठ भ्राता मेरी बात सुने, तो मै उसे उपशात करना चाहता हूँ, 'तो फिर मेरे साथ एक ऋषि दीजिए ।' गुरुने अनुमोदन किया और कहा—(वहाँ जानेमे) लेशमात्र भी दोष नही है, अतः तुमलोग वहाँ जाओ; ऐसे गुरुके आदेश व सप्रेषणसे वे दोनो मुनिवर निकलकर चले और क्षणभरमे उत्तम ब्राह्मणोसे भरे हुए उस रमणीक वर्द्धमान गाँवमे प्रविष्ट हुए ॥८॥

[९]

भवदेवका सुंदर घर दिखाई देने लगा, जो कि गोवरसे लिपा और चूनेसे पुता था, (और कहीपर) गेरुसे पिंगलवर्ण दिखाई देता था, व जिसका शिखर खूब चमक रहा था, तथा जो तोरणोसे युक्त और मंडपसे शोभित था; व जहाँ मगल तूर बज रहा था, चपल ध्वजाएँ फहरा रही थी, मंगलगान गाया जा रहा था और स्त्रियाँ मनोभिराम नृत्य कर रही थी; स्थान-स्थानपर काष्ठचित्र आदि निर्मित थे, विप्रोको खिलाया जा रहा था; और चदनकी शालाएँ कुंकुमसे सुगंधित हो रही थी, स्वस्तिक बंधमे बँधे हुए कुसुमोंकी सुगंध फैल रही थी; और दान देकर लोगोका सम्मान किया जा रहा था। उन तपः-प्रवल मुनि-युगलको

१५. क ड समणि । १६. क ड उवसामवि । १७ क ख ग ड समई । १८. स ग दिज्जइ । १९. क ड एक्क । २०. क ग ढ णीसरिय । २१. क दियवर°, ख ग °सपण्णउ । २२. क ग ड °सरिय ।

[९] १. ख ग °सेत्तं । २. क स °भिगं; ग °सेंगं । ३. क ड ते ।

जणवयदिट्ठं भाइहिं[4] सिट्ठं।
मुणि भयवत्तो[5] तव घरु[6] पत्तो।
ता भवएओ कयसंखेओ।
विणयविसीसो पणवियसीसो।
घोलिरवत्थो जोडियहत्थो।
सुयणसहाओ[7] वाहिरि आओ[8]।

घत्ता—भवदेवहो नियमणि वंधवदंसणि[9] रहसमहाभरु नउ धरिउ।
फुट्टिवि पसरंतउ अंगि न मंतउ पुलयछलेण व[10] नीसरिउ[11] ॥९॥

[१०]

महिवीढे निवेसिवि सिरकमलु[1] पणविज्जइ भाइहिं[2] कमजुयलु[3]।
मुणिणावि अणुउ संभावियउ सुय धम्मविद्धि संभवउ तउ।
करफंसणु पुट्ठिहे[4] [5]तहो करेवि[5] मंडवि दिण्णासणि वइसरेवि[6]।
वुल्लणहं[7] लग्गु भयवत्तु[8] मुणि इउ पयरणु[9] किं [10]भवएव सुणि[10]।
जं दीसइ[11] नवसियवत्थधरु[12] [13]उण्णामयकंकणवद्धकरु।
परिणयणलच्छिललणिज्जमुहुं[14] वरइत्तु जाउ कहिं[15] वच्छ तुहुं।
नववरु पभणेइ[16] सवाहनयणु[17] उक्कंतमण्णु[18] गग्गिरवयणु।

पौरजनोंने देखा और भाईको कहा—मुनि भवदत्त तुम्हारे घर आये हैं। तब भवदेव शीघ्रता करके, विनययुक्त होकर, शिर झुकाये हुए, वस्त्रोंको फहराता हुआ, हाथ जोड़े हुए, स्वजनोंके साथ बाहर आया। भवदेवके मनमें बांधवदर्शनसे होनेवाला उद्वेग रुक नहीं सका, और अंगोंमें न माता हुआ, फूट-फूटकर प्रसृत होता हुआ, मानो पुलक (रोमांच) के बहानेसे निकल पड़ा ॥९॥

[१०]

अपने शिरकमलको पृथ्वीपर रखकर भवदेवने भाईके पदयुगलको प्रणाम किया। मुनिने भी—'हे वत्स ! तुम्हें धर्मकी वृद्धि हो', कहकर भाईको आशीर्वाद दिया। उसकी पीठपर हाथ फेरकर, मंडपमें दिये हुए आसनपर बैठकर भवदत्त मुनि बोलने लगे—हे भवदेव ! सुन। यह क्या बात है, जो तू उपयाचितक वस्त्र धारण किये हुए दिखाई देता है, हाथमें ऊनसे बना हुआ कंकण बँधा है, परिणयकी शोभासे तुम्हारा मुख ललनीय (सलोना) हो गया है; वत्स ! तू कहीं वर (दूल्हा) तो नहीं हो गया ? तब नेत्रोंमें आँसू भरकर, स्नेहाभिमानपूर्वक गद्गद

४. ख ग भाएहि, क घ भाईहिं। ५. ख ग भवयत्तो। ६. क घ ङ तउ। ७. क घ ङ सयण°। ८. घ आओ। ९. ख ग °दंसणे। १०. क घ ङ य। ११. ख ग नीसरियउ।

[१०] १. क ङ °कमल्लु। २. ख ग घ भाईहिं। ३. क ङ पय°। ४. क पिट्ठिहे; ख पिट्ठिहिं; ङ पिट्ठिहे। ५. क करेवी, ख ग तउ करवी, तहो करवो। ६. क °सरेवी; ख ग वंईसरवी; घ वइसरवी। ७ क ख ग ङ वुल्लणह। ८ क घ ङ भवयत्तु। ९. ख ग पइरणु। १०. क तव एंमु सुणी, ङ तवं एंव सुणी। ११ क घ ङ दीसहि। १२. ग °घरु। १३ क ङ उण्णामउ°। १४ क ङ °ललिणिज्जमुहुं। १५. क ङ कहि। १६. कं ङ पभणइं; ग घ पभणइ। १७ क संवाहणइणु, ङ सवाहणइणु। १८. क ङ उक्कंतणमणु।

जं जणणि जणेरहु[१९] पिसुण पिया[२०] पच्चक्ख तुम्ह सा वरण[२१] किया[२२] ।

घत्ता—मइँ[२३] सिसु अगणंतहिँ[२४] नाह चयंतहिँ जो चिरु तुम्हहिँ[२५] भंसियउ[२६] ।
सो अज्जपमाणहिँ[२७] कयआगमणहिँ नेहु पुणुण्णउ दंसियउ ।

[११]

एत्थु जि वड्ढमाणे कुलभूसणु जाणहुँ[१] तुम्हइँ[२] दिउ दुम्मरिसणु ।
नायएवि तहो भज्जपियारी नायवसू सुय ताहँ कुमारी
सा परिणिय मइँ[३] एह सुलक्खणँ समु विवाहु सलहंति वियक्खण ।
तो भवयत्तमुणिंदें[६] वुच्चइ किउ सुंदरु जं सयणहँ[७] रुच्चइ ।
सयलु[८] पहाउ एहु[९] सुहकम्महो दीसइ फलु[१०] पच्चक्खु जि[११] धम्महो ।
धम्में[१२] चक्कवट्टि-हरि-हलहर[१३] धम्में[१४] लोयवाल-ससि-दिणयर ।
धम्में[१४] मणुय महागुणसीला भुंजियभोय-पुरंदरलीला ।
धम्मु अहिंसालक्खणलक्खिउ[१५] किज्जइ आगमेण सुपरिक्खिउ ।
आगमु[१६] सो जि जित्थु[१७] दय[१८] किज्जइ पुव्वावरविरोहु न कहिज्जइ ।

वाणीसे वह नव-वर यूँ बोला—तुम्हारे समक्ष ही माताने पितासे जैसा कहा था, उसी प्रियाका आज मैंने वरण किया है । हे नाथ ! मुझ शिशुकी परवाह न करके, घर छोड़कर, पूर्वमें जिस स्नेहको तुमने तोड़ दिया था, आज अपने आगमनसे, उसे पुनः नवीन अर्थात् जागृत करके दिखलाया है ।।१०।।

[११]

इसी वर्द्धमान नगरमें तुम्हारा जाना हुआ दुर्मर्षण नामका स्वकुलभूषण द्विज है । उसकी नागदेवी नामकी प्यारी भार्या है, उन दोनोंकी नागवसू नामकी पुत्री है, उसी सुलक्षणाका मैंने परिणय किया है । विचक्षण लोग समविवाहकी ही सराहना करते है । तब भवदत्त मुनीद्रने कहा—तुमने स्वजनोंको रुचनेवाला अच्छा काम किया । यह सब शुभकर्मका प्रभाव है । धर्मका प्रभाव प्रत्यक्ष दिखाई देता है । धर्मसे ही चक्रवर्ती, हरि (वासुदेव) और बलराम होते हैं, तथा धर्मसे ही लोकपाल, व चंद्रमा और सूर्य । धर्मसे ही मनुष्य महान् गुणोंवाली व भोगोंको प्रदान करनेवाली पुरंदरकी लीला धारण करते है । धर्म अहिंसा लक्षणवाला है, और आगमसे अच्छी तरह परीक्षा करके उसे किया जाता है । और आगम वही है जो जीव दया बताये, तथा जिसमे पूर्वापर विरोध कथन न किया जाये । इसप्रकार अपना हित जानकर

---

१९. क घ जणेरहं, ङ जणेरह । २०. ङ पिय । २१. क ख घ ङ भरण । २२. ङ किय । २३. क ङ मइ । २४. ङ अगणंतहि । २५ क ङ तुम्हहि । २६. क ङ भासियउ । २७. ख ग घ अज्जु° ।

[११] १ क ङ जाणहु; ख ग जाणउ । २. क घ ङ तुम्हइं । ३ ख ग ङ मइ । ४. क घ ट सलक्खण । ५. क ङ विवाह । ६. ख ग °मुणेंदें, घ °मुणिंदि । ७. ख सयणहो; ङ सयणह । ८ क ङ सयल । ९. घ ङ एउ । १० क फल । ११. क घ ङ वि; ख ग जे । १२. प्रतियोंमें धम्मि । १३. क हलधर । १४ क घ ङ धम्मि । १५. ख ग °लक्खणु° । १६. क ख ङ आगम । १७. क ङ जीउ, ख जेत्थ; ग जेत्थु । १८. ख ग दइ ।

घत्ता—इय जाणिवि नियहिउ जेण न भवि किउ धम्मु जिणागमभासियउ[19]।
धी तं[20] अवगण्णहिँ[21] माणुसु मण्णहिँ[22] अज्ज वि गब्भवासे ठियउ ॥११॥

[१२]

मुणिवयणसुहाभावियमणेण[1] सावयवयाइँ[2] गेण्हेवि तेण।
विणएण भणिउ विण्णवमि कज्ज भोयणु घरि किज्जउ[3] मज्झु अज्जु।
अणुमण्णिउ तं मुणिपुंगवेहिँ[4] आहारु विहाणे लयउ तेहिँ[5]।
तउ अक्खयदाणु भणेवि चलिय अणुवच्चवि[6] पणविवि लोय वलिय।
भवएउँ[7] वि निब्भरनेहबद्धु गच्छइ[8] नियत्तणाए ससद्धु।
मंडवि महिलायणु नियइ कोड्डु[9] छोडेवउँ[10] कंकणु करि सखेड्डु।
चिंतंतु एम वाहुडणसीलु उद्देसइ अण्णालावलीलु।
पहु पेक्खु पेक्खु पसरंतपाउ[11] नग्गोहमहादुमु बहलछाउ।
हल्लिरतरंगु सरवरु रवण्णु[12] रुणुरुणियभमरसयवत्तछण्णु[13]।
आगमविरोहु[14] रक्खंतु संतु वाहुडहि वच्छ न भणइ[15] महंतु।

जो इस भवमे जिनागममें कहे हुए धर्मका पालन नही करता उसे धिक्कार है, उसकी अवहेलना करो और उसे अभी भी गर्भवासमें ही स्थित मानो ॥११॥

[१२]

मुनिकी वचनसुधासे भावित-मन होकर, श्रावकके व्रत धारण करके, उसने विनयपूर्वक कहा—एक कार्य निवेदन करता हूँ, आज मेरे घर भोजन कीजिये। मुनिपुंगवोने उसको स्वीकार किया, और उन्होने विधानपूर्वक आहार लिया। 'तुझे अक्षयदान (का लाभ) हो' ऐसा कहकर मुनि चल पड़े और लोग उनके पीछे (कुछ दूर तक) जाकर प्रणाम करके लौट पड़े। भवदेव भी गाढ-स्नेहसे बंधा हुआ श्रद्धायुक्त भाव से (तथापि) लौटाये जानेकी इच्छासे उनके पीछे पीछे चलता रहा। मंडपमें महिलाजन इस कौतुकको देखे, जब मै क्रीड़ापूर्वक कंकण छुडाऊँ। इसप्रकार चिन्तन करते हुए चलते चलते अन्योक्ति आलापकी रीतिसे वह बोला—हे प्रभु ! फैलती हुई शाखाओं तथा बहुत घनी छायावाले इस विशाल न्यग्रोध वृक्षको देखिये ! और इस चंचल तरंगोंवाले रमणीक सरोवरको देखिये, जो गुंजार करते हुए भ्रमरोसे युक्त शतपत्रोंसे आच्छादित है। आगम-विरुद्ध (वचनसे अपने) को बचाते हुए बड़े भाईने यह नही कहा कि वत्स, (वापिस) चले जाओ। वे मुनि बोले यह कोई अपूर्व (अदृष्ट) प्रदेश नही है,

१९. क ङ जिणागमि°। २० क व ङ ही त; ख ग धीतिं। २१. क घ ङ °गण्णमि, ख ग °गण्णहिं। २२. क ङ मण्णमि, घ मन्नमि; ख ग मन्नहि।

[१२] १ क घ ङ °सुहासासिय°। २. क ङ °वयाइ। ३ क घ ङ किज्जइ। ४. क घ ङ पुंगमेहिं। ५. क व ङ ते। ६ ख ग °वच्चवि। ७. क ङ भयएउ; घ भएएउ। ८ ख ग गच्छए। ९ ख कोड्डु। १०. क ख ग ङ छोडेवउ, व छोडेव्वउ। ११. क °याउ। १२. क ङ रवुण्णु, घ रवुन्नु। १३. क ङ रुणिरुणियममरु। १४. क ङ °विरोह। १५. घ भणइं।

मुणि भणइ[१५] अज्ज न इयं[१६] पएस बालत्तणे परिसीलिय असेस।
महुं[१७] तेहिं[१८] एम सो विमणगत्तु[१९] रिसिसंघु जेत्थु[२०] तं[२१] थाणु पत्तु।

घत्ता—गुरु पणविउ सीसहिं भत्तिविसेसहिं भवएवेण[२२] वि वंदियउ।
अग्गए आयरियहो बहुगुणभरियहो नववरइत्तु नवरि ठियउ ॥१२॥

[१३]

पेक्खिवि वेसु तासु सपसत्थें अहिणंदिउ दिउ मुणिवरसत्थें।
एक्कें सरलसहावें सीसइ[१] आउ एहु तवचरणु लएसइ[२]।
साहु साहु उवयारपवत्तें संबोहिवि[३] आणिउ[४] भयवत्तें[५]
तिक्खक्खरु सुणंतु मणि डोलइ[६] निट्ठुरु केम दियंबरु बोलइ।
तुरिउ तुरिउ घरि जामि पवत्तमि सेसु विवाहकज्जु निव्वत्तमि।
दुलहु सुरयविलासु वि भुंजमि[७] नववहुवाए समउ सुहु भुंजमि।
एउ नाउ जं[८] मुणिणा लइयउ[१०] पत्थि व जेट्ठें[११] चिरु निच्छइयउ[१२]।
निलयहो जं न नियत्तिउ सयउ[१३] भाइ[१४] पइज्जहे[१५] एहु[१६] जि[१७] पच्चउ।
कहसि[१८] कासु कह[१९] रुवमि सहारडि एत्तहे[२०] वग्घु[२१] पासे इह दोनडि[२२]।

बालपनेमें हम लोग इस सम्पूर्ण क्षेत्रके खूब अभ्यस्त थे। इस प्रकार वह भवदेव उन मुनियोंके साथ विमनगात्र अर्थात् अनिच्छापूर्वक चलता हुआ जहाँ ऋषिसंघ था, उस स्थानको प्राप्त हुआ। दोनों शिष्योंने भक्तिपूर्वक गुरुको प्रणाम किया, भवदेवने भी गुरुकी वंदना की और वह नव-वर उन अनेक गुणोंके भंडार आचार्यके आगे बैठ गया ॥ १२ ॥

[१३]

प्रशस्त वेष देखकर मुनिसंघके द्वारा उस द्विजका अभिनंदन किया गया। एकने सरल स्वभावसे कहा—यह आया है, तपश्चरण लेगा। उपकारमें प्रयत्नवान् वे भवदत्त धन्य हैं, जो इसको संबोधन- करके यहाँ लाये। इन तीखे अक्षरोंको सुनकर वह मनमें काँप गया, यह दिगंबर कैसी निष्ठुर वाणी बोल रहा है। मैं बहुत त्वरापूर्वक घर जाऊँगा और शेष विवाहकार्य निबटाऊँगा। दुर्लभ सुरत-क्रीड़ा करूँगा और नववधूके साथ सुख भोगूँगा। मुनिने जो यह (दीक्षा लेनेका) नाम लिया, वह ज्येष्ठ (भाई) ने बहुत पहलेसे ही निश्चय कर रखा था, और मुझे जो घर नहीं लौटा दिया, यही भाईकी पंज (प्रतिज्ञा) का प्रत्यय है। मैं किससे कहूँ? कैसे फूट-फूटकर रोऊँ? इधर पासमें व्याघ्र है, और इधर (दूसरी ओर) दुष्ट नदी।

१६. क द अनुज्ज°। १७. क द महु। १८. द तेहि। १९. क वि पणय गत्तु, ध द विणयगत्तु। २०. क द जित्थ; घ जित्थु। २१. क त। २२. क द भवदेवेण।

[१३] क द सीसइं। २. क लएसइं। ३. ख ग °हवि। ४. क द आणिउं। ५ क ध भवयत्तें। ६. क डोलइं, द डोलइ। ७. क ध द पउंजमि। ८. क द °वहुयाउ, ध वहुयाइं। ९. क द जि, ख ग जे। १०. ख लइयउं। ११. क ध द जिट्ठि; ख ग जेट्ठ। १२. क द °यउ। १३. क द सन्चउ। १४. ख ग भाए°। १५. क द °पइज्जहि; ध °पइज्जहि। १६. क ध द एउ। १७. ख ग जे। १८. क कहिमि। १९. क ख ग ध कहो। २०. क ध एत्तहिं; द एत्तहि। २१. ग वग्गु। २२. क दोत्तडे; ख ग दोतडे।

तो वरि न[२३] करमि एहु अमाणउ[२४]   जेट्ठसहोयरु जणणसमाणउ[२५]
पव्वज्जेमि अज्ज[२६] नीसल्लएँ[२७]   को वारइ[२८] जाएसमि[२९] कल्लएँ[३०]।

घत्ता—इय हियए समासइ पुणु आहासइ पहु दिक्खहे[३१] पसाउ करहि[३२]।
भवयत्तु वसंतउ मइँ[३३] वि पडंतउ भववइतरिणिहे[३४] उद्धरहि[३५] ॥१३॥

[१४]

इय वोल्लंतु कलत्तुम्माहिउ   अवहि पउंजिवि गुरुणा चाहिउ।
मग्गइ दिक्ख हियइ घरु चाहइ   लज्जपरव्वसु पर निव्वाहइ।
फुडु आसन्न[१] भव्वु अकलंकिउ   इय मण्णंतें पुणु[२] दिक्खंकिउ।
मुणिसंघाडएहि[३] लक्खिज्जइ   न लहइ चिरुचंतरु[४] रक्खिज्जइ।
पाढंतहँ[५] अक्खरु नउ आवइ[६]   लडहंगउ कलत्तु पर झायइ[७]।
दिवि दिवि चिंतइ कंत हे[८] सुंदरि   वट्टइ[९] [१०]का वि अवर जोव्वणसिरि[११]।
फारत्तणु[१२] नयणेहिँ[१३] मुहुल्लए[१४]   विद्दुमरायफुरणु[१५] अहरुल्लए[१६]।
वट्टइ वट्टुल-घणथणमंडलि[१७]   लंघइ तिवलि[१७] कसणरोमावलि।

तो ठीक है, मै इनकी वात अमान्य नही करता, (क्योकि) ज्येष्ठ सहोदर पिताके समान होता है। आज निःशल्य (निःशंक) होकर प्रव्रज्या ले लेता हूँ, कल चला जाऊँगा, मुझे कौन रोक सकेगा ? इस प्रकार हृदयमे पर्यालोचन करके फिर वोला—हे प्रभु ! दीक्षा देकर प्रसाद कीजिये। भवदत्तके रहते हुए मुझ गिरते हुए का भी भव-वैतरणीसे उद्धार कीजिये ॥१३॥

[१४]

इस प्रकार वोलते हुए, (परंतु हृदयमें) स्त्रीके प्रति उमाह रखते हुए (भवदेव) को गुरुने अवधिज्ञानका प्रयोग करके जाना कि यद्यपि यह दीक्षा मांगता है, पर हृदयमें घरको चाहता है, तथापि लज्जावश यह उसका निर्वाह करेगा। 'यह निश्चयसे निष्कलंक आसन्न-भव्य (शीघ्र मोक्ष जानेवाला) जीव है, ऐसा मानते हुए गुरुने उसे दीक्षा दे दी। मुनि-युगल उसकी देख-रेख करने लगे, और इस प्रकार उसे रखने लगे कि वह मार्गान्तरको प्राप्त न कर सके अर्थात् भाग न पावे। पढ़ाते हुए उसे अक्षर नही आता था, वह तो सुंदर अगों वाली पत्नीका ही ध्यान करता था। दिन दिन यही सोचता हे काता ! हे सुंदरी, तुम्हारी यौवन-श्री कोई अपूर्व ही है। मुख पर नेत्रोकी विशालता है व अधरोमें विद्रुमरागका स्फुरण (अर्थात् कांति) है, वर्तुलाकर घनी स्तनमंडली है, और कृष्ण रोमावलि त्रिवलिका लंघन करती है।

---

२३. क में 'ण' नही। २४. ख ग अप्पमाणउ; घ अपमाणउं। २५. घ समाणउं। २६. घ क ग ङ अज्जु। २७. घ °ल्लउ। २८. ख ग वारए। २९. ख ग °समे। ३०. घ ल्लइं। ३१. क दिक्ख, घ दिक्खहिं, ङ दिक्खइ। ३२. क ङ करहि। ३३. क ङ मय; ख ग घ मइ। ३४. क °वयतरिणिहि, घ ङ वयतरणिहि। ३५. क घ ङ उद्धरहि।

[१४] १. क ङ आसन्नु°। २. क ङ °पुणु वि, ग मंनंति ङ पुणु। ३. °डएहिं; ङ °डिएहि। ४. क ङ चिरुंतरु। ५. क ङ पाढंतहं। ६. क आवइं। ७. क ङ भावइ। ८. क कंतहिं, घ ङ कंतहि। ९. क ङ वड्ढइ। १०. घ अवर का वि। ११ क ङ जोवण। १२. क ङ फारइतणु। १३. ङ °णेहि। १४. क ङ उहुल्लइ, घ मुहुंल्लइ। १५. क ङ °अरुण। १६. क ङ °ल्लइ, घ °ल्लइं। १७ ख ग °ले।

विहिं[18] बाहहिँ अवरुंडणु चंगइ[19] दुक्करु पुज्जइ[20] वियडनियंबइ[21]।
मसिणोरुयहि जगु जि[22] वसि[23] किज्जइ नहदित्तिए महियलु कवलिज्जइ[24]।

घत्ता—मुद्धहे[25] संपुण्णउ[26] तं तारुण्णउ[26] किं दीसिहइ[27] पुणुण्णवउ[28]।
सो कइयहँ होसइ[29] जो मणु तोसइ कवणु दिवसु सो धण्णवउ[30] ॥१४॥

[१५]

लीणिय पडिबिंबिय लिहिय उक्कीरिय पडिहाइ[1]।
हियए[2] छुहेविणु धण निविड दइएं[3] खीलिय नाइँ ॥१॥

रत्नमालिका:

नीलकमलदलकोमलिए सामलिए नवजोव्वण[5]लीलाललिए पत्तलिए।
रूवरिद्धिमणहारिणिए मारिणिए[6] हा मइं विणु मयणे नडिए मुद्धडिए।

इय सोच्चइँ[7] बोलिय देसंतर विहरंतहो बारह[8] संवच्छर।
ताम परायउ मुणिगणु धण्णउ[9] वड्ढमाणगामहो आसण्णउ[10]।
उववासिउ भवएउ निएसिउ[11] पारणत्थे[12] संघाडए[13] पेसिउ।
चरियामग्गे[14] पइट्ठें वुत्तउ[15] अंतराउ महु[16] जाउ निरुत्तउ[17]।

है। दोनो बाहुओसे आलिंगन करने पर वह अपने सुपुष्ट और विस्तीर्ण नितम्ब-भागमें बहुत दुष्करतासे सेवित होती है। उसके मसृण ऊरुओसे सारा लोक वशमे किया जाता है, और उसके नखोकी दीप्तिमे सपूर्ण महीतल चित्रित होता है। उस मुग्धाका वह भरपूर यौवन क्या (कभी) फिर वैसा ही नूतन दिखाई देगा ? ऐसा कब होगा, और वह धन्यदिवस कौन-सा होगा, जो मेरे मनको सतुष्ट कर सके ॥ १४ ॥

[१५]

वह धन्या (भार्या) मेरे मनमे लीन है, प्रतिबिम्बित है, लिखित है, और उत्कीर्ण है। अतएव ऐसा प्रतीत होता है जैसे मानो दैवने हृदयमे रखकर खूब गहरी कील ठोंक दी हो।

नीलकमलदल जैसी कोमल, श्यामलागी, नवयौवनकी लीलासे ललित और पतली देह वाली ऐसी अपनी रूपऋद्धिसे मनको हरण करनेवाली, और मार डालने वाली, हे मुग्धे ! शोक है कि तू मेरे विना कामसे पीड़ित हुई होगी ॥ १ ॥

इसी सोच-विचारमे देशान्तारोंमे विहार करते करते बारह संवत्सर व्यतीत हो गये। तब वे धन्य मुनिवृद वर्द्धमान ग्रामके निकट आये। उपवास किये हुए भवदेवको देखकर, उसे पारणाके किये मुनियुगलके साथ भेजा गया। गोचरीके मार्गमे प्रविष्ट होने पर उसने कहा मुझे

---

१८. क ख ग विहि। १९. क ङ च्चंगइ। २०. क ट्ठियइ°, ख ठियउ°, ग तियओ°; ङ ठियइ°। २१ क ङ णियवइ। २२ ख ग जे। २३. ख ग ङ वलि। २४. ख ग °उजए। २५. क ङ मुद्धहि, ग मुदहे, घ मुद्धहि। २६ क ङ ण्णउ, घ °न्नउ। २७ क दीस°। २८. क पुण्णु णवउ। २९ क °इ। ३० क ङ घण्णउ, ख ग उ°, घ धन्नमउ।

[१५] १. क ङ °हाइ। २. क ङ हियइ, घ हियइ। ३ क घ ङ दइवि। ४ क ङ णाइं। ५ क ङ जोव्वण°। ६. क घ ङ मारणिए। ७ क सो उजइ; ख झायत, ग सेच्छय, घ सेज्जउ, ङ सेज्जइ। ८. ख ङ °ग बारह। ९. ख ङ घण्णउ। १०. घ ङ °ण्णउ। ११. क ङ णिवें°, घ निवे°। १२. क घ ङ °त्थु। १३ ख ग संघाडइ। १४ क घ ङ °मग्ग। १५. क वुत्तउ। १६ ख ग महु। १७. क ङ णिउत्तउ।

मुणिणा भणिउ[18] जाहि[19] गुरुनियडए तो गईए[20] पल्लट्टिउ[21] वियडए।
चिक्कमंतु चित्तु वि[22] परिओसइ एरिसु दिवसु न हुयउ न होसइ।
तो वरि घरहो जामि पियपेक्खमि विसयसुक्खु मणवल्लहु चक्खमि।
वंचिवि दिट्ठि कियंतरु जाएवि[23] चल्लिउ सिग्घु दिसउ णिज्झाएवि[24]।
पुणु दूरंतराले सुपसत्थें चिंतिज्जइ[25] संपुण्णहियत्थे।
एक्कसि अज्ज[26] धणहे[27] रंजमि मणु सरहसुगाढु करमि आलिंगणु।
कररुहेहिँ थणमंडलु मंडमि अहरबिंबु दंतग्गहिं[28] खंडमि।
वड्ढिउ[29][30] पेम्मपुंजु[31] लज्जंकिउ दुल्लहु माणुसु विरहें[32]-झुलुक्किउ[33]
जिह जिहँ[34] नियडगामु[35] परिसक्कइ[36] तिह तिहँ[34] चित्तु मणाउ चमक्कइ।

घत्ता—जिणसासणु बहुगुणु इउ कारणु पुणु धिद्धिक्कारिउ आरिसहिँ[37]।
पयपूरणमत्तहिँ[38] काइँ जियंतहिँ[39] काउरिसहिँ[37] अम्हारिसहिँ[37]॥१५॥

[१६]

लज्जेसइ हा भवयत्तमुणि[1] वीणोवम धणियहे[2] महुरझुणि।

निश्चित अन्तराय हो गया है। तब एक मुनिने कहा—गुरुके पास चले जाओ। वह शीघ्रगतिसे लौट पड़ा। चलते हुए उसके चित्तमें बड़ा आनंद हुआ कि ऐसा दिन न कभी हुआ और न होगा। तो ठीक! घर जाकर प्रियाको देखूँगा और मनचाहा विषयसुख भोगूँगा। फिर थोड़ी दूर जाकर (मुनियुगलकी) दृष्टि बचाकर (घरकी) दिशाका विशेष ध्यान करके शीघ्रतासे चला। और फिर दूरसे ही भलीभाँति अपने हृदयमें भरे हुए भावोंके विषयमें सोचने लगा—आज एक बार मैं अपने मनको अपनी धन्यासे प्रसन्न करूँगा, व उत्कंठापूर्वक अतिगाढ-आलिंगन करूँगा, नख चिह्नोंसे उसके स्तनमंडलको मंडित करूँगा और अधरबिंबको दांतोंसे काटूँगा। उसका दुर्लभ मनुष्य (प्रिया) के विरहसे झुलसा हुआ, व (अबतक) लज्जासे दबा हुआ प्रेमपुंज बढ़ गया। जैसे जैसे गाँव निकट आता गया, वैसे वैसे उसका चित्त कुछ इसप्रकार चमत्कृत हुआ (अर्थात् इसप्रकार चिन्तन करने लगा)—यह जिनशासन बहुत गुणवाला है, और आर्ष-ऋषियों द्वारा विषयभोगके लिये इसप्रकारके (व्रतभंगादि) कारणको अत्यन्त धिक्कार किया गया है। हम जैसे केवल पदोंको पूर्ण करनेवाले, अर्थात् मुनि-पदका केवल बाह्यतः निर्वाह करने वाले, कापुरुषोंके जीनेसे ही क्या ? ॥ १५ ॥

[१६]

हा शोक! (इधर तो) भवदत्त मुनि (मेरे इस आचरणसे) लज्जित होंगे, (और उधर) उस धन्याकी वीणाके समान मधुर ध्वनि (सुननेको मिलेगी); (एक ओर तो)

१८ क घ ङ भणिउं। १९. क घ जाहिं। २०. क गइए, ङ गईइ। २१. क ङ पलट्टउ, ख ग घ पल्लट्टउ। २२ ख ग में वि नहीं। २३. ख ग जायवि। २४. क ङ °यवि; घ °इवि। २५. ग चिंत्तिज्जइ। २६ क ग घ ङ अज्ज। २७ क ग घ ङ धणहि; व घणहि। २८ ख ग °ग्गहि। २९. क ङ वट्टिउ। ३०. क ग घ ङ पेम°। ३१. ख ग °पुंज। ३२. ख ग विरहु। ३३. ख ग °झुलिक्किउ। ३४. ग घ °हं। ३५. ख ग नियडु°। ३६ क °सक्कइं। ३७. ख ग °रिसिहिं। ३८ ख ग मित्तहिं। ३९. क °तहि।

[१६] १ ख ग घ भवयत्तु°। २ क घ ङ घणियहिं; ख ग वुणियहे।

रिसिसंघु निवारइ कुगइपहे[3] ऊरुयफंसणु[4] को लहइ तहे[5] ।
संसारुच्छेयहो वय भणिया रेहाविय[6] वरकंतहे[7] तणिया ।
परिहरहि[8] चित्त मिच्छत्तभरु[9] सकियत्थु धरेसइ तहे[10] अहरु ।
इय हरिस-विसायहिँ[11] पहि[12] वहइ आसंक अण्ण हियवउ डहइ ।
वरिसहिँ बारहहिँ विलासपिया तहे[14] जाणहुँ[15] वट्टइ कवण-किया ।
जोव्वणवसि[16] करइ किमण्णु पइ अह कुलकमु पालइ कह व जइ ।
तो महु लुंचियसिर-मलधरहो दुग्गंधसरीरदियंबरहो ।
संकेसइ[17] झत्ति न पइसरमि बाहिरि उवलंभु ताम करमि ।
ता[18] गामलग्गु[19] सियछुहधवलु देवउलु दिट्ठु धुयधयचवलु[20] ।
चिंतवइ न होंतउ एउ चिरु जा पइसइ ता तं चेइहरु[21] ।
जिणपडिम नियवि वंदण करिवि जा नियइ विसत्थउ वइसरिवि[22] ।

घत्ता—ता एक्कखणंतरि[23] तिय कोणंतरि दिट्ठ नियमवयखिण्णतणु ।
अणुहरइ विरूवहो सूलिणिरूवहो सुक्कवोलहिँ[24] तसइ जणु ॥१६॥

ऋषि संघ कुगतिके पथसे निवारण करता है, (परंतु दूसरी ओर) उस जैसी सुंदरीका जंघा-स्पर्श किसे मिलता है; (इधर तो) संसारके उच्छेदनके लिए व्रत कहे गये हैं, (और उधर) उस श्रेष्ठ कांताकी सौंदर्यसे दीप्तिमान देहयष्टि है; अरे चित्त ! यह मिथ्यात्व वर्तन अर्थात् मिथ्याचरण छोड़ दे ! (पर) उसके अधरोंका चुंबन करके कृतार्थ होगा । इसप्रकार हर्ष-विषादपूर्वक वह मार्गमें चल रहा था कि एक अन्य आशंका उसके हृदयको जलाने लगी— बारह वर्षोंमें रतिक्रीड़ा-प्रिय उस भामिनीकी आजकल कैसी क्रिया है, क्या जानूँ ? क्या यौवनके वश होकर उसने अन्य पति कर लिया होगा ? अथवा यदि किसी तरह कुलक्रम (कुलाचार) का पालन किया भी हो तो लुंचितशिर, मलधारी, तथा दुर्गंधयुक्त शरीरवाले मुझ दिगंबरको देखकर वह हैरान होगी । इसलिए मैं शीघ्रतासे प्रवेश नहीं करूँगा, बल्कि पहले उसे बाहर ही बुलवा लूँगा । इतनेमें उसने गाँवसे लगा हुआ, श्वेत चूनेसे धवल, और फहराती हुई चपल ध्वजासे युक्त एक देवकुल देखा । (और) सोचने लगा—पहले तो यह नहीं था । जब उसने उस चैत्यघरमें प्रवेश किया, तथा जिनप्रतिमाको देखकर वंदना करके जब विश्वस्त होकर बैठा, तो क्षणभरके उपरांत नियमव्रतोंसे क्षीणशरीर एक स्त्रीको एक कोनेमें बैठे देखा जो विरूपाकृतिके कारण चंडीके रूपका अनुसरण कर रही थी, और सूखे कपोलोंसे लोगोंको त्रास उत्पन्न करती थी ॥१६॥

---

३. क ड कुमइपहि, ख ग °पहो; घ कुमइ° । ४ ख ग करयलफ° । ५. क ड तहिं, ख ग तहो । ६. ग ग संसार° । ७. ख °विमु (?) ८. क ड °हिं; ख ग घ °हि । ९ ख ग घ °हरिहि । १० क ख घ ड °भरु । ११. क घ ड तहि । १२. ख ग °यहे । १३. क पहि । १४. प्रतियोंमें 'तहिं' । १५. ख ग जाणहो । १६. ख ग °वस । १७ क संको° । १८ ख ग घ ड तो । १९ क गयण° । २० घ °धवलु । २१ क ड चेयं° । २२. घ °सरवी । २३. ख ग °तरे । २४ ख ग °लहे, घ लहि ।

[१७]

तो पणविउ ताए भत्तिजणन्ति　　मुणि पुच्छइ धम्मवुद्धि[1] भणवि ।
तुम्हइँ किर अंबे[2] चिराउसइं[3]　　इह वसहु सयलु जाणेहु सइं ।
भवयत्तु अवरु भवएउ[4] तहिं　　दियतणय सहोयर वे वि कहिं[5] ।
जाणमि सा भणइ[6] आसिठियहो　　वे नंदण अज्जवसूदियहो ।
संसारतरंगिणि तेहिं तरिया　　आयरिय[7] वित्ति-दइयंवरिया ।
पडिभणइ[8] सवणु मणि जणियग्घु　　भवएवें परिणिय नायवसु ।
विणु नाहें किह कुलमग्गे ठिया　　कि वट्टइ तहे[9] विवरीयकिया ।
लायण्णतरंगुब्भासियउ　　तारुण्णु ताहि[10] केरिसु थियउ ।
बोल्लंतु ताए[11] सो परिकलिउ　　भवएउ एउ[12] फुडु[13] वयचलिउ ।
घत्ता—गय परमविसायहो परिणइ[14] रायहो पेक्खहु[15] केण[16] निवारियइ[17] ।
जहिं अड्डवियड्डे[18] चम्महो[19] खंडें माणुसु[20] केम वियारियइ[21] ॥१७॥

[१८]

निन्नासमि आयहो पावमइ　　सम्मत्तदिट्ठि पुणु सा चवइ ।
धण्णो सि सवण तिहुवणतिलउ[1]　　जिणदंसणु पाविउ सुहनिलउ[2] ।

[१७]

तो फिर उस स्त्रीने भक्तिपूर्वक मुनिको प्रणाम किया । 'तुम्हे धर्मवृद्धि हो' कहकर मुनि पूछने लगे—हे अंबे तुम्हारी दीर्घ आयु है, यहाँ बसनेवाले सभीको तुम स्वयं जानती होगी । यहाँ एक भवदत्त और दूसरा भवदेव ये दो सहोदर ब्राह्मणपुत्र थे, वे कहाँ हैं ? उसने कहा—जानती हूँ, यहाँ आर्यवसू द्विजके दो पुत्र रहते थे, उन्होंने दिगंबर-वृत्ति (दीक्षा) का आचरण करके इस संसार नदीको तर लिया । तब मनमें और दिलचस्पी उत्पन्न होनेसे श्रमणने फिर कहा—भवदेवने नागवसूका परिणय किया था, पतिके बिना क्या वह कुलमार्ग (पतिव्रत-धर्म) मे स्थित रही, अथवा कुछ विपरीत-क्रिया करके रहती है ? लावण्य-तरंगोसे उद्भासित उसका तारुण्य कैसा रहा ? बोलता हुआ वह मुनि उसके द्वारा पहचान लिया गया कि यह निश्चय ही व्रतोसे डिगा हुआ भवदेव है । वह परमविषादको प्राप्त हुई, कि देखो इस रागकी परिणतिका कौन निवारण कर सकता है, जहाँ कि मनुष्य आड़े-टेढ़े वा गले-सड़े चर्मखंडसे कैसे-कैसे विकारको प्राप्त होता है ॥१७॥

[१८]

'इसकी पापमतिको नष्ट करूँगी', (मनमे ऐसा निश्चय करके) वह सम्यग्दृष्टि (नागवसू) बोली—हे त्रिभुवनतिलक श्रमण तुम धन्य हो, जिसने सुखका धाम, ऐसा जिनदर्शन पा

[१७] १. क ख ग ङ °विद्धि । २. क अंचि, ख ग, अत्थि°; ङ अबि । ३. क चिराउ° । ४. क ङ भय° । ५. क ङ कही । ६. प्रतियोमें 'भणइ' । ७. क घ ङ आसरिय । ८. क घ ङ °भणइं । ९. क घ ङ तहिं, ख ग तहि । १०. क व ताहिं । ११. क ताइ । १२. घ एहु । १३. ख ग फुड । १४. ख ग °णय । १५. ग पेक्खहे । १६. क केसा । १७. ख ग ण वारि, घ ङ °यइं । १८ ख ग वियंडें । १९. ख ग चम्महं । २०. ख ग माणुस । २१ घ ङ °यइ ।
[१८] १ क घ ङ तिहुयण° । २ क सह° ।

तरुणत्तणे[3] वि इंदियदवणु दीसइ[4] पइँ मुयवि[5] अण्णु कवणु ।
परिगलिए[6] वयसि सव्वहो वि जइ विसयाहिलाससिहि[7] उवसमइ ।
कच्चे पल्लट्टइ को रयणु पित्तलए हेमु विकइ कवणु ।
सग्गापवग्गसुहु परिहरइ को रउरवि नरइ पईसरइ ।
को महिलहे[8] कारणे लेइ दिसि सज्झायहाणि[9] को कुणइ[10] रिसि ।
जिह जिह[11] आहासइ सुद्धमइ हेट्ठामुहु[12] लज्जए[13] मुणि हवइ ।
जा पुच्छिय तुम्हहिं नायवसु सुणु पयडमि तहे[14] लायण्णरसु[15] ।
नालियरसरिसु[16] मुंडियउ सिरु लालाविलु मुहु[17] घग्घरियगिरु ।
नयणइँ[18] जलवुव्वुयसरिसयइं[19] नियथाणु मुअवि[20] तालु वि गयइं[21] ।
चिच्चुयनिडालकवोलतयइं[22] रणरणहिँ[23] नवरि वायाहयइं ।
निम्मंसु निलोहिउ देहघरु चम्मेण नद्धु[24] हड्डहं[25] नियरु ।
नीसल्लु अवरु[26] हियवउ जणउ पडिछंदु निहालहि[27] महु तणउ[28] ।

घत्ता—इय रूव-सरिच्छउ हियउ तिरिच्छउ सल्लु काइँ तुम्हहं[29] थियउ ।
परलोउ न साहिउ एमइँ[30] वाहिउ[31] कालु निरत्थउ पर नियउ[32] ॥१८॥

लिया । तरुणाईमे भी इंद्रियोंको दमन करनेवाला तुम्हारे अतिरिक्त और कौन दिखाई देता है ? यदि परिगलित वयस्मे सभीका विषयाभिलाषरूपी अग्नि शांत हो जाता है (तो उससे क्या लाभ ?) । काँचसे रत्न कौन बदलवाता है ? पीतल के लिए स्वर्ण कौन बेचता है ? स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) सुखको छोड़कर रौरव नरकमे कौन प्रवेश करता है ? महिलाके कारण व्रतानुष्ठानादि क्रियाओंसे कौन भ्रष्ट होता है व कौन ऋषि अपने स्वाध्याय (आत्मचिंतन) की हानि करता है ? जैसे-जैसे वह शुद्धमति बोलती गई, वैसे-वैसे मुनि लज्जासे अधोमुख होते गये । (उसने फिर कहा)—तुमने जिस नागवसूको पूछा, सुनिये ! उसके लावण्यरस (सौंदर्य स्वरूप) को प्रकट करती हूँ—उसका शिर नारियलके समान मुंडित है, मुख लारयुक्त हो गया है, और उसमे-से वाणी घरघराती हुई निकलती है । नेत्र जलके बुलबुलेके समान, अपने स्थानको छोड़कर तालु तक चले गये है; चिबुक, ललाट, कपोल और त्वचा मानो वाताहत होकर रण-रण शब्द करते हैं (अर्थात् सारा शरीर शिथिल हो गया है, उसमे झुर्रियाँ पड गयी हैं, अतः सदैव किटकिट आदि शब्द करता हुआ काँपता रहता है) । यह देहरूपी घर निर्मांस और निर्लोहित होकर चर्मसे नधा हुआ अस्थिपंजर मात्र अवशिष्ट रह गया है । हृदयको और भी निःशल्य करनेवाले मेरे इस प्रतिरूपको देखिए । इस सदृश रूप तुम्हारे हृदयमे कुटिल-शल्यकी भाँति कैसे स्थित रहा ? तुमने परलोक नही साधा ऐसे ही समय विताया । तुम्हारा सारा समय निरर्थक ही गया ॥ १८ ॥

३ ख ग तरण° । ४. ख ग °इ । ५. क घ ङ मुइवि । ६ क घ ङ °मलिय । ७ ख ग° हवि । ८ ख ग कुम्महेलहे, घ कुमहिलहि । ९ क ङ अज्झाय° । १० क घ ङ °इ । ११ क घ ङ जिहं जिह । १२. क ङ मुहुं । १३. क ख ग ङ लज्जइ । १४ क ङ तहि, घ तहिं । १५. क ङ लावण्ण° । १६ घ °सरिस । १७ क, ण्णाण्णाविट्टलु; घ ङ लालाविट्टलु° । १८. ख ग घ °वब्बुय° । १९. क घ ङ °सयइ । २०. क घ ङ मुएवि । २१ क ङ गयइ । २२ क घ ङ कवोलयइ । २३. ख ग °रणहि । २४. ख ग चम्मे निवद्ध । २५ ख ग हड्डं । २६. ख अहव । २७. क °लहि । २८ ख ग तणउ । २९. घ तुम्हइं । ३०. ख ग एम वि; घ एमइ । ३१. क °उ । ३२ क ङ णियउ ।

[१९]

तओ तम्मि संबोहणालावकाले तडत्तीह तुट्टे महामोहजाले ।
मणं तस्स नीसल्लभावे[1] पवुत्तं फुडं जाणिऊणं पुणो तीए वुत्तं ।
अहं चेय ते गेहिणी नाह मुक्का कुलायार-भत्तारधम्मे न चुक्का ।
घरे आसि जं संठियं तुम्ह दव्वं मए दिण्णयं धम्मकज्जम्मि सव्वं ।
इमं सुंदरं कारियं चेइगेहं वयोवासियं सोसियं पेक्खु देहं । ५
सुणेऊण चित्तंतरं लज्जमाणो पयंपेइ संलद्धसिक्खापमाणो ।
गिरा तुम्ह जाया महं सुद्धभावा पडंतस्स संसारनीरम्मि नावा ।
तओ निग्गओ पुव्वसंकेयचत्तो[2] खणद्धें[3] मुणिंदाण पासम्मि पत्तो ।

घत्ता—गुरुचलणइँ[4] वंदेवि अप्पउ निंदेवि सयलु वि कज्जु[5] निवेइयउ ।
पहु अज्जु म वंकहि[6] पुणु दिक्खंकहि[7] संसारहो उव्वेइयउ ॥१०॥ १०

[२०]

संकिलिट्ठभाव सव्व वि चइया सविसेसदिक्ख पुणरवि लइया ।
अब्भसइ निरंजणु परमपरु वे मेल्लइ[1] रायदोस अवरु ।
रुंभइ मणवयणकायपसरु नासइ इंदियविसया अवरु[2]

---

[१९]

तब (नागवसूके) उस संबोधनात्मक वार्तालाप करते-करते ही उसका मोहजाल तड़से टूट गया; और उसका मन निःशल्य भाव (शुद्धात्मपरिणाम) में लग गया, ऐसा स्पष्टरूपसे जानकर उस नागवसूने पुनः कहा—हे नाथ ! मै ही तुम्हारी परित्यक्ता गृहिणी हूँ । मै पतिधर्म-रूपी अपने कुलाचारसे च्युत नहीं हुई। घरमे तुम्हारा जो द्रव्य रखा था, वह सब मैने धर्मकार्यमें दे दिया, और यह सुंदर चैत्यघर बनवा दिया। मेरा यह व्रतोपवाससे शोषित शरीर देखिए ! यह सुनकर चित्तमे लज्जित होता हुआ प्रामाणिक धर्मशिक्षा पाकर वह बोला—हे जाया ! मै जो संसार सागरमे डूबा जा रहा था; तुम्हारी वाणीसे मेरी नावकी चेष्टा (गति) अब निर्दोष हो गयी है। और फिर पूर्व-संकेत अर्थात् विषय-सेवाके संकल्पको छोड़कर वह वहाँसे निकला व अतिशीघ्र मुनीद्रोके पास जा पहुँचा। गुरुचरणोंकी वंदना करके व आत्मनिंदा करके संपूर्ण घटनाका निवेदन किया, (और प्रार्थना की) हे प्रभु ! आज मेरी प्रार्थनाको मत ठुकराइए, मुझे पुनः दीक्षा दीजिए, मै संसारसे उद्विग्न हो गया हूँ ॥ १९ ॥

[२०]

उसने सभी संक्लिष्टभावोंको त्याग दिया और पुनः विशेष-दीक्षा ग्रहण की। वह निरंजन परमात्माका अभ्यास (ध्यान) करने लगा, और राग व द्वेष इन दोनोंका त्याग कर दिया। मन, वचन, कायके प्रसारको अवरुद्ध कर लिया, और इंद्रियविषयों (अर्थात् भोगवासना)का नाश कर

---

[१९] १ क घ ङ णिस्सल्ल° । २ क °वत्तो । ३ क खणद्धं, घ °द्धिं । ४. क घ ङ °चरणइं । ५. ख कज्ज । ६. ख ग वंकहि । ७. क ख ग °कहि ।

[२०] १ क ङ मेलइ, घ मिल्लइ । २. क ङ विसरु; घ वसरु ।

अरि-मित्तु[3] सरिसु समकणयतिणु[4] सुहदुहसमु समजीवियमरणु।
निंदापसंससमु वयविमलु भुंजेइ अजिब्भु व करि कवलु।
अंधो व्व रूवदंसणु[5] कुणइ[6] वहिरो व्व निरीहु सद्दु सुणइ[7]।
पाहणु[8] व परसु वेयइ[9] विसमु [10]वावीसपरीसहसहणखमु।
भवयत्तसहिउ इउ[11] तउ करइ[12] पुव्वासियकम्मइँ निज्जरइ[13]।
अवसाणे विमलगिरि आसरिवि[14] अणसणे पंडियमरणे मरिवि[15]।
विण्णि वि उप्पण्ण सग्गे तइए सायरइँ[16] सत्त आउसमइए।

घत्ता—दिव्वच्छरलक्खिय नयणकडक्खिय कडयमउडकेऊरधर।
हियइच्छियमोणहिँ[17] रमहिँ[18] विमाणहिँ अतुलवीर[19] विण्णि वि अमर ॥२०॥

इय जंबूसामिचरिए सिंगारवीरे महाकव्वे महाकइदेवयत्तसुयवीरविरइए भवएवस्स सणकुमारसग्ग-गमणं नाम [20]दुइज्जो संधी समत्तो[20] ॥संधि-२॥

दिया। उसके लिए व शत्रु व मित्र एक समान हो गये और स्वर्ण व तृण बराबर; सुख-दुःख, जीवन-मरण सब एक-सा; तथा निंदा व प्रशंसा सबमें समान बुद्धि। वह शुद्ध व्रतोंवाला हुआ। वह हाथमें ग्रास लेकर जिह्वारहितके समान भोजन करता, अंधेके समान रूप-दर्शन करता, तथा बहिरेके समान निरीहभावसे शब्द सुनता। कठोर स्पर्शोको वह पत्थरके समान वेदन करने और क्षुधा-तृषादि बाईस परीषहोको सहन करनेमें समर्थ हुआ। इसप्रकार भवदत्तके साथ तप करते हुए उसने पूर्वोपार्जित कर्मोकी निर्जरा की। जीवनके अन्तिम समयमें विमलगिरिका आश्रय लेकर अनशनपूर्वक पंडितमरण करके दोनों ही भाई सात सागर आयुवाले तृतीय स्वर्गमें उत्पन्न हुए। वहाँ दिव्य अप्सराओके नयनकटाक्षो-द्वारा लक्षित, कंकण, मुकुट, व केयूरोंके धारक, हृदयेच्छित आकार धारण करते हुए, वे दोनो अतुल वीर्यवान देव स्वर्गविमानोंमें रमण करने लगे॥ २०॥

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर कवि द्वारा विरचित जंबूस्वामीचरित नामक इस शृंगार-वीर-रसात्मक महाकाव्यमें भवदेवका सनत्कुमार स्वर्गगमन नामक द्वितीय संधि समाप्त॥ २॥

३ ङ °मित्त। ४ घ °तणु। ५. क एव°। ६. ङ कुणइं। ७ क ङ सुणइ। ८ क ङ पाहाणु, ख ग पाहुणु। ९ क ख ग ङ चेयइ। १० क वीवीस°। ११. ख ग इय। १२ ख ग °इ। १३ क ख ग °इं। १४ क घ ङ °रवी। १५. क ङ °रवी। १६. ख ग °रइ। १७ क ङ °इच्छिय°। १८ क रमहि। १९. क °वीरु। २०. क दुइज्जो इमा संधी; ख ग दुइज्जो परिच्छेउ सम्मत्तो, घ ङ दुइज्जा इमा संधी।

सन्धि—३

[१]

वालक्कीलासु वि वीरवयणपसरंतकव्वपीऊसं[1] ।
कण्णपुडएहि[2] पिज्जइ जणेहिं रसमउलियच्छेहिं ॥१॥
भरहालंकारसलक्खणाइँ लक्खेपयाइँ विरयंती ।
वीरस्स वयणरंगे सरस्सइ जयउ नच्चंती ॥२॥
सुविसालए तहिं अमरालए[3] विविहपयारु विलासु किउ ।
अच्छंतहिं[4] सुहुं[5] भुंजंतहिं आउसु सायरसत्त निउ[6] ॥३॥

दुवई—बहु मण्णंति सग्गे देवाउसु जे नर-किविणमाणसा ।
सव्वु वि कालदव्वु तहु[7] तिणसमु[8] जे संपन्ननाणसा[9] ।

अह मंदराउ जणनयणपिउ पुव्वासए पुव्वविदेहु थिउ ।
ओछप्पिणी[10] अवसप्पिणि न तहि लोयाहिव[11] उपज्जंति जहिं ।
नाहेय[12] वाहुवलि-भरह-जया अरहंत-सिद्ध-चक्कवइ सया ।
धणुसयइँ[13] पंच-उच्चेहतणु पुव्वाण कोडि जीवेइ जणु ।
तत्थत्थि अमुणियविवक्खभउ नामेण पुक्खलावइ विसउ ।

[१]

वालक्रीड़ाओमें भी वीर (कवि) के मुखसे प्रसूत होते हुए काव्य-पीयूषको लोगोके द्वारा आनंदसे निमीलित नेत्र होकर कर्णपुटोसे पिया जाता है ॥ १ ॥ भरतके अलंकार और काव्यलक्षणोसे युक्त लक्ष्य पदो अर्थात् काव्यपदोकी रचना करती हुई, वीर कविके मुखरूपी रंगमचपर नृत्य करती हुई सरस्वती जयवत होवे ॥ २ ॥

उस विशाल स्वर्गमें दोनो देवोने विविधप्रकारका विलास किया। इसप्रकार वहाँ रहकर सुख भोगते हुए सात सागरकी आयु बीत गयी ॥ ३ ॥ जो स्वर्गमे देवायुको बहुत मानते हैं, वे लोग कृपण-मानस अर्थात् अल्पबुद्धि है। परन्तु जो ज्ञानलक्ष्मीसम्पन्न है, उनके लिए तो समस्त कालद्रव्य (काल परिमाण) भी एक दिनके समान है ॥ ५ ॥

मंदराचलसे पूर्व दिशामे लोगोके नेत्रोको प्यारा पूर्वविदेह स्थित है। वहाँ उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूपसे कालचक्रके आरे नही बदलते, तथा वहाँ लोकके नाथ तीर्थकर (सदैव) उत्पन्न होते रहते हैं। वहाँ नाभेय जिन (ऋषभनाथ), बाहुबलि, तथा भरत और मेघेश्वर ये अरहंत सिद्ध एवं चक्रवर्ती सदैव विद्यमान रहते हैं। वहाँ शरीरकी ऊँचाई पाँच सौ धनुष प्रमाण होती है और जीव पूर्व-कोटि वर्षो तक जीता है। वहाँ शत्रुके भयको न जाननेवाला पुष्कलावती

[१] १ क घ ङ पेओसं । २ ख °एहिं; घ कन्न° । ३. घ °लइं । ४ °तिहिं । ५. ख ग घ सुहुँ । ६ क घ ङ गउ । ७. क ख घ ङ तहु । ८. क ख ङ दिण° । ९ क ख ग ङ सपणण° । १० ख ग ओस° । ११ क ख ग ङ °हिय । १२ क णाणेय° । १३ ख ग °सयइ ।

जो जलनिहि व्व रयणुद्धरणु घरसिंगलग्ग[14]-पज्झरियघणु।
घणनंदणवणसंछइयदिसु दिसमाणरिद्धि-हल्लिरकणिसु।
कणकणिरदसणसीयलसलिलु सुललियकोइलसरभरियबिलु।
विलसंतपवणकंपियसरलु सरलुप्फिडंत[15]-हरिणी[16]-तरलु।
तरलच्छि-छेत्तठियहलियवहु वहुविंभियपंथियरुद्धपहु[17]।
पहसंतरमियगामीणजणु जणयाहिलाससनायरमिहुणु[18]।
छत्ता—मणिसारहि तिहिं[19] पायारहिं परिहामंडलि[20] जलपयरि।
वहुभोयहिं मंडियलोयहिं अत्थि पुंडरिंकिणि[21] नयरि ॥१॥

[२]

दुवई—बारहजोयणाइं दीहत्तें नवजोयण सुवित्थरा।
सग्गु वि वीसरंति सा पेक्खिवि मोहियमाणसाभरा ॥१॥
नयरिमणोरमभुअणपइवहो[1] तिलयभूय जा जंबूदीवहो।
मंडालंकियाइं[2] उज्जाणइं वाहिरि अब्भंतरि निवथाणइं।
जहिं वाहिरे वाडीउ सतालउ अब्भंतरि पुणु नच्चणसालउ।
सरपालिउ विडंगनहवणियउ[3] वाहिरि अब्भंतरि पुणु गणियउ।

नामका देश है, जो जलनिधिके समान रत्नोको धारण करनेवाला है, व जहाँ घरोके शिखरोसे टकराकर बादल झरने लगते है। घने नंदनवनसे वहाँकी दिशाएँ आच्छादित है तथा शस्यके कंपनशोल तीक्ष्ण-अग्रभागोंसे उसकी समृद्धि दृश्यमान है। जहाँ दांतोंको कपायमान करनेवाला शीतल पवन बहता है और कोकिलाके सुमधुर स्वरसे सब कंदर-विवर भर जाते है, क्रीड़ापूर्वक बहता हुआ वायु सरल नामक वृक्षोको कंपित कर देता है, चचल हरिणिया सीधी छलाग लगाती है, और जहाँ खेतोमे खड़ी हुई चचल आखोवाली हालि (कृषक) वधुओको देखकर अत्यन्त विस्मित हुए पथिकोसे मार्ग अवरुद्ध हो जाता है, तथा जहाँ ग्रामीणजन अत्यन्त प्रमादपूर्वक रमण करते है, और जो नागरिकोंके जोड़ोको (वहाँ रहनेको) अभिलाषा उत्पन्न करता है, उस देशमे मणिजटित-प्राकार व जलप्रचारसे युक्त परिखामडल सहित तथा अनेकप्रकारके भोग भोगनेवाले लोगोसे मडित पुडरिंकिणी नामकी नगरी है ॥ १ ॥

[२]

बारह योजन लबी और नव योजन विस्तृत उस नगरीको देखकर मोहित हुए मनुष्य व देव स्वर्गको भी भूल जाते है। वह मनोरम नगरी भुवनके प्रदीप रूप जबूद्वीपकी तिलकभूत है। उस नगरीके बाहर अनेक वृक्षगुल्मो व लतामंडपोंसे अलंकृत उद्यान है, व भीतर सर्वत्र नाना प्रासादो (मठ) से अलकृत राजकुल है। वहाँ बाहर तालाबोसहित वाटिकाएँ है, व भीतर ताल-मजीर इत्यादि वाद्यवादनसे युक्त नृत्यशालाएँ। बाहर विडग वृक्षोसे ललित सरपाली अर्थात् सरोवर-पक्तियाँ है, व भीतर विदग्ध-जनोके नखोसे व्रणित स्मरपालित (कामयक्त)

---

१४ घ घर°। १५. क ङ °प्पियत, घ °प्फलत। १६. घ करिणी। १७ क घ ङ व हुविभय°। १८ ङ ग °नायरि°। १९ क ङ तहि। २० क क घ ङ °मडल। २१ ख ग °गिणि।

[२] १ घ °भुवण°। २ घ मढ़ा°। ३ ख ग °यउ।

मुणिवरमंडियकीलामहिहर   वाहिरि अब्भंतरि चेईहर ।
वाविउ सुपओहरउ सुरमणिउ[4]   वाहिरि अब्भंतरि वररमणिउ[4] ।
सहलसुपत्तइँ मंडवथाणइँ   वाहिरि अब्भंतरि जणदाणइँ ।
बाहिरि वाहियालि हरिसंगय[5]   अब्भंतरि वसंति नायरपय[6] ।
वाहिरि गयउलाइँ रयणरुयइँ[7]   अब्भंतरि सहंति डिंभरुयइँ[8] ।

घत्ता—गुणमंदिरु नयणाणंदिरु वज्जयंतु तहिँ रज्जधरु[9] ।
रणसूरहो[10] परबलु[11] दूरहो जसु नामेण वि वहइ डरु ॥२॥

[३]

दुवई—तहो महएवि विमलकसलाणण कमलदलच्छिनेत्तिया ।
कमलुज्जलसरीर कमला इव नाम जसोहणा पिया ॥१॥

भवयत्तु[1] जेट्ठु जो अमरु हुओ   तहे[2] जाउ पुत्तु सो सग्गचुओ ।
सायरगंभीरु[3] चंदवयणु   सायरचंदु जि[4] बाहरइ जणु ।
परिकलियसयलविज्जाकुसलु   जिणवरपयजुयलपंकयभसलु[5] ।
अह तहिं जि जणमणाणंदयरि   नामेण वीयसोयानयरि ।

गणिकाएँ है। बाहर मुनिवरोसे शोभायमान क्रीडापर्वत हैं और भीतर चैत्यगृह। बाहर स्वच्छ जलवाली अत्यन्त रमणीय वापिया है, व भीतर मनोहर पयोधरों (स्तनो) वाली अति-रमणशील सुंदर रमणिया। बाहर (उद्यानोमें) सुंदर फलों व पत्रोसे युक्त मंडपस्थान हैं, तथा भीतर मनोवांछित फल देनेवाला सुपात्र दान किया जाता है। बाहर अश्वों सहित अश्व-क्रीड़ास्थल हैं, और भीतर नागरिक प्रजा रहती है। बाहर गजकुल अपने दातोकी दीप्तिसे, व भीतर बालक अपने रत्नाभरणोकी कांतिसे शोभायमान है। वहाँ गुणोका निवास तथा नयनों-को आनंद देनेवाला वज्रदंत नामका राजा था, जिस रणशूरके नामसे ही शत्रुबल दूरसे ही भयभीत हो जाता था ॥ २ ॥

[३]

उसकी यशोधना नामकी महादेवी स्वच्छकमल जैसे मुखवाली, कमलदलके समान नेत्रोंवाली, कमलसदृश उज्ज्वल शरीरवाली और स्वयं कमला (लक्ष्मी) के समान थी, जो उसे बहुत प्रिय थी। ज्येष्ठ भाई भवदत्त जो देव हुआ था, वह स्वर्गसे च्युत होकर उसका पुत्र हुआ। वह सागर जैसा गभीर और चद्रमाके समान मुखवाला था, इसलिए लोग उसे सागरचंद्र कहने लगे। सब विद्याओको सीखकर वह उनमें कुशल हो गया था और जिन भगवान्‌के पदयुगलरूपी कमलोका भ्रमर (भक्त) था। और वहीपर लोगोके मनको आनंद देनेवाली वीताशोक नामकी

---

४ क °णिओ। ५ क °सगण। ६. क ङ °जण। ७ क ख ग ङ रयणु°, घ °रयइं। ८. घ °रयइं। ९. ग रज्जु°। १० ख ग रणु°। ११ क ख ग ङ °बल।

[३] १. ङ भय°। २. क ख ग ङ तहिं, घ तहे। ३ क सायरु°। ४ ख ग जे। ५. ख ग °जुयले°।

जहिं[6] सूरकंति संभूयं[7]-हवि वावरइ महाणसि पयणछवि।
पिज्जइ सुसाउ सीयलु विमलु मणिचंदकंतिपज्झरियजलु।
जहिं [8]मरगयभित्तिए सामलिय गोरंगी नाहें नउ कलिय।
जहिं इंदनीलमहिं[9] मणि[10] घरइ चिरु छलिउ न दूव-वि मिगु चरइ।
तहिं अत्थि अत्थिजणकप्पदुमु पउमालंकरिउ महापउमु।
नवनिहिरयणाहिउ चक्कधरु छक्खंडवसुंधरि धरियकरु।
बत्तीससहसमणिमउडधरा सेवंति नराहिवआणकरा[11]।
छण्णवइसहसअंतेउरहो[12] कडिहारदोरकुंडलधरहो।
वणमाल तित्थु[13] महएवि ठिय मुहकंतिजित्तहरिणंकसिय।
चक्कवइविहूइहे[14] सव्वगुणु ज नत्थि पुत्तु तं डहइ मणु।

घत्ता—जिणण्हवणहिं[15] वंदियसवणहिं पुण्णपहावे[16] सग्गचुओ।
वणमालहे[17] नयणविसालहे[18] भवएवामरु जाउ सुओ॥३॥

नगरी थी, जहाँपर कि महानस (रसोई) मे हविष (खाद्यसामग्री) को एकत्र करके सूर्यकात मणियोको पाकाग्निके काममे लाया जाता था, अथवा जहाँ सूर्यकातमणिसे उत्पन्न अग्निसे महानसमे भोजन पकाया जाता था। जहाँ चद्रकातमणियोसे झरा हुआ सुस्वादु, शीतल और विमल-जल पिया जाता था, जहाँ मरकतमय भित्तियोकी कृष्णछाया पडनेसे, अपनी गौरागी प्रियाओको भी श्यामवर्ण हो जानेसे उनके स्वामी पहचान नही पाते थे, जहाँ इद्रनीलमणियोसे निर्मित व (हरित) मणियोसे जडी हुई भूमिसे कभी पहले ठगा हुआ मृग अब दूबको भी (हरित मणि समझकर) नही चरता, वहाँ याचकजनोके लिए कल्पद्रुमके समान, व (राज्य) लक्ष्मीसे अलंकृत महापद्म नामका राजा था। वह मंत्री आदि नौ निधियोका रत्नाकर तथा षट्खड वसुंधरासे कर लेनेवाला चक्रवर्ती था। मणिमय मुकुटोके धारक बत्तीस सहस्र आज्ञापालक राजा उसकी सेवा करते थे। कटिहार, कटिसूत्र एव (कर्ण) कुंडलोको धारण करनेवाली उसकी छ्यानवे हजार रानिया थी, जिनमे वनमाला महादेवी थी, जो अपनी मुखकातिसे हरिणाक (चद्रमा) की शोभाको जीतनेवाली थी। इस प्रकार चक्रवर्तीको विभूतिके सभी गुण (सर्व साधन) उसके पास थे, एक पुत्र ही नही था, यह बात सदैव हृदयको दु खसे जलाती रहती थी। जिन भगवान्‌का न्हवन और श्रमणोको वदनाके पुण्यप्रभावसे भवदेव देवताका जीव विशालनेत्रोवाली वनमालाका पुत्र हुआ॥ ३॥

---

६. ख ग जहि। ७ ख ग °उ। ८. ख ग मरगइ°। ९. क घ ङ °मणि। १०. क घ ट महि। ११ क ट घरा, घ °यरा। १२. घ छन्नवइ°। १३ तें°। १४ क ट °यहि। १५ घ °न्हवणहि। १६ घ पुन्न°। १७. क घ °लहि, ख ग ङ °लहि। १८ ङ °लहि।

[४]

दुवई—सुहनक्खत्तजोए[1] तिहिवारए[2] पुण्णिमइंदवयणउ।
वरवत्तीसदेहलक्खधरु कुवलयदीहनयणउ[3]।

जम्मदिवसम्मि पुत्तस्स वहुपरियणो[4] चक्कवट्टी-कयाणंदवद्धावणो।
नियवि पुत्ताणणं गहिरसरवाइणा सिवकुमाराहिहाणं कयं राइणा।
वालु[5] वड्ढंतु[6] सो कहि मि नउ मुच्चए हत्थहत्थाउ[7] रायाण[8] न पहुच्चए।
अट्ठवरिसो वि सिसुभावपरिचत्तओ सयलविज्जाकलाथाणु संपत्तओ।
चक्किणा कोउहल्लेण संथाविओ रायकण्णाण[9] सयपंचपरिणाविओ।
मंति[10]-सामंतकुमरेहि[11] परिवारिओ देहि आएसु जीव[12] त्ति जयकारिओ।
रायघरवाहिरं जेम नउ निज्जए अंगरक्खाण कोडीहिं[13] रक्खिज्जए।
हरिणनयणीहिं[14] सरिसं सुहं माणए जामिणी नेव[15] दिवसं गयं जाणए।

घत्ता—ता एत्तहे[16] अच्छइ जित्तहे[17] सायरचंदु विसुद्धगुणि।
विहरंतउ दमदयवंतउ पत्तु पुंडरिगिणिहिं मुणि ॥४॥

[४]

शुभ नक्षत्र, योग, तिथि और वारको पूर्णचंद्रमाके समान मुखवाले, वत्तीस उत्तम अगलक्षणोके धारक तथा कुवलयके समान दीर्घ नेत्रोवाले उस पुत्रके जन्मदिन पर वहुत-से परिजनोने चक्रवर्तीको आनंद-वधाई दी। पुत्रके मुखको देखकर गंभीर स्वरसे वोलनेवाले उस राजाने उसका नाम शिवकुमार रख दिया। वड़ा होता हुआ वह वालक कही भी (पृथ्वीपर) छोड़ा नही जाता था, तथा सव राजाओके हाथोसे हाथो तक भी नही पहुँच पाता था। आठ वर्षका होतेही वह शिशुभावको छोड़कर सकल विद्याओं व कलाओका धाम वन गया। चक्रवर्तीने कौतूहल पूर्वक उसे युवराज पदपर संस्थापित (अभिषिक्त) कर दिया और पांच सौ राजकन्याओं-के साथ परिणय करा दिया। वह, आदेश दीजिए, जीवंत होइए आदि वचनपूर्वक जयजयकार करनेवाले मंत्री व सामंतकुमारोसे घिरा रहता था। जिसप्रकार उसे राजप्रासादसे वाहर न ले जाया जा सके, इसप्रकार अंगरक्षकोंकी वहुत वड़ी सेना द्वारा उसकी रक्षा की जाती थी। वह मृगनयनी रानियोके साथ सुख भोगता था, और रात्रि व दिन कव गये यह नही जान पाता था। तवतक इधर जहाँ वह विशुद्धगुणोका धारक सागरचंद्र रहता था, वहाँ, उस पुंडरिं-किणी नगरीमे इद्रियोंका दमन करनेवाले दयावान मुनि विहार करते हुए पधारे ॥ ४ ॥

[४] १. ख ग तिहि° । २. क पुण्णम° । ३. प्रतियोमे °णयणउ । ४. क °यणे । ५. क वाल । ६. क ड वट्टंतु । ७. क घ ड °हत्थाण । ८ क व ड रायाउ । ९ ख ग व ड °कन्नाण । १०. ख मंत । ११ °रेहि । १२. क जीवि । १३. ख ग °उ; घ °ए । १४. ख ग °णेहि । १५ क ड णेव, ख ग णेय । १६. क °तावित्तहिं; घ °तावित्तहि । १७. क व ड °हि ।

[५]

दुवई—मई[1]-सुइ-अवहि-विमलमणपज्जयनाणॅचउक्कसामिउँ[3]।
नाम सुवंधुतिलउ[4] उववणे ठिउ चारणरिद्धिगामिउ ॥ १ ॥

रिसिचलणवंदणुच्छाहमणु[5] चल्लंतु नियच्छवि[6] पउरयणु।
गउ सायरचंदु कुमारु तहिं उज्जाणे परममुणि थक्कु जहिं।
भत्तिए पणवेवि परंपरए आउच्छइ निय जम्मंतरए।
मुणि भणइ[7] भरहे सुविसुद्धमणा[8] दियनंदण तुम्हइँ[9] वे वि[10] जणा।
भवयत्तु जेट्ठु तुहुँ[11] पवरभुओ लहुवारउ तहिँ भवएउ हुओ।
तवचरणु[12] करिवि आउसि खइए[13] उप्पण्ण मरेवि सग्गे तइए।
तहिँ चयवि जाउ सम्मत्तधरु तुहुँ वज्जयंतसुउ निवकुमरु।
तुहु[14] अणुउ आसि जो सो वि वुहु[15] चक्कवइमहापउमंगरुहु।
अहिहाणें सिवकुमारु अभउ इय कहिय भवंतरु[16] सिग्घु तउ।

घत्ता—आयण्णिवि[17] भवगइ मण्णिवि[17] विज्जुलचल आसंकियउ।
नयजुत्तहिँ सहुँ[18] राउत्तहिँ उयहिचंदु[19] दिक्खंकियउ ॥५॥

[५]

मति, श्रुत, अवधि और विमल-मनःपर्यय इन चार ज्ञानोंके स्वामी सुबंधुतिलक नामके चारणऋद्धिधारी मुनि उपवनमें ठहरे। ऋषिचरणोंकी वंदनाका उत्साह मनमें लिये हुए पौरजनोंको चलते हुए देखकर कुमार सागरचंद्र भी वहाँ गया जहाँ उद्यानमें वे परममुनि ठहरे थे। परंपरानुसार भक्तिपूर्वक प्रणाम करके अपने जन्मान्तरोंको पूछा। मुनिने कहा—तुम दोनों भारतखंडमें पवित्र मनवाले ब्राह्मणपुत्र थे। तू जेठा भाई भवदत्त था और तेरा छोटा भाई उत्तम भुजाओंवाला भवदेव था। तपश्चरण करके आयुष्य क्षय होनेपर मरकर तीसरे स्वर्गमें उत्पन्न हुए। वहाँसे च्युत होकर तुम वज्रदंतके पुत्र, सम्यक्त्वधारी राजकुमार हुए हो, और वह जो तुम्हारा अनुज था, वह महान् महापद्म-चक्रवर्तीका शिवकुमार नामका ज्ञानवान् पुत्र हुआ है। इस प्रकार संक्षेपमें तुम्हारा भवांतर कह दिया गया। यह सुनकर व भवगति अर्थात् भवस्थितिको विद्युत्के समान चंचल मानकर जन्म-मरणसे भयभीत वह सागरचंद्र नीति-सदाचार युक्त राजपुत्रोंके साथ दीक्षित हो गया ॥ ५ ॥

[५] १ क ङ मइं। २ प्रतिगोमें णाण°। ३. क ङ °सामिउं। ४. क ङ सुवंध°, घ सुवंसतिलय। ५. क घ ङ रिसिचरण°। ६. क घ ङ °च्छिवि। ७. क ङ पभणइ, घ भणइ। ८. क ङ विसुद्धि°। ९. क ख ग ङ °इ। १०. ख ग वेण्णे। ११ घ तुहु। १२. क °ण। १३. ख ग आउसे खवइ। १४. ग तुहुं। १५. क ख ग तहु, ङ वुहो। १६. क घ ङ कहृतरु। १७ घ °त्तिवि। १८. ख ग सहु। १९. क घ ङ उवहि°।

[६]

दुवई—तवसिरिभूसियंगु गुणपरिमिउँ रायपमायताडणो।
खमदमसीलनियमवयविग्गहु इंदियदप्पमाडणो ॥१॥

वारहविहु तवचरणु[1] चरंतहो उवरि उवरि गुणथाणु सरंतहो।
सायरचंदु मुणिहिँ संपुण्णउ[2] चारणाइरिद्धिउ[3] उप्पण्णउ[4]।
अह कयावि सासयसुहरत्तउ वीयसोयनयरिहिँ[5] संपत्तउ।
मज्झण्णहो[6] चरियाए पईसइ विंभियचित्तहिँ[7] लोयहिँ दीसइ।
पग्गि व मुणिवरवेसकयायरु अवस तवइ तउ वालदिवायरु।
अण्णहो[8] कहो[9] पयाउ इह निम्मलु देहदित्तीपिंगीकयनहयलु।
राउलनियडघरेण वणीसे ठाहु भणंतें पणवियसीसे।
विहिणा पाराविउ दियंवरु पूरइ[10] रयणविट्ठि सिट्ठिहि[11] घरु।
तं अच्छरिउ नियवि सुविहोयहिँ उट्ठिउ कोलाहलु किउ लोयहिँ
तं कलयलु सुणंतु[12] मणि भिण्णउ[13] सिवकुमारु धवलहरि चडिण्णउ[13]।
तो अण्णेक्के[14] वइयरु सीसइ[15] सेट्ठिघराउ जंतु[16] मुणि दीसइ[15]।
घत्ता—इहु[17] मुणिवरु[18] मइँ[19] दिट्ठउ चिरु इउ[20] कुमरें[21] विंभउ धरिउ।
मुणिदंसणि दुक्कियभंसणि[22] नियजम्मंतरु संभरिउ[23] ॥६॥

[६]

तपःश्रीसे भूषित अंग, गुणोसे वेष्टित, राग व (पंद्रह प्रकारके) प्रमादका नाश करनेवाले, क्षम-दमशील, नियम और व्रतोंरूपी शरीरवाले, तथा इंद्रियोंके दर्पको गलित करनेवाले उन सागरचंद्र मुनिको वारह प्रकारका तपश्चरण करते हुए, तथा ऊपर-ऊपरके गुणस्थानोंका अनुसरण (आरोहण) करते हुए चारण (ऋद्धि) आदि सभी ऋद्धियाँ उत्पन्न हो गयी। पश्चात् किसी समय स्वाश्रय सुख (अर्थात् आत्म-सुख) में लीन रहते हुए वीतशोक नगरीमे पधारे। मध्याह्नमें उन्होने चर्याके लिए नगरमें प्रवेश किया, और विस्मितचित्त लोगोने उन्हे ऐसे देखा मानो पहलेसे ही मुनिके उत्तम वेशके प्रति आदरयुक्त होकर वालदिवाकर ही तप करता हो ; (अन्यथा) अन्य किसका ऐसा निर्मल प्रताप हो सकता है, जिसने अपनी दीप्तिसे नभस्तलको पिंगलवर्ण कर दिया हो ? राजकुलके निकट ही एक घरसे एक वणिक्पतिने शिरसा प्रणाम करके, ठहरिए ! ऐसा निवेदन करते हुए, विधिपूर्वक उन दिगंवर-को पारणा करायी। इस आहारदान (के प्रभाव) से रत्नोंकी वर्षाने श्रेष्ठीके घरको पूर दिया। उस आश्चर्यको देखकर वैभवसंपन्न लोगोंके द्वारा किया हुआ वड़ा भारी कोलाहल उठा। उस कलकलको सुनकर, मनमें आश्चर्यचकित होकर शिवकुमार अपने प्रासादपर चढ़ गया। तव किसी एकने (राजकुमार से) वृत्तांत कहा, और श्रेष्ठीके घरसे मुनि जाते हुए दिखाई दिये। 'इन मुनिवरको मैंने चिरकाल पूर्व देखा है', इसप्रकार कुमार मनमें

[६] १ क ख °चरण। २. क ब ड °ण्णउं। ३. क ड चारणाइ°। ४. क ड °ण्णउं। ५. घ °रिहि। ६ ख ग ण्णहो; घ °ह्नहो। ७. ग °चित्तहि। ८. क ङ अण्णहिं; ब अन्नहिं। ९ प्रतियोंमें 'कहिं'। १०. ख °इ। ११. क घ °हिं, ख ग सेट्ठिहि। १२. ख ग सु°। १३. घ °न्नउ। १४. घ अन्निक्कें। १५ क °इं १६. घ इंतु। १७ क घ ड इह। १८. ख °विरु, घ °यिरु। १९. ख ग मइ। २०. क ड एम, व इमु। २१. क ड °रि। २२. प्रतियोंमें '°फंसणि'। २३ घ °रिउं।

[७]

दुवई—आयहो लहुउ आसि हउँ[1] बंधउ एहु महंतु थाविउ।
एण वि हुंतएण सुपसाएं[2] मइँ सम्मत्तु पाविउ॥१॥

तउ करिवि सुरालइँ[3] वे वि हुया पुणु एत्थ[4] जाय फुडु तत्थ चुया।
सुमरंतु[5] भवंतरु[6] मुच्छगओ हा हा रउ उट्ठिउ गरुउ तओ।
धाहाविउ बालंतेउरिहिँ[7] भत्तारदुक्खसोयाउरिहिँ[7]।
रोवंति मंति-सामंतसुया हियउल्लउ फुट्टिवि[8] किं न[9] मुया।
चमराणिल-चंदणसिंचियउ[10] कह-कह व दुक्खउम्मुच्छियउ[11]।
जम्मंतरसुमरणु कहिउ तहो दिढधम्महो मंतितणुब्भवहो।
निव्विण्णु[12] मित्तु हउँ इह भवहो संदरसिय[14]-जरमरणुब्भवहो।
चक्केसरु महु वयणे[15] भणहि[16] तउ लेंतहो महु म विग्घु करहि[17]।
गउ रायत्थाणे[18] पइसरेवि[19] पहु पणविवि जंपइ वइसरेवि[20]।
तउ तणउ[21] देव पइं[22] विण्णवइ[23] भवकालसप्पु जगु परिहवइ।
इंदियफडालु चउगइवयणु मिच्छत्तमोहविसरिसनयणु।
रइदाढु[24] विसयजीहातरलु उब्भरियसुहासुहफलगरलु।

विस्मित हुआ, तथा मुनिदर्शनके कारण (पूर्वंकृत) अशुभकर्मके क्षय होनेसे उसने अपने जन्मान्तर (अर्थात् पूर्वजन्म) को स्मरण किया ॥६॥

[७]

मै इसका छोटा भाई था, यह मेरा बड़ा। इसीके होनेवाले सुप्रसादसे मैने सम्यक्त्व पाया था। तप करके हम दोनों स्वर्गमे देव हुए, फिर वहाँसे च्युत होकर यहाँ उत्पन्न हुए, इसप्रकार भवातरको स्मरण करते ही वह मूर्च्छित हो गया। तब बड़ा भारी हाहाकार मचा। पतिके दुःखसे शोकातुर होकर कुमारका अन्तःपुर धाड़ देने लगा। मंत्रियो व सामंतोकी पुत्रियाँ इस प्रकार रोने लगी—हाय ! हम लोग हृदय फटकर मर क्यो नही गयी, चंवरकी वायु और चंदनसे सीचनेपर वह किसी किसी तरह कष्टपूर्वक उन्मूर्छित हुआ। उसने मंत्रीपुत्र दृढधर्मको अपना जन्मान्तर स्मरण होना बतलाया (और कहा)—'हे मित्र ! मै जरा-मरण युक्त इस संसारसे उदासीन हो गया हूँ, चक्रेश्वरको मेरे वचनसे कहना कि तप लेनेमे मुझे विघ्न न करे।' वह गया, राजसभामे प्रविष्ट होकर प्रभुको प्रणाम करके बैठा, और कहने लगा—हे देव ! आपका पुत्र आपसे विज्ञापना करता है कि यह भव (अर्थात् पुनः पुनः जन्ममरण) रूपी काला सांप सारे लोकको पराभूत करता है; जो कि इंद्रियोरूपी फणा, चतुर्गतिरूपी मुख, मिथ्यात्व-मोहरूपी विसदृशनेत्र, रतिरूपी दाढ, तथा विषयभोगरूपी चंचल जिह्वासे युक्त है, और शुभाशुभ कर्मफलरूपी गरलसे भरा हुआ है। उसका क्षय करनेवाला तपरूपी मंत्राक्षर (मंत्र) जिन भगवान्‌रूपी गरुड़-

[७] १. ख ग ड हउ। २. क घ ङ सप°। ३. ख ग °लय। ४. क एत्थु। ५. क सम°। ६. क घ ङ °तर। ७. उरेण; ख ग °उरेहिं। ८. घ फुल्लिवि। ९. क ङ किण्ण, ख ग घ किन्न। १०. क °यउ। ११. ख °ओमु°। १२ प्रतियोमें णिव्वि°। १३ क ङ हउ। १४ ङ घ ङ संदरि°। १५. क ग °णे। १६. क ङ °ही। १७. क घ ङ जणहो। १८ घ ङ °त्थाणु। १९ क घ ङ पई°। २० क घ ङ °सरवी। २१. क घ ङ °उं। २२. क ख ग पइ। २३. घ विन्न°। २४. ख ग विसइ°।

घत्ता—तहो खयकरु तवमंतक्खरु जिणवरगरुडसमुद्धरिउ ।
मइँ लेवउ अणुचेट्ठेवउ वारहविहु वहुगुणभरिउ ॥७॥

[८]

दुवई—तं [1]तवगहणसद्दु[2] आयण्णवि[3] पुत्तहो पुत्तवच्छलो ।
विहडप्फडु नरिंदु गउ तित्तहिँ[4] वड्ढिय[5]दुहमहानलो[6] ॥१॥

रसणखलंतु कणिरपयनेउरु वणमालालंकिउ अंतेउरु ।
सेयजलोल्लिय नयणाणंदिरु पत्तु तुरंतु कुमारहो मंदिरु ।
आहासइ चक्केसरु तणुरुहँ[7] कवणु कालु पावज्जहेँ[8] किर तुह[9] ।
अखयनिहाण[10]-रयणरिद्धिल्लि रायलच्छि[11] तुहुँ[12] भुंजहि[13] भल्लि ।
भणइ कुमारु ताय जइ[14] सुंदर ता कहिँ[15] चक्कवट्टि-हरि-हलहर ।
सयलकाल-नव-नव-वरइत्ति वसुमइ[16] वेस व केण न भुत्ति ।
तो भुंजमि जइ आउ न तुट्टइ[17] दुत्तरवाहितरंगिणि खुट्टइ[17] ।
तो भुंजमि जइ [18]जर नउ[18] वंकइ कालभुयंगदाढ[19] नउ डंकइ ।
अह कल्लइँ[20] विणासु जइ रज्जहो तो वरि अज्ज जामि[21] नियकज्जहो ।

ने उद्धृत किया है। वह मेरे द्वारा लेने और पालन करने योग्य है। वह (तप) बारह प्रकारका है और बहुत गुणोंसे भरा है ॥७॥

[८]

पुत्रके तपग्रहणकी बात सुनकर वह पुत्रवत्सल राजा वही विह्वल हो गया और उसे दुःखकी महाज्वाला बढ़ गयी। करधनीको स्खलित करती हुई, पगनूपुरोंसे रणरण करती हुई, और स्वेदजलसे आर्द्र रानियाँ (कुमारकी माताएँ) वनमालासे अलंकृत होकर अर्थात् वनमाला देवीको आगे करके तुरंत कुमारके नेत्रोंको आनन्द देनेवाले आवासमें पहुँची। चक्रेश्वरने कहा—बेटा! तेरा यह प्रव्रज्या लेनेका अभी कौन-सा काल है? तू अक्षय धन तथा रत्नऋद्धिसे युक्त इस भली (अर्थात् सुंदर व सुखदायक) राज्यलक्ष्मीको भोग। तब कुमार कहने लगा—हे तात! यदि यह सुंदर है तो फिर (इसे भोगनेवाले) चक्रवर्ती, वासुदेव और बलराम आज कहाँ हैं? सदा नये नये वरोंको वरण करनेवाली यह वसुमती वेश्याके समान किस-किसके द्वारा नहीं भोगी गयी। मै तब इसे भोगूँगा यदि (कभी) आयु न टूटे, और यह दुस्तर व्याधि-तरंगिणी खंडित हो जाये, (अथवा) मै तब इसका भोग करूँगा यदि जरा शरीर को क्षीण न करे और काल-भुजंगकी दाढ़ इसे कभी डंसे नही। परंतु यदि कल राज्यका विनाश होना हो, तो मै आज ही अपने (मोक्ष साधनके) कार्यके लिए

[८] १. घ भव°। २. ख ग °गहणु°। ३. क ङ °ण्णिवि; घ °न्नेवि। ४. ख ग °हो। ५ क ख ङ वट्टिय। ६. क ङ °णलो। ७ क ङ तणरुह, ख ग तणुरुहु। ८. क पवज्जहि; ग पव्वज्जहे, घ पावज्जहिं, ङ पवज्जहि। ९. ख ग तुहु। १०. ख ग °णु। ११ क घ ङ °रिद्धि। १२. ख ग तुहु। १३. क °हिं १४ ख ग जय। १५ ख ग कहि। १६. °मइं। १७ क °इं। १८. क ङ जरउ ण। १९. क ङ °डाढ। २०. घ °इं। २१. क घ ङ ठामि।

घत्ता—अजरामरे[22] सासयपुरवरे ताय करिव्वउ[22] मइँ[23] निलउ[24] ।
चयणिज्जहे[25] करमि अविज्जहे[26] अविलंबेण[27] वि तहे[28] विलउ ॥८॥

[९]

दुवई—निच्छउ मुणेवि भणइ[1] चक्केसरु हियवउ मज्झु डज्झए ।
निग्गहु[2] इंदियाण तउ तं[3] किर सुय निलए वि सिज्झए ॥१॥

जइँ रायदोस न[4] वसंति मणे तउ[5] लेवि करेव्वउ काइँ[7] वणे ।
अह रइउ कसायहिँ[8] हियउ[9] जहि तवचरणु[10] सज्झु किर काइँ तहि ।
तो वरि अब्भत्थण महु करहि घरि[11] संठिउ नियमवयइँ[12] धरहि ।
पडिवज्जिउ कुमरे पिउ[13] वयणु गउ निय-निय-निलयहो सव्वु[14] जणु ।
तद्दिवसहो लग्गेवि रायसुओ घरसंठिओ वि घरकज्जचुओ ।
मणवयणकायकयसंवरणु[15] नवविहवरबंभचेरधरणु ।
पासट्ठिओ[16] वि तरुणीनियरु मण्णइ[17] वहिपुंजिउ व्व कयरु ।
दिढधम्मु[18] मंतिसुउ आढविउ आहारु आरणालग्घविउ[19] ।
नउ कारिउ न किउ न इच्छियउ सावयघरभिक्ख[20]-पडिच्छियउ ।

जाता हूँ । हे तात ! मुझे अजर अमर व शाश्वत और श्रेष्ठ, ऐसे मोक्षनगर मे निवास बनाना है, और मै त्यजनीय अविद्यारूपी (भ्रान्त, असत्य एव अशाश्वत) राजलक्ष्मीका शीघ्र ही त्याग करूँगा ॥ ८ ॥

[९]

(पुत्रके) निश्चयको जानकर चक्रेश्वरने कहा—पुत्र (दुःखसे) मेरा हृदय जल रहा है, तथापि मुझे यह कहना है कि इंद्रियोंका निग्रह ही तप है और वह घरमे भी सिद्ध हो सकता है । यदि मनमें राग-द्वेष निवास नही करते तो तप लेकर वनमे ही क्या करोगे ? और यदि हृदय काम-क्रोधादि कषायोसे रचित है, तो फिर वहाँ तपश्चरण कैसे साधा जा सकेगा ? तो इसलिए मेरी यह अभ्यर्थना मानो कि घरमे रहते हुए ही नियम और व्रतोको धारण करो । कुमारने पिताके वचन स्वीकार किये और सव लोग अपने-अपने निवासको चले गये । उस दिनसे लगाकर वह राजपुत्र घरमे रहता हुआ भी घरके कार्योंसे अलग रहने लगा । उसने मन-वचन-कायका सवरण कर लिया और नवविध ब्रह्मचर्य धारण कर लिया । पासमे स्थित तरुणी-समूहको वह रूप बनाये हुए व्याधिपुंजके समान मानने लगा । उसने मन्त्रीपुत्र दृढधर्मसे सम्मान-पूर्वक कहा कि मुझे काजीका ही आहार दिया जाये । न (तैयार) कराया हुआ, न स्वयं किया हुआ, न अपनी इच्छा (अनुमोदन) से वनवाया हुआ, ऐसा श्रावकोके घरसे भिक्षामे

२२ ख ग करेवउ । २३ क ख ग घ मइ । २४ क ट °उ । २५ क वयणिज्जहि, घ वयणिज्जहि, ट चयणिज्जहिं । २६. क घ ट °ज्जहि । २७. प्रतियोंमें अव° । २८. क ट तहि; घ तहि ।

[९] १ क ख ड °ई । २ क °हु । ३ क ट कि किर । ४. ख ग जय । ५. क ट णियमति । ६ क वउ । ७. क ड काइ । ८ ख ग °यहि । ९ क °उं । १० क घ ट °यरणु° । ११. क घ ट घर । १२ ख ग °इ । १३ क घ ट पिय । १४ क मव्व । १५ ख ग °काइकयमय° । १६ क ट °ट्ठिउ । १७ क ट °इ, व मन्नइ । १८. क ट °धम्म । १९. ख ग आरनाल° । २० क ट °घरि°, घ °घर° ।

एक्कंतरि[21] छट्टट्ठमए दिणे आणहि[22] महु पारणकज्जु[23] मुणि।
जं एम कुमारें तहो कहिउ सुविसुद्धभत्तु[24] कंजियसहिउ।
आणइ[25] परघरहो भिक्खभमइ[26] निवनंदणु पाणिपत्ते जिमइ[27]।
तहो तिव्वमहावयपहरणहो नासंति विसय उवसममणहो।
पहरणें[28] ठिउ लोहु गइंदु[29] मउ[30] राउ वि दिण संज्झहे[31] सरणु[32] गउ।
भोउ वि विलग्गु मरुभोयणहिं[33] अंजणु सीमंतिणि लोयणहि[34]।

घत्ता—वयनिम्मलु अज्जियतवफलु वरिससहसचउसट्ठि थिउ।
जिणें[35] दिट्ठउ आगमें[36] सिट्ठउ[37] आउसंते सण्णासु[38] किउ॥९॥

[१०]

दुवई—एरिसतवफलेण बंभोत्तरें [1]तणुकियसुरहिवाउ सो।
एहु[2] सो विज्जुमालि[3] हुउ सुवरु दससायरथिराउसो॥१॥
आएं विणयगुणेहि अमुक्कें सुहु[4] भुंजइ[5] सहुं[6] देविचउक्कें।
एत्तहे सायरचंदु समाहिए हुउ मरेवि सुरु तहिं जि[7] अवाहिए।

स्वीकृत आहार मेरी पारणाके लिए छट्ठे-आठवे दिन एकान्तरसे ला देना, ऐसा जान लो। जब कुमारने उसको ऐसा कहा तो वह दूसरे-दूसरे घरोसे भिक्षा-भ्रमण करके काजी सहित विशुद्ध भात उसे लाकर देने लगा और राजकुमार उसे अपने करपात्रमे ही जीमने लगा। महाव्रतों-रूपी तीव्र शस्त्रको धारण करनेवाले उस उपशात-मन राजकुमारके विषय (विषय वासना) नष्ट हो गये, प्रहार पड़नेसे लोभरूपी गजेंद्र मारा गया, और राग भी दिनके समान (सान्ध्य अरुणिमाके रूपमें) सन्ध्याकी शरणमे चला गया अर्थात् अस्तंगत हो गया। उसका भोग (भोगाभिलाष) मरुत् भोजी सर्पोमें भोग अर्थात् फणाटोपके रूपमे जा लगा, और अंजन अर्थात् पापरूपी कल्मष सीमन्तिनियोके नेत्रोंमे (काजलके रूपमें) लग गया। तपका फल अर्जन करके वह चौसठ हजार वर्षो तक जीवित रहा और आयुष्यके अन्तमें जिन भगवान्के द्वारा उपदिष्ट एवं आगममे निर्दिष्ट संन्यासमरण किया॥ ९॥

[१०]

ऐसा वह (शिवकुमार) तपके फलसे ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें अपने शरीरकी गंधसे वायुको सुगंधित करनेवाला, दस सागरकी स्थिर आयुवाला विद्युन्माली नामका श्रेष्ठ देव हुआ है। यह कभी भी विनयगुणको न छोड़नेवाली चार देवियोके साथ सुख भोगता है। इधर सागरचद्र मुनि भी निर्बाध (अखंड) समाधिपूर्वक मरकर उसी स्वर्गमे देव हुआ है। वह इंद्रके समान

२१ ग एक°। २२. क घ ङ °हिं। २३ ख ग कज्ज। २४ क ङ सुविसुद्ध°। २५. क घ ङ °इ। २६. क °समइं, ख ग °भमइ। २७. ख ग °इं। २८ क ङ °रण। २९. प्रतियोमें गइदि। ३०. क मउं। ३१. ख ग सज्झहे, क घ ङ सज्झहिं। ३२. ख ग °ण। ३३. क घ ङ °णिहिं; ख ग °णहि। ३४. ख ग सीमंतणि°, क ङ °लोयणिहि। ३५. क घ ङ जिण। ३६. क ङ आयमि। ३७. °उ। ३८. घ सन्नासु।

[१०] १ क घ ङ तणुकय°। २. क घ ङ इहु। ३. ख ग विज्ज°। ४. घ सुहुं। ५. ख ग °इं। ६. ख ग सहु। ७ ख ग जे।

इंदसमाणु पडिंदु पसंसिउ करइ विलासु सुरेहिँ नमंसिउ।
इय तवफलु महंतु इय तणुपह अक्खिय विज्जुमालि[8] देवहो कह।
एवहिँ[9] सत्तमदियहे[10] चएप्पिणु चरमसरीरु मणुउ होएप्पिणु[11]।
तउ लेसइ विज्जा-बलथामें[12] सहुँ चोरेण[13] विज्जुचरनामें[14]।
तहिँ अवसरि पणविवि निम्माएं वड्ढमाणु जिणु पुच्छिउ राएं।
देविचउक्कहो[15] विहियतवंतरु कहहि भडारा पुव्वभवंतरु।
भणइ[16] जिणंदु[17] भरहे जणकिण्णी[18] चंपानयरि अत्थि विच्छिण्णी[19]।
इब्भसेट्ठि तहिँ वसइ सुचित्तउ[20] नामें सूरसेणु धणइत्तउ।
तहो जयभद्द-सुभद्दविसत्थी धारिणि-जसमइ कंत-चउत्थी।

घत्ता—सुहनक्खउ तिक्खकडक्खउ सज्जियउच्छु धणुद्धरहो।
विंधेवए भुअणु जिणेवए[21] भल्लिचउक्कउ रइवरहो ॥१०॥

[११]

दुवई—तेहिँ[1] समाणु सुक्खु भुंजंतउ सेट्ठि सकम्मभाविणं।
वाहिसएहिँ[2] घत्थु हुउ निप्पहु अज्जियपुव्वपाविणं ॥१॥
तहो जाउ जलोयरु कासु सासु खयरोउ भयंदरु जणियतासु।

प्रशसित प्रतीद्र हुआ है और देवताओंसे नमस्कृत होता हुआ वहाँ विलास करता है। यह तपका महत् फल और इसप्रकार शरीर-कांति संबंधी विद्युन्माली देवकी कथा कह दी गयी। अब यहाँसे सातवें दिन च्युत होकर, अन्तिमशरीरी मनुष्य होकर यह विद्या एव बलके धाम विद्युत्चर नामक चोरके साथ तप लेगा। उस अवसरपर प्रणाम करके (व्यवहार) निपुण श्रेणिक राजाने वर्द्धमान जिनसे पूछा—'हे भट्टारक! इन चारो देवियोंका विशेष तपानुष्ठानयुक्त पूर्व-भव कहिए।' (तब) जिनेंद्र कहने लगे—भारतदेशमें जनसकुल और विस्तीर्ण चंपा नामकी नगरी थी। वहाँ एक बहुत धनवान समृद्ध व स्वच्छ चित्तवाला सूर्यसेन नामका श्रेष्ठी रहता था। उसकी जयभद्रा, सुभद्रा, धारिणी व चौथी यशोमती नामकी विश्वस्त पत्नियाँ थी। वे बहुत सुंदर नखोंवाली तथा कामदेवरूपी धनुर्द्धरके पैने किये हुए बाणके समान तीक्ष्ण कटाक्षोंवाली थी, जो मानो उस रतिपतिकी सारे भुवनको बीधकर जीतनेवाली चार बरछियाँ ही थी ॥ १० ॥

[११]

उनके साथ सुख भोगता हुआ श्रेष्ठी अपने कर्मोके वैसे भाव अर्थात् वैसी कुछ परिणतिसे पूर्वोपार्जित पापके कारण सैकड़ो व्याधियोसे ग्रस्त होकर कांतिहीन और अदर्शनीय हो गया। उसके जलोदर, काश, श्वास और त्रासोत्पादक क्षयरोग व भगदर हो गया। अस्थिवात उसके

---

८. ख ग विज्ज°। ९. क घ ङ °हि। १०. क घ °हि। ११. ख ग °विणु। १२ ख ग बलु°। १३. क ङ चोरें। १४. क ङ विज्जुच्चर° १५ क देव°। १६ क घ ङ °इं। १७ क घ ङ जिणिंदु। १८. क जिण°; घ °किन्नी। १९. घ °न्नी। २०. क ङ सवि, घ सचि°। २१. क °वइं; घ ट °वइ।

[११] १. क ङ सुक्ख। २. क वाहिं°।

तणु मोडइ फोडइ अट्टिवाउ विसरिसमणु हुउ विवरीयधाउ ।
नियकंतहँ[3] कंति नियंतु रुट्ठु अणुदिणु ईसालुउ जाउ सुट्ठु ।
निवसु वि तं नत्थि न[4] जित्थु पाउ अच्छइ अ दिंतु गुरुलट्ठिवाउ ।
खरफरुसवयणु[5] वोल्लइ सकूरु परपुरिसचंदु[6] जइ अह व[7] सूरु ।
घरु पंगणु[8] कोड्डु[9] निएहु पासु तो तुम्ह सहुट्ठउ[10] लुणमि नासु ।
जइ जाइ कह व वाहिरे स खुद्दु उवरए[11] छुहेवि[12] तालउ समुद्दु ।
दिढु देविणु रक्खणु[13] विद्धपुरिसु आइउ[14] पेक्खंतु विमुद्दसरिसु ।
नियथाहिणहाणु[15] पुच्छइ सकोहु किं कोवि न आयउ[16] जारु गेहु ।
वोल्लंति परोप्परु दुक्खियाउ न मरइ हयासु इहु[17] दुट्ठभाउ ।
जें[18] नियहु जंत-आवंतयाइँ पिय[19]-मायबंधुसयणिज्जयाइँ ।

घत्ता—इय संतए काले वहंतए पउसियदइयहँ[20] देंतु भउ ।
रइथावणु मिहुणसुहावणु मासु वसंतु[21] पहुत्तु तउ[21] ॥११॥

शरीरको मोड़ने व फोड़ने लगा । उसका मन विसदृश अर्थात् प्रतिकूल हो गया और समस्त वात-पित्तादि धातुएँ विकृत हो गयी । अपनी पत्नियोंकी कांति देखकर वह रुष्ट होने लगा और प्रतिदिन अधिकाधिक ईर्ष्यालु होता गया । 'ऐसा कोई निवास नही है जहाँ पाप न हो, (ऐसा सोचते हुए) वह उनपर लाठीसे भारी आघात करता हुआ रहने लगा । वह बड़ी क्रूरतासे तीखे और कठोर वचन वोलने लगा (कि), परपुरुष चाहे वह चंद्र हो अथवा सूर्य, यदि वह घरके प्रागणमें, या दीवारके पास (कही भी) तुम लोगोके साथ देख लिया तो तुम लोगोंका ओष्ठसहित नाक काट लूँगा । वह क्षुद्र यदि किसी कारणसे वाहर जाता था, तो उन लोगोको मुद्रांकित तालेमें वंद करके निवृत्त होता । उसने एक वृद्ध पुरुषको उनका कड़ा रक्षक नियुक्त कर दिया । (इस पर भी) जव भी वह लौटकर आता तो इस प्रकार देखता हुआ कि मानो तालोंकी मुद्रा तोड़ दी गयी हो, तथा अपनी शपथ देकर क्रोधपूर्वक पूछता—क्या कोई जार तो घरमें नही आया ? वे दुःखित होकर परस्परमें कहतीं—यह दुष्टभावोंवाला हताश (दुर्जन) मरता भी क्यों नही, जो आने जानेवाले पितृ व मातृबन्धुओं (चाचा व मामा) को भी शयनीयोके रूपमें देखता है अर्थात् इन पितृजनोंके साथ भी हम लोगोके द्वारा संभोग किये जानेकी नीच शंका करता है । इस प्रकार रहते हुए, व काल व्यतीत होते हुए प्रोषित-पतिकाओंको भय देता हुआ, रतिको स्थापित करनेवाला (अर्थात् रतिभावको वढ़ानेवाला) व मिथुनोके लिए सुखकर वसंत मास आ गया ॥ ११ ॥

३. क तियं° । ४. प्रतियोमें 'ण' । ५. क खरु° । ६. क घ ङ °पुरिसु° । ७. प्रतियोमे 'कहव' । ८. क घ ङ घरपंगणि । ९. ख ग कोड्डु । १०. क घ ङ सउ° । ११. क घ ङ उव्वरइ । १२. ङ छुहुवि । १३. क ङ °ण । १४. क ङ आयउ । १५. क घ ङ °हिहाणु । १६ क घ ङ जार गोहु । १७ क घ ङ इह । १८. क जे । १९. क घ ङ पिउ° । २०. ख ग घ पवसिय° । २१. क घ ङ पहुत्तउ ।

[१२]

दुवई—दहमुहहरियसीयविरहाउररामालोइयंतओ।
मारुयचुंबियासु हणुवंतु[1] व विलसइ नववसंतओ ॥१॥

दिणि दिणि रयणिमाणु जिह[2] खिज्जइ दूरपियाण निद्द तिह[3] खिज्जइ[4]।
दिवि दिवि दिवसपहरु जिह वड्ढइ[5] कामुयाण तिह[6] रइरसु वड्ढइ[7]।
दिवि दिवि जिह[8] चूयउ मउरिज्जइ माणिणिमाणहो तिह[9] मउ रिज्जइ[10]।
कलकोइलकलयलु जिह[11] सुम्मइ[12] तिह[13] पंथिय करंति घरे सुम्मइ[14]।
सलिलु निवाणहिँ जिह[11] परिहिज्जइ[15] तिह[13] भूसणु मिहुणहिँ परिहिज्जइ[15]।
पाडलियहिँ[16] जिह[17] भमरु[18] पहावइ पियसंगरि[19] तिह[13] होइ पहावइ[12]।
जिह[11] पियसंगु विरहु निद्धाडइ कुसुमसमिद्ध[20] तेम निद्धाडइ[12]।
मालइकुसुमु[21] भमरु[22] जिह[11] वज्जइ[23] घरे घरे गहिरु[24] तूरु तिह[25] वज्जइ।
वियसियकुसुमु[21] जाउ अइमुत्तउ[26] घुम्मइ[27] कामिणियणु अइ-मुत्तउ[26]।

[१२]

रावणके द्वारा हरी गयी सीता तथा विरहातुर कामिनियोंके द्वारा निंदा किया जाता हुआ, तथा मारुत अर्थात् दक्षिण पवनके द्वारा दिशाओं (रूपी वधुओं) के मुखको चूमनेवाला वसंत, रावणके द्वारा हरी गयी सीताके विरहमें आतुर रामके द्वारा (सीताका कुशल समाचार लानेके उपरांत आशंसापूर्वक) देखे जाते हुए एवं मारुत अर्थात् अपने पिता पवनंजय के द्वारा (स्नेहपूर्वक) चुंबित मुख हनुमानके समान विलास करने लगा ॥

प्रति दिन जैसे-जैसे रात्रिका मान घटने लगा, वैसे-वैसे जिनके प्रिय दूर है, ऐसी कामिनियोंकी निद्रा भी क्षीण होने लगी। प्रतिदिन जैसे-जैसे दिवस-प्रहर बढने लगा वैसे-वैसे कामियोंका रतिरस भी बढने लगा। प्रतिदिन जैसे-जैसे आम्रपर बौर आने लगा, वैसे-वैसे मानिनियोंका मान-मद मुकुलित अर्थात् क्षीण होने लगा। जैसे-जैसे कलकंठी कोकिलाका कलरव सुनाई देने लगा, वैसे-वैसे पथिक घरोंकी ओर मति (मन) करने लगे। जैसे-जैसे गढोंमें जल क्षीण होने लगा, वैसे-वैसे मिथुन आभूषण कम करने लगे। जिसप्रकार भ्रमर पाटल पुष्पोंकी ओर दौड़ने लगता है, उसीप्रकार प्रभावती अर्थात् सुंदरी नायिकाएँ अपने प्रियपतियोंके संग होने लगी। जिसप्रकार प्रियका संगम विरहको बाहर निकाल देता अर्थात् नष्ट कर देता है, उसीप्रकार कुसुमोंकी समृद्धि बाहर निकलने अर्थात् प्रकट होने लगी। जिसप्रकार भ्रमर मालती पुष्पसे भयभीत (त्रस्त, निराश) हो, गुंजार करने लगता है, उसीप्रकार घर-घरमें गंभीर तूर बजने लगा। अतिमुक्तकका फूल जैसे खिलता है, वैसे ही कामिनीजन अत्यन्त

[१२] १. ख ग घ हणवंतु। २ ख जहं, ग घ जिहं। ३. क ङ तह, घ तह। ४ क घ ट °इं। ५. क घ ङ वट्टइ। ६ क घ तह, ङ तहं। ७ क ट वट्टइ। ८ क घ ङ जह। ९ घ तिहं। १०. ख ग °खिज्जइ। ११ ख ग घ °हं। १२. क घ ट °इं। १३ क घ ङ °हिं। १४ क ट °इं। १५ क घ °इं। १६. क °हि। १७ घ जिहं। १८. क घ ङ महुरु। १९ घ °संगिरि। २०. ख ग कुसम°। २१. ख ग °कुसमु। २२ क मरु। २३. क वच्चइं; ङ वच्चइ। २४. क घ ट गहिर; ख ग गहेरु। २५. ख ग तहिं, घ तिहं। २६. क ख ग ट °मत्तउ। २७. क घ ङ °इं।

दरिसिउ कुसुमनियरु[27] वेयल्लें[28]   पहिएं[29] घरु गम्मइँ वेयल्लें[30]।
नील पलास रत्त हुय किंसुय   भंतचित्तु जणु[31] जाणइ[32] किं सुय।
देवउलहिं जणु पुज्ज समारइ   वट्टइ मिहुणहँ[33] हियइ समा रइ[34]।
तुरयहिँ[35] अल्लहल्लि नच्चिज्जइ   नववसंतु तरुणिहिं नच्चिज्जइ।
दावानलु[36] पुलिंदजणु लायइ[37]   सरधोरणि अणंगु गुणे लायइ।
मंदु मंदु[38] मलयानिलु[39] वायइ[40]   महुरसद्दु जणु वल्लइ[41] वायइ[42]।
अहें[43] तहिं[44] सियपंचमिहिँ[45] वसंतहो   नंदणवणे देवउले वसंतहो।
फणमणितेओहामियजलणहो[46]   करइ जत्त नायहो जणु जलणहो।
घत्ता—नायरजणु[47] निवइ सपरियणु पयडीकयनियनियविहउ।
फणिजक्खहो नयरीरक्खहो जत्तकज्जें उज्जाणें गउ ॥१२॥

[१३]

दुवई—ताम पियाचउक्कु रविसेणें विविहाहरणभूसिओ।
जंपाणाहिरूढु जत्तुच्छवि रक्खणसहिउ पेसिओ ॥१॥
गयउ ताउ अहिभवणु तुरंतिउ   तणुकंतिए वणु उज्जोयंतिउ।
पुज्जवि[1] पणविवि फणसच्छायहो   हियदुक्खु विण्णप्पइँ[2] नायहो।

स्वच्छन्द होकर घूमने लगी (देखिए परिशिष्ट)। विचकिल्लके वृक्षने जैसे कुसुमसमूहको दर्शाया, वैसे ही पथिक वेगपूर्वक घर जाने लगे। पलाश नीले (हरित) हो गये, और किंशुक-लाल, परंतु भ्रान्तचित्त (कामी) को (हरित दलोंके ऊपर लाल-लाल पुष्पोंको देखकर) लगा कि कहीं ये शुक पक्षी तो नहीं हैं। लोग देवकुलोंमें पूजा समारने लगे, और मिथुनोंके हृदयमें समान भावसे रति उत्पन्न हो गयी। जिसप्रकार गीले चनोंको (देखकर) घोड़े नाचने लगते हैं, उसीप्रकार नववसंतको (देखकर) तरुणियाँ नाचने लगीं। पुलिंद (भील) दावानल लगाने लगे और कामदेव धनुषपर प्रत्यंचा चढ़ाने लगा। मंद-मंद मलयपवन बहने लगा, और लोग मधुर स्वरसे वीणा (वल्लकी) बजाने लगे। अथानन्तर वहीं वसंतकी शुक्लपंचमीके दिन, नंदनवनके देवालयमें रहनेवाले, अपने फणमणिके तेजसे अग्निके तेजको तिरस्कृत करनेवाले, ज्वलन नामक नागदेवकी यात्राके लिए लोग चले। नागरिकजन, तथा अपने परिजनोंसहित राजा, अपने-अपने वैभवको प्रगट करते हुए नगरीके रक्षक नाग-यक्षकी यात्राके लिए उद्यानमे गये ॥१२॥

[१३]

तब रविसेनने अपनी चारों प्रियाओंको विविधाभरणोसे भूषित करके पालकीमें बैठाकर रक्षकके साथ यात्रोत्सवमे भेजा। वे अपने शरीरकी कातिसे वनको प्रकाशित करती हुईं, तुरंत नागभवनको गयीं। फणशोभासे युक्त नागकी पूजा, प्रणाम करके, उसको अपने हृदयका दुःख

२८. क घ ङ वेइल्लें। २९. क घ ङ °य। ३०. ख ग वेइल्लें। ३१. क ङ जाणइ, घ जाणइं। ३२ क घ ङ जणु। ३३. क ख ग णहु; घ ङ णहुं। ३४. क ङ रइं। ३५. ख ग °यहि। ३६ क ख ग ङ °णलु। ३७. क ङ लावइ; ख ग घ लायइं। ३८. ख ग मंद मंद। ३९. क ङ °णिलु; ख ग °नलु;। ४० ग घ °इं। ४१ क ङ वु°। ४२ घ °इं। ४३. क ङ अहु। ४४ क ख ग तहि। ४५. क घ ङ °मिहि। ४६. क फणिमणि°। ४७ क णारय°।

[१४] १. क घ ङ पुज्जिवि। २. घ विन्न°।

परमेसरं[3] एत्तडउ करिज्जहिं[4] सूरसेणसमु कंतु म दिज्जहिं[5]।
पुणु नीसरिवि तित्थुं[6] आसण्णइं[7] वासुपुज्जजिणभवणे[8] रवण्णइं[9]।
अरुहनाहु पणविवि अहिणंदिउ दिट्ठु सुमइं[10] मुणिपुंगमु वंदिउ।
पुच्छिउं[11] ताहिं[12] विणासियभवनिसि पुण्णपावफलु[13] कहइ महारिसि।
माणुसु जं सुहभायणु दीसइ पुण्णपहाउं[14] सव्वु तं सीसइ।
पावें सल्लतुल्लदुहदुक्खिउ भारक्कंतु पियासिउ भुक्खिउ।
पुण्णफलाहिलाससमचित्तउं[13] सावयवयइँ लेवि घरु पत्तउ।
कइवयदिणहिं[15] वाहिसंतत्तउं[16] सूरसेणु मुउ ववगयसत्तउं[17]।
पच्छइ कारिवि केवलवाहहो नियदव्वेण भवणु जिणनाहहो।
सुव्वयपासि चयारि वि कंतउ जायउ अज्जियाउ निक्खंतउ।

घत्ता—तवसाहिए मरेवि समाहिए विज्जुमालिदेवहो ठियउ।
बंभोत्तरे सोक्खनिरंतरे एउ चयारि वि हुयं[18] पियउ ॥१३॥

[१४]

दुवई—इह विज्जुवइ नाम विज्जुप्पह इह आइच्चदंसणा[1]।
तिहि मि चउत्थ अवर दीसइ पिय इह भण्णइं[2] सुदंसणा ॥१॥

एत्थंतरे मगहाहिउ जंपइ देव तुम्ह चलणहिँ विण्णप्पइं[3]।
जेण समाणु एहु लेसइ तउ विज्जुचरहिहाणु[4] जायउ कउ।

कहने लगी—हे परमेश्वर ! बस इतना करना कि सूरसेनके समान कात मत देना। फिर वहाँसे निकलकर वासुपूज्यके आसन्नवर्ती रमणीक जिनमंदिरमें अर्हंत भगवान्‌को प्रणाम करके प्रसन्न हुईं, और वहाँ सुमति नामक मुनिपुंगवको देखकर वंदना की। उन्होंने मुनिसे पूछा और वे भवनिशा अर्थात् मोहान्धकारको नष्ट करनेवाले महर्षि पुण्य-पापका फल कहने लगे—'मनुष्य जो सुखका भाजन दिखाई देता है, वह सब पुण्यका ही प्रभाव कहा जाता है। पापसे जीव शूल लगनेके समान दुःखसे दुःखी, भारसे आक्रांत, एवं प्यासा और भूखा रहता है।' चित्तमे पुण्यफलकी अभिलाषाके साथ वे श्रावकव्रतोको लेकर घर आ गयी। कुछ दिनोमे व्याधि-संतप्त और सत्त्वहीन होकर सूरसेन मर गया। पीछे अपने द्रव्यसे केवलज्ञानके धारक जिनभगवान्‌का मंदिर बनवाकर वे चारो स्त्रियाँ घरसे निकलकर सुव्रता (आर्यिका) के पास आर्यिकाएँ हो गयी। तप साधकर और समाधिपूर्वक मरकर ये चारो निरन्तर सुखवाले ब्रह्मोत्तर स्वर्गमे विद्युन्माली देवकी प्रियाएँ बनी ॥ १३ ॥

[१४]

यह विद्युत्वती है, यह विद्युत्प्रभा, यह आदित्यदर्शना, तथा इनमे यह जो अन्य चौथी प्रिया दिखाई देती है, वह सुदर्शना कहलाती है। इसके अनन्तर मगधपति कहने लगे—देव ! तुम्हारे चरणोंमे यह विज्ञप्ति है कि जिसके साथ यह (विद्युन्माली देव) तप लेगा, वह विद्युच्चर नामका

३ क °सरु। ४. ख ग करेज्जहि। ५. ख ग °हि। ६. ख तेत्थु, ग तत्थु। ७ क ट °ण्णउ, घ °न्नइ। ८. क ङ वासपुज्ज°। ९. क °ण्णउं, घ °न्नइं; ङ °ण्णइं। १०. ख ग °इ। ११ ट °उ। १२. क ख ग ट तेहिं। १३. घ पुन्न°। १४. क ङ पुण्णु°। १५. क ख ग ङ कयवय°। १६. क °त्तउं। १७. क ट ववगय°। १८. ख ग हुउ।

[१४] १. क ट °सदणा। २. क ङ °इं, घ °न्नइ। ३. घ विन्न°। ४. ख ग °हिंहाणु।

संपइ[5] कहिं वट्टइ मूसियजणु किं कज्जेण पत्तु चोरत्तणु।
भणइ जिणिंदु[7] अत्थि पुहईवरु[8] मगहदेसि पट्टणु हत्थिणाउरु।
तहिं परवलघणपलयमहामरु वसइ नराहिउ नामविसंधरु।
पिय सिरिसेण तासु[9] विक्खाइय सुउ विज्जुचरु नाम वि याइय।
परिवड्ढंतें[10] तेण कुमारें पत्तसयलवरविज्जापारें।
इह विण्णाणु[11] महीयले जं जं परियाणिउ नीसेसु वि तं तं।
अणुदिणु विज्जउ परिसीलंतहो चोरिय तहो पडिहासिय चित्तहो।
ओसहीए थंभेवि थाणंयरु[12] निसिहिं पइट्ठु नियंयतायहो घरु।
जग्गंतो वि राउ किउ सुत्तउ हरिउ कडउ कंठउ कडिसुत्तउ।
तो पहाए नरवइ चिंताविउ किं मई[13] सिविणउ एहु विभाविउ।
अह व सिविणु जइ ता कहिं रयणइँ कंठयकडयपमुहआहरणइँ[14]।
नियनंदणु हक्कारिवि वारिउ तक्करकम्मु सुयणधिक्कारिउ।
काइँ[15] न पुज्जइ तुह किर रज्जें चोरिय करहिं[16] पुत्त कि कज्जें।
तं निसुणेवि कुमारें वुच्चइ[17] सावहिरज्जु ताय किम रुच्चइ।
परधणु पुणु अणंतु जं दीसइ अक्खयनिहि[18] तं महु करे निवसइ।
निच्च निवारिओ वि मण्णइ[19] नउ पच्चेल्लिउ तायहो रूसवि[20] गउ।

चोर कहाँ उत्पन्न हुआ है ? सम्प्रति वह लोगोंको लूटता हुआ कहाँ विद्यमान है ? और किस कारणसे चोरपनेको प्राप्त हुआ ? तब जिनेंद्र कहने लगे—मगधदेशमें पृथ्वीमें श्रेष्ठ हस्तिनापुर नामका नगर है। वहाँ शत्रुबल रूपी बादलोंके लिए प्रलयकी आँधीके समान विश्वंधर नामका राजा रहता है। उसकी श्रीसेना नामसे विख्यात प्रिया है, उसको विद्युत्चर नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। बड़े होते हुए उस कुमारने सकल श्रेष्ठ विद्याओंका पार पा लिया, और इस पृथ्वीतलपर जो-जो कुछ भी विज्ञान है, उस सबको उसने निःशेषरूपसे जान लिया। इस-प्रकार प्रतिदिन विद्याओंका अनुशीलन करते हुए, उसके चित्तको चोरी भा गयी। औषधिसे पहरेदारको स्तम्भित करके रात्रिमें अपने ही तातके घरमें प्रविष्ट हो गया। जागते हुए राजाको भी सुप्त (जैसा) करके उसने कंठा, कड़ा और कटिसूत्र हर लिये। तो प्रभात होनेपर राजा चिंतामें पड़ा कि क्या मैंने यह (चोरी) स्वप्नमें देखा ? अथवा यदि स्वप्न है, तो फिर रत्न और कंठा व कटक (कड़ा) प्रमुख आभरण कहाँ गये ? अपने पुत्रको बुलवाकर इस कार्यसे रोका कि यह तस्कर-कर्म सज्जनोंसे निंदित है; तुझे राज्यसे क्या नहीं पूरता ? (तो फिर) हे पुत्र ! तू किस कारणसे चोरी करता है ? यह सुनकर कुमारने कहा—तात ! यह सावधि (सीमित) राज्य मुझे कैसे रुचे ? यह जो अनन्त पर-धन दिखाई देता है, वह समस्त अक्षय-निधि मेरे हाथोंमें बसती है। इसप्रकार नित्य रोकनेपर भी वह नहीं माना, बल्कि तातसे

५ ख ग °इ। ६. °ड। ७. ख ग जिणेंदु। ८. क °धरु। ९ क ड णाम; घ नाम। १०. क ड °वट्टंतें। ११. घ विन्नाणु। १२. प्रतियोंमें 'थाणंतरु'। १३. क ख ग मइ। १४. क घ ड °कडय-मउड°। १५ ख ग काइ। १६. ख ग °हि। १७ क ड °इं। १८ क ड °णिहि। १९. क ड °इं; घ मन्नइं। २०. क घ ड रूसिवि।

पुरे रायगिहे तरुणजणभामिणि[२१]　　　　कामलय व्व कामलयकामिणि ।
ताए[२२] समाणु विलासुवहुंजइ[२३]　　　　मूसिवि नयरु अत्थु घरे पुंजइ ।

घत्ता—विणु नित्तिए तक्करवित्तिए नयरे तुहारए विज्जुचरु ।
विलसंतउ विज्जावंतउ वीरपुरिसु अच्छइ पवरु ॥१४॥

इय जंबूसामिचरिए सिंगारवीरे महाकव्वे महाकइदेवयत्तसुयवीरविरइए सिवकुमारस्स विज्जुमालीदेवयसंभवो नाम [२४]तइओ संधी समत्तो[२४] ॥संधि—३॥

रूसकर चला गया। राजगृह नगरमे तरुणोंकी प्यारी, व कामकी लताके समान कामलता नामकी कामिनी है, उसके साथ विलास भोगता है और नगरको लूट-लूटकर धन उसके घरमे लाकर भर देता है। न्याय-नीतिसे रहित तस्करवृत्तिसे, वह विद्यावान्, उत्तम वीरपुरुष विद्युत्चर विलास करता हुआ तुम्हारी नगरीमे रहता है ॥१४॥

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित जंबूस्वामीचरित्र नामक इस श्रृंगार-वीर-रसात्मक महाकाव्यमें 'शिवकुमारका विद्युन्माली देव बनना' नामक यह तृतीय संधि समाप्त ॥ संधि—३ ॥

---

२१ ख ग °भाविणि । २२ क ह ताई; घ ताइ । २३. क भुंजए । २४ क घ ह तइया इमा संधो, ख ग तईउ संधी ।

संधि—४

[१]

अगुणा न मुणंति गुणं गुणिणो न सहंति परगुणे[1] दट्ठुं ।
वल्लहगुणा वि गुणिणो विरला कई वीरसारिच्छा ॥१॥
का मायरि को पिउ अक्खहि[2] कहि[3] थिउ गोत्तु कयत्थउ तं कवणु ।
मगहाहिउ घोसइ[4] एमहि[5] होसइ[6] विज्जुमालि जहिं[7] नररयणु ।
नायनरामरेंदवंदियकमु अक्खइ वड्ढमाणु जिणपुंगमु ।
एत्थु जि रायगेहि तउ पुरवरे देउलसिंगलग्गधाराहरे ।
इह जो दीसइ नयणाणंदणु नामें अरुहयासु वणिनंदणु ।
एयहो पियहो[8] विणयगुणधामहो[9] गब्भे हवेसइ जिणमइनामहो[10] ।
तं तित्थयरवयणु निसुणंतउ उट्ठिउ जक्खु एक्कु नच्चंतउ ।
रहसिउ जंपइ किह निव्वण्णमि[11] अप्पउ परकयत्थु हउं मण्णमि[11] ।
जासु गोत्ति विद्धंसियभवकलि उप्पज्जेसइ पच्छिमकेवलि ।
संभवंति तं,धण्णउ[12] कुलु पर[13] जहिं अरहंत-सिद्ध-केवलधर ।
घत्ता—पुच्छिज्जइ राएं सविणयवाएं जिणवरिंदु विभियमणेण[14] ।
आणंदु पवुच्चइ[15] जक्खु पणच्चइ कहहे[16] देव कि कारणेण ॥१॥

---

[१]

गुणहीन लोग गुणको समझते नहीं हैं; और जो गुणी है, वे दूसरोके गुणको देखना भी नहीं सहते । जिन्हें दूसरोके गुण प्रिय हैं, ऐसे कवि वीरके समान गुणी लोग विरले ही होते है ।

तब मगधराजने पूछा—भगवान् बतलाइए उसकी कौन माता है, और कौन पिता ? वे कहाँ है ? तथा कौन-सा वह कृतार्थ गोत्र है जहाँ विद्युन्माली नररत्न इस कालमें जन्म लेगा ? तब नागेंद्र, नरेंद्र व अमरेंद्रो-द्वारा वंदित-चरण जिनश्रेष्ठ वर्द्धमान कहने लगे—यही तुम्हारे इसी राजगृह नामक उत्तम नगरमें, जहाँ देवकुलोके शृंगोसे मेघ टकराते हैं, यहाँ जो नेत्रोंको आनंद देनेवाला अरहदास नामका वणिक्पुत्र दिखाई देता है, इसीकी अत्यन्त विनयशील जिनमती नामकी प्रियाके गर्भमें उत्पन्न होगा । तीर्थंकरके इस वचन (कथन)को सुनकर एक यक्ष नाचता हुआ उठा, और हर्षोत्कंठित होकर कहने लगा—(अपने वंशकी) 'कैसे प्रशंसा करूँ ? मै स्वयंको परमकृतार्थ मानता हूँ जिसके गोत्रमें भवकलि अर्थात् सांसारिक कालुष्य या कर्ममलसे रहित (अथवा कर्ममलका नाश करनेवाला) अन्तिम केवली उत्पन्न होगा । वह कुल परम धन्य है, जहाँ अरहंत, सिद्ध, व अन्य केवलज्ञानी जन्म लेते हैं ।' तब विस्मित मनसे राजाने जिनवरसे पूछा—हे देव ! कहिए, आनंदपूर्वक बोलता हुआ यह यक्ष किस कारणसे नाच रहा है ? ॥ १ ॥

---

[१] १ क परमगुणो, ङ परगुणो । २ ख ग °इ, घ °हि । ३. क ङ कहि । ४. क °इं । ५. ख ग एतहि । ६. ख ग °इ । ७. ख ग जहि । ८. क °हिं, घ ङ °हि । ९. क ङ °थामहिं, ख ग °थामहो, घ °धामहि । १०. क घ °हिं; ङ °हि । ११. घ °न्नमि । १२ घ °न्नउं, ङ °उं । १३. क ङ परु । १४. ख ग विभय° । १५ क ख ग ङ पवं° । १६. क ङ °हिं; घ °हि ।

[२]

आयहो जक्खामरहो विरुज्झइ माणुसु गोत्तु केम संबज्झइ[1] ।
भणइ[2] नाहु तउ नयरि सइत्तउ संतप्पिउ वणीसु धणइत्तउ[3] ।
पिय गोत्तवइ तासु गुणथामहो चंदहो रोहिणि व्व रइ रामहो।
नंदणु अरुहयासु संजायउ पुण्णपुंजु[4] नरवेसे आयउ ।
बीयउ सुउ जिणयासु पवुत्तउ[5] तारुण्णइ[6] दुव्वसणहिँ[7] भुत्तउ ।
अणुदिणु दविणु घराउ हरेप्पिणु वेसायणु भुंजइ तं देप्पिणु ।
वज्जियडक्क[8]-हुडुक्क[9]-समाणए[10] पियइ मज्जु विरइय[11]-आवाणए[12] ।
कंकरसर[13]-जुवारविरसक्खरु[14] रमइ[15] जूउ मंडियवड्डप्फरु[16] ।
एक्कदिवसि[17] हारिय वरवण्णहो[18] जूए सहसबत्तीस सुवण्णहो[18] ।
टेंटमज्झि[19] दक्खवियनियारे[20] धरियउ छलयनामजूयारे[20] ।
पभणइ[21] कवणु[22] गहणु मण्णमि[23] तणु जायवि[24] निलए देमि तउ कंचणु ।
बोल्लइ छलउ तिक्खनिट्ठुरगिरु मंदिरु चच्चंतहो तोडमि सिरु ।
रे जिणदास वोल्लविप्फारहिँ[25] हेंवाइउ[26] इयरहिँ[27] जूयारहिँ ।
एह पइज्ज मज्झु जाणिज्जइ[28] घरु दूरयरु[29] पउ वि जइ[30] दिज्जइ[28] ।

[२]

इस यक्ष देवका मनुष्य गोत्रमे संबंध कैसे हो सकता है ? यह बात तो (सिद्धान्त) विरुद्ध पडती है । तब भगवान् कहने लगे—तुम्हारी इसी नगरीमे धनदत्त नामका एक धनी व सतोषी वणिक् रहता था । उस गुणवान्को चंद्रकी रोहिणी व रामकी रति अर्थात् सीता जैसी गोत्रवती नामकी पत्नी थी । उसे अरहदास नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, मानो मनुष्य वेशमे पुण्यका पुंज ही आ गया हो । दूसरा पुत्र जिनदास कहलाया, जो अपनी यौवनावस्थामे दुर्व्यसनोसे भोगा गया (वशीभूत हुआ) । वह प्रतिदिन घरसे द्रव्य अपहरण करके, उसे देकर वेश्याजनका भोग करता, और डिंडिम व डक्का बजते हुए सजी हुई दुकानोमे मद्य पीता, तथा जूएका एक बडा फलक सजाकर कंकरोके स्वर और जुआडियोकी विरस ध्वनियोके साथ जूआ खेलता । एक दिन वह जूएमे सुवर्णकी बत्तीस सहस्र मुद्राएँ हार गया । द्यूतगृहमे छलक नामक जुआड़ीने अत्यंत अपमानित करके उसको पकड लिया । इसने कहा—यह क्या भारी बात है ? मै इसे तृण बराबर समझता हूँ, घर जाकर तुझे सुवर्ण (मोहरें) दे दूँगा । तब छलकने ये निष्ठुर वचन कहे—यदि घरको चले तो सिर तोड़ दूँगा । रे जिनदास ! बडे बोलोसे दूसरे जुआड़ियोने तुझे बड़ा गर्वित कर दिया है (बहुत चढा दिया है); 'परतु तुम मेरी यह पैज (प्रतिज्ञा) जान लेना कि घर तो दूर ही रहे, तू एक पैर भी आगे रख ले तो मै अपना

[२] १ क °इं । २. प्रतियोंमे °इ । ३ क घ ट °यत्तउ । ४ घ पुन्न° । ५ क घ ड पउत्तउ । ६. क ड °पणहिं, घ °ण्णहिं । ७ ख ग °णइ । ८ घ विज्जिय° । ९ क हुडक्कु, ख ग हुटक्क । १० क घ ड °णइं, ख ग °णइ । ११ क °यइ, ड °यइ । १२ क व ड °णड । १३ क ट वक्कर°, घ करकर° । १४ क ड °विरसव्वरु । १५ प्रतियोंमे °इ । १६. क °वट्टइ परु, ड °वट्टयप्परु । १७ घ एक्कु° । १८. घ °ण्णहो । १९ क °मज्झि । २० क घ ड °सयारिं । २१ क घ ट °णइ । २२ क घ ट °ण । २३ ख ग घ मनवि । २४. क घ ड जाएवि । २५ घ ट °रहि । २६ ख हिंवा°, ग हिवा°, घ देवा° । २७ ख ग °रहिं । २८ क °ज्जइ । २९ क ट °यरि । ३०. ख ग मइ ।

तो न वहमि[31] नियनामु सछायउ   पग्गि व पइजिवि[32] ईसवि[33] जायउ।
घत्ता—इय विहिं मि[34] निरग्गलु वड्ढिउ[35] कंदलु असिदुहियइ[36] जिणदासु हउ।
पेक्खिवि महिपत्तउ घोलिरअंतउ पाण लएविणु छलउ गउ ॥२॥

[३]

एत्तहिं[1] आयण्णिवि[2] तं वइयरु   निउ जिणदासु अरुहयासें[3] घरु।
अंतइं[4] धोविवि वणु सीवाविउ   जेट्ठें भणिउ[5] जूयफलु पाविउ।
निम्मलसावयकुलि[6] उप्पज्जिउ   एक्कु वि वसणु बंधु नउ वज्जिउ।
वुच्चइ जिणदासें जाणंते   कुलमइलणु हउँ खद्धु कयंते।
एवहिं[7] मरणकालि जं किज्जइ   तं उवएसु किं पि महु दिज्जइ।
सावयवयइं[8] लेवि जिणदासें   पाण विसज्जिय पुणु सण्णासें[9]।
इह सो मरिवि जक्खु हुउ सुहमणु[10]   कुंडल-कडय-मउडमंडियतणु[11]।
मह भाइहिं[12] कियसुरनरवंदणु[13]   चरमसरीरु हवेसइ नंदणु।
इय कज्जे नच्चइ हरिसियमइ[14]   वार-वार नियगोत्तु[15] पसंसइ[16]।
विज्जुमालि सुरु[17] लच्छिपउत्तहो   नंदणु अरुहयासु वणिउत्तहो।
जंबूसामि नाम उप्पज्जिवि   तउ लेसइ घरवासु विसज्जिवि[18]।

सुख्यात (सार्थक) नाम छोड़ दूँ'। इसप्रकार पहलेसे ही पैज करके वह उसके प्रति ईर्ष्या (द्वेष) युक्त हो गया। इसप्रकार दोनोमे निरर्गल (निर्बाध) झगड़ा बढ़ा, और जुआड़ीने जिनदासको कटारीसे आहत किया। तब जिनदासको भूमिपर पड़े हुए और आँते निकली हुई देखकर 'छलक' अपने प्राण लेकर भाग गया ॥ २ ॥

[३]

और इधर उस दुःखद वृत्तातको सुनकर अरहदास जिनदासको घर ले गया। आँतोंको धोकर (अन्दर करके—टि०) व्रणको सिलवा दिया। तब जेठे भाईने कहा—द्यूतका फल पा लिया। तू निर्मल श्रावककुलमे उत्पन्न हुआ, परतु हे बंधु ! तूने एक भी व्यसन नही छोड़ा। बड़े भाईकी इस बातको जानकर जिनदासने कहा—कुलको मलिन करनेवाला मै कृतान्तसे खा लिया गया। अब इस मरण-समयमे जो करना चाहिए, ऐसा ही कुछ उपदेश मुझे दीजिए। फिर जिनदासने श्रावकव्रत लेकर संन्यासपूर्वक प्राणोंका त्याग किया। वही (जिनदासका जीव) मरकर यहाँ शुभमनवाला, कुंडल, कड़े और मौड़ (मुकुट) से आभूषित शरीरवाला यक्ष हुआ है। 'मेरे भाईको सुर-नरवंद्य चरमशरीरी पुत्र होगा', इस कारणसे हर्षितमन होकर यह बार-बार अपने गोत्रकी प्रशंसा करता हुआ नाच रहा है। यह विद्युन्माली देव लक्ष्मीवान् (पउत्त ?) वणिक्पुत्र अरहदासका प्रिय पुत्र होकर, जंबूस्वामी नाम उपार्जन करके, गृहवासको छोड़कर

३१. क ङ हवमि, घ ल्लहमि। ३२ क पइं°, ख ग °जिव; घ पइंजिव। ३३. क घ ङ ईसिवि ३४ ख ग विहि मि। ३५ ख ग वड्डिय। ३६. घ °यइं।

[३] १ ख ग °हि। २. घ °न्नेवि। ३. घ °दासें। ४ क ख ग °इ। ५ क घ ङ °उ। ६ ङ णिम्मलि°। ७. क ख ग °हि। ८. ख ग °वयइ। ९. घ सन्नासिं। १० क °मइं, घ °गइ, ङ °मइ ११. क ङ °मडियकय; घ °मंडियच्छइ। १२. क °हिं। १३ ख ग किर°। १४ क घ ङ °मणु। १५ घ ङ °गोत्त। १६. क घ ङ °सणु। १७. ख ग सुर। १८. क घ ङ विव°।

घत्ता—जय णिम्मलसासण जय जयसासण जयहि जिणेसर परमपर ।
दुत्तरभवतारउ देव तुहारउ चलणजुवलु[12] महु होउ थर ॥४॥

[५]

नमंसेवि[1] वीरं महामेरुधीरं[2] तिलोयग्गथक्कं ।
विलीणासुहाणं जणंभोरुहाणं पबोहिक्कअक्कं ।
सहाभासिरीए[3] थिराए सिरीए समुद्दित्तदेहं ।
पइट्ठो[4] नरिंदो ससामंतविंदो पुरं रायगेहं ।
जिणुद्दिट्ठधम्मं सरंतो सुकम्मं सकंतो ससेणो[5] ।
मयालोयणीणं घणोच्चत्थणीणं[6] मणत्थोहथेणो ।
हयाणेट्ठसंघो पराणं दुलंघो फुरंतप्पयावो ।
पवज्जंतढक्को भडामुक्कहक्को समुट्ठंतरावो ।
रमालीढवच्छो निवायारदच्छो पयापालणिट्ठो ।
सुमाणिक्कफारं महासीहदारं[8] सगेहं पइट्ठो ।
समग्गो[9] सइत्तो जिणंदस्स[10] भत्तो सदाणो सभोओ ।

के मनको रंजित करनेवाले, आपकी जय हो ! जय हो ! हे निर्मल-शासन (पवित्र धर्मोपदेश देनेवाले) तथा प्राणियोंको (सद्गतिरूपी) आश्वासन देनेवाले देव ! आपकी जय हो ! हे जिनेश्वर ! हे परम+पर—परमात्मा आपकी जय हो ! और हे देव ! दुस्तर भवसागरसे पार उतारनेवाले आपके चरणयुगल मेरे धारक अर्थात् अभ्युद्धारक हों ॥ ४ ॥

[५]

त्रिलोकके अग्रभागपर विराजमान, महामेरुके समान धीर, जिनके अशुभकर्म क्षीण हो गये हैं, ऐसे भव्यजनोंरूपी कमलोंको प्रबुद्ध करनेके लिए एकमात्र सूर्य, ऐसे वीर भगवान्‌को नमस्कार करके सभाको भास्वर करनेवाली स्थिर शोभासे देदीप्यमान देहवाला नरेंद्र जिनोपदिष्ट धर्म व सुकर्मका अनुस्मरण करता हुआ, सामंतवृंद तथा अपनी रानी एवं सेना सहित राजगृह नगरमें प्रविष्ट हुआ। वह मृगलोचना तथा घने व ऊँचे स्तनोंवाली प्रमदाओंके मनसमूहरूपी धनको चुरानेवाला था। दूसरोंके लिए दुर्लंघ्य ऐसे अनिष्टसंघ अर्थात् शत्रुसंघको उसने नष्ट कर दिया था, एवं उसका प्रताप निरन्तर स्फुरायमान अर्थात् वृद्धिगत हो रहा था। ढक्काके बजने व भटोंकी छोड़ी हुई हांकोंसे बड़ा कोलाहल हो रहा था। उसका वक्षस्थल राज्यलक्ष्मीसे आलिंगित था, और नृपाचार अर्थात् राजनीतिमें वह पूर्ण दक्ष था। इसप्रकार प्रजापालनप्रिय वह राजा सुंदर माणिक्योंसे जगमगाते हुए महा सिंहद्वारसे अपने घरमें प्रविष्ट हुआ। स्वमार्ग अर्थात् स्वधर्ममें सावधान, जिनेंद्रके भक्त दानशील व भोग (-साधनों) से युक्त पुरवासी लोग

१२ क घ ह °जुयलु ।

[५] १. क णमनेमि । २. घ °वीरं । ३. क मुहा° । ४. ख ग व पयट्ठो । ५ क जणु° । ६ क ह ससिण्णो । ७ क ह घणुव्वच्छणीणं । ८. घ ह °वार° । ९. क ख घ ह समग्गो । १०. क घ ह जिणिंद° ।

णिएसुं घरेसुं ठिओ[11] सुंदरेसुं पुरावासिलोओ[12] ।
तओ सत्तरत्ते[13] कमेणं पवत्ते[14] सुहापंडुधामे[15] ।
विरायंतचित्ते[16] सदित्ते पवित्ते वरे वासधामे[17] ।
चउत्थम्मिजामे तमीसेसरामे सिए णं मयंके ।
पडावेढछण्णे[18] सुअंधे[19] सुवण्णे सुहे तूलियंके[20] ।
घत्ता—सिविणउ[21] णिज्झाइउ[22] मंगलराइउ[23] पल्लंकोवरि सुत्तियए[24] ।
लायण्णुद्दामए[25] जिणमइनामए[26] अरुहयासकुलउत्तियए[27] ॥५॥

[६]

दीसइ जंबूफलनिउरुंबं गंधायड्ढियभमरकुडंबं[1] ।
धगधगंतजोइयसव्वास[2] निद्धूमं जलंतसव्वासं ।
सहलसालिछेत्तं सुहगंधं महमहंतमरु-पूरियरंधं[3] ।
कूइयचक्कमरालवलायं पप्फुल्लियसयवत्ततलायं[4] ।
मयरमच्छकच्छवपायारं रयणाउण्णं[5] पारावारं ।
नियभत्तारहो जं जिह दिट्ठं पडिबुद्धए पहाए तं सिट्ठं ।
तं सोऊणाणंदियभाओ[6] सेट्ठि सभज्जो सयणसहाओ[7] ।
गयउ तुरंतउ[8] दुक्कियनासं[9] जिणवरमंदिरि महरिसिपासं[10] ।

अपने-अपने सुंदर घरोमे स्थित हो गये । तदनन्तर क्रमश. सातवी रात्रि आनेपर चूनेसे पुते हुए, चित्रोसे सजे हुए व दीप्तिमान और पवित्र श्रेष्ठ निवासगृहमे रात्रिके अवसानमात्र शेष चौथे प्रहरके रमणीय समयमे, मृगांकके समान धवल, सुंदर चादरसे ढके हुए, सुगंधित व उत्तम रुई-के गद्देपर पलगके ऊपर सोती हुई, उद्दाम लावण्यवती जिनमती नामकी अरहदासकी कुलपुत्री (कुलवधू) ने ये मांगलीक स्वप्न देखे ॥५॥

[६]

उसने अपनी गंधसे भ्रमरकुलको आकर्षित करनेवाले जंबूफलोका गुच्छा देखा । धग-धग करके जलते हुए समस्त दिशाओको प्रकाशित करनेवाले निर्धूम-अग्निको देखा । फूले हुए शालिक्षेत्रको देखा, जिसकी शुभगंधसेयुक्त पवन समस्त रंध्रोंको पूरता हुआ सर्वत्र प्रसृत हो रहा था । चक्रवाक, हंस, और बलाकाओके कूजनसे युक्त फूले हुए कमलसरोवरको देखा, तथा मगरमच्छ और कच्छपोके संचारसे युक्त एवं रत्नोसे पूर्ण उदधिको देखा । उसने जो जैसा देखा था, वैसा प्रभातमे जागने पर अपने भर्त्तारको कहा । उसको सुनकर प्रसन्नचित्त होकर श्रेष्ठी तुरन्त अपनी पत्नी तथा स्वजनोके साथ जिनमदिरमे पापोका नाश करनेवाले महर्षिके

---

११. ध ठिउं । १२. क ड पुर° । १३. क ख ड °रत्तो । १४ क ख ड °त्तो । १५ क ख ड °धामो । १६ क ड विराणत°, क °चित्तो । १७ क ड °धामे । १८ क ध ड पडावेढि°, ध °छन्ने । १९ क ध ट सुयधे । २० क ड तलि°, ख ग सुहि तूलि° । २१. ड °णउ° । २२. क ख ग ड °यउ । २३ क ड °रायउ । २४. ख ग °यउ । २५ क ध ड °हामइ । २६ क ध ड °वइणामइं । २७ क ध °यइं, ड °यउ ।

[६] १. ध °कुडुवं । २ क ड °जोइल° । ३ ध °गधं । ४ ख ग °लाए । ५ ध °उन्न । ६ क ध ड °भावो । ७ क ख ड सहावो । ८ क ध ड तुरतो । ९ क ड °णासें, ख ग °नासें । १०. क ख ग ट °पासें ।

पणवेप्पिणु भत्तिए नउर-हियं सुइणालोयं[11] सव्वं कहियं ।
भयवंतो[12] साहइ परमत्थं अरुहयास निसुणहि[13] सिविणत्थ ।
जंबुफलालोए गुणजुत्तो रइवइरूवो[14] होसइ पुत्तो ।
दिट्ठे[16] जलणें[17] जालइ कम्मं सालीछेत्ते[18] लच्छीहम्मं ।
सरवरदंसणें रयणाहारो उवहिप्प भवसमुद्दगयपारो ।
घत्ता—तव[19] होसइ नंदणु नयणाणंदणु सोलहवरिसपमाणु पुणु ।
घरवासु चएसइ दिक्ख लएसइ चरमसरीरु महंतगुणु[20] ॥६॥

[७]

तं निसुणेवि हरिसिउ वणियवरु मुणि नविवि सपरियणु गयउ घरु ।
तहि काले देउ[1] तडिमालि चुओ गब्भब्भंतरे जिणमइहे[2] हुओ ।
गुरुहारइँ[3] अंगइँ[4] लालसइं बहुदिवसहिँ[5] जायइँ सालसइं ।
आपंडुरु[6] मुहुँ निज्जिणइ[7] ससि सियथण हुय णं मुहे दिण्णमसि ।
णं[8] मरगयकलसहिँ[9] सेहरिया रुप्पमयकुंभ[10] लच्छिए धरिया[11] ।
णं विण्णि चडिण्ण मऊरवरा मयरद्धयधवलगेहसिहरा ।
अहवइ हंसु[12] व सोहंति सुहा चंचुक्खयपंकिलकंदमुहा[13] ।

पास गया । भक्तिपूर्ण नम्रहृदयसे प्रणाम करके सारे स्वप्नदर्शनको बतलाया । वे भगवन् स्वप्नोका परमार्थ इसप्रकार कहने लगे—अरहद्दास ! स्वप्नोका अर्थ सुनो । जबूफलोके देखनेसे तुम्हे गुणवान् व कामदेवके समान रूपवाला पुत्र होगा । अग्नि देखनेसे वह कर्मोको जलायेगा और शालिक्षेत्र देखनेसे (केवलज्ञानरूपी) श्रेष्ठ लक्ष्मीका धाम होगा । सरोवर देखनेसे वह (सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप) रत्नोका धारक होगा, और उदधि देखनेसे भवसमुद्रसे पार होगा । तुझे नेत्रोको आनद देनेवाला पुत्र होगा, जो गृहवास छोडकर दीक्षा लेगा, व महान् गुणोंका धारक चरमशरीरी होगा ॥६॥

[७]

उस स्वप्नफलको सुनकर वणिक्‌वर हर्षित हुआ और मुनिको नमस्कार करके परिजनोके साथ घर गया । उसी समय विद्युन्माली देव स्वर्गसे च्युत होकर जिनमतीके गर्भमे आया । उसके गुरुभारसे जिनमतीके कोमल अग कुछ ही दिनोमे आलस्ययुक्त हो गये । उसका पाडुरवर्ण मुख चद्रको जीतने लगा, और श्वेत स्तनमुख ऐसे काले हो गये मानो उनके मुँहपर स्याही लगा दी गयी हो अथवा मानो लक्ष्मीने मरकतमणि कलशोको सबसे ऊपर शिखररूपसे रखकर रजतमय कुभ धारण किये हो, अथवा मानो मकरध्वजके प्रासादशिखरपर दो मयूर चढे हो, अथवा वे ऐसे श्वभ्र हंसोके समान शोभित हो रहे थे, जिनके मुखमे चचुसे खडित

११. ख ग सुयणा° । १२ क °वंता । १३ घ °णहिं । १४. क ड सुय°, घ मुइ° । १५ क ड रइवर° । १६. घ दिट्ठं । १७ घ °ण । १८. क घ ड सालिछित्ति वर । १९ क घ ड तउ । २० क ड महतु° ।

[७] १. क ड देव । २ ख ग °वइहे, घ °वइहि । ३ ख ग घ ड °रइ । ४ ख ग °इ । ५ क °सहि । ६. क घ ड आव° । ७ क घ ड °णइं । ८. ग तं । ९ °कलियहिं । १० ख ग रुप्पयमय° । ११ क ड घरिया । ११ क घ ड हंस । १३. ख ग °कटमुहा ।

गब्भेण विराइय[14] गब्भवइ दाणेण व रिद्धि विसुद्धमइ।
णं नवपयपुण्णपओहरिया आसन्नजेट्ठ[15]-पाउससिरिया।
पंचमिहे[16] वसंते[17] पक्खे धवले रोहिणिठिए मयलछणे विमले।
पच्चूसे पसूय सलक्खणउ[18] कुलमंगलु जयवल्लहु तणउ[19]।
घत्ता—वद्धावणतूरहिँ दसदिसपूरहिँ[20] काइँ नयरि तहिँ[21] वण्णियइ[22]।
गायंत-पढंतहिँ जणहिँ नडंतहि कण्णपडिउ[23] नायण्णियइ[24] ॥७॥

[८]

अलंकियनिसंतेण तरुणारुणदित्ततेएण बालेण पसरेण वा तेण
सूयाहरे दिण्णदीवोहदित्तीनिहित्ता सुदूरे किया निप्पहा।
विद्धिवद्धावणावंतलोएहिं वज्जंतपडुपडहखरतरडसरमंदबहुमद्दलुद्दाम[2] कलवेणुवीणाझुणी
सालकंसालतालानुसारेण आणंददरमत्तघुम्मंततरलच्छिनच्चंत[3]—
तरुणीमहाथट्टसंघट्टतुट्टंतआहरणमणिमंडिया चउप्पहा।

कीचडयुक्त कमल-कद—कमलाकुर हो। वह विशुद्धमति गर्भवती उस गर्भसे इसप्रकार शोभित हुई जैसे दानसे समृद्धि। पासमे स्थित ज्येष्ठाओ अर्थात् (प्रसवकर्ममे कुशल) वृद्ध परिचारिकाओ, व नये दुग्धसे युक्त पयोधरोसे वह ऐसी लगती थी, मानो ज्येष्ठा (नक्षत्र) के पासवाली, नये जलसे परिपूर्ण पयोधरोसे युक्त पावस-श्री ही हो। वसतमासमे शुक्लपक्षकी पचमीको निर्मल-चद्रमाके रोहिणी नक्षत्रमे स्थित होने पर उसने प्रत्यूषकालमे रोहिणी नक्षत्रमे शुभलक्षणोसे युक्त, व कुलके लिए कल्याणकारी और जगवल्लभ अर्थात् सर्वलोकप्रिय पुत्रको जन्म दिया। उस नगरीका क्या वर्णन किया जाये जहाँ कि दशो दिशाओको पूरनेवाले बधाईके तूरो और मगलगान गाते व पढते तथा नृत्य करते हुए लोगोके कारण कान पडा कुछ सुनाई नही देता था ॥७॥

[८]

तरुण, अरुण व दीप्त तेजवाले बालरविने अपने तेजके प्रसारसे निशात अर्थात् उप.-कालको अलकृत किया, अथवा मानो उस शिशुने ही अपने अति आरक्तवर्ण व दीप्तिमान तेजके प्रसारसे निशात अर्थात् राजगृह (टि०) को अलंकृत किया, तथा प्रसूति-गृहमे जलाये हुए दीपकसमूहसे उत्पन्न दीप्तिको अपनी देहकातिसे निष्प्रभ करके दूर कर दिया। सुख, समृद्धि एव अभ्युदयको बधाई देनेवाले लोगोके द्वारा बजाये जानेवाले पटुपटह, तीखे तरड, मदस्वरवाले बहुतसे मर्दल, और उद्दाम व मधुर वेणु तथा वीणाकी ध्वनि एवं साल व कसालकी तालके अनुसार आनदसे ईषन्मत्त हुई, घूमती हुई व नाचती हुई चंचलाक्षी तरुणियोके महासमूहोके

---

१४ क °यइ। १५ क ख ग ड आसण्ण°। १६ क ड पचमि, घ पचमिहिं। १७ क ड दिवसत, ख ग घ वसत। १८ क घ ड °णउ। १९. घ ड °उ। २० क घ ड दसदिसि°। २१ ख ग तहि। २२. घ वन्नियइ। २३ क ड °वडिउ, घ कन्न°। २४. घ नायन्नियइ°।

[८] १ घ दिन्न। २ ख ग °भरमदलुद्दाम°। ३ ख ग °नच्चन्ति°।

छड्डियपडिपट्ट-पट्टोल-पंडीपहावंतनेत्तेहिं संछइयमंडववियाणेसु
लंबंतमुत्ताहलदाम-झुल्लंतमाणिक्कझुंबुक्कसक्काउहायार-
पसरंतकिरणावलीजालचित्तलियघरपंगणं।
सेट्ठिणा कणय-धणरयणवरवत्थविट्ठीए[5] सम्माणिए सयललोयम्मि
छट्ठे दिणे [6]राइजायरणपमुहुच्छवे सुरवराणं पि चित्ते चमक्कारिणी
का वि अवइण्ण[7] अण्णासिरी एव[8] नयरंतरं तत्थ जायं जणाणंदवद्धावणं।

अवि य—अकत्तिए निरंतरंतरं　　हुयं निरब्भमंबरंबरं।
अपाउसे असारयं रयं　　धरायले[9] व्व निक्खयं[10] खयं।
अयालरुक्खसंतई तई　　पफुल्लिया वणासई सई।
सुवण्णविट्ठिभासुरासुरा　　मुअंति[11] तत्थ सासुरा सुरा।
घत्ता—कल्लाणपरंपरे दसमए[12] वासरे सवणसुहावणु हिययपिउ।
जंबुहलनिवेसे सिविणुद्देसे[13] नामे जंबूसामि किउ[14] ॥८॥

[९]

दिणे दिणे देहरिद्धि परिवड्ढइ[1]　　बीयाइंदु व बालु विवड्ढइ[2]।

परस्पर सघट्टनसे टूटते हुए आभरणोके मणियोसे चतुष्पथ मडित हो गये। लटकाये हुए प्रतिपट्ट व पटोल, पाड्य देश निर्मित नेत्र नामक वस्त्रोसे छाये हुए मंडपवितानोमे लटकती हुई मुक्ता-फलोकी मालाएँ व झूलते हुए माणिक्यके झूमकोसे फैलते हुए इद्रायुधके समान पचवर्ण किरण जालसे घर-प्रागण चित्रित जैसे हो गये। श्रेष्ठीके द्वारा धान्य, धन, रत्न व उत्तम वस्त्रोकी वर्षा अर्थात् अपरिमाण भेट द्वारा सब लोगोका सन्मान किये जानेपर छठे दिन रात्रि-जागरण प्रमुख उत्सवके समय देवताओके चित्तको भी चमत्कृत करनेवाली कोई अपूर्व ही शोभा उस नगरमे अवतीर्ण हुई, और इस प्रकार लोगोंका आनंद बढा।

और भी— कार्तिक नही होनेपर भी आकाश निरतिशयरूपसे अभ्रमुक्त हो गया; तथा वर्षाकाल नही होनेपर भी असार (क्षुद्र) रज मानो धरातलमे पूर्ण उपशमको प्राप्त हो गया। उससमय काल (ऋतु) नही होनेपर भी न केवल वृक्षसंतति, बल्कि समस्त वनस्पति स्वयं प्रकर्षतासे प्रफुल्लित हो उठी, और असुरकुमारो सहित देवोंने वहाँ सुराके समान भास्वर सुवर्णकी वृष्टि की। इसप्रकार निरतर मंगल मनाते हुए दसवे दिन स्वप्नमे जवूफलोके दर्शन और उसके फलके कथनानुसार श्रवणसुखद व हृदयको प्यारा जवूस्वामी नाम रखा गया ॥८॥

[९]

प्रतिदिन बढती हुई देह-ऋद्धि अर्थात् दैहिकसौदर्यके साथ वालक द्वितीयाके चद्रमाके

४ क ड सछविय°। ५ क घ ड °विढीए। ६ ख ग राय°। ७ घ °इन्न। ८ घ ड एम। ९ घ धरणेक्क। १० क ड ति°। ११ ख ग मुयति। १२ क घ ड °मइ। १३ ख ग घ °द्देसि। १४ ख ग कियउ।
[९] १ क घ ड °यड्ढइ। २ ख ग पव°।

जंतु जंतु महणइवित्थारु[3] व सूयमाणपिंगलपत्थारु व ।
विचरियंतु[4] विउसहिँ वायरणु व बारहविहतवेण मुणिचरणु व ।
अट्ठवरिसकप्पेण कुमारें पुण्णावज्जियविज्जापारे ।
गुरुपाढणनिमित्तमंतत्थइँ[5] जाणियाइँ[6] पढियाइँ व[7] सत्थइँ[8] ।
संपाइयतिवग्गफल रसियउ[9] नीसेसाउ कलउ अब्भसियउ ।
जिह जिह तरुणभावे संलग्गइ[10] रूवभिक्ख[11] तिह रइवइ मग्गइ[12] ।
हूउँ[13] भूसिउ किर एण कुमारे अप्पउ सलहिज्जइ सिंगारे ।
बहुकालेण थिराए सइत्तिए[14] तिहुअणभमि[15] गमु सज्जिउ कित्तिए ।
नरसंकमणपरंपरचवलए[16] किउ वीसामथामु[17] थिरु कमलए[18] ।
घत्ता—सहुँ रायकुमारहिँ[19] पेसणयारहिँ[20] परिमिउ[21] रायलीलधरइ[22] ।
उवहुंजियभोयहिँ परमविणोयहिँ नाणाविह-कीलउ करइ ।

[१०]

चच्चरु तं न तं न[1] घरु[2] राउलु तं न हट्टु उज्जाणु न देउलु ।
जेत्थु न जंबुसामि वण्णिज्जइ[3] गिज्जइ नच्चिज्जइ न पढिज्जइ[4] ।

समान इसतरह बढने लगा, जैसे जाते-जाते महानदीका विस्तार, दिन-दिन फूलता हुआ चक्रवर्तीका कोश, अथवा सुनते-सुनते पिंगल-ग्रंथका विस्तार, विद्वानोके द्वारा व्याख्या किया जाता हुआ व्याकरण, और बारहविध तपसे मुनिका चारित्र बढता है आठ वर्ष आयु होनेपर कुमारने सकल विद्याओका पार पा लिया। गुरुके पढानेके निमित्तसे उसने मंत्रार्थों अर्थात् सूत्रोके मंतव्योको और शास्त्रोको पहलेसे ही पढे हुएके समान जान लिया। त्रिवर्गफल अर्थात् धर्म, अर्थ व कामका सपादन करनेवाली और (चित्तमे) रस अर्थात् आनंद उत्पन्न करनेवाली नि शेष कलाओका अभ्यास कर लिया। जैसे-जैसे वह तरुणावस्थामे प्रवेश करने लगा, वैसे-वैसे रतिपति (कामदेव) उससे रूपभिक्षा मागने लगा— इस कुमारसे सचमुच मै भूषित हो गया, क्योकि शृंगारसे ही अपनी सराहना होती है। बहुत कालसे स्थिर सोयी हुई उस कामदेवकी कीर्तिने त्रिभुवनमे भ्रमणके लिए गमनकी तैयारी की। परंपरासे ही एकसे दूसरे मनुष्यमे संक्रमण करनेके चंचल स्वभाववाली कमला (लक्ष्मी) ने जंबूस्वामीरूपी कमलमे स्थायी विश्रामस्थान बना लिया। आज्ञाकारी राजकुमारोसे घिरा हुआ वह जंबूकुमार राजलीलाको धारण करता हुआ व भोगोको भोगता हुआ, परम विनोदपूर्वक नाना प्रकारकी क्रीड़ाएँ करने लगा ॥ ९ ॥

[१०]

ऐसा कोई चौक नही था, न घर और न राजकुल, न हाट, उद्यान और न देवकुल जहाँ जंबूस्वामीका वर्णन नही किया जाता, तथा उसका नाम ले-लेकर गाया, नाचा व

३. क महणइ° । ४ क ड विउरि° । ५ ड °सुममत्थइ । ६ क °याइ, ड जाणिया य । ७ क ड पढिया इव, घ पढिया इव । ८ क ड °इ । ९ क ड रमि° । १० क °ग्गइ । ११ क रूप° । १२. घ °इ । १३ ख ग हुउ । १४ ख ग सए° । १५ क घ ड तिहुयणु° । १६ क ड °चवलइ, ख ग °चवलइ । १७ क ड वीसमण°, ख ग वीसामु थाम । १८ क ड °लइ । १९ घ °रिहिँ । २० ख ग °यारिहिं । २१ ख ग परमिउ । २२ क °इ ।

[१०] १. क ख ग ड त ण्ण । २ ख ग घर । ३ घ वन्नि° । ४ क ट पढि° ।

धवलजसेण भुअणु[5] धवलीकिउ णं छणससिजोण्हारसलिंपिउ[6] ।
कवणु हत्थि जो अत्थि न सुरकरि[7] सा सरि कवण[8] न हुय जा सुरसरि[9] ।
सो मणि कवणु जो न मुत्ताहलु सो न गिरिंदु जो न तुहिणायलु ।
सो कहि[10] पक्खि हंसु हुउ जो नहि[11] कवणु समुद्दु जो न[12] खीरोवहि ।
जो न वि सेसु कवणु सो विसहरु पायउ कवणु[13] न लुद्द-महातरु ।
दंसणे खुहिउ[14] नयरनारीयणु मयरद्धयसरपहर-[15] सवेयणु ।

घत्ता—क वि विरहे कंपइ सुण्णउ[16] जंपइ[17] नियउ कुमारें हिययधणु[18]
मइँ दुक्खसहावइ[19] विभउ भावइ[20] बीयउ अत्थि कि कहि मि मणु ॥१०॥

[११]

काहि वि विरहाणलु[1] संपलित्तु अंसुजलोहलिउ[2] कवोलें[3] खित्तु ।
पल्लट्टइ हत्थु करंतु सुण्णु[4] दंतिसु चूडुल्लउ चुण्णु[4] चुण्णु[4] ।
काहि[5] वि हरियंदणरसु रमेइ लग्गंतु अंगे छमछमछमेइ[6] ।

(स्तुतिपाठ) पढ़ा नही जाता । उसके धवल यशने भुवनको इसप्रकार धवलीकृत कर दिया, मानो पूर्णचंद्रमाके ज्योत्स्नारूपी रससे लीप दिया गया हो । ऐसा कौनसा हाथी था जो (उसके धवलयशसे अभिभूत होकर) ऐरावत न हो गया हो, ऐसी कौन-सी नदी थी जो सुरसरि गंगा न हो गयी हो; ऐसा कौनसा मणि था जो मुक्ताफल न हो गया हो और ऐसा कोई पर्वत न था जो तुहिनाचल अर्थात् हिमालय न हो गया हो, ऐसा कोई पक्षी कहाँ था जो हंस न हो गया हो, और ऐसा कौनसा समुद्र था जो क्षीरोदधि न बन गया हो; जो शेष (नाग) न बन गया हो, ऐसा विषधर कौन रह गया था; और ऐसा पादप कौनसा था जो लोध्रका महावृक्ष नही बन गया था । उसके दर्शनसे नगरकी नारियाँ मकरध्वजके शरप्रहारकी वेदनासे क्षुब्ध हो उठी । कोई विरहसे कांपने लगी; व शून्य भावसे आलाप करने लगी कि मेरा हृदयरूपी धन तो इस कुमारके-द्वारा ले लिया गया, फिर भी जो मुझे दुःखका सहन (वेदन) कराता है, उससे मुझे विस्मय होता है, कि कही कोई दूसरा भी मन (हृदय) है क्या (जो इस कुमारके साथ नही गया) ? ॥१०॥

[११]

किसी कामिनीका विरहानल प्रदीप्त हो उठा, और वह अश्रुजलके पूरके द्वारा कपोलों पर बिखर गया । कोई शून्य बनाती हुई हाथको घुमाने लगी जिससे उसका दाँतका बना चूडा चूर-चूर हो गया अथवा कोई इस तरहसे हाथ घुमाने लगो जिससे उसका हाथीदांतका बना चूड़ा हाथको शून्य करके (अर्थात् हाथसे गिरकर) चूर-चूर हो गया । किसीने लालचंदनका

५ क घ ङ भुवणु । ६ घ °जोन्हारस°, ख ग °जोण्हारमि° । ७ क व ङ कवणु ण (व न) अत्थि हत्थि°; ख ग कवणु ण हत्थि अत्थि° । ८ ख ग °णु । ९ ख ग °मरे । १० ख ग कहि । ११ क ङ णहि; ख ग नहि । १२ घ ज न्न । १३. क जोद्धु, घ न गोह°, ङ न जोद्दु° । १४ क घ ङ दसण° । १५. क घ ङ °पहरु । १६ व सुन्नउ; ङ °उ । १७ ख ग °इ । १८ ख ग हियउ° १९ क ङ °वइं । २०. ख ग °इ ।

[११] १ घ °नलु । २. ख ग मे 'लिउ' नही । ३. क घ ङ °ल । ४. व °न्नु । ५. घ काहिं । ६. क °छमेइं ।

रत्तंदणेण क वि सुसइ सित्त नं कामभल्लि-लोहियविलित्त ।
क वि कंजपुंजु पयरइ[7] सलील दरिसावइ कामकरेणु[8] कील ।
हियउल्लउ विरहें[9] खयहो[10] जंतु नीसासुल्लिचणु[11] जइ न हुंतु ।
थुइमुहरवंदिसंदोहसारु[12] रच्छाए[13] जंतु जाणेवि कुमारु ।
वाहुलयनिवेसियकंचुयाए[13] कंठालु न[14] पारिय देवि ताए ।
उत्तालियाए[13] गलि न किउ हारु अद्धंजिउ एक्कु जि नयणु फारु ।
एक्कु जि वलउल्लउ करि करंति विलुलियकवरीभरथरहरंति[15] ।
असमत्तमंडणुम्मायभग्ग फलिहुल्लयतोरणखंभे लग्ग ।
पयडियथण अहरु डसंतिवाल मयजलभरंत जंघंतराल ।
वोल्लइ कुमारु थिरु थाहि ताम तव[16] रूवे लिहमि अणंगु जाम ।

घत्ता—कुलसीलसउण्णउ[17] सियलावण्णउ[17] कुंदधवलु जसु नहे चडइ[18] ।
केवलि-तित्थयरहो नरहो न अवरहो सावण्णहो[19] जणे संवडइ[20] ॥११॥

[१२]

अह तेत्थु जि जिणपयकमलभत्तु पुरि निवसइ सेट्ठि समुद्दत्तु ।

लेप लगाया जो उसके शरीरमे लगते ही (विरहतापके कारण) छमछम करके चटक गया। कोई रक्तचदनसे सीची जानेपर भी सूखने लगी, और ऐसी लगी मानो कामदेवकी लोहूसे लिप्त वरछी ही हो। कोई लीलापूर्वक कमलपुंजको विखेरने लगी, और इसप्रकार कामोन्मत्त हस्तिनीके समान क्रीडा दिखलाने लगी। बेचारा क्षुद्र हृदय तो विरहसे क्षय ही हो जाता यदि विरहानलके तापको वाहर निकालनेके लिए नि.श्वास रूपी रहट-यंत्र न होता। स्तुतिमुखर वंदीसमूहसे उस श्रेष्ठकुमारको रास्तेमे जाते हुए जानकर कोई जो कंचुकको वाहुओमे पहन चुकी थी, वह उसे कठमे नही पहन पायी। कोई उतावलेपनके कारण गलेमे हार नही डाल सकी और अपने एक विशाल नेत्रको भी अधूरा ही अंजन लगा पायी। एक वलयको हाथोमे पहनती हुई, केशपाशको लहराती हुई, तथा (कमोत्तेजनासे) कापती हुई, मंडनकर्मको पूर्ण किये विना ही कामोन्मादसे पीडित होकर स्फटिकमय तोरणस्तम्भसे जा लगी। कोई वाला जिसके स्तन प्रकट हो रहे थे और जिसकी जघाओका अन्तराल मदजल (रजस्राव) से भर रहा था, वह कुमारको कहने लगी—जरा तवतक ठहर जा, जवतक मैं तेरे रूपकी अनुकृतिसे अनगको लिख लूं (चित्रित कर लू)। उस कुलशीलसे संपूर्ण कुमारकी सौंदर्यलक्ष्मीका कुंदपुष्पके समान धवलयश आकाशमे चढ गया। केवली या तीर्थंकरके अतिरिक्त लोगोमे अन्य किसी सामान्य व्यक्तिको ऐसा सौंदर्य प्राप्त नही होता ॥११॥

[१२]

उसी नगरीमे जिनभगवान्के चरणकमलोका भक्त समुद्रदत्त नामका श्रेष्ठी रहता था।

---

७. क घ ड वियº। ८ ख ग ºकरेण। ९. प्रतियो में 'विरहिं'। १०. क ड विउड। ११. क ड ºल्लिव्वणु। १२. ख ग थुइमुहुरº। १३. क व ड ºड। १४ प्रतियो मे 'ण'। १५ क ड विउलियकवरीभयº। १६, ख ग घ तउ। १७. क घ ड ºण्णउ। १८ क ºड। १९ घ ºनहो। २० क ड सचडइ, ख ग सावडइ।

पिययम पउमावइ पउमवण्ण[1] पउमसिरिनाम[2] तहो पवरकण्ण।
बीयउ कुवेरदत्ताहिहाणु मालंतकणय-कंतासमाणु।
उप्पण्ण तासु कणयसिरि दुहिय वियसियसयवत्त-ससंकमुहिय।
वइसवणु[3] तइउ वइसवणजुत्ति[4] पिय विणयमाल विणयसिरिपुत्ति।
धणयत्तु[5] चउत्थउ कुवलअच्छि[6] विणयमइ-भज्ज सुय-रूवलच्छि।
एयाउ चयारि कुमारियाउ भल्लिउ मयणेण व फेरियाउ।
गब्भे वि ठियउ पडिवण्णियाउ[7] पियरेहिं कुमारहो दिण्णियाउ[8]।
पइ होसइ जाणिवि भुअणसारु नीसेससत्थसंपत्तपारु।
इय कज्जे[9] कोउहल्लेण[10] ताउ नाणाविह-विज्जउ सिक्खियाउ।
भासातय-लक्खणु-लक्खु मुणिउ[11] दंसण-नएहिं सहुं तक्कु सुणिउ[12]।
छंदालंकार-निघंटसत्थु धम्मत्थ-कामकारणु पसत्थु।
गाएव्वउ नच्चेव्वउ सचित्तु वीणाइवज्जु[13] जाणिउ[14] विचित्तु।
अवराइं[15] मि मुणियइं जाइं जाइं को लक्खेवि सक्कइ ताइं[16] ताइं।
घत्ता—तियरयणचउक्कउ घडिवि विमुक्कउ अंगरक्खु धणु-वाणकरु[17]
रइवइ तहो जडियउ दइवे घडियउ[18] विद्धइ[19] अवलोयंतु निरु[20]॥१२॥

उसकी पद्मके समान गौरवर्ण पद्मावती नामकी प्रियतमा थी, उसे पद्मश्री नामकी श्रेष्ठ कन्या हुई। दूसरा कुवेरदत्त नामका था, उसको कनक(सुवर्ण)मालाके समान सुदर कनकमाला नामकी कांता थी, उसे कनकश्री नामक दुहिता हुई, जो विकसित शतपत्र व शशांकके समान मुखवाली थी। तीसरा वैश्रवण (कुवेरके) समान युक्तिवाला (अर्थात् धनके संवर्द्धन, संरक्षण एवं संविभाजनमें कुशल) वैश्रवण नामका श्रेष्ठी था, जिसको विनयमाला नामक भार्या, व विनयश्री नामकी पुत्री हुई। चौथा धनदत्त था, उसकी कुवलय अर्थात् नीलकमलके समान नेत्रोंवाली विनयमती नामकी भार्या, व रूपश्री नामकी कन्या हुई। ये चारों कुमारियाँ मानो मदनके-द्वारा (लोगोंपर) घुमायी हुई बरछियाँ ही थीं। जब ये गर्भमें ही थीं, तभी इनके पिताओंके-द्वारा ये कुमारके लिए दे दी गयी और इन्हें स्वीकार कर लिया गया। यह जानकर कि अशेष शास्त्रसंपत्का पारगामी व लोकमें श्रेष्ठ कुमार इन लोगोंका पति होगा, इस हेतुसे इन सबको नाना विद्याएँ सिखायी गयीं। इन कन्याओंने तीनों भाषाओं (संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश—टि०) को जाना, लक्षणशास्त्र (व्याकरण) को जाना और उसके लक्ष्य अर्थात् साहित्यको भी जान लिया। दर्शनशास्त्र व न्यायशास्त्रके साथ तर्कशास्त्रको भी सुना। छंद, अलंकार व निघंटुशास्त्रको भी जाना, और धर्म, अर्थ व कामके प्रशस्त साधनोंको भी जान लिया। विविधप्रकारका गाना व नाचना सीखा, और अनेकप्रकारका वीणादि वाद्य भी। और भी उन्होंने जो-जो कुछ सीखा, उस सबको कौन लक्ष्य कर सकता है (कौन कह सकता है)।

विधाताने एक स्त्रीरत्नचतुष्क गढ़कर छोड़ दिया, और धनुष व बाणको अपने हाथमें

[१२] १ घ °न्न। २. ख ग नामे। ३ ख ग वय°। ४ ख-ग °वयसवण°। ५. ख ग °मेत्तु ६ क घ ङ °यच्छि। ७. घ पडिवन्नि° । ८. घ दिन्नि°। ९ क घ ड कज्ज। १० क कोहुल्लेण, घ ङ °हल्लेण। ११ घ °उ। १२ क ग मु°। १३. क घ ङ वीणावज्जु व। १४ प्रतियों में 'जाणिउ'। १५ क ख ग ङ °राइ। १६ क ताइ ताइ। १७ क वाणु°। १८ क °यउ। १९ क घ ङ विंधइ। २० क ङ णरु, ख ग नरु।

[१३]

तहुँ[1] नवल्लु जोव्वणु उम्मीलइ मयणवाहु पारद्धि व कीलइ[2]।
घोलइ चिहुरभारु पब्भारे वग्गुरपासु व मंडिउ मारे।
आउंचिय विलुलइ अलयावलि नं अणंग[3]अंगुलिवाणावलि।
अद्धेंदु व निलाडु[4] संकिण्णउ[5] मुट्ठिगाहु धणुमज्झि व दिण्णउ[6]।
वंकुज्जलु[7] भूजुयलउ भाविउ णं रइणाहें चाउ चडाविउ।
तिक्खकडक्खनयणसरलाइय जण वणयर विद्धंतुद्धाइय[8]।
नासावंसु सरलु जगु मोहइ अहरमुद्द करमुद्द व सोहइ[9]।
कोमलझुणि [10]वीण व झंकारइ[10] धणुगुणु[11] मयरचिंधु टंकारइ[12]।
अच्छकवोलजुयलु मुहे तडियउ विहिँ[13] भायहिँ[14] ससिखंडु व[15] घडियउ।
रेहाइद्धु कंठु कलु छज्जइ[16] विजयसंखु कंदप्पहो[17] नज्जइ।
बाहुजुयलु मुणि मणु वि विडंबइ मालइदामु[18] व कामहो[19] लंबइ[20]।
उक्कुरिय[21]-सिहिणपीवरतड रइवइरायहो[22] नं मज्जणघड।

धारण किये हुए मदनको भी निर्मित करके उसके अगरक्षकरूपसे उसीमे जड़ दिया, जो उसकी ओर देखनेवालेको निश्चित बोध डालता था ॥ १२ ॥

[१३]

उनका नवीन यौवन उन्मीलित होने लगा, मानो मदनके बाहु मृगयाके लिए क्रीड़ा करने लगे। उनका घना चिकुरभार ऐसा लहराता था, मानो मारने (कामीजनरूपी) पशुओं-को फँसानेवाला फंदा ही सजाया हो। उनकी घुँघराली अलकें इसप्रकार लोट-पोट होती थीं, मानो अनंगकी अगुलियोसे उत्पन्न होनेवाली स्वर-लहरी हो। उनका ललाट अर्द्धचंद्रके समान संकीर्ण था, और मध्यभाग (कटि) ऐसा था, जो मुट्ठीमें आ सके, जैसी कि धनुषके मध्यमें मूठ होती है। उनका भ्रूयुगल ऐसा बाँका व उज्ज्वल था, मानो रतिनाथने चाप खींचा हो। उनके सरल तथा तीक्ष्ण कटाक्ष युक्त नेत्र जनसमूहरूपी वन्य-पशुओंको बींधते हुए विस्तीर्ण होते थे। उनकी सुंदर नासिका सारे लोकको लुभाती थी, और अधरोंकी मुद्रा (रचना) करमुद्रिकाके समान (वर्तुलाकार व अत्यन्त छोटी और पतली) शोभायमान थी। उनकी कोमलध्वनि वीणाके समान ऐसी झंकृत होती थी, मानो मकरध्वज धनुषकी डोरीकी टंकार कर रहा हो। मुख तक फैला हुआ उनका स्वच्छ-सुंदर कपोल-युगल ऐसा था, मानो दोनो ओर एक-एक चंद्रखंड ही निर्मित कर दिया गया हो। रेखाओंसे युक्त उनका कोमल कंठ ऐसा शोभायमान था, जो कंदर्पके (त्रिभुवन-) विजयसूचक शंख जैसा जान पडता था। उनका बाहुयुगल मुनियोंके मनको भी पीड़ा देता था, और ऐसा लगता था मानो मदनकी मालतीमाला ही लटकी हो। उनके खूब ऊपर उठे हुए स्थूल स्तन ऐसे थे, मानो मदनराजाके

[१३] १ क घ ङ तहो। २ क °इ। ३ घ अणंत°। ४ क घ ङ निडालु। ५ क ट °ण्णउ, घ °न्नउं। ६. क ङ °ण्णउं; °न्नउ। ७ घ °ज्जल। ८ क घ ङ विंधतु°। ९ क °इ। १० क वीणज्झंकारः। ११. क ङ °गुण, ख ग वण°। १२ क घ °रइ। १३ ख ग विहि। १४. °हि। १५ क घ ट नंनि घडिवि। १६. क °ई। १७ ख ग, °प्पहो। १८ ङ मालइ°। १९ ख ग घ कामु व। २०. क °इ। २१. क ग °क्किरिय। २२ ख ग रइवय°।

गुलियाधणु विणोए[23] कामें किउ[24] गुलियाठाणु नाहिमंडलु किउ।
अइकिण्हें[25] दीहें उवरि गए[26] वद्धु वलित्तउ वररोमंचए[27]।
जणमणतुरयथट्टभामंतहो[28] कडियलु वाहियालि रइकंतहो।
रंभागब्भोरुयरइरामहो[29] तोरणखंभु व वम्महधामहो।
कुम्मायारु चलणजुयलुल्लउ दरवियसियपंकयपडितुल्लउ[30]।
घत्ता—अह ताहँ सउण्णउ[31] तं लायण्णउ[32] जो वण्णइ[33] सो कवणु कइ।
जहिं देसि न दिट्ठउ ताउ अहिट्ठिउ[34] तहिं[35] उज्जलउ सुवण्णु जइ[36] ॥१३॥

[१४]

गाहाचउक्कं—रइविप्पओयसंतत्तमयणसयणं व कुसुमसंवलियं।
धारंति ताउ विद्दुमहीरयरुइदंतुरं अहरं ॥ १ ॥
एयाण वयणतुल्लो होमि न होमि त्ति पुण्णिमादियहे[3]।
[4]थिरमंडलाहिलासी[5] चरइ व चंदायणं चंदो ॥२॥
चलणच्छविसामफलाहिलासिकमलेहि सूरकरसहणं।
चिज्जइ[6] तवं व[7] सलिले निययं चित्तूण गलपमाणम्मि ॥३॥

स्नानघट ही हो। उनका नाभिमंडल ऐसा प्रतीत होता था, मानो कामदेवने विनोदपूर्वक गुलिया-धनुप (गुलेल) बनाया हो, जिसमें उनका नाभिमंडल तो गुलिया (गुटिका रखने-का स्थान) था और वलित्रयरूपी धनुप, जो उसके ऊपर चढी हुई बिलकुल काली, दीर्घ एवं सुंदर रोमराजिरूपी प्रत्यंचासे बँधा था। उनका कटितल (नितम्ब प्रदेश) लोगोके मनरूपी अश्वसमूहको भ्रमण करानेवाले रतिकांत (कामदेव) के अश्व क्रीड़ास्थलके समान (अतिविस्तीर्ण) था। मानो वे रम्भाके गर्भसे उत्पन्न रतिके राम- (अर्थात् मन्मय) के भवनके तोरणस्तम्भ ही थी। उनके कूर्माकार चरणयुगल ईपत् विकसित कमलपत्रके समान थे। उनके उस संपूर्ण लावण्यका जो वर्णन कर सके वह कौन कवि है ? यदि सारे देशमे कही उज्ज्वल व सुंदर वर्ण दिखाई नही देता, तो (निश्चयसे) उसने वहाँ उन कन्याओको अधिष्ठित कर लिया है ॥१३॥

[१४]

रतिके वियोगसे संतप्त (अतएव अति श्वेतवर्ण) मदनकी कुसुमोसे व्याप्त शैय्याके समान उन कन्याओके अधर विद्रुम और हीरककी शोभासे विलक्षण थे, अर्थात् विद्रुमवर्णके उनके अधरोष्ठ हीरकके समान धवल दंतपक्तिसे दंतुरित (स्फुरायमान) थे। 'पूर्णिमाके दिन भी मै इनके मुखके समान होऊंगा या नही होऊंगा, इस शकासे ही मानो स्थिर(पूर्ण)मंडल-की अभिलापा करनेवाला चद्रमा मास भर चांद्रायणव्रत करता है। उनकी चरणच्छविकी तुल्यता चाहनेवाले कमलोके-द्वारा अपनेको गले तक जलमे डुबोकर सूर्यकी किरणोको सहते

२३ क घ ङ विलोए। २४ क कामुकिउ। २५ ख घ °किन्हे। २६ ख ग गए, ब गएं। २७ क घर, ङ धर°, ख ग °रोमचिए। २८ क ङ °तुरिय°, ख ग °तुरियथट्टु°। २९. ख ग °गब्भोरु व रय°। ३० क ङ °पकयदल°। ३१. क ख ग ङ °ण्णउं, घ °न्नउ। ३२. क ब ङ °ण्णउ। ३३ क घ ङ °इं। ३४ ख ग घ °ट्ठउ। ३५ ङ तहि। ३६ क जइ।

[१४] १ क ङ रइविप्पिओय°। २ ख ग °हीरइ°। ३ ब पुन्निमा°। ४ ख थिय° ग पिय°। ५ क ङ °हिलास। ६ क ङ वि°। ७ क च

सलवट्टिलाइयालें[8] नाहिदुग्गम्मि तिवलिपायारे[9]।
हरडज्झमाणकामो रोमावलिभूमिरे[10] लीणो ॥४॥

दोहउ—जाणमि एक्कु जि विहि घडइ सयलु वि जगु सामण्णु।
जें[11] पुणु आयउ निम्मविउ[12] को वि पयावइ[13] अण्णु ॥१॥

नं लायण्णु नियवि[14] नं जोव्वणु घरि हासियकुवेरसंपयधणु।
सायरदत्तपमुहवणिउत्तहिँ वुच्चइ अरहयासु नयजुत्तहिँ।
मित्त कुमारभावे रइवंतहिँ किय पइज्ज पंचहिँ[15] मि रमंतहि।
एक्कहो पुत्तु होइ जइ वणगउ[16] इयरहँ चउहुँ[17] वि जायहिँ[18] कण्णउ[19]।
तो तहो पियरहिँ[20] दुहियउ देवउ[21] तेण वि वरेण ताउ परिणेवउ।
पुण्णवसेण पुत्तु तुह[22] जायउ तिहुयणभमियकित्तिविक्खायउ।
अम्हहँ पुणु मुणालकोमलकरु कण्णचउक्कु जाउ लक्खणधरु।
संपइ पुव्वभणिउ[23] पालिज्जउ[24] पाणिग्गहणु कुमारहो किज्जउ[25]।
पभणइ[26] अरहयासु नासंथमि अज्जु कल्लि किर तुम्हहँ[27] संथमि[28]।
एवहिँ तुम्हे लइँ जि फुडु उत्तउ[29] लइ किज्जउ[30] परिणयणु निरुत्तउ।
ठविउ विवाहलग्गु[31] धणरासिए[32] अक्खयतइयदिवसे[33] जोइसिए[34]

हुए मानो तप संचय किया जाता है। उनके रूपको देखकर कामबाणोंसे विद्ध होनेसे (उनपर क्रुद्ध हुए) महादेवके द्वारा भस्म किया जाता हुआ कामदेव मानो उनके, नाभिके नीचेकी गहरी रेखारूपी खाईसे युक्त त्रिवलीरूपी प्राकारसे घिरे हुए तथा रोमराजिके कारण धूम्रवर्णके, नाभि-दुर्गमें विलीन हो गया है। मैं तो ऐसा समझता हूँ कि एक विधि (ब्रह्मा) सारे लोक सामान्यको गढ़ता है, पर जिसने इनको गढ़ा है, वह तो कोई दूसरा ही प्रजापति है।

(उन कन्याओंके) उस लावण्य और उस यौवनको देखकर घरमें कुबेरकी धनसंपत्तिका भी उपहास करनेवाले सागरदत्त प्रमुख न्यायनीतिवान् वणिक्पुत्रोंने अरहदासको कहा—मित्र! कुमारावस्थामें परस्पर प्रीतिवंत हम पाँचोंने क्रीड़ा करते हुए यह पैज (प्रतिज्ञा) की थी, 'यदि एकको भाग्यवान् पुत्र हो, व इतर चारोंको कन्याएँ हो जायें तो कन्याओंके पिताओंके द्वारा वे कन्याएँ उस-(पुत्रके पिता) को दे दी जानी चाहिएँ, व उसके द्वारा उन कन्याओंका अपने पुत्रसे परिणय करा दिया जाना चाहिए। पुण्यवश तुझे पुत्र हुआ है, जिसकी विख्यात-कीर्ति तीनों भुवनोंमें भ्रमण करती है, और इधर हम लोगोंको मृणालके समान कोमल करोंवाली, लक्षणसंपन्न चार कन्याएँ हुई हैं। तो अब पहले कहे हुए का पालन किया जाये, और कुमारका पाणिग्रहण कर लिया जाये। अरहदासने कहा—'मैं स्वयं तो कुछ निश्चय करता नहीं, आज या कल आप लोगोंको ही खोज करता। तो लीजिये, अभी स्वयं आप लोगोंने प्रकटरूपसे जैसा कहा, तदनुसार परिणय निश्चित कर दीजिये। धनराशिमें शुक्लपक्ष-

८. ख ग °यालें। ९. क °रो। १०. क घ ड °भूमिरो। ११. प्रतियोंमें जि। १२. क णिम्मिवउ, घ ड णिम्मियउ। १३. क °वइ। १४. क घ ड रूवु। १५. क ख ड णियवि। १६. ख °हिं। १७. ख ट °उ। १८. ख ग °हु। १९. क °हिं। २०. ख ग °हो। २१. ख ग देविउ। २२. ख ग तुहुं। २३. प्रतियोंमें °ज्जइ। २४. क ख ड °इ। २५. क ख ड °णइ। २६. ख °इ। २७. क ख ड अम्हि। २८. क ट ए°। २९. ख ग °इ। ३०. ख ग विवाहु°। ३१. ख ग °रासिएँ, घ °रासिए। ३२. ख ग °ज्जइ। ३३. क ट ३३. ख ग °इ। ३४. ग जोइसिएँ घ जोइसिए।

घत्ता—गय नियय-निवासहिं[34] पुण्णजयासहिं पंच वि वड्ढियमाणगिरि[35]
तक्खणे अवइण्णी[36] जणसंकिण्णी[36] सेट्ठिघरेहिँ विवाहसिरि ॥१४॥

[१५]

पंचहिं मि घरहिं[1] पंचप्पयारु गाइज्जइ मंगलु धवलेसारु[2] ।
पंचहिं[3] मि घरहिं[1] पंचंगु सज्जु सुम्मइ[4] वद्धावउ[5] तूरवज्जु ।
पंचहिं[3] मि घरहिं[1] पंचमु झुणंति सरभेयहिं वज्जइ[6] महुरतंति ।
पंचहिं[3] मि घरहिं[1] रइरसनिहाणु[7] सज्जियधणु विथरई[8] पंचवाणु ।
पंचहिं[3] मि घरहिं[1] वण्णुज्जलीउ दिज्जंति रयणरंगावलीउ ।
पंचहिं[9] मि घरहिं हियजणमणाइँ वज्झंति सुपल्लवतोरणाइँ ।
इय तहिं विवाहसामग्गि जाम विलसंतु वसंतु पहुत्तु ताम ।
संचरइ सुहावणु मलयपवणु विज्जाहरमाणिणिमाणदवणु[10] ।
सरलावियकेरलिकुरुलभंगु[11] विरहिणितिलंगिनीसाससंगु ।
सज्झइरिरणावियसुक्कवंसु[12] [13]कण्णाडिकणिरकण्णावतंसु[14]
कुंतलिकुंतलभरपत्तखलणु मरहट्ठिथोरथणवट्टवलणु[15] ।

को अक्षय तृतीयाके दिन विवाह लग्न स्थापित किया गया। (तदनंतर) वे लोग जग (समस्त पौरजन) की आशाओको पूर्ण करनेवाले अपने-अपने घरोको गये। उन पाचोका ही मानपवंत वढ गया, और तत्क्षण उन सवके घरोमे लोगोके आवागमन इत्यादिसे संयुक्त विवाहश्री अवतीर्ण हो गयी ॥१४॥

[१५]

पाँचो ही घरोंमे पाँच-परमेष्ठियोके (टि०) पाँचप्रकारके धवल व श्रेष्ठ मंगल गाये जाने लगे। पाँचो ही घरोंमे पाँच अंगोसे युक्त वधाईके तूरोका वाद्य सुनाई देने लगा। पाँचों ही घरोमे पंचमरागकी धुन आलाप करता हुआ, स्वरभेदोंसे युक्त मधुर वीणावादन होने लगा। पाँचो ही घरोमे धनुषको लिए हुए रतिरसका निधान पंचवाण अर्थात् कामदेव विचरण करने लगा। पाचो ही घरोमे उज्ज्वल वर्णके रत्नोंकी रंगावली (रगोली) दी जाने लगी, तथा पाँचो ही घरोमे लोगोके मनको आकृष्ट करनेवाले सुंदर पल्लवोके तोरण बांधे जाने लगे। इसप्रकार जब वहाँ विवाह सामग्री हो रही थी, इतनेमें विलास करता हुआ वसंत आ पहुँचा। विद्याधर मानिनियोका मानमर्दन करनेवाला सुहावना मलयपवन चलने लगा। केरलियोकी कुटिल केशरचनाको सरल बनाता हुआ, विरहिणी तैलंगियोके नि.श्वास उत्पन्न करता हुआ, सह्याद्रिके सूखे वासोको रुणरुणाता हुआ, कर्णाटियोके तालपत्र निर्मित कर्णावतंसको कणकणाता हुआ, कुतलियोके कुतलभारको स्खलित करता (बिखराता) हुआ, मराठिनियोके स्थूल स्तनवृत्तका

३४ ङ णिय आवासहिं। ३५. क ङ वट्टिय°। ३६ घ °न्नी।

[१५] १ क घ ङ घरिहिं। २ क ङ °लु। ३. ख ग °हि। ४ क घ ङ °इ। ५. क घ ङ °वणु। ६ ख °हिं। ७. ग रइरसु°। ८ क घ ङ विरयइ, ख विरइय। ९ क ख ग ङ °हि। १० क घ ङ °दमणु। ११ ख ग °कुरलभगु। १२ क ङ विज्झइरि°; ख ग सज्झइरि°। १३ घ कन्नाडि°। १४. घ °कन्नावतंसु। १५. क ङ °थणभार°, घ °थणचार°

तावियडिवियडचुंबियनियंबु[16] उद्दीवियरइरंधविडंबु[17] ।
अंकोलिरपरिहणपडिविहाउ पयडियमालविणिदरोरुभाउ ।
मउरियसहयारकसाइयंतु वेइल्लफुल्ल[18] पाडले मिलंतु ।
घत्ता—णं कामहो दीसइ रत्तउ वियसइ[19] फुल्लु[20] पलासहो वंकुडउ ।
कड्ढंतहो[21] कीवइं[22] विरहिणि जीवइं[23] रुहिरलित्तु हत्थंकुडउ ॥१५॥

[१६]

ताम तहिं[1] काले उज्जाणकीलणमणो चलिउ रायाणुमग्गेण[2] नायरजणो ।
मंदमंदारमयरंदनंदणवणं[3] कुंद-करवंद-मचकुंद[4] चंदणघणं ।
तरलदलताल-चललवलि[5]-कयलीसुहं दक्ख-पउमक्ख-रुद्दक्खखोणीरुहं ।
बिल्ल-वेइल्ल-चिरिहिल्लि-सल्लइवरं अंवजंबीर-जंबू-कयंबुव्वरं[7] ।
करुणकणवीर-करमर-करीरायणं नाग-नारंग-नग्गोहनीलंवरं ।
कुसुमरयपयरपिंजरियधरणीयलं निक्खनहचंचुकणइल्ल[8]-खंडियफलं ।
भमियभमरउलसंछइयपंकयसरं मत्तकलयंठिकलयंठमेल्लियसरं[10] ।
रुक्खरुक्खम्मि कापयरुसियभासिरी रइवराणत्त[11] अवइण्णमाहवसिरी ।

मर्दन करनेवाला, ताप्तीतटकी तरुणियोंके विकट अर्थात् विस्तीर्ण नितम्बोंको चूमनेवाला, और रतिशील आन्ध्र युवतियोंकी कामपीड़ाको उद्दीप्त करनेवाला, हवाके झोकोंसे परिधानके उड़नेसे मालविनियोंके अतिसुंदर ऊरुभागको ईषत् प्रकट करनेवाला, और लगे हुए सहकारवृक्षोंको कषायला (रस- युक्त) बनाता हुआ, तथा विचकिल्लके फूलोंको पाटल पुष्पोंसे मिलाता हुआ वसंत आ गया। फूले हुए पलाशकी लाल-लाल बोंडियाँ ऐसी खिलने लगीं मानो कातर विरहिणियोंके प्राणोंको निकालता हुआ कामके हाथका रुधिरलिप्त, वांका अंकुश ही हो ॥१५॥

[१६]

उस समय उद्यान क्रीडाकी इच्छासे नागरजन राजमार्गसे चल पड़े। उस नंदनवनमें मंदारकी मद मकरंद फैल रही थी, और वह कुंद, करवंद, (करौंदा ?) मुचकुंद तथा चंदन वृक्षोंसे सघन था। वहाँ तरल पत्तोंवाले ताल, चंचल लवली और सुंदर कदली तथा द्राक्षा, पद्माक्ष एवं रुद्राक्षके वृक्ष थे। बेल, विचिकिल्ल, चिरिहिल्ल, तथा सुंदर सल्लकी और आम, जंबीर (नीबू), जंबू, तथा उत्तम कदंब थे। कोमल कनेर, करमर, करीर (करील ?), राजन (सं० राजादनी), नाग, नारंगी, व न्यग्रोधके वृक्षोंसे अंबर नीला (हरित) हो रहा था। कुसुमरजके प्रकर (समूह) से वहाँका भूमिभाग पिंगलवर्ण हो गया था। शुकोंके नखों व चंचुओंसे वहाँके फल खंडित थे। घूमते हुए भ्रमरकुलोंसे पंकज-सरोवर आच्छादित था, और मत्त कलकंठियोंके मधुर कंठसे स्वर छूट रहा था। रतिपतिकी आज्ञासे वृक्ष-वृक्षमें कल-वृक्षकी शोभासे भास्वर माधवश्री (वसंत-शोभा) अवतीर्ण हुई। प्रत्येक वृक्ष [illegible]

---

१६. क ट "कुचियति"। १७ [illegible] १८ [illegible] १९ [illegible] २० [illegible]
२१. क ट कड्ढ°। २२ [illegible] २३ [illegible]
[१६] १ [illegible] २. [illegible] ३ [illegible] ४ [illegible] ५ [illegible] ६. [illegible] ७ क [illegible] ८ [illegible] ९ [illegible] १० [illegible] ११ [illegible]
अवइण्ण°, [illegible]

रुक्खरुक्खम्मि सविलाससुब्भासियं[12] हसिय-रइकाम-मिहुणं समावासियं।
जंबुसामी वि कुमरेहिं सहुँ लीलए कामिणीमज्झे कामु व्व तहिं[13] कीलए।
घत्ता—डोल्लहरि[14] व लग्गी कंठहॅं[15] लग्गी वल्लहमुहचुंबणु[16] करइ[17]।
थणरमणविडंबिणि का वि नियंबिणि निहुअणकेलिहिं[18] अणुहरइ ॥१६॥

[१७]

क वि कामिणि अणुणइ[1] कंतु केम परिहासापेसल भणइ एम।
कुरओ[2] सि न वल्लह जाणिओ सि साणंदु जं न[3] आलिंगिओ सि।
निरवेक्खु[4] वयणमइराहं[5] जं जि केसररुक्खो सि न होसि तं जि।
सच्चउ कलिओ सि असोयरुक्ख लइ पायपहारे समइ[6] मुक्ख।
विवरीयवयण क वि पणयकुद्ध [7]नियकज्जलुद्धधुत्तेण मुद्ध।
तउ मुहहो जणियसयवत्तभंति आवंति निहालहिं[8] भमरपंति।
इय भणिय जं जि सद्दवक्कभग्ग[9] परियत्तवि दइयहो कंठि लग्ग।
क वि भणिय मुद्धे अच्छिहिं[10] विराइ नीलुप्पलसंकइ भमरु धाइ[11]।
इय मिसिण नयण झंपणु करंतु चुंबइ नववहुवहे[12] वयणु कंतु।
तिलएण करमि तउ तिलउ बाले[13] नियभालु[14] निवेसिवि पियहे[15] भाले।

का उपहास करनेवाले (सुंदर) मिथुनोके सम+आवास अर्थात् सहवाससे समुद्भासित हो गया। जंबूस्वामी भी अन्य कुमारोके साथ लीलापूर्वक कामिनियोके बीच कामदेवके समान क्रीड़ा करने लगे। डोलेके समान लटककर कंठसे लगी हुई स्तनो व रमणों-(के भार) से कदर्थित कोई सुंदरी वल्लभका मुखचुम्बन करते हुए सुरत क्रीड़ाका अनुहरण करने लगी ॥१६॥

कोई कामिनी अपने कांतको इसप्रकार मनाने लगी, और परिहासपूर्वक ऐसे मधुर वचन बोली—हे वल्लभ मैने जाना नही था कि तुम कुरत (श्लेष-कुरुवक वृक्ष) हो जो कि मुझसे आलिंगित होनेपर भी प्रसन्न नही हुए (विरोधाभास); (विरोध परिहार) अथवा तुम-वह (कुरुवक वृक्ष) भी नही हो, क्योकि तुम तो वदन-मदिराके प्रति भी निरपेक्ष हो (उसे केवल देखते ही हो, आलिगन-चुंबन द्वारा पीते नही,) अतः तुम केशर-(तिलक)वृक्ष (के समान) हो (जो सुंदरी नवयुवतीके कटाक्ष मात्रसे ही प्रफुल्लित हो उठता है, उसके आलिंगन-चुंबनको अपेक्षा नही रखता)। अब मैने सत्यतः तुम्हे जान लिया कि तुम तो ऐसे अशोकवृक्ष (के समान) हो जो मूर्ख पादप्रहारको प्राप्त करके शांत (प्रसन्न-प्रफुल्लित) होता है। कोई मुग्धा अपने (प्रणय) कार्यके लोभी धूर्तसे प्रणयक्रुद्ध होकर मुँह फेर लेती है; (तब धूर्त कहता है) तुम्हारे मुखसे शतपत्र (कमल) की भ्रांति करके झपटती हुई भ्रमर पंक्तिको तो देखो। ऐसा कहनेसे भग्न-मान होकर वह तुरंत दयिता (प्रेमी) के कंठसे लग जाती है। कोई

१२. ख ग सविलासु०। १३. ख ग तह। १४. क ख ग ङ डोल°। १५ ख ग °ह। १६ क घ ङ °मुहि° चु°, ख ग °चुवण। १७. क °इं। १८. क मिहुवण°।

[१७] १. क °णइं। २. ख ग कुरु°। ३. क ख ग ङ ज ण्ण। ४. ख ग निरुविक्ख। ५. ख ग °हि। ६ ग पणइ°। ७. प्रतियो मे 'णिय°'। ८. ख ग °लहिं। ९ क सदवक्ख°। १०. ख ग अच्छहिं। ११. क धाइं। १२ क ब ट °वहुयहि। १३. प्रतियोमें 'बालि'। १४. घ °तालु। १५ क ङ °हिं, ख ग घ °हि।

परिछलवि[१६] कवोलहिँ दितु नहरु आपीलइ[१७] दंतहिँ[१८] महुरु अहरु।
आवाणए क वि पिक्खेवि स-रूउ महुघडे पडिबिंबिउ निययरूउ।
पिय पेक्खु पेक्खु किं भणहि[१९] मज्झे तप्पणदेवय अवइण्ण[२०] मज्झे।
क वि पियगहियाहरु[२१] वहइ वयणु छिज्जंतरोसु[२२] पसरंतमयणु।
पाणोसरंत मइरं[२३] विहाइँ फलिहमउ अवाणयचसउ[२४] नाइँ[२५]।
मयनाहितिलउ[२६] विरएवि वयणे किउ चंदसरिसु मुहुँ[२७] दीहनयणे[२८]।
क वि पिएण[२९] भणिय लइ एउ[३०] संतु[३१] महिलाकिउ सयलु वि कूडमंतु।
उज्जाणे तम्मि जंबूकुमारु आलावइ क वि वड्ढंतु[३२] मारु।
अब्भासियउ हंसहिँ[३३] गमणु तुज्झु कलयंठिहिँ कोमललविउ[३४] वुज्झु।
पडिगाहिउ कमलहिँ चलणल्हासु[३५] तरुपल्लवेहिँ करयलविलासु।
सिक्खिउ वेल्लिहिं भूवंकुडत्तु सीसत्तभाउ सव्वु[३६] वि पवत्तु[३७]।

घत्ता—दावंतहो तं वणु रंजियपियमणु वोल्लु[३८] कुमारहो कलु कलइ।
पयडियवहुभावहि वंकालावहिँ कामिणि का वि परिच्छलइ[३९] ॥१७॥

कहता है—मुग्धे ! तेरी आंखें ऐसी सुंदर हैं कि नीलोत्पलकी शंका करके भ्रमर झपट रहे हैं, इस बहानेसे नेत्रोंको झांपकर वह नववधूका मुख चूम लेता है। कोई यह कहता हुआ कि हे बाला, अपने तिलकसे तुझे तिलक लगाऊँगा, अपना मस्तक प्रियाके मस्तकपर रखकर, उसे छलकर कपोलोंपर नखचिह्न बनाता हुआ कांताके अधरोको दांतोंसे काट लेता है। कोई कामिनी आपानक (मधुशाला) में रखे हुए मधुघटमें प्रतिबिम्बित अपने रूपको देखकर कहती है, प्रिय देखो ! देखो ! भार्या क्या कहती हो ? (ऐसा पूछनेपर) वह बतलाती है—मद्यमें तर्पण देवता (?) उतर आयी है। कोई प्रियसे काटे हुए अधरयुक्त मुखको धारण कर रही है, जिसका रोष क्षय हो रहा है, और मदन बढ रहा है। (हाथोंमें-से) चूती हुई अथवा पी जाती हुई मदिरासे युक्त हाथ ऐसे शोभायमान हो रहे हैं मानो (मदिरा) पान करनेके स्फटिकमय चषक (प्याले) ही हो। किसीने कहा—हे दीर्घनयना तूने (निष्कलंक) मुखपर कस्तूरीका तिलक लगाकर उसे चंद्रमाके समान (सकलंक क्यो) कर दिया ? किसी स्त्रीके प्रियने कहा—लो यह सारा (प्रपंच) महिलाकृत कूट मंत्र है। उस उद्यानमें (कामिनियोंके) कामको बढाते हुए जंबूकुमार किसी कामिनीको कहने लगे—हंसोने तुझसे गमनका अभ्यास किया, कलकंठीने कोमल आलाप करना जाना, कमलोने चरणोसे नाचना सीखा, तरुपल्लवोने तुम्हारी हथेलियोका विलास सीखा, तथा वेलोंने तुम्हारी भौहोंसे बांकापन सीखा। इसप्रकार ये सब तुम्हारे शिष्य भावको प्राप्त हुए है।

उस वनको दिखलाते हुए अपने प्रियका मनोरंजन करती हुई कोई कामिनी कुमारके

---

१६. क घ ड °छलिवि। १७ क घ ड आवी°। १८. ख ग °हि। १९. क घ ड °हिं। २० क ड °यण; घ
°इन्न। २१ ख ग °साहरु। २२ क ड ज्झिज्जत°, ख ग भिज्जंत°। २३ क घ ड °मइरा। २४ क ख ग
°वसउ। २५ क ड णाड, ख ग नाइ। २६ प्रतियोमें मयणाहि°। २७ ख ग महु। २८ क ड °णयणि, घ
°नयणि, ख ग °नयणु। २९ क ड पियेण। ३० क ड एहु। ३१ क ड सग, सरतु। ३२. क ड वड्ढतु।
३३ क °हि, ख ग हंसुहि। ३४. ख ग °लविय। ३५ क ड चरण°; घ वलण°। ३६ मच्चु, ड मव्व
३७ ख ग पवुत्तु, घ पउत्तु। ३८. क ड वोलु, घ वुल्ल। ३९. क ड परिक्खलइ, ख ग घ पडिखलइ।

[१८]

नच्चंता मोरा मुद्धि जोइ तोरा नच्चंतु न दोसु कोइ[1] ।
दीसइ सरि कारंडाण पंति जा तउ[2] रिउ घरिणिहु[3] कवणु भंति ।
सरु कोइलाए[4] कोमलु जि वहइ[5] जं मयणु चडाविए[6] चावे[7] वहइ[8] ।
एयं च पियालवणं त्रियाण दुल्लहउ नवर दूहवजणाण ।
सारंगं गय सारंगि दच्छि[9] ता नच्चउ वायहु[10] पडहु गच्छि[9] ।
पिय पेक्खु[11] इंदगोवयविरेणु लइ मग्गि दुद्धु तो कामधेणु ।
जले कंकु व हंसो[12] चेय मंदु तुहुँ[13] सो च्चिय कंकु जलम्मि मंदु ।
सुउ विलवइ सुंदरि कवण वाह संठवि न परायउ कज्जु[14] नाह ।
माहे सरु सिसिरें दड्ढु[15] जाणु मरइ जि तिदंडे जसु निच्चण्हाणु[16] ।

मधुर बोलको सुन लेती है, और अनेक प्रकारकी वक्रोक्तियों द्वारा विविध (शृंगारादि) भावोंको प्रगट करती हुई इसप्रकार छलना करती है ॥ १७ ॥

[१८]

स्वामीने कहा—मुग्धे, नाचते हुए मयूरोको देखो ! सुंदरीने (श्लेषार्थ मोरा-मेरा ग्रहण करके वक्रोक्ति की—तोरा अर्थात् तेरे नाचनेमे कोई दोष नही है। स्वामीने कहा—सरोवरमें कारंड पक्षियोंकी पंक्ति दिखाई दे रही है; सुंदरीने वक्रोक्ति की—अरे क्या (रंडा–विधवा) विधवाओकी पंक्ति है, तो वह निश्चयसे तुम्हारी शत्रु-गृहिणियोंकी है। स्वामीने कहा—कोकिलाका कोमलस्वर प्रवृत्त हो रहा है, सुंदरीने छलोक्तिकी—अरे यह पूछते हो कि वह कोकिलाके स्वरके समान कोमल कौन-सा शर है, जो मार डालता है ? वही जिसको मदन धनुषकी टंकारपूर्वक चलाकर मारता है। स्वामीने कहा—अरे इस प्रियालवृक्षोके वन (उद्यान) को जानो (देखो) ! सुंदरीने वक्रोक्ति की—अरे प्रियाओंका आलाप दुर्भगजनोके लिए दुर्लभ है। स्वामीने कहा—चतुर हरिणी हरिणके पास चली गयी; सुंदरीने छलोक्ति की—दक्ष सारंगी (वाद्य) सारग (वाद्य) के स्वरमे मिल गयी तो फिर नाचो और पटह बजाओ तो जानें। स्वामीने कहा—प्रिये इस विरेणु अर्थात् रजरहित निर्मल इंद्रगोप (खद्योत) को देखो, तो सुंदरीने व्यंग्योक्तिकी—यदि इंद्रगोपदविरेणु, अर्थात् यदि स्पष्टतः इंद्रकी गायके चरणोकी धूल देख रहे हो तो फिर वह कामधेनु है, (इससे) दूध मांगो। स्वामीने कहा—जलमें कंक (वक) पक्षी हंसके समान मंदगतिसे चल रहा है, सुंदरीने व्यंग्य किया—तू ही बड़ा जल(क्रीडा) में मंद कंक है। स्वामीने कहा—सुंदरी यह शुक ऐसा विलाप कर रहा है, इसे क्या पीड़ा है ? सुंदरीने वक्रोक्ति की—हे नाथ यदि सुत (पुत्र) रो रहा है, तो क्या बात है, उसे धैर्य दीजिये, यह कोई पराया कार्य नही है। स्वामीने कहा—माघ मासमें (कमल) सरोवर शिशिरसे दग्ध हो गया, ऐसा जानो; तो सुंदरीने व्यग्य किया—यदि कोई माहेश्वर अर्थात् महेश्वरका भक्त तुषारपातसे दग्ध हो गया (अर्थात् मर गया), तो वह त्रिदंडी तो निश्चय मरेगा, जिसका नित्य (त्रिसन्ध्या)

[१८] १ क °इ। २. क घ ताउ। ३. क ङ °णिहु, ख घरणेहु, ग °णेहि, घ घरणिहिं। ४ क ङ °लाइ। ५ क हवइं, ङ हवइ। ६ क ङ °विय, घ °एवि। ७. ख ग चाए। ८. क ङ गहइ। ९ क ङ °च्छ। १०. क ङ °हि, घ °हिं। ११ क ङ पिक्खि। १२ ङ अ हसो। १३ क ङ तुहु। १४. क ख ग ङ कज्ज। १५. क ङ दट्ठु। १६. ख ग निच्चहाणु, घ °न्हाणु।

सुद्धिहि[१७] कारणु कं तावसाण[१८] का सुद्धि कंत कंता-वसाण[१८] ।
केरिस तुहुँ वंकी तणुयदेह[१९] हउँ[२०] नाह न सा हरिणंकदेह[२१] ।
दोहउ—गोरी सुद्धि[२२] न सामली[२३] तंबाहरेण सुकंति ।
तंबा वसहें[२४] हरेण पुणु गोरी रमिय न भंति ॥१॥
घत्ता—जइ साहवि[२५] सकइ अहव न सकइ[२६] मयणु वि तं सिंगाररसु ।
दूरंतरे आरिसु कइ[२७] अम्हारिसु[२८] कह[२९] परियाणइ[३०] विसयकसु[३१] ॥१८॥

[१९]

इय तहिँ वणे माणिय कामवेए[१] उप्पण्णइ[२] मिहुणहँ[३] सुरयखेए[१] ।
पासेयसित्त मंडणे फुसंति वोलीणए[४] छणवासरे वसंति ।
खरकिरणतरणितावियधरम्मि जलकीलहिँ[५] सव्व वि गय सरम्मि ।
सनियंसणु भूसणु तडि तिएहिँ[६] मुच्चंतु[७] नियवि चिंतिउ पिएहिँ[८] ।
खणु अच्छहु तडे वियडाइँ ताम रमणाइँ सुदिट्ठइँ[९] करहुँ[१०] जाम ।

स्नान होता है । स्वामी ने कहा—तापसोके लिए जल ही शुद्धिका कारण होता है; तो सुंदरीने फिर व्यंग्य किया—कांताके वशवर्त्ती बेचारे रागीजनोकी जलस्नान मात्रसे क्या शुद्धि ? स्वामीने कहा—तुम्हारी पतली देह कैसी बाकी है ? तो सुंदरीने छलोक्तिसे कहा—अरे नाथ वह मै नहीं हूँ, बांकी तो वह चंद्रकला है । स्वामी ने कहा—हे मुग्धे आताम्र अधरोंको धारण करनेसे केवल गौरवर्ण नायिका ही सुकाता, अर्थात् सुष्ठुरमणीय नही होती, बल्कि उससे सांवली सुंदरी अधिक सुरमणीय होती है; तो सुंदरीने व्यंग्य किया—अरे ! तबा अर्थात् गो, के साथ हर (महादेव) ने रमण नही किया, तंबाका रमण किया वृषभ अर्थात् महादेवके नादीने, और महादेवने रमण किया गौरी (पार्वती) से, इसमे कोई भ्रांति नही। उस शृंगाररसका यदि (स्वयं) मदन ही वर्णन कर सके तो कर सके; अथवा वह भी उसका वर्णन नही कर सकता; फिर हम जैसा मंदबुद्धि कवि तो दूर ही रहे; क्योकि वह शृंगार (काम-भोगादि) की विधियोंको क्या जाने ? ॥ १८ ॥

[१९]

इस तरह वहां उस वनमे कामदेवको माननेवाले अर्थात् कामशास्त्रके अनुसार संभोग क्रीडा करनेवाले मिथुनोंको सुरतखेद (थकान) उत्पन्न हुआ और प्रस्वेदसे सिक्त होनेपर उसे वस्त्रसे पोछा । वसतोत्सवका दिन व्यतीत होनेपर जबकि पर्वत प्रखर किरणोवाले सूर्यसे तप्त हो गया था, सभी जलक्रीड़ाके लिए सरोवरपर गये । वस्त्रोसहित भूषणोको प्रियाओके-द्वारा तटपर छोड़े जाते हुए देखकर उनके प्रियजनोने सोचा—अरे ! क्षणभर तब तक (प्रिया) तटपर खड़ी रहे, जब तक कि उसके विस्तीर्ण रमणोको अच्छी तरह देखा हुआ कर लूँ ।

---

१७ क ख ग ड °हिं। १८. क ड °णु। १९. क ड तणुअ°। २०. क हउ। २१. क घ ट °रेह। २२. ख ग घ मुद्ध। २३ क ड सामलिय। २४ क ड °हि,। २५. क घ ट साहिवि। २६ ख ग थ°। २७. क ड कय। २८ क °सिसु,। २९. क किह; ड किह। ३० क घ ड °णइ। ३१. क ट मयलु°।

[१९] १. क ड °इ। २. क घ ड °ण्णइ। ३. क ड °णहिं। ४. क ट °णइ। ५ क ड °हिं। ६. घ ठिएहिं। ७ ड मुचत। ८ ड °हि। ९. ख ग °इ। १०. प्रतियोमे 'करहु'।

तरुणियणु विसइँ[11] वोलियवरंगु　　[12]थणसिहरखलियलहरीतरंगु ।
क वि सलिलझलक्कहि[13] नियकंतु　　अहिसिंचइ[14] नयणहिँ[15] हत्थु दितु ।
चलरसण[16] तरइ क वि पियहो[17] पुरउ　　सुमरावइ णं[18] विवरीयसुरउ ।
काहि[19] वि भमरेण[20] तरंतियाहि[21]　　न उ जाणिउ[22] कमलु[23] न वयणु ताहि[24] ।
क वि ढिल्लनियंसण[25] गहिरनीरे[26]　　तलवायहे[27] हलुयत्तणु[28] सरीरे ।
थावंति[29] संति हल्लिरवरंग[30]　　उरसोल्लिण[31] थणपेल्लियतरंग[32] ।
एक्केण नवर हत्थेण तरइ　　बीएण पडंतु कडिल्लु धरइ ।
उब्भूसिउ[33] काहे वि तणु विहाइ[34]　　तारुण्णकंदु[35] अंकुरिउ नाइ[36] ।
उज्जाणे का वि रइखेयभग्ग　　जलमज्झे रमइ[37] पियखंधे लग्ग ।
नहरारुणु[38] तहे[39] थणवट्टु भाइ　　अंकुसिउ कामकरिकुंभु नाइ ।
दरलहसिउ[40] चोरु क वि गुज्झु वहइ　　णं मयणावासतवंगु सहइ[41] ।
रोमावलि तिवलिहिँ[42] कहे[43] वि वसइ[44]　　णं कालभुयंगिणि[4?] तरुण डसइ[4?] ।

तरुणियाँ जलमें प्रवेश करने लगीं, तो जलतरंगे उनके नितंबोंको पार करके, स्तन शिखरोंपर आकर (उन्हे पार न कर पानेसे) स्खलित हुईं। कोई जलमें अपने कांत (की छवि) को झलकते हुए देखकर, नेत्रोंपर हाथ रखकर अभिषेक करने लगी। कोई चंचल रमणोवाली प्रिया, प्रियके सामने इस प्रकार तैरने लगी, मानो विपरीत सुरतका स्मरण दिला रही हो। एक भ्रमर न तो किसी तैरती हुई सुंदरोके मुखको ही पहचान सका, और न कमलको (अर्थात् तैरती हुई सुंदरीके मुख व कमलमें कोई विवेक नही कर सका)। कोई शिथिलवसना गंभीर जलमें तलस्पर्शी गतिसे शरीरमें हलकापन आनेसे, अपने कंपनशील नितंबप्रदेशको स्थिर करती हुई, अपने उरस्थलमें छिपे हुए (स्तनोरूपी) घनसे तरंगोको प्रेरित करती हुई, केवल एक हाथसे तैरती हुई, दूसरेसे गिरते हुए कटिवस्त्रको संभाल रही थी। किसीका भूषा (वस्त्राभूषण-विलेपनादि) रहित शरीर ऐसा शोभायमान हो रहा था, मानो तारुण्यरूपी वृक्षका नवीन अंकुर ही उदित हुआ हो। उद्यानमे रतिक्रीड़ाके आयाससे थकी हुई कोई कामिनी प्रियके कंधेसे लगकर जलमें रमण कर रही थी तथा नखक्षतसे अरुण हुआ उसका वर्तुल-स्तन ऐसा भासित हो रहा था मानो मदन-हस्तिके कुंभस्थलपर अंकुश मारा गया हो। कोई ईषत् खिसके हुए वस्त्रसे (दीखनेवाले) गुह्यागको ऐसा धारण कर रही थी, मानो मदनके आवासका तवंग (छज्जा ?) शोभायमान हो रहा हो। किसीकी त्रिवलीपर रोमावलि ऐसी बसती थी, मानो तरुणोको डँसने-

---

११. क ङ °इ। १२. ख ग घ °दलिय°। १३. घ °क्काहि। १४. क अह°। १५. ख ग °णिहि। १६ ख ग चंचलरव, क ङ °रवण। १७. क ङ °ह; घ चलण, ख ग °ह। १८. प्रतियोमे 'ण'। १९ क काहं, ङ काह। २०. ख ग सम°। २१. ख ग भरंतियाहे। २२ क ङ °उ। २३. ख ग घ वयणु न कमलु। २४. ख ग ताहि। २५. क ङटिल्ल°, ख ग ढिल्लि°। २६. ख ग गहिय°। २७ क °इहि, घ °यहि, ङ °इहि। २८ क ङ °अत्तणु। २९ ख ग घ वावति। ३० घ हल्लिय°। ३१. क घ ङ °सेल्लिण। ३२ क घ ङ थण°। ३३ घ उद्धसियउ। ३४ घ °इं। ३५ घ तारुन्न°। ३६. क ङ णाइं, घ नाइं। ३७. क घ ङ °इं। ३८. क ङ णहि°, ख ग °रारणु। ३९. क ङ तहि, घ तहि। ४० क ङ °सिय। ४१ क °ड। ४२ क ङ घ °लिहि। ४३. क घ ङ कहि°। ४४. क कालभुय°।

जलल्लोलल्लुलावियपरिहणाहे[45] पिउ मवइ रमणु[46] दिट्ठिए[47] धणाहे[48]।
केण वि विडेण दूरंतराउ बुड्डेविणु खेड्डें धरवि[49] पाउ।
वोलिज्जमाण पुक्करइ दासि धाहावइ कुट्टणि थुक्क पासि।
घत्ता—करचरणपहारहिँ थणपब्भारहिँ नहरचवेडहिँ जज्जरिउ।
तं सरवरपाणिउ[50] जुवइहि माणिउ[51] सुहयमणूसहो अणुहरिउ ॥१९॥

[२०]

जलकील करेवि कमलायराउ नीसरियइँ[1] मिहुणइँ[1] सरवराउ।
छुडु छुडु जि सइच्छए[2] कोलियाइँ छुडु छुडु पोत्तइँ[3] निप्पीलियाइँ।
छुडु छुडु जि नियच्छइँ[4] परिहणाइँ छुडु छुडु लाइयइँ विलेवणाइँ।
छुडु छुडु जंपाणइँ सज्जियाइँ छुडु छुडु गमतूरइँ वज्जियाइँ।
पल्लाणियाइँ छुडु[5] वाहणाइँ निव नियडइ[6] ढुकइँ साहणाइँ।
छुडु छुडु मंडलवइ वद्धपट्टु[7] नंदणवणाउ छुडु पुरे पयट्टु[8]।
तहिँ अवसरि पडिसयगलगलत्थि सेणियमहरायहो पट्टहत्थि।
नामेण विसमसंगामसूरु [9]कुंभयलुच्चाइयचंदसूरु।
दंतग्गहुलणहयदिसकरेणु मयजलरेल्लावियधरणिरेणु।
निट्ठविय मेंठु पयडियदुवालि चलकण्णझडप्पियछप्पयालि।

वाली कालीनागिनी ही हो। कोई प्रिय, जलकी कल्लोलोसे जिसके वस्त्र इधर-उधर कर दिये गये थे, ऐसी अपनी धन्याके रमणभागको दृष्टिसे माप रहा था। किसी विटके द्वारा दूरसे ही डुबकी लगाकर क्रीडापूर्वक पैर पकड़कर डुबायी जाती हुई दासी पुकार मचाने लगी, तब पास ही खड़ी हुई कुट्टनी जोरसे चिल्ला पड़ी (जिससे उसकी पुकार किसीको सुनाई न दे)। कर और चरणोके प्रहारो, स्तनोके तटो, तथा नखोकी चपेटोसे जर्जरित वह सरोवरका जल युवतियोके-द्वारा ऐसा माना गया, माना उसने किसी सुभग मनुष्यका अनुसरण किया हो ॥ १९ ॥

[२०]

मिथुन कमलसरोवरसे (जल) क्रीडा करके निकल पड़े। पुन-पुन. यथेच्छ क्रीड़ा की गयी, फिर वस्त्र निचोड़े गये, परिधान पहने गये और विलेपन लगाये गये। फिर पालकियाँ सजाई गयी और चलनेके बाजे बजाये गये। वाहनोपर पलान लगाये गये और सारा लशकर राजाके पास जुट गया। फिर शीघ्र ही पट्टवद्ध-मडलाधीश नदनवनसे पुरीकी ओर प्रवृत्त हुआ। उसी समय महाराज श्रेणिकका, शत्रु गजोको उठाकर फेंक देने वाला 'विपमसग्रामसूर' नामक पट्ट हाथी अपने कुभस्थलसे चंद्र और सूर्यको उचाटता हुआ, अपने दाँतोके अग्रभाग (की हूल) से दिशागजोको आहत करता हुआ, मेंठको मारकर अपने कानोके झपाटेसे पट्पदो (भ्रमरो) को

४५. ख ग घ °ललावियपरि°, क ध °णाहि, ह °णाहि। ४६ ह रवणु। ४७ क ह दिट्ठिय, ख ग दिट्ठिइ। ४८. क °हिं, ख ग थ°, घ ह °हि। ४९. क घ ह धरिवि। ५०. क घ ह °पाणिउ। ५१ क घ ह °उ।

[२०] १. ख ग °इ। २ क घ ह °च्छइ; ख ग सइ°। ३. ख ग घ °ड। ४. क ग °च्छइ, ख ग °त्यइ, घ °त्यइ। ५. क ह पिरु। ६. ख ग डइ। ७ क ख घ ह °पट्ट। ८. प्रतियांमें 'पयट्ट'। ९ ग °कुंभइलु°।

उद्दंडसुंडकयसलिलविट्ठि पयभारकडक्कियकुम्मपिट्ठि ।

घत्ता—दुद्धररिउबलहरु णं नवजलहरु[10] गरुवगज्जिरवभरियदरि ।
जणमारणसीलउ वइवसलीलउ[11] सो संपत्तउ तेत्थु[12] करि ॥२०॥

[२१]

कहिं पि तेण हत्थिणा विसालसाल-सल्लई-तमालमाल-तुंगताल-जाइजाल-नायवल्लि-मल्लिलिंब[1]-जंबुलुंबि-उंबरंब-सक्कयंब[2]-पक्कपिंगमाहुलिंग-दालिमालि-चंदणद्द-रुंद[3]-कुंद[4]-मंदमार-सिंदुवार-देवदारु[5]-चारुचार[6]चूरियाँ[7] ।
कहिं पि डोहिऊण दीहदीहिया[8]-दरुच्छलंतमच्छपुच्छविच्छुरंत[9]वारिलोलमाण[10]-संचरंतचंचरीयचुंबिएहिं सुंडदंडतोडिएहिं वेल्लिजालजोडिएहिं भूमिभायसूडिएहि वंकएहिं[11] पंकएहिं[11] कद्दमेल्लकुल्लतल्लपूरिया[12] ।
कहिं पि मग्गलग्गभग्गआसवार-चम्मजट्ठिघायघुम्ममाण[13]-नीसरंतवाहथट्ट-तिक्खनक्खखुण्ण[14]-खोणिमंडलाउ उट्ठिएण रेणुणा निरुद्धचक्खुथक्कंपिरंग-कामिणीकरं करेण धारिऊण धामिरेण कामुएण कुट्टणी[15] विलुट्टणी[16] विलोट्टिया ।

झड़पता हुआ नगरीके द्वारपर प्रगट हुआ। सूँड ऊँचा करके जलकी फुहारें छोड़ते हुए उसने अपने पद्भारसे (पृथ्वीको अपने ऊपर धारण करनेवाले) कूर्मकी पीठको कड़कड़ा दिया। दुर्द्धर्ष शत्रुओंके बलको हरण करनेवाला, नये मेघके समान अपने गर्जनरवसे कंदराओंको भरता हुआ व लोगोंको मारनेमें प्रवृत्त वह हाथी वैवस्वत (यम) के समान मृत्युलीला करता हुआ वहाँ आ गया ॥ २० ॥

[२१]

कही उस हाथीने विशाल साल और सल्लकी व तमाल वृक्षोंकी पंक्तियाँ, उत्तुंग ताल, परस्पर गुँथकर जालके समान बनी हुई नागलता, मल्लि, निंब, जंबूवृक्षोंका कुंज, उंबर, आम्र व सुंदर कदंब, पके हुए पिंगलवर्ण मातुलिंग, दाड़िमकी पंक्तियाँ, हरे चंदनवृक्ष, विशाल कुंद, मंदमार, सिंदुवार, देवदारु तथा सुंदर चिरौंजीके वृक्ष चूर-चूर कर डाले। कही बड़ी दीर्घिकाओंमें घुसकर, ईषत् उछलते हुए मच्छोंकी पूँछोंसे छिटकते हुए जलसे क्रीड़ा करते हुए, संचरणशील चंचरीकोंसे चुंबित व अपने ही शुंडादंडसे तोड़े हुए, लता जालसे संयुक्त, व भंजन करके भूमिभागपर डाले हुए बाके पंकजोंसे छोटी नदी (अथवा नाले) के कर्दमयुक्त तलको पूर दिया। (ऐसी अवस्थामे) कही मार्गमें पड़नेवाले व जिनके सवार भाग गये थे और जो चर्मयष्टि अर्थात् चाबुकके आघातसे चक्कर खा रहे थे, ऐसे घोड़ोंके समूहोंके निकलनेसे उनके तीक्ष्ण खुरोंसे खुदे हुए पृथ्वीमंडलसे उठनेवाले धूलसे आँखें अवरुद्ध हो जानेके कारण थर-थर काँपती हुई कामिनीके हाथको हाथसे पकड़कर किसी गर्वीले कामुकने झूठ बोलनेवाली कुट्टनीको

१० ख ग घ गरुय° । ११. क ङ वयवस° । १२. क ङ तत्थ, घ तित्थु ।

[२१] १. क ङ °मल्लिणिंव° । २ ख ग सकयब । ३. क ङ °तुंद । ४. घ °कंद । ५. घ °दार । ६. क ङ °चारु । ७ ख चूलिया । ८ ख ग दीहिं° । ९. क ङ °विच्छरंत । १०. क घ ङ °लोललोलमाण° । ११ ङ °एहि । १२ क ख ङ कद्दमल्ल° । १३ क ङ °हुम्ममाण । १४ घ °खुन्न । १५. क ङ कुट्टिणी । १६ ख ग मे विलु° नही ।

कहिँ पि संचरंतहत्थियारफारनट्ठवंठ[१७]-तिक्खनक्खखुण्णखोणि[१८]-कौंतकोडि-घट्टणेण[१९] दोमियंगहत्थिणीपमुक्कचिक्कराडि-[२०]चंचलुच्चलंततट्टगुंठि[२१] पट्टिवाहरं[२२] अलंभिरी विसट्टवत्थवल्लियानरिंदसंदणोए[२३] उट्ठिउं न पारए तरट्टि खोट्टिया[२३]।

किं च[२४]—तओ पेल्लियं झत्ति जाणेण जाणं गइंदेण[२५] अण्णं[२६] गइंदं सदाणं[२७]।
तुरंगेण[२८] मग्गम्मि तुंगं तुरंगं भुयंगं भुयंगेण वेसासु रंगं।
पई पत्तिणा संदणो संदणेणं पिएणं पिया जंपिया कंदणेणं।
वियाणं वियाणेण छत्तेण छत्तं अथामं[२९] बलिट्ठेण पत्तेण पत्तं।
पलायंतसंतेण[३०] दंडेण दंडं धएणं धयग्गं कयं खंड-खंडं।

घत्ता—सहुँ[३१] राएँ तट्ठउ दिसिहिँ पणट्ठउ सबलु ससाहणु नयरजणु।
पर एक्कु जि थक्कउ मिल्लिवि[३२] हक्कउ जंबुसामि अक्खुहियमणु ॥२१॥

[२२]

तो नवर नाएण मिल्लियनिनाएण।
पडिभग्गरुक्खेण जणदिण्णदुक्खेण।

भी झुठला दिया। कहीं बड़े-बड़े हथियारोंका संचरण देख धूर्त्त नष्ट हुआ, और तीक्ष्ण खुरोंसे पृथ्वी खुदी। कहीं भालेकी नोकके आघातसे पीड़ितदेह हथिनीकी चीत्कारसे त्रस्त होकर चंचलतापूर्वक जाती हुई, व (धूर्त्तके) प्रत्युत्तरको न पा सकनेवाली प्रगल्भ दासी जिसके वस्त्र (भाग-दौड़में) फट गये थे, धक्का दिये जानेसे (गिरकर) राजमार्गसे उठनेमें भी समर्थ न हो सकी।

और भी—तब झट-पट यानसे यान भिड़ गया, व हाथीसे दूसरा मदमत्त हाथी। मार्गमें तुरंगसे ऊँचा (बलिष्ठ) तुरंग, वेश्याओंमें आसक्त जारसे जार, सेवकसे स्वामी, रथसे रथ और भयपूर्वक क्रंदन करती हुई प्रिया अपने प्रियतमसे भिड़ गयी। वितानसे वितान, छत्रसे छत्र, बलवान्से दुर्बल, व पदातिसे पदाति भिड़ गये; तथा भागते हुओंके दंडसे दंड, और ध्वजसे ध्वजाग्र खंड-खंड कर दिये गये। राजा समेत पौरजन सारे साधनों व सैन्य सहित त्रस्त होकर दिशाओंमें भाग गये। परंतु एक अकेला जंबूस्वामी हाँका मारकर (अर्थात् उस दुष्ट हाथीको आह्वान करके) अक्षुब्ध (शांत) भावसे वहाँ खड़ा रहा ॥२१॥

[२२]

तब वृक्षोंको तोड़नेवाले, लोगोंको दुःख देनेवाले, जलको कीचड़ कर देनेवाले, वीरोंको

---

१७ प्रतियोंमें 'णट्ठ°'। १८. ख ग खोणिम। १९. क ङ दोमिअग°। २० क ङ °च्चलत, घ °ल्ललत। २१ क ङ °गुट्ठ, घ °गुठ। २२. क ङ यट्ठिया°, ख ग पट्टिथा°, घ पट्ठिया°। २३ क ङ उट्ठिऊण पारपत्तरट्टिखोट्टिया, ख ग उट्ठिपुण्ण पारए°। २४ क ङ क्वचित्। २५ ख ग गयदेण। २६ घ अन्न। २७ क ङ गइदरसदाण, ख ग गयद स°। २८ ख ग °गाण। २९ क °स। ३० क घ ङ °संतेहिं। ३१. ख ग सहु। ३२ ख ग मेल्लिय, घ मिल्लिय।

कड्ढियनीरेण[1] कियदूरवीरेण ।
संगामडमरेण गुंजंतभमरेण ।
दाणंवुसंगेण चूरियभुयंगेण[2] ।
दुव्वारवारस्स जंवूकुमारस्स ।
थिरथोरकरघाउ पुणु मुक्कु[3] सकसाउ ।
तं नियवि तेणावि जिणवइसुएणावि ।
विक्कमविसुद्धेण रणरंगलुद्धेण ।
करिवरहु[4] रुट्ठेण[5] डसियाहरोट्ठेण ।
आरत्तनेत्तेण भूभंगवत्तेण ।
सलवट्टिभालेण नं पलयकालेण ।
तिणसमु गणंतेण वंधं जणंतेण ।
करु[6] धरिउ परिकलिवि हत्थेण आवलिवि ।
आयड्ढिओ[7] जं जि ओसरइ[8] करि तं जि ।
निक्किवल्लकयगत्तु सक्कइ न तिलमेत्तु[9] ।
कुंचइय[10]-धुयकंधु[11] विहडियसिरावंधु ।
कड्डरडियरववयणु निड्डरियनियनयणु ।
मयमुक्कगंडयलु [12]पसरंतभयविंयलु[13] ।
अप्पाणु घल्लंतु[14] चिक्कार मेल्लंतु[15] ।
घुलघुलइ रसमसइ[16] अवतसइ[17] कसमसइ[18] ।

दूर हटा देनेवाले, संग्राममें भयंकर, मदजलसे युक्त होनेसे भ्रमरोसे गुंजायमान, तथा भुजंग (शेषनाग ?) को भी चूर-चूर कर देनेवाले उस हाथीने बड़ा भारी निनाद छोड़कर, जिसका वार (प्रहार) अत्यन्त दुर्निवार था, ऐसे जंवूस्वामीपर अपने बलिष्ठ सूंडसे कषाय सहित अर्थात् क्रोधपूर्वक, आघात किया। यह देखकर उस जिनमतीके पुत्रने भी, जो विशुद्ध विक्रमी एवं रण-रंगका लोभी था, उस हाथीसे रुष्ट होकर, अधरोष्ठ काटकर, आरक्त नेत्र करके, भौंहे टेढ़ी करके, मस्तकपर सलवटें डालकर, प्रलयकालके समान बनकर उसे तृणके समान मानते हुए, नियंत्रण करनेके प्रयासमें हाथोंसे ही चारों ओरसे लपेटकर उसके सूंड़को पकड़ लिया, व जैसे ही खींचा, तो हाथी पीछे हटने लगा। परंतु उसका सारा शरीर निष्क्रिय हो चुका था, और वह तिलभर भी चल नहीं सका। उसका काँपता हुआ कंधा कुंचित हो गया, व शिरावंध विघटित हो गया (अर्थात् शरीरकी नस-नस टूटने लगी)। मुखसे उसने बड़ा करुण निनाद किया; उसके नेत्र डरे-डरे हो गये; व गंडस्थल मदमुक्त हो गया, बढ़ते हुए भयसे वह अत्यन्त विकल हो गया। वह अपने शरीरको गिराता हुआ-सा चीत्कार छोड़ने लगा, गलगलाने लगा,

---

[२२] १. घ कड्ढिय°। २ क ङ °भुअंगेण। ३. ख ग वेमुक्क, घ पम्मुक्क। ४ ख ग °वरह; घ °वरहं। ५ ख ग रुद्धेण। ६. क ङ करि। ७. ग °ढ्ढिउ। ८. क ङ °रिउ। ९ क ङ °मत्तु, घ °मित्तु। १०. क ख ग ङ °कंचुइय°। ११ क ङ °धुअकंधु। १२. घ °पसरतु। १३. क ङ °विहलु। १४. ख ग °मे। १५ ख ग घ°। १६ क °सइं। १७ घ °भसइ।

नीससइ गडयडइ महिवट्टि किर पडइ।
संतेण[18] ता मुक्कु वसि होवि[19] पुणु थक्कु[19]।
जो नट्ठु सनरिंदु पडिमिलिउ जणविंदु।

घत्ता—वण्णइ[20] मगहाहिउ पइँ करि साहिउ अण्णहो[21] छज्जइ एउ कसु।
जणणिए[22] उप्पण्णउ[23] तुहुँ पर-धण्णउ[23] असरिसु[24] जसु जसु वीररसु॥२२॥

इय जंबूसामिचरिए सिंगारवीरे महाकव्वे महाकइदेवयत्तसुयवीरविरइए जंबूसामिउप्पत्ती-कुमारविजउ[25] नाम[26] चउत्थो संधी समत्तो[26] ॥ संधि—४ ॥

रसमसाने लगा, पीछेको चलने लगा, कसमसाने लगा, नि:श्वास छोड़ने व गडगड़ाने लगा, और पृथ्वीतलपर गिर पड़ा। तब जंबूस्वामीने भी शांत होकर उसे छोड़ दिया। फिर वह हाथी वशवर्ती होकर खड़ा हो गया। उधर राजा सहित जो जनसमूह भाग गया था, वह वापिस एकत्र हो गया। (तब) मगधराज जंबूस्वामीकी इसप्रकार स्तुति करने लगे—तूने जो हाथीको वशमें कर लिया, वह अन्य किसको शोभा देता है, अर्थात् अन्य कौन कर सकता है? माँसे उत्पन्न तू ही एक परम-धन्य है, जिसका वीर-रसात्मक यश (अर्थात् वीरताका यश) (लोकमें) सर्वथा असदृश (अद्वितीय) है ॥२२॥

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित, जंबूस्वामीचरित्र नामक इस शृंगार-वीररसात्मक महाकाव्यमें जंबूस्वामी-उत्पत्ति तथा कुमारकी (हस्ति) विजय नामक यह चतुर्थ संधि समाप्त ॥४॥

---

१८ ख ग नचेण। १९ ख ग पुण एक्कु, घ पुणु टक्कु। २० क ह °इ, घ वन्नइ। २१ क ह °हे, ग अन्नहो। २२. क ह °णिय, ख °णिउ। २३. क घ ह °उ। २४ क ह °रिस। २५ क ह कुमार°। २६ क ह चउत्थी इमा संधी, घ चउत्था इमा संधी।

संधि—५

[१]

संते सयंभुएवे एक्को य कइत्ति[1] त्रिण्णि[2] पुणु भणिया।
जायम्मि पुप्फयंते तिण्णि तहा देवयत्तम्मि ॥१॥
दिवसेहिं इह[3] कवित्तं निलए निलयम्मि दूरमावण्णं[4]।
संपइ पुणो नियत्तं जाए कइवल्लहे वीरे ॥२॥
चालु करिणिगमु खंचवि[5] रयणहिं[6] अंचवि[7] अद्धासणे वइसारिउ[8]।
नयरुच्छाहरमाउले पुणु नियराउले[9] नरनाहें पइसारिउ[10]।

वत्थु—ताम राएं दिण्णु[11] अत्थाणु
सिंहासणु[12] विहि मि ठिउ एक्कु पासि कामिणिजणावलि[13]।
पज्जलियमणिमउडसिर[14] पुणु निविट्ठ मंडलियमंडलि।
पुणु सामंत महंत थिय सेणिउ[15] इयराउत्त[16]।
भडथड थक्क विणोयकर नरनाणाविहधुत्त ॥

केरिसं तं राइणो अत्थाणं[17]—जं तं कसवट्टयनिव्वडियकणयघडिय-माणिक्कजडियदंडियाचउक्कविणिवद्ध[18]रयणविणिम्मिय-[19]वियाणतलि[20] [21]संनिवेसियसोहमाणसिंहासणं।

---

[१]

स्वयंभूदेवके होनेपर एक ही कवि था, पुष्पदंतके होनेपर दो हो गये और देवदत्तके होनेपर तीन। यहाँ बहुत दिनोंसे यह काव्य घर-घरमें-से दूर चला गया था, अब कविवल्लभ वीरके होनेपर पुनः लौट आया।

राजाने अपनी नूतन (तरुण) हस्तिनीकी चालको रोककर, रत्नोंसे अर्चा करके बालक जंबूस्वामीको अर्द्धासनपर वैठाया, और फिर (नागरिकोंके) उत्साहरूपी लक्ष्मीसे आकुल अर्थात् उत्साहसे परिपूर्ण नगरमे, तदनंतर अपने राजकुल (राजप्रासाद) में प्रवेश कराया। तब राजाने सभा लगायी और वे दोनों सिंहासनपर वैठे। एक पार्श्वमें कामिनियोंकी पंक्ति खडी हुई, फिर रत्नोंकी दीप्तिसे प्रज्वलित मणिमुकुटोंको सिरपर धारण करनेवाले मांडलीकोंकी मंडली वैठी, और फिर बड़े-बड़े सामंत व अमात्य वैठे, तथा फिर अन्य श्रेणियो (व्यापारी, स्वर्णकार, चित्रकार आदि लोगोके संघ) के मुखिया वैठे, फिर भटोके समूह और फिर मनोविनोद करनेवाले लोग तथा अंतमे नाना प्रकारके चतुर लोग वैठे।

राजाका वह सभामडप कैसा था? वहाँ कसौटीपर कसे हुए खरे सोनेसे गढे हुए, माणिक्योसे जडे हुए एवं चार दंडिकाओसे युक्त रत्नमयो वितानके नीचे रखा हुआ सिंहासन

---

[१] १ क ड कई य। २ ख ग घ विन्नि। ३ क ड इय। ४ क ड °वण्ण, ख ग °पन्न। ५ क घ ङ खचिवि। ६. क ङ °णिहिं। ७ क घ ङ अचिवि। ८ ख ग घ °सारियउ। ९ क ड णिउ-रावलि। १०. ख ग पयसारियउ, घ °सारियउ। ११. घ दिन्नु। १२ क घ मिंघा°। १३ क घ ङ °उलि। १४. क °घर। १५ घ °उ। १६. क ङ °रावत्त। १७. ङ °णो। १८ ग °विणिवद्धु। १९. ख ग °वियणि°। २०. ख ग घ °तल। २१. क ख ग ङ सण्णि°।

जं तं सिंहासणपरिसंठियमहारायाहिरायपायत्थवण[22]-फलिहफलएण चलचमरधारिविलासिणीमुहकंतिजित्त-[23]दासत्तणपत्तनक्खत्तसामिणा इव [24]पडिछित्तनरिंदकमकमलं। जं तं नरिंदकमकमलपणमणमिलंत-[25]भूवालमउलिमाणिक्कसंकंत[26]-नहनिउरुंबपडिबिंबछलेण तिव्वपयावमसंहंतेहिं[27] रायाणएहिं मुत्तियसयमिव[28]-पयडुत्तमंगि[29] बुज्झंतरायसासणं[30]। जं तं [31]रायसासणसमीहमाणसयलदेसभासासंवलियसत्थत्थविचित्तकणकणंत[32]-कंकणदाहिणकराहिट्ठियकणयदंडपुरट्ठिय[33]-महापाडिहारं[34]। जं तं [35]पडिहारय नामं[35]-पत्थावाणंतर-[36]समोसारणाउलसुपसत्थहत्थट्ठियपरिभमिर[37]-दंडप्पयंड[38]-सद्दासंकियतरलतरचलंतदिट्ठि[39]-सत्थाणमुवविसंत[40]-सामंतचक्कं। जं तं सामंतचक्कसेणावइपाइक्कपमुहपरिग्गहवसीकियमंडलवइसंपेसियदूरमंडलागयरायवारिएहिं ढोइज्जमाणपाहुडगलंतमुत्ताहलकरंबियभूमिभायं। जं तं भूमिभायसम्मज्जणकुंकुमकप्पूरकत्थूरियामोयविक्खिरियकुसुममयरंदमत्तगुमुगुमिय[41]-भमरझंकारसद्दाणुकारियवीणाविलासं। जं तं [42]वीणाविलास-गिज्जंतगेय-

शोभायमान था। और वह सिंहासन उसके ऊपर बैठे हुए महाराजाधिराजके पैर रखनेके स्फटिकमय फलक (पादपीठ) में चंचल चमरोको धारण करनेवाली विलासिनियोकी मुखकांतिसे विजित होकर मानो दासभावको प्राप्त हुए नक्षत्रोके स्वामी (चंद्रमा)के समान नरेंद्रके चरणकमलोके प्रतिबिंबसे युक्त था। और वह सभामंडप नरेंद्रके चरणकमलोको प्रणाम करनेके लिए एकत्र हुए भूपालोके मुकुटमणियोसे सक्रांत होते हुए नखसमूहके प्रतिबिंबोके छलसे, उसके तीव्रप्रतापको सहन न करनेवाले राजाओके उत्तमाग (मस्तक) पर सैकड़ो मौक्तिकोके समान प्रगट होकर मानो राजाके शासनको भलीभाँति समझा रहा था। और वह सभामडप राजाज्ञाकी प्रतीक्षा करनेवाले, सकलदेश भाषाओसे युक्त शास्त्रार्थके समान विचित्र कणकणध्वनि करते हुए ककणको धारण किये हुए, दाहिने हाथमे स्वर्णदडको लिये हुए द्वारपर अधिष्ठित महा-प्रतिहारसे युक्त था। और वह सभामडप उस महाप्रतिहारके द्वारा नाम-प्रस्ताव (अभ्यागत परिचय) के अनतर राजाके सामने एकत्र हुए सभासदोको दूर करनेके लिए आकुल उसके प्रशस्त हाथोमें स्थित, घूमते हुए प्रचंड दंडके शब्दसे आशंकित, चंचलतर घूमती हुई दृष्टियोवाले, व अपने-अपने स्थानोपर बैठते हुए सामंतवृंदसे युक्त था। और वह सभामडप सामंतचक्र, सेनापति, पदाति प्रमुख साधन संपत्तिसे वशीकृत मंडलपतियो द्वारा प्रेषित दूरमंडलोसे आनेवाले राजकीय नाइयों द्वारा उपस्थित किये जाते हुए भेटोसे गिरते हुए मुक्ताफलों व मणिरत्नोसे व्याप्त भूमिभागवाला हो रहा था। और वह सभामडप उस भूमिभागके संमार्जनसे कुकुम, कपूर व कस्तूरीकी आमोदसे व कुसुमोकी विकीर्ण मकरंदसे आकृष्ट हुए गुम-गुम् गुंजार करते हुए मत्त भौरोके झकार शब्दका अनुकरण करनेवाले वीणाविलाससे युक्त था। और वह सभामंडप वीणाविलास-

२२. क घ ङ °पायट्ठवण°। २३ क ङ दोसत्तण, घ दामित्तण°। २४. ख ग पडिछिंद°। २५ क ङ
२२. क घ ङ °पायट्ठवण°। २३ क ङ दोसत्तण, घ दामित्तण°। २४. ख ग पडिछिंद°। २५ क ङ मुत्तिमय°; ख मुत्तियमय°।
भूपाल°। २६ ख ग °सक्कत। २७ क ङ °समहंतेहिं। २८ क घ ङ मुत्तिमय°; ख मुत्तियमय°।
२९. क घ ङ °मग। ३० घ दुक्कतराया°। ३१. क घ ङ मे 'राय' पद नही। ३२. घ °कणयकणंत।
३३ क ङ °पुरिट्ठिय। ३४ ख ग घ °पडिहार। ३५ क ख घ ङ °पणाम। ३६ ख ग °मारणाउल°, घ
°मरणाउल°। ३७ घ °परिभमिय। ३८ क ङ दडपयड; ख ग दडमप्पयंड। ३९ क ङ °चलंतदिट्ठि।
४०. ख ग °मुवविपण्ण। ४१ ख गुमगुमिय। ४२ घ °विलासं।

वज्जंतवज्जसमवायरइयपेक्खणय-नच्चिरविलासिणीसच्चविय-[४३]महकइनिवद्धनाडयर-संतं। जं तं रसंतकामिणीचरणनेउरेहिं पढमाणमंगलपाढएहिं महुरक्खरं गायंत-गायणेहिं[४४]नियवावसर-अणवरयपविसंत[४५]-जोक्कारमुहरजोहेहि[४६]-सुहपुण्ण[४७]-कण्णजणनिवहं ।

घत्ता—पुहईसरु कणयच्छवि सुहिपंकयरवि जंबुकुमाराहिट्ठिउ[४८]।
अच्छइ विविहविणोयहिं पयडियभोयहिं जावत्थाणे परिट्ठिउ ॥१॥

[२]

वस्तु—ताम[१] चउदिसु कयसमुज्जोउ
कणकणिर[२]किंकिणिमुहलु निवसमीवलोएहिं दीसइ।
अवरुप्परु विभियमणहिं अवयरंतु गयणाउ दीसइ।
धुव्विर[३]धयमालाललिउ मारुयवेयवहुत्तु।
दिव्वविमाणु सलक्खणउ[४] रायत्थाणे[५] पहुत्तु ॥१॥

तहिं फुरियाहरणविराइयउ विज्जाहरु एक्कु पराइयउ।
जयकारिवि नरवइ नविवि सिरु बोल्लणहं[६] लग्गु पुणु[७] होवि[८] थिरु।
इह अत्थि खेयरालंकियउ गिरिसहससिंगु नामंकियउ।

सहित गाये जाते हुए गीतो, बजते हुए बाजोके समुदायसे रचित प्रेक्षणक (दृश्य नाटक व नृत्य आदि) में नाचती हुई विलासिनीके-द्वारा दिखाये जाते हुए महाकवि-निबद्ध (रचित) नाटकके कोलाहलसे पूर्ण था। और वह सभामडप गानेवाली कामिनियोके झुनझुनाते हुए चरणनूपुरो से, पाठ करते हुए मंगलपाठकोसे, मधुराक्षरोसे गाये जाते हुए गायनोसे, एवं अपने-अपने अवसरपर प्रवेश करते समय जय-जयकार करनेमे मुखर योद्धाओके स्वरसे सुखसे पूर्ण हो गये हैं (भर गये है) कान जिनके, ऐसे जन-समूहसे युक्त था। इसप्रकार जब वह राजा सुवर्णके समान वर्णवाले एवं सुहृज्जन रूपी पंकजोके लिए सूर्यके समान जवूकुमारके साथ विविध प्रकारके विनोद व प्रदर्शन किये जाते हुए गंध, वर्ण व शब्दादि विषयोके साथ सभामंडपमे बैठा था—॥१॥

[२]

—तभी राजाके पासके लोगो-द्वारा अतिविस्मित मनसे, एक दूसरेको आकाशसे उतरता हुआ एक दिव्य विमान दिखाया गया जो चारो दिशाओको प्रकाशित कर रहा था, कण-कण करती हुई किंकिणियोसे मुखर था; एवं फहराती हुई ध्वजमालाओसे सुदर, मारुतसे भी अधिक वेगवाला तथा लक्षणोसे युक्त था। ऐसा वह विमान (शीघ्र ही) राजसभामे प्राप्त हुआ। उसमे-से कातिमान आभरणोसे सुशोभित एक विद्याधर निकला। जय-जयकार करके, नृपतिको शिर नवाकर स्थिर होकर वह बोलने लगा—यही (इसी भरतक्षेत्रमे) खेचरोसे अलंकृत सहस्रशृंग नामका एक पर्वत है। मै गगनगति नामका विद्याधर वहाँ प्रीतिपूर्वक रहता

---

४३ क ड महाकइ°। ४४ ख ग °णेहि। ४५. ख ग °यणवरपयविसत। ४६. क °सुहरजो°। ४७ घ °सुहपुन्न°। ४८. क °हिट्ठिउं।

[२] १ क ड ताव। २ क ड कणकणिण°। ३ क धु°, ख ग घुव्विर°। ४ क घ °णउ। ५ °रथाणु। ६ क ड वोल°। ७ घ मुणु। ८ क ड होइ।

हउं वसमि तित्थु संजायरइ विज्जाहरु नामें गयणगइ।
अज्जेणप्[९] दिणि जं लक्खियउ आलोइणिविज्जप्[१०] अक्खियउ[११]।
तं कहमि देव कारणसहिउ[१२] उत्तालु जइ वि किर पंथि थिउ।
दाहिणपहे नयणाणंदयरि मलयाचलम्मि केरलनयरि।
तहिं निवइ मियंकु नएण सहुं मालइलय[१३] परिणिय बहिणि[१४] महुं[१५]।
तहि[१६] नंदणि जाय विलासवइ[१७] सिंगारु अणंगु जाहे[१८] थवइ।
सिक्खियगइसहयरु हंसगणु विहवहो कारणु परिवारजणु।
अंगच्छवि जाहे[१९] पसाहणउ[२०] भोयायरु[२१] घुसिणविलेवणउ[२२]।
अलयावलि भालुम्मीलणउ[२३] नीलुप्पलमंडणु कीलणउ[२४]।
न मुणइ[२५] रत्ताहररंगगुणु[२६] जा छोल्लइ सुद्ध वि दंत पुणु।
कण्णंतपत्तनयण[२७] जि धवला सिरभारु[२८] पुप्फमाला[२९] विमला।
बोल्लंतिहिं कोमल जाहि गिरा[३०] वीणावायणउ[३१] विणोयपरा[३२]।
वयणुल्लउ निरुवमु[३३] मणहरउ ससिहरु[३४] तहे[३५] निवडणखप्परउ[३६]।

हूँ। आजके दिन जो मेरे लक्ष्यमे आया, तथा आलोकिनी विद्यासे मुझे जो कुछ ज्ञात हुआ, उसको, यद्यपि मै बहुत उतावला हूँ, और बीच यात्रामे ही खड़ा हूं, (तथापि) कारण सहित कहता हूँ। दक्षिणापथमे मलयाचलमे नेत्रोके लिए आनंदप्रद केरलपुरी नामकी नगरी है। वहाँ मृगाक नामका राजा न्यायपूर्वक रहता है। उसने मेरी मालतीलता नामक बहनसे परिणय किया। उसको विलासमती नामकी पुत्री हुई, जिसके शृंगारका कारीगर स्वय अनंग ही है। उसका सहचारी हंससमूह (उसका अनुकरण करनेके कारण) गमन क्रियामे कुशल हो गया है, और परिवार-जन अर्थात् सेवकोके लिए वह वैभवका कारण है, तथा जिसकी शारीरिक काति स्वयं ऐसी है कि चंदनविलेपनादि प्रसाधनोका प्रयोग केवल उन प्रसाधनोका आदर करनेके लिए ही किया जाता है (उसके शारीरिक सौदर्यकी वृद्धिके लिए नही)। उसके भालपर खुली हुई अलकावली ऐसी लगती है, मानो नीलकमलरचित अलकार वहाँ क्रीडा करने आया हो, और जो अपने रक्तिम अधरोके गहरे रंगके प्रतिबिंबको न समझ सकनेके कारण अपने स्वच्छ दांतोको बार-बार छीलती है। उसके नेत्र कानोके सिरे तक पहुँचे हुए हैं, तथा धवल पुष्पमाला (टि० मुकुट) उसके शिरपर भार मात्र है। बोलते समय उसकी कोमल वाणी वीणावादनको भी उत्कृष्टतासे मात करनेवाली है। उसका मुख ऐसा निरुपम व मनोहारी है कि चद्रमा उसके समक्ष श्मशानपर पड़ी हुई उल्टी खोपडी अथवा उल्टे ठीकरेके समान प्रतीत होता

९ क ड °णइ। १०. ख घ ङ आलोयणि°; क ङ °विज्जइं। ११ क °यउ। १२ घ °गहिउ। १३ क ङ माळय°, घ मालयलइ। १४ ख ग °ण। १५. क ख ग महु। १६. क ग घ ङ तहिं। १७ क ङ °मइं। १८. क घ जाहिं, ङ जाहि। १९ घ जाहि। २०. घ °णउ। २१. ख ग °रु। २२ क घ ङ °वणउ। २३ प्रतियोमे '°णउ'। २४ घ ङ °णउ। २५. क ङ °इ। २६. क ङ °गणु। २७ ख ग [illegible]°; घ कन्नत°। २८ क ङ भार। २९ ख ग घ मुड°। ३० क ङ मगा। ३१ क घ ङ °णउ। ३२. ख ग घ विणोउ परा। ३३ ख ग घ °वम। ३४ क घ ङ °पर, ख °हुर। ३५ क ङ नरो, घ नहि। ३६ क विवडण°, घ ङ णिवडण°।

घत्ता—महरिसिनाणुवएसें कयआएसें तेण मियंकें देव्वउ[37]।
तं[38]पयपरिपालियधर नरपरमेसर कण्णरयणु[39] परिणेव्वउ ॥२॥

[३]

वस्तु—असमसाहसु[1] हंस दीवम्मि
विज्जाहरु रयणसिहु करइ रज्जु संगरि अचप्पिउ[2]।
करितुरंग[3]-रह-सुहड-थड[4] अप्पमाणबलविसमदप्पउ।
सामभेयउवयाणेयहिं मग्गिय तेण कुमरि।
पुणु पारंभिय[5] दंडकिय जाइ[6] पयट्टइँ मारि ॥१॥ ५

मग्गंतहो कण्ण[7] न दिण्ण[7] जाम केरलपुरि वेढिय तेण ताम।
चउपासिउ पसरिउ बलु रउद्दु मज्जायमुक्कु[8] नावइ समुद्दु।
जिणभवण-सवणं[9]-संघट्टणाइँ[10] लोट्टियइँ[11] मियंकहो पट्टणाइँ।
नीसेसइँ[11] देसइँ नासियाइँ बहुधणइँ जणइँ[12] निव्वासियाइँ[13]।
सुहधामइँ गामइँ लूडियाइँ[14] आरामइँ रामइँ[15] सूडियाइँ। १०
संपण्णइँ धण्णइँ भारियाइँ रसवंतइँ[16] छेत्तइँ[17] चारियाइँ[18]।
असरालइँ[19] वाडइँ[20] खुण्णियाइँ[21] कयनीडइँ[22] वीडइँ[22] वुण्णियाइँ[23]।
तरुतीरइँ[22] नीरइँ[22] फोडियाइँ भडथट्टइँ[22] कोट्टइँ[22] मोडियाइँ।

है। तो, हे प्रजापालक-धराके समान धीर नरेश्वर! महर्षिके ज्ञानोपदेश व आदेशानुसार मृगांकके द्वारा वह कन्या-रत्न आपको परिणयके लिए दिया जाना है ॥ २ ॥

[३]

हंसद्वीपमें अतुल्य साहसवाला, व संग्राममें अपराजेय, रत्नशेखर नामका खेचर राज्य करता है। वह अपने हाथी, घोड़े, रथ, और सुभटसमूहके अप्रमाण बलका अत्यंत अभिमानी है। उसने साम, भेद व दामसे उस कुमारीको मांगा, और तत्पश्चात् दंडक्रिया (युद्ध) प्रारंभ कर दी, जिससे मृत्यु ही प्रवृत्त होती है। जब मांगनेपर भी उसे कन्या नही दी गयी तो उसने केरलपुरीको घेर लिया। चारो पार्श्वोंमे रौद्र सेना इसप्रकार फैल गयी मानो समुद्र मर्यादा मुक्त हो गया हो। मृगांकके जिनमंदिरो व श्रमणोके संघट्टन अर्थात् बाहुल्यसे युक्त नगर लूट लिये गये, समस्त प्रदेश बरबाद कर दिये गये, एवं बहुत धनवान लोगोंको निर्वासित कर दिया गया। सुखके धाम गाँव भी लूट लिये गये, रमणीक आरामोंका विनाश कर दिया गया, पके हुए धान्यको भरकर ले जाया गया, एवं हरे-भरे खेतोको चरा दिया। अधिकाश बाड़ो (सीमाबंधों) को खोद डाला गया, तथा विस्तीर्ण घोंसलोंमे रहनेवाले पक्षियोंको भी भयभीत कर दिया गया। वृक्षस्थित तटोवाले जलाशयोको फोड़ डाला गया, एवं अनेक भटसमूहोसे

३७. घ देव्वउ। ३८ क ख ङ पइं पालियधर। ३९. घ कन्न°।

[३] १. घ अह सुसाहसु। २. क ङ अवप्पिउं, ग अव°। ३ ख ग घ °तुरय। ४ क ङ भड। ५. घ आर°। ६. ख ग जाइ, घ जाइ। ७. ख °ड्ढइ, घ °ट्टइं। ८. घ °स। ९. घ °मुक्क। १० क रावण, ख ग घ रवण। ११ क °इ। १२ ख ग °जणइ वं°, घ °घणइ जणइ। १३. घ निन्नासियाइं। १४. ख ग लूटि°। १५ क ङ सीमइ। १६. क ख ग ङ °तइ। १७ घ रवे°। १८ ङ °याइ। १९ क ख ग ङ °लइ। २०. क घ ङ मालइ। २१. घ खुन्नि°। २२ ख ग °इ। २३ क ख ङ चुण्णि°, घ चुन्नि°।

घत्ता—कल्लइँ[२२] रह-गयवाहणु परिमिय-साहणु रणे मियंकु झिज्झेसइ[२३]।
खत्तियकुलकमनिम्मलु [२४]परिरक्खियछलु वयणीयहे[२६] जुज्झेसइ[२७] ॥३॥

[४]

वस्तु—जइ वि[१] परबलु पलयजमसरिसु
अप्पमाणु साहणु जइ वि[१] जइ वि[१] सव्वु संगरे मरिजज।
धीरत्तणु परिचयवि[२] लोयनिंदु किम कज्जु किज्जइ।
परिथोडए[३] अप्पए[४] बहुए[५] गोहत्तणु सव्वासु[५]।
अरिसंकडे मणुसइय जसु [६]बलि किज्जउ हउँ[७] तासु[७] ॥१॥

इय विज्जावयणहिं[८] सल्लियउ हउँ तेत्थु[९] झत्ति[१०] संचल्लियउ[११]।
गयणंगणे जंतहो जणघणउँ[१२] अत्थाणु नियच्छेवि तउ तणउँ।
हुउ[१३] वइयरसुमरणु[१४] चित्ते महु[१५] पासंगिउ अक्खिउ देव लहु[१६]।
सविसेसु कहंतहो समउ न वि लइ जामि [१७]सत्तुधरे होमि पवि।
इय भणिवि विमाणुच्चालियउ तं जंबुकुमारे वालियउ[१८]।
थिरु[१९] थाहि मित्त सामंतसहुँ साहेज्जउ चिंतइ जाम पहु।
तो वलि विहसंतु खयरु भणइ[२०] चंदहो करफंसणु को कुणइ[२१]।

युक्त दुर्गोको ध्वंस कर दिया गया। अत. कलके दिन रथ, हाथी, व अन्य वाहन आदि परिमित साधनवाला मृगाक राजा अपनी निर्मल क्षत्रियकुल-परंपरा व पौरुषका लोकनिंदासे रक्षण करनेके लिए रणमे जूझेगा और क्षयको प्राप्त होगा ॥ ३ ॥

[४]

'यद्यपि शत्रुबल प्रलय करनेवाले यमराजके समान है, यद्यपि वह अप्रमाण साधनवाला है, और यद्यपि सबको संग्राममें मर जाना है, फिर भी धीरताको छोड़कर लोकनिंद्य कार्य कैसे किया जाये? सुभटत्त्व और अग्नि अपने आपमे थोड़े होते हुए भी बहुत हैं। शत्रुसंकटमे भी जिसका मानुष्य (पौरुष) स्थिर रहे, मैं उसकी वलि जाती हूँ', (आलोकिनी) विद्याके इन वचनोसे विंधकर मै झटपट वहाँसे चल पड़ा। गगनागनमे जाते हुए घने लोगोसे युक्त तुम्हारी सभाको देखकर मेरे मनमे इस वृत्तांतका स्मरण आ गया और प्रासंगिक वातोको सक्षेपमें मैंने देवको (आपको) निवेदन कर दिया। विस्तारसे कहनेका समय नही है। मै जाता हूँ, और शत्रुरूपी पर्वतके विनाशके लिए वज्र बनूंगा। ऐसा कहकर जब उसने विमानको ऊपर उठाया तो जवूकुमारने उसे (यह कहते हुए) वापिस लौटाया कि मित्र जरा ठहरो, जब तक राजा अपने सामंतोके साथ करणीय साहाय्यका विचार कर ले। इसपर हँसता हुआ खेचर

---

२४. ख ग जुज्झे, घ कुज्झें, ड झुज्झें। २५. क ड पडि°। २६ क ड वह्णिीयउ, ख ग °वहो। २७. ख ग झुज्झें।

[४] १ ख ग जय वि। २. घ °चयवि। ३ क घ ड °ड, ख ग परथोडए। ४ क घ ड °ए। ५ घ सव्वस्स। ६. क घ ड हउं वलि किज्जउ। ७. क ग ड ख ताम्पु, घ तस्स। ८ क ख ग ड °विहि°। ९. ख ग घ तित्थु। १० क मत्ति। ११ क °यउ। १२ घ घण°। १३ क ड हुय। १४ क ड वइयर°। १५. क ड महो, ख ग महुँ। १६ क ड लहो, ख ग लहुँ। १७ क ड °घरि, घ °गिरि। १८. क ख ग ड °लि°। १९. ख ग थिर। २० क °इ, घ तणइ। २१ क घ °इ, ख ग कुणइ।

फुडु[22] लोयाहाणउं इयगिरए जोयणसयविज्जु[23] सप्पु सिरए।
सो थाउ[24] जेत्थु थिउ वइरिगढु इह[25] ठायहो[26] जोयणसउदिवड्ढु[27]।
भूगोयर तुम्हइँ किर भणउ[28] अज्जु जि जाएव्वउ कहिँ[29] तणउँ।
पडिभणइ[30] कुमारु म किं पि भणु तुहुँ नेहि तेत्थु मइँ[31] एक्कु जणु।
समरंगणु जेम समाणियइ[32] [33]अणुबलु संपेसिउ[33] जाणियइ[34]।
ससियंकु जेम तुहुँ[35] लच्छिफलु अणुहुंजहि[36] निच्चलु निहयखलु।
सविलाससलक्खणहंसगइ परिणइ[30] नरनाहु विलासवइ[37]।
घत्ता—मणे विज्जाहरु कंपिउ पुणु वि पयंपिउ जो समाणु रिउ कालहो।
सो मइँ नीयहो एक्कहो जइ वि[1] सुसक्कहो केम सज्झु तुह बालहो ॥४॥

[५]

वत्थु—को[1] दिवायरगमणु पडिखलइ
जममहिससिंगुक्खणइ[2] कवणु गरुडमुहकुहरे पइसइ[3]।
को कूरग्गहु निग्गहइ को जलंते सव्वासे पइसइ।
को वा सेसमहाफणेहिँ[4] फणमणि[5] मंड-हरेइ।
को कप्पंतुट्ठंतु[6] जलु जलनिहि[7] भुएहिँ[8] तरेइ[9] ॥१॥

बोला—चाँदकी किरणोंको कौन छू सकता है? तुम्हारी इस बातसे यह लोकाख्यान (लोकोक्ति) ही प्रकट होता है—सौ योजनपर वैद्य और शिरपर साँप (सीसे सप्पो, विज्झे वेज्जो)। वह वहाँ स्थित है, जहाँ उस शत्रुका गढ है, और यहाँसे डेढ़सौ योजन दूर है। तुम लोग भूगोचरी हो, तुमसे क्या कहा जाये? आज ही तुम लोग कहाँ तक जा सकते हो? तब कुमार फिर बोला—यह सब कुछ मत कहो, तुम मुझ अकेले ही व्यक्तिको वहाँ ले चलो, जिससे यह युद्ध समाप्त किया जा सके, सहायक सैन्य भेजा हुआ समझा जा सके; तू उस दुष्टको मारकर मृगांक राजा सहित निश्चल रूपसे राजलक्ष्मीका भोग कर सके, और राजा श्रेणिक विलासशील, सुलक्षणा व हंसगामिनी विलासमतीका परिणय कर ले। यह सुनकर विद्याधर मनमें काँप गया—जो शत्रु यमराजके समान है, वह, मेरे द्वारा अकेले ले जाये गये तुझ बालकके द्वारा कैसे साधा जायेगा ॥ ४ ॥

[५]

सूर्यकी गतिको कौन अवरुद्ध कर सकता है? यमराजके भैंसेके सीगोंको कौन उखाड़ सकता है? गरुडके मुखकुहरमें कौन प्रवेश कर सकता है? क्रूरग्रहका कौन निग्रह कर सकता है? और जलते हुए अग्निमे कौन प्रवेश कर सकता है? शेष-महाफणि (शेष नाग) के फणपर स्थित मणिको बलात् अपहरण कौन कर सकता है और कल्पांत अर्थात् प्रलयकालके समय ऊपर उठती हुई भयंकर लहरोसे युक्त जलवाले जलनिधिको भुजाओसे कौन पार कर सकता है?

२२ ख ग फुडु। २३. क घ ङ सड°, ख ग °सय। २४ ख ग थाउं। २५ क ङ इय। २६. क ख ग ङ °थो। २७. क घ ङ °दिवड्ढ। २८ क घ ङ °उ। २९. घ कहु। ३० क घ ङ °इं। ३१ ख ग मइ। ३२. क °णियए, ङ सम्मा°। ३३ क ङ °बालु पसंसिउ। ३४ क ख ग घ °यइं। ३५. ख ग तुह। ३६ ख ग °जहि। ३७ क ङ °मई।

[५] १ क को वि। २ क व ङ °णइं। ३. ख ग पयं°। ४. क ङ सेसि°। ५ क ङ फणि°। ६ क घ ङ °ट्ठतु। ७ ख ग णिहि, घ °णिहि। ८ क व ङ भुयहिं। ९. क ग °इं।

तओ जंपियं राइणा[10] हासिरेणं समं खेयरेणं सहाभासिरेणं[11] ।
किमेएण वोल्लेण एक्को वि बालो समत्थो समत्थस्स कालस्स कालो ।
फुरंतप्पयावस्स सूरस्स सूरो इमो से विडप्पस्स कूरस्स कूरो ।
इमो सग्गथक्कस्स सक्कस्स सक्को इमो पक्खिराग्रस्स[12] चक्कस्स[13] चक्को[14] ।
इमेणं करत्ताडिओ सीसि सेसो फणामंडलाओ मणिं मुंच एसो ।
इमस्स प्पयावेण संडज्झमाणो सिही सीयलो होइ भूईनिहाणो[15] ।
विवक्खो सखग्गम्मि एयम्मि बाले[16] पवच्चेइ मिच्चुं अपूरम्मि काले[17] ।
सुणेऊण तं खेयरो रायवाणिं कुमारं समारोवए दिव्वयाणिं[18] ।
नरिंदस्स बालो पएसुं पडिण्णो[19] समासीसदाणो विमाणं चडिण्णो[19] ।
जवेणं समुड्डाइयं वोमभाए[20] खणद्धेण दिट्ठीए दिट्ठं सहाए ।

घत्ता—तक्खणे बाहुविसालें चित्तुत्ताले तं अत्थाणु विसज्जिउ ।
केरलनयरिपएसहो[21] दक्खिणदेसहो निवेण पयाणउ[22] सज्जिउ[23] ॥५॥

[६]

वस्तु—सरसनरवइ-सवलसामंत-
सेणावइ[1]-साहणिय-तंतवालदलनिविडभडथड[2] ।
आइट्ठकड्ढियधरहिँ[3] तुरिउ[4] जाउ सायग्गिवावड ।

इसपर हँसते हुए राजाने (अपनी प्रभासे) सभाको भास्वर करनेवाले उस खेचरसे कहा—यह सब बोलनेसे क्या ? यह अकेला ही बालक समर्थ यमके लिए भी यम होनेमें समर्थ है। सूर्यके लिए भी (सूर्यके तेजको अपने तेजसे पराभूत करनेवाला) सूर्य है, और आकाशमें क्रूर राहूके लिए भी क्रूर है। यह स्वर्गस्थ शक्रका भी शक्र, और पक्षिराज (गरुड़) के समूह-के लिए भी (सुदर्शन) चक्रके समान है। यह शेषके शिरपर हाथसे ताड़न करनेवाला है, और उसके फणामंडलसे मणिको छुड़ा लेनेवाला है। इसके प्रतापसे दग्ध होकर अग्नि भी शीतल होकर भस्मराशि मात्र रह जाता है, और इस बालकके खड्ग ग्रहण करनेपर शत्रु अपना समय पूरा होनेसे पहले ही मृत्युको प्राप्त होता है। राजाकी इस वाणीको सुनकर खेचर कुमारको दिव्ययानमें चढ़ाने लगा, तो बालक राजाके पैरोंमें पड़कर, राजा द्वारा आशीर्वाद देनेके साथ ही विमानमें चढ गया। क्षणार्द्धमें ही सभाके लोगोंने प्रसन्नतापूर्वक विमानको वेगसे व्योमभाग (नभोमार्ग)मे भागते हुए देखा। उसी समय विशाल भुजाओंवाले उस राजाने उतावले चित्तसे उस सभाको विसर्जित कर दिया और दक्षिण देशमें केरलनगरी प्रदेशकी ओर प्रयाण करनेकी तैयारी की ॥ ५ ॥

[६]

तब नरपति वीर भावसे सेना, सामंत सेनापतियों, निज सेनापतियों, राष्ट्रपालोंके दल, घने भटसमूह, तथा आदेश किये हुए प्रतोहारोंसे कार्य-रत हो गया। रथ जोते जाने लगे, गजों

१० ग रायणा। ११ क द महा°। १२ क ड पक्खि°। १३ क ट वक्कस्य°, घ ववक°। १४ क द वंको, घ वक्को। १५. क ड °णियाणे। १६. क ख ग ड वालो। १७. क ख ग ट कालो। १८. ख ग देवि पाणें, घ देवि पाणि। १९ व °ण्णो। २० क द °हाए। २१ क ट केरलि°, ख ग °नयर°। २२ क घ द °णउं। २३ द °उ।

[६] १ ख ग °वय। २ ख ग °णिवड°। ३. क द आइद्ध°। ४. घ तुरिय।

रह जुप्पंति गुडंति गय पल्लाणिय[5] हयथट्ट ।
करह-वलद्द-कहारियहिं संवाहिय करकट्ट ॥१॥

तो महारायदारम्मि सरलालियं[6] भरियदरिविवरतूरं[7] समुप्फालियं ।
पहय पडुपडह पडिरडियदडिडंवरं करडतडतडण-तडिवडण[8]-फुरियंवरं[9] ।
धुमुधुमुक[10]-धुमुधुमियमद्दलवरं सालकंसालसलसलिय-सुललियसरं[11] ।
डक्कडमडक[12]-डमडमियडमरुभडं घंट-जयघंट[13]-टंकाररहसियभडं ।
ढक्क[14] झं झं हुडुकावलीनाइयं[15] रुंजगुंजंत-संदिण्णसमघाइयं[15] ।
[16]थगगदुग-थगगदुग-थगगदुगे[16] सज्जियं किरिरिकिरि-तट्टकिरिकिरिरि किर[17] वज्जियं ।
[18]तखिखितखि-तक्खि-तखितत्तासुंदरं[18] तदिदिखुदि-खुंदखुद खुंद भाभासुरं ।
थिरिरि[19]-कटतट्टकट थिरिरि[19] कटनाडियं किरिरि तटखुंद[20] तटकिरिरि-तडताडियं[21] ।
पहय-समहत्थ[22]-सुपसत्थवित्थारियं मंगलं नंदिघोसं मणोहारियं ।
तूरसद्देण चलियं[23] महाकलयलं रायराएण सह चाउरंगं वलं ।

घत्ता—उट्ठियरयजललोलउ नहयलवोलउ तं[24] नरवइवलु चल्लिउ[25] ।
निवमणे रयणरमाउलु करिमयराउलु णं समुद्दु उच्छल्लिउ ॥६॥

को हौदा लगाकर सजाया जाने लगा, एवं अश्वसमूहपर पलान लगाया जाने लगा। ऊँटों, बैलों व कहारों-द्वारा ले जाने योग्य वस्तुएँ ले जायी जाने लगी। तब महाराजाके द्वारपर ललित स्वरवाला, समस्त दरि-विवर प्रदेशोंको भरनेवाला तूर बजाया गया। पटु-पटह बजाये गये, व दडिडंबर उससे प्रतिध्वनित हो उठा। करडकी तड़-तड़से आकाश विद्युत्पतनके समान हिलने लगा। श्रेष्ठ मर्दल धुम्धुमुक् धुमधुमुक् करने लगा, और विशाल कंसाल सुललित स्वरसे सल-सलाने लगा। डक्का डमडक्क, व डमरू डमडमका स्वर करने लगा और घंटों व जयघंटोंकी टंकारसे भट उत्तेजित हो उठे। ढक्का झं झं, व हुडुक्का नामक बाजोंका समूह नाद करने लगा, और आघात करनेसे रुंज नामक वाद्य गुंजन करने लगा। थगगदुग, थगगदुग आदि थग-दुग ध्वनियोंका साज सजाया गया और किरिरि-किरि-तट्टकिरि करते हुए किरिरि नामक वाद्य बजाया गया। तक्खा नामक वाद्य तखिखि-तखि-तक्खि इत्यादि ध्वनियाँ करने लगे और खुंद नामक वाद्य तदिदि खुदि खुद खुद खुंद आदि उच्च स्वर करते हुए बजे। थरिरि-कट-तट्ट-कट करते हुए थरिरि नाचने लगा, और तटखुंद नामक वाद्य किरिरि-किरिरि करते हुए ताड़न करके बजाया गया। हलके हाथोंसे सुप्रशस्त एवं मनोहारी मंगलकारक नंदिघोषका विस्तार किया गया; इस प्रकार तूरोंके शब्दसे बड़ा भारी कलकल करते हुए चतुरंग सैन्य राजाधिराजके साथ चल पड़ा। उठे हुए चंचल धूलिरूपी जलसे आकाशका उल्लंघन करता हुआ उस नरपतिका सैन्य ऐसा चल पड़ा मानो नृपके मनमे रत्नों व रमा (लक्ष्मी) से युक्त तथा हस्तिरूपी मगरोंसे आकुल समुद्र ही उछल पडा हो ॥६॥

५ क ड °णहिं। ६ ख ग °लालय। ७ क घ ङ भरियदर°। ८. क ड तडवडिण। ९. क ङ फुडि°। १० ख ग घ धुम्मु वुम्मुक्क°। ११ ख ग सल°। १२ क ख ग घ °डक। १३ ख ग °घड। १४ ख ग टक्क। १५. क ड °यय। १६ घ थगगदुगदुग्गे थगथगदुगे°। १७ ख ग घ किरि। १८. ख ग तखे खे खि तखे तखि तखे त्तामुरं त खुदे त खुदे तं खुदे खुदि भासुरं। १९ घ थरिरि। २० ख ग घ कट-खुंद। २१ घ तटता°। २२ क ङ सुम°। २३ क घ ड वलियं। २४. ख ग तें, घ तिं। २५ व चल्लियउ।

[७]

वस्तु—समयकरिघडकुंभसिंदूर[1]-
पूरेण[2] पवणाहएण रत्तकिरणु मज्झण्णे[3] भावइ।
अत्थंत[4] संझाविरहु चक्कवायमिहुणाण दावइ॥
हरिखुरखुण्ण[5] खमुग्गएण[6] धूलीरएण विहाइ[7]।
भडपहरणछिज्जंतकर रवि संकिल्लइ नाइ[8] ॥१॥

खंधारु वहइ परबलजइल्लु उड्डीणरेणुपसरणमइल्लु।
रहकरितुरंगभडसंकडिल्लु उब्भियसिहिसाहुलसयजडिल्लु।
गयगंडगलियमयकद्दमिल्लु हयफेणचिलिचिलदुग्गमिल्लु।
धुव्वंतचिंधधयसुरडरिल्लु तंडवियछत्तपड[10]-पंडुरिल्लु[11]।
पालिद्धयालिविहुणियकरिल्लु[12] मंडलियमउडमणिगणगरिल्लु।
सामंतकुमरकस[13]-हयहरिल्लु [14]खेल्लंतपत्तिपयथरहरिल्लु[15]।
डोहियजलवाहिणिजलतरिल्लु सिरि[16] जूडबद्ध-थोरियवरिल्लु।
कच्छडयदिण्ण[17]-कामिणिकडिल्लु[18] पयचप्पणकयचिक्खिलतडिल्लु[19]।
रहचक्कमुक्कचिक्कारतट्टु पाडवि[20] कंठालु[21] बइल्लु नट्टु।

[७]

मदसहित गजसमूहके कुंभस्थलोसे पवनसे आहत होकर उडते हुए सिंदूरके पूरसे सूर्य मध्याह्नकालमे ही ऐसा लाल-लाल किरणोंवाला दीखने लगा, जैसा कि संध्यातमे अस्तंगत होता हुआ चक्रवाक् मिथुनोको विरह उत्पन्न करता है, तथा घोड़ोके खुरोसे खोदे हुए आकाशको उडनेवाले धूलिकणोंसे ऐसा लगने लगा मानो भटोंके शस्त्रप्रहारसे अपने किरणोंरूपी हाथ काटे जानेसे संक्लेश पा रहा हो। शत्रुसैन्यको जीतनेवाला स्कंधावार उडते हुए रेणुके प्रसारसे मैला हो रहा था, तथा रथो, हाथियो, घोडों व भटोंसे संकुल एवं उठाये हुए सैकडो मयूरध्वजोसे मानो जडा हुआ था। वहाँ गजोके गंडस्थलोंसे गलित मदसे कीचड हो रहा था और घोडोके फेनसे मार्ग दुर्गम हो रहा था। फहराती हुई ध्वजा-पताकाओसे देव भी डर रहे थे। तने हुए छत्रपटोसे वह (स्कंधावार) पांडुरवर्ण हो रहा था, व बासमे लगी हुई कपड़ेकी छोटी-छोटी झंडियोंसे वह करीलके वृक्षोंको कंपायमान कर रहा था, और मांडलीकोके मुकुटमणिसमूहसे महान् गौरव संपन्न था। सामंतकुमारोके कशो (चाबुको) से आहत होते हुए अश्वो और खेलती हुई पदाति सेनासे उस प्रदेशको थरथराते हुए उस सेनाने एक जलवाहिनीका अवगाहन करके उसके जलको पार किया। उस प्रदेशके लोग अपने सिरपर जटाजूट बांधे और गोलाईसे शिरोवस्त्र लपेटे हुए थे, वहांकी कामिनियां कटिवस्त्रमे कछोटा लगाये हुए थी, एवं लोगोके पदचापसे उस नदीका तटवर्ती प्रदेश कीचड़मय हो रहा था। कही

[७] १. घ °कुंभि सिं°। २ ख दू°। ३ ख ग °ण्णणे; घ °न्नि। ४. क ख ट अच्छंत। ५ घ °खुन्न। ६ ख ग घ समु°। ७ क °ई। ८ नाइ। ९. क ट उद्दीर°। १० क पय। ११ ख ग घ °पंट°। १२ क ढ पालद्ध°। १३. क °कुस। १४ ख ग घ ट खोल्लत°। १५ ख °धरह°। १६ क ट गिर°। १७ क ढ °तडिय; ख ग काछ°। १८ ख ग °करिल्लु। १९. ख ग घ °चिप्पिल। २०. क ट पाडि। २१ प्रतियोंमे कणाल।

चीएण वलइँ दामिएण पडिभरिउ[22] वोज्झु गोसामिएण ।
उल्ललिय वइल्लु[23] विवंधणीए[24] पाइक्कु निवारिउ रंधणीए[25] ।
करु परए झडप्पिर फरयचेट्ठु[26] कुंभंडिव[27] डिभु पाडिहहि धिट्ठु[28] ।
कंसारवोज्झनिवडणघणाइँ रणरणियइँ[29] फुट्टइँ[30] भायणाइँ[31] ।
दोत्तडिहि[32] धरंतहो[33] गउ झडत्ति तेल्लियहो सयडुमोडिउ तडत्ति[34] ।
विम्मुल्लु वइल्लु[35] हो मुकराडु[36] हा मुट्ठउ[37] पुक्कारइ किराडु ।
कल्लालहो फोडिउ मज्जपट्टु[38] सुर छंटइ[39] उत्तेडियइ[40] भट्टु[41] ।
संकुइउ[42] नासु हत्थें[43] धरंतु विहुणियसिरु नासइँ[44] हुंकरंतु ।
कल्होडवइल्लें[45] जायरेल्लु संधाडुल्लालिउ गयउ तेल्लु ।
कुट्टणियइ[46] वुच्चइ हत्थिरोहु ओसरहि करहि मा मग्गरोहु[47] ।
रे कुसलु कवणु करि धारिऊण राउलउ तुरंगमु मारिऊण ।
घत्ता—अगणिय निसिदिणु[48] नरवइ कहिँ मि न विरमइ कारणु तउ वि महल्लउ[48] ।
दुद्धरवइरिमहाहउ[49] महिलपराहउ वालु गयउ एक्कल्लउ[50] ॥७॥

रथके चक्केसे छोड़ी हुई चीत्कारसे त्रस्त होकर काठी (गोण) को गिराकर बैल भाग गया, दूसरे वशमे किये हुए (अभ्यस्त) बैलपर गोस्वामीने पुनः बोझ लादा । रसोई पकानेवाली अर्थात् दूसरोका खाना बनाकर गुजारा करनेवाली एक विवंधनी अर्थात् असहायस्त्रीने (तेज हाकनेके लिए) बैलको पीटते हुए पदाति (भृत्यसैनिक) को (यह कहकर) रोका—अरे ! अपने इस फलकके समान चेष्टा करनेवाले (अर्थात् भड़कीले) बैलको झटपट दूर हटाओ, वरना यह ढीठ, बालकको भी कुम्हड़ेके समान दे पटकेगा । कंसेरोके बोझे गिर जानेसे उनके बहुत घने (अधिक) भाजन रण-रण करके फूट गये । रोकते-रोकते भी एक तेलीका शकट दुष्ट नदीमें चला गया, और तड़ाकसे टूट गया । (हो =) अरे लोगो ! मेरा बैल कही भुला गया, हाय मै लुट गया, इसप्रकार एक किरात चीख-चीखकर पुकार मचाने लगा । एक कल्लालका मद्यपात्र फोड़ डाला गया, इसपर एक भाट (भट्ट) सुराको बूंद-बूंद करके छाटने अर्थात् एकत्र करने लगा । संकुचित नाकको हाथसे पकड़ता हुआ, सिर धुनकर एवं नाकसे हुकार करता हुआ (रातमे) जागनेवाला एक प्रतिहार बोला—दुष्ट बैलके द्वारा (तेलवाहक बैलोंकी) जोड़ीको लात मार देनेसे तेल नष्ट हो गया । एक महावत एक कुट्टनीसे बोला, हट जाओ, मार्गविरोध मत करो ! (किसीने कहा) अरे राजकुलके हाथीको बांधकर और घोड़ेको पीटकर अब तुम्हारी क्या कुशल है? रात (को रात) व दिन (को दिन) नही गिनते हुए, राजा कही भी विराम नही लेता था, और इसका कारण भी बहुत बड़ा था कि दुर्द्धर वैरीसे महान् युद्ध होना था, अपनी (होने वाली) महिलाका पराभव हो रहा था, और बालक अकेला ही (लड़ने) चला गया था॥७॥

२२ ख ग घ परि° । २३ प्रतियोंमे °ल्ल । २४. क ङ °णीइ, घ °णीइ । २५. ख ग °णीउ । २६ घ °चेट्ठु । २७ क घ ङ °डुव । २८. घ विट्ठु । २९ क ङ °यइ । ३० ख ग °इ । ३१. ख भाणियाइ । ३२ क घ ङ दोतडिहिं, ग दोत्तडहिं । ३३. ख ग धर° । ३४. क ङ क° । ३५ प्रतियोंमे °ल्ल । ३६. क ङ मुक्कु । ३७ क सु° । ३८. क मज्जु°; ग °थट्टु । ३९ क ङ छडइ । ४०. क घ ङ °यउ । ४१ ग भट्ट । ४२ क ङ °इय । ४३ ख ग हत्थे । ४४ घ ङ °इ । ४५ क °ल्ले । ४६ क कड्ढ°, ख ग कट्ठणिइं, घ कड्ढणिए । ४७. क °रोहुं । ४८ क घ ङ अइमंकियमणु णरवइ भणइ महल्लउ । ४९. क ङ दुद्धरि व° । ५० क ङ एक्कें°, घ इक्क° ।

[८]

वस्तु—एम पइसइ निवइ खंधारु
गिरिविंज्झु[1] दुग्गमसिहरु सरलवंसपव्वहिँ अहिट्ठिउ[2]।
पुव्वावरोवहि धरवि[3] धरपमाणदंडु[4] व[5] परिट्ठिउ ॥
गिरिनिज्झरकंदरविसम तरुवरनियरवरिट्ठ।
रववहिरियवणयरभमिर[6][7] विंज्झमहाडइ दिट्ठ ॥१॥

कहिँ मि[8]—अहिमारखर-[9]खइर-धवधम्मणा कंटिवोरीघणा[10]।
वंसिझंसो[11]-तिरिंगिच्छि-अंजणवणा[12] रोहिणी-रावणा।
विल्ल[13]-चिरहिल्ल[14]-अंकोल्लतरु-धायई मल्लि-भल्लायई।
घोंटि[15]-टिंबरु-निघण-फणसमहरुक्खया हिंगुणी-मोक्खया।
सिरिसु[16] सेवन्नि[17]-सेहालिया[18]-सिंसमी[19] सज्ज-गुंजा-समी।
कडहु-किरिमाल-करहाड[20]-कणियारिया कुडय-गणियारिया[21]।
कउह-वड[22]-ढउह-सकरीर-करवंदिया मार-महु-सिंदिया।
निंब-कोसंब-[23]जंबुइणि-निंबुंबरा[23] सग्गलग्गं वरा।
कहिँ मि गिरिकडणि[24]गज्जंतकरिकाणणा कुद्धपंचाणणा।

[८]

इसप्रकार नृपतिका स्कंधावार सीधे बासोकी मेखलाओसे भरे हुए एव दुर्गम शिखरोवाले विंध्यपर्वतमे प्रविष्ट हुआ, जो पूर्व और अपर (पश्चिम) उदधिको धारण करके धराके प्रमाणदडके समान स्थित था। इसके उपरात पहाडी झरनो, विपम कदराओ और सुंदर वृक्षोके उत्तम कुंजो तथा अपने शोरसे बहरा कर देनेवाले वनचरोके भ्रमणसे युक्त विंध्य महाअटवी दिखाई दी। कही अहिमार, कठोर खदिर (खैर), धव, धम्मण और घने कंटीली बेरीके वृक्ष थे। कही बास, झसी (झाड ?) तिरिंगिच्छ और अजण तथा रोहिणी (गुल्म विशेप) व रावण (औषधि विशेप) आदिके बडे-बडे वन थे। कही बेल, चिरिहिल्ल, अकोल्ल, धातकी और मल्लि तथा भल्लातकीके वृक्ष थे। कहीपर मुख्यतया घोटी, टिंबर, निघन, फणस व हिंगुणीके बड़े-बड़े वृक्ष थे! कही सिरीष, सेवणि, शेफालिका, सिसम (शीशम-शिशपा), सर्ज, गुंजा और शमी (छोकार) के वृक्ष थे। कही कटभू (कटहल ?), किरिमाल, शिफाकद (मैनफल) और कणिकार (कनेर) व कुटज और गणिकारके तरु थे। कही ककुभ (चंपा ?) वट, ढउह (ढौह ?) करील, करवंदी (करौंदा) मार व महुआ और सिंदीके वृक्ष थे। कही निंब, कोशाम्र, जंबूकिनी (बेतस-बेत), नीबू व उंबर (उदुबर) के सुदर वृक्ष मानो स्वर्गको छू रहे थे। कही पर्वतमेखलापर हाथी व क्रुद्ध सिंह गर्जन कर रहे थे। कही दड (शस्त्र)से

[८] १ क ड °ज्झ। २. क ड °ट्ठउ। ३ क घ ड धरिवि। ४ क ड धरहिं माणदडु। ५. क ट वि, ख नावइ। ६ ख ग °वणयरे। ७ ख ग घ °भमिय। ८ क ख ग ड मे सर्वत्र 'कहि मि'। ९. क ड खयर १० घ कंटि०। ११ क ड वंसज्झस। १२ ख ग घ °वरा। १३. क ड विल्लि°। १४. क घ ड चिरि°। १५ ख ग घ घोटि°। १६ ख ग घ °स। १७ क ख ग ड सेवणि। १८. क ड नेया°, ख ग गोहा°। १९ क ड सिंसिमी। २० ख ग कडहार; घ करहार। २१ ख ग गण°। २२ ख ग वउ°। २३. क ड जवुइणि उवरा, ख ग जवुइणि निंववुरा। २४. घ °कडिणि।

कहिँ मि हयदंडवग्घेहि[25] गुंजारिया गवय विद्दारिया[26] ।
कहिँ मि घुरुहुरियकोलउलदाढुक्खया कंदया सुक्खया ।
कहिँ मि हुँकरियदिढमहिससिंगाहया रुक्ख भूमिं[27] गया ।
कहिँ मि मेल्लंतु वुक्कार दीहरसरा धाविया वाणरा ।
कहिँ मि घुग्घुइयघूयडसया[28] रोसिया वायसा वासिया ।
कहिँ मि [29]भल्लुकिफेक्कारहक्कारिया जंबुया[30] धारिया ।
कहिँ मि पज्झरियखलखलियजलवाहला कसणतणुनाहला[31] ।
कहिँ मि [32]महिपडियतरुपण्णसंछन्नया[33] संठिया पन्नया[34] ।
कहिँ मि [35]फणिमुक्कफुक्कारविससामला जलिय दावानला[36] ।
अवि य—
दीसंति जत्थ[37] पल्लीवणाइँ [38]कंटयतरुविसमइं झरिवणाइँ ।[39]
वि-सरिसवरदारविणिम्मियाइँ वग्गुरगलजालोलंबियाइँ ।
सुक्कंतमयामिस-स-स-घराइँ उक्कत्तियचित्तयछवधराइँ ।
जहिँ[40] भिल्ललुक्कसिर[41]-तणुकराल निल्लोमकुंच-गुरुदाढियाल ।
सलहिज्जइ[42] जहिँ भिल्लेहिँ[43] नामु मंडलि उवविट्ठहिँ[44] जंघथामु ।
क वि पल्लि वहइ हलभूमिलील[45] संपच्चमाणगोधूमनील[46] ॥

आहत व्याघ्रो (की चिघाड़)से वह अटवी गुंजारित हो रही थी, और कही नील गाय विदीर्ण कर डाली गयी थी। कही घुरघुराते हुए बनैले सूअरोके दाढोसे उखाड़े हुए कंद सूख रहे थे। कही हुंकार करते हुए बलवान् महिपोके सीगोसे आहत हुए वृक्ष गिर गये थे। कही दीर्घ-स्वरसे बुक्कार छोड़ते हुए वानर दौड़ रहे थे। कही घूरघू-घूरघू करते हुए सैकड़ो घूयडोके स्वरसे रुष्ट हुए वायस काव-काव कर रहे थे। कही शृगालियोके फेत्कारसे आह्वान किये गये जंबूक पकड़े जा रहे थे। कही खल-खल करके झरते हुए जलके छोटे-छोटे प्रवाह थे, और कही काले शरीरवाले म्लेच्छ थे। कही पृथ्वीपर गिरे हुए पत्तोसे ढके हुए सर्प पड़े थे, और कही नागोके छोड़े हुए फूत्कारोसे विषके समान श्याम वर्णके दावानल जल रहे थे।

और भी—वहाँ चोरोके निवासके योग्य ऐसे घने अरण्य दिखाई देते थे जिनमे विषम काटेदार वृक्ष और झाड़ियोके जगल थे। वहाँ पारधियोके घरोके द्वार बिल्कुल एकसमानरूपसे बने थे, और उनपर पशुओको पकड़नेके जाल और मछली फंसानेके काटे व जाल लटके हुए थे। उन सबके अपने-अपने घरोमे मृगोका मांस सूख रहा था, तथा काटे हुए चीतोके शव पड़े हुए थे। और भी वहाँ मुंडे हुए शिर व भयानक शरीर तथा लोमरहित कूर्चा किंतु बड़ी भारी दाढ़ी वाले भील थे, तथा मडलीमे बैठे हुए भीलो-द्वारा वहाँ जघाबल (दौड़ने व युद्ध करनेकी शक्ति) की श्लाघा (सराहना) की जाती थी। कही कोई छोटा गाव हलभूमि (कृषि क्षेत्र) की लीला धारण कर रहा था, और पकते हुए गेहुओसे नीला (हरा) हो रहा था।

२५. ख ग घ हयदडि°। २६ क ड गयवि वि°। २७. क ङ भूमी। २८. ख ग घुरुघुरियघूवड°; घ घुरुघुरियघूयडसरा; क ङ °सरा। २९. क ङ भाल्लक्कि°। ३०. ख ग °आ। ३१ घ नाहणा। ३२. घ °तरुपन्न°। ३३ क ङ °ण्णया। ३४. क ख ग ङ पण्णया। ३५ ख ग °पुक्कार°। ३६ क ङ °णला। ३७ क ङ जे°। ३८ घ कठय°। ३९. ख ग झरु° ४०. क ङ जहि। ४१ क °ल्हक्खसिर°, ङ ल्हुक्खसिर°। ४२ घ °ज्जहि। ४३. ख ग °ण। ४४ ङ °ट्ठहि। ४५. क ङ हलि°। ४६. क °णाल।

पुणु केरिसी विंझाडई—
भारहरणभूमि व सरहभीस[४७] हरि-अज्जुण-नउल-सिहंडिदीस।
गुरु-आसत्थाम-कलिंगचार[४८] गयगज्जिर-ससर-महीससार।
लंकानयरी व सरावणीय चंदणहिं चार कलहावणीय।
सपलास-सकंचण-अक्खथड्ढ[४९] सविहीसणं-कइकुलफलरसड्ढ[५०]।
कंचाइणि व्व ठिय कसणकाय सद्दूलविहारिणि-मुक्कनाय।
तिणयणतणु व्व दारुवणछंद गिरिसुय-जड-कंदल-खंडयंद।

घत्ता—वोलवि वणु परिसक्कइ कहिँ मि[५१] न थक्कइ जहिँ छइल्लु[५२] जणु निवसइ[५३]।
गरुयारंभुच्छाहिउ मगहनराहिउ विंझएसु तं पइसइ[५४] ॥८॥

और फिर वह विंध्याटवी कैसी थी ?—वह (महा) भारत रणभूमिके समान भयंकर थी; भारत रणभूमि चीत्कार करते हुए रथोंसे भयानक थी, अटवी शरभों (अष्टापदों)से, भारत युद्धमें कृष्ण, अर्जुन, नकुल और शिखंडी थे, अटवीमें सिंह, अर्जुन वृक्ष, नेवले और मयूर थे; भारत रणभूमि गुरु (द्रोणाचार्य), अश्वत्थामा और कलिंगराजके सचरण (परिभ्रमण) से युक्त थी, अटवी बड़े-बड़े पीपलके वृक्षों, हरी-हरी लताओं एवं चार (चिरौंजी) वृक्षोंसे; भारत रणभूमि गजोंके गर्जन, तथा बाणधारी राजाओंसे समृद्ध थी, और अटवी गजोंके गर्जन, सरोवर, तथा महिषोंसे। और भी—वह अटवी लंकानगरीके समान थी, लंकानगरी रावणसे सनाथ थी, और चंद्रनखाके आचरणके कारण वहाँ कलह हुआ था, और विंध्याटवी रावण (फलविशेष) वृक्षों, चंदनवृक्षों, चारवृक्षों एवं कलभों (बालहस्तियों) से युक्त थी। लंकानगरी पलाश (राक्षस), कांचन (सुवर्ण) और अक्ष (रावणका पुत्र) सहित होनेसे गर्विष्ठ थी, एवं विभीषण तथा रसिक कवियोंसे परिपूर्ण थी; विंध्याटवी पलाश, कंचन (मदनवृक्ष), चक्षु-विभीतक (बहेड़ा) के वृक्षोंसे गर्विष्ठ, तथा नाना प्रकारकी विभीपिकाओं एवं वानरों व खूब रसभरे फलोंसे समृद्ध थी। वह अटवी कात्यायनी (चामुंडा) के समान थी; कात्यायनी कृष्ण-शरीरवाली है, तथा शार्दूल (शरभ)पर विहार करती हुई फेत्कार छोड़ती रहती है, विंध्याटवी काले कौओं, शरभोंके विहार व नाना वन्यपशुओंके नादसे युक्त थी। वह अटवी महादेवके समान थी, महादेवने गौरीके अभिप्राय (छंद) से नाना प्रकारका रौद्र नृत्य किया, तथा वे गिरिसुता (पार्वती), जटाओं एवं कपालपर खंडचंद्र (चंद्रकला) से युक्त हैं, और विंध्याटवी दारुवनोंसे आच्छादित थी, एवं पर्वतों, शुकों, नानाप्रकारकी मूलों, विशेष अंकुरों एवं खंडकंदों (कंदविशेष) से युक्त थी। वनको लांघकर, राजा आगे बढ़ गया, व कहीं भी रुका नहीं। इसप्रकार मगधाधिपने बड़े-आरंभ (कार्य) के उत्साहसे उस विंध्यप्रदेशमें प्रवेश किया जहाँ छैले लोग (विदग्ध-जन, ज्ञानीपुरुष) रहते थे ॥८॥

---

४७ क °लीस। ४८ क ड कलिअगवार, घ °धार। ४९ क ड °भट्ठ। ५०. क ख ग ड °रसट्ठ। ५१ ख ग कहि मि। ५२. क ड छयल्लु। ५३. क °सइ। ५४ ख ग पय°।

[९]

वस्तु—जेत्थ[1] पट्टणसरिस-वरगाम[2]
गामार वि नायरिय[3] नायरा वि वहुविविहभोइय[4] ।
भोइया वि धम्माणुगय[5] धम्मिणो वि जिणसमयजोइय[4] ॥
महिसीवद्धसणेह[6] जहिँ[7] कमलायर-गयसाल ।
परिरक्खियगोहण रमहिँ[8] गोवाल व[9] गोवाल ॥१॥
जत्थ केयारवरसालिफलवंधयं[10] [11]नियडतरुगलियमहुकुसुमसमगंधयं ।
जत्थ सरवरइँ न कयावि ओहट्टइँ[12] मंदमयरंदवियसंतकंदोट्टइँ[12] ।
जत्थ भमरोलि कीरेहिँ समहिट्ठिया नीलमरगयपवालेहिँ[13] णं कंठिया ।
छेत्तछोक्काररवपामरीसल्लिया पहिय-कणइल्ल-मिग पउ वि नउ चल्लिया ।
थोरथणभारसंरुद्धभुवडालिया[14] भरइ जलपाणु पहियाण[15] पावालिया ।
[16]वियडकडिविंवखिन्नाए[17] थक्किज्जए नीलनेसणयगोवीए गाविज्जए[18] ।
जम्मि देसम्मि जणवेसहासियसुरं पट्टणं वसइ नामेण नम्माउरं[19] ।

[९]

जहाँके ग्राम नगरो जैसे थे, और ग्रामीण नागरिकों जैसे, तथा नागरिक बहुविध भोगोंसे युक्त थे। भोगोसे युक्त होकर भी वे धर्मानुगत (धर्मपालक) थे, और धर्मानुगत होकर जिनधर्मसे योजित (युक्त) थे। जहाँके गोपाल (ग्वाले) गोपालों (भूमि अथवा प्रजापालक राजा) के समान रमण करते थे; राजा लोग महिषी (महादेवी) के प्रति स्नेहासक्त होते हैं, लक्ष्मीके निधान होते हैं, तथा हस्तिशालाओंके स्वामी होते हैं, और गोधन (पशुधन, पृथ्वी-धन व जनधन) का रक्षण करते हुए आनंद मनाते हैं, उसीप्रकार वहाँके ग्वाले महिषियों-से स्नेह करते थे और कमल सरोवरोंरूपी गजशाला (गवयशाला-गोशाला) से युक्त थे (क्योंकि उनकी भैंस तालाबोंमें ही प्रसन्न रहती हैं), तथा अपने गोधन (पशुधन) की रक्षा करते हुए रमण करते थे। जहाँ श्रेष्ठ शालि (धान) के खेत फूले हुए थे, जो पासके वृक्षोंसे गिरे हुए मधु (मधूक-महुआ) के फूलोंको गंधसे सुगंधित थे। जहाँके सरोवर कभी सूखते नहीं थे, और जो मंदमकरंदसे युक्त विकसित होते हुए नीलकमल समूहोसे पूर्ण थे। जहाँ शुकों-से समाधिष्ठित भ्रमरपंक्ति मरकत व प्रवाल (मूगा) मणियोसे जड़ी हुई नीलमणिके समान शोभायमान होती थी। जहाँ खेतोमे कृषक-वधुओंके छोक्कार रव (पक्षियोंको डरानेके लिए की जानेवाली ध्वनि) से बिंधकर, पथिक, शुक और मृग एक पग भी आगे नहीं बढ़ते थे। जहाँ स्थूल स्तनोके भार (उभार) से संरुद्ध-भृकुटि (दृष्टिपथ) वाली प्र-पालिका (प्याऊ वाली) पथिकोके जलपात्रोंको भरती थी। जहाँ अपने कटितलकी विशालतासे क्लान्त हुई नीले वस्त्रोंवाली गोपी-द्वारा गीत गाये जाते थे। जहाँके लोगोंका वेश अर्थात् पहनावा

[९] १ क जित्थ; घ ङ जित्थु। २. ख ग पट्टणु सरिसु वहु°। ३. ख ग णाइ°। ४. घ ङ °इया। ५. ख ग °गया। ६ क घ ङ °सिणेह। ७. ख ग जिह। ८. ङ °हि। ९ ख ग वि। १०. घ °रंधयं। ११. क ङ णियड°। १२ क ङ °ट्टइ, ख ग घ °ट्टय। १३ क °लेहि। १४ ख ग भुय°; घ लुय°। १५. ख ग °याणु। १६. क ङ वियडि°। १७. क घ ग °खिण्णाए, च °खिंन्नाइ। १८ क घ ङ गाइ°। १९. क ङ णामा°।

मिलियबहुदेसिजणमंडलीसोहियं चारुनेवत्थरममाण[20]-सिसुसोहियं ।
जत्थ पयडंतनवनेहपियलालिया[21] जिणइ[22] गिरितणयसोहग्गु[23] कुलबालिया ।
जत्थ पुरवासिलोएण बहुबुद्धिणा धम्मकामत्थसेवासु मणसुद्धिणा ।
घत्ता—वेसायउ कय[24] थक्कउ निट्ठुरवंकउ गंठिहिं[25] भरिउ सखारउ ।
उच्छु व मेल्लवि[26] परवसु कोमलु[27] बहुरसु सेविज्जइ कंतारउ ॥९॥

[१०]

वस्तु—सुहड-संदण-तुरय-करिसारु
कंपाविय सधर-धरु[1] अडोहिय गहिरनइजलु ।
तं नयरु वामउं करिवि सिमिरु जाइ जा किर असुज्जलु ।
दिणमणिकिरणुत्ताविय[3] वणकरिघडहं[4] मणिट्ठ ।
जंबुलुंबितोरवियजल[5] ता[6] रेवानइ दिट्ठ[7] ॥१॥
मज्जमाणलयगलमयसंगिणि णं मयतरलतरंगतरंगिणि ।
विमलनीरवोलियतरुसाही गरुयखयाणखणंतपवाही[8] ।
पुलिणट्ठाणनिवेसियकच्छो चुयमहुकुसुमुद्धाइयमच्छी ।

देवताओंका भी उपहास करनेवाला था, वहाँ नर्मपुर नामका पट्टण था, जो बहुत देशों-की मिली-जुली जनमंडलीसे अवरुद्ध (भरा हुआ) था, तथा मनोहर वस्त्रोंको पहने हुए क्रीड़ाशील शिशुओंसे सुशोभित था। जहाँकी सदैव अभिनव स्नेहको प्रगट करनेवाले प्रियतमकी लाडली (प्यारी) कुलबालिकाएं गिरितनया (पार्वती)के सौभाग्यको भी जीतती थी; व जहाँके बहुत बुद्धिमान तथा मनःशुद्धिपूर्वक धर्म, अर्थ व कामकी सेवा करनेवाले पुरवासी लोगोंके-द्वारा निष्ठुर छलयुक्त, हृदयसे कुटिलभाव पूर्ण तथा आद्यंत खारे (अर्थात् दुःखद) और पराधीन व मूल्य देकर प्राप्त होनेवाले वेश्यारत (वेश्यारमण) को कठोर, वक्र, व गाठोंसे भरे हुए तथा खारे व दूसरोंके आधीन इक्षुके समान त्याग कर, आद्यंत सुकोमल (स्नेहयुक्त) तथा बहुत रसवाले (अर्थात् अत्यंत सुखद) कांता (स्वपत्नी)रतका सेवन किया जाता था ॥९॥

[१०]

सुभट, स्यंदन तुरग व श्रेष्ठ हाथियोंसे धरा-सहित धराधर (पर्वत) को कंपायमान करते हुए गहरी नदीके जलको अवगाहन कर, उस नगरको बायें करके जिस राजाका उज्ज्वल यश-प्राप्त सैन्यशिविर चला जा रहा था, उस राजाने सूर्यकी किरणोंसे तप्त, वनगजोंके समूहको बहुत प्रिय, और जंबूफलोंके (गिरते हुए) गुच्छोंसे हिलते हुए जलवाली रेवानदीको देखा। मज्जन करते हुए मदगजोंसे युक्त वह नदी मानो तरलमद अर्थात् सुरारूपी तरंगोंवाली तरंगिणी थी। अपने निर्मल जलसे वह वृक्षों और वाटों (पगडंडियों) का उल्लंघन करनेवाले एवं बड़े-बड़े खदान खोद देनेवाले प्रवाहसे युक्त थी। वह रेतीले तटप्रदेशरूपी कच्छा (कटि-

२०. क ह चारुणेवत्थम°। २१ क °लासिया। २२ ख ग घ °इ। २३. क ह °मोहग्ग। २४. क ह में 'कय' नहीं। २५ ख ग घ हुं°। २६ क ग घ ह मेल्लिवि। २७ ख ग °ल।

[१०] १. क ङ °धरु। २. घ °ड। ३. क ह °किरण°। ४ क ह °वडइ। ५ ग ग घ °जलु। ६ ख ग घ तो। ७ ख ग दिट्ठु। ८. ख ग °खवडकम्मलंतप,° घ °खन्त°।

पडियंकोल्लफुल्लसयभमरी[९] गंधिधिर[१०]-रुणुरुंटियभसरी।
कीलिरसबरनियंबिणिचहरी[११] [१२]थड्ढथोरथणफोडियलहरी।
सा उत्तरिवि महाजलवाहिणि कुरुलगिरिंदु[१३] नियइ निववाहिणि।
जो फुरंतजिणभवणरवण्णउ[१४] [१५]वंदणभत्तिमिलियसुरछण्णउ[१६]।
रायागमणु मुणिवि णं रहसिउ[१७] फुल्लकयंबदुमहि उद्धूसिउ।
नच्चइ व्व नच्चंतमऊरहि गज्जइ व्व सुरदुंदुहितूरहिँ।
पणवइ व्व फलनामियडालहि उप्पिडइ[१८] व कुरंगसिसुफालहि।
ण्हावइ[१९] जिणपडिमहिँ सुरण्हवियहिँ[२०] कुलकुलइ व कोइलकुलवियहिँ।
सो गिरि नियवि नवेवि जिणचलणइँ[२१] पुणु थोवइँ[२२] लंघेवि नइवलणइँ[२३]
तहिँ आवासु निवेण लइज्जइ सेणावइपमुहहिँ[२४] सूइज्जइ[२५]।
रायंतेउरवासु पइण्णउ[२६] अग्गइ सीहवारु[२७] संदिण्णउ[२८]।
तक्खणे रुद्ध-पत्तसंचारहिँ संदण उज्जोत्तिय[२९] जोत्तारहिँ।
[३०]मत्तमयंग-नियंधणचेट्ठहि[३१] सरलरुक्ख पडिगाहिय मेट्ठहिँ।

वस्त्र) पहने हुए थो, तथा महुएके गिरे हुए कुसुमोके लिए लपकती हुई मछलियोंसे युक्त थी। उसमे गिरे हुए सैंकड़ो अंकोल्ल पुष्प मानो सैंकड़ो स्त्रीभ्रमर थे, जिनकी गंधसे अत्यंत आसक्त हुए भौरे उनपर मधुर गुंजार कर रहे थे। क्रीड़ा करती हुई शबर सुंदरियोसे वह ईषत् मर्दित हो रही थी, और उनके कठोर व स्थूल स्तनोसे उसकी लहरें टूक-टूक हो रही थी। उस महाजलवाहिनीको उतरकर नृपसेनाने कुरलपर्वतको देखा, जो (अपने उन्नत शिखरोसे) चमकते हुए जिनभवनोसे रमणीक था, और वंदन-भक्तिसे एकत्र हुए देवोंसे आच्छादित था, (अथवा जहाँ वंदनाकी भक्तिसे देवकन्याएँ एकत्र थी)। राजाके आगमनको जान, मानो हर्षित होकर वह फूले हुए कदंबद्रुमोसे रोमांचित हो गया; नाचते हुए मयूरोसे वह मानो नाचने लगा, और देवदुंदुभियोके तूरसे मानो (हर्षपूर्वक) गर्जन करने लगा; फलों (के भार) से झुकाये हुए डालोसे मानो प्रणाम करने लगा, और कुरंग शिशुओके उछल-कूद करनेके रूपमें, मानो उसने नृपतिको (अर्घ) अर्पण किया, देवों-द्वारा अभिषेक करायी जाती हुई जिनप्रतिमाओके रूपमे मानो उसने नृपतिका ही अभिषेक कराया, और कोकिलसमूहके आलापसे मानो आनंदसे कुलकुला उठा। उस पर्वतको देखकर, जिनचरणोको नमन करके, और फिर नदीके और थोड़े-से मोड़ोको लांघकर नृपने पड़ाव डाला, तथा सेनापति प्रमुख लोगोंसे इसकी सूचना की गयी। राजाका अंत:पुरनिवास विस्तीर्ण किया गया, व उसके आगे सिंहद्वार दिया गया। तत्क्षण पदातियोके सचरणको अवरुद्ध करते हुए, योक्ताओं (रथवानों) ने रथोंके जोत उतार दिये। मत्तमातंगोको बाँधनेमे सचेष्ट महावतोने सरलवृक्षोको ले लिया। गलेमे वेले डालकर बाँधी

---

९. क ख ङ °समरी। १० ख ग गवद्धिर०; घ गंध°। ११. घ °वहरी। १२ क ङ थट्ट°; ख घट्ट°, ग घट्टघोरघण°। १३ क ङ कुरल°। १४ क °ण्णउं, घ न्नउ। १५. क ङ °हत्ति°। १६. क ङ °ण्णउ; ग °कण्णउ, घ °न्नउ। १७ क ख ङ हरिसिउ। १८ क ङ उप्फलइ, ख ग उप्पि°। १९ क °वइ व, ङ °वइ व्व ख ग ण्हाइ व, घ न्हाइ व। २०. ख सुरन्ह°। २१. ङ °णइ। २२ प्रतियोमे °इ। २३. क ङ °णइ। २४, क ङ °हहि, ख ग °हाहि। २५ ख सुवि°, ग सुचि°। २६. क ङ °ण्णउं, ख ग °पयण्णउ। २७. क ङ सिंह°। २८ क ङ °ण्णउ, घ °न्नउ। २९. क ङ उजो°। ३०. घ मत्तगइदनिवधणु। ३१. क °वेट्ठहि।

दिण्णवल्लिगल[32]-खोडीसंगम[33] संचारिय मंदुरहिँ[34] तुरंगम।
गुडुरदूसावासकयग्गहु नियठाणहिँ ठिउ रायपरिग्गहु।
घत्ता—तहिँ रेवानइ कण्णए[35] तरुसंछण्णए[36] कुरलगिरिंदहो[36] नियडउ।
सेणियरायहो[37] बलु कय-समसहियलु[38] इय आवासिउ वियडउ॥१०॥

[११]

वस्तु—सीहवारहो पुरउपरि ठविउ
सविलासकामिणिललिउ पिंडवासु सहुँ पण्णसालहिँ[1]।
पुणु विविहकेणयभरिउ हट्टमग्गु किउ कोट्टवालहिँ॥
नडविडडोंबहिँ[2] विट्टलिउ[3] पइसवि[4] रंधणे हट्टु।
दब्भहि[5] गद्दहचव्वियहिँ[6] संज्झा वंदइ भट्टु॥१॥
आर्या—गलनिहितकुसुममालश्चंदनसंचर्चितः सनिःश्रावः।
भट्टः प्रविशति हृष्टो गुणगणिकां[7] हट्टकुट्टिन्याः॥१॥
आवासिउ मगहनरिंदु तेत्थु कह वट्टइ जंबूसामि जेत्थु।
गयणगइसमाणु[8] विमाणवंतु निविसेण जि केरलनयरि पत्तु।
ता पट्टणबाहिरि कयवमालु संगामतूरभरियंतरालु।

हुई गधियोके संगमके लिए घुड़सालोमें घोड़ोका संचार कराया गया। कपडेके तंबुओका आश्रय लेकर राजाका सारा परिग्रह (सैन्य) अपने-अपने स्थानोपर स्थित हो गया। वहाँ रेवा नदीके किनारे, वृक्षोंके सायेमे, कुरल गिरिराजके निकट श्रेणिक राजाका सैन्य भूमिको समान करके विस्तारसे बस गया॥१०॥

[११]

सिंहद्वारके आगे सेनाके लिए पण्यशालाओं (दुकानो) से युक्त एवं विलासपूर्ण कामिनियोंसे ललित आवास बनाया गया, फिर कोटपालोके द्वारा विविधप्रकारके क्रेय (कीनने-योग्य) पदार्थोंसे भरा हुआ हाटमार्ग (बाजार) बनाया गया। नटो, विटो व डोमोने रसोइयोमें प्रवेश कर उन्हे बिटाल दिया (अशुद्ध कर दिया), और भ्रष्ट ब्राह्मण गधोके द्वारा चबाये गये दर्भसे संध्यावंदन करने लगा। गलेमे पुष्पोंकी माला डाले (मस्तकपर) चंदनका लेप किये हुए एवं पसीना चूते हुए एक भ्रष्ट (ब्राह्मण) गुणोंकी गणिका (अर्थात् गुणोंको लूटनेवाली) बाजारू कुट्टनी (के डेरे) मे हर्षित होकर प्रवेश करने लगा।

इसप्रकार वहाँ मगधराजने पड़ाव डाल लिया। उधर जहाँ जंबूस्वामी थे, वहाँकी कथा इसप्रकार हुई—गगनगतिके साथ विमानमे बैठकर निमिषमात्रमें वह केरल नगरीको प्राप्त हुआ। वहाँ पत्तनके बाहर संग्रामतूरोके द्वारा किया हुआ कोलाहल दिगंतोको भर रहा था। फहराते

३२. ख ग घ दिन्न°, क ङ °वेल्लि। ३३ क ङ खोलो°। ३४. क °रहि। ३५. घ °ग्रइ। ३६. क ग ट कुरल°, ख ग °गिरदहो। ३७. ख ग घ ङ सेणियमहरायहो। ३८. ङ ह °थलु।

[११] १. घ पन्न°। २ क घ ङ °भडडोमहिँ। ३. क ट विट्टिलउ, ख ग घ विट्टलउ। ४. क घ ङ °सिवि। ५. क °हि। ६. क गद्दहि च°; ख ग °चव्वि°। ७. ख ग गुणनणिका। ८. घ °समाण।

धुव्वंतमहाधयधवलचिंधु उम्मग्गलग्गु णं पलयसिंधु ।
गज्जंतमत्तमायंगफारु हिलिहिलियतुरंगमथट्टसारु ।
तिक्खुक्खयपहरणसुहडवंतु आमुक्कहक्कभेसियकयंतु ।
तं नियवि कुमारें तक्खणेण गयणगइ वुत्तु विंभियमणेण ।
एहु[9] दीसइ[10] काइँ सकोउहल्लु तो कहइ खयरु एहु[11] अम्ह सल्लु ।
एहु[11] सो जो मग्गइ वरकुमारि एहु[11] सो जो वलथंभियतमारि ।
एहुँ[11] सो जो विसरिसजमपयाउ संताविउ[12] जेण मियंकु राउ ।
एहु[13] सो जसु रणजयकयपयज्जु[14] तुहुँ[15] आउ वइरिसिरसिहरिवज्जु[16] ।
सहुँ सेण्णे[17] सुरहु[18] मि हिययसूलु[19] एहु[13] सो विज्जाहरु रयणचूलु ।
बोल्लइ कुमारु पेक्खहुँ[20] पमाणु खंधारसमुहुँ खंचहि[21] विमाणु ।
घत्ता—ताम विमाणु विलंबिउ महियले लंबिउ जंबुकुमारुत्तिण्णउ[22] ।
पुणु पइसइ आसंकहो कज्जि मियंकहो रिउखंधारु पइण्णउ[23] ॥११॥

[१२]

वस्तु— नियडनहयले[1] चलइ सविमाणु
विज्जाहरु गयणगइ जंबुसामि महिवट्ठे चल्लइ ।
रणरहसरंजियमणहो[2] जंसु चलंत[3] [4]महिवीढु हल्लइ[4] ॥

हुए महाध्वजो तथा धवल पताकाओंसे वहाँ ऐसा दृश्य उपस्थित हो रहा था, मानो प्रलय-समुद्र ही उन्मार्ग अर्थात् (अपनी मर्यादा छोड़कर) आकाशमें जा लगा हो । मत्तमातंग भारी गर्जन कर रहे थे, और श्रेष्ठ तुरंगमोंके समूह हिनहिना रहे थे, तथा म्यानोंसे निकाले हुए तीक्ष्ण शस्त्रोंको धारण करनेवाले सुभटोंके द्वारा छोड़ी हुई हुंकारोंसे वह कृतांतको भी भयभीत कर रहा था । यह सब देखकर कुमारने तत्क्षण ही विस्मित मन होकर कहा—कौतूहलवर्द्धक यह सब क्या दीख रहा है ? तो खेचरने कहा, यही तो हमारा काँटा है, यही वह है जो उस श्रेष्ठ कुमारीको माँगता है, जो अपने बलसे सूर्यको भी स्तंभित कर देता है, जो यमके समान अद्वितीय प्रतापवाला है, जिसने मृगांकराजाको संतप्त किया है, और जिसको रणमें जय करनेकी प्रतिज्ञा करके तू इस वैरीके शिररूपी पर्वतके लिए वज्र बनकर आया है । अपनी सेनाके साथ यह देवताओंके लिए भी हृदयका शूल बना हुआ है, यही (वह) विद्याधर रत्नचूल (रत्न-शेखर) है । इसपर कुमारने कहा, मैं इसका (सैन्य) प्रमाण देखना चाहता हूँ, अतः विमान-को स्कंधावारके सन्मुख खींच लीजिये । तब गगनगति विद्याधरने विमानको रोककर, पृथ्वीसे मिलाया, जंबूकुमार उसमें-से उतरा, व मृगांकके कार्यसे, शत्रुके उस फैले हुए स्कंधावारमें आशंकापूर्वक प्रवेश किया ॥११॥

[१२]

नभस्तलके निकट विमानसहित गगनगति चल रहा था, और पृथ्वीपर जंबूस्वामी चल रहे थे । रणकी उत्कंठासे भरे हुए मनसे उसके चलते हुए पृथ्वीतल हिल उठा । अनार्य जाति-

९. क ख ग ड इउ । १०. क ङ °इं । ११. क ड इहु । १२ क ड संतवियउ । १३ क घ ङ इहु । १४. क ङ रणकयजयपयज्जु, ख ग °पयज्ज घ °पइज्जु । १५. प्रतियोंमें 'तुहु' । १६ ख ग वज्ज । १७. क ङ सण्णें, घ सिन्नि । १८. घ °हि । १९. क ड हियइ° । २०. प्रतियोंमें °हु । २१ ख ग घ °हिं । २२. क घ ङ ण्णउं । २३. घ °न्नउं ।

[१२] १. ख ग घ नियडु नह° । २.घ °रंगियम° । ३ क घ ड पयभरेण । ४ क ङ धरवीढु डोल्लइ ।

देसल्लहसि संबंधियउ[५] वणि ववहारु वहुत्तु।
पेक्खंतउ दीसइ जणहिं[६] राउलवारि पहुत्तु॥ १॥

तं भणिउ[७] कुमारें नयपसत्थु पडिहारु कणयमयदंडहत्थु।
कह नियवरिंदहो सारभूउ पट्ठविउ मियंकें आउ दूउ।
'तो गं पि[८] दंडधारें[९] समत्त[१०] अत्थाणे[११]-निवेइय निवहो[१२] वत्त।
परमेसर रक्खणसुहडसारि अच्छइ मियंकपहुदूव[१३] वारि।
लहु[१४] पइसउ[१५] इय आएसिएण पइसारिउ जंबुकुमारु तेण।
आवंतउ रयणसिहेण दिट्ठु सव्वहं[१६] मि[१७] चमक्कउ मणे पइट्ठु।
नहमणिफुरंतपयदिण्णविक्खु वणुतेयतविय-अरिदुण्णिरिक्खु[१८]।
पीवरचामीयरथंभजंघु[१९] थिरदिट्ठि[२०]-विलंबियवइरिसंघु।
करजुयलुब्भासियकमलकंबु[२१] केसरिकिसोर चक्कलनियंबु[२२]।
दिढसुललियनेसियदिव्ववत्थु[२३] मणिफुरियछुरियवंधणपसत्थु[२४]।
हारच्छवि[२५]पयडइ छइयवच्छु[२५] [२६]संगामसूरकरि-दवणदच्छु[२७]।
दीहरकरिकरसमवाहुदंडु मणिकुंडलमंडियचारुगंडु।

के उस देशके व्यवहारमे कुशल वह वणिक् (पुत्र) लोगोके देखते-देखते राजकुलके द्वारपर पहुँचा हुआ दिखाई दिया। (वहाँ पहुँचकर) कुमारने सुवर्णमयदंड हाथमे लिये हुए, और व्यवहार-कुशल प्रतिहारको कहा—अपने नरेंद्रको यह महत्त्वपूर्ण वात कहो कि मृगाकका भेजा हुआ दूत आया है। तब सभामंडपमे जाकर दंडधरने राजाको समस्त वार्ता निवेदित की—'हे श्रेष्ठ सुभटोके पालक परमेश्वर, मृगांक राजाका दूत द्वारपर विद्यमान है।' 'शीघ्र प्रवेश कराओ', ऐसा आदेश पाकर, उसने जंबूकुमारको प्रवेश कराया। रत्नशेखरने उसे आते हुए देखा, और सबके मनमें एक चमत्कार उत्पन्न हो गया। उसके नखमणियोसे प्रकाशित चरणोमे जिनकी दृष्टि लगी थी, ऐसे शत्रुओके लिए तेजसे तप्त उसका शरीर अत्यत दुष्प्रेक्ष्य था। वह पुष्टसुवर्णस्तंभके समान जाँघोवाला था, और उसकी स्थिर (निश्चल) दृष्टिसे वैरियोका सघ तिरस्कृत हो रहा था। उसके करयुगलमे कमल और शंख (के चिह्न) उद्भासित हो रहे थे, और उसके नितंब तरुणसिंहके समान चक्राकार थे। वह सुदृढ, वहुत सुंदर तथा प्रशस्त एव दिव्यवस्त्रोको पहने हुए था, जिनके वंधन मणियोकी कांतिसे व्याप्त हो रहे थे। उसका वस्त्रोसे आच्छादित वक्षस्थल, जो संग्रामसूर हाथियोका दमन करनेमे दक्ष था, हारकी कांतिसे प्रकट हो रहा था। हाथीके दीर्घ सूँडके समान उसके वाहुदड थे, और सुंदर कपोल

५. ख ग घ °सवंधि°। ६ क ङ °हि। ७. क ख ग ङ दिट्ठु। ८ क ङ ज ज पि। ९ क ङ दडधारेण, घ °धारिण। १०. ङ °त्तु। ११. क ङ मे अत्थाणे "वत्त के पूर्व 'तो भणिउ कुमारें णयपसत्त' यह अर्द्ध पंक्ति अधिक है। १२ ङ णियहो। १३ ख ग घ °दूउ। १४ घ लहु। १५ ख ग °मइ। १६ क ख ग ङ °हु। १७ क ङ वि। १८. घ °दुल्वि°। १९ क ङ °खंभजघु। २०. ख ग थिरदिट्ठ°। २१ घ करजुयलु°। २२. क घ ङ °किसोरु०। २३ क ङ °वत्थ। २४. क ङ °ममत्थ, ख ग °समत्थु। २५ ख ग घ पडपच्छइय°। २६. ख ग. °सूर°। २६ घ °दमणदच्छ।

तंविरफुरियाहरु[28] पीणखंधु सियकुसुमुब्भासियकेसवंधु ।
चिंतिज्जइ रयणसिहेण एम[29] दूयत्तणु आयहो[30] घडइ केम ।
एहु बालु न माणुसु अण्णु[31] कोइ रेहा वि एह दूवहो[32] न होइ ।
नउ नवइ न वइसइ साहिमाणु लइ सुणमि[33] ताम[34] आयहो[35] पमाणु ।
मण्णंते[36] इय विज्जाहरेण देवाविउ आसणु मइवरेण[37] ।
वइसरेवि कुमारें न किउ खेउ रयणसिहुँ[38] पवुच्चइ सावलेउ ।
घत्ता–जइ जाणहि[39] परमत्थें[40] भणमि हियत्थे[41] अणययारु म पवत्तहि[42] ।
[43]दप्पु विलुंपिवि[43] बुज्झहि[44] समरें म जुज्झहि[45] अज्ज वि गयए[46] नियत्तहि[47] ॥१२॥

[१३]

वस्तु— माय-बप्पहि[1] दिण्ण जा कण्ण
निन्नासियदुन्नयहो[2] वइरिवीरचिद्दवियछायहो ।
सरणाइयपविपंजरहो[3] सेणियस्स महरायरायहो ॥
तहि[4] कारणि असगाहु किउ जो सो अज्ज वि मेल्लि ।
जाणंत वि मा मुहि[5] छुवहि[6] हालाहलविसवेल्लि ॥ १ ॥

मणिकुंडलोंसे मंडित थे । उसके अधर तांबेके समान-लालिमासे प्रकाशित थे, और कंधे बहुत ऊँचे, एवं केशबंध श्वेत कुसुमोंसे उद्भासित । (उसे देखकर) रत्नशेखर सोचने लगा— 'इसका दूतपना कैसे घटित (संभव) हो सकता है ? यह बालक मनुष्य नही, कोई अन्य ही है । दूतकी इसमे कोई रेखा तक नही है । न तो यह नमस्कार करता है, और न स्वाभिमान-के कारण (अपने आप बिना कहे) बैठता ही है । तो फिर अब इसकी बात सुन लेता हूँ'; इसप्रकार मानते हुए उस मतिमान विद्याधरने उसे आसन दिलवाया । बैठकर कुमारने जरा भी कालक्षेप नही किया, और वह रत्नशेखरसे अभिमानपूर्वक ऐसा कहने लगा—यदि तू समझे, तो मैं परमार्थसे तेरे हितकी बात कहता हूँ कि अनाचारका प्रवर्त्तन मत कर ! दर्पका लोप (त्याग) करके इस बातको समझ ! युद्धमे मत जूझ, और अभी भी गये (चले) हुए (अनीतिके) मार्गसे वापिस लौट जा ! ॥१२॥

[१३]

माँ बापने जिस कन्याको दुर्नीतिका नाश करनेवाले, वैरी-वीरोकी कांतिको नष्ट करनेवाले, शरणागतो (की रक्षा) के लिए वज्रपंजर एवं महाराजाओंके राजा अर्थात् महा-राजाधिराज श्रेणिकके लिए दे दी, उसके लिए तूने जो असद् आग्रह किया है, उसे अब भी छोड दे । जानते हुए भी हालाहल विषकी बेल मुँहमे मत डाल !

२८ ख ग घ °हर । २९ क ङ एव । ३०. घ °हि । ३१. घ अन्नु । ३२ ख ग घ दूयहो । ३३. घ मु° । ३४. क ताइ, ङ ताव । ३५. क ङ एयहु । ३६. घ मन्नंति । ३७. क ङ मय° । ३८. क घ ङ °सिहु । ३९. क ङ °इ, घ °हिं । ४०. क; °वत्थे ङ °वत्थें । ४१. क °त्थे । ४२. घ °त्तहिं । ४३. क ङ दप्पुब्भडपवि°; ख ग दप्पुविलंघिवि । ४४ क ख ग °हिं । ४५. क ङ °हिं । ४६ घ °इ । ४७ ख ग निवत्तयहिं, घ °त्तहिं ।

[१३] १. क ख° हि । २ क ङ णिण्णा° दुण्ण°, ख ग निण्णा° दुण्ण° । ३ क ङ °वियपयपज°, घ सरणागय° । ४ क ङ तह, घ तहिं । ५ क ङ मुहिं । ६ क घ ङ छुहहि ।

अक्क-सियंक-सक्ककंपावणु　　हा मुउ सीयहे[७] कारणे रावणु ।
अलियदप्पदप्पिय[९]-मइमोहणु　　कवणु अणत्थु पत्तु दुज्जोहणु ।
तुज्झु न दोसु दइवकिउ[१०] धावइ　　अणउ[११] करंतु महावइ पावइ ।
जिह जिह[१२] दंडकरंबिउ जंपइ　　तिह तिह[१३] खेयरु रोसहिं[१४] कंपइ[१५] ।
थड्ढकंठु-सिरजालु पलित्तउ　　चंडगंडपासेयपसित्तउ ।
दट्ठाहरु गुंजुज्जललोयणु　　फुरहुरंतनासउडभयावणु[१६] ।
पेक्खेवि पहु सरोसु सन्नामहिं[१७]　　वुत्तु वओहरु मंतिहिं ताम हि[१८] ।
अहो अहो दूय दूय साहसगिर　　जं पइँ[१९] चविउ दंडगब्भिउ[२०] किर ।
अण्णहो[२१] जीह एह[२२] कहो वग्गए[२३]　　खयरविसरिसनरेसहो अग्गए ।
भणइ[२३] कुमारु पहु रइलुद्धउ　　वसणमहण्णवे[२४] तुम्हहिं[२५] छुद्धउ ।
रोसं भरिउ[२६] हियत्थु वि न सुणइ[२७]　　कज्जाकज्जु वलावलु न मुणइ ।
रोसु अ दोसु मणू सु नडावइँ[२८]　　अयसु[२९] समुच्चयवंसे चडावइँ[२८] ।
पहिलउ गलइ बुद्धि रूसंतइ[३०]　　पच्छइ सेयसलिललवसंतइ[३०] ।
पढमविवेउ पावरसु रंजइ[३१]　　पच्छइ पुणु लोयणइँ न वज्जइ[३०] ।

'अहो ! अर्क (सूर्य), मृगांक (चंद्र) और शक्र (इंद्र) को (अपने भय से) कंपानेवाला रावण सीताके कारण मरा । मतिको नष्ट करनेवाले झूठे दर्पसे दर्पित दुर्योधन कैसे अनर्थको प्राप्त हुआ । तेरा कोई दोष नहीं है, तू दैवका मारा भागा-भागा फिरता है । इसप्रकारकी अनीति करनेवाला महान् आपत्तिको प्राप्त होता है ।' जैसे-जैसे जंबूकुमार ऐसे दडगर्भित (दर्पपूर्ण व अभिमानोत्तेजक) वाक्य वोलता, वैसे-वैसे खेचर अधिकाधिक रोषसे काँपता । (क्रोधके आवेगसे) उसका कंठ स्तब्ध हो गया, शिरा-जाल प्रदीप्त हो उठा, और विशाल कपोल प्रस्वेदसे सिक्त हो गये । ओठोंको काटते हुए, गुंजाके समान उज्ज्वल (चमकीले) लोचन, तथा फड़कते हुए नासापुटसे भयानक, ऐसे अपने स्वामीको रुष्ट हुए देखकर, तभी सन्नामधारी मंत्रियोंने दूतसे कहा—अहो ! अतिसाहसपूर्ण वाणी वोलनेवाले दूत ! तूने जो कहा वह निश्चयसे शक्तिके अभिमानसे पूर्ण एवं नाशका कारण है । क्या किसी दूसरेकी जिह्वा है, जिससे तू प्रलयकालीन सूर्यके समान प्रचंड तेजस्वी इस राजाके आगे ऐसा वोल रहा है ? इसपर कुमारने कहा—रतिके लोभी इस राजाको तुम लोगोने संकटके महासागरमे डाल दिया है । रोषसे भरा होनेसे यह अपने हितार्थको भी सुनता नही, और न कार्य-अकार्य व वलावलको ही समझता है । रोष व द्वेष मनुष्यको नाना नाच नचाते हैं, एव अति उच्च (महान्) वंशमें भी अपयश लगाते हैं । रुष्ट होनेवालेकी वुद्धि पहले ही भ्रष्ट हो जाती है, पीछे पसीनेके जलविंदुओंकी धारा (संतति) विगलित होती है । पहले तो पाप-रस विवेकको रंग देता है (दूषित कर देता है), पीछे नेत्रोंको भी नहीं छोड़ता (उन्हे भी क्रोधके आवेशसे लाल कर देता है) ।

७. घ °हिं । ८ ख दलिय° । ९. क ङ °दप्पिउ । १०. घ दइउ° । ११. घ °उ । १२. घ जिह जिह, क ख जिहं जिह । १३. घ तिहं तिहं । १४. क ङ रोसिहिं । १५ क °इ । १६ क ङ °णामिउङ° । १७ क ङ सण्णा° । १८ क घ ङ °हिं । १९. क ख घ ग ङ पइ । २०. ख ग इड° । २१ घ अन्नहो । २२ क ङ एम । २३ घ °इं । २४. घ °नवि । २५. ख ग °हि । २६ ख घ °भरिउ । २७ क मुणइ, घ ङ सुणइं, । २८ ख ग °वइ । २९ ङ अजनु । ३० क घ °इ । ३१ क °इं ।

पहिलउ कालसप्पु मणु डंकइ[31] पच्छइ अहरविंबु ना संकइ[31]।
पहिलउ फुरणु अकित्तिहिँ धावइ[31] पच्छइ पुणु नासउडिहिँ[32] पावइ[31]।
रोसमहाभरु धीरहिँ[33] दम्मइ[34] इयरु[35] पुणु वि[35] रोसेण निहम्मइ[36]।
जित्तु जि एण वि कुमइ न लज्जइ केम महंतविरोहेँ गज्जइ।
पभणइ[37] रयणचूलु[38] अवमाणहि[39] दूउ होवि वोल्लणहँ न जाणहि[39]।
वार वार अम्हइँ[40] अवगणहि[41] वार वार सेणिउ[42] णिव्वण्णहि[43]।
महु भएण पुरे पइसिवि थक्कहो वार वार जउ ठवहि मियंकहो।
कहहि[44] तासु जइ रणे अब्भिट्टइ तेरउ दूउ[45] गमागमु तुट्टइ।
विज्जाहरहिँ अम्हे रणे आयहिँ कवणु गहणु भूगोयररायहिँ।
भणइ वालु रहुवइ भूगोयरु रावणु किं न आसि विज्जाहरु।
जइ आयासे[46] गमणु हुउ कायहो तो किं सो ज्जि[47] थाणु गुणभायहो[48]।
विरुवउ[49] वुत्तु मियंकु असक्कउ तउ भएण कि नियपुरि थक्कउ।

घत्ता—विद्धंसियकरिकाणणु जं पंचाणणु निवसइ सिहरिखयालहिँ[50]।
पयइ[51] एह तहो लक्खहि[52] अह पुणु अक्खहि[53] किं वीहंतु[54] सियालहिँ ॥१३॥

पहले तो यह (क्रोधरूपी) काला साँप मनको डंस लेता है, पीछे निःशंकरूपसे अधर-बिंबको भी (क्रोधके आवेशसे व्यक्ति ओठोंको काटने लगता है)। प्रथम तो अपकीत्तिका स्फुरण होता है, पीछे नासापुटोंका फड़कना। रोषके महान् आवेगका धीरपुरुषों-द्वारा दमन किया जाता है, किंतु इतर (अधीर) व्यक्ति स्वयं रोषसे मारा जाता है। इस (क्रोध) से विजित होकर भी यह कुमति (दुर्बुद्धि खेचर) लज्जित नहीं होता, प्रत्युत कैसे महान् वैरसे गरजता है। (यह सुनकर) रत्नचूल कहने लगा—दूत होकर बोलना भी नहीं जानता, और हमारा अपमान करता है। बार-बार हमारी अवगणना (निंदा) करता है, और श्रेणिक राजाकी प्रशंसा; तथा मेरे भयसे नगरमें भीतर घुसकर बैठे हुए मृगांकके विजयकी स्थापना। रे दूत! उससे कहो कि यदि रणमें आकर भिड़े, तो तेरा यह आना-जाना छूट जाये! हम विद्याधर राजा जहाँ युद्धमें आये हो, वहाँ भूगोचरी राजाओंकी हमसे क्या स्पर्धा? इसपर बालकने कहा—क्या रघुपति भूगोचरी और रावण विद्याधर नहीं थे? यदि कौवे (काक, पक्षमें काय = शरीर)का आकाशमें गमन हो गया, क्या इसीसे वह गुणोंका पात्र बन गया? और यह वृत्तांत भी विरूप अर्थात् झूठा है कि मृगांक अशक्य (असमर्थ) है। वह क्या तेरे भयसे अपनी नगरीमें स्थित है? हस्तिसमूहरूपी काननको विध्वस्त करनेवाला जो सिंह गिरिकंदरामें (जाकर) रहता है, यह तो उसकी प्रकृति ही देखी जाती है; कहो कहो! वह क्या सियालोंसे डरकर ऐसा करता है? ॥१३॥

---

३२. क घ ङ °डहो। ३३. ख ग वी°, घ वीरिहिं। ३४. क ग घ ङ °इं। ३५. ङ वि पुणु। ३६. क घ ङ °इ। ३७ घ °णइं। ३८ क °चूल। ३९. प्रतियोमे °णहिं। ४० घ अम्हहं। ४१. क ख ग ङ °ण्णहिं, घ °न्नहि। ४२. व °उ। ४३. क ङ णिउ वण्णहिं; ख ग °ण्णहिं, घ °न्नहि। ४४. ख ग कहइ। ४५. क ङ दूअ। ४६. क घ ङ °स। ४७. क घ ङ जि, ख ज्जे, ग जे। ४८. क व ङ गुणु°। ४९. ख ग °यउ। ५०. ङ° खयालहि। ५१ क ङ °इं। ५२ प्रतियोमें °हिं। ५३. क ख ग ङ °हिं। ५४. क घ ङ °ति।

[१४]

वस्तु — हत्थतलहयकुंभिकुंभयल[1] —
उक्खित्तमोत्तिय नियवि नहरक्खुत्त[2] सीहहो कमंतहो।
अहिलसहि[3] तं हरि हणवि[4] अवसबंधु तुहुँ तहो कयंतहो[5]॥
सो हउँ[6] दूउ न जो कहमि जायवि वोल्लु निरत्थु।
तउ वड्ढियदुण्णयदुमहो[7] [8]फलदक्खवणसमत्थु॥१॥
तो महितलप्पंतविज्जाहरिंदेण उक्खित्तहत्थेण णं वणकरिंदेण।
नवनिसियपहरणफडाडोयनाएण[9] पंचमुहगुंजारसण्णिहनिनाएण[10]।
लइ लेहु लेहु त्ति आणत्तभिच्चेण[11] उट्ठंतसंतेण संगरदइच्चेण।
ता उट्ठिया दुट्ठदप्पिट्ठबललट्ठ[12] हणु हणु भणंताण खयराण सहसट्ठ।
[13]उग्गिण्णकरवालसंथाणथक्केहिँ[14] नामंतकोंतेहि[15] भामंतचक्केहि[16]।
धणुगुणनिवेसंत[17]-कड्ढंतवाणेहि[18] हंतुं समारद्ध अमुणियपमाणेहि।
तो दिट्ठ दट्ठोट्ठरुट्ठारिभावेण[19] उद्धं कमंतेण जंबूकुमारेण।
करि[20] धरिय असिदुहिय-संदिण्णरणलीह[21] छुहदुहियकालस्स[22] लवलविय णं जीह।
[23]इय जुज्झमाणेण हयपेयखंडेण पाडेइ विज्जाहरा भीमगयएण[23]।

[१४]

अपने हाथके पंजेसे आहत हाथीके कुम्भस्थलसे उखाडे हुए(गज)मुक्ताओंको, जाते हुए सिंहके नखोंसे गिरे हुए देखकर, (उसका पीछा करके) तू उस सिंहको मारना चाहता है, तो तू अवश्य ही उस यमराजका बंधु है (अर्थात् तू बहुत शीघ्र यमपुरी जाना चाहता है)। मै वह दूत नही हूँ, जो जाकर निरर्थक बात कहूँ। मै तेरे बढे हुए दुर्नीतिरूपी द्रुमका फल तुझे यही दिखानेमें समर्थ हूँ। तब पृथ्वीपर ठोकर मारते हुए, वनैले हाथीके समान हाथ (पक्षमें सूँड) उठाये हुए, नागके फणाटोपके समान नये शान दिये हुए शस्त्रको लिये हुए, सिंहगर्जनके समान निनाद करके उठते हुए, उस-संग्राम दैत्यके द्वारा अपने भृत्योको यह आज्ञा दी जाने पर कि ले लो ! ले लो (पकड़ो ! पकड़ो !)। बलमे प्रधान (श्रेष्ठ बलशाली) अष्टसहस्र दुष्ट व दर्पिष्ठ (गर्वीले) खेचर मारो मारो कहते हुए उठे। तलवारोंको निकालकर और वार करनेकी स्थितिमें आकर, भालोको झुकाते हुए और चक्रोको घुमाते हुए, धनुषपर डोरी चढाते हुए एवं बाणोंको निकालते हुए, ऐसे अज्ञात प्रमाण (सहस्रों) भटोने उसे मारनेका उपक्रम किया। तो यह देखकर जंबूकुमारने शत्रुओंके ऊपर बड़े भारी क्रोध भावसे ओष्ठ काटते हुए व ऊपरको उछलते हुए, अपने हाथमे वह कटारी धारण की जिसमे युद्धोंकी रेखाएँ पड़ी हुई थी, और जो मानो भूखसे दुःखी यमराजकी लपलपाती हुई जिह्वा ही थी। इसप्रकार युद्ध करते हुए मारे गये

[१४] १. ट °कुंभयड। २. प्रतियोमे °क्खुत्तु। ३ घ °सहि। ४ ख ग हणिवि। ५. क ट तिहो°। ६ क ख ग ट हउ। ७ क ट वड्ढिय°, घ °दुन्नय°। ८ क ट फल°। ९. ट °फणाडोय°। १० क ख ग °गुंजारि°; घ °सन्निह°। ११. क ट आनत्ति°। १२. ख ग °लट्ठ। १३ घ उग्गिन°। १४ ट °थक्केहि°। १५ क ट णामंति°। १६ क ट भामंति°। १७ क ख ग ट °निवेसंत°। १८ क ट कड्ढंत°। १९.क ख ग ट °भावेण। २० ख ग कर। २१. क ट णा दिण्ण रणि°। २२ ख ग [illegible]। २३ [illegible] पंक्ति नही।

तहिं काले संपत्तु गयणगइ सविमाणु तेणप्पिओ लइउ[२४] वरचम्मु[२५] सकिवाणु[२६] ।
इह चडहि[२७] नउ चडमि किं एत्थु[२८] चडिएहिं संगामकालम्मि कोणंतदडिएहिं ।
नासंतपट्ठीए सिग्घं न धावेवि[२९] अह[३०] जुज्झमाणम्मि एत्थेव पावेवि[३१] ।
विज्जाहरा खग्गसलिलम्मि बुड्डंत अण्णे[३१] पुणो पेक्खु[३२] हरिणु[३३] व्व उड्डंत ।
इय भणिवि एक्कंगे[३४] रिउसेण्णे उत्थरइ सो कवणु किर खयरु जो दिट्ठि तहो धरइ ।
परपहरवंचंतु नियघायमेल्लंतु सज्झडप्पदिढचम्मवट्ठीए[३५] पेल्लंतु ।
अवहत्थ-समहत्थ-दढकालवट्ठेहिं[३६] करिठाणसंठाण-कुम्मासणट्ठेहिं ।
पंचाणणालोय-मिगकडगपाएहिं[३७] सवियाससंकोयअवसारघाएहिं ।

प्रेतखंडरूपी भयानक गदासे वह कुमार विद्याधरोको मार-मारकर गिराने लगा। इतनेमे गगन-गति भी विमान-सहित वहाँ आ गया, और कुमारने उसके द्वारा अर्पित किये हुए उत्तम ढाल व तलवारको ले लिया। गगनगतिने कहा— यहाँ विमानमे चढ़ जाओ; (कुमारने कहा) नही, मै नही चढूंगा। युद्धके समय इसमें चढ़कर (आत्मरक्षाके लिए) डरसे कोनेमे जानेसे क्या लाभ? भागते हुओके पीछे त्वरापूर्वक न दौड़कर, परतु युद्ध करते हुए, यही प्राप्त करके (सामना करके) इन (अनेक) विद्याधरोंको मेरे खड्गकी धारारूपी जलमे डूबते हुए तथा अन्य (अनेकों) विद्याधरों (के कटे हुए शिरो) को (आकाशमे) हरिणके समान उड़ते हुए देखो। इसप्रकार कहकर जंबूकुमार शत्रुसेनाके एक अंगपर टूट पड़ा। फिर ऐसा कौन खेचर था, जो उसकी दृष्टिको सह सके (अर्थात् उसके आगे ठहर सके)। वह जंबूकुमार शत्रुके प्रहारसे अपनेको बचाता हुआ, अपना घात ('प्रहार) शत्रुओपर छोडता हुआ, झडपपूर्वक शत्रुसेनाको सुदृढ़ चर्मपृष्ठ (ढाल) से (पीछेको) दबाता हुआ, अतिशय शक्तिशाली काल-पृष्ठ (धनुष) के समान हाथोंको मारनेके लिए ऊँचा करके, हस्तिदंतवेधके समान गर्दन काटने-वाली खड्गरूपी नासिका (सूंड) से अधोमुख होकर; बैठकर; तथा कूर्मासनके द्वारा (शत्रुओंके) रथ-हाथी व घोड़ोंके कर-चरणोका घात करते हुए; एवं सिंहावलोकनके समान आगेके शत्रुओपर पादाघात करके शत्रुओका संहार; तथा मृगके समान पैरोके आगे करके शत्रु भूमिमे घुसकर क्रम-क्रमसे अग्रिम शत्रुओंका विनाश; फलक (शस्त्रविशेष) को वामपार्श्व मे, व खड्गको पीछे छिपाकर शत्रुको यह दिखलाते हुए कि यह असावधान हो गया है, (ऐसा सोचकर) मारनेके लिए आगे आये हुए शत्रुको मारना; और शत्रुओंके द्वारा आघात किये जाने-पर वाणमे फलक लगाकर शत्रुओंको मारना; एवं अकस्मात् पीछे हटकर फिर (सहसा आगे बढ़कर) शत्रुओको मारना, इत्यादि अनेक प्रकारके कुमारके दाव-पेंचोसे वह विद्याधर सैन्य

---

२४. क ङ लयउ। २५. क ङ °चम्म। २६ ख ग सकिमाणु। २७ क व°। २८ ख ग एत्थ, घ एण। २९. क घ ङ °वेमि। ३०. घ जह। ३१ घ अन्ने। ३२. ख ग घ पेक्ख। ३३ घ °ण। ३४. प्रतियोमे 'एक्कगु'। ३५ क °दह्रोए, घ ङ °वट्टोए। ३६. ख ग घ °वट्टेंहिं, ङ °वच्छेंहि। ३७ ङ °पाणेंहि।

घत्ता—तं विज्जाहरसाहणु ववगयवाहणु एक्कहो तासु विसट्टइ[३८] ।
वीररसंकियअंगहो तरुणपयंगहो तिमिरु जेम नहि फिट्टइ[३९] ॥१४॥

इय जंबूसामिचरिए सिंगारवीरे महाकव्वे [४०]महाकइदेवयत्तसुयवीरविरइए
सेणियदिसाविजउ नाम [४१]पंचमो संधी समत्तो[४१] ॥ संधिः ५ ॥

अपने समस्त वाहन नष्ट हो जानेसे, उस अकेले (जंबूकुमार) से ही इसप्रकार छिन्न-भिन्न होने लगा, जिसप्रकार वीररससे युक्त अंगो अर्थात् अत्यंत तेजस्वी किरणो-वाले सूर्यसे आकाशमें तिमिर फट जाता है ॥१४॥

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित 'जंबूस्वामीचरित्र' नामक इस शृंगार-वीररसात्मक महाकाव्यमें श्रेणिकका दिशाविजय नामक यह पंचम संधि समाप्त ॥ संधि ५ ॥

---

३८. ख ग °ट्टो । ३९. क फट्टइ; ख फट्टइं । ४० ख ग °देवयत्त° । ४१ क ख ग [illegible] ख
ग पचमो संधी परिच्छेओ समत्तो ।

संधि—६

[१]

देंत दरिद्दं परवसणदुम्मणं सरसकव्वसव्वस्सं ।
कइवीरसरिसपुरिसं धरणि धरंती कयत्थासि ॥
हत्थे चाओ चरणपणमणं साहुसीलाण सीसे[1] ।
[2]सच्चावाणी वयणकमलए वच्छे[3] सच्छापवित्ती[4] ॥
कण्णाणेयं[5] सुयसुयं[6]गहणं[7] विक्कमो दोलयाणं ।
वीरस्सेसो सहजपरियरो संपया कज्जमण्णं[8] ।
केरलनिवे[9] धरिए विजयंतरिए विहिवलहिं[10] जुज्झमइ[11] फिट्टइ[11] ।
जंबूसामि तहिं हुउ[12] समरु जहिं रयणसिहहो रणे अब्भिट्टइ[13] ॥ १ ॥
राउलमज्झे समरकोलाहलु निसुणेवि बाहिरि[14] सन्नज्झइ बलु ।
उव्वेविरु[15] उम्मग्गे[16] धावइ कहि[17] पारकउ[18] खोज्जु[19] न पावइ ।
कोइ[20] भणेइ काइँ एउ[21] वट्टइ कहिँ[22] संचरहु धरायलु फट्टइ[23] ।
एक्कु मियंकु असक्कउ विग्गहे[24] पग्गिव को वि लग्गु[25] पारग्गहे[26] ।

[१]

दरिद्रको दान देनेवाले, दूसरोंकी विपत्तिमें दुःखी, और सरस-काव्यको ही अपना सर्वस्व समझनेवाले कवि वीरके समान पुरुषको धारण करती हुई, हे धरित्री ! तू कृतार्थ है ॥१॥ हाथमे चाप (धनुप), सावुशील पुरुषोके चरणोंको शिरसः प्रणाम, वदनकमलमें सच्ची वाणी, हृदयमे स्वच्छ प्रवृत्ति, कानोंमे इस सुने हुए श्रुतका ग्रहण, तथा वाहुलताओंमें विक्रम, वीरपुरुप (श्लेप-वीरकवि) का यह सहज-स्वाभाविक परिकर (साधन सामग्री) है, परतु इस समय तो कार्य ही दूसरा है (अर्थात् अब तो वीर कविको युद्धका वर्णन मात्र करना है) । केरल नरेशके द्वारा धारण किये हुए आश्रय-प्रदेश (केरल-नगरी) को छोड़कर (उसके वाहर) विधाताके वलसे युद्धमे मौत भी (भयसे) पलायन कर रही थी (?) अब जहाँ युद्ध हो रहा था, वहो जबूस्वामी रणमे रत्नशेखरसे भिड़ गये ।

राजकुलमें समर कोलाहल सुनकर वाहर (भी) सैन्य सन्नद्ध होने लगा । कोई उद्विग्न होकर उन्मार्गसे भागा, परंतु शत्रुका कही कोई चिह्न भी न पा सका । कोई कहने लगा, यह क्या हो रहा है ? कहाँ चले—कहाँ भागे, धरातल तो फटा जा रहा है । अकेला मृगांक तो युद्ध करनेमे असमर्थ है, प्रायः (यह) कोई अज्ञात व्यक्ति ही युद्धमे लगा हुआ है । प्रचंड सैन्यने

[१] १ क सेसे, ख ग ङ सीसो । २ क ङ सव्वा° । ३. क ख ग वच्छि । ४. ख ग सत्था° । ५. घ कन्ना° । ६ क ख ग सुअ सुं°, ङ सुअ सुअ । ७. ख ग °गणं । ८ क घ ङ °मन्नं । ९ क ङ °णिव १० घ विहिं°, क °वलहि । ११ ख ग °इं । १२. क हुअ । १३. घ °ट्टइ । १४. क ख ग ङ सण्ण° । १५ घ उव्वि° । १६ क ङ ओमग्गहि । १७ ङ कहि । १८. घ पर° । १९. क ङ °ज्ज । २० क घ ङ को वि । २१. क घ ङ इउ । २२ क कहि । २३. ख ग फु° । २४ क °हिं । २५. क घ ङ लग्गु को वि । २६. क ङ पारिग्गहि; घ पारिग्गहिं; ।

वेढिउ सिमिरु बलेण रउद्दे जंबूदीउ व खारसमुद्दें ।
अण्णे[27] वुत्तु न वइरि न विग्गहु भेयभिण्णु हुउ रायपरिग्गहु ।
कहइ को वि कासु वि संतत्तउ[28] कालु व[29] बालु को वि[29] संपत्तउ ।
तेण-त्थाणु असेसु सरायउ वट्टइ[30] रणे असिघायहिं घायउ ।

घत्ता—तो मणि विप्फुरियहिँ पइसेवि पुरियहिँ हेरियहिँ मियंकहो अक्खिउ
तहिँ[32] खणे तेत्तडए सत्तुहुँ कडए वित्तंतु नवर जं लक्खिउ[31] ॥ १ ॥

[२]

देव देव एक्को महाइओ कुमरु को वि रिउसेण्णे[1] आइओ[2] ।
सेणिएण किं पेसिओ इमो सयणु[3] तुम्ह किं वा न जाणिमो[4] ।
तेण पक्खि संचडवि[5] तेरए वइरिसेण्णु करवालकेरए ।
गलपमाणु[6] जललोलवोलियं भुयणभारभुयदंडि[7] तोलियं ।
गरुयपहररुहिरोहचच्चियं[8] पडियमुंड-[9]भडरुंडनच्चियं[9] ।
[10]छिन्नखयरकरचरणमंडियं रत्तपोत्तधररामरंडियं[11] ।
तुरिउ तुरिउ सन्नहिवि[12] धावहो जुज्झमज्झे एवहिं[13] जि पावहो ।

(अपने राजाके) शिविरको इस तरह घेर लिया, जैसे जंबूद्वीप लवणोदधिसे घिरा है । तब किसी दूसरेने कहा—न कही शत्रु है, और न युद्ध, राजाकी सेनामे ही फूट पड़ गयी है । कोई सतप्त होकर किसीसे कहता है, कालके समान कोई बालक आ गया है, और उस (अकेले) के द्वारा राजा सहित सारी सभा रणमे उसकी तलवारके आघातोसे घायल हुई है । तब मनमे अत्यंत प्रसन्न होकर पुरीमे प्रवेश करके गुप्तचरोंने मृगाकसे वह अशेष वृत्तात कहा जो उन्होने उस अवसरपर शत्रुकी छावनीमे देखा था ॥१॥

[२]

हे देव ! हे राजन ! कोई एक महर्द्धिक कुमार शत्रु-सैन्यमे आया है । क्या इसे श्रेणिकने भेजा है ? अथवा तुम्हारा कोई स्वजन है, यह हम नही जानते । उसने तुम्हारे पक्षमे चढाई करके शत्रु सैन्यको अपनी तलवार (की धारा) के जलकी लहरोमे गले तक डुबो दिया है, और भुवनके समस्त भारको अपने भुजदंडमें तौल लिया है (अर्थात् समस्त भुवनको मानो अपनी भुजाओमे उठा लिया है), महान् प्रहारजन्य रक्तके प्रवाहसे उसे लीप दिया है, भटोके गिरे हुए मुडो व रुंडोसे नचा दिया है, खेचरोके कटे हुए हाथो व पैरोसे मंडित कर दिया है; एवं (सौभाग्य-सूचक) रक्तवस्त्रोको धारण करनेवाली (शत्रु) नारियोंको विधवा बना दिया है । अत्यत शीघ्रतापूर्वक संनद्ध होकर वेगपूर्वक गमन कीजिए, और युद्धके मध्य अभी उससे

२७ घ अन्नि । २८. क ड सल्लत्तउ । २९ ख ग घ को वि बालु । ३० ख ग वट्टइ । ३१ ख ग °यउ । ३२. ड तहि ।

[२] १ ख ग व °सेन्नि । २. क ड आयउ । ३ ख ग °ण । ४ क ड °या । ५. क घ ड °डिवि । ६ क घ ड °पमाण । ७ क ड भुवणभारभरभुवहि, °भारभरसुयहि । ८ क ड गरुय° । ९ घ °तुड न° । १०. क ड छिण्ण° । ११. घ °मडिय १२. क ख ग ड सण्ण° । १३ घ °हिं ।

तं सुणेवि रणरसियसूरया पहयविविहसंगामतूरया ।
घत्ता—रहकरितुरयभडु रणरंगपडु[१४] तुट्टंतकवयगुणनद्धउ[१५] ।
कलयलकलियवलु[१६] धयचिंधचलु चउरंगु सेण्णु सन्नद्धउ[१७] ॥ २ ॥

[३]

का वि कंत संदेसइ कंतहो चूडुल्लयहो हत्थि मणिकंतहो ।
कोडु[१] न मण्णमि एक्कु जि भल्लउ अरिकरिदंतघडिउ वलउल्लउ ।
अक्खइ का वि कंत भत्तारहो कयकिणियहो न सोह इह हारहो ।
आणहि[२] तिक्खखग्गपहनिम्मल सइं[३] हयकुंभिकुंभमुत्ताहल ।
वोल्लइ का वि कण्ण[४] गयखेवहो[५] अवसरु अज्जु[६] सामिरिणछेयहो[७] ।
होइ न होइ एण भडभीसें पहुरिणमोयणु एक्कें सीसें ।
तो घरि हउं मि जामि इउ कारेवि[८] नररूवेण खग्गफरु धारेवि[९] ।
जंपइ का वि कंत म सहिज्जहो[१०] दिट्ठए परवले[११] पढमु[१२] भिडिज्जहो[१३] ।
घत्ता—वोल्लइ को वि भडु महु कंते धडु पेक्खिज्जहि रणे सल्लंतउ[१४] ।
अगलियखग्गफरु करिलुणियकरु रिउदंतिदंते[१५] झुल्लंतउ ॥ ३ ॥

जा मिलिए। यह सुनकर शूरवीर संग्रामके रसिक हो उठे और विविध प्रकारके युद्धके बाजे बजाये गये। युद्धकलामें पटु रथ, हाथी व घुड़सवार योद्धाओंने अति पौरुषके उद्वेगसे उत्पन्न अतिशय रोमाचके कारण टूटती हुई कवचकी डोरियोंको बांध लिया, सारी सेनामे कोलाहल मच गया और ध्वजा-पताकाएं फहराने लगीं; इसप्रकार चतुरंग सैन्य संनद्ध हो गया ॥२॥

[३]

कोई कांता अपने पतिको संदेश देने लगी—अपने हाथमें सुंदर मणियोंसे घटित चूड़ेके लिए मुझे कोई कौतुक नही, बल्कि मेरे लिए तो एकमात्र वही चूड़ा भला, जो शत्रुके हाथीके दांतोसे बना हुआ हो। दूसरी कोई प्रिया अपने भर्त्तारको बोली—मूल्यसे खरीदे हुए हारकी यहां कोई शोभा नही है; तीक्ष्ण खड्गकी प्रभाके समान निर्मल गजमुक्ताओको तुम स्वयं (शत्रुके) हाथीके कुंभस्थलको आहत (विदीर्ण) करके लाओ। कोई कन्या कहने लगी—स्वामीके भूतकालके ऋणको काटने (चुकाने) का आज ही अवसर है; भटोसे भयंकर इस संग्राममे एक शिरसे स्वामीका ऋणमोचन हो या न हो, तो फिर मै भी इस कार्यके लिए पुरुप-वेप बनाकर, तलवार व ढाल लेकर (रणमे) चलूंगी। और कोई कांता बोली—तुम लोगोको (दूसरोको) आज्ञा नही देनी चाहिए, बल्कि शत्रुसैन्यको देखते ही सबसे पहले (स्वयं) भिड़ जाना चाहिए। कोई भट बोला—हे कांते! तू युद्धमे मेरे धड़को बाणो-द्वारा बीधा जानेपर भी, हाथसे खड्ग व ढालको न गिराकर, शत्रुके हाथीके सूंड़को काटकर, उसके दांतोमें झूलते हुए देखना ॥३॥

१४. क ङ °गडु। १५. ख ग °नट्ठउ। १६. ख ग घ °गलु। १७ क ख ग ङ सण्ण°।

[३] १ क ख ग ङ कोड। २. घ °हिं। ३. क ख ग ङ सइ। ४. क घ ङ कंत। ५. क ख ग ङ °खेयहो। ६ क ङ अज्ज। ७ ख ग सामिरण°। ८. ख ग कारवि। ९. ख ग धारमि। १०. क ग °ज्जहे, घ °ज्जहिं। ११ क ङ दिट्ठइ परवलु, घ दिट्ठइ परवलि। १२ क ङ °म। १३ ज्जहिं, ङ °ज्जहि। १४. क ङ खिल्लतउ, घ सिल्लं°। १५. ख ग °दत।

[४]

नीसरिउ सेण्णु[1] पयडंतखोहु भडलोट्टियकोट्टट्टालओहु[2] ।
संसोहियरोहियसमरखेत्तु तं[3] पेक्खवि[4] धाइउ[5] सबलु[6] सत्तु ।
राउलहो[7] मज्झे जुज्झइ सुधीरु[8] सहुँ[9] खयरहिँ जंबुकुमारु वीरु[10] ।
एत्तहिँ[11] लग्गइँ[12] कियकलयलाइँ विण्णि वि विज्जाहरनरवलाइँ ।
कंबाहय-चलहय-संदणाइँ वहुसुरवहुनयणाणंदणाइँ[13] ।
मणकोविय-चोइय[14]-गयघडाइँ[15] उच्चेडिय-फेडिय-मुहवडाइँ ।
सुहसाहिय-वाहिय-हयथडाइँ[16] रणरंगिय-वग्गिय-भडथडाइँ ।
[17]दप्पहरण-पहरण-थिरकराइँ उग्गामिय-भामिय-असिवराइँ ।
गुणगाढिय-काढिय-धणुहराइँ[18] एक्केकमेक्कमेल्लियसराइँ ।
घत्ता—उट्ठिउ ताम रउ मइलंतधउ[19] विहिवलहँ[20] भारु असहंतिए ।
निब्भरखिन्नियए[21] निव्विण्णियए नीसासु व मुक्कु[22] धरित्तिए[23] ॥४॥

[५]

अह सुहडकोवडज्झंतियाहे[1] उच्छलइ व धूमुग्गारु ताहे[2] ।

[४]

संभ्रम (क्षोभ) प्रकट करता हुआ सैन्य निकल पड़ा, और भट कोट व अट्टालिकाओंपर (सतर्कतासे) प्रवृत्त हो गये। अच्छी तरह शोधा हुआ समरक्षेत्र घेर लिया गया, ऐसा देखकर शत्रु अपने सैन्यसहित (उसकी ओर) दौड़ पड़ा। उधर राजकुलके अंदर वह श्रेष्ठ धीर-वीर जंबूकुमार खेचरोंके साथ युद्ध कर रहा था, और इधर दोनों विद्याधरोंकी सेनाएं कलकल (कोलाहल) करती हुई आपसमें लग गयी। चाबुकसे आहत हुए चंचल घोड़ोंवाले रथ अनेक सुरवधुओंके नेत्रोंको आनंद देने लगे। मनाक् (थोड़ा) कुपित करके गजसमूहोंको प्रेरित किया गया। जिनके मुखपटोंको उचाटकर हटा दिया गया था, वैसे अच्छी तरह साधे हुए घोडोंके समूह चलाये गये। रणके रंगीले भटोंके समूह वर्गोंमे वंट गये। दर्पका नाश करनेवाले आयुधोंको अपने स्थिर हाथोंमे लिये हुए, म्यानसे निकाले हुए तलवारोंको घुमाते हुए, तथा सुगाढ अर्थात् सुदृढ़ एवं खींची हुई प्रत्यंचासे युक्त धनुषोंको धारण करनेवाले योद्धा परस्पर एक दूसरेपर बाण छोड़ने लगे। तब ध्वजाओंको मलिन करता हुआ ऐसा रज उठा, मानो दोनों सेनाओंका भार सहन न कर सकनेवाली धरित्रीने अत्यंत खेदखिन्न होकर बड़ा निःश्वास छोड़ा हो ॥४॥

[५]

अथवा सुभटोंके कोप-[ाग्नि] से दग्ध होते हुए मानो उसका धूमोद्गार ही ऊपरको

[४] १. ख सिन्नु। २ क ड °कोट्टाल°। ३ क ड तें। ४. क ख ड पेक्खिवि। ५. क ड धायउ। ६. क ड सयलु°; ख ग सयलु सत्तु। ७. ख °लहं। ८. क ड सुवीरु। ९. ड सहु। १० क ड धीरु। ११ ख ग °हे। १२. ख ग °इ। १३. ख ग °णाय। १४ क ड °चोविय। १५. ड °घडाइ। १६. ख ग °तटाइं। १७. कड दप्पहडण°। १८. ड °हराइ। १९. ख ग मइलंतधउ। २० क ख ग ड °बलहिं। २१. क ख ग ड °खिण्णि° २२. ख ग मुक्क। २३ ख ग धर°।

[५] क °याहिं, ड °याहें। २. क ड ताहें।

पयछड्डिवि[3] अप्पाणउ[4] तडेइ   अकुलीणु अवस मत्थए चडेइ[5]।
मज्जइ व महागयमयजलेण   नच्चइ च चमरचलमरुछलेण[6]।
अंधारियाइँ निम्मलथलाइँ[7]   संरुद्धचक्खु वेण्णि वि बलाइँ।
परु अप्पु न वुज्झंतेहिँ तेहिँ   जुज्झिउ णं जडमइ जोइएहिँ।
हत्थिहे[8] गलगज्जि निसामिऊण   भडु हणइ किवाणें धाविऊण।
हयहिंसए[9] जाणिवि आसवारु   को वि मुयइ चक्कु नवनिसियधारु।
केणावि कलिउ रहु घरहरंतु   धाणुक्कें विद्धउ थरहरंतु[10]।
हक्कंतहो कासु वि को वि घडइ[11]   वज्जासणि व्व सिरि लउडि[12] पडइ।
घत्ता—सुहडरुहिरपएण करिवरमएण हयफेणपवाहहिँ नामिउ[13]।
परमइलणु पवलु देविणु कवलु[14] दुज्जणु व रेणु उवसामिउ[15] ॥ ५ ॥

[६]

रुहिराणत्तु रणमहि[1] वहई[2]   संछिन्नमूलु[3] रउ नहे सहई।
अंगारसेसवइसाणरहो   पढमुट्ठिउ धूमु व भमइ[4] तहो।

उछल रहा हो। चरणों (अर्थातः भूमि)को छोड़कर वह धूल अपनेको विस्तीर्ण कर रहा था, क्योंकि (शक्तिसे न दवाया हुआ) अकुलीन व्यक्ति और पृथ्वीमे लीन(शांत) नहीं हुआ धूल अवश्य मस्तकपर चढ़ता है। वह युद्धभूमि मानो महागजोंके मदजलसे मज्जन (स्नान) करने लगी, और चंचल चमरोंसे प्रसूत मरुत्के छलसे मानो नाचने लगी। निर्मल स्थलप्रदेश अंधकारपूर्ण हो गये। दोनो सेनाओंके नेत्र धूलसे अवरुद्ध हो गये। उन्होंने अपने और परायेको न बूझते हुए इसप्रकार युद्ध किया जिसप्रकार कोई जड़मति (मूर्ख) जुगनुओसे(?) भिड़ जाये। हाथीके (द्वारा किये हुए) गलगर्जनको सुनकर किसी भटने दौड़कर वार किया; घोडेके हीसनेसे सवारको जानकर किसी योद्धाने पैनी की हुई धारवाले चक्रको छोड़ा। किसी धनुर्धरने घरघराहट करते हुए रथको जान लिया, और उसे (बाणोसे) ऐसा बींध दिया कि वह थर्रा उठा। किसीको हांक लगाते हुए कोई योद्धा किसी अन्यसे ही जा भिड़ा, और उसके शिरपर वज्रदंडके समान लकुटि(लाठी) का प्रहार हुआ। सुभटोंके रुधिररूपी पयसे, हाथियोंके मदसे, और घोड़ोके फेनके प्रवाहसे नमाया हुआ (अर्थात् गीला करके शांत किया हुआ) धूल, दूसरेको मैला (कलंकित) करनेवाला प्रबल ग्रास (पर्याप्त सामग्री) देकर किसी दुर्जनके समान उपशांत हो गया ॥५॥

[६]

रणभूमिने रुधिरजन्य अरुणत्व अर्थात् लालिमाको धारण किया, और मूल-संछिन्न (पृथ्वीसे बिलकुल अलग कटा हुआ) रज आकाशमें ऐसा शोभायमान हुआ मानो पूर्णतया अंगाररूप हुए (निर्धूम) वैश्वानरका प्रारंभमें उठा हुआ धूम्र भ्रमण करता हो। रजका

३ क ङ °छंडिवि। ४ क ङ °णउं। ५ ख ग °वि। ६. ख ग °वलेण (?)। ७ ख ग °वलाइं या °छलाइं (?) ८. क °हिं; घ ङ °हि, ख ग हत्थेहे। ९. क घ ङ °हिंसिय ख ग °हिंसइ। १०. ख ग घर°। ११. क °डं। १२ क ङ लवडि। १३. क ङ °उं। १४ क °णु। १५. क °मिउं।

[६] १. ख ग रणि°। २. ख ग हवई। ३. क घ ङ सच्छिण्ण°। ४. ङ त°।

दूरयरोसारिय रयपसरे[५] परिकलिए[६] परोप्परु अप्प-परे[७] ।
संवाहिय संदण भयरहिया पच्चारयंत पहरहिँ[८] रहिया ।
थिरथक्क पडिच्छइ हत्थिहडा धावंतिहि[९] पडिगयघडहि झडा ।
वाहंति हणंति वाह कुमरा खणखणखणंतकरवालकरा ।
विंधंति[१०] जोह जलहरसरिसा [११]वावल्लभल्लकण्णियवरिसा ।
फारक्क परोप्परु ओवडिया[१२] कोंताउह कोंतकरहिँ[१३] भिडिया ।
घत्ता—खंडियकयसिरउ रयभरथिरउ दट्ठाहरु[१४] रणु सरसव्वणु[१५] ।
णं [१६]नहखयचियउ निट्ठुरहियउ कण्णाडविलासिणिजोव्वणु ॥ ६ ॥

[७]

रणं [१]निविडभडथट्टसंघट्टसूरं महाकलयलाराववज्जंततूरं ।
रणं सरिय-हुंकरिय-धाणुक्कचंडं सटंकारकोवंडउड्डंतकंडं ।
रणं घडिय-खडखडिय-तिक्खासिधारं झडप्पंत-झंपंत-फारक्कफारं ।

प्रसार दूरतर अपसृत हो जानेपर, परस्पर अपने परायेको पहचानकर, (शत्रुपक्षके) रथियोको प्रहारोसे आह्वान करते हुए, निर्भय होकर रथ चलाये गये। एक ओरकी हस्तिसेना स्थिरतापूर्वक स्थित रहकर, दौड़कर आते हुए शत्रुगजोसे झड़पकी प्रतीक्षा कर रही थी। खणखण करते हुए करवाल हाथोंमे लेकर, राजकुमार (अपने-) अश्वोको चला रहे, व (शत्रुसेनाके अश्वोको) मार रहे थे। योद्धा लोग जलधरोके समान बल्लम, भालों व बाणोकी वर्षा करते हुए (परस्परको) बीध रहे थे। फारक्क (शस्त्र) को धारण करनेवाले एक दूसरेपर टूट पड़े, और कुंतवाले कुंत धारण करनेवाले प्रतिपक्षियोसे भिड़ पडे। (योद्धाओंके) कटे हुए शिर, स्थिर (शांत) रज-भार (धूलि-विस्तार), (योद्धाओ-द्वारा क्रोधसे) दष्ट-अधर और (योद्धाओंको लगे हुए) सद्य व्रणों तथा आकाशमे पक्षियोंके समूहसे युक्त एवं निष्ठुर-हृदय(योद्धाओ)वाला वह युद्ध(स्थल)ऐसी कर्णाट-विलासिनीके यौवनके समान हो रहा था (सुरतक्रीड़ोपरांत) जिसके शिरपरके केश बिखरे हों, जिसका रजभार (रजस्राव अथवा रतभार अर्थात् सुरतक्रीड़ाका आवेग) शांत हो गया हो, एवं रतियुद्ध (अथवा प्रणय-कलह) मे जिसके अधर काट लिये गये हों, और उनपर अभी भी सरस-व्रण (ताजे घाव) विद्यमान हो, तथा जिसके कठोर स्तन नखक्षतसे युक्त हो ॥६॥

[७]

वह संग्राम संघर्षशूर महान् वीरोके समूहों और बजते हुए तूरोसे बड़े भारी कोलाहलसे युक्त था। उच्चस्वरसे हुंकार छोड़नेवाले धनुर्धरोसे वह बड़ा प्रचड हो रहा था, और वहाँ टंकार करते हुए धनुषोसे बाण उड़ रहे थे। वह युद्ध आपसमे मिलकर खड़खडाती हुई तीक्ष्ण असिधाराओसे युक्त था, और वहाँ झपटे जाते हुए बड़े-बड़े फारक्क (शस्त्र) टूट रहे थे।

५. क ङ °रइपसरो। ६ क ङ °लिय। ७. क ङ °परो। ८. क ङ °रहि। ९. ट °तिहि। १०. ख ग विद्धति। ११. क ङ प्रतियोमें 'वावल्ल''' वरिसा' के पूर्व 'विहिवलहिँ परोप्परु नामरिसा' इतनी अर्द्धपंक्ति अधिक है, ख प्रति मे भी यह पाठ है, परन्तु पीछे किसीके द्वारा लिख दिया गया है, और मुद्र में नही है। १२ क ङ उव्व°। १३. क °करहि। १४ क दिट्ठा°। १५ ख ग सह°। १६ क णहे°।

[७] १ ख ग निवड°।

रणं[2] कुंतकोडीहुलिज्जंतजोहं विकंत[3]-परिचत्त[4]-तणुताणसोहं ।
रणं पहरपज्झरिय-रुहिरप्पवाहं रणं [5]लुणियमुहनालिविग्गलंतवाहं ।
रणं दंतिदंत[6]ग्गभिज्जंतगत्तं रणं रत्तकणसित्तकयरत्तछत्तं ।
रणं मासवसगाससंचरियगिद्धं रणं सिरपरिक्खंत-हिंडंत[7]सिद्धं ।
भडो को वि रहसुब्भडो[8] रहि सखग्गो गिरिंदे मइंदो व्व [9]उक्कमवि लग्गो[9] ।
भडो को वि दंतग्गे दाऊण पायं महाकुंभिकुंभत्थले देइ[10] घायं ।
भडो को वि जसलंपडो निग्गयंतो वलग्गो[11] मयग्गे[12] गुणक्कं[13] कमंतो ।
भडो को वि निज्जंतु नो जाइ सग्गे पयंपेइ गिव्वाणनारीण मग्गे[14] ।
न ता[15] जामि ओसारि दूरे विमाणं रणे जा न भग्गं विवक्खस्स माणं ।
घत्ता—मारिय सारिनरु भडु[16] कोंतकरु तणुभिन्नदंत[17] अगुणंतउ[18] ।
करिणी मणि गणइ[19] करिणो[20] हणइ[21] रणरक्खसु[22] छलिउ धणुंतउ[23] ॥७॥

[८]

भडु को वि विसूरइ दलियसत्तु वहुपहरविहंडिउ भूमिपत्तु ।

वह समर भालोंकी नोकोपर हूले जाते हुए योद्धाओं एवं शूरोके द्वारा परित्यक्त तनुत्राणों (रक्षाकवचो) से शोभायमान था। वह संग्राम प्रहारोंसे झरते हुए रुधिरके प्रवाह तथा काटी हुई मुखनाड़ियोसे निकलती हुई वाष्पसे युक्त था; और वह युद्ध हाथियोके दातोके अग्रभाग (नोक) से भेदे जाते हुए शरीरों, तथा रक्तकणोसे सिंचकर रक्तवर्ण हुए छत्रोसे भरा था। और वह समर मास व चर्बीके ग्रासके लिए संचार करते हुए गृद्धों, व (शवोंकी) कपाल परीक्षाके लिए भ्रमण करते हुए सिद्धों (औघडो) से व्याप्त था। कोई वेगमे उद्‌भट अर्थात् अत्यंत वेगवान् (फुर्तीला) योद्धा खड्ग लिये हुए उछलकर इसप्रकार रथपर जा चढता था, जिसप्रकार मृगेंद्र कूदकर पर्वतराजपर जा चढ़े। किसी भटने दांतोकी नोकोपर पैर देकर किसी महागजके कुंभस्थलपर आघात किया; कोई यशके लोभसे (मैदानमें) निकलता हुआ योद्धा, प्रत्यंचाको टंकारता हुआ एक श्रेष्ठ खच्चरसे जा लगा। कोई भट स्वर्गमे ले जाया जानेपर, मार्गमें गीर्वाण नारियोसे इसप्रकार कहकर नही जाता था—मैं तबतक नही जाऊँगा जबतक रणमे शत्रुका मान भंग नही हो जाता; इसलिए (मुझे लेनेके लिए लाये हुए) अपने विमानको दूर हटाओ। कोई योद्धा गजपर्याणपर बैठे हुए सारि-नर (महावत ?) को मारकर हाथमें कुंत लिये हुए दाँतोसे विलक्षण (हस्ति) शरीरपर ध्यान न देते हुए, अपने मनमे (हाथीको भी) हथिनी समझते हुए हाथीको मारकर एक धनुर्धारी रणराक्षस (युद्धपिशाच, प्रचंड योद्धा) को भी वंचना दे देता है ॥७॥

[८]

कोई भट शत्रुका दमन करके (स्वयं भी) प्रहारोसे आहत होकर भूमिपर गिरता

---

२ क रणे। ३. क चिक्कंत°, ख ग विकंतार°। ४. क °परिपत्तु°, ख ग व °परिवत्त°; ङ °परिचत्तु°। ५ ख ग लुलिय°। ६ ख ग घ °दंतग्गि। ७. क ङ हिंडति। ८ क ङ °सुभडे। ९ क घ ङ °मिवलग्गो। १० घ देवि। ११ ङ °ग्गे। १२. क घ ङ मयग्गे। १३ क घ ङ गुणुक्क। १४. ङ मग्गो। १५ क ख ग ङ तो। १६ क भड। १७. क ङ भिण्ण°। १८ घ अणु°। १९ क घ ङ °ङ, घ मणइ। २०. क घ ङ °णा। २१. क घ ङ °इ। २२. घ °स। २३. घ ङ धुणतउ।

हा महु वि हणंतहो को विसेसु जं वइरि न जायउ वंससेसु ।
नीसेसें[1] सामिरिणु किर विमुत्तु सहु सुवइ[2] मरणनिद्दाए सुत्तु[3] ।
रिउघायहिं[4] पहु-किंकर-विहत्त मुच्छंगय[5] वेण्णि वि भूमिपत्त ।
पक्खानिलेण[6] उम्मुच्छमाणु पहु पेक्खवि[7] मण्णइ सुहनिहाणु ।
तोडंतु[8] णियंतइं[9] दुहयरेण[10][11] वारिज्जइ गिद्धु न किंकरेण ।
सिरु दिण्णउ[12] समरि न तो[13] वि सक्कु सामियपसायरिणु[14] सेसु थक्कु ।
अंतावलि णियलहिं लद्धबंधु दारियतणु[15] निवडइ भडकबंधु ।
सिरु सामिहे[16] सहुं[17] हियएण दिण्णु सयखंडु[18] पलासहं[19] पलु पइण्णु[20] ।
जीविउ सुररमणिहुं[21] महिहे[22] वण्णु[23] पाइक्कसरिसु को होइ अण्णु ।

घत्ता— करिकरकलियगलु[24] पयदलियगलु उर-सिर-सरीरसवचूरिउ[25] ।
न मुणइ[26] पिउ कवणु समसरणमणु रणे सुहडकलत्तु विसूरिउ ॥८॥

हुआ इसतरह सोच करता है—अहो ! मेरे भी (शत्रुओंको) मारनेका क्या वैशिष्ट्य जबकि वैरी वंश शेष नहीं हुआ। अपने शिरसे (अर्थात् शिर देकर) कोई भट स्वामीके ऋणसे निर्मुक्त (निर्मुक्त) होकर मरण-निद्रासे सेवित होकर (निश्चित) सोता है। शत्रुके आघातसे स्वामी सेवकसे अलग हो गया और मूर्च्छित होकर दोनों ही भूमिपर गिर पड़े। पंखेकी हवासे उन्मूर्च्छित होते हुए स्वामीको देखकर एक सेवक ऐसा मानता है मानो उसे सुखका खजाना मिल गया हो। उसकी आँतोंको तोड़ता हुआ गृद्ध भी इसप्रकारके दुःखमें लीन सेवकके द्वारा हटाया नहीं जाता कि युद्धमें शिर भी दिया तो भी स्वामीकी कृपाका ऋण शेष ही रह गया। जिसके पेटकी आँतें तक भी सांकलोंसे जकड़ी गयी हैं, इसप्रकार विदीर्ण शरीर होकर किसी भटका कबंध (धड़) गिर पड़ा। (जिसने) हृदयके साथ-साथ अपना शिर भी स्वामीके लिए समर्पित कर दिया, और मांस सौ-सौ टुकड़े करके मांसभोजियों अर्थात् राक्षसोंके लिए दे दिया, जीवन सुररमणियोंके लिए, तथा पृथ्वीके लिए अपना वर्ण अर्थात् यश.गाथा प्रदान कर दी, ऐसे पदातिके समान अन्य कौन हो सकता है ? गर्दन (स्वर्गके द्वारा मारे गये) हाथीके सूंडमें फंसी हुई, पैर हाथीके पांव तले कुचले हुए, उरस्थल, शिर व संपूर्ण शरीर चूर-चूर किया हुआ—ऐसी स्थिति देखकर (प्रियतमके) साथमें मरनेकी भावनासे आयी हुई सुभटप्रिया पहचान नहीं पायी कि प्रिय कौन है ? और शोक करती हुई बैठ रही ॥८॥

[८] १. ब नीसेस । २. ख ग अ सुवइ । ३. ब सुत्तु । ४. ख ग °घाहि । ५. क ङ वलिउ व, घ विलिउ व । ६. क ङ पक्खानिलेण । ७. क ख ङ पेक्खिवि । ८. ख ग तडइ; ब तडइं । ९. क ङ °इं । १०. ख ग °तउ । ११. क ङ °यरेण । १२. ब °उं । १३. क ङ तो । १४. ब सेसथक्क । १५. ब °यरिउ । १६. क ग °हिं ब ङ हिं । १७. ख ग सहु । १८. क ख ग ङ °खंड । १९. क ङ °सहं । २०. ब पइन्नु । २१. ख ग °णिहिं । २२. क ब ङ °हि । २३. क ब ङ वन्नु । २४. ख ग °गलियगलु । २५. क ङ °सवचूरिउ । २६. ख ग ब ङ °ई ।

[९]

उहयबलइँ निब्भरु जुज्झंतइँ उहयबलइँ[1] संगरसमसत्तइँ[2] ।
उहयबलइँ[3] [4]आवट्टियसूरइँ उहयबलइँ भीसद्दियतूरइँ[5] ।
उहयबलइँ मोडियधयछत्तइँ उहयबलइँ[3] अवलंबियसत्तइँ[6] ।
उहयबलइँ पहरणनिब्भिण्णइँ[7] रणदेवयहे[8] वे वि बलि दिण्णइँ[7] ।
वेण्णि वि वार-वार संघट्टइँ वार-वार कायरनर फट्टइँ[9] ।
वार-वार जज्जरियमयंगइँ[10] वार-वार तोरवियतुरंगइँ ।
वार-वार कप्पियतणुताणइँ वार-वार ढुकंतविमाणइँ ।
वार-वार रुहिरोहतरंतइँ वार-वार मुच्छिरइँ मरंतइँ ।
वार-वार आमिसवसगासइँ वार-वार रसधवियपलासइँ ।

घत्ता—वार-वार झरिहे[11] लोहियसरिहे[12] [13]हयकरडिकरंकसिलायडे ।
वार-वार बलहि[14] पयडियछलहिँ[15] पक्खालिय पहुपरिहवपडे ॥९॥

[१०]

एरिसम्मि दुद्धरम्मि भीसणे रणे गरुयनाय-[1]दिण्णघाय-तुट्टपहरणे ।
सुहडसंड-बाहुदंडमुंडे[2]मंडिरे लुणियटंक-जणियसंक-वाहुहिंडिरे[3] ।

[९]

दोनों सेनाएं घमासान रूपसे जूझ रही थी । दोनों सेनाएं युद्धमें समान बलवाली थी । दोनों सेनाओमे शूरवीर परस्परकी ओर बढ रहे थे । दोनों सेनाएं तूरोंके रवसे भयानक हो रही थी; एवं दोनो सेनाओंके योद्धा परस्परके ध्वज व छत्रोंको भग्न कर रहे थे; तथा पौरुषका अव-लंबन लिये हुए थे। दोनों पक्ष आयुधोसे विदीर्ण हो रहे थे, और दोनों ही रणदेवताके लिए बलि चढ़ रहे थे। दोनो सैन्य बार-बार परस्पर संघट्टन कर रहे थे, व कायर लोग बार-बार फूट रहे थे,अर्थात् तितर-बितर होकर भाग रहे थे। बार-बार हस्ती जर्जर हो रहे थे, व घोड़े उत्तेजित। बार-बार शरीर-त्राण (रक्षाकवच) काटे जा रहे थे, एव (मृत वीरोंको स्वर्ग ले जानेके लिए देवोंके)विमान उपस्थित हो रहे थे । बार-बार रुधिरके प्रवाहमें तैरते हुए लोग मरते समय मूर्च्छित हो रहे थे । बार-बार राक्षस आमिष एव वसाको निगल रहे, तथा रक्त पी-पीकर प्रसन्न हो रहे थे । पुन -पुनः झरती हुई लोहित-सरिताके घोड़ों व हाथियोके अस्थिनिर्मित शिलातटों पर सेनाओके द्वारा अनेक प्रकारका चातुर्य प्रकट करते हुए, अपने स्वामीका पराभवपट धोया जा रहा था ॥९॥

[१०]

इसप्रकारके उस दुर्द्धर व भोषण रणमे जहाँ कि बड़े भारी नादके साथ किये हुए आघातोसे शस्त्र टूट गये थे, और जहाँ कि सुभट-समूहके (कटे हुए) बाहुदंड व तुंड बिछे हुए

[९] १. उभय° । २ क °संतइ, घ °सतइ, ङ सगरसमंतइ । ३. ख क °बलय । ४ घ आवड्डिय°, ङ आवड्डिय° । ५. क ख ग नीस° । ६ क घ ङ °सत्यइ । ७. °न्नइ । ८ क ङ °यहिं; घ °यहि । ९ क ङ फुट्टइ । १० क ङ °मइंगइ । ११. क ज्झरहि घ झरिहि, ज्झरहि । १२. घ °सरिहिं । १३. ख ग °करडे° । १४. क ङ व्वलहि । १५. ङ °छलहि । विशेष—इस कडवकमें क ख ग और ङ इन चारो प्रतियोमे अधिककर बहुवचनके °इं में अतमें होनेवाले शब्द 'इ' से अत होते हैं। जैसे जुज्झतइ>°तइ, सूरइं>सूरइ, बलइं>बलइ इत्यादि ।

[१०] १. घ दिन्न° । २ क ङ °तुंड° । ३. क ङ °हुडिरे, ख ग वाहुडिडिरे ।

खंडसुंडवेययंड[4]-चंडभिभले करधरंत-नीसरंत-अंतचुंभले[5]।
रुहिरपंकखुत्तचक्क[6]-थक्कसंदणे पत्तमोहँ[7]-पडियजोह-कडविमद्दणे।
करि व[8] घडिय वे वि भिडिय-वद्धमूल [9]दुट्ठदवणगयणगमण-रयणचूल।
वे वि खयर विज्जपवर-लच्छिलक्ख हयगयंद णं मयंद खग्गनक्ख।
सुप्पमाणवरविमाण-नियडआय वे वि वीर मेरुधीर दिण्णघाय।
जमनिहेण मणिसिहेण घाउ दिण्णु[10] वइरियाणु वंचमाणु खग्गु छिण्णु[10]।
रिउ निरत्थु[11] सुण्णहत्थु[12] नियवि ताम जउ[13] मुणेइ[14] आहणेइ पुणु वि जाम।
खग्गखंडु चयवि[15] चंडु[16] पाविऊण थिरकरेण मोग्गरेण भामिऊण।
पहउ तासु मणिसिहासु सिग्घजाणु धयसडंतु खडहडंतु गउ विमाणु।
नहे ठिएण मणिसिहेण वच्छे भिण्णु[10] निसियधारु असिपहारु अरिहे[17] दिण्णु[10]।

घत्ता—वाएं[18] गयणगइ हुउ वियलमइ[19] कीलालोहालियदेहउ।
सहइ विमाणवरे संझावसरे अत्थइरिसिहरे[20] रवि जेहउ[21] ॥१०॥

थे, तथा जहाँ योद्धाओकी कटी हुई जांघ व बाहू शका (भय) उत्पन्न करते हुए घूम रहे थे, और जहाँ सूंड कटा हुआ कोई हाथी प्रचडतासे विह्वल एवं भयानक हो रहा था, तथा अपने सूंडको निकली हुई आतोका शेखर बनाये हुए था, और जहाँ कि रुधिर-पंकमें चक्का फस जाने से रथ ठहर गये थे, तथा मूर्च्छित होकर पड़े हुए योद्धाओका मर्दन हो रहा था; ऐसे उस महा संग्राममे वे दोनो ही विद्याधर, दुष्टोका दमन करनेवाला गगनगति और (दूसरा) रत्नचूल (रत्नशेखर), मिलकर हाथियोके समान वद्धमूल होकर अर्थात् जमकर भिड़ गये। वे दोनो ही प्रवर विद्याओके धारक थे, और (विजय)लक्ष्मीपर इसप्रकार अपना लक्ष्य दिये हुए थे जिसप्रकार नखोरूपी खड्गसे युक्त वह मृगेंद्र जिसने गजेंद्रको मार डाला है। फिर सुप्रमाण (सुनिर्मित) उत्तम विमानोसे निकट आकर दोनो ही मेरुके समान धीर-वीर परस्पर आघात करने लगे। यमके समान रत्नशेखरने (गगनगतिपर) प्रहार किया और शत्रुको वंचना देते हुए उसका खड्ग खंडित कर डाला। इसप्रकार शत्रुको अस्त्ररहित खाली हाथ देखकर, अपनी जय मानते हुए जब तक कि वह पुनः आघात करे, तब तक गगनगतिने उस खड्गके टुकड़ेको छोडकर, एक प्रचंड मुद्गर पाकर, उसे स्थिर हाथोंसे घुमाकर रत्नशेखरके शीघ्रयान-पर प्रहार कर दिया, तो ध्वजाको गिराता हुआ वह विमान खड़-खड़ करता हुआ नष्ट हो गया। तब नभस्थित मणिशेखरने पैनी की हुई धारवाले तलवारसे शत्रुके वक्षस्थलको चीरता हुआ प्रहार किया। आघातोसे गगनगति विकलमति अर्थात् विह्वल, और लोहू-लुहान शरीर हो गया, तथा संध्याके समय अपने विमानमें बैठा हुआ वह ऐसा शोभायमान हुआ जैसा अस्ताचल पर सूर्य ॥१०॥

४ क °वेपयड°। ५ ख ग °रुभले। ६. क °खुब्भचक्क। ७ घ_ पत्त°। ८. ड करिउ। ९ क ख ट दुट्ठदमण°। १० ख °न्नु। ११ क ड °त्थ। १२. घ सुन्न°। १३ क जइ। १४ क घ ड म°। १५. क ट चइवि। १६ क चड। १७ क घ °हिं, ड °हि। १८ क घाए। १९ क ड विमल°, घ °गइ। २० क ड अत्थयरि°। २१° घ °उ।

[११]

सकिवाणु रयणसिहु[१] वणियगत्तु[२]   गयणंगाउ रणभूमि पत्तु।
एत्थंतरे पाइहिँ[3] पहु निएवि[४]   पडिगाहिउ नियसेण्णे[५] नएवि।
करि ढुक्कु[६] सपहरणु[७] सरिउ[८] गुडिउ[९]   विज्जाहरवइ लहु तेत्थु चडिउ।
तहिँ[१०] काले मियंके[११] मुक्कखोहु   पुच्छिज्जइ नियकरिखंधरोहु[१२]।
इय कवणु गयणे जुज्झिय-सलेव   आरोहु भणइ[13] विण्णवमि[१४] देव।
एहु हयविमाणु जो भूमि आउ   सो सत्तु रयणसिहु[१५] खयरराउ।
बीयउ पुणु अवसरु[१६] मुणिय-वत्तु   गयणगइ तुम्ह मेहुणेउ[१७] पत्तु।
दीसइ विमाणे[१८] मुच्छावसंगु[१९]   निर्त्तिसपहारवियारियंगु[२०]।

घत्ता—संभावियसयणु निसुणिवि[२१] वयणु आरोहनरेण संसाहिउ[२२]।
उम्मुहलोयणेण[२३] विंभियमणेण[२४] सविसेसु मियंके चाहिउ॥११॥

[१२]

परियाणवि[१] फुडु नेहट्टिएण   गयणगइ पसंसिउ पत्थिवेण।
इयरेण[२] सरिसु किर[३] [४]को य[४] बंधु   को विहुरमहाभरे देइ खंधु।

[११]

रत्नशेखर घायलशरीर (व्रणितगात्र) होकर अपने कृपाणसहित, आकाशसे भूमि-पर आ गया। इसके अनतर पदातियोने अपने स्वामीको देखकर अपनी सेनामे ले जाकर स्वागत किया। वहाँ स्मरण करनेसे कवच व शस्त्रोंसे युक्त हाथी उपस्थित हुआ, और विद्याधरपति (रत्नशेखर) शीघ्र उसपर चढ़ गया। उस समय मृगांक राजाने अपने क्षोभरहित महावतसे पूछा—आकाशसे दर्पपूर्वक युद्ध करके आनेवाला यह कौन है? तब सवार (महावत) ने कहा—देव! विज्ञापन करता हूँ कि यह जो हत-विमान होकर भूमिपर आया है, वही तो हमारा शत्रु खेचरराज रत्नशेखर है; और वह दूसरा अवसर तथा वृत्तांत जानकर तुम्हारा साला गगनगति आया है। वह निर्दय प्रहारोसे विदीर्णशरीर होकर विमानमें मूर्च्छित पड़ा हुआ दिखाई देता है। महावतने जो कहा, उसे सुनकर और स्वजन (गगनगति) को जानकर आकाशकी ओर आखे उठाये हुए मृगाकने विशेषरूपसे (उसके लिए शुभ)कामना की॥११॥

[१२]

इस बातको जानकर (गाढ)स्नेहवश राजा मृगांकने गगनगतिकी इसप्रकार प्रशंसा की—इसके समान दूसरा कौन मेरा बंधु है? महान् आपत्तिमे कौन कंधा (सहारा) देता है, घनी

[११] १. घ °सिहु। २. क ख ग ङ °सत्तु। ३ क घ पायहि, ङ पायहिं। ४ ङ णएवि। ५. घ °सिन्ने। ६ ङ ढुक्खु। ७. क °रण। ८. क ङ यारि, घ सारि। ९ ङ उडिउ। १०. ग ङ तहि। ११. ङ मयकें। १२ घ °खंडरोहु। १३ ख ग घ ङ °इ। १४ घ विन्न°। १५. ख ग °सिहु। १६ घ °सर। १७. ख ग घ °णउ। १८ क ङ °णु। १९ क ख ग ङ °यसंगु। २०. क ङ °अगु। २१ क ख ग घ °णिय। २२ ख ग घ जं सा°। २३ क ङ जम्मुह°, ख ग ज मुह°। २४ क ङ °मणिणा।

[१२] १ क घ ङ °णिवि। २ ख ग इयएण। ३ क किय। ४ क के य; ख ग घ कवणु।

फलहीणु वि[5] वरतरु छायबहुलु[6] मं[7] विडु[8]-कज्जत्थिउ[9] होइ सहलु।
हियएण सरिसु जसु नत्थि मित्तु तहो रज्जु रज्जुबंधणनिमित्तु।
सुहिपहरदुक्खु[10] असहंतएण चोइउ[11] गइंदु[12] केरलनिवेण[13]।
वलु-वलु[14] हक्कारिउ रयणचूलु रे रे वड्ढारिउ[15] कलहमूलु।
थामेण जेण लंघिउ[16] समुद्दु विद्धंसु देसि दंसिउ रउद्दु।
आसंघवि[17] मइँ[18] मग्गहि[19] कुमारि लइ पहरु तेण तउ करमि मारि।
अब्भिट्टु[20] खयरु कडुवयणविद्धु[21] चोइय[22] मयंगु धुव्वंतचिंधु।
घत्ता—तक्खणे[23] ओवडिय[24] पेक्खिवि भिडिय रहकरितुरंग संकिण्णइं[25]।
निम्मलु[26] छलु धरिवि[27] रणु परिहरिवि ओसरियइँ[28] विण्णि वि सेण्णइँ[29] ॥१२॥

[१३]

तओ करि बिण्णि वि[1] मेल्लियघाव[2] परिट्ठिय[3] राय-चडावियचाव।
वलुद्धर[4] केसरिविक्कमसार रसड्ढिय-कड्ढिय-संगरभार।
रणंगणसंगविलासियवच्छ छणिंदुसमाणवराणणदच्छ।

छायासे युक्त उत्तम वृक्ष फलहीन होने पर भी क्या कार्यार्थी विटके लिए सफल नहीं होता? जिसका अपने हृदयके जैसा मित्र नहीं है, उसके लिए राज्य केवल एक रज्जू बाधनेका ही निमित्त है। सुहृद्के ऊपर किये हुए प्रहारके दुःखको नहीं सहते हुए केरलनृपने अपने गजेंद्रको प्रेरित किया; और वापिस आओ! वापिस आओ! कहकर रत्नचूलको आह्वान किया। अरे! अरे! तूने बड़ा कलहका कारण बढ़ा रखा है। जिस स्थानसे समुद्र पार किया उस स्थानपर तूने देशको विध्वंस करके अपना रौद्ररूप दिखलाया। तू अध्यवसाय करके (अर्थात् बलपूर्वक) मुझसे राजकुमारीको मांगता है, ले! मेरा प्रहार ले! इससे मै तेरी मृत्यु कर डालता हूँ। ऐसे कटुवचनोसे बिंधकर ध्वजा उड़ाते हुए अपने मातंगको प्रेरित कर वह खेचर (रत्नशेखर) (मृगांक राजासे) भिड़ गया। उस समय उन दोनोको एक दूसरे पर झपटकर भिड़े हुए देखकर, रथ हाथी और तुरंगोंसे संकीर्ण दोनो सेनाएं निर्मल चातुरी करके युद्ध छोड़कर अलग-अलग हट गयी ॥१२॥

[१३]

तब उन दोनों राजाओंने हाथीपर स्थित होकर चाप चढाये हुए (एक दूसरे पर) धावा बोल दिया। वे दोनो ही प्रचंड बलको धारण करनेवाले केशरीके समान विक्रममें श्रेष्ठ, युद्धके रसिक व अनेक संग्रामोंके भारको खीच लेनेवाले थे। उनके वक्षस्थल रणांगन (युद्धभूमि) के साथ विलास करनेवाले थे, और उनके सुंदर मुखोंका तेज पूर्णचंद्रमाके समान था। उन्होंने डोरीकी

---

५. ख ग जे। ६. क घ ङ °बहुलु। ७. क घ ङ त। ८. क विड। ९ ख ग घ °ट्ठिउ। १०. ख ग घ °दुक्ख। ११. क ङ चोविउ। १२. क ङ गयदु। १३ क घ ङ केरण°। १४ क चलु चलु। १५ घ °विउ। १६. क ङ °य। १७. क °धिवि, ङ °घिवि। १८ क मइ। १९ ख ग °हे। २०. क ङ याभिट्ट। २१. ख ग °वयणु°। २२. घ चोइउ°। २३. क घ त खणे। २४. घ ओवचडिया; ङ उवडिया। २५ क ङ °ण्णइ, घ °न्नइ। २६ क ङ °ल। २७. ख ग धरवि। २८. ख ग °यइ। २९. घ सिन्नइं।

[१३] १. क ङ मि। २. क मेल्लियइ°। ३ ख घरट्ठिय, ग धएट्ठिय। ४. क वलुद्दर°।

टणक्कियदोर-निवेसियकंड डराविवयवइरि[5] हणंति[6] पयंड।
डसंति नियाहर निट्ठुरचित्त तमारिकरेहिँ पसेयपसित्त।
तण[7] व्व गणंति[8] परोप्परु कुद्ध धराधरधीर-जयासयलुद्ध।
धसक्किय घायहिँ विण्णि[9] [10]वि सेण्ण[10] नहंगणि देव वि दूरि पवण्ण।
न जाणहुँ[11] संसए थक्क[12] वरच्छि छिवेइ न एक्कु वि मज्झए लच्छि।
घत्ता—खंड-खंडु[13] गयइँ पहरणसयइँ धय-चिंध[14]-कवय-सीसक्कइँ[15]।
दोहिँ[16] मि समबलइँ [17]पर-केवलइँ नीसंगइँ अंगइँ[18] थक्कइँ ॥१३॥

[१४]

खयरें[1] जिणिवि न सक्किउ जामहि[2] मायाजुज्झु पसारिउ तामहि[2]।
घणु वाऊलि धूलि दावानलु[3] गज्जइ पलयजलहि[4]-पसरियजलु।
विज्जाबलेण तिमिरु उप्पायउ तिव्वतएण[5] भुवणु संताविउ।
नहु गडयडइ धरणितलु फट्टइ[6] कुम्मकडाहु जेण[7] निव्वट्टइ[8]।
करणु देवि सत्थइ[9] समचाइउ[10] धरिउ मियंकु राउ करि घाइउ[11]।
एम वियंभिवि[12] भडसद्दूलें[13] बद्धु मियंकु[14] राउ मणिचूलें[13]।

टंकार की, व उसपर बाण चढ़ाया एवं वैरियोंको डराकर (बाणोसे) प्रचड मार करने लगे। दोनों ही निष्ठुर चित्त होकर अपने अधरोंको (क्रोधसे) काट रहे थे, व सूर्यकी किरणोसे पसीनेसे सिंच गये थे। परस्पर क्रुद्ध हुए वे दोनो एक दूसरेको तृणके समान गिन रहे थे, तथा धराधर अर्थात् पृथ्वीको धारण करनेवाले पर्वतके समान धीर एवं विजयाभिप्राय(अर्थात् विजय प्राप्ति)के लोभी थे। उनके आघात-प्रत्याघातोसे दोनों सेनाएं भयभीत हो गयी, और गगनांगनमें देव भी दूर हट गये। न जाने इनमें-से कौन विजयी होगा, इसप्रकारके संशयमें पड़ी हुई सुंदर आँखोंवाली विजयलक्ष्मी दोनोंके मध्यमें-से किसी एकको भी नहीं छू रही थी। सैकड़ों आयुध, ध्वजा-पताकाएँ, कवच और शिरस्त्राण खंड-खंड हो गये। दोनों ही समान रूपसे बलशाली, बिलकुल अकेले-अकेले अपने-अपने शरीरके प्रति बिलकुल निःसंग भावसे युद्धमे डटे रहे ॥१३॥

[१४]

जब खेचर जीत नही सका तो उसने माया-युद्धका प्रसार कर दिया। बादल, आंधी, धूल और दावानल (सब एक साथ) जलके प्रसारयुक्त प्रलयजलधिके समान गर्जन करने लगे। रत्नशेखरने विद्याबलसे अंधकार उत्पन्न कर दिया, और तीव्र आताप (दाह) से सारे भुवनको संतप्त कर डाला। आकाश गड़गड़ाने लगा और धरणीतल फटने लगा, जिससे (पृथ्वीको धारण करनेवाले) कूर्मका पीठरूपी कड़ाह उलटने लगा। पैतरा देकर उसने बलवान् मृगांक राजाको तो पकड़ लिया, और उसके हाथीको घायल कर दिया। इसप्रकार उत्कट साहसके द्वारा उस भटशार्दूल रत्नशेखरने मृगांक राजाको बांध लिया। फिर उसको उठाकर

५. क ढ °वेरि। ६ क ख ङ °त। ७ क ङ तिण। ८. क ङ °त। ९. ख ग वेण्ण। १० क ढ विसण्ण। ११. क ङ °हु, ख ग °हो। १२ क ङ यक्कु। १३. क खड्डु°। १४. घ °चिंदु। १५ क ङ °क्कइ। १६ क ख ढ दोहि। १७. क पक्खेवलइं। १८ ख °इ।

[१४] १. क °रे। २. ख ग घ °हिं। ३. क ङ °णलु। ४. ख ग घ °जलहिं। ५. क घ ङ तिव्वावइण। ६. ख ग फु°। ७ क घ ङ णाइ। ८ ङ °ट्टइं। ९ क घ ढ म°। १०. क घ ढ °वाइउ। ११. क ख ग ढ घायउ। १२. ख ग °भिय। १३. ख ग °लइं। १४. ख म°।

घल्लिउ[15] नियकरिवरि[16] चडाइवि छुडु चल्लिउ भुवबलु[17] पोमाइवि[18]।
कडयहो बाहिरि इय रणु वट्टइ सुहडहँ[19] चित्तु[20] जयास न फिट्टइ[21]।
अब्भंतरि[22] पुणु जंबुकुमारें थिरभुयबलेण खग्गफरु[23] धारें।
जे अब्भिट्ट[24] महावहिनियडहो[25] अट्ठसहस विज्जाहर सुहडहो।
जुज्झमाण ते दिसिहिँ[26] भमाडिय निसियकिवाणपहारहिँ[27] ताडिय।
चलणलुलंत-अंतगुप्फाविय[28] रस-वस-नसकद्दमे खुप्पाविय[29]।
रुहिर[30]-कुसुंभए सव्व वि राइय[31] खयरकबंध-बंध-नच्चाविय।
रणवसुमइसेज्जहि[32] सोवाविय भडसीमंतिणि[33]-सयरोवाविय।
घत्ता—पडिभडअसिवसेण[34] खडियाकसेण[35] रणमहिकडित्त[36]-विच्छिण्णउ[37]।
अंकनिरंतरओ सकलंतरओ वीरेहिँ सामिरिणु दिण्णउ[38] ॥१४॥

इय जंबूसामिचरिए सिंगारवीरे महाकव्वे महाकइदेवयत्तसुयवीरविरइए उहय-
बलसंगामो[39] नाम [40]छट्ठो संधी समत्तो[40] ॥ संधिः ६ ॥

(अपने) हाथीपर डाल लिया, और अपने भुजबलकी श्लाघा करके तुरंत (वहांसे) चल पड़ा। छावनीके बाहर इसप्रकार युद्ध हो रहा था, फिर भी सुभटोंका चित्त (अपनी-अपनी) विजयकी आशा नहीं तोड़ (छोड़) रहा था। और उधर छावनीके भीतर स्थिर-भुजबलशाली व खड्ग और फलक (ढाल) को धारण करनेवाले उस कुमारके द्वारा उस महायोद्धा-सुभटके सन्निकट जो अष्टसहस्र विद्याधर आकर भिड़े, वे सबके सब युद्ध करते हुए पैनी तलवारके आघातोंसे आहत करके दिशाओंमें घुमा दिये गये (अर्थात् चारों ओर भगा दिये गये व तितर-बितर कर दिये गये)। उनके पैर काट लिये जानेसे (बाहर निकली हुई) आंतोंके गुल्फ बन गये, और विद्याधर सैनिक वसा एवं नसोंके कर्दममें निमग्न कर दिये गये। सभी रुधिरके रंगसे रंग दिये गये, तथा खेचरोंके कबंध(धड)रूपी भृत्य नचा दिये गये। वे रणभूमिकी शय्यापर सुला दिये गये, एवं भटोंकी सैकड़ों सीमंतिनियां रुला दी गयीं। जिसप्रकार हारते जानेसे जूएके फलक-पर निरंतर बढ़ती हुई ऋणसूचक संख्याओंको सब्याज चुकाकर खड़ियासे मिटा दिया जाता है, उसीप्रकार रणभूमिरूपी फलकके समान विशाल (महान्) और निरंतर अंकोंवाले अर्थात् सतत बढ़ते हुए स्वामीके ऋणको वीरोंने सब्याज चुकाकर शत्रुभटोंकी (उनको मार-मारकर छीनी हुई) तलवारोंरूपी खड़ियासे घिस दिया (अर्थात् मिटा दिया) ॥१४॥

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित 'जंबूस्वामीचरित्र' नामक इस शृंगार-वीर-रसात्मक महाकाव्यमें दोनों सेनाओंका संग्राम नामक यह षष्ठ संधि समाप्त ॥ संधि ६ ॥

---

१५. घ घत्तिउ। १६ क ङ पुणु करिवर। १७. घ भुय°। १८ ख ग तं पेक्खिवि। १९. ख ग ङ °डह। २०. ख ग घ चित्त°। २१. ख पिट्टइ। २२. ख ग अब्भि°। २३ ख ग घ °फर। २४. प्रतियोंमें 'महावह°'। २५. क °णिविडहि; ख ग °नियडहे; ङ °णिविडहु। २६ क °हि। २७. क ङ °पहारहि। २८. क घ ङ °गुप्फाविय। २९. घ °इय। ३०. क ङ रुहिरु°। ३१. क ङ राविय। ३२. क ङ °वसुमइ सेज्जहिं, ख °सेज्जहे, घ °सिज्जहि। ३३. ख ग °सीमतणि। ३४. क ङ पडिभडे अमिवसण, घ °असिवसिण। ३५. क ग ङ °कसिण। ३६. क रणभडि°; ग रणमज्झि°। ३७ क ख ङ विच्छि°, घ विच्छिन्नउ। ३८. घ दिन्नउ। ३९. ख ग °वल-समागमो। ४०. क घ ङ छट्ठा इमा संधी ॥ मधि. ६ ॥

[१]

चिरकइकव्वामयमुहाण[1] रुइभंगरसणाणं[2]
सुयणाण[3] मए वि कयं[4] अल्लयकसरक्कउकव्वं[5] ॥ १ ॥
अत्थाणुरूवभावो[6] हियए पडिफुरइ जस्स वरकइणो[7] ।
अत्थं फुडु[8] गिरइ निरा[9]-ललियक्खरनेम्मिएहिं[10] तस्स नमो[11] ॥ २ ॥
भावो तारो[12] दूर[13] अत्थस्स वि लडहमंडणं[14] दूरे ।
[15]पयडेवि कहाकहणे[16]अण्णं चिय का वि सा भंगी[16] ॥ ३ ॥
इय[17] पाडिय खयरबले निसुणिय[18] सयले दीसइ न को वि[19] थिरसत्तउ[20] ।
असिदाढए[21] धरेवि[22] जगु संघरेवि खयकालु व वालु नियत्तउ[23] ॥ ४ ॥
बोलवि[24] खंधारु न जाइ जाम निज्जीणउ वलु रणे दिट्ठ ताम ।

[१]

जिनके मुख प्राचीन कवियोके काव्यामृतसे अतिशय भरे होनेसे, उनकी रसनाओंका रुचि भंग हो गया है, ऐसे सज्जनोंके (स्वादको बदलनेके) लिए मेरे द्वारा भी आर्द्रक (आदी)के फूलकी कलीके समान भिन्न व चटपटे स्वादसे युक्त यह काव्य रचा गया ॥ १ ॥ जिस श्रेष्ठ कविके हृदयमें अर्थानुरूप भाव प्रतिस्फुरित होता है, और जिसकी नितांत ललिताक्षरोंसे परिमित (निर्मित) वाणीसे अर्थ स्फुट होता है (अर्थात् स्पष्टतासे प्रकट होता है), उसके लिए नमस्कार है ॥ २ ॥ (काव्यमें) अति ऊँचा भाव (स्थापित करना) बहुत दूर (दुष्कर) होता है; अर्थका सुंदर (व सुकोमल और चतुर) मंडन और भी दूर (दुष्करतर) होता है; इन दोनोको प्रकट कर (अर्थात् अति ऊँचा भाव और अर्थका सुंदर कोमलकांतपदावलीसे मंडन करके) कथा कहनेकी वह कोई अन्य ही (अद्भुत) विधा है ॥ ३ ॥

इसप्रकार खेचर सैन्यको मारकर गिरा दिया गया, यह सुनकर सब विद्याधरोंमें-से वहाँ कोई भी स्थिर-सत्त्व अर्थात् धैर्यको स्थिर रख सकनेवाला दिखाई नही दिया। अपनी तलवाररूपी दाढमे पकड़कर, (विद्याधर) लोगोंको मारकर, प्रलयकालके समान वह बालक वापिस लौटा ॥ ४ ॥ जबतक जंबूकुमार स्कंधावारको पार करके जा भी

[१] १. क ङ चिरकवि°; क ख ग ङ °कव्वामयमुहेण; घ °कव्वममेयं। २ क रडभग°; घ रडभंगं वि सरसणाणं। ३. क ङ सुइणेण, ख ग सुएणेण। ४. क ख ग ङ कए। ५. घ अल्लयसकरजियं कव्वं। ६. ख ग ङ अत्याण°। ७ क ख ग ङ वीरकइणा, घ वइकइणा। ८. घ पि। ९. घ मे 'निरा' नही। १०. घ ललियक्खरेहिं नेम्मिए। ११. क ख ग ङ मणो। १२. क ख ग ड ता, घ तारे। १३. क ख ग ङ दूरयर; घ में 'दूर' नही। १४ घ °वण्णणं। १५ क ङ में इस पक्तिके उपरांत एक अधिक पंक्ति इस प्रकार है— इययरें चले णिज्झण सयले दीसइ न को वि थिरु थिरु मत्त। १६ क ङ अणाविय सा भंगी। १७. क घ ङ में 'इय' नही। १८ ख ग झुणे; घ झुणि। १९. क ङ कोइ। २० क ङ °मत्तउ। २१ क ङ °दाढइ, घ °दाढइं। २२ क ङ धरवि। २३. ख ग घ निरु°। २४. ख ग वालु वि।

[25]रुहिरनइसोत्ते छत्तइँ[25] तरंति   मत्थिक्कमास-[26]वसवह झरंति[26]।
[27]सं-तित्तचित्तभूयइँ[28] रमंति   डाइणि[29]-वेयालसयइँ[30] कमंति।
सिव-घार[31]-गिद्ध-वायस[32] भमंति   मच्छियसंघायइँ[33] छमछमंति।
कत्थइँ[34] भडु पडिउ पसारियंगु   मुग्गरपहारहउ[35] अकयवंगु।
तं नियवि [36]गाढठियलउडिहत्थु   आसण्णु न ढुक्कइकायसत्थु।
भडु को वि पडिउ दिट्ठीकरालु   जाणइ[37] जियंतु वीहइ सियालु।
करु [38]कहिँ मि[38] भडहो मणिवलयवंतु चव्वंतिहे[39] भग्गु डसंति[40] दंतु।
[41]तं सेवइ[42] डाइणि नरवसाइँ[43]   भल्लुक्किमुहाणलसम[44]-रसाइँ[45]।
फाडियकुंभत्थल[46] दिण्णसंक[47]   कप्पियकर दीसहिँ करिकरंक।
कत्थइ[48] विहत्थपल्लाणसार[49]   पल्लहत्थ[50] तुरंगम सासवार।
खंडियधुर-संदण-मोडियक्ख   निव्वट्टिय दीसहिँ[51] हेइ[52] लक्ख।
घत्ता—चिंतइ चरमतणु किउ केण रणु एउ हड्ड-रुंड-विच्छड्डिरु[53]।
सहइ भयावणउ[54] वहुरसघणउ[55] णं वइवसभोयणमंदिरु ॥ १ ॥

नही पाया, तबतक उसने रणमें विजित हुए सैन्यको देखा। वहाँ रुधिर नदीके स्रोतमे छत्र तैर रहे थे, तथा मथित हुए मांस और वसाके प्रवाह (झरने) झर रहे थे। भूत-पिशाच संतृप्तचित्त होकर आनद मना रहे थे, और सैकड़ो डाकिनियाँ व वैताल उछल-कूद मचा रहे थे। शृगाली, चील, गिद्ध और वायस(कौवे) मंडरा रहे थे, व मक्खियोंके झुंडके झुंड भिन-भिना रहे थे। कही कोई भट अपने शरीरको पसारे पड़ा था, जिसके अवयव मुद्गरके प्रहारसे आहत होनेपर भी विकृत नही हुए थे। उसके सुदृढ़ लकुटियुक्त हाथको देखकर काकसमूह पासमें नही आता था। कोई भट आँखोको भयानकतासे फाड़े हुए पड़ा था, उसे जीवित समझकर सियार भयभीत हो रहा था। कही किसी भटके मणिवलय-युक्त हाथको काटकर चबाती हुई शृगालीके दात ही टूट गये थे। वहाँ कोई डाकिनी मनुष्योंकी वसा तथा शृगालीके मुखानलके समान लाल-लाल रसाओ (रक्तवाहक धमनियो)को से रही (अर्थात् खा रही) थी। कहीपर विदीर्ण कुंभस्थलोसे शका (भय) उत्पन्न करनेवाले तथा सूँड़ कटे हुए हाथियोके धड़ पड़े हुए दिखाई दे रहे थे। कहीपर जिनके श्रेष्ठ पर्याण (पलान) जुदा हो गये थे, ऐसे घोड़े सवारोसहित मरे पड़े थे। कहीपर भग्न-धुरा और टूटे हुए जूएवाले लाखों रथ उलटे हुए एवं हेति नामक शस्त्र पड़े हुए दिखाई दे रहे थे। तब वह चरमशरीरो (इसी जन्ममे निश्चयसे मोक्ष जानेवाला) कुमार सोचने लगा—किसने ऐसा युद्ध किया है, जो हाड़ो व रुंडों (धडो) के विस्तारसे युक्त होनेसे ऐसा लग रहा है, मानो यह वैवस्वत(यमराज)का हाडों व रुंडोंसे वैभवशील, भयानक एवं वहुत अधिक रक्तरूपी रससे युक्त भोजनगृह ही हो ॥ १॥

२५ क द °नइसोनिच्छत्तइ। २६ ग °वस पज्झरंति। २७ क ख ग ट संतत्त°। २८. क द °भूयइ। २९ द डायणि। ३०. क द वेयालइ सइ। ३१ ख ग घाय, ट धार। ३२. क ट वाउस। ३३ ख ग °मघायइ। ३४. क द °वि, घ °इं। ३५ क ट °हुउ। ३६. क द गाढविय°। ३७. क द °इं। ३८ क द कहु वि, घ कहो वि। ३९ क द °तिहि, ख ग °तिहिं, घ °तिहे। ४०. ग डसंति, घ ट डसंति। ४१ घ ति। ४२. क द सेयइ। ४३ ग द °वसाइ, घ °वसाए। ४४ क ट मुहाणल°, ख ग महाणल°। ४५ क द रसाइ। ४६ ख फाडिय°। ४७ घ दिन्न°। ४८ घ °इं। ४९ ख ग घ निहत्त°। ५० घ प°प। ५१ ख ग °हि। ५२. ख ग हेय। ५३ क घ ट हेय, क ट विच्छडिरु। ५४. घ °णउ। ५५. ख ग °इ।

[२]

जंतेण रणंगणमज्झे तेण दिट्ठाइँ[1] नवर दूरंतरेण।
बहुपहरणसव्वणवाहणाइँ मुयसेसइँ[3] वेण्णि वि साहणाइँ।
एक्कहिँ[4] बले सुम्मइ[5] विजयसद्दु अण्णेक्कहिँ[6] हा-हा-रव[7]-निनद्दु[8]।
एक्कहिँ[4] बले मंगलतूरवज्जु[9] अण्णेक्कहि रोविज्जइ सलज्जु।
एक्कहिँ[4] बले छत्तइँ भावियाइँ[10] अण्णेक्कहिँ[11] पुणु मउलावियाइँ।
एक्कहि बले चिंधइँ[12] उब्भियाइँ[13] अण्णेक्कहिँ[11] महिहिँ[14] निसुंभियाइँ[13]।
अवलोयइ[15] विंभियचित्तु जाम सविमाणु गयणगइ आउ ताम।
दीसइ कुमारु[16] जयसिरिय संगु[16] रिउरुहिरतुसारतिडिक्कियंगु[17]।
[18]सरसवसोहालियमंडलग्गु विज्जाहरु तो वण्णणहँ[19] लग्गु।
अहो अहो कुमार पइँ[20] मुयवि[21] कवणु एक्केल्लउ[22] जि बहुखयरदवणु[23]।
वरि एक्कु जि केसरि नहरसारु[24] मं करिमेलावउ गज्जिफारु[25]।
वरि एक्कु जि दिणमणि गयणपवहु[26] मं सं[27] खज्जोययकीडनिवहु[28]।
वरि एक्कु जि वडवानलु[29] विरूढु मं सं[27] रयणायरजलसमूहु।
वरि एक्कु जि गरुडु[30] झडप्पसालु मं विसहरसंघु[31] महाफणालु[32]।

[२]

जाते हुए उसने समरांगणमें दूरसे ही बहुत प्रहारोसे घायल हुए वाहनों(हाथी, घोड़े आदि)वाली दोनो मृतप्रायः (मृतशेष, मृतकशेष) सेनाओको देखा, (और देखा कि) एक सेना-में विजय (सूचक) शब्द सुनाई पड़ रहे थे, दूसरी ओर हाहाकारका निनाद हो रहा था; एक सेनामें मंगलतूर्य बज रहा था, दूसरी ओर लज्जापूर्वक रोया जा रहा था; एक सेनामें छत्र लगाये जा रहे थे, दूसरी ओर संवलित किये जा रहे थे; एक सेनामे ध्वजचिह्न उड़ रहे थे, व दूसरी ओर पृथ्वीपर गिरे हुए थे; जब तक कि वह विस्मितचित्तसे यह सब देख ही रहा था, तब तक विमानसहित गगनगति आ गया। विजयश्री-समवेत जंबूकुमार रिपुओके रुधिरकणोंके छींटोंसे युक्त दिखाई दे रहा था। तब सर्षप (सरसो)के समान नील शोभावाले तलवारसे युक्त वह विद्याधर (इसप्रकार) कुमारके वर्णन (स्तुति)मे लग गया—धन्य हो कुमार! तुम धन्य हो! तुम्हे छोडकर दूसरा कौन अकेला ही अनेक खेचरोका दमन करनेवाला है? नखोंके पराक्रमसे युक्त एक केशरी ही श्रेष्ठ है, महान् गर्जन करनेवाला हाथियोका मेला (झुंड) नही। गगनमें प्रवहमान एक दिनमणि (सूर्य) ही श्रेष्ठ है, खद्योतक कीड़ोका बहुत बड़ा समूह नही। बढ़ा हुआ एक बड़वानल ही श्रेष्ठ है, रत्नाकर(सागर)का अतिशय जलसमूह नही।

[२] १ क दिट्ठइ। २ ख ग वाह°। ३ क °सेसइ, ङ सुय°। ४ घ °हिं। ५. ख घ °इ। ६. घ अन्निक्कहिं। ७. क ङ रउ। ८ क ङ णिणद्दु। ९ क ङ °वज्ज। १० घ भामि°। ११. ख ग घ °क्कहिं। १२. क ख ग °इ। १३ ङ °याइ। १४. ख ग घ °हिं। १५ क घ ङ °लोयइ, ख ग °लोवइ। १६. ख ग °सिरिपसगु। १७. क ङ °तिरिक्क°। १८. ख ग सरुसव°। १९ ख ग °णह; घ वन्नणह। २०. क °पइ। २१ क ङ मुइवि। २२. क घ ङ एक्क°। २३. घ वरखयर°, क घ ङ °दमणु। २४. क णहरु°। २५. ग °पारु। २६ क ङ °पहु, ग °प्पवहु। २७. क ख ग घ म। २८. क घ ङ खज्जोवय°, ग खज्जोइय°। २९ क ङ °णलु। ३०. क ङ ङ°। ३१ क ङ विसहरु°। ३२ क ङ °फडालु।

घत्ता—अट्ठसहसपरहँ[33] विज्जाहरहँ एक्कलएण पइँ[34] रणे पहय।
अम्हइँ[35] काउरिस[36] इय बलसरिस एवडावत्थहे[37] पुणु गय ॥२॥

[३]

तउ दूवालावपयट्ट[1] समरु रिउसहहे[2] नियच्छवि[3] पहरडमरु[4]।
हेरियहिं[5] मियंकहो कहिउजाम सन्नहवि[6] सो वि नीसरिउ ताम।
इय जुज्झियाइँ सेण्णइँ सुयाइँ खिण्णइँ[7] भिण्णइँ[8] छिण्णइँ[9] लुयाइँ।
अब्भिट्टइँ[10] मइँ[11] रणे मणिसिहासु चूरिउ विमाणु मोग्गरेण[12] तासु।
तेण वि असिघाएँ[13] [14] वच्छु भिण्णु[15] जुज्झंतरु हुउ[13] मुच्छाए[14] दिण्णु।
आलग्गु[15] मियंकु वि[16] तज्जिऊण मायाजुज्झेण परज्जिऊण[17]।
बंदिग्गहे लइउ[18] महाणुभाउ एहु दीसइ रिउबले विजउसाउ।
अम्हाण सेणि[18] पुणु भग्गसोह नायकें[19] विणु किं करहिं[20] जोह।
अब्भंतरे पइँ[21] जुज्झंतियाहु[22] इय बाहिरि रणविसंतु जाउ।
इह[23] कालहो थिर-पडिवन्नचित्त[24] पइँ[25] सुयवि[26] अम्ह के हियपरित्त।

झपट मारनेवाला एक गरुड ही श्रेष्ठ है, महाफणाटोपवाला विषधरसमूह नहीं। तुमने अष्ट सहस्र विद्याधरोको रणमे अकेले ही मार डाला। हम लोग कापुरुष है, हमारा ऐसा ही बल है जिससे ऐसी अवस्था (पराजय)को प्राप्त हुए (अथवा हम लोग कापुरुष हैं, जो एतद्सदृश बलवान् होते हुए भी ऐसी अवस्थाको प्राप्त हुए) ॥२॥

[३]

दूतरूपमे तुम्हारे आलाप(कहा-सुनी)से युद्ध प्रारंभ हुआ देख, और रिपुसभामें प्रहारका डंका बजते हुए देखकर जब गुप्तचरोने मृगांकको यह बतलाया, तो वह भी संनद्ध होकर निकला। अथानंतर लड़कर सेनाएँ मरी, शोकग्रस्त हुई, छिन्न-भिन्न हुई और काटी गयी। मैंने रणमे रत्नशेखरसे भिड़कर मुद्गरसे उसका विमान तोड डाला। उसने भी तलवारके आघातसे मेरा वक्षस्थल विदीर्ण कर दिया और युद्ध करते-करते ही मुझे मूर्च्छित कर दिया। मृगांक भी उसकी भर्त्सना करके उससे भिड़ गया। माया-युद्धसे (उसको) पराजित करके (यह रत्नशेखर) उस महानुभावको बंदीगृहमे ले गया। यह शत्रु सेनामें विजयका उत्साह दिखाई दे रहा है, और इधर हमारी (सेनाकी) पंक्ति शोभाहीन दिखाई देती है। नायकके बिना योद्धा क्या करें? तुम्हारे (छावनी के) भीतर युद्ध करते समय, (छावनीके) बाहर रणमे इसप्रकारका वृत्तांत घटित हुआ। इस अवसरके लिए, हे धीर व हितपरायण

३३ ङ °पइहु। ३४ ग पए। ३५ क ङ °इ। ३६. क ङ कापु°। ३७. घ °वत्थगे।

[३] १ ख ग घ दूआलाव°, ख ग °पयट्टु। २. क घ ङ °सहे। ३. ख ग घ °च्छिवि। ४. ख ग घ पडहु°। ५ ख ग °यहि। ६ क ङ मण्णे°, ख ग सण्णहिवि। ७ घ °सइ। ८ घ ङ °हुइ। ९. क ख ग ङ मइ। १०. घ मुग्ग°। ११ क °घाए। १२ ख ग वच्छि नि°; घ वच्छे छिण्णु। १३. ख ग घ ग हु। १४. घ °इ। १५ क ङ मियकहु। १६. क परज्जि°। १७ क ङ लयउ। १८ ख ग सण्णे, घ सणि। १९ घ नायकिं। २०. क ग घ ङ °हि। २१. क ख ग ङ पए। २२ ख ग °तियाउ, घ °तियाउ। २३. क ङ इय। २४. क ङ °पडिवण्ण°। २५ ङ पए। २६ क ङ सुयवि।

जाणिज्जइ एवहिं[२७] भुवणसार[२८] सुहडत्तणे अवसरु तउ कुमार।
गुरुआसए[२९] आणिउ[३०] कहवि[३१] कज्जु लइ सहलमणोरह[३२] होहु सज्जु[३२]।

घत्ता—लाइय कसरु[३३] डरु गउ मुडिवि[३४] भरु सो धवल-धुरंधर उद्धरि।
कज्जे विणासियए अम्हइँ[३५] नियए[३६] जं जाणहिं[३७] तं बंधव[३८] करि ॥३॥

[४]

मालागाहो—नहकुलिसदलियमायंगतुंग[१]कुंभयलगलियकीलाललित्तमुत्ताहलोह
विप्फुरियकविलकेसरकलावघोलंतकंधरुद्देसा।
रुंजंति ताम[२] सीहा जाम[३] न सरहं पलोयंति ॥१॥
नियघरिणिवासहरसंठिएहिं[४] कीरंति भडयणुल्लावा।
ते नवर के वि विरला जे सुहिकज्जं समप्पंति ॥२॥
परकज्जभारधुरधरणगरुय[५]निहसणकिणंकदिढखंधा।
दो तिण्णि जए पुरिसा अहवा एक्को तुमं चेव ॥३॥

हृदयवाले कुमार ! तुम्हे छोड़कर (अब) हम लोगोंके हृदयका आश्रय और कौन है ? लोकके सारभूत (लोकमे श्रेष्ठ) हे कुमार ! अब यह समझिए कि यही तुम्हारे सुभटत्व(को प्रगट करने)का अवसर है। बड़ी आशासे कार्य(प्रयोजन) बतलाकर तुम यहाँ लाये गये हो, तो हे सफल मनोरथ (कुमार) ! अब तैयार हो जाओ। अधम बैल डर लेकर (अर्थात् डरकर) भारको भग्न करके(अर्थात् कार्य नष्ट करके) भाग गया। हे धुरंधर नरवृषभ ! (अब) तुम्ही उसका उद्धार करो, और कार्य विनष्ट हुआ देखकर, हे बांधव ! जैसा समझो वैसा करो ॥ ३ ॥

[४]

नखरूपी वज्रसे विदीर्ण किये हुए मदमाते हाथियोके उत्तुग कुंभस्थलोसे गलित रुधिर-लिप्त मुक्ताफलसमूहसे विस्फुरायमान कपिल-केशर-कलाप जिनके स्कंधप्रदेशपर लहरता है ऐसे सिंह तभी तक दहाड़ते हैं जबतक कि शरभको नही देखते ॥१॥ अपनी-गृहिणीके वासगृहमें बैठे हुए लोगोके द्वारा बहुत भटजनोचित संभाषण (कथन) किये जाते है (अर्थात् पत्नीके सामने सभी लोग अपनी बहादुरीका बड़ा बखान करते रहते हैं) परंतु ऐसे लोग निश्चयसे अति विरले होते है जो सुहृद्के कार्यको संपन्न करते है ॥२॥ दूसरेके कार्यभारके धुरे अर्थात् जूएको धारण करनेसे उसके गुरुतर घर्षणसे जिनके बलिष्ठ कंधे किणयुक्त (चिन्हांकित) हो गये है, ऐसे लोग जगतमें

---

२७ क ङ एम्वहिं; ग °हि। २८. घ भुअण°। २९ क घ °आसइं, ङ °आसइ। ३०. ख ग घ ङ °उं। ३१. ग कहिवि। ३२ क ङ हुंतु अ°; ख घ होतु अ°। ३३ ख ग घ ङ °र। ३४. ख ग मुडिउ। ३५ क °इ। ३६ घ °इ। ३७ ख ग घ °हिं। ३८ क वधु।

[४] १. ख ग °तुगं। २. क ङ ताव। ३. क ङ जाव। ४ ख ग नियघरणी°, ग °सठियहिं; ङ °संठियहि। ५. ख ग °धुरधवलाण°, क घ ङ °गरुअ°।

ताम तं खेयरालाव कहियंतरं जंबुसामी सुणेऊण वित्तंतरं[6]।
रोसतुलियासिहत्थो तओ बोलए[7] कालकवलम्मि परिकलिउ को बोलए[8]।
कवणु सुरदंतिदंतेहिं हिंदोलए जमतुलादंडे अप्पाणु को तोलए।
को कमंतेण सीहेण सहुँ कोलए[9] विसहलं को वि नियवयणि[10] निप्पीलए।
नाहिपंकयदलं हरिहि[11] को तोडए वसहसिंगं तियक्खस्स को मोडए।
को मियंकं धरेऊण बंदिग्गहे केम निम्मिसं[12] पि जीवेइ महु विग्गहे।
गज्जमाणे[13] कुमारम्मि केरलवलं नयणगइणा[14] भमाडेइ चीरंचलं।
सुज्झभावेण रावेण[15] हक्कारियं धरिय[16] पहुपरिहवेणं खरं खारियं।
पहरफुट्टंत[17] विहडप्फडं धावियं जत्थ जंबूकुमारो तहिं पावियं[18]।
[19]सग्गिणीनाम छंदो॥

घत्ता—जं ससिय जियउ[20] मुयउ व थियउ[20] तं नियवि कुमारुद्दीविउ[21]।
विजयासहे नियउ आसासियउ बलु नावइ पच्चुज्जीविउ[22] ॥४॥

[५]

पुणु वि बले चलिए[1] ससिधवलपसरियजसे।

दो ही तीन हैं, अथवा अकेला तू ही है ॥३॥ इसप्रकार खेचरके कहे हुए कथांतर (वृत्तांत) को सुनकर जंबूस्वामी रोषपूर्वक हाथमें तलवार उठाये हुए बोला—कालके ग्रास (मुख) में आनेपर कौन आ सकता है? देवताओंके हाथी (ऐरावत) के दांतोंसे कौन झूल सकता है? यमके तुलादंडमें अपनेको कौन तोल सकता है? आक्रमण करते हुए सिंहके साथ कौन क्रीड़ा कर सकता है? विषफलको अपने मुंहमें कौन चबा सकता है? हरिके नाभिकमलको कौन तोड़ सकता है? त्र्यक्ष (त्रिनेत्र-महादेव) के वृषभके सींगको कौन भग्न कर सकता है? (और) मृगांकको बंदीगृहमें रखकर मुझसे युद्ध करके निमेष मात्र भी कौन जी सकता है? कुमारके इसप्रकार गर्जना करने पर गगनगतिने (अपनी) सेनामें चीरांचल (युद्ध सूचक झंडा) घुमाया और स्वामीके पराभवसे बेचैन सेनाके लिए घावपर नमक छिड़कनेके समान तिलमिलाहट उत्पन्न करते हुए युद्धाशयको प्रकट करनेवाले स्वरसे सेनाको ललकारा, तथा प्रहारोंसे विदीर्ण हुआ सारा सैन्य शीघ्र दौड़कर जहाँ जंबूस्वामी थे, वहाँ प्राप्त हुआ। जो सैन्य केवल जीवित (श्वासोच्छ्वास) मात्र शेष हुआ मरे जैसा पड़ा था, वह कुमारको देखकर उद्दीपित (उत्साहित) हो गया, और स्वयंकी विजयाशासे आश्वस्त होकर मानो पुनरुज्जीवित हो उठा ॥ ४ ॥

[५]

चंद्रमाके समान धवल एवं विस्तीर्ण यश वाले सैन्यके पुनः चल पड़नेपर उस संग्राम

---

६. घ ह वित्तं°। ७. ख ग बोल्लए। ८. ख डोल्लए, ग घ कुल्लए। ९ क ह तो°; ख ग तो°। १०. घ निए व°। ११. क ख ह °हिं। १२. क ह निवसं; ख ग पेक्खं, घ निमिसं। १३ क ह °माण। १४. ख ग °गयणा। १५. ख ग राएन। १६. क ख ग घ धरिय। १७ घ °फुट्टत। १८ क ह °ण°। १९. ख ग में छंद नाम नहीं। २०. क ह मुवठ्ठियउ, ख ग मु° वि ठिं°; घ मुवउ व थि°। २१. क ह °दीवियउ। २२. क ह °ज्जीवियउ।

[५] १. क ह °ए।

समररसभरिय-भडफुरिय-वण-वस-रसे।
करडि-करडयल[2]- परिवडिय[3]-दर-मयजले ।
गयणवह-पहय-फरहरिय-धुय-धयवडे[4]।
चलणभरदलण[5]-दमदमिय-रणमहियले[6]।
निविडकडयडिय[7]-भडमउड-उर-सिर-नले।
गुडिए[9] करि-पवरि[10] थिरि चडिउ पहरणभुओ[11]
समरु परियरवि[12] थिउ नवरि[13] जिणवइ सुओ।
नियवि बलु पबलु खयविसम-वइवसनिहो।
वलिउ[14] खयरवइ तउ भिडिउ रणे मणिसहो[15]।
उहयबलमिलणपडिखुहियजलयरबलं[16]।
समय-तडफिडवि[17] झलझलइ जलनिहिजलं।
तुरय-करि-सुहड-रह[18]-फुरियरुइपहरणं।
गिलइ तिहुवणु व कलयलेण[19] पुणरवि रणं।
घत्ता—सुमरियपहुफलइँ[20] कियकुलछलइँ[21] कलिकालकयंतमरट्टइँ[22]।
धुव्विरधयवडइँ जयलंपडइँ[23]पुणु उहयवलइँ[23] अब्भिट्टइँ॥५॥

(स्थल)में जहाँ कि वीर रससे भरे हुए भटोंके फूटे हुए व्रणोंसे वसा एवं रस अर्थात् लोहू बह रहे थे, और जहाँ कि हाथियोके गंडस्थलोंसे थोड़ा-थोड़ा मद चू रहा था, एवं आकाश-पथ-(गामी)अर्थात् वायुसे आहत होकर चंचल ध्वजपट फहरा रहे थे, और जहाँ कि चरणोंके भारसे दलित हुई रणभूमि दम-दमा उठी थी, तथा जहाँ (घायल) भटोके आपसमें टकराते हुए मुकुट, सिर व उरस्थल और पैर कड़कड़ा रहे थे, वहाँ वर्म एवं कवच युक्त श्रेष्ठ हाथीपर चढ़कर, हाथोमे शस्त्र धारण करके युद्ध(स्थल)का पूरा चक्कर लगाकर जिनमतीका पुत्र (जंबूस्वामी) (एक स्थान पर) खड़ा हो गया। (युद्धके लिए उद्यत) प्रबल सेनाको देखकर, प्रलयंकर रौद्ररूप वैवस्वत(यमराज)के समान भयानक वह खेचरपति रत्नशेखर वापिस लौटा और रणमें भिड़ गया। दोनों सेनाओंके मिलने (भिड़ने)से जलचर समूह क्षुब्ध हो उठा और जलनिधिका जल अपने मर्यादा तटका उल्लंघन करके झलझला उठा। तुरग, हस्ति, सुभट, रथ और चमचमाते हुए कांतिमान शस्त्रोंसे कलकल (कोलाहल) युक्त होता हुआ वह युद्ध पुनः त्रिभुवनको लीलने लगा। प्रभुके फलों अर्थात् कृपापूर्वक किये गये उपकारों-का स्मरण करके अपनी कुल परंपरागत चतुराई (युद्ध कौशल)को प्रकट करते हुए, कलिकाल एवं कृतांतके समान गर्वीले तथा जयलंपट (विजयलिप्सु) वे दोनों सैन्य पुनः भिड़ गये ॥५॥

२. क घ ङ °यर। ३. ख ग पडि°। ४. ख ग घ °चले। ५ क ख ग घ ङ चरण°। ६. घ° थले। ७. ख ग निवड°। ८ ख °पडिय। ९. क ङ °य। १०. ख ग °र। ११ क ङ °भुवो; ग °चुओ। १२. क ङ °यरिवि। १३. घ °र। १४. ख ग च°। १५. क ङ मण°। १६. ख ग घ °चलं। १७. क ङ तडिफिडिवि; घ तडि°। १८. ग रइ। १९ क ङ °यलिय। २०. क °इ। २१. ख ग घ ठिय°; घ °छलइ। २२. क ङ °कियत°। २३ ख ग पुणुरुमय°; क °वलइ।

[६]

तओ य संजायं महादंडजुज्झं। जुज्झंतपत्ति कोंतग्ग-खग्ग[1]-वावल्ल-भल्ल-सव्वल-[2]मुसुंढिविणिहम्ममाण अण्णोण्णं[3]। अण्णोण्णदंसणारुट्ठ[4]-निट्ठवियमिट्ठसुण्णासणमिलंतमत्तमायंगं[5]। मायंगदंतसंघट्टनिहसणुट्ठंत-[6]हुयवहफुलिंगपिंगलियसुरवहूविमाणं। सुरवहुविमाणसंछण्ण[7]गयणदूरप्पयंतपडिलग्गकोडिखडक्कियवीरकरवालं। वीरकरवालफालिज्जमाण[8]-कुंजर-तुरंग-सुहडंग-गरुय[9]कल्लोलवाहपज्झरियकीलालं[10]। कीलालवाहिणीवेयपवहावियनिज्जंतकच्चाइणी[11]-विसाल[12]-करयलकवालकुट्ठलग्ग[13]-धावमाणजालामुहकरालवेयालं। वेयालविरसमुक्कट्टहाससंतट्ठभीस[14]-भज्जंतगयघडाचरणचप्पणोसरिय-[15]सेण्णकोलाहलपूरियदियंतं। दियंतपसरंतासवारतरलतरवारितासणासंत-[16]कायरदंसणुच्छहियवरसुहडं। [17]वरसुहडहत्थपरिभमिरलउडिदंडप्पहारचूरिज्जमाणनरवरकरोडि-[18]कडुक्कडक्कारसद्दजूरंतकावालियसमूहं। कावालियसमूहकरकत्तियाकप्पणकडक्खियसुरसुंदरीसंरक्खिय-उब्भंतनयणोल्लियसामंतकुमरं। सामंतकुमरपुव्वसंमाणदाणपरिपूरिय-

[६]

तब वहाँ महान् सैन्य-युद्ध हुआ। जूझते हुए पदाति कुंत, खड्ग, वावल्ल (वल्लभ ?) भाले, सव्वल, और मुसुंढि नामक शस्त्रोसे एक दूसरेको मारने लगे। एक दूसरेको देख-देखकर रुष्ट हुए, एवं (शत्रु-पक्षके) महावतोंको मारकर रिक्तहौदेवाले मत्तमातंग परस्पर भिड़ गये। हाथियोंके दांतोकी टक्करसे उठते हुए अग्निके स्फुलिंगोंसे सुरवधुओंके विमान पिंगल वर्ण हो गये। सुरवधुओंके विमानोसे आच्छादित गगनमें दूर जाते हुए विमानोसे नोक टकराकर वीरोंके करवाल खड़खड़ा उठे। वीरोके करवालसे विदीर्ण किये जाते हुए हाथी, घोड़े और सुभटोके शरीरसे बड़ा भारी कल्लोल करता हुआ रक्तका झरना बह निकला। रक्तवाहिनीके वेगसे प्रवाहित होकर ले जायी जाती हुई कात्यायनी-देवीके विशाल करतल-स्थित कपाल कोष्ठ(खोपड़ी)से लगकर एक भयानक अग्निमुख वेताल दौड़ पड़ा। वेतालके छोड़े हुए कठोर व उत्कट अट्टहाससे संत्रस्त होकर भागते हुए भयानक हाथियोंके समूहसे पैरोसे कुचले जानेसे बचते हुए सैन्यके कोलाहलसे दिगंत भर गये। दिगंतमें फैलते हुए अश्ववारोंके चंचल तलवारोंके त्राससे भागते हुए कायरोंको देखनेके लिए श्रेष्ठ सुभट उत्साहित हो उठे। श्रेष्ठ सुभटों के हाथोमें घूमते हुए लकुटिदंडके प्रहारसे चूर-चूर होते हुए नर-कपालोसे बड़ा कटुक डक्कार शब्द उत्पन्न होनेसे कापालिकोंका समूह झूरने लगा। और कापालिक समूहके हाथोंकी कैंची द्वारा (अपने केशादि) काटे जानेसे कटाक्षयुक्त सुरसुंदरियों-द्वारा संरक्षित (मृत)सामंतकुमार (मानो स्नेहभरे) नेत्रोको ऊँचा करके सुरसुंदरियोंकी ओर देखने लगे। सामंतकुमारोंके पूर्व दिये हुए सम्मान व दानसे भरपूर, लटकते हुए केशोंवाले और कछोटेपर हाथ देकर स्वामी-

[६] १. ख ग खग्गि । २. क घ ङ मुसंढि° । ३. घ अन्नोन्न । ४. ङ °दंसणारूढ । ५. घ सुन्नासणमि°; क °सत्तमायगं । ६. क ङ हुअवह°; ख ग हुयवहु° । ७. घ संछन्न° । ८. घ °फाडिक्कमाण । ९. क ङ गरुव° । १०. घ पसरिय की° । ११. क °कंवाडणो । १२. ख ग वियाल° । १३ ख ग °कवालकुठ°; ङ °कवालपुट्ट° । १४. क घ ङ °भीरु । १५. घ सिन्न° । १६. क ख ग घ ङ कायरु° । १७. ख ग वरमुहडमत्थ° । १८. क ङ करुक्कडक्कार°, ख ग घ कडुक° ।

लंबंतचूलं[19][20]-परिहच्छकच्छ-[21]पहुपंगणवग्गिरदूरुब्भडविहडंतभेडसंघायं । भेड-संघायविहडणपरितुट्ठअलद्धसम्माणदाणनिम्माणियभिडंतभिच्चसच्चवियनिसग्ग -चारहडिय[22]-विसेसठकुरनिवेसियहियय-सल्लं ।

गाहा—चिक्किणचिक्खिल्लचहुट्टचक्कथक्के[23] भरम्मि रे धणिय ।
अवमाणियं पि धवलं विहडियकसरेसु जा निहसि ॥ १ ॥
कसरेसु कब्बरेसु य[24] पालणपडिलग्गवग्गगहवइणो[25]
अमुणियभरनिव्वाहे[26] धवलो हियए वि वीसरिओ ॥ २ ॥
धवलेण तेण विसमे धुयकंधरडंतकसरमुक्कभरो ।
लीलाए[27] कड्ढिओ[28] तह जह[29] फुट्टइ[30] कुसामिणो हियय ॥ ३ ॥
अवगणियं[31] न मण्णइ[32] पहुणो घणकसरपालणपरस्स ।
जो धरइ धुरं विहुरे नमो नमो तस्स धवलस्स ॥ ४ ॥
कसरेण समं जुप्पंतएण धवलेण जोइयं पासं ।
गरुयभरकड्ढणाए[33] होसइ मे पडिहरो एसो ॥ ५ ॥
कसरेकचक्कथक्के[34] भरेण[35] धवलेण[36] झूरियं[37] हियए ।
हा किं न खंडिऊणं जुत्तोहं दोहि मि दिसाहिं[38] ॥ ६ ॥

के प्रांगणमें बड़ी-बड़ी बातें मारनेवाले कायरोंका समूह भाग पड़ा; और कायरसमूहके भागने से परितुष्ट हुए, पहले सम्मान व दान प्राप्त नही करनेवाले, तथा अपमानित होकर भी डटकर युद्ध करते हुए भृत्योंके द्वारा अपना विशेष नैसर्गिक शौर्य प्रमाणित किया जाने पर उनके ठाकुरों-के हृदयमें (पश्चात्ताप रूपी) शल्य उत्पन्न होने लगा ।

चिक-चिक-चिकने कीचड़में चक्का फंस जानेसे भारसे भरी हुई गाड़ीके रुक जानेपर श्रेष्ठ वृषभका अपमान करके, रे धनिक जबतक तू अधम बैलों पर अनुराग करता है—॥ ॥ (तबतक) अधम और कबरे बैलोके प्रतिपालनमें लगा हुआ (तुझ जैसे) गृहपतिका (परिचारक)वर्ग श्रेष्ठ वृषभ (धवल) के द्वारा भार निर्वाह करने (को क्षमता) को न जानता हुआ, उसे हृदयसे भी भुला देता है ॥२॥ परतु आपत्तिके समय अधम बैलके द्वारा चीत्कार करके कंधेको गिराकर भारमुक्त हो जाने पर उसी धवलके द्वारा लीलामात्रमें (क्षणभरमे) इसतरह भार खींच लिया जाता है, जिससे कि पृथ्वीपति (कु-स्वामी) का हृदय खिल उठता है ॥३॥ जो धवल बिलकुल अधम बैलोंको पालनेवाले प्रभुके अपमानको नही मानता (अर्थात् अपने पूर्वकृत अपमानको ध्यानमें नही रखता, और संकटमें धुराको धारण करता है, उसे पुनः-पुनः नमस्कार ॥४॥ अधम बैलके साथ जोड़े जाते हुए धवलने अपने पार्श्वको देखा, और सोचा कि भारी बोझको खींचनेमें यह अधम बैल वास्तवमें मेरा प्रतिभार (अतिरिक्त बोझ) मात्र होगा ॥५॥ भारसे अधम बैल वाला एक चक्का रुक जाने पर धवल अपने हृदयमें इसप्रकार झूरने लगा—हाय ! मै ही खडित करके दोनो दिशाओ (पार्श्वो) मे क्यो नही जोत दिया गया ? ॥६॥

---

१९ घ °धूलि । २०. क परिहत्थ°, ख ग पवि° । २१ घ पहुअंगण° । २२. क ङ °चारहडि । २३. क °थट्टे । २४. क ङ आ । २५ ख ग °हग्गगहवइणो । २६ क घ ङ °णिव्वाहो । २७ क घ ङ °इं । २८. ख ग ङ कट्टिओ । २९ ख ग जइ, घ जह । ३० ख ग फुडइ, ङ पुट्टइ । ३१ घ °गन्निय । ३२ ख ग घ मन्नइं । ३३. क ङ °कट्टणाए । ३४. क ङ °थक्को । ३५. ख ग घ भरम्मि । ३६. क धवलंमि, ङ धवलम्मि । ३७. घ जू° । ३८. ख ग घ °ए ।

जेण भरधरणखुरखयमग्गे वि समुद्दसंकिमा[39] वहई।
धवलेण समं समसीसियाए कसरो धुवं[40] मरई ॥ ७॥
दोहउ—ससहर[41] हरिणट्ठाणे जइ सीहसिलिंबु धरंतु।
तो जीवंतहो[42] तुह मलणु[42] दुक्करु राहु करंतु ॥ ८॥
घत्ता—तो तहिं[43] उरवियडु[44] पेक्खिवि नियडु मणिसिहु वालें[45] पचारिउ।
चुकउ[46] तहिं[47] जि खणे अत्थाणरणे एवहिं[48] कहिं[49] जाहिं[50] अमारिउ ॥६॥

[७]

रे रे रणु मेल्लेवि मइँ[1] समाणु जं नट्ठु[2] लद्धु तं तउ पमाणु।
जं अट्ठसहसपहरणकराहँ माराविय वरविज्जाहराहँ[3]।
पडिगाहिउ संगरु एत्थु[4] एवि निक्खत्तइँ[5] नीयइँ वलइँ[6] वे वि।
नहगइहे[7] दिण्णु उरे खग्गघाउ वंदिग्गहे लइउ मियंकु[8] राउ।
हेवाइउ[9] इय सुहडत्तणेण चारहडि[10] न मण्णमि[10] एत्तडेण।
जइ अत्थि अंगि तउ जुज्झगव्वु तो अच्छउ सेण्णु[12] नियंतु सव्वु।
तुज्झु वि मज्झु वि संगामु होउ[13] अण्णु वि मा मरउ वराउ लोउ।
अणुमण्णवि[14] वोल्लइ खयरराउ किं वलवलेण इह मह्नु पयाउ।

जिस धवलके द्वारा भार धारण (वहन) करनेके हेतु खुरोंसे आहत मार्गमें भी समुद्र (होने) की शंका धारण की जाती है, वैसे धवलकी स्पर्द्धा करनेसे अधम (गर्रा) बैल निश्चयसे मरता है ॥७॥ रे शशधर ! यदि तू हरिणके स्थानमें सिंहशिशुको धारण कर लेता तो उस (सिंह-शावक) के जीते हुए राहुके लिए तेरा मर्दन करना (ग्रस लेना) दुष्कर होता ॥८॥

तब वहीं पासमें विकट(विशाल)वक्षस्थल वाले मणिशेखरको देखकर बालकने व्यंग्य किया—वहां, उससमय सभास्थलके युद्धमें तू चूक गया (बच गया), अब बिना मारा हुआ (अर्थात् मृत्युसे बचकर) कहाँ जायगा ? ॥६॥

[७]

अरे रे ! तू जो मेरे साथ युद्ध छोड़कर भाग गया, वही तो तेरा(वीरताका)प्रमाण मिल गया। तूने अष्टसहस्र शस्त्रधारी श्रेष्ठ विद्याधरोंको तो मरवा डाला, और यहाँ आकर दूसरोंको लड़ाकर दोनों सेनाओंको क्षत्रियहीनताको प्राप्त करा दिया; गगनगतिके उरस्थल पर खड्गसे प्रहार किया, और मृगांक राजाको वंदीगृहमें ले गया; इस बहादुरीसे तू बड़ा गर्वित है। पर इतनेसे मैं तेरी शूरता नही मानता ! यदि तेरे शरीरमें युद्धका गर्व है तो सारी सेना देखती बैठी रहे, तेरा-मेरा संग्राम हो, और बेचारे ये साधारण(सैनिक)लोग अब(व्यर्थ)न मरें। इसका अनुमोदन करके खेचरराज बोला—सैन्य शक्तिसे क्या ? और बहुत प्रलाप करनेसे

३९. ख ग °संकमा°। ४०. क ङ धुवं। ४१. क ङ °हरु। ४२. क ङ मलण तहु; ख तहो म°; ग तुहु'म°, घ तु° मलण। ४३. घ तहि। ४४. ख ग उवरवियडु, ङ रखवि°। ४५. क ङ वाले; ख ग वालि। ४६. ख ग ङ चुक्कउ। ४७ ङ °तहि। ४८ क °हि। ४९ ख ग कहि। ५०. ख ग घ जाहि।

[७] १. क ङ मइ। २. क लद्ठु; ङ णट्ठु। ३. ख घ °हराह। ४ क घ एत्थ। ५. ख ङ °तइ; ग नक्खत्तइ। ६. ख ग °इ। ७. क ङ °इहिं। ८. ख ग °क। ९. क ङ देवा°। १०. क धार°। ११. ग मन्नमि। १२. ख ग सव्वु, ग सिन्नु। १३. ख ग होइ। १४ घ °मन्निवि।

कि बलबलेण मणुसइय मज्झु कि बलबलेण साहमि असज्झु[१५]।
मइँ कुविए[१६] समरे देव वि असार तुहुँ[१७] कवणु गहणु पुणु किर कुमार।
घत्ता—तो पेसणकारहिँ[१८] कड्ढियधारहिँ[१८] अण्णोण्णवइरविणिबद्धइँ[१९]।
दुक्खनिवारियइँ[२०] ऊसारियइँ[२१] उहयबलइँ[२२] सन्नद्धइँ[२३] ॥ ७ ॥

[८]

सरवंतइँ[१] तोणहिँ[२] धारियाइँ [३]धणुचडियगुणइँ[३] उत्तारियाइँ।
पडियारहिँ[४] खग्गइँ[५] पोइयाइँ[६] सेल्लइँ[७] [८]सेल्लहरि हिरोवियाइँ[८]।
तिक्खंकुससाहिय वरगइंद[९] दिढवग्गोसारिय तुरयविंद।
किउ कलयलु तूरइँ आहयाइँ महि-गयणइँ णं फुट्टिवि गयाइँ।
दूरट्ठियाइँ जोयहिँ घणाइँ लिहियाइँ[१०] व बेण्णि वि[११] साहणाइँ।
उत्थरिय बे वि पेल्लिय गइंद[१२] बिहिँ[१३] गिरिहिँ थक्क णं बे[१४] मइंद।
टंकारिउ धणु खयरें झडत्ति गिरिसिंगि पडिय णं तडि तडत्ति।
अप्फालिउ बालेणावि[१५] चाउ बहिरंतु भुवणु[१६] पसरिउ[१७] निनाउ[१८]।
संभरियमहणपीडायरेण आरडिउ नाइ[१९] रयणायरेण।

क्या ? यहाँ मेरा ऐसा प्रताप है कि मै मनुष्यगति(लोक)में असाध्य साधन कर सकता हूँ। मेरे कुपित होनेपर युद्धमे देव भी तुच्छ हो जाते है, फिर तेरी तो गिनती ही क्या ? तू तो अभी कुमार ही है। (इसके)अनंतर आज्ञाकारी प्रतीहारोंके द्वारा परस्पर वैरबद्ध दोनों संनद्ध सेनाओको बड़ी कठिनाईसे युद्धसे निवारण करके दूर-दूर हटा दिया गया ॥७॥

[८]

बाणोंको तूणीरोमें रख दिया गया, धनुषोंपर चढे हुए गुण(प्रत्यंचा)उतार दिये गये, खड्गोंको म्यानोंमे पिरो दिया गया, और कुंत(बर्छे)भालाघरोंमे रख दिये गये। तीक्ष्ण अंकुशोसे श्रेष्ठ गजेंद्र साधे गये, और सुदृढ़ लगामसे(खींचकर)घोड़े हटा दिये गये। (इन सबसे) वहाँ ऐसा कोलाहल किया गया और तूर बजाये गये, मानो पृथ्वी और आकाश फूट गये हो। दूरपर स्थित दोनों घनी(विशाल)सेनाएँ चित्रलिखित सरीखी(युद्ध)देखने लगी। दोनो ही (जंबूकुमार एवं रत्नशेखर) श्रेष्ठ हाथियोपर चढ़कर, उन्हे प्रेरित करते हुए ऐसे शोभायमान हुए, मानो दो पर्वतोंपर दो सिंह स्थित हों। खेचरने झट धनुषको टंकारा, मानो गिरिशृंगपर तड़से बिजली गिर पड़ी हो। बालकने भी चापको हाथसे आस्फालित किया, उससे सारे लोकको बहरा करता हुआ (ऐसा) निनाद प्रसृत हुआ, मानो अपने मंथनका

१५ क ङ °ज्जु। १६ क ङ कुइय। १७. क ङ तुहु, घ तुह। १८. ख ग °रहि। १९. ख ग °वइरिविणि°, घ अन्नोन्न°। २० क ख ग दुक्खु निवा°; ङ °निवारियइ। २१. ङ उंसारियइ। २२ ख ग °सेण्णइं। २३. क ख ग ङ सण्ण°।

[८] १. ख ग °वत्तहिं। २. प्रतियोमे °इं। ३. क ङ °चडियं गुण; घ °चडियइ गुण। ४. क ङ °रहि, ख ग °रह। ५. ख ग °इ। ६. ङ °याइ। ७. क °हि, घ °इ; ङ °हिं। ८. ख ग सेल्लहर°, घ °हरहो रोवियाइ। ९. क ङ गयवरिंद। १०. ख ग घ °याइ। ११. ङ मि। १२. ङ गयद। १३ क घ ङ विहि १४. ख ग दो। १५ ख ग वालेंणावि। १६. ख ग घ भुयणु। १७ घ °रिय। १८. क ख घ ङ णिणाउ। १९ घ णाइ।

तें[20] सद्दें भडहँ[21] पडंति पाण लंबंति ढलक्किय सुरविमाण।
कंपंति दरक्किय सूरचंद उट्ठंति झलक्किय जलहिमंद।
तुट्टंति कडक्किय[22]-सिहरिसिहर फुट्टंति धवलहर जाय विहुर[23]।
घत्ता—गाढवि करेण[24] धणु[25] वंकेवि तणु खयरें सपत्त[26] गुणे[27] सज्जिय।
किविणेण व[28] जिएण अविवेइएण[29] रणे मग्गण वीस विसज्जिय॥ ८॥

[९]

तं नियवि कुमारें वाणसंडु वीसहि[1] मि सरहि[2] किउ खंड[3]-खंडु।
वाणावलि खयरे पुणु वि मुक्क असइ व[4] सप्पुरिसहो नियड[5] ढुक्क।
लोहमय[5]-तिक्ख-विंधणसहाव धम्मच्चुय[6]-परमारणसहाव।
नारायहिं[7] बालें नहे पइण्ण[8] गरुडेण सप्पपंति व्व छिण्ण[8]।
गुणे[9] संधेवि पेल्लिउ[10] दिढकरेण अग्गेयवाणु विज्जाहरेण।
धाविउ[11] डहंतु[12] वेण्णि वि बलाइँ[13] धूमाउलजालहिँ सामलाइँ।

स्मरण करनेसे पीड़ित हुए रत्नाकरने ही करुण चीत्कार किया हो। उस शब्दसे भटोंके प्राण गिरने(छूटने)लगे, और देवताओंके विमान (स्वर्गसे)ढुलककर (आकाशमें) लटकने लगे। सूर्य व चद्र द्रुतगतिसे कांपने लगे, और मंद(शांत)जलधि झुलसकर ऊपर उठने लगे। पर्वतोंके शिखर कड़ककर टूटने लगे, और प्रासाद विघटित (विश्लिष्ट)होकर फूटने लगे। जिसप्रकार किसी अविवेकी कृपण जीवके द्वारा धनको हाथसे खूब दृढतासे पकड़कर, गुणोंसे सज्जित अर्थात् खूब गुणवान् ऐसे बीसियों भिक्षार्थियोंको भी मुंह वाका करके(विना कुछ दिये, अपने घरसे)विदा कर दिया जाता है, उसीप्रकार उस अविवेकी खेचरने अपने हाथसे धनुषको दृढतासे पकड़कर व शरीरको थोडा झुकाकर, पत्रयुक्त बाणोंको प्रत्यंचापर चढाकर रणमें बीस बाण छोड़े ॥८॥

[९]

उस बाणसमूहको देखकर कुमारने बीस ही बाणोंसे उसे खंड-खंड कर दिया। खेचरने पुन: बाणावलि छोड़ी, वह जंबूस्वामीके निकट उसीप्रकार गयी, जिसप्रकार कोई असती (कुलटा)स्त्री किसी सत्पुरुषके पास जाये। जिसप्रकार किसी लोभमय(लोभी) और तीक्ष्णतासे (तीखे वचनोंके द्वारा दूसरोंको) बींधनेके स्वभाववाले तथा धर्मसे च्युत व्यक्तिका दूसरोंको मारना स्वभाव ही होता है, उसीप्रकार उस लोहमय, तीक्ष्णतासे शरीरको बींधनेके स्वभाववाली, धनुषसे च्युत तथा शत्रुको मारनेके स्वभाववाली उस बाणावलिको बालकने आकाशमें छोड़े हुए अपने बाणोंसे उसीप्रकार छिन्न-भिन्न कर दिया, जिसप्रकार गरुड़ सर्प-पंक्तिको कर देता है। तदनंतर प्रत्यंचापर संधान करके समर्थ भुजावाले उस विद्याधरने आग्नेय बाण छोडा। वह बाण अपनी धूम्राकुल-श्यामल ज्वालाओंसे दोनों सेनाओंको

२०. ख त। २१. ख ग °हृ। २२. क ड °विजय। २३. क ख ग ड विहर। २४ क ड °णु। २५. ड धणु। २६. ख ग घ ड सुपत्त। २७. क ड गुण। २८. क ग वि। २९. ख ग अविवेएण।

[९] १ क ख ग ड °ह, घ °हं। २ ख ग °हि। ३ घ ड खंडु। ४ क ड °सहे णि°, ख ग सप्पुरिस न णि°। ५ ग °मड। ६ क धम्मह चुअ, ख धम्महं चुं°, ग धम्मह चुं°। ७ क °यहि। ८. घ °ण्ण। ९. क घ ड गुण। १० ख ग घ मेल्लिवि। ११. क ड धाइउ। १२. क ड °। १३. ग °ड।

तहिँ काले गयणगइणा सुहाइँ दिण्णइँ[14] वालहो दिव्वाउहाइँ।
तो मुक्कु[15] कुमारे वारुणत्थु तहो सरहो पहावें मेहसत्थु।
उन्नइउ[16] गयणे पच्छइयसूरु तडयडियविज्जु[17] नच्चियमऊरु[18]।
वरिसणहँ[19] लग्गु[20] गुरुधारजालु आणंदियदद्दुर-रववमालु।
नउ थक्कु[21] ताम वहुसलिलवहणु गउ खयहो[22] असेसु वि[22] जाम डहणु।
वोल्लाविउ पुणु वाले विवक्खु जइ सत्ति सरासणु रक्खु रक्खु।
घत्ता—अरुहयाससुएण करिकरभुएण[23] तोमरघाएण निवाडिउ[24]।
अरिहें[25] धरंताहें[26] पहरंताहें[27] आरोह-चिंधु[28]-धणु पाडिउ ॥ ९ ॥

[१०]

तो विज्जाहरु [1]दिढदट्ठाहरु।
खंडियकर[2]-धणु जोइय-पहरणु।
चक्कु धरेविणु थाणु रएविणु[3]।
मेल्लइ जामहिँ वाले तामहिँ।
कण्णियबाणें[4] हय-रिउपाणें।
मज्झए[5] खंडिउ अद्धु विहंडिउ।
अद्धउ करयले भामवि[6] नहयले।

जलाता हुआ दौड़ा। उसी समय गगनगतिने वालकको शुभ व दिव्यशस्त्र प्रदान किये। तब कुमारने वारुणास्त्र छोड़ा। उस शरके प्रभावसे एक वड़ा मेघसार्थ(समूह) आकाशमें उन्नत हुआ, जिसने सूर्यको आच्छादित कर लिया, विद्युत् कड़कने लगा, और मयूर नाचने लगा। वहुत भारी जलधारासमूह वरसने लगा और, आनंदित दर्दुरोंका(टर-टर)रव व्याप्त हो गया। प्रचुर पानीको वहन करनेवाला वह मेघसमूह(वर्षा करनेसे) तबतक नहीं रुका, जबतक कि अग्नि पूर्णरूपसे शांत नहीं हो गया। तब वालकने पुनः शत्रुको आह्वान किया—यदि शक्ति है तो अपने शरासन(धनुष)को वचाओ! अरहदासके उस पुत्रने, जो हाथीके सूंड़के समान भुजाओंवाला था, शत्रुके पकड़ते-पकड़ते और (उनकी रक्षाके लिए जंबूस्वामीपर) प्रहार करते-करते भी, उसके महावत, (ध्वज-)चिह्न एवं धनुषको तोमरके आघातसे भूमिपर गिरा दिया ॥९॥

[१०]

तब विद्याधरने दृढ़तासे अधरोंको काटकर, अपने हाथके टूटे हुए धनुषदंड और शस्त्रको देखकर, चक्र हाथमें लेकर, आसन जमाकर (अर्थात् निशाना साधकर) उसे जैसे ही छोड़ा, वैसे ही वालकने शत्रुका प्राणहरण करनेवाले कर्णिका नामक वाणसे चक्रको बीचसे खंडित कर आधेको तो टुकड़े-टुकड़े कर दिया, और आधेको हथेलीपर रख, नभस्तलमें घुमाकर

१४ ख ग °ड। १५. ख मुक्क। १६ क ह उण्ण°, ख ग °उणण्यउ। १७. क ड °तडिय°, ग तडियडिय°। १८. ख ग, नच्चिर°। १९ ख ह °णह। २० ख ग लग्ग। २१. क ड थक्क। २२. क ड असेसहो। २३. क ह °भुवेण। २४ क ह °रिउ। २५. क घ ड °हिं। २६. क ड °तहो, घ °ताहो। २७. क ड पर पहरंतहो, ग °ताहें, घ पहरताहो। २८ क ड चिंध।

[१०] १. घ दढ°। २. घ °पर। ३ क ह °प्पिणु। ४ व कन्निय°। ५ क ड मज्झुए; घ °इं। ६ क घ ड भामिवि।

सुक्कु कुमारहो[7] वइरि-निवारहो।
मंड धरंतहो पहरु[8] करंतहो।
निवडिउ करिवरे वज्जु[9] व गिरिवरे।
घाय-समाहउ घुलइ महागउ।
विरसु रडंतउ नियवि[10] पडंतउ।
पेल्लिवि[11] गयवरु कोंताउहकरु।
खयरुद्धाविउ[12] वेएं पाविउ।
कोंतुक्खेविउ बालहु[13] ढेविउ।
ताम कुमारें विक्कमसारें।
धरिउ समत्थें दाहिणहत्थें।
जं अच्छोडिउ अहिमुहुं पाडिउ।
कोंत-विलग्गउ थाणहो भग्गउ।
विहडप्फडु[14] अरि करिखंधोवरि[15]।
कड्ढिउ[16] विसहइ थाहर[17] न लहइ।

घत्ता—कुमरें कमु रयवि नियकरि चयवि अरिकुंभिकुंभें[18] उड्डेविणु।
हरिणा नहखइउ हरिणु[19] व लइउ[20] रिउ[21] पहरण-रणु छड्डेविणु[21] ॥१०॥

[११]

धरेवि मंड भुअथामगरिल्लें बद्धउ चप्पेवि[1] खयरु वरिल्ले[2]।
उच्चायवि[3] गयसारिहे[4] घल्लिउ छोडवि वंध मियंकु पमेल्लिउ।

छोड़ दिया। कुमारके द्वारा वैरीका निवारण करनेके लिए अत्यत बलपूर्वक प्रहार करनेपर वह चक्र (शत्रुके)हाथीपर ऐसा गिरा, जैसे पर्वतपर वज्र। प्रहारसे आहत होकर वह महागज चक्कर खाने लगा। दारुण चीत्कार करके गिरते हुए देखकर, उस हाथीको-(अंकुशसे) प्रेरित कर, कोत नामक आयुध हाथमे लेकर खेचर दौड़ा, और वेगसे बालकके पास पहुँचा। विद्याधरने कोत फेका, वह बालकको लाधता हुआ चला गया। तब विक्रममे श्रेष्ठ उस कुमारने अपने समर्थ (बलिष्ठ) दाहिने हाथसे उसे पकड़ लिया, और (एकाएक) छोडकर उसे अपने सामने पटक दिया। भालेसहित वह विद्याधर अपने स्थानसे भग्न(भ्रष्ट) हो गया। भयसे विह्वल शत्रु हाथीके कंधोपर खीचा हुआ ऐसा लगता था, मानो उसे (अन्यत्र) कही (शरण-) स्थान नही मिलता। तब कुमारने कूदकर, अपने हाथीको छोड़कर, शत्रुके हाथीके कधेपर उड़कर (छलाग लगाकर), शस्त्र-युद्ध छोड़कर, सिहके नखोसे खचित (पजोमे आये हुए) हरिणके समान शत्रुको पकड़ लिया ॥१०॥

[११]

अत्यत बलपूर्वक महान् भुजबलशाली उस कुमारने खेचरको चापकर (दबाकर) वस्त्रसे बाध लिया, और उचकाकर (अपने) हाथीके हौदेमे डाल दिया। मृगांकके वधन छुड़ाकर

७ घ कुमारो। ८ ख °र। ९ ख वज्ज, घ विज्जु। १०. क °डि। ११. ख ग व °य। १२ ख ग °विव, घ °द्धाइउ। १३ ख घ °हो, ग °ह। १४. क °प्फड। १५ ख ग °कंधो°। १६ क ट कड्ढिउ। १७. क ढ ठा°। १८. क ढ °कुंभ। १९ क °ण। २० क ड लयउ। २१ क ड पहरणु छड्डे°, घ °छड्डे।

[११] १. क ढ चप्परि। २ °ल्ले। ३ ख ग उद्धा°, घ °डवि। ४. ख घ °रिहि; ग °रिहिं।

तं पेक्खेवि किय-नियड-विमाणहिं[5] मेल्लिय कुसुमविट्ठि गिव्वाणहिँ।
जय-जय-सद्दु कुमारहो घोसिउ नच्चइ नारउ[6] नहे परितोसिउ[7]।
गयणगइहे[8] आणंदु पवड्ढिउ मिलियउ केरलसेण्णु[9] रसड्ढिउ।
तूरइँ हयइँ गहिरु गाइज्जइ वंदिहुँ[10] वत्थु कणय-धणु दिज्जइ।
भग्ग-मडप्फरु[11] हुउ खेयरजणु हेट्ठामुहु अवलंबिय-पहरणु।
गयणगइए[12] तहिँ[13] काले नवेविणु[14] सरह-सुगाढालिंगणु देविणु।
वइयरु सव्वु[15] मियंकहो सीसइ[16] जीविउ तुम्ह एहु जो दीसइ।
मइँ[17] कहियए[18] वित्तंतु निएसिउ[19] अज्जु जि सेणिएण संपेसिउ।
पुरि न पइट्ठु तुहुँ[20] मि[21] नउ दिट्ठउ दूउ होवि[22] रिउसहहि[23] पइट्ठउ।
तहि हुए[24] समरे सपहरण[25] धाइय अट्ठसहस खयरहँ[26] विणिवाइय।
अब्भंतरि रिउसेण्णु[27] हणंतहो तुह रणु हुउ एयहो[28] अमुणंतहो।
एमहिँ[29] पइँ[30] जि दिट्ठु जुज्झंतउ एहु[31] सो वरकुमारु खयरंतउ।
घत्ता—सुणिवि पसन्नमइ[32] केरलनिवइ कह पुणु वि पुणु वि वद्धारइ।
पयडियवहुपणउ[33] जिणवइतणउ[34] नियपुरिहि[35] मज्झे पइसारइ[36] ॥११॥

उसे मुक्त किया। ऐसा देखकर अपने विमानोंको निकट करके देवोने पुष्पवृष्टि की और कुमारके जय-जयकार शब्दका घोष किया। परितुष्ट हुए नारद आकाशमें नाचने लगे। गगनगतिको अत्यंत आनंद बढ़ा, और केरल सैन्य स्नेह व प्रीतिपूर्वक मिला। (विजय) तूर बजाये गये, गंभीर गान किया जाने लगा, और वंदियोंको वस्त्र, धान्य व धन दिया जाने लगा। खेचरजन (रत्नशेखरके सैनिक) भग्नमान हो, शस्त्रोंका अवलंबन लेकर अधोमुख होकर बैठ रहे। तब गगनगतिने प्रणाम करके और उत्कंठा व आवेगपूर्वक गाढ आलिंगन करके मृगांकको सब वृत्तांत कहा—तुम्हे जीवन देनेवाला यह जो (कुमार) दिखाई देता है, मेरे कहे वृत्तांतको निर्दिष्ट करके श्रेणिकने आज ही इसे यहाँ भेजा है। यह नगरमें भी प्रविष्ट नही हुआ, और न तेरे द्वारा देखा ही गया। दूत होकर शत्रुकी सभामें प्रविष्ट हो गया। वहाँ हुए युद्धमें आठ हजार खेचर आक्रमणके लिए शस्त्रोंसहित दौड़े, और मारे गये। भीतर रिपुसैन्यको मारते हुए, इसके नही जानते हुए ही यहाँ तुम्हारा युद्ध हुआ। अभी तुमने जिसे युद्ध करते देखा, यह वही, खेचरोके लिए कालस्वरूप श्रेष्ठ कुमार है। (यह सब) सुनकर मनमें प्रसन्न होकर केरल नृप कैसे-कैसे पुनः-पुनः बधाई देने लगा, और बहुत प्रणय प्रगट करके जिनमतिके पुत्रको अपनी पुरीके मध्य प्रवेश कराया ॥११॥

५. ख ग °णहे। ६. घ सुरयणु। ७ क ङ °ओसिउ। ८. क ख ङ °गइहिं; °गयहे। ९. ख °सेन्नु। १०. प्रतियोमें °हु। ११. क ङ °प्परु। १२ क ङ °गङय। १३. क ङ तहि। १४. क घ ङ °प्पिणु। १५. क सव्व। १६ क °इं। १७. क ङ मइ। १८ ख ग °यइ, घ °यइं। १९ ख ग घ निवें°। २०. क ङ तुहु। २१ क घ ङ वि। २२. क ख ग ङ होइ। २३. ग घ °हिं। २४. क घ ङ हुइ। २५. क ङ सुपह°। २६ क खयरह, घ खयरइ। २७ घ °सिन्नु। २८. क ङ एहु। २९. क ङ °हिं; घ एवहिं। ३०. क ङ पइ। ३१. क ङ सु। ३२ क ख ग ङ पसण्ण°। ३३ घ ङ °पणउं। ३४. क घ ङ °तणउं। ३५ क ङ °पुरिहिं; ख ग °पुरेंहि। ३६ क °सारइ।

[१२]

मणिमोत्तियमंडणजणियमोह[1] दरसाविय[2] पट्टणे हट्टसोह ।
घर घरे कप्पूरामोयभिण्णु सिरिखंडबहलरसछडउ दिण्णु[3] ।
रंगावलिविद्दुमचुण्णएहिं[4] पूरिउ चउक्कु[5] मणिवण्णएहिं[6] ।
बज्झंति[7] रयणमालाघणाइँ[8] सुरतरुनवकिसलयतोरणाइँ[9] ।
सियपुण्णकलसु[10] फलपत्तरिद्धु[11] दहि-दुव्व-कुसुम-अक्खयसमिद्धु[12] ।
दीसइ कुमारु पीणत्थणीहिं साहरणहिं नयरनियंबिणीहिं ।
हले हले पर[13] मण्णमि[14] चंदमुहिय धण्णिय[15] विलासवइ रायदुहिय ।
जा सरणागय[16]-सासणसमत्थे लग्गेसइ सेणियरायहत्थे ।
वरइत्तहो वलि किज्जमि[17] सुधीरु जसु घरि परिसु एक्कल्लवीरु ।
उच्छाहें इय राउले[18] पइट्ठ दिण्णासणेसु[19] सव्व वि[19] वइट्ठ ।
तो जंबुकुमारें कलहमूलु मेल्लेवि सम्माणिउ[20] रयणचूलु ।
अहो खेयरवइ को इत्थ[21] गव्वु जं जुज्झिउ तं खंतव्वु सव्वु ।
खत्तियहो परम एक्कु जि सुकम्मु जं समरे न भज्जइ एहु धम्मु[22] ।
लज्जिज्जइ अवसारेण लोइ विजयाजउ दइयायत्तु[23] होइ ।

[१२]

पत्तनमें मणिमौक्तिकोंकी सजावटसे उत्पन्न किरणोंसे हाट-शोभा दिखायी गयी। घर-घरमें कर्पूरकी आमोद प्रस्फुरित हुई, और श्रीखंडके घने रससे छटाएँ दी गयीं। विद्रुमके चूर्ण तथा मणिवर्णोंसे चौक पूरकर रंगोली बनायी गयी। प्रचुर रत्नमालाओं और कल्पवृक्षोंके नये किसलयोंके तोरण बांधे गये। धवल व पूर्ण कलश जो फलों व पत्रोंसे ऋद्धिसंपन्न, एवं दधि, दूर्वा, पुष्पों और अक्षतोंसे समृद्ध थे, उन्हें लिये हुए उन्नत स्तनोंवाली तथा आभरणयुक्त नगरकी सुंदरियोंने कुमारको देखा (स्वागत किया)। (किसीने अपनी सखीसे कहा)— सखी ! हे सखी ! मैं मानती हूँ कि चंद्रमाके समान मुखवाली राजकन्या विलासवती धन्य है, जो शरणागतके लिए शासन (अर्थात् शरण व निर्वाहसाधन आदि सब कुछ) देनेमें समर्थ श्रेणिक राजाका पाणिग्रहण करेगी। ऐसे वरके लिए बलिहारी है, जिसके घरमें ऐसा धीर-साहसी अद्वितीय वीर पुरुष (जंबूस्वामी) विद्यमान है। इसप्रकार उत्साहपूर्वक सब राजकुलमें प्रविष्ट हुए, और दिये हुए आसनोंपर बैठे। तब जंबूकुमारने कलहके कारणभूत रत्नचूलको (बंदीगृहसे) छोड़कर, उसका सम्मान किया, (और कहा)—अहो खेचरपति ! यहाँ (इस संसारमें) गर्व किस बातका ? जो आपके साथ युद्ध किया उस सबको क्षमा करें। क्षत्रियका एक ही परम सुकर्म यह है कि युद्धमें भी अपने इस (क्षात्र)धर्मको नष्ट न होने दे, क्योंकि पीछे हटनेसे लोकमें लज्जित होना पड़ता है; विजय और अजय(पराजय) तो दैवाधीन होती है।

[१२] १. क ख ग इ °सोह। २ क ब इ दरि°। ३. ब °नु। ४. ब °चुण्ण°। ५. क °चा।
६. ब मणिवन्न°। ७ क इ °त। ८. ब °घराइं। ९. ग °किमल्ड°। १०. क इ °कलस। ११. क
°रिद्ध। १२. क इ °समिद्ध। १३. इ यर। १४ ब मन्नमि। १५. ब धन्निय। १६. क ट °गट। १७ क
ब °उ। १८. क इ रावलि। १९. क ट सव्वइं। २०. ब इ °उं। २१. ब इत्थु। २२. ब ध्रमु। २३ ख ग
°पत्तु, ब °वत्तु।

लइ जाहि सपरियणु करहि रज्जु रयणसिहु भणइ[२४] सहगमणु[२५] सज्जु।
सहुँ[२६] पइँ[२७] जि[२८] जसुज्जल जामि ताम मगहाहिउ नियमि[२९] कुमार जाम।
घत्ता—सज्जणजणियरस[३०] कइवयदिवस[३१] वोलेविणु सुहि-साहारेँ।
वरविमाणट्ठिएण उक्कंट्ठिएण गमु सज्जिउ जंवुकुमारेँ ॥१२॥

[१३]

विज्जाहररयणसिहसमाणइँ[१] चलियइँ पंचसयाइँ विमाणइँ।
चलिउ[२] मियंकु सभज्ज[३]-सकण्णउ[४] गयणगइ वि चलियउ[५] माणुण्णउँ[६]।
सयल वि नहि सविमाण पधाइय नम्मय-कुरुलसिहरि[७] संपाइय।
खंधावारु नियवि सुपमाणइँ लंविआइँ अत्थाणे विमाणइँ।
उत्तरेवि जयकारिउ राणउँ[८] मउडवद्धनरनाहपहाणउँ[८]।
जंवूसामि नियवि मगहेसेँ आलिंगिउ भुएहिँ संतोसेँ[९]।
सिरु[१०] चुंवेवि जंघहिँ[११] वइसारिउ[१२] मुहु[१३] जोयंतेँ साहुक्कारिउ।
सव्वु वि गयणगइण्[१४] जं चाहिउ रणवित्तंतु नरिंदहो साहिउ।
एहु मियंकु देव उवलक्खहि[१५] कण्णारयणु[१६] एउ तं लक्खहि[१७]।
एहु सो विज्जाहरवइ आयउ[१८] नामेँ रयणचूलु विक्खायउ।
ताम नराहिवेण परियाणिय[१९] कयसंभासण पुणु सम्माणिय।

तो लीजिए, अपने परिजनोसहित जाइए और राज्य कीजिए! इसपर साथमें चलनेको प्रस्तुत रत्नशेखर कहने लगा—हे धवल-यशस्वी कुमार! मैं भी तुम्हारे साथ ही जाऊँगा और मगधराज श्रेणिकके दर्शन करूँगा। सज्जनोके हृदयमें प्रेमरस उत्पन्न कर और कतिपय दिवस कृतज्ञ सुहृत्के साथ व्यतीत कर, सुंदर विमानमें बैठकर, जंवूकुमार गमनके लिए उद्यत हुआ ॥१२॥

[१३]

विद्याधर रत्नशेखरके साथ पांच सौ विमान चले। मृगांक अपनी भार्या व कन्या सहित चला। गगनगति भी उन्नत-मान होकर चला। सभी विमानोंसहित आकाशमें दौड़ने लगे और नर्मदाके निकट कुरल पर्वतपर आये। वहाँ सुप्रमाण स्कंधावार देखकर, सभास्थलमें विमान लटकाये गये। (सवने) उतरकर मुकुटवद्ध-राजाओके प्रधान राजा (श्रेणिक)का जय-जयकार किया। जंवूस्वामीको देखकर मगधेशने संतोषपूर्वक भुजाओसे आलिंगन किया, शिर चूमकर अपनी जांघोपर (गोदीमें) वैठाया, और उसका मुख देखते हुए साधुवाद दिया। गगनगतिने भी जैसा उसने चाहा, वैसा युद्धका समस्त वृत्तांत राजाको कहा—हे देव! इन मृगांकको देखिए, और यह वह कन्यारत्न है, इसे भी देखिए! यह वह विद्याधरपति आया है, जो रत्नशेखर नामसे विख्यात है। तव नराधिपने सवको जानकर संभाषण करके,

२४. घ ङ °इ। २५ ख ग घ °गमण। २६. क ग सहु। २७. ख ग पइ। २८. घ मि। २९. क ङ °वि। ३० क ङ °रसा। ३१. क ङ कयवयदिवसा।

[१३] १. ख ग घ °समाणह। २. क ङ °य। ३ ख ग घ °ज्जु। ४. घ °नउ। ५. क ख ग ङ चलिउ। ६ क °ण्णउ। ७ क ङ कुरल°। ८ क °णउ। ९. प्रतियोंमें °सि। १०. ख ग सिरि। ११. क ङ °हि। १२. ख ग °रिउं। १३ घ मुहुं। १४. घ °गइउ। १५ क ख ग घ °क्खहि। १६. घ कन्ना°। १७ क ख ग लक्खहि। १८ क ङ आइउ। १९ घ °णिउं।

सुहमुहुत्ते जणनयणाणंदणि परिणिय निवेण मियंकहो नंदणि[२०]।
खयर-मियंक विरोहविवज्जिय वेण्णि वि किंकर करिवि विसज्जिय।
पेसिउ गयणगइ वि सत्थाणउँ[२१] अप्पणु[२२] नरवइ देवि[२३] पयाणउँ[२१]।
निय-पुरि पत्तउ जाम पईसइ उववणे ताम महारिसि दीसइ।
नाम सुहम्मसामि विहरंतउ पंचहिँ[२४] सीससयहिँ[२५] सहुँ पत्तउ[२१]।
पविरलकयलोएण महीसें वंदिउ भत्तिए[२६] पणविय सीसें।
घत्ता—निवइ-नियड-चरहिँ संथुउ नरहिँ तउ[२७] जंबुकुमारें उत्तमु[२८]।
हयतमु[२९] तणु चरमु गणहरु[३०] परमु सिरि-वीरजिणदहो[३१] पंचमु ॥१३॥

इय जंबूसामिचरिए सिंगारवीरे महाकव्वे महाकइदेवयत्तसुयवीरविरइए रयणसिहसंगामो नाम [३२]सत्तमो संधी समत्तो[३२] ॥ संधि–७ ॥

फिर संमान किया। शुभमुहूर्त्तमें सब लोगोंके नेत्रोंको आनंद देनेवाली मृगांककी पुत्रीको राजाने विवाह लिया। परस्पर शत्रुभावरहित विद्याधर(रत्नचूल) और मृगांक राजा, इन दोनोंको किंकर(सेवक)बनाकर विसर्जित(विदा) कर दिया। गगनगति भी स्वस्थानको भेज दिया गया, और स्वयं नरपति प्रयाण करके, अपने नगरको पहुंचकर, जब (भीतर)प्रवेश करने लगा, उसी समय उपवनमे महामुनि दिखाई दिये। उनका नाम सुधर्मस्वामी था, और वे पांच सौ शिष्योंके साथ विहार करते हुए वहां पधारे थे। लोगोंके कम हो जानेपर, राजाने (मुनिको) शिरसः प्रणाम कर भक्तिपूर्वक वंदना की। (अज्ञान)अंधकारका नाश करनेवाले, चरमशरीरी, तथा श्री महावीर जिनेंद्रके पांचवें अंतिम व उत्तम गणधरकी राजाके निकटवर्ती अनुचरोंने स्तुति की और फिर जंबूकुमारने ॥१३॥

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित जंबूस्वामीचरित्र नामक इस शृंगार-वीररसात्मक महाकाव्यमें 'रत्नशेखर संग्राम' नामक सप्तम संधि समाप्त ॥ संधि—७ ॥

२०. ख ग णदिणि। २१ क °णउ। २२. क घ ट अप्पुणु। २३. ख ग घ देउ। २४. ख ग °हिं। २५ ख ग सहु प°; घ मंजुत्तउ। २६ क ट °य। २७. क ख ग पुत्तु। २८ क घ ट उत्तमु। २९. क घ ट मोहिय। ३०. क °हर। ३१. क घ ट जिणि°; ख ग °दहं। ३२. क घ ट मनमा इमा गंधो ॥ संधि. ७ ॥

संधि—८

[१]

आरिसकहाए अहियं महुकीला[1] करि-नरिंदपत्थाणं[2] ।
संगामो वित्तसिणं[3] जं दिट्ठं तं खमंतु महुं[4] गुरुणो[5] ॥१॥
[6]कव्वंगरससमिद्धं[7] चिंतंताणं कईण सव्वं पि[6] ।
[8]वित्तमहवा न वित्तं[8] सच्चरिए घडइ [9]जुत्तमुत्तं जं[9] ॥२॥
मा वण्णउ[10] असमत्थो धारेउं सव्वकव्वरसपूरं ।
नियसत्तिरूव[11]-संगहियरसकणो ट्ठाउ[12] तुण्हिक्को[13] ॥३॥
कव्वस्स इमस्स मए विरइय-वण्णस्स[14] रससमुद्दस्स ।
गंतूण पारमहियं थावउ[15] अत्थं महासंतो ॥४॥
सालंकारं कव्वं काउं पढिउं च वुज्झिउं तह य ।
अहिणेउं[16] च पवोत्तु[17] वीरं मुत्तूण[18] को तरइ ॥५॥
[घत्ता]—भत्तिए[19] अरुहयाससुएण जोडियभुएण[20] पणवेप्पिणु हरिसियगत्तें ।
निम्मलनाणचउक्कधरु गणहरु[21] पवरु[22] पुच्छिज्जइ उत्तमसत्तें ॥१॥

[१]

आर्षप्रोक्त कथासे अधिक मैंने वसंतक्रीड़ा, हाथी(का उपद्रव), नरेंद्रके प्रस्थान व संग्रामका, यह सब जो वृत्त कहा, उसके लिए गुरुजन मुझे क्षमा करें ॥१॥ चिंतनशील कवियोंके द्वारा काव्यके अंग व रसोसे समृद्ध चाहे वह घटित हुआ हो या न घटित हुआ हो, जो कुछ युक्ति-युक्त कहा जाता है, वह सब सच्चारित्रमें घटित अर्थात् संभावित होता है ॥ २ ॥ समस्त काव्यरसके पूरको धारण करनेमें असमर्थ लोग स्वयं (काव्यगत विषयोंका) वर्णन न करे, अपनी शक्तिके अनुरूप रसकणोका संग्रह करके अर्थात् काव्योके अध्ययनका ही रस लेकर, मौन ही रहे ॥३॥ मेरे द्वारा रचे हुए नाना वर्णो व रसोके समुद्र इस काव्यके पार जानेके लिए महासंत जन (सहृदय लोग) इसमे (अभिधाशक्तिसे प्रतीयमान अर्थको अपेक्षा, लक्षणा व व्यंजना शक्तियोके आश्रयसे) अधिक अर्थ (विशेषार्थ)की स्थापना करें ॥४॥ अलंकार-सहित काव्य रचने, पढ़ने, जानने तथा अभिनय और प्रयोग करनेमें वीर (कवि)को छोड़कर और कौन पार पा सकता है ॥५॥

अरहदासके उत्तम आत्मा पुत्रने भक्ति-भावसे हाथ जोड़कर, प्रणाम करके प्रसन्न गात्र हो, निर्मल ज्ञानचतुष्क (मति, श्रुत, अवधि और मन:पर्यय)के धारक उन गणधरप्रवरसे पूछा—॥१॥

[१] १. क °कोलाल। २. ख ग करिंदप°। ३. ब चिंतामणि। ४' ख ग मह, ब मम। ५. क ङ गुणिणो, घ गुणिणे। ६. घ मे इस पूर्ण पंक्तिके स्थानमे यह पंक्ति है—'सेसेसु जिट्ठ तंतं ताणं कवीण सव्वं पि कहियकम'। ७ क ङ कव्व सरसपमिद। ८. घ चित्तमहवा ण चित्तं। ९ ख ग जुत्तमजुत्तं। १०. क घ ङ °उं। ११ क ङ °त्तव, ग °रूव, घ °रूय। १२. ब ङ ठाउ। १३. ख ग °क्के, घ तुन्हिक्को। १४. घ वन्न°। १५ व ङ थो°। १६ ख ग °णेतुं। १७. घ पउत्तु। १८. ब मो°। १९ क ङ °य। २०. घ °भुइणा। २१. क° घ हर। २२ घ पउर।

[२]

खंडयं—पहु तउ दंसणकारणं लहिवि[1] वियप्पइ मे मणं।
सहुँ[2] तुम्हेहिँ समुच्चयं[3] चिरभवि कहि मि परिच्चयं[4] ॥

तं निसुणेवि वयसीलसमुद्दे विद्दुम इव[5] फुरियाहरमुद्दें।
दर[6] दरसियकुंदुज्जलदंते अमियपवाहु व गिरए सवंते।
चिरभवकारणु सुमरावंतें जंबूसामि भणिउ[7] भयवंतें।
कहमि कुमार तुज्झु[8] आयण्णहि[9] मणसंकप्पु एहु फुडु मण्णहि[10]।
भव्वहो नियडीहुयभवछेयहो सव्वु जि[11] फुरइ चित्ति सविवेयहो।
एत्थु जि मगहादेसि असंकिउ नामें गामु वड्ढमाणंकिउ।
तहिँ[12] भवयत्तनामदेवोत्तर[13] दियवरतणय वेण्णि दीहरकर।
परममहावयचरणु[14] चरेप्पिणु हुय सुर तइयए सग्गे मरेप्पिणु।
पुव्वविदेहि जाय तत्थहो चुय वज्जयंत-महपउमनिवइ-सुय
सायरससि-सिवकुमर-वियक्खण घोरु वीरु तउ चरिवि सलक्खण[15]।
घत्ता—वेण्णि वि बंभोत्तरि अमर सक्कसिरीधर जलकंतविमाणए[16] सुत्थिय।
आउसु जेत्थु सुहायरइँ दससायरइँ[17] भुंजंत सोक्ख-विविहाइँ[18] थिय ॥२॥

[२]

'प्रभु आपके दर्शनोका हेतु प्राप्त कर मेरे मनमे ऐसा विकल्प हुआ है कि आपके साथ कही पूर्वभवमे विशिष्ट (प्रगाढ) परिचय रहा।' इस बातको सुनकर व्रत और शीलके समुद्र, विद्रुमके समान स्फुरायमान अधरमुद्राके धारक, कुंदपुष्पके समान उज्ज्वल दांतोको ईषत् दिखलाते हुए, और वाणीसे अमृतका प्रवाह-सा बहाते हुए, तथा पूर्वभवके कारण (सबंध)को स्मरण कराते हुए उन भगवान्(मुनि)ने जंबूस्वामीको कहा—'हे कुमार, मै तुम्हे कहता हूँ, सुनो।] यह तुम्हारा मनोभाव है, ऐसा स्पष्टतासे समझो। क्योकि जिस भव्यजीवका भवच्छेद (मोक्ष) निकट हो गया है, ऐसे विवेकवान्के चित्तमे सब कुछ स्पष्ट भासित होता है। यही इसी मगधदेशमे वर्द्धमान नामका एक भय-भीतिरहित गाँव था, वहाँ एक भवदत्त और दूसरा (अपने नामके अतमे देव' पद युक्त) भवदेव, ये दो दीर्घबाहु ब्राह्मण-पुत्र उत्पन्न हुए। परम महाव्रत चारित्र (मुनि-धर्म)का पालन कर वे मरकर तीसरे स्वर्गमे देव हुए। वहाँसे च्युत होकर पूर्वविदेहमे वज्रदत और महापद्म नामक राजाओके सागरचंद्र और शिवकुमार नामक (शुभ)लक्षणोसे युक्त एव विचक्षण पुत्र हुए। वहाँ घोर पराक्रमपूर्वक तप करके वे दोनो ही ब्रह्मोत्तर स्वर्गके जलकात नामक विमानमे इंद्रकी लक्ष्मीके धारक देव हुए; और दस सागरकी सुखकर आयु पाकर, विविध सुखोका भोग करते हुए वहाँ रहे ॥२॥

[२] १. क ङ लहु वि, ख ग लहइ। २. क मह; ङ महु। ३ व कहिं। ४ क ङ परचियं। ५ क ङ रइ, घ रइ। ६ घ दरिसिय°। ७. घ °उ। ८ क, ख ग तुज्झ। ९ प्रतियोमे °ण्णहिं। १०. क ङ °हिं, ख ग मण्णहिं। ११. व वि। १२ क तहि। १३. क घ ङ भवणामदत्त°। १४ ख ग °चरण। १५ क ङ °क्खणु। १६. घ °णइ। १७. क ङ °रइ। १८ क °हाइ, ख ग °हइ; घ °हउ; ङ °हाउ।

[३]

खंडयं—तहिँ वेण्णि वि परोप्पर चिरभवनेहनिब्भरं[1] ।
वसिऊणं तओ चुया इह [2]भरहे पुणो हुया[2] ॥

अह एत्थु जि वरमगहाविसए   सुररमणिसासवासियदिसए ।
जिणमंदिरमंडियधरणियले   इंदीवररयकयसुरहिजले ।
संवाहणु [3]नामु अत्थि[3] नयरु   नायरविलासहासियखयरु[4] ।
सावयसंकिण्णवणु[5] व ठियउ   पायलु व नायाहिट्ठियउ ।
रहुकुलु व सलक्खणरामधरु[6]   अण्णाणुवएसु व नट्ठपरु ।
बहुवाणिउँ[7] मयरहरु व सहइ   जहिँ हट्टमग्गु भारहु कहइ[8] ।
वावरइ दोणु पसरंतसरु   पत्थु वि संचरइ करेण करु ।
भुयतुलतोलियकंसावरिउ[9]   पयडइ व कहि[10] मि केसवचरिउ ।
बहुसंथउ जणियपयक्खलणु[11]   कत्थइ[12] थिउ णं जडचट्टगणु ।
जणु कहि[13] मि सवासणु ववहरइ   रक्खससमवायहो अणुहरइ ।

[३]

वहाँ दोनों ही परस्पर पूर्वभव-जन्य स्नेहसे भरपूर होकर रहे। वहाँसे च्युत होकर पुनः इसी भारतमे हुए। अब यही इस सुंदर मगध देशमें, जहाँ सुररमणियोंके आश्वाससे दिशाएँ सुगंधित है, जहांका भूमंडल जिनमंदिरोसे मंडित है, और जहांका जल इंदीवरोके पराग-रजसे सुरभित है, ऐसा संवाहन नामका नगर है, जहांके नागरिकोका विलास खेचरोके विलासका उपहास करता है। श्रावकोसे संकीर्ण होनेसे वह श्वापदोंसे संकीर्ण वनके समान स्थित है, और नागोसे अधिष्ठित पातालके समान नागवृक्षों अथवा न्याय-नीतिसे अधिष्ठित है। लक्ष्मणसहित राम तथा सुलक्षण रानियोंको धारण करनेवाले रघुकुलके समान वह नगर सुलक्षण वृक्षोंसहित आरामों तथा सुलक्षणा सुंदरियोंका धारक है। जिसप्रकार अज्ञानोपदेशसे परमार्थ नष्ट हो जाता है, उसीप्रकार उस नगरके शत्रु नष्ट हो गये हैं। बहुत वनियों (व्यापारियो)से युक्त होनेसे वह बहुत अधिक पानीवाले मकरगृह (सागर)के समान शोभा पाता है। वहाँका हाटमार्ग (बाजार) मानो भारत कथाको कहता है। भारत-युद्धमे बाणोंका प्रसार करते हुए गुरुद्रोण (युद्ध) व्यापृत थे, वहांके हाटमार्गमे खूब शब्द करता हुआ द्रोण नामक माप व्यापृत अर्थात् व्यवहृत होता है। कही पर वह केशवके चरित्रको प्रगट करता है, जिसमे केशवने अपनी भुजाओरूपी तुलामे कंस-जैसे प्रधान (शत्रु) को तोला अर्थात् विजित किया था; वहाँ हाथोसे तौलनेवाली तुलामे काँसेकी बनी श्रेष्ठ वस्तुएँ तौली जाती है। कही बहुत-से व्यापारियोंके सार्थ व्यापारमे गिरावट (या रुकावट) जानकर इसप्रकार ठहरे हुए हैं, जैसे कि मूर्ख शिष्य पाठमे स्खलन जानकर खड़े हो जाते है। कही वासनों(बरतनो)का व्यापार करनेवाले लोग,

[३] १. ङ चिरु°, ख ग °नेहानि° । २ क ङ भरहेण पु°, ख ग भारहे पु°; घ भरहे पुणु ते हुय । ३ क ङ णाम अ°, घ अत्थि नाम न° । ४. क णायरविसाल° । ५. ग सावइ°; क ङ °सकिण्णुववणु; ख ग घ °सकिण्णु वणु । ६ ख ग घ सलक्खणु राम° । ७. ख ग घ °वाणिउं । ८. क ङ सहइ । ९. क भुअ°; ख ग घ °तुलतोलिउ कंसा°, ङ भुअतुलतोलियकंसाचरिउ । १० घ कहिं । ११. क ङ जाणियपयखलणु । १२. घ °इं । १३. घ कहिं ।

जहिँ अक्खरसंगहिँ[14] सहहिँ[15] कइ टेटहिँ[16] जूवार[17]-विचित्तमइ।
जिणहरहिँ[18] सदप्पण-पुज्जवया[19] दीसंति मुणिंद वि तहिँ जि सया।
घत्ता—तं पुरु[20] [21]सुपइट्ठियनिवइ जिणचरणमइ परिपालइ समरे वलुद्धरु[22]।
कुवलयपरिवड्ढियहरिसु[23] छणससिसरिसु महिवीढभारधारियधुरु[24]॥३॥

[४]

[खंडयं]—तहो सुहलक्खणभायणा[1] गुरुदेवच्चणकयमणा[2]।
सिंगारासयसिप्पिणी[3] [4]पढमकलत्तं रुप्पिणी[4]।

भवयत्तु जेट्ठ जो विहि सि चिरु[6] सुरु[7] सायरचंदु पुणो वि सुरु।
सो जाउ[8] पुत्तु जणजाणियहे[9] नरनाहे रुप्पिणीराणियहे[10]।
सउहम्मनामु[11] विज्जापवरु नीसेससत्थविण्णाणधरु[12]।
सज्जणमणनयणाणंदयरु[13] लाइयपडिवक्खकुमारडरु।
एक्कहिँ[14] दिणे सुप्पइट्ठु[15] निवइ सकलत्तु सनंदणु सुद्धमइ।
गउ वंदणभत्तिए[16] भवतरणु सिरिवीरजिणंदसमोसरणु[17]।

शव-अशनका व्यवहार (प्रयोग) करनेवाले (शव-भोजी) राक्षस समूहका अनुकरण करते है। कही अक्षरोंका संग्रह अर्थात् काव्य पदोकी रचना करते हुए कवि ऐसे शोभायमान होते है, जैसे द्यूतगृहोमें पासोके रसमे तल्लीन विचित्रबुद्धिवाले जुआड़ी। वहाँके जिनगृहोमे सद्+अर्पण अर्थात् सदाचारका पालन करनेवाले तथा पूज्य-वचन बोलनेवाले मुनीद्र सदैव दिखाई देते हैं। जिनचरणोका भक्त, समरमे उद्धत बलशाली, कमलो (कुमुदो)को पूर्णतः प्रफुल्लित करनेवाले पूर्णचंद्रमाके समान पृथ्वीमंडलके हर्षको बढ़ानेवाला, एवं पृथ्वीके भारकी धुराको धारण करनेवाला सुप्रतिष्ठ नामका राजा उस नगरका पालन करता है ॥३॥

[४]

उसकी शुभलक्षणोंकी भाजन, गुरु व देवताके अर्चनमे मन लगानेवाली तथा शृंगारके आशयकी शिल्पिनी अर्थात् शृंगारके मर्मको समझनेमें दक्ष, ऐसी रुक्मिणी नामकी प्रधान रानी है। पूर्वभवमें जो ज्येष्ठ (भ्राता) भवदत्त था, फिर देव, फिर सागरदत्त और पुनः देव हुआ था, वह राजाकी जनमान्या रुक्मिणी रानीका पुत्र हुआ। उसका नाम सौधर्म रखा गया। वह विद्याओको जाननेमें श्रेष्ठ और समस्त शास्त्रो व विज्ञान(कलाओ)का धारक, तथा सज्जनोंके मन और नयनोको आनंद देनेवाला, एवं शत्रुपक्षके राजकुमारोको डर उत्पन्न करनेवाला हुआ। एक दिन वह शुद्धमति सुप्रतिष्ठ राजा अपनी पत्नी और पुत्रके साथ वंदना करनेकी भक्तिसे संसारसे पार उतारनेवाले वीरजिनेंद्रके समोशरणमें गया और उन परमेष्ठीकी दिव्यध्वनि सुनकर

१४ क ड °सगय। १५ ख ग ड °हि। १६ ख ग घ टिंटिहिं। १७ घ जूयार। १८. क ड °रहि। १९. क ख ग °रया, घ पूयरय। २०. घ पुरि। २१ क ड ट्ठियट्ठियणि°। २२ क वल°, ड °द्धइ। २३ क °परिवड्ढय°। २४. क ख ग ड °धरु।

[४] १ क ड °भायणं। २ क ड °सण। ३. ख ग °सप्पिणी। ४. क ख ग ड °कलत्त ह°। ५ क ड भयवत्तु। ६ क चिरु, घ विरु। ७ ख ग सुर। ८ ख ग जायउ। ९. क घ °यहे, ड °यहो। १०. ख ग घ °यहे, ड °यहो। ११ क ड °णाम, घ °नाम। १२. घ °विन्नाण°, ग °धरु। १३. घ °णंदणहो। १४. ड °हि। १५ ख ग °इट्ठु। १६ क घ ड °हत्तिए। १७. क घ ड °जिणिंद°, क ड °समवसरणु।

निसुणेवि परमेट्ठिहिं[18] दिव्वझुणि पव्वज्ज लेवि हुउ परममुणि ।
गणहरु[19] चउत्थु तवतवियत्तणु सिद्धिवहुनिवेसियविमलमणु ।
पेक्खेवि जणेरु निवसिरिचइउ[20] सउहम्मकुमारु वि पव्वइउ ।
गणहरु पंचमु नासियदुहहो अविणट्ठथाणु सासयसुहहो ।
सो हउं[21] रिसिसंघविराइयउ विहरंतुज्जाणि पराइयउ[22] ।

घत्ता—जो भवएउ विहि मि लहुउ पुणु अमरु हुउ पुणु सिवकुमारु सुरवरु पुणु ।
विज्जुमालि[23]-गिव्वाणु[24] हुउ[25] चउ-देवि-जुउ जलकंते विमाणे महागुणु ॥४॥

[५]

खंडयं—सग्गचविउ मणोहरे जायउ एत्थु जि पुरवरे ।
सो तुहुं[1] जियसक्कंदणो अरुहयासवणिनंदणो ॥१॥

जं तं तउ चिरु देविचउक्कं छम्मासावहि-पिययमसुक्कं ।
चिरुभवनेहनिबद्धं आयं सायरदत्ताईणं जायं ।
दुहियचउक्कं विज्जाविमलं चरणोहामिय[2]-कोमलकमलं ।
करपल्लवजियरत्तासोयं[3] भमरपीयमुहसासामोयं[4] ।
मणिमयकुंडलमंडियगंडं कामधणुद्धरअग्गिमकंडं ।

प्रव्रज्या लेकर महामुनि हो गया । उन तपसे तपाये हुए तनवाले चतुर्थ गणधरने सिद्धिवधूमें अपने विमल मनको लगाया । इसप्रकार अपने जनकको राजलक्ष्मीका त्यागी होते देख सौधर्म कुमार भी प्रव्रजित हो गया । उन दुःखका नाश करनेवाले और शाश्वतसुखके पद (मोक्ष)को प्राप्त वीरजिनेंद्रका वह पाँचवाँ गणधर ही मैं हूँ, और मुनिसंघके साथ विहार करते-करते इस उद्यानमें आ पहुँचा हूँ । दोनो भाइयोंमें छोटा जो भवदेव हुआ था, फिर देव, फिर शिवकुमार और फिर उत्तम देव हुआ, वह विद्युन्माली नामका महागुणवान् देव जलकांत विमानमें चार देवियोसे युक्त हुआ ॥४॥

[५]

वही तू स्वर्गसे च्युत होकर इस मनोहर सुंदर व श्रेष्ठ नगरमें अरहदास वणिक्का इंद्रको भी जीतनेवाला पुत्र हुआ है । पूर्वमें वे जो तुम्हारी, चार देवियाँ थीं, वे प्रियतमके स्वर्गसे च्युत होनेकी छह मासकी अवधिके उपरांत पूर्वभवके स्नेहसे बंधी हुई (स्वर्गसे) आकर सागरदत्तादिको उत्पन्न हुई है । वे चारों पुत्रियाँ विद्याओंमें विमल अर्थात् विद्याओंके विमलज्ञानसे युक्त, अपने चरणोकी शोभासे कोमल कमलोको तिरस्कृत करनेवाली, तथा अपने कर-पल्लवोसे रक्ताशोकको भी जीतनेवाली हैं, और उनके मुखश्वासका आमोद भ्रमरों-द्वारा पीया जाता है, अर्थात् भ्रमर उनके मुखोंको कमल एवं उनके मुखके श्वासको कमलगंध समझकर उनपर मंडराते रहते हैं । मणिमय कुंडलोसे उनका कपोलप्रदेश मंडित है, और वे काम-धनुर्द्धरके अग्रिम (श्रेष्ठ)बाण ही

---

१८. घ ङ °ट्ठिहिं । १९ क ङ गहणरु । २०. ब तवसिरिवइउ । २१. ख ग हउ । २२. क ङ इहाइयउ । २३. ख ग विज्ज° । २४. क ङ °णे; ख ग °ण । २५. क ङ चुउ ।

[५] १ क ङ तुहु । २ क ङ चलणो° । ३ ख ग °सोएं । ४. ख ग °मोएं ।

दिण्णं[5] तुज्झ ताए[6] तं सव्वं   दसमए[7] वासरे परिणेयव्वं[8]।
इय कज्जेण कुमार पवित्तं   परिचए[9] पडिलग्गं ते चित्तं।
अम्हे[10] लोयाणंदियदेहं   परयाणहिँ जम्मंतरनेहं।
निसुणेवि मुणिवयणं सुहकम्मो   सविसेसं सुमरिय नियजम्मो।
पुणु पुणु जइचलणेसुं[11] भत्तो   जंपइ[12] जंबूसामि सुसत्तो।
घत्ता—मोक्खमहापहे गमु रयमि परियणु चयमि निव्विण्णउ[13] महु दय किज्जउ।
चिरु भवे जिह मणु[14] संवरिउ[15] दइयंबरिय सुहु[16] मोक्खदिक्ख पहु[16] दिज्जउ॥५॥

[६]

खंडयं—इय सोऊणं मलहरो[1] बोल्लइ वयणं[2] गणहरो।
ता वच्चसु सनिहेलणं[3] पुच्छसु पियमायाजणं[4]॥१॥

भणइ तास मेल्लियसणुब्भवो   अरुहयासजिणवइतणुब्भवो।
मायबप्पु इह अज्जु भणियओ[5]   एत्तिओ[6] जं तेहिँ जणियओ[7]।
कहि मि काले जं पुणु न भावियं   दुलहु[8] जम्मकोडिहिँ न पावियं[8]।
धम्मरयणु तं तउ पसाएणं[9]   लद्धु सीलु तह विणु[10] कसाएणं[9]।

हैं। (तुम्हारे) तातने उन सबको तुझे दे दिया है, अर्थात् तुम्हारे लिए उनका वाग्दान कर लिया है, दसवें दिन उनसे तुम्हारा परिणय होगा। इस कारण (पूर्वभव संबंध) से, हे कुमार! तुम्हारा पवित्र चित्त मेरे परिचयमें लग गया। हम-लोग लोगोंके शरीरमें आनंद उत्पन्न करनेवाले पूर्वजन्मके स्नेहको जानते हैं। मुनिके वचनोंको सुनकर विशेषरूपसे अपने पूर्वजन्मका स्मरण कर पुनः पुनः यतिके चरणोंमें भक्ति दर्शाते हुए, शुभकर्मोंवाले सुसत्व (पवित्रात्मा) जंबूस्वामी कहने लगे—हे प्रभु! मैं मोक्ष-महापथमें गमन करूँगा और परिजनोंको छोड़ूँगा। मैं संसारसे उदासीन हो गया हूँ, मेरे ऊपर दया कीजिए, और पूर्वभवमें जिसप्रकार (मेरे) मनको संवृत अर्थात् संवरयुक्त बनाया था, उसीप्रकारकी शुभ (श्रेयस्कर) दिगंबरी-मोक्ष-दीक्षा दीजिए॥५॥

[६]

यह सुनकर वे (कर्म) मलनाशक गणधर बोले—'तो फिर अपने घर जाओ और माता-पिताजनोंसे पूछो।' तब मनोद्भव अर्थात् कामवासनाको त्यागनेवाला अरहदास और जिनमतीका तनुज बोला—आज जिन्हें यहाँ माँ-बाप कहा जाता है, वह इतने (से) ही कि उनके द्वारा जन्म दिया जाता है। कोटि-कोटि जन्म पाकर भी जो दुर्लभ धन पहले कभी नहीं मिला था, और जिसका पहले कभी अभ्यास नहीं किया था, वह धर्मरत्न तथा कषायरहित शील

५. ख ग दिन्न। ६. घ तए। ७. क घ ङ दसमे। ८. ख ग °दव्व। ९ क ख ग घ परिचय, ङ पडिचय। १०. क व ङ अम्हा। ११. क ङ जय°। १२. ख ग °ङं। १३. घ °न्नउ, ङ °ण्णउं। १४. प्रतियोंमें 'मण'। १५. क ख ग संचरिय, घ ङ नंवरिय। १६. क ङ मोक्खु दिक्ख महु।

[६] १ क घ मण°। २ ख ग वइणं। ३ क ङ सहणिहें°, ख ग सुहणिहें°। ४. क व ङ पिउ°। ५. ग °यउ। ६. ख ग °उं। ७. ख ग °यउ; घ ङ °यउं। ८ क घ ङ जम्मकोडि-कोडीहि (घ न) पाविंय। ९ ख ग °यण। १०. क विण।

मायवप्पु तुहुँ[11] तुहुँ जि बंधवो[12]　　तुहुँ[13] जि मित्तु तारियमहाभवो[14]
तुहुँ[13] जि देउ गुरु तुहुँ[13] जि सामिओ[15] पइँ जि पढमु महु मोहु नामिओ[16] ।
विज्जमाणकणयमयचामरं　　दाविय़ं सुहं माणुसामरं ।
करि पसाउ लइ पुव्वचारिणं　　देहि दिक्ख[17] किं बहु-वियारिणं[18] ।
घत्ता—निच्छउ तहो वीरहो[19] मुणेवि　वयणइँ सुणेवि सउहम्ममहामुणि भासइ ।
मायबप्पु पुच्छंताहँ[20] [21]तउ लिंताहँ[21] भणु पुत्त काइँ किर नासइ[22] ॥६॥

[७]

खंडयं—चरमसरीरहो ते मणं म करउ किं पि वियप्पणं ।
आउच्छेप्पिणु[1] परियणं सेवसु वच्छ तवोवणं ॥१॥
गुरुभासिउ आएसु लहेप्पिणु　　चलणजुयलु[2] भत्तिए[3] पणवेप्पिणु ।
गयउ कुमारु पत्तु नियमंदिरु　　दाणाणंदियवंदिणवंदिरु ।
जणणि-जणेरु[4] पयहँ[5] सिरु नाविवि　　करकमलंजलि सीसे चडाविवि ।
संसारिणिअवत्थ पुणु बोल्लइ　　[6]चच्चरदीउ व[6] माणुसु डोल्लइ ।
अहिजीहाफुरणु[7] व जीविउ चलु　　गिरिणइपूरु व ओहट्टइ बलु ।
लच्छिविलासु गंडपरुमालणु　　विसयसोक्खु पामा-नहचालणु ।

तुम्हारे ही प्रसादसे प्राप्त हुआ। तू ही मेरा माँ-बाप है, और तू ही मेरा बांधव, तथा तू ही महासंसार(समुद्र)से पार उतारनेवाला मित्र। तू ही देव है, गुरु है, और तू ही स्वामी। तूने ही सर्वप्रथम मेरा मोह उपशांत किया था, और जहाँ स्वर्णमय चंवरोंसे व्यजन डुलाया जाता है, ऐसे मनुष्य और देवसुखोंको दिलाया था। (अतः) कृपा कीजिए और पूर्व (जन्मों) से ही (मोक्षमार्गपर) चलनेवाले (मुझ)को दीक्षा दीजिए! बहुत विचार करनेसे क्या?

उस धीरका निश्चय जानकर और उसके वचनोंको सुनकर सौधर्म मुनि कहने लगे—रे वत्स कहो तो! माँ-बापको पूछकर, फिर तप लेनेसे क्या हानि होती है? ॥६॥

[७]

रे वत्स! तुझ चरमशरीरीको अपने मनमें कोई विकल्प लानेकी आवश्यकता नहीं है, अतः परिजनोंसे पूछकर तपोवनका सेवन करना। गुरुके कहे हुए आदेशको लेकर, उनके चरण-युगलको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके, कुमार गया, और दानसे वंदीवृंदको आनंदित करनेवाले अपने घरको पहुँचा, एवं जननी और जनकके पैरोंको सिर नमाकर, करकमलोंकी अंजलिको सिर-पर चढाकर, वह बोला—'यह संसारी अवस्था ऐसी है, जिसमे मनुष्यका (चंचल) मन चौरस्तेके दीपकके समान (सांसारिक विषयोंमें यहाँ-वहाँ) डोलता है। जीवित(आयुष्य) सर्पके जिह्वा-स्फुरणके समान चंचल है, और बल गिरिनदीके पूरके समान (निरंतर) ह्रासको प्राप्त होता रहता है। लक्ष्मीका विलास गंडमाला(रोग)के जैसा है, और विषयसुख नखोसे खाज-

११. क ख ग तुहु। १२ क ढ °उ। १३ क ङ तुहु। १४. क °भओ। १५. क °उ, घ °उ। १६ क ढ णासिओ, घ °उं। १७ ख ग देक्ख। १८. ढ विचा°। १९ क ढ धी°। २०. क ङ °तह। २१ क ङ तउ तं लेंतहं। २२. ख ग °इ।

[७] १ घ °विणु। २. ख ग °जुअलु। ३ क ढ °य। ४ क घ ढ जणेर। ५ क ढ °हि, घ °हिं। ६. क ढ °दीवउ। ७. °फुरणु।

इय कज्जेण अज्जु पव्वज्जमि सहुँ तुम्हहिँ[8] खंतव्वु विरज्जमि ।
अप्पणु खामिउँ[9] जगु जि खमाववि रायविरोह वे वि उवसाववि ।
सुयवयणाउ माय मुच्छंगय कह व कह व उम्मुच्छिय न वि मुय ।
खरपवणाहयकेलि व कंपिय सजलनयण-गग्गिर-गिर जंपिय ।
पुत्त पुत्त सहु जं पइँ[11] पयडिउ महिहरसिहरि[12] वज्जु[13] णं निवडिउ ।
पुत्त पुत्त तुहुँ[14] मंडणु निलयहो[15] तउ लेंतेण जाइ कुलु विलयहो ।

घत्ता—पुत्तु जि गोत्तहो आसतरु संताणधरु गुरुभारसमुद्धियकंधरु[16] ।
पुत्तु जि आवइवल्लरिहिँ[17] कुलक्खयकरिहिँ[18] विद्धंसणबंधुरसिंधुरु ॥७॥

[८]

खंडयं—इय[1] संसारे जं पियं निसुणेवि जणणी जंपियं ।
चउगइदुक्खनियामिणा भणियं जंबूसामिणा ॥१॥

सुहु लोयायारु विसुद्धकम्मि को चवइ चविउ जं[2] तुम्हि अम्मि ।
किर वंसुज्जालउ जो स पुत्तु गुणिगणणि[3] पढमु आयारजुत्तु ।
जाएण न कंदहिँ वइरि जेण नंदंति न सज्जण सइ[4] सुहेण ।
दाणेण अहव निज्जियरणेण सुकवित्तें[5] अह जिणकित्तणेण ।

खुजलानेके समान है। इस कारणसे मैं आज ही प्रव्रज्या लूँगा। अपने आत्माको मैंने (सबके प्रति) क्षमा(भाव)से युक्त कर लिया है, और लोकसे भी मैं (अपने प्रति) क्षमा(भाव) चाहता हूँ, एवं राग और विरोध(द्वेष) दोनोंको उपशांत करता हूँ।' पुत्रके इन वचनोंसे माँ मूच्छित हो गयी, और किसी-किसी तरह उन्मूच्छित हुई, मरी नहीं (अर्थात् किसी-किसी तरह मरनेसे बची)। वह तीक्ष्ण पवनसे आहत कदलीके समान काँपने लगी, एवं सजलनेत्र होकर ऐसी गद्-गद वाणी बोली—हे पुत्र! तुम्हारे वचन (कुल)कल्याणके विरुद्ध और विध्नकारणीय हैं। हे पुत्र! तूने जो कहा वह मेरे लिए पर्वतशिखरपर वज्रपातके समान है। हे पुत्र! तू ही घरकी शोभा है, तेरे तप लेनेसे कुलका विनाश हो जायगा। पुत्र ही कुलका आशावृक्ष है, संतानोंका धारक है, और कुटुंबके गुरुभारको कंधोंपर उठानेवाला है। पुत्र ही कुलका क्षय करनेवाली आपत्ति-वल्लरीको विध्वंस करनेवाला श्रेष्ठ हस्ति है ॥७॥

[८]

इस संसारमें जो प्रिय है, जननीके वैसे कथनको सुनकर चारों गतियोंके दुःखका नियमन करनेवाले जंबूस्वामीने कहा—'हे शुद्धशील माँ! यह जो लोकाचार तुमने बतलाया, वह दूसरा कौन कह सकता है? निश्चयसे पुत्र वही है, जो वंशको उज्ज्वल करे, तथा जो गुणियों-की गणनामें प्रथम हो, और आचारयुक्त हो। जिसके जन्म लेनेसे वैरी क्रंदन नहीं करते, और सज्जन सदा सुखसे आनंद नहीं मनाते; जिसके दानसे अथवा रणको जीतनेसे; सुकवित्व-से

८. क इ °हँ। ९. क इ °उ, ब अप्पुणु। १०. क इ खमियउ; ब खमियउ। ११ क इ पइ। १२. क इ °सिहरहिँ। १३. इ वज्ज। १४ इ तुहु। १५. क °यहुँ। १६. ख ग °भारसमु°, ब °समुद्दिय°। १७ क इ °रिहो; ब °रिहिँ। १८ क इ °करिहो; ब °करिहिँ। १९. ग °सिधुर।

[८] १. क इ इह। २. ख ग जो। ३. ख ग गुण°, ब °गणेण। ४. घ सइं। ५. क इ सुकयत्तें।

जसहंसु भुवणपंजरे[6] न मंतु बंभंडे न धावइ अइकमंतु ।
किं तेण पयापरिपूरणेण नियजणणीजोव्वणलूरणेण[7] ।
दुव्वसणभुत्तु कुलकंदखणणु अत्थत्थिउ मारइ जणणि-जणणु ।
तो वरि तं करमि विवेयकम्मु जिणकेवलीहिं जं आसि गम्मु ।
सामण्णहो[8] सज्झु[9] न धरणिवलए कुलनामुक्कीरमि चंदफलए[10] ।
तं करमि न विग्गहगइ पुणो वि डंकेइ न जहिं[11] मणमंकुणो वि ।
इंदियवावारु न जेत्थु फुरइ अत्थोवलंभु न वियारु करइ ।
जहिं[12] मिलिउ विलीयइ कालदव्वु अत्थवणु[13] जाइ आयासु सव्वु ।
जहिं[14] खयहो पवच्चइ कलिकयंतु[15] तउ चरमि निरंजणु होमि संतु ।
कहियइं[16] इय कहिवि निरंतराइं सविसेसइं[17] नियजम्मंतराइं ।
संबोहियाए[18] मायए[19] पवुत्तु[20] पडिवज्जिउ सयलु वि पुत्त जुत्तु[21] ।

घत्ता—निच्छउ परियाणिवि नंदणहो सिवसुहमणहो पियरे सिक्खनिवेसिय[22] ।
सायरपमुहुम्माहियहो वइवाहियहो नियपुरिस वेण्णि संपेसिय ॥ ८ ॥

अथवा जिनभगवान्‌का कीर्त्तन करनेसे जिसका यश-हंस इस संसाररूप पिंजड़ेमें न समाता हुआ, इसका अतिक्रमण करके संपूर्ण ब्रह्मांडमें तीव्रगतिसे नही जाता; उस मात्र उदरपोषण करनेवाले अथवा प्रजापूरण (संतति वृद्धि) करनेवाले, निज-जननीके यौवनको काटने(लूटने)वाले पुत्रसे क्या जो दुर्व्यसनोसे भक्षित(वशवर्त्ती) होकर कुलके मूल(धर्म)को ही खोद डालता है, एवं अर्थपरायण होकर माँ-बापको भी मार डालता है ।' तो अच्छा है कि मै वह परित्यागकर्म (ससारत्याग) करूँ जो जिनकेवलियो-द्वारा गम्य रहा है । सामान्य व्यक्तिके लिए जैसा साध्य नही है, उसप्रकारसे मै चंद्रमंडलपर अपने कुलके नामको उकेरूँगा । मै वह करूँगा जिससे पुनः विग्रह-गति (संसारमें आवागमन) न हो, और जिससे यह मनरूपी मत्कुण पुनः डंक न मारे (अर्थात् विषयोंकी तृष्णासे अभिभूत न करे) । जहाँ इन्द्रिय व्यापार प्रगट ही नही होता है, अर्थको (उपलब्धि या अनुपलब्धि) जहाँ विकार उत्पन्न नहीं करती, जहाँ मिलने (पहुँचने)से कालद्रव्य विलीन हो जाता है (अर्थात् जहाँ जन्म-जरा व मृत्यु नही होते), जहाँ समस्त आकाश अस्तंगत हो जाता है, और जहाँ कलिकृतांत क्षय हो जाता है, मैं ऐसा तप करूगा, और निरंजन(कर्मरूपी कालिमासे रहित)-संत होऊँगा । यह कहनेके अनंतर उसने विशेषतासे (विस्तारपूर्वक) अपने निरंतर (पाँच) जन्मांतरोंको कहा । तब बोधको प्राप्त हुई माँने कहा—पुत्र ! तूने जो कुछ प्रतिपादन किया, सब युक्त है । शिवसुखमे मन लगे हुए पुत्र-का निश्चय जानकर पिताने विवाहके लिए उमाहे हुए (उत्साहित) सागरदत्त प्रमुख वणिकोंके पास शिक्षा(समाचार) देकर अपने दो पुरुप भेजे ॥८॥

---

६. क ड भुवणु°, ख ग भुयण°, घ भुअण° । ७. ख ग नियजणणे° । ८ व °सहो । ९. क मज्झु । १० व °फलइ । ११ घ जहि । १२. ड जहि । १३ क ड अंथ° । १४. क ड जहि । १५. क ड °कियतु । १६. ख ग °यइ । १७ ख ग °सइ । १८ प्रतियोमे °याइ । १९ क व ड °इं । २०. क ड पउत्तु । २१. क ड जुत्त । २२ ख ग सिखाइ विनि°; व सिक्खवि विनि° ।

[९]

खंडयं—ता तहिँ[1] मंडवे थक्कयं दिट्ठं[2] सेट्ठिचउक्कयं।
तोरणदारपराइया तेहिँ[3] मि ते वि विहाइया॥

तो अब्भुत्थाणु करेवि तहु आसणु दहि[4]-कुसुमक्खयहि[5] सहुँ।
तंबोलु[6] विलेवणु[7] सज्जियउ आयारजोग्गु सव्वु वि कियउ।
बोल्लणहॅं[8] लग्गु विहि एक्कु नरु वरताएं[9] पेसिय[10] तुम्ह घरु।
अघडियउ घडावइ दिण्णदिहि[11] विहडावइ सुघडिउ दुट्ठविहि[12]।
दइवहो[13] कि करइ सुपुरिसमइ असमत्तकज्जे जहिँ[14] अवरगइ।
बोल्लंतहो तहो संवरियमणु[15] अणिमिसदिट्ठिए[16] मुहु[17] नियइ जणु।
सव्वत्थ[18] वि लय[19]-विप्फारयाइँ वज्जंतइँ तूरइँ वारियाइँ।
कलवेणु-वीणसमलंकियाइँ नीसद्दइँ गेयाइँ[19] मि कियाइँ।
कामिणिसंचारइँ धारियाइँ रुद्धइँ[20] नेउरझंकारियाइँ।
लिहिओ[21] इव संठिउ[22] बंधुजणु अवरु वि सव्वो वि निहियसवणु।
आहासइ पुणरवि[23] सो जि नरु अवलोयहु कण्णहु[24] अण्णु[25] वरु।
नियचित्तु सिद्धिवहुवहि[26] धरिउ परिणयणु कुमारें परिहरिउ।

[९]

तब (इन दोनो पुरुषोंने वहाँ जाकर) मंडपमे बैठे हुए चारों श्रेष्ठियोको देखा, और तोरण द्वार पार करते ही वे दोनो भी उन श्रेष्ठियोके द्वारा देखे गये। फिर उनके लिए अभ्युत्थान करके दधि, कुसुम व अक्षत आदिसे मंगलोपचार करके आसन दिया, तांबूल, कुंकुम व चंदन आदि विलेपन सामग्री आगे करके जो-जो कुछ आचार-व्यवहार योग्य है, सभी किया गया। तदनन्तर दोनोमे-से एक व्यक्ति बोलने लगा—'वरके तातने तुम्हारे घर भेजा है। (दुः) साहसी और दुष्ट-विधि अघटितको तो घटाता है, और सुघटितको विघटित कर देता है। सत्पुरुषकी बुद्धि इस दैवका क्या करे, जहाँ असंपन्न कार्यमे कोई और ही गति हो जाती है? उसके बोलते हुए सब लोग अपना मन थामकर निर्निमेष दृष्टिसे उसका मुँह देखने लगे। सर्वत्र विस्फार अर्थात् उच्चलयसे बजते हुए तूर रोक दिये गये। मधुर वेणु और वीणासे समवेत सभी गान बंद कर दिये गये। कामिनियोका सचार रोक दिया गया, और नूपुरोकी झंकार अवरुद्ध कर दी गयी। बंधुजन तथा और जिन्होने भी कानोसे सुना, सभी चित्रलिखितके समान (स्तंभित) हो गये। पुन. वही व्यक्ति कहने लगा—कन्याओके लिए अन्य वर देखिए। अपने चित्तको (अतिशयरूपसे) सिद्धिवधूमे लगानेवाले कुमारने विवाहको त्याग दिया है।

[९] १ ख ग ड तहि। २. ख ग घ दिट्ठउ। ३. ख ग तेहि। ४ ख ग तहि। ५ क ड °यहि। ६ क ड तवोल। ७ क ड °वण। ८ क ड वोलणह। ९ क °ताए। १० क ड ए°। ११ ख ग घ दिन्न°। १२ घ दड्ढ°। १३ ख ग °यहो। १४ ख ग जह। १५. क °गमणु। १६ क ख ग ड अणमिस°। १७ ख ग सहु, घ सुहु। १८ ख ग विलइ। १९. क ख ग ड °इ। २० क ड °इ। २१ ख ग लिहियउ। २२ घ सतिउ। २३ ख ग पुणु°। २४ व कन्नहो। २५ घ अवरु। २६ क ड °वहुवहि, ख ग °वहुअह, घ °वहुयहि।

तुम्हहिँ[27] सहुँ अम्हहँ[28] परमरइ जं करहु एत्थु तं देहु मइ।
घत्ता—पिउ-मायरि-बंधव-जणहिँ दुक्खियमणहिँ वुज्झाविउ कह व न[29] वुज्झइ।
सच्चउ अज्जु जि तवचरणु वइरायमणु लितउ कुमारु किम रुज्झइ॥ ९॥

[१०]

खंडयं—सुणेवि वयोहरजंपियं[1] करवत्तेण व[2] कप्पियं[3]।
विसकवलेण व घुम्मियं सव्वाणं हिययं ठियं॥
हेट्ठामुहुँ संठिउ सयणविंदु वज्जासणिसूडिउ णं गिरिंदु।
णं गरुडझडप्पिउ फणिसमूहु हरिदारियसिरु णं हत्थिजूहु।
खरपरसु[4] हयउ[5] विडवो[6] व्व रुक्खु वुच्चइ कण्णापियरहिँ[7] सदुक्खु।
वरु जंवुसामि मेल्लिवि वरिट्ठु तइलोक्कें[8] कवणु तहो सरिसु दिट्ठु।
चिरु दिण्णियाउ कण्णाउ[9] जाउ अण्णहो[9] कहो[10] एवहें[11] देहु ताउ।
अह ताउ जि[12] पुच्छहु[13] वालियाउ [14]नवसिरसकुसुमसोमालियाउ।
इय भणेवि वयोहरु[15] करे धरेवि माइहरब्भंतरे पइसरेवि।
कण्णाण कहिउ कारणु समण्णु[16] वरइत्तु तुम्ह[17] लइ नियहु अण्णु[16]।
निसुणेवि कज्जंतरु जित्तसिरिए[18] दिज्जइ पच्चुत्तरु पउमसिरिए[18]।
निम्मलगुणगोत्तविसालियाहँ पइ[19] एक्कु जि किर कुलवालियाहँ।

तुम्हारे साथ हमारी परम प्रीति है, इस प्रसंगमें जो किया जाये वैसी मति दीजिए! दुःखित-मन माता-पिता और बांधवजनोके द्वारा समझाये जाने पर भी वह कैसे भी नही समझता। वैराग्य-मन कुमारको आज ही सचमुच तप लेनेसे कैसे रोका जाये? ॥९॥

[१०]

उस संदेशवाहकके कहेको सुनकर सभीका हृदय करोंतसे चीरे हुए जैसा तथा विष खा लेनेसे घूमता हुआ (चकराता हुआ) जैसा हो गया। स्वजनवृंद इसप्रकार अधोमुख होकर बैठ रहे जैसे अतिकठोर वज्रायुधसे तोड़ा हुआ पर्वतराज, जैसे गरुड़से झपेटा हुआ फणिसमूह, सिंहके द्वारा शिर-विदीर्ण किया हुआ हाथियोंका झुंड, और तीक्ष्ण परशुसे कटी हुई शाखाओंवाला (ठूंठ) वृक्ष हो जाता है। कन्याओंके पिता दुःखपूर्वक कहने लगे—'जंवूस्वामी-जैसे श्रेष्ठवरको छोड़कर तीनों लोकोंमें उसके समान और कौन देखा गया है? जो कन्याएँ बहुत पहलेसे ही (उसे) दे दी गयी थी, उन्हे अब किस दूसरेको दें? अब उन्ही नवीन सिरीषपुष्पके समान सुकुमार बालिकाओंसे पूछा जाये'—ऐसा कहकर संदेशवाहकको हाथ पकड़कर और मातृगृहमे भीतर प्रवेश कराकर कन्याओंको सब कारण(समाचार) बतलाया, (और पूछा) अच्छा, अब तुम लोगोके लिए दूसरा वर देखें? (विवाह)कार्यमें व्यवधानकी यह बात सुनकर, लक्ष्मीकी शोभाको जीतनेवाली पद्मश्रीने प्रत्युत्तर दिया—निर्मलगुणों और महान् गोत्रवाली कुलकन्याओंका निश्चयसे एक

२७. क ङ °इं। २८ क ङ °इं, घ °हिं। २९ घ नउ।

[१०] १. ख ग घ वलो°। २ क ङ य। ३ ख ग कपिय। ४. क ख ग ङ °फरस; घ °परस। ५. ख ग खइउ। ६. ख ग घ उ°। ७. घ कन्ना°। ८. क ङ °लोए। ९ घ अन्न°। १०. ख ग कहें, घ कहिं। ११ क एमहि, घ एवहिं, ङ एमहिं। १२ घ वि। १३. क ङ पु°। १४. ख ग नवकुसमसरिस°; घ °सिरसि। १५ ख ग घ वओ°। १६. घ °न्नु। १७ घ तुम्हि। १८ घ °निरि। १९. क ख ग घ पइं।

एक्कु जि जणेरि जगि एक्कु ताउ एक्को जि[20] देउ[21] जिणु वीयराउ।
गुरु एक्कु जि भण्णइ[22] परमसाहु सुहि एक्कु जि जसु तउ-धम्मलाहु।
परिणयणु अम्ह न करंतु कंतु[23] जइ परतउ लेइ विरायवंतु।
घत्ता—अह[24] पुणु जइ[24] विवाहु घडइ[25] दिट्ठिहे[26] चडइँ[27] अग्गलु बोल्लु न जाणहुँ[28]।
तो तरलच्छिविलासवसु[29] रइलद्धरसु जम्मावहि वल्लहु माणहुँ॥१०॥

[११]

खंडयं—इयवयणं हियइच्छियं इयराहिँ मि[1] समत्थियं[2]।
कयपरिणयणे वयधणं[3] दूरे तस्स तवोवणं[4]॥१॥
गरुयउ[5] कज्जु जइवि[6] लज्जिज्जइ लज्ज मुएवि तो वि बोल्लिज्जइ।
अच्छउ ताम कामसंजीवणि कोमलझुणि जुवाणमणदीवणि।
रइनाडयविलाससंसिक्खणु वंकउ-तिक्खकडक्खनिरिक्खणु[7]।
सरसु सरलबाहुलयालिंगणु गाढत्तणे[8] पीडियथोरत्थणु।
दंसणे[9] ज्जि दरसियसिंगारहो[10] रइविहलंघलदिट्ठिकुमारहो।
पेक्खेसहुँ[11] चलणेसु रमंती गुरुरमणत्थले खिन्न[12]-भमंती[13]।

ही पति होता है, लोकमे एक ही जननी होती है, एक ही तात, और एक ही देव—वीतराग जिन। एक ही परम साधुको गुरु-कहा जाता है, और एक ही सुहृत्, जिससे तप व धर्मका लाभ हो। यदि प्रियतम हम लोगोका परिणय नही करके, वैरागी होकर परम-तप (दिगंबरीदीक्षा) लेते है (तो लें), परंतु फिर भी यदि (किसी तरह) विवाह घटित हो जाय, और हम लोग उसकी दृष्टिमे चढ जायें, तो मै बहुत आगे बढकर तो बोलना नही जानती, (लेकिन फिरभी) चंचलनेत्रोके विलासके वश हुए, और रतिमे रस लेनेवाले उसको हम लोग आजन्म अपना प्राणवल्लभ माने (अर्थात् चचल नेत्रोके कटाक्ष और रतिरसमे डूबकर वह आजन्म हमलोगोका प्राणप्रिय होकर रहेगा)॥१०॥

[११]

इस मनोवाछित वचनका दूसरी कुमारियोने भी समर्थन किया—(कि) परिणय कर लेने-पर उसके लिए व्रतप्रधान तपोवन तो दूर ही है। यद्यपि यह बडा भारी लज्जनीय कार्य है, तथापि लज्जा छोडकर कहना पडता है—'तो फिर जवानोके मनको उद्दीपित करनेवाली कामकी सजीवनी कोमल-ध्वनि, रतिनाटक और विलासकी शिक्षा, बाँके तीक्ष्ण कटाक्षोसे देखना, प्रेमरससे पूर्ण होकर सुंदर बाहुलताओसे आलिंगन और स्थूल स्तनोसे प्रगाढतासे मर्दन हो। हमलोगोके दर्शनमात्रसे ही दर्शितश्रृगार अर्थात् उद्दीप्त-काम कुमारकी रति-विह्वल दृष्टिको हमलोग अपने चरणोमे रमण करती और विशाल रमणस्थलपर खिन्न होकर भ्रमण करती

२० क घ ङ वि। २१ ख ग देउ वि। २२ क ङ °इ; घ भन्नइ। २३ ख ग सतु। २४ क ङ जइ पुणु। २५ ख ग °इ। २६ क ङ °हि, घ °हिं। २७ ख ग घ °इ। २८. ख ग °हो, २९ क लइं°।

[११] १. क घ ङ पि। २ ख समि°। ३ प्रतियोमे °घण। ४ ख ग तवो°। ५ क घ ङ °वउ। ६ ख ग जयवि। ७ ख ग °निर°। ८ क ङ °त्तण। ९ ङ °ण। १० घ दरिसिय°। ११ क ङ °सहु। १२ क ख ग ङ खिण्ण। १३ क ङ भवती।

रोमावलिपएसि[14] विहडप्फड तिवलितरंगविसमि[15] दिंती ज्झड ।
नाहीबिंबे थक्क न पयट्टइ दुब्बलढोरिव पंके चहुट्टइ ।
हुय निप्फंद चडवि[16] घणथणयड[17] तिसिया इव[18] जलदंसणे लंपड[18] ।
तरलतरंगमयणमयसंगिणि ईहइ दीहरनयणतरंगिणि ।
पेक्खेवउ विलासरंजियमणु पणइणिपणयपायपहरियतणु ।
माणिणिमाणुवसावण[19]-कंखिरु महुरमम्मणुल्लावण[20]-झंखिरु ।
पणमणमिलियमउलिपयलग्गउ नेउरग्गकयवंधविलग्गउ[21] ।
इय निसुणिवि सव्वहिं[22] परिभाविउ मिलिवि कुमारु विवत्थहिँ थाविउ ।

घत्ता—कण्णहँ[23] चउहँ[24] वि हत्थ[25] धरि परिणयणु करि सुहिनयणहँ[26] जणहिं[27] महारइ[28] ।
एक्कु जि वासरु कल्लि पुणु वयविमलगुणु तवचरणु[29] लेतु को वारइ[30] ॥११॥

[१२]

खंडयं—तो बालेण न वज्जियं वयणमिणं पडिवज्जियं ।
झत्ति विराय-विवज्जियं गहिरं[1] तूरं वज्जियं[1] ॥
पत्ते विवाहमुहुत्ते मणोहरे उण्णामउ[2] निबद्धु कंकणु[3] करे ।

हुई देखेगी। रोमावलि प्रदेशपर विह्वल होकर, विषम त्रिवली तरंगोपर झपट मारते हुए नाभिबिंबपर ठहरकर उसका प्रवर्तन इसप्रकार रुक जायेगा, जिसप्रकार कीचड़में फँसा हुआ दुर्बल पशु; और घने स्तनतटोंपर चढ़कर वह ऐसी निष्पंद हो जायेगी, जैसे जलदर्शनका लंपट कोई प्यासा (जलको देखकर)। तरल तरंगोवाली (अर्थात् चंचल प्रेक्षणोसे युक्त) व मदन-मदकी संगिनी, हमलोगोके दीर्घनेत्रोंरूपी तरगिणीको वह अभिलाषापूर्वक देखेगा। (और भी हमलोगोके द्वारा) वह विलासमे अनुरक्त मनवाला और हम प्रणयिनियोके प्रणयसे पादप्रहारसे युक्त शरीरवाला-अर्थात् प्रणयवश हमलोगोके चरणोंको चूमते हुए; तथा माननियोके मानको उपशांत करनेकी आकांक्षासे मधुर कंदर्पालाप करते हुए, व (दीर्घ) निःश्वास लेते हुए; और प्रणाम करनेके लिए उसका मुकुट अपने चरणोसे इसप्रकार लगा हुआ मानो वह नूपुरोके अग्र-भागसे बाँधकर चिपका दिया गया हो, इस रूपमे देखा जायगा। यह सुनकर सभीने विचार किया, और मिलकर कुमारको इन व्यवस्थाओमे स्थापित किया (अर्थात् बाँधा) कि केवल एक दिनके लिए चारो कन्याओके पाणिग्रहण करके सुहृज्जनोके नयनोके लिए महद् प्रीति उत्पन्न कीजिए। फिर कल ही विमल व्रतों और शुद्ध गुणोंवाले तपश्चरणको लेते हुए (तुम्हे) कौन रोकेगा ॥११॥

[१२-]

तब बालकने अस्वीकार नही किया, और इस वचनको मान लिया। शीघ्र ही विराग-विवर्जित अर्थात् किसी भी प्रकार रस-भंगरहित गभीर तूर बज उठा। शुभ विवाह मूहूर्त

१४ क ड °स। १५ क ढ °विसम, ख ग °विसमें। १६ ख ग चडिवि। १७. क ड °तड। १८. घ दसणि जलल°। १९ क घ ड °सामण। २०. क ङ महुरामम्मणलावणु, ख ग °लावण। २१ क घ ङ °कयकध°। २२. ख ग घ °ह। २३. क ड कण्ण जु, घ कन्नहं। २४ क घ ङ °हु, ख ग °ह। २५. क घ ढ हत्यु। २६ ख ग सुहिनय°, क ड °णयणहु। २७. क घ ड °हिं। २८ क ङ °रड। २९. क ढ तउ°। ३० क ड °इ।

[१२] १. क ढ तूर विवज्जिय°। २. ख ग घ उन्ना°। ३. क °ण।

सिरि[४] सियकुसुमसउडु जियससहरु गंधुद्धुंत[५]-महुरसर-महुयरु[६]।
सेयसुहुम[७]-नववत्थनियंसणु चंदणलित्तरयणमंडियतणु।
चउहुँ[८] मि कण्णहँ[९] जंबुकुमारें किउ विवाहु वणिगोत्तायारें।
सायरदत्तु करेवि[१०] धुरे ताए[११] कण्णचयारि[१२] कएहिँ[१३] जलधारए[१४]।
वहुकरसंगहे[१५] गोत्तपवित्तहो दिज्जइ दाइज्जउ वरइत्तहो[१६]।
डाहुत्तारु[१७] चारु चामीयरु मोत्तिउ तारु सुत्तिसंभउ[१८] वरु।
दित्तिफुरंतु रयणु जाइल्लउ[१९] वइरायरउ वज्जु कंतिल्लउ।
चेलिउ कंचिवालु वहुमोल्लउ अवरु वि[२०] जं जं काइँ सि[२०] भल्लउ।
दिण्णउ[२१] दासिउ चीर वि अंकें दीवउ मंचउ सहुँ पल्लंके।

घत्ता—मंडवि मिलियलोयपवरें[२२] आणंदयरे परिणयणु कज्जु निव्वत्तिउ।
जोयहो आइउ णं वरहो नववहुवरहो मज्झण्णहो[२३] सूरु पवत्तिउ[२४] ॥१२॥

[१३]

खंडयं—खरतरघम्मपसित्तए[१] चंदणपंकविलित्तए।
कामिणिकंकणकलरवे गंडुब्भासियजललवे॥

आने पर ऊर्णामय कंकण हाथमें बाँधा गया। शिरपर अपनी शोभासे चंद्रमाको जीतनेवाला तथा अपनी गंधसे आकृष्ट भ्रमरोंके गुंजारसे युक्त श्वेत(कमल)पुष्पोंका मुकुट बाँधा गया। धवल, सूक्ष्म और नये वस्त्रोंको पहने, तथा चंदनसे लिप्त और रत्नोंसे मंडित-देह कुमारने चारों कन्याओंसे वणिक्कुलके आचारके अनुसार विवाह कर लिया। सागरदत्तको प्रमुख करके चारों कन्याओंके लिए (कन्यादानके निमित्त) स्वच्छ जलधारा की जानेपर वधुओंके पाणिग्रहण-के उपरांत उस पवित्र कुलवाले वरके लिए बहुत-सा दायज (दहेज) भी दिया गया। तापसे तपाया हुआ श्रेष्ठ सोना, शुक्तिमें उत्पन्न होनेवाले बड़े-बड़े सुंदर मोती, दीप्तिसे स्फुरायमान श्रेष्ठ (जात्य) रत्न, वज्रकी खानसे निकाला हुआ कांतिमान वज्ररत्न एवं बहुमूल्य कांची देश निर्मित वस्त्र तथा अन्य भी जो जो कुछ वस्तुएँ हैं, सभी दी गयी। दासियाँ भी दी गयी, और सुंदर सुंदर वस्त्र; विशेषप्रकारके आसन एवं दीपक और मंच पलंग सहित दिये गये। आनंददायक मंडपमें प्रवर अर्थात् वरिष्ठ लोगोंके एकत्र हो जानेपर परिणयका कार्य सपन्न किया गया, और मानो श्रेष्ठ नव-वधुओं तथा वरको देखनेके लिए आया हुआ सूर्य मध्याह्नमें प्रवृत्त हुआ॥१२॥

[१३]

(अब जिस समय कि)—तीव्रतम घाम (धूप) से पसीनेसे तर, तथा चंदनका खूब गाढ़ा लेप की हुई कामिनियोंके कपोलोंपर जललव अर्थात् स्वेदबिंदु चमक रहे थे, और उनके कंकणोंका

४. क सिर। ५. घ °द्धुंत। ६. क ड °अरु। ७ क ख ड °सुहम। ८. प्रतियोंमें °हु। ९ क ड °हु। १०. ख करवे, ग दरिवे। ११. क तारडे, ख ग तामए, ड तामइ। १२. ख ग घ कण्णावरि। १३. क घ ड कि°। १४. क ड °वारडं। १५. क ख ग °संगहो, घ °संगहि। १६ ब °यत्तहो। १७ ख ग उत्तमु डाहु। १८ क ड °संभव। १९ ख ग जाय°। २०. क ख ग ट ब जं काउ मि, व काइं मि जं जं। २१. घ दिन्नउ। २२. °लोए° २३. घ °न्नहो। २४ ग पवित्तउ।

[१३] १. घ खरयर°।

तिणमयकायमाणसंठियजणे[1] वारिपसिंच्चमाणचुय[2]-जलकणे[3] ।
कुसुमवाससुरहियसीयलघणे सेवियचमरुक्खेवपहंजणे ।
[4]कोवुण्हवियसलिलसरे सरतडे जलणसरिससंतवियसिलायडे ।
कद्दमलोलविलोलियदद्दुरे[5] इंदीवरनिलुक्कइंदिंदिरे ।
महिसि[6]जूहडोहियपंकिलजले[6] तरुछायानिविट्ठगोमंडले ।
तेहए काले कुमारु विसुद्धउ[7] भुंजइभोयणु सवहु-सबंधउ ।
जं नाडयवित्थरु व रसिल्लउ वायरणु[8] व विंजणसोहिल्लउ[9] ।
पिसुणलोयहियवं व सकूरउ सज्जणमणु व नेहपरिपूरउ ।
[10]वरतरुणीवयणु व लवणुग्गउ पसर-सूरमंडलु व समुग्गउ ।
वासहरं पिव सहइ सखट्टउ[11] जं च महानयरु[12] व बहुवट्टउ ।
सुपुरिसधणु व सुपत्तहिं[13] थक्कउ रेहइ[14] पंडियजणु व सतक्कउ[15] ।

घत्ता—नाणाविहभक्खहिं[16] पयरु[17] सुहमहुरयरु भुंजवि[18] नियाणखणे ढुक्कउ[19] ।
लइयरसेहिं[20] मि[21] परिहरिउ कवडहिं[22] भरिउ णं धुत्तिहिं[23] पेम्मयवक्कउ[24] ॥१३॥

मधुर कलरव हो रहा था; और जबकि लोग तृणमय कायमानों अर्थात् आसनोंपर बैठ गये थे, तथा जलसे तर किये हुए व वारिकणोंको चुआते हुए चँवरोंके खूब शीतल प्रभंजन (पवन)का सेवन किया जा रहा था; और जबकि ईषत् उष्ण जलवाले सरोवरके तटपर शिला-तट अग्निके समान तप रहे थे; दर्दुर कर्दम-क्रीड़ा करके प्रसन्न हो रहे थे, भौंरे इंदीवरोंके पीछे छिप रहे थे; महिषोंके यूथोंके अवगाहन करनेसे (सरोवरोंका) जल पंकिल हो रहा था, तथा पशु-मंडली वृक्षोंकी छायामें बैठी थी; वैसे समयमें कुमार वधुओं और बांधवोंके साथ विशुद्ध भोजन करने लगा। वह भोजन शृंगारादि रसोंसे युक्त नाटकके विस्तारके समान नानाप्रकारके अम्ल-मधुर इत्यादि रसोंसे युक्त था; और क् ख् ग् आदि व्यंजनोंसे युक्त व्याकरणके समान नाना व्यंजनों अर्थात् विविध पकवानोंसे शोभायमान था। दुर्जन लोगोंके सकूर अर्थात् क्रूरतापूर्ण हृदयके समान वह भोजन कूर नामक श्रेष्ठ चावलोंसे युक्त था, और सज्जन लोगोंके स्नेहपूर्ण मनके समान घृतादि स्नेह-पदार्थोंसे परिपूर्ण था। सुंदर तरुणियोंके लावण्ययुक्त वदन (मुख)के समान वह लवणयुक्त था; और संपूर्णरूपसे उद्गत अर्थात् पूरी तरह उदित हुए प्रातःकालीन सूर्यमंडलके समान समुग्ग अर्थात् मूँगके व्यंजनोंसे युक्त था। खाटोंसे युक्त वासगृहके समान वह भोजन सुंदर खट्टे पदार्थों(अचार-चटनी आदि)से युक्त था। बहुत-से बाटों अर्थात् मार्गोंसे युक्त महानगरके समान वह बहुत-सी बाटों अर्थात् कटोरियोंसे युक्त (कटोरियोंमें सजा हुआ) था। सत्पुरुषके सुपात्र अर्थात् सद्व्यक्तियोंमें नियोजित धनके समान वह भोजन सुपात्रों अर्थात् सुंदर बरतनोंमें रखा हुआ था, और सतर्क अर्थात् तर्कशास्त्रके ज्ञानसे शोभायमान पंडितोंके समान सतक्र अर्थात् तक्र(मट्ठा) सहित होनेसे अच्छा लग रहा था। इसतरह रस लेनेवालोंके द्वारा नानाप्रकारके भोजनोंका समूह जो मुखको मधुर

२ क ड चुअ°। ३ ख जण°। ४. क कि उण्ह°, ड कि वुण्ह°। ५ ख °डुद्दुरे। ६. क ड महिस°। ७. ख ग विसिट्ठउ। ८ ख ग °रणु। ९ ख वंजणहिं रसिल्लउ, ग व वजण°। १०. ग वह°। ११ क मु°। १२ ख °नयर। १३ प्रतियोंमें °त्तहि। १४. क °इं। १५. ख ग मु°। १६. ख ग ड °भक्खहिं। १७ क हिययहरु। १८ क ब ड भुंजिवि। १९ व ढ°। २०. क ख ग ड °हि। २१ क ड व; ख ग व्व। २२ ग °डिहि। २३ ख ग व °हिं। २४ क घव°।

[१४]

खंडयं—जलगंडूसविसोहणं पुणु तंबोल-विलेवणं ।
लइयं[1] धरियदरुण्हयं[2] तो जायं अवरण्हयं[2] ॥१॥

[3]ताव हि[3] वहुचउक्कसंजुत्तउ गउ वरइत्तु[4] नियघरु पत्तउ ।
अहलु व[5] तुट्टु[6] झुलुक्कियपवणहो दीसइ जंतु तवणु अत्थवणहो ।
सेवियकमलकोसमहुमत्तउ निवडइ गलियनियंसु[7] व रत्तउ ॥५॥
लग्गु सिलायडरमण[8]-विराइहे[9] पेक्खेवि अत्थसिहरे वणराइहे[9]
ईसाइवि[10] पच्छिमदिसपत्तिए[11] किउ आयंबिरु मुहु[12] असहंतिए ।
तेउ हुयासि[13] ताउ विरहीयणे राउ वि दिण्णु[14] तरुणमिहुणहँ[15] मणे
मयणे पयाउ रविहि[16] अप्पंतहो अइ चाउ जि कारणु अत्थंतहो[17]
लइउ सव्वु तुम्हहिँ[18] चिर-महणे अंतोघणसुद्धिहे[19] रविगहणे ।
पुणु मंथणभएण मुहिमुद्दे धरिउ दीउ णं सुरहँ[20] समुद्दे ।

करनेवाला और 'कवड' अर्थात् पुरवोंमे भरा हुआ था, खाया जाकर अंतमें बहुत-सा उच्छिष्ट उसीप्रकार छोड दिया गया, जिसप्रकार किसी धूर्तस्त्रीका कपटभरा उद्दीप्त प्रेम उसे भोगकर छोड़ दिया जाता है ॥१३॥

[१४]

जलगंडूषके द्वारा मुखशोधन किया गया और विलेपन (कुंकुम-चंदनादिके पिष्ट चूर्ण) लिये गये। इतनेमें थोड़ा गरम अपराह्णकाल हो गया। तब तक चारों वधुओंके साथ वर गया, और अपने घर आ पहुँचा। (गरम) हवासे झुलसा हुआ, और (आकाशरूपी वृक्षसे) मानो निरर्थक ही टूटा हुआ सूर्यरूपी फल अस्ताचलको जाता हुआ देखा गया; मानो वह (दिनभर) कमलसरोवरोसे अपने किरणोरूपी हाथोसे कमलकोषोका सेवन करके मधुसे मत्त (रक्तवर्ण) होकर सुरापानसे मत्त हुए किसी रागी पुरुषके समान अपने वस्त्रोंको (सूर्यपक्षमे किरणोंको) फेंककर गिर रहा हो। अस्ताचलके शिखरपर शिलातटरूपी रमण (नितंब)से विराजमान वनराजीसे (अपने प्रियतम सूर्यको) लगे हुए देखकर उसकी पश्चिम दिशारूपी पत्नीने ईर्ष्या करके, इसे सहन न करते हुए क्रोधसे मानो साध्य-अरुणिमाके व्याजसे अपना मुख ताबेके समान लाल-लाल कर लिया। उस सूर्यने अपना तेज अग्निमे, ताप विरहीजनोमे, और राग (लालिमा-अनुरागके रूपमे) तरुण मिथुनोके मनमे दे दिया; और प्रताप रातभरके लिए कामदेवको अर्पित कर दिया, (इसप्रकार) उसका यह अतिशय त्याग ही उसके अस्त होनेका कारण हुआ। मेरे भीतरी धनका पता लगानेके लिए सूर्यको लेकर तुम लोगोके द्वारा बहुत प्राचीनकालमे ही मंथन करके मेरा सब कुछ ले लिया गया था, अत. अब पुन. मथनके भयसे पृथ्वीरूपी मुद्रासे मुद्रित

---

[१४] १ ख ग घ लइयउ। २. घ °ण्हयं। ३ क ङ तामहि, घ तामहिं। ४. क ङ °यत्तु। ५ ख ग घ अ। ६ क ख ग ङ तुट्टु। ७ ख ग वि। ८ ख ग घ °रवण। ९. क घ ङ °इहिं। १०. क ङ °यवि। ११. घ °दिसि°। १२. क घ ङ मुहुं। १३. ख ग °सें। १४ घ दिन्नु। १५. क ङ °णहुं, ख ग °णहु, घ °णहो। १६ क °हि। १७ ख ग अच्छ°। १८. ख °हि। १९ क ङ °घणुसुद्धिहिं, घ °सुद्धिहिं। २०. क ख ग °हु, घ °हुं।

परिपक्कउ नहरुक्खहो निवडिउ फलु व दिवायरमंडलु विहडिउ।
[21]अत्थंगयरविपियमकामए[22] वासरलच्छिए[23] संज्झारामए[22]।
रत्तंवरजुवलउ[24] नेसेविणु कुंकुमपंके पियलि करेविणु[25]।
खणु अच्छेवि दुक्खसंसल्लिउ अप्पउ घोरमहण्णवि घल्लिउ।
तमे पसरंते[26] तडिहिँ[27] विब्भुल्लउ कंदइ चक्कवायमिहुणुल्लउ।
पंकयसरइँ[28] अलिहिँ णं छइयइँ[29] काणणाइँ[30] णं [31]कोइलछइयइँ।
नच्चिरमोरपिच्छसंछन्नइँ[32] णं पव्वयसिहराइँ पवन्नइँ[32]।
दिम्मुहाइँ[33] कत्थूरिए[34] कलियइँ निवघराइँ गयवरघडललियइँ[35]।
घत्ता—[36]वम्महपीडियविडजणहो ववगयधणहो[37] विरहग्गिफुलिंग व छड्डिय[37]।
[38]नीलीरसे णं[38] बोलियए[39] जगि कवलियए[40] जोइंगण[41] गयणे समुड्डिय[42] ॥१४॥

[१५]

खंडयं—अहिसारीहि[1] निसागमे दूयडियाण[2] गमागमे।
लइयं कसणनियंसणं मरगयघडियविहूसणं ॥१॥
तिमिरकुंभिकुंभत्थलभेयउ[3] दीवियाउ भल्लिउ[4] हेमेयउ[5]।

(अर्थात् मर्यादित) समुद्रने मानो देवताओके सूर्यरूपो दीपकको धर लिया (अर्थात् अपने गर्भमें छिपा लिया)। आकाशवृक्षसे गिरे हुए पके फलके समान दिवाकरमंडल (एकाएक) विघटित हो गया। अस्ताचलको गये हुए सूर्यरूपी प्रियतमकी कामनासे दिवसरूपी लक्ष्मीने संध्यारामा (नायिका)के रूपमें लालवस्त्रोका (आत्माहुतिसूचक) जोडा धारण करके, तथा कुंकुमके गाढ़े द्रवसे टीका करके, क्षणभर ठहरकर (प्रियतमके विरहरूपी) दु:खसे अत्यंत पीड़ित होकर अपने आपको महासमुद्रमें डाल दिया। अंधकारके प्रसारसे (अलग-अलग) तटोपर भूला हुआ चकवोंका जोड़ा क्रदन करने लगा। पंकज सरोवर मानो भ्रमरोसे छा दिये गये और उद्यान कोकिलोसे ढक दिये गये। पर्वतोंके शिखर ऐसे हो गये मानो नाचे हुए मोरोके पंखोसे आच्छादित हो गये हों। दिशामुख मानो कस्तूरीसे पोत दिये गये, और राजाओके प्रासाद उत्तम गजसमूहके समान ललित लगने लगे। (यह ललितक नामक छंद है)। मन्मथसे पीड़ित, धनहीन विटजनोके द्वारा छोड़े हुए विरहाग्निके स्फुलिंगोके समान अपनी नीलिमासे सारे जगत्को व्याप्त करते हुए, तथा नीलके रंगको भी अतिक्रमण करते हुए जुगनूं आकाशमें उड़ने लगे ॥१४॥

[१५]

रात्रिका आगमन होनेपर दूतियोका गमनागमन होने लगा। अभिसारिकाओने काले वस्त्र पहने और मरकतमणियोसे गढे हुए आभूषण धारण किये। अंधकाररूपी हस्तिके कुंभस्थलको विदीर्ण करनेवाली सुवर्णनिर्मित सुंदर दीपिकाओरूपी बरछियाँ जलायी गयी (पक्षमे चमकायी-

२१. ख ग अत्थंगउ रवि°। २२ क ङ °मइ। २३ क ङ °लच्छिय। २४ क ङ °जुअ°; घ °जुय°। २५. क ङ °प्पिणु। २६ क ङ °रंत। २७ ख ग ङ °हि। २८. क ङ °सरहु, घ °सरिहिं। २९. ङ °यइ। ३०. ग °णाइ। ३१ ख ग कोयल°; घ °लवियइं। ३२. क ख ग ङ °ण्णइं। ३३. ग ङ दिण्णु°। ३४. क ङ °रिय। ३५ क घ ङ गयघडहिँ व ललि°। ३६ क ख ग ङ वम्मह°। ३७. क ङ °पुलिंग व ताडिय। ३८ क ङ °रसेण, ख ग °रस न। ३९ घ °यइ। ४०. घ ङ °यइ। ४१. ख ग जोय°। ४२. क ङ °ड्डिया।

[१५] १ ख ग °रीहि। २ क ङ दूअ°, घ °याहं। ३. क ङ °कुंभत्थलि°, घ °कुंभत्थलु°। ४ ख ग भल्लीय। ५. ख ग हेमीयउ।

जालियाउ गयवइहियर्याह सहुँ   उइउ[6] नहंगणे मयलंछणु लहु ।
भमिए[7] [8]तमंधयारे वरअच्छिए   दिण्णउ[9] दीवउ णं नहलच्छिए ।
[10]जोण्हारसेण भुवणु[11] किउ सुद्धउ[10]   खीरमहण्णवम्मि[12] णं छुद्धउ ।
किं गयणाउ अमियलवविहडहि   किं कप्पूरपूरकण निवडहि ।
कि सिरिखंडबहलरससीयर[13]   मयरद्धयबंधवससहरकर ।
जाल-गवक्खइँ[14] पसरियलालउ[15]   गोरसभंतिए लिहइ[16] विडालउ ।
मुद्धडमुहिय[17] लेइ[18] कर-वावड[19]   मोत्तियहारमणोहरलंबड[20] ।
गोट्ठि निविट्ठ गोवि न वियाणइ[21]   दहिउ भणिवि[22] मंथइ मंथाणइ[23] ।
मालिणीउ नियडाउ निवासए[24]   उच्चिणंति मालइकुसुमासए[24] ।
गेण्हइ[25] समरि[26] पडिउ बोरीहलु[27]   मण्णेविणु[28] करिसिरमुत्ताहलु ।
पुरउ वि थक्कु वइरिरोसिउ[29] पडु   हंसु व काउ न याणइ[30] घूयडु[31] ।

घत्ता—एरिसे[32] कइरवनंदिणए सियचंदिणए नववहुचउक्कसंसिट्ठउ[33] ।
वरपल्लंकपंचसहिए परियणकहिए वासहरे कुमारु पइट्ठउ[34] ॥१५॥

गयी) । गत-पतिकाओके द्वारा अपने हृदयो अर्थात् उरस्थलो(स्तनो)पर कचुकी (पहने जाने)के साथ-साथ गगनांगनमे मृगलाछन शीघ्र उदित हुआ; (जो ऐसा शोभायमान हुआ) मानो घना अंधकार फैल जानेपर वराक्षी (सुंदर नेत्रोवाली) नभलक्ष्मीने दीपक जलाया हो । ज्योत्स्नाके रस अर्थात् चाँदनीके प्रसारसे भुवन ऐसा शुद्ध अर्थात् धवल कर दिया गया मानो उसे क्षीरोदधिमे डाल दिया गया हो । मकरध्वजके बांधव चद्रमाकी किरणे ऐसी हो गयी मानो आकाशसे अमृतबिंदु ही विघटित होकर गिर रहे हो; अथवा कर्पूरके पूरसे कण गिर रहे हो, अथवा श्रीखडके प्रचुर रस-शीकर (फुहारे) ही पड़ रहे हों । लार फैलाता हुआ एक मार्जार घरोके झरोखोको गोरसकी भ्रांतिसे चाटने लगा । मोतियोंके मनोहर व लंबे हारके समान उन चद्रकिरणोको कोई मुग्धमुखी अपने व्याकुल हाथोसे पकड़ने लगी । गोथानमे बैठी हुई गोपी जान नही सकी (कि इस मथानीमे कुछ नही लगा है), अतः (इस मथानीमे) दही है, ऐसा कहकर (खाली) मथानी को ही मथने लगी। मालिनियाँ आवासके निकटसे मालती कुसुमकी आशासे चुनने लगी । कोई शबरी (भूमिपर) गिरे हुए बेरके फलको हाथीके शिरका मुक्ताफल (गजमुक्ता) समझकर उठाने लगी । अपने वैरी(कौवे)से रुष्ट किया हुआ चतुर घूक (उल्लू) अपने सामने ही स्थित, (परतु अतिशय चाँदनीके प्रभावसे) हसके समान (दीखनेवाले) कौवेको पहचान नही पाया । ऐसी कुमुदोको प्रसन्न (विकसित) करनेवाली धवल ज्योत्स्नामे चारो नववधुओके साथ कुमार परिजनोके द्वारा बताये हुए, पाँच सुदर पलँगोसे युक्त वासगृहमे प्रविष्ट हुआ ॥१५॥

६. ख ग उयउ । ७. क ङ °य । ८. क ङ °तमंधयारवर°, ख ग घ तमधयारवरअच्छिय । ९. घ °उं । १०. घ मे इस पक्तिका पूर्वपाद इस प्रकार—ओन्हारसेण कियउ जगु सुद्धउ । ११. ख ग घ भुअणु । १२ घ °अवम्मि । १३ क ङ °सीयलु । १४. ख ग °क्खय । १५ ग °जालउ । १६ ख ग °ए । १७ क ङ मुद्धउ° । १८ क ङ तो वि । १९ क ङ °वावउ । २०. क °लवउं, ख ग घ °लपड । २१ ख ग विजा° । २२ ख ग °इ । २३ ख ग घ ङ °णइ । २४ क घ ङ °सइ । २५ घ गिन्हइ । २६. क घ ङ सवरि । २७. ख ग वेरी° । २८ घ मन्नें° । २९. घ वइररोसिय । ३० क घ ङ °इ । ३१ घ घूवडु । ३२ क घ ङ °स । ३३ ङ °ट्ठउ । ३४ ख ग पय° ।

[१६]

खंडयं—खणु अच्छेवि कयायरा नियनिलएसु सहयरा।
[1]पट्ठवेवि पुणु निविडए[2] दिण्णए[3] दारकवाडए[4] ॥१॥

पंच वि तूलिसमिद्धहिँ[5] पंचहिँ आसीणइँ पच्छाइयमंचहि[6]।
छिन्नच्छाहु[7] पईवउ किज्जइँ[8] करे तंवोल वि सम्माणिज्जइँ[9]।
पइुलसमु वेइल्लु निवज्झइ[10] सुमहुरु[11] कप्पूरायरु[12] डज्झइ।
पयडइ[13] का वि वहुय[13] भत्तारहो थणहरु मिसिण गुत्तगुणहारहो।
नाहीमंडलु का वि वियासइ[14] विरयण[15] संवरणेण पयासइ[16]।
का वि नियंसणसारें भल्लउ दावइ मसिणोरुव[17]-जुवलुल्लउ[18]।
कक्खंतरु कहेइ क वि कवणे[19] मउलियनयणकण्णकंडुवणें[20]।
कुडिलालोएं भउहउँ[21] वंकइ क वि दंतहिँ निययाहरु डंकइ।
अवर वि वरजुवाणदीवियमणु सालंकारु पढइ वच्छायणु।
वीणावज्जसमाणु[22] वि रायइ[23] वहुय[24] का वि हिंदोलउ गायइ[25]।
अवरइ[26] समउँ[27] अवर[28] क वि जंपइ सुण्णउँ[29] सिक्कारंती[30] कंपइ[31]।

[१६]

कुछ देर ठहरकर आदर किये हुए (अर्थात् आदर करके) अपने सब सहचरों(मित्रों)को अपने-अपने घरोको पठाकर (फिर) द्वारके कपाटोको निविड अर्थात्—निश्छिद्र रूपसे बंद कर दिये जानेपर वे पाँचो वर-वधू रुईके गद्देदार एवं चादरोसे आच्छादित पाँच मंचोंपर आसीन हो गये। प्रदीपोकी शोभा (ज्योति) मद कर दी गयी (अथवा श्लेषमे जंबूस्वामी एवं वधुओके देदीप्यमान मुखोरूपी दीपकोके तेजसे तैलदीपकोंका तेज फीका पड़ गया)। हाथमें आदरपूर्वक तांबूल ग्रहण किये गये। गुलावके पुष्पके साथ विचकिल्लका फूल वाँधा गया (विशेषार्थके लिए देखिये परिशिष्ट)। सुगंधित कर्पूर व अगर जलाया गया। कोई वधू हारकी छिपी हुई लड़को बतानेके वहानेसे भर्त्तारके लिए अपने वक्षस्थलको प्रकट करने लगी। कोई अपने नाभिमंडलको खोलती हुई विवाहसे की हुई अपनी विरचना (पत्ररचना आदि रूप सजावट)को प्रकट करने लगी। कोई वस्त्रोको खिसकाकर अपने भले (आकर्षक) और मसृण ऊरुयुगलको दिखलाने लगी। कोई आँखे वंद करके कान खुजलानेके कपट (वहाने)से अपनी कुक्षिको वतलाने लगी। कोई कुटिलतासे अर्थात् कटाक्षोसे देखती हुई भौंहोको वांका करने लगी, और दाँतोसे अपने अधरोको काटने लगी। कोई दूसरी वधू सुंदर युवकके मनको उद्दीप्त करनेवाले वात्स्यायन अर्थात् कामसूत्रको अलंकारपूर्वक(अर्थात् शृंगार-भावसे भरकर) पढ़ने लगी। और कोई वधू वीणावाद्यके साथ रागपूर्वक हिंदोला गाने लगी। कोई किसी दूसरीके साथ वोलने लगी और शून्यभाव से सीत्कार

[१६] १ घ पट्ठाविवि। २ क ड णिविडयं, ख ग नियडइं। ३. क ड दिण्णं; ख °इं; ग °यं; घ दिन्नइं। ४. क ड °डयं; ख ग °डइं। ५ ख °द्धहि। ६. °मंचहि। ७. क ख ग ड छिण्ण°। ८ ख ग व °इ। ९. ख ग सामा°। १० क °ज्झइं। ११ क ड सुमुहुर°। १२. ख ग कत्थू°। १३. घ वहुय का वि। १४. क ड °पया°। १५. क ड वरि°। १६. क °सइं। १७ घ °रुय। १८. घ जुय°। १९. क कविणें। २०. घ °कन्न°। २१ ख ग भउ°, ड °हउ। २२ प्रतियोंमें °वज्जुसमाणु। २३ ख ग °यए, क व °यइं। २४. ख ग °व। २५. क घ ड °इं। २६ क घ ड °रइं। २७ ख ग घ °उ। २८. क °र। २९ व सुन्नउ। ३०. ख ग सिका°। ३१. क ग °इं।

घत्ता—अवर वि केरलपुरिगमणु निवपरिणयणु वरइत्ते[३२] जित्तु रणु[३३] भासइ[३४]।
जुज्झिय विज्जाहरभडउ हासुब्भडउ सिंगारु सवीरु पयासइ[३५] ॥१६॥

इय जंबूसामिचरिए [३६]सिंगारवीरे महाकव्वे महाकइदेवयत्तसुयवीरविरइए[३६]
विवाहुच्छवो नाम [३७]अट्ठमो संधी समत्तो[३७] ॥ संधि—८ ॥

छोड़ती हुई काँपने लगी। कोई वरके केरलपुरीको गमन, राजाके विवाह एवं वरके द्वारा जीते हुए युद्धका वर्णन करने लगी; और इसप्रकार विद्याधरभटोंके साथ किये हुए युद्धवर्णनके द्वारा, उद्भट हास्यके साथ वीररसपूर्वक श्रृंगाररसको प्रकट करने लगी ॥१५॥

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित, जंबूस्वामी चरित्र नामक इस श्रृंगार-वीररसात्मक महाकाव्यमें विवाहोत्सव नामक अष्टम संधि समाप्त ॥संधि—८॥

३२. क घ ह °इत्तु। ३३. घ रणि। ३४ क °इ। ३५. क °सइं। ३६ क ह मे इस प्रकार—°वीरे महाकइदेवदत्तसुयवीरविरइए महाकव्वे विवाहु°। ३७ क ङ अट्ठमा इमा सधी, घ अट्ठमो परिच्छेओ समत्तो ॥ सधि—८ ॥

संधि—९

[१]

तुम्हेहिं वीरकव्वं सुयणेहिँ परिक्खिऊण घेत्तव्वं ।
कसतावछेयसुद्धं कणयं नेहेण मा किणह[1] ॥१॥
चिरकव्वतुलातुलियं बुद्धीकसवट्टए कसेऊणं ।
रसदित्तं[2] पयछिन्नं[3] गिण्हह[4] कव्वं सुवण्णं[5] मे ॥२॥
[6]मयरद्धयनच्चु नडंतिउ[6] जंबुकमारें मेल्लियउ[7] ।
वहुवाउ[8] ताउ णं दिट्ठउ कट्ठमयउ वाउल्लियउ[9] ॥३॥
रइविडंबु तं नयणहिँ जोयइ[10]
पुणु वि नाणदिट्ठिए अवलोयइ[11] ।
हा हा [12]महिलामोहनिबद्धउ
मयणकालसप्पहिँ जगु खद्धउ[13] ।
वुच्चइ अहरु [14]असियमहुवासउ
अवरु जि नाउ[15] ठविउ वयणासउ ।
को रसु उट्ठचम्मे[16] खज्जंतए[17]
[18]चिंचिवललालामले पिज्जंतए[17] ।
मुत्तदुवारु पूइगंधिल्लउ
रमणु नाउ[19] किउ विडहिँ महल्लउ ।

---

[१]

वीर (कवि) द्वारा रचित काव्य आप सज्जनोके द्वारा परीक्षा करके ही ग्रहण किया जाना चाहिए। कसौटी, ताप और छैनी से शुद्ध जानकर ही सोना खरीदिए, उसके स्नेह मात्रसे नही ॥१॥ रसोसे शुद्ध किये होनेसे खूब दीप्तिमान एवं व्यवसायमे सुनिर्धारित (शुद्ध)सुवर्णके समान काव्यरसोसे देदीप्यमान, एवं सुपरीक्षित-विविध-शब्दसमूहसे (दोषरहित रूपसे) सुनिर्धारित तथा चिरप्रसिद्ध काव्योंरूपी तुलापर तौले हुए मेरे इस काव्यरूपी सुवर्णको बुद्धिरूपी कसौटीपर कसकर ग्रहण कीजिए ॥२॥ मकरध्वजका नाच नाचती हुई उन वधुओंको जंबूकुमारने अपने संपर्कमें लायी हुई काष्ठकी पुत्तलियोके समान देखा ॥३॥

(उनके) उस रति(प्रेम)प्रपंचको वह अपने नेत्रोसे देखता, फिर ज्ञाननेत्रोसे अवलोकन(चिंतन) करता। अहो खेद! स्त्रीके मोहमें जकड़ा हुआ यह जगत् मदनरूपी काले सांपके द्वारा खाया जाता है। (स्त्रीके) अधरको अमृत व मधुका वास कहा जाता है, उसका दूसरा नाम वदनासव (अथवा आध्यात्मिक दृष्टिसे, 'व्रतनाशक') भी रखा गया है। (पर) ओष्ठचर्मको काटनेमें और परित्याज्य लार-मलको पीनेमें कौन-सा रस है? जो मूत्रका द्वार है, और पूतिगंधसे युक्त है, उसे विटजनोने 'रमण' जैसा महत् नाम दे दिया है। स्त्रीका

---

[१] १. क घ ह °ह। २ घ °दिन्नं। ३ ख ग छित्तं, क ड °छिण्णं। ४. व गिन्हहं। ५ घ °न्नं। ६ क ड °णड्डु णडंतियउ। ७ क ड मि°; घ भ°। ८ ख ग घ °याउ। ९. क ड वाव°। १०. घ °इं। ११. क ग ड °यइं। १२. क ड मिहिला°। १३ क °उं। १४. क घ ड अमय°। १५. क ड णाउं, घ नाउं। १६ क °वम्मि, घ °चम्म। १७ क घ ड °तइं। १८. ख ग चिच्चिल°, क ड °लालामणि। १९ क ड माणु, घ नाउ।

पच्छलु तियहें[20] जेण लज्जिज्जइ राइहिं[21] सो जि नियंबु भणिज्जइ।
एरिस[22]-तियमय[23]-पोग्गलखंधए अप्पउ नाणवंतु को वंधए।
वत्थुसरूउ[24] चएवि[25] जहिच्छए[26] बुद्धिवियप्पु पवत्तए[27] मिच्छए
भाउ जि पढमु तियत्तणु पावइ पच्छए बहि तियदव्वहो[28] धावइ
सम्मण्णाणिउ[29] एउ विवेयइ भाउ जि महिल अयाणु न चेयइ
दव्वसरूवविसय[30] भुंजंतउ अच्छइ जिउ संसारें भमंतउ।
घत्ता—उवयागउ[31] भावसरूवें भुंजइ कम्मासएण विणु
संसाराभावहो[32] कारणु भाउ जि छड्डिय[33] परदविणु[34] ॥१॥

[२]

दिढचित्तु[1] कुमारु नियंतियाए[2] मुहकंतिजित्तससिकंतियाए[3]।
दीहरनीसासु ससंतियाए थोवं सविलक्खु हसंतियाए।
पंकयसिरीए आलत्तियाउ परिवाडिए[4] ताउ सवत्तियाउ[5]।
वरइत्तहो का वि अउव्वभंगि संकिल्लि-हेल्लि-विब्भमु वरंगि।
किं मयणबाण संढहो वहंति पच्चुप्फिडेवि सयखंड[6] जंति॥

पृष्ठभाग ऐसा है जिससे लज्जा उत्पन्न होनी चाहिए, किंतु रागियोंके द्वारा उसे ही नितंब (श्लेषार्थ—पर्वतके मध्यवर्ती ढालू प्रदेशसे तुलनीय) कहा जाता है। ऐसे (जुगुप्सनीय) त्रिक (अधर, रमण व नितंब)-मय (स्त्रीरूपी)पुद्गलस्कंधमें कौन ज्ञानवान् अपनेको बाँधता है? वस्तुके (सत्य)स्वरूपको छोड़कर स्वेच्छया हमारा बुद्धिविकल्प मिथ्यात्वमें प्रवृत्त हो जाता है। पहले हमारा भाव (चित्त) स्त्रीत्व(स्त्रियाकाक्षा)को प्राप्त करता है, और फिर वही बाह्य जगतमें द्रव्य स्त्रीत्व (भौतिक स्त्रीशरीर)के लिए दौड़ता है; सम्यक्ज्ञानी इसप्रकारका विवेचन करता है; किंतु हमारा भाव(मन) ही स्त्रीरूप होता है, इस वातको अज्ञानी नहीं समझता। द्रव्यात्मक(भौतिक) विषयोंको भोगते हुए यह जीव ससारमें भ्रमण करता हुआ रहता है। ज्ञानी इस परिस्थितिको उदयागत भावों(कर्मों)के अनुसार (नवीन)कर्मास्रवके विना, परद्रव्य (में आसक्ति)को छोड़कर भोगता है, और यही भाव (विवेक) संसाराभाव अर्थात् मोक्षका कारण है ॥१॥

[२]

कुमारको इसप्रकार दृढचित्त देखकर अपने मुखकी कांतिसे चद्रमाकी शोभाको जीतनेवाली, दीर्घनि.श्वास छोड़ती हुई, और कुछ लज्जापूर्वक हँसती हुई पद्मश्रीने परिपाटीसे (क्रमश.) अपनी उन सपत्नियोंको कहा—हे सुंदरी! संकुचित की हुई भुजाओंसे पागलपन सरीखी वरकी कोई अपूर्व ही भंगिमा है। क्या कहीं षढको भी मदनके बाण लगते हैं? प्रत्युत वापस आकर सैकड़ो

२०. क ङ °हिं। २१ ख ग रायहें, ङ °हिं। २२ क घ ङ °सि। २३. क ङ °मइ, घ °मइ। २४. क ख ग ङ °सरूवहो। २५ क वय लि, ख ग ङ चयवि। २६ घ जहिं°। २७ घ °त्तउ। २८ ख ग तिए°। २९ क ङ °ण्णाणिउ, ख ग °णिउ। ३० ख ग घ °मय°। ३१ ख ग घ उव°। ३२ क संसारी°। ३३ क ङ छ°। ३४. क ङ °हविणु।

[२] १. क ग ङ दिढु°। २. कड °याउ। ३ क ङ °याउ। ४. ख ग °डिउ। ५. ख गवि°। ६. क °खड।

किं करइ अंधु नच्चुच्छवेण　　किं कण्णहीणु[7] गेयारवेण ।
अविवेयहो एयहो गाहु लग्गु　　तवचरणकिलेसें[8] महइ[9] सग्गु ।
घरे संपय[10] एरिस[11] कासु लोए　　दुक्करु देवाहँ[12] मि[13] वहिणि होइ ।
इय तुम्हइँ[14] [15]रूवजियच्छराउ　　संपज्जइ सव्वु निरंतराउ ।
साहीणु[16] चयवि[17] सुहु[18] लेइ दिक्ख　　घरे रद्धउ[19] नालिउ[20] भमइ[21] भिक्ख ।
तवचरणहो फलु संदेहि लग्गु　　पच्चक्खु कासु सग्गापवग्गु ।
घत्ता—आणंदरूउ मणजोयहो　　जइ[22] तो रमणिजोउ पवरु ।
विणु मोक्खे सोक्खयवक्कउ पच्चक्खु जि पावेइ नरु ॥२॥

[३]

हले एक्कु कहाणउ[1] कहमि वरि　　जइ रोसु न [2]मण्णहिं [3]महु उवरि[3] ।
भत्तारु तुम्ह जाणमि जडहो　　अणुहरइ जि हालियधणहडहो ।
निसुणंति ताउ विभियमणउ　　आयण्णइ[4] जिह[5] जिणवइतणउ ।
तिह कहइ पउमसिरि दुल्ललिउ　　धणहडु नामेण आसि हलिउ[6] ।
तहो गेहिणि घरवावाररया[7]　　सुउ एक्कु जणेवि पंचत्तु गया[8] ।

टुकडे हो जाते हैं । नृत्योत्सवसे कोई अंधा क्या करे ? और कोई बहरा गीत-रवसे क्या करे ? इस अविवेकीको ग्रह(भूत) लग गया है, तपश्चरणके क्लेशसे यह स्वर्ग चाहता है । हे बहन ! इस लोकमें ऐसी संपत्ति किसके घरमें है, जो देवोके लिए भी मिलनी दुष्कर है । यहाँ रूपमे अप्सराओंको भी जीतनेवाली तुमलोग तथा (अन्य) सव कुछ निर्वाधरूपसे प्राप्य है । स्वाधीन सुखको छोड़कर दीक्षा लेना ऐसा है, जैसे किसीके घरमे कमलनाल पके हुए हो, और वह (उन्हे छोड़कर) भिक्षाके लिए भ्रमण करे । तपश्चरणका फल तो सदेहमय है । स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) किसने देखे हैं ? यदि मनोयोग(अर्थात् चित्तवृत्तियोका निरोध व ध्यानसमाधि)का स्वरूप आनंदमय है, तो उससे श्रेष्ठ तो रमणीयोग है, जिससे पुरुष मोक्षके बिना ही प्रत्यक्ष सुखकी अनुभूति पा लेता है ॥२॥

[३]

हे सुंदर सखी ! यदि मेरे ऊपर रोष न माने तो एक कथानक कहती हूँ । मै समझती हूँ कि तुम लोगोका यह भर्त्तार मूर्ख धनदत्त नामक हालीका अनुकरण कर रहा है । वे सब विस्मित मनसे सुनने लगी, और जिसतरह जिनमतीका पुत्र—जंबूस्वामी सुने (अर्थात् उसीको लक्ष्य करके) उसप्रकार पद्मश्री कहने लगी—धनदत्त नामका एक दुर्विदग्ध(मूर्ख) हाली था । उसकी घरके सारे काम-काज करनेवाली पत्नी एक पुत्रको जन्म देकर पंचत्वको प्राप्त हो

७ व कन्न° । ८ क तववरण° । ९ क ड °इ । १० क ड °इ । ११ क ड °सु । १२ ख ग °हु । १३ ख ग वि । १४ क ड °इ । १५ क ड रूव° । १६ ख ग सो° । १७ क ड चइवि । १८. ख ग सहु । १९ क ड रयइ । २०. ड °हे° । २१ व °इ । २२ ख ग जय ।

[३] १ क ख ड °णउ । २ व मन्नहिं । ३. व मज्झुवरि । ४ ख ग घ °ण्णइं । ५. ख ग घ जिहं । ६ क °उ । ७. ख ग °रय । ८ ख ग गय ।

सो पुत्तु पवड्ढियथोरकरु[9] निव्वाहियपियरारंभभरु[10] ।
वुड्ढत्तणे[11] विहिणा वाहियउ[12] धणहडेण कलत्तु विवाहियउ ॥
तरुणउ[13] [14]तरट्टु मयजोडियउ[15] सोहग्गदुवाएं मोडियउ ॥६॥
उव्विवु[15] [16]थेरु पियपिल्लणउ हिडिहिडउ खेरुजणखेल्लणउ[17] ।
अह अद्धरत्ति[18] सा तासु पिया पच्छामुह रोसे चडेवि थिया ॥
अणुणंतहो वोल्लइ विरसु[19] सरु मा लग्गि[20] अंगे करु परइ करु ।
वट्टइ तउ तणउ समत्थु[21] घरे जे पुत्त हवेसहिँ महु उवरे[22]
ते एयहो चलणइँ अणुसरेवि[23] जीवेसहिँ भिच्चत्तणु करेवि[23]
घत्ता—विणिवायहि[24] पुत्तु महारा जे नंदण होसंति पिय ।
वुड्ढत्तणे ताहँ[25] पसाएं भुंजेसहुँ निक्कंट-सिय ॥३॥

[४]

पामरु भणइ[1] कंति लज्जिज्जइ[2] पियरे केम पुत्त मारिज्जइ[3] ।
विणयवंतु घरभारधुरंधरु वलिउ विसेसें मारंतहो[4] डरु ।
वोल्लइ घरिणि कयग्गह[5] पुणु पुणु मंतु कहेमि एक्कु जो वहुगुणु ।
हलु वाहंतु पसरे एहु अच्छइ नियहलु नवत्तइल्लु करि पच्छइ ।

गयी। वह पुत्र दीर्घ व स्थूल (बलिष्ठ) भुजाओंवाला और पिताके आरम्भ भार - अर्थात् समस्त कृषि-उद्योगका अच्छीप्रकार निर्वाह करनेवाला हुआ। बुढापेमे विधिसे प्रेरित होकर धनदत्तने एक दूसरी स्त्रीको ब्याह लिया। वह तरुण, प्रगल्भ और (काम-)मदसे भरी हुई स्त्री सौभाग्य(सौंदर्य)रूपी दुर्वातसे भग्न अर्थात् मर्यादा च्युत हो गयी, और वह वृद्ध किसान प्रियाकी कामप्रेरणासे उद्विग्न एवं व्याकुल होता हुआ गाँवके लोगोके लिए एक खिलौना बन गया। पश्चात् एक दिन उसकी वह प्रिया अर्द्धरात्रिके समय रुष्ट होकर मुँह फेरकर पड रही। अनुनय करनेपर कठोर स्वरमे बोली—मेरे शरीरसे मत लगो, अपने हाथको दूर करो, घरमे तुम्हारा समर्थ पुत्र विद्यमान है। मेरे उदरसे जो पुत्र होगे वे सब इसके चरणोका अनुसरण करके (अनुगामी बनकर), इसका भृत्यपना(दासत्व) करके जीयेगे। (अत) हे प्रिय! इस पुत्रको मार डालो, हमारे जो पुत्र होगे, बुढापेमे उनके प्रसादसे निष्कटक लक्ष्मीको भोगेगे ॥३॥

[४]

तब किसानने कहा—कांते! यह बडी लज्जाकी बात है, पिताके द्वारा पुत्रको कैसे मारा जाये? वह विनयवान् है, गृहभारकी धुराको धारण करनेवाला है, और विशेषरूपसे बलवान् है, इसलिए उसे मारनेमे डर भी है। गृहिणी आग्रह करके पुन. पुनः कहने लगी—एक मंत्र (उपाय) बतलाती हूँ, जो बहुत गुणकारी (हितसाधक) है। प्रात.काल जब यह हल वहा रहा

---

९ क घ ढ पवड्ढिउ°। १० ख ग °भारभरु। ११ ख ग वूढ°। १२ व ट चाहि°। १३ ड °णउ। १४ ख ग तर डुम्मय°। १५. क ख ड- उव्वेवु, ग उव्ववु। १६ क ड थेर। १७. ख ग खेलणउ, घ खिल्लणउ। १८. ड °रत्ते। १९. क ड °स। २० घ लग्गु। २१ क °त्थ। २२ क ख ग ड उयरे। २३. क ड °रवो। २४ क ख ग घ °यहि। २५ क ड ताह, ख ग ताहु।
[४] १ ख ग घ °इ। २ ख ग °ज्जड। ३. क °ज्जइ। ४. घ °तह। ५ क °गाहु।

तो उद्धत्तवलद्दइं[6] सारहिं[7] फोडिवि हलमुहेण[8] पुणु मारहिं[9] ।
पडिभउ नत्थि नत्थि अवजसु जणे पडिवज्जेवि[10] वेण्णि वि तुट्ठइं[11] मणे।
सव्वु वि नियडघरम्मि[12] पसुत्ते इय[13] संकेउ निसामिउ पुत्तें।
पसरि गयम्मि पुट्ठि[14] गउ पामरु[15] दुद्दमविस[16]—तिक्खंकुडहलहरु[17] ।
पुरउ दिट्ठु सुउ[18] लंगलवंतउ[19] पक्कउ सालिछेत्तु वाहंतउ।
वारिउ पुत्तु[20] काइँ[21] किर मुल्लउ[21] अत्थछेउ मा करि गिरितुल्लउ।
नंदणु भणइ[22] ताय[23] उम्मूलमि अहिणवसालि एत्थु पुणु रूवमि।
वुच्चइ धणहडेण वढ गच्छहि[24] सिद्धउ चयवि[25] असिद्धउ वंछहि[26] ।
तणएं वुत्तु पइँ जि सइँ[26] सिट्ठउ रयणिहिं[28] जं जंपंत उदिट्ठउ।
पुत्तु[28] पमाणु[29] पत्तु[30] मइँ घायहि[31] महिलहिं[32] अण्ण पुत्त[33] उप्पायहि।
तं निसुणेवि विमुक्क[34]-दीहरसरु सुउ अवरुंडेवि रोवइ पामरु।

घत्ता—पिउ हालियधणहडतुल्लउ वंछइ[35] किच्छें तउ करिवि[36] ।
संदेहगउ[37] सुरनारिउ[38] आयउ[39] तुम्हइँ[40] परिहरिवि ॥४॥

हो, तब अपने नये बैलवाले हलको इसके पीछे कर लेना। फिर उस उद्धत बैलसे इसपर (सीगोंका) प्रहार करना (कराना), फिर हलमुखसे विदीर्ण करके मार डालना। इसमें न तो (पुत्रसे) प्रतीकारका भय है, और न लोकोमें अपयश। ऐसा निश्चय करके दोनों मनमें संतुष्ट हुए। यह सारा संकेत(वार्तालाप) पासके घरमें सोये हुए पुत्रने सुन लिया। प्रातःकाल पुत्रके चले जानेपर हाली भी दुर्दम्य वृषभ और तीखे फलवाले हलको लेकर उसके पीछे-पीछे गया। सामने ही उसने हल लिये हुए अपने पुत्रको पके हुए धानके खेतमें हल चलाते हुए देखा। उसने पुत्रको (ऐसा करनेसे) रोका—अरे क्या (मति-)भ्रष्ट हो गया है? यह पर्वतके समान महान् अर्थछेद (धन-नाश) मत कर! तब पुत्र कहने लगा—तात इसका उन्मूलन करूँगा, और फिर बिलकुल नया धान यहाँ रोपूँगा। धनदत्तने कहा—अरे मूर्ख चला जा, सिद्ध(प्राप्त)को छोड़कर असिद्धको इच्छा करता है। (तब फिर) पुत्रने कहा—'रात्रिमें बातचीत करते हुए (तुमने पत्नीसे) जो कहा, उससे स्वयं तुमने ही यह सिखाया। प्रमाणको प्राप्त अर्थात् मुझ जवान पुत्रको मारकर तू स्त्रीसे अन्य पुत्र उत्पन्न करेगा।' यह सुनकर दीर्घ निःश्वास छोड़कर, वह पामर पुत्रको आलिंगन करके रोने लगा। प्रियतम धनदत्त हालीके समान है, (क्योंकि) यह (स्वयं देवियों-जैसी साक्षात् उपलब्ध) तुम सबको छोड़कर, बहुत कष्टसे तप करके ऐसी सुर-नारियोकी वाछा करता है, जिनकी प्राप्तिमें पूर्ण संदेह है ॥४॥

६ क घ ङ उत्तद्धवलद्दहिं, ख ग उद्धवडवलद्दहिं। ७. क °हिं। ८. क हलुं°। ९. क °हिं। १०. ख ग °ज्जिए। ११ क ख ग ङ °इ। १२. ग नियडि°। १३. ग इउ। १४. क व ङ पुत्ति। १५. क पासरु। १६ क ग ग व उद्दम°, क ङ °विमु। १७. क ङ °हलकरु। १८. ख ग सुय। १९ क मंगल°। २०. क व ङ पुत्त। २१ क विब्भु°। २२ ङ °इं। २३. व ताम। २४. क °हिं। २५. क ख ग ङ चइवि। २६ क ङ पाउ; घ नउ। २७ ख ग व ङ °णिहिं। २८ व पत्तु। २९. क ङ °णि। ३०. क व ङ पुत्तु। ३१. क ख ग व °हिं। ३२ क घ ङ °लहिं। ३३. क ङ पुत्तु। ३४ क ङ मुक्क। ३५. ख ग °इं। ३६. क ङ करवि। ३७ ङ संदेहहु°। ३८ क °रिउं। ३९ क ङ आइउ। ४०. व तुम्हहं।

[५]

अक्खाणावसाणे चिंतइ वरु आयप्र[1] कियउँ[2] केम हेउँ[3] पामरु।
मुक्खत्तणु[4] अवहेरि[5] करंतहँ[6] तो वरि किं पि कहमि नियकंतहँ[7]।
भणइ[8] कुमारु मुद्धमुहि[9] निसुणहि[10] [11]अज्जु वि अवरकहाणउँ न मुणहि[12]।
जामि न खयहो एण रइ लोहे वायसो व्व विसयामिसमोहे।
विंज्झमहीहरे एक्कु महाकरि आउसंते[13] पाविवि[14] नम्मयसरि[15]।
मुउ पाउसपूरेण वहंतउ एक्के वायसेण खज्जंतउ।
[16]गरुवपवाहपडिउ गउ सायरे विसममच्छकच्छवमयरायरे[17]।
जलनिहिमज्झे गिलिउ करि मीणे वायसेण[18] उड्डिज्जइ दीणे।
अंतरालि थिउ जोयइ[19] जामहिं[20] गामु न थामु न तरुवरु[21] तामहि।
थोवउ परिभमेवि[22] गयणच्चुउ[23] कं कं कं करंतु निवडिवि[24] मुउ।
[25]अप्पाणउ जं दिण्णउँ[25] काएँ[26] आमिसगासवसेण वराएँ[27]।

घत्ता—तह[28] तुम्ह सोक्खु[29] चक्खंतउ[30] विसयासत्तु सज्झु[31] मयणे[32]।
संसारमहण्णवे निवडेवि खयहो न वच्चमि मिगनयणे ॥५॥

[५]

इस आख्यानके समाप्त होनेपर वर सोचने लगा—कैसे इसने मुझे पामर बना दिया ? तो फिर मैं भी अपनी प्रियाओंको (मेरे ऊपर लगाये हुए) मूर्खता(के आरोप)का अपहरण करनेवाला कुछ तो भी कहूँ। (ऐसा विचारकर) कुमार बोला—हे मुग्धमुखी सुनो ! एक दूसरा कथानक तुम अभीतक नहीं जानती। विषयभोगोरूपी आमिषके मोहमें पड़कर मांस लोभी कौवेके समान, इस रति लोभसे मैं विनाशको प्राप्त नहीं होऊंगा। विंध्यपर्वतपर एक बड़ा हाथी आयुष्यके अंतमें नर्मदा नदीको प्राप्त कर वर्षाके पूरसे बहता हुआ मर गया, और एक कौवेके द्वारा खाया जाता हुआ, भारी-प्रवाहमें पड़कर भयानक मच्छ, कच्छप और मगरोंके आकर समुद्रमें चला गया। जलनिधिके बीच हाथी मछलियों-द्वारा निगल लिया गया। वह दुःखी कौवा भी आकाशमें उड़ने लगा। आकाशके अंतरालमें स्थित होकर जब उसने देखा तो कहीं कोई गाँव, न कोई स्थान और न कोई वृक्ष (ऐसा कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा)। वह कौवा थोड़ा-सा परिभ्रमण करके आकाशसे च्युत होकर कांव-कांव-कांव करता हुआ, गिरकर मर गया। जिसप्रकार उस बेचारे कौवेने मांस भोजनके वश होकर अपने (प्राणों) को दे दिया, उसी प्रकार हे मृगनयने, मैं भी तुम लोगोंके सुखका आस्वाद लेता हुआ विषयासक्त हो, काम-देवके वशीभूत होकर, इस संसाररूपी महासागरमें पड़कर विनाशको प्राप्त नहीं होऊँगा ॥५॥

[५] १. क घ ड °इ। २ क °उं। ३ घ हउ। ४ ख ग मो°। ५ ख ग °हेर। ६ ड °तहो। १०. क घ ड °णहिं। ७. क हउं क°, ड हउ कंतहो। ८ घ °ड। ९ क ड मुद्धि°, ख ग मुद्धे मुहे, घ मुद्ध°। ११ ख ग अज्ज मि, घ अज्ज वि। १२ प्रतियोमें °हिं। १३ क पाउ°। १४ ख ग पाविमि। १५ क ड णि°, ख ग नि°। १६ ख ग गरुय°, घ गयरु°। १७. ख ग °उरे, ड °वरि। १८ क ड वायसो वि। १९ ख ग °इ। २० क घ ड °हिं। २१ क ड गय°, ख ग तर°। २२ घ °मेड। २३. ख ग गयणुच्चउ। २४ ख ग °डिउ। २५ क घ ड अप्पउ जेम ण जाणिउ। २६ ख ग काइ। २७ क ड °य। २८. ख ग तिह; घ तिह। २९ ख ग °क्ख। ३० क °तउ। ३१ क मज्झु। ३२ ख ग °णे।

[६]

अह कहइ कहाणउ[1] कणयसिरि   कइ एक्कु वसइ कइलासगिरि।
सिहराउ पडिउ[2] सयदलिउ मुउ   मणिकणयमउडधरु[3] खयरु हुउ।
विज्जाहरु अह अवरेक्कु[4] जणु   तं[5] पेक्खिवि हुउ विभइयमणु।
नियपियए समाणु एम चवइ   जहिँ कइ मुउ विज्जाहरु हवइ।
तहिँ[6] मरइ कह व जइ[7] किर खयरु   तो[8] अवस होइ गिव्वाणवरु[9]।
लइ मरमि एत्थु इय बुद्धि थिया   रोवंति[10] निवारइ तासु पिया।
खेयरु वि[11] सहावे नाह तुहु[12]   संपज्जइ[13] चिंतिउ विसयसुहु।
देवाहँ मि[14] सग्गे किमब्भहिउ   अवगण्णिवि तं कंतए[15] कहिउ[16]।
अप्पाणउ[17] घल्लवि[18] चुण्णु किउ   रत्ताणणु वाणरु होवि थिउ।

घत्ता—साहीणइँ[19] सोक्खइँ[20] मेल्लेवि अहिउ मुणंतु नट्ठु खयरु।
तिह[21] आयउ तुम्हइँ[22] निच्छइ दइवें छलिउ विणट्ठु वरु[23] ॥६॥

[७]

आयण्णिवि[1] जंबूसामि चवइ   विज्झम्मि एक्कु कइ[2] जूहवइ।
कामाउरु सेवियरइवसणु   असहियपडिमक्कडथडरसणु।

[६]

इसके अनंतर कनकमाला कथानक कहने लगी—कैलासपर्वतपर एक कपि रहता था। वह शिखरसे गिरा और खंड-खंड होकर मर गया, तथा (मरकर) मणि व स्वर्णमय मुकुटधारी विद्याधर हुआ। कोई एक दूसरा विद्याधर उसे देखकर मनमे बड़ा विस्मित हुआ, और अपनी पत्नीके साथ ऐसा वार्तालाप करने लगा—जहाँ कपि मरकर विद्याधर होता है, तो यदि किसी तरह कोई खेचर मरे तो वह अवश्य उत्तम गीर्वाण(देव) होगा। तो लो, अब मैं ही यहाँ मर जाता हूँ, ऐसी उसकी (दृढ)बुद्धि हो गयी। रोती हुई उसकी प्रिया उसे रोकने लगी—हे नाथ, खेचर स्वभाव(रूप)से भी तुम्हे मनोवाछित विषयसुख प्राप्त होता है। देवोके लिए ही स्वर्गमे कौन-सा अतिशय सुख है? कांताके कहे हुएकी अवहेलना करके उस खेचरने अपनेको गिराकर चूर्ण कर लिया और लाल मुँहवाला वानर होकर रह गया। स्वाधीन सुखोको छोड़कर, अधिककी कामना करनेवाला खेचर (जिसतरह) नष्ट हुआ, उसीतरह (प्राप्त हुई) तुम लोगोको यह नही चाहता। (अतः) यह वर दैवसे ठगा जाकर विनष्ट हो रहा है ॥६॥

[७]

यह सुनकर जंबू स्वामी कहने लगे—विंध्यमे एक यूथपति बंदर रहता था। वह बड़ा कामातुर था, सदैव रतिव्यसनका सेवन करता था, और दूसरे वानरयूथकी आवाज भी सहन

[६] १ क घ ङ °णउं। २ क ङ °वि। ३ क ङ मणि-कडय°। ४. क ङ °रेक्क। ५. ग तो। ६. ख ग तहि। ७ क ङ जे। ८ ग तउ। ९. ग गिव्वाणु°। १०. ङ रोमति। ११. क ङ जि। १२. ख ग व तुहुं। १३. क ङ °ज्जउ। १४ क ङ °हु वि, ख ग °हु वि। १५ क ङ °इ। १६. क °उं। १७ क घ ङ °णउ। १८ क घ ङ घल्लिवि। १९ ङ °णइ। २०. क ङ °ङ। २१. ख ग तिहं, व तह। २२. क ङ °हं। २३. व नरु।

[७] १ ख आइ°, व °ण्णिवि। २ घ कवि।

वाणरिय पुत्तु जं किर जणइ परिहरइ धूव[3] नंदणु हणइ[4] ।
अह एक्क कयावि सगब्भ हुया तं छड्डिवि[5] अण्णहिं[6] वणे पसुया[7] ।
सुउ जाउ ताहिं[8] पिंगलनयणु[9] परिवड्ढिउ दाढावलिवयणु ।
पुच्छिय जणेरि[10] कहिं महु जणणु सुय[11] अच्छउ पुत्तंकुरखणणु ।
तो भणइ[12] कुइउ धुयभुयजुवलु[13] कहि[14] अम्मि कहमि तहो[15] पावफलु ।
निउ तेत्थु परोप्परकुद्धमण उद्धाइय[16] वाणर वे वि जण ।
नहदंतपहारहिं वणियतणु नासइ जरवाणरु[17] मुयवि रणु ।
हुउ पुट्ठिहिं[18] इयरु वि असहमणु छड्डाविउ[19] ताम जाम गहणु ।
अइतिसिउ सलिलसण्णिहु[20] नियइ[21] करु छुहेवि जाम[22] पाणिउ पियइ ।
लेवम्मि[23] चहुट्टु ताम[23] वियलु अहिलसिवि[24] जडेण पुणो वि जलु ।
बीओ वि हत्थु तेत्थु जि[25] निहिउ[26] लाएवि जाणु वयणु वि निहिउ ।
जाणंतु वि मूढु[27] विणट्ठमइ लेवम्मि खुत्तु[28] मुउ जेम कइ ।

घत्ता—तह[29] विसयसुहेसु तिसायउ[30] होइवि[31] हउँ मि[32] न जामि खउ ।
अहिसंकडे अवडे पडंतहो महुलवलेहणे[23] आस कउ[33] ॥७॥

न करनेवाला था। वानरी जो सतान जनती थी, पुत्रीको छोड़कर पुत्रको मार डालता था। पश्चात् किसी समय एक वानरी सगर्भा हुई। उस वनको छोडकर उसने अन्य वनमे प्रसूति की। उसे पिंगलनेत्र और खूब बड़ी द्रष्ट्रापंक्तिसे-युक्त मुखवाला पुत्र हुआ। उसने जननीसे पूछा—मेरा पिता कहाँ है ? (माँने कहा)—हे पुत्र ! वह पुत्ररूपी अंकुरका उन्मूलन करनेवाला (पिता, जहाँ है, वही) रहे, अर्थात् उस पुत्रघातक पितासे तुझे क्या लेना देना है ? तब अपने भुजयुगलको फटकार कर, कुपित होकर वह बोला— माँ बतलाओ (कि वह कहाँ है ?)। उसे उसके पापका फल बतलाऊँगा। माँ उसे वहाँ ले गयी। परस्पर क्रुद्ध होकर दोनो वानर (एक-दूसरेपर) झपटे। नखो और दाँतोके प्रहारसे घायल शरीर होकर बूढा बदर रण छोड़कर भाग निकला। दूसरा भी असहिष्णु होकर उसके पीछे हो गया, यहाँतक कि उससे वन छुडवा दिया। अत्यत प्यासे हुए उसने अपने सामने जलके समान कुछ (द्रव पदार्थ) देखा। और जब (एक) हाथ डालकर उस पानी(जैसे पदार्थ) को पीने लगा तो उस लेप (चिपचिपा पदार्थ—शिलाजीत)मे चिपककर व्याकुल हो गया। फिर भी उस मूर्खने जलकी अभिलाषा करके दूसरा हाथ भी उसीमे डाल दिया, तथा घुटने लगाकर मुख भी डाल दिया। जिस-प्रकार जानते हुए भी वह हतबुद्धि मूर्ख वानर लेपमे चिपककर मरा, उसी प्रकार विषयसुखोंका प्यासा होकर मै भी, किंचिन्मात्र मधुको चाटनेमे आसक्त होकर सर्पोंसे संकीर्णकूपमे पडकर विनाशको प्राप्त नही होऊँगा (देखिए परिशिष्ट मधुबिंदुदृष्टात) ॥ ७ ॥

---

३. ख ग धूय। ४ ख ग °ड। ५ क ड छंडिवि। ६ क ड °हिं, घ अन्नहिं। ७. क ट °आ। ८ घ तासु। ९ क ड पिंगलु°। १० ख ग कहु। ११ ख ग सुअ। १२ क च ट °उ। १३. ख ग घ °जुयलु। १४ ख ग कहिं। १५. क त। १६. क ड °विय। १७. क ट मुउवि। १८ क घ ट °हिं। १९. क ड छडा°। २० क घ ड सलिलु सम्मुहु। २१ क ट °ए, घ °इ। २२ ख ग घ °उ। २३. घ °ट्ट जाम। २४ घ °लसिउ। २५ ख ग घ वि। २६ क दि, घ ट वि°। २७ क मूढ। २८. क ट पत्तु। ३२ ख ग घ वि। २९ क तिहिं, घ तह, ड तिह। ३० ख ग घ तिसाइयउ। ३१ घ होंगवि। ३३ ख ग आसत्तउ, घ आसकउ, ड आसकओ।

[८]

विणयसिरीए[1] कहाणउ[2] सीसइ[3] संखिणिनिहि वरइत्तहो[4] दीसइ[3] ।
कम्मि पुरम्मि दरिद्दे[5] ताडिउ संखिणि नाम को वि कव्वाडिउ ।
दिणि दिणि वणे कव्वाडहो धावइ भोयणमत्तु[6] किलेसे पावइ ।
भुत्तसेसु[7] दिवसेसु पवन्नउ[8] रूवउ[9] एक्कु रोक्कु संपन्नउ[8] ।
महिलसहाएँ रहसे चड्डिउ कलसे[10] छुहेवि धरायले गड्डिउ ।
अह रविगहणे कयावि विहाणइँ[11] चलियइँ तित्थे चयवि[12] नियथाणइँ ।
पूरिएहिँ मणिरयणसुवण्णहिँ[13] अवलोइउ संखिणिनिहि[14] अण्णहिं ।
मंतिज्जए[15] आएण असारे खडहडंतरूवयसंचारे ।
जाणाविउ[16] लोयाण समग्गा अम्हइँ गिण्हाविज्जहु[17] लग्गा ।
चिंतेवि तम्मि[18] छुद्धु निउ[19] भल्लउ एक्केक्कउ मणिरयणु गरिल्लउ ।
सो संपुण्णु करेवि पवत्तइँ ण्हाएवि[20] तित्थे नियघरु पत्तइँ ।
अह छणदिणि[21] महिलाए[22] कहिज्जइ रूवउँ अज्जु नाह विलसिज्जइ ।
संखिणि खणइ[23] कलसु जहिँ धरियउ दिट्ठउ ताम कणयमणिभरियउ[24] ।

[८]

(तब) विनयश्रीने यह कथानक कहा, और वर(जंबूस्वामी)को एक संखिणी नामक कबाडीका दृष्टांत दिखलाया। किसी नगरमे दारिद्रयसे पीड़ित संखिणी नामका कवाड़ी रहता था। वह प्रतिदिन वनमें लकडी आदि इकट्ठा करनेको जाता और भोजन-भर भी बड़े क्लेशसे पाता था। कुछ दिनोमे खानेसे बचा-बचाकर उसके पास एक रुपया रोकड़ (जमा) हो गया। पत्नीके सहयोगसे बहुत उत्कंठापूर्वक एक कलशमे रखकर उस रुपयेको (कही वनमे) धरातलमें गाड़ दिया। अथानंतर किसी समय सूर्यग्रहणके अवसरपर प्रात कालके समय (कुछ लोग) अपने निवास स्थानोको छोडकर तीर्थयात्राको चले; और मणि, रत्न व सुवर्णसे भरपूर उन लोगोंने संखिणीकी उस निधिको देखा; तथा कुछ खड़-खड़ करते हुए उस अल्प मूल्यवान् रुपयेके संचरणसे ऐसी मंत्रणा की—इस रुपयेके द्वारा लोगोंको ऐसा जनाया (बतला) जा रहा है कि (तीर्थयात्रा के) अपने (इस) मार्गसे जानेवाले लोग हमे (मुझे) कुछ ग्रहण करावें; अर्थात् इस घडेमे एक-एक सिक्का डालकर इसे पूरा कर दे। ऐसा सोचकर वे सब लोग एक-एक श्रेष्ठ सुंदर मणिरत्न उस घड़ेमें डालकर, उसे फिर वापस जमीनमे गाड़कर पुनः अपनी-अपनी यात्रापर प्रवृत्त हो गये, और तीर्थस्नान करके अपने घर आ गये। पश्चात् किसी समय उत्सवके दिन (कबाड़ीकी) स्त्रीने कहा—नाथ! आज उस रुपयेसे आनद मनाया जाये। तब संखिणीने उस स्थानको खोदा जहाँ कलश रखा था, तो उसे सुवर्ण और मणियोसे भरा

[८] १ क ड °सिरीय। २ क ख ड °णउ। ३. क °ड। ४ क ड °यत्तहो। ५ क ड दरद्दें। ६ ख ग भोयणु मित्तु। ७ क ड भुत्तु°; ख ग °सेस। ८ क ड °ण्णउ, ख ग °ण्णउ। ९. ख ग घ रूयउ। १०. प्रतियोमे 'कलसें'। ११ प्रतियोमे 'णिहाणइं'। १२ ख ब चइवि। १३ क °ण्णइं, ड °ण्णइ, घ °न्नहिं। १४. क घ ड °णिहिं। १५ क ख ड °ज्जइ। १६ प्रतियोमे 'जाणाविवि'। १७ घ गिन्हाविज्जइ। १८ क ड मति, घ तम्हि। १९ क ड णिरु, घ निरु। २०. क ड °यवि, ब न्हाइवि। २१ क छवि°। २२ क घ ड °लाइं। २३ प्रतियोमें 'खणइ'। २४. क ड कणयमय°।

[25]मग्गहसु रहसें[26] कहिउ[25] पिए[27] पेक्खहिं[28] मइँ सम पुण्णवंतु[29] को लक्खहिं[30]।
अज्जवि[31] सिद्धिनएण निहाणें रयमि उवाउ अवरु मइनाणें[32]।
किं पि न लेमि करेमि न खोयणु[33] होसइ कव्वाडेण वि[34] भोयणु।
अह कलसेसु छुहेवि एक्केक्कउ[35] बहु दविणासए गड्डेवि मुक्कउ[35]।
अण्णहिं[36] पव्वे पुणु वि पहे दिट्ठइ[37] पूरहु केम हियए[38] न पइट्ठइ[39]।
निहिहिँ रयणु एक्केक्कउ लइयउ सुण्णउ[40] करेवि सव्वु परिचइयउ।
अवरहिं[41] समए जाम उग्घाडइ[42] रित्तउ नियवि करहिं सिरु ताडइ[42]।
अच्छउ[43] रयणसमूहु सरूवउ[44] सो वि विणट्ठु मूलि जो रूवउ।

घत्ता—साहीणलच्छि नउ भुंजइ[45] महइ[46] समग्गल सग्गदिहिं।
संखिणिहि[47] जेम वरइत्तहो करे लग्गेसइ सुण्णनिहि[48] ॥८॥

[९]

बोल्लइ कुमारु रइसुहहो भामि भमरो व्व वरच्छि न खयहो जामि।
सयवत्तब्भंतरे गंधलुद्धु अलि न कलइ दिवसत्थवणु मुद्धु।
रयणीसंगमें संकुइउ कमलु नीसरिवि न सक्कु विवण्णु भसलु।

देखा। उसने उत्कंठासे उत्कठित होकर कहा—प्रिये, देखो। मेरे जैसा पुण्यवान् और कौन दिखाई देता है? सिद्धिनय(दैवयोग) से अर्जित खजानेके द्वारा मै अपने बुद्धिबलसे (प्रभूत धनार्जन करनेका) एक अन्य उपाय रचता हूँ। इस निधिमे-से न तो कुछ लूँगा और न इसे खो-दूँगा, अपना भोजन तो कवाड़ीपनसे भी चलता रहेगा। फिर एक-एक मणिको एक-एक कलशमे रखकर अत्यधिक धनकी आशासे गाडकर छोड़ दिया। (उन्ही) अन्य यात्रियोने (किसी दूसरे) पर्वपर मार्गमे फिर उस निधिको देखा, और (घडेमे एक ही रत्न देखकर) यह निधि कैसे पूरी हो, यह बात उन लोगोके हृदयमे अर्थात् समझमे नही आयी। (अंततः उन लोगोने खोज-खोजकर) उस निधिमे-से एक-एक करके सब रत्न ले लिये और सब घडोको खाली करके (वही) छोड़ दिया। जब (पुन) सखिणीने पत्नीके साथ उस निधिको उघाड़ा तो (सब घडोको) रिक्त देखकर हाथोसे सिर पीटने लगा।—वह सुंदर रत्नसमूह तो दूर ही रहे, जो मूलमे एक रुपया था, वह भी विनष्ट हो गया। स्वाधीन लक्ष्मीको तो भोगता नही, और श्रेष्ठ स्वर्गसुखकी आकाक्षा करता है, ऐसे इस वरके लिए उस सखिणीके समान शून्य निधि (खाली घटे) ही हाथ लगेगी ॥ ८ ॥

[९]

कुमार बोला—हे सुंदर आँखोवाली भामिनी! रति (रमण, क्रीडा-)सुखके कारण मै भ्रमरके समान विनाशको प्राप्त नही होऊँगा। शतपत्रके भीतर गया हुआ गंधका लोभी मुग्ध भौरा दिवसके अस्त होनेको नही जान पाता। रात्रिके संगम(प्रदोषकाल)पर कमल सकुचित

---

२५ क ट मरहसेण कहियउ। २६ ख रहसि। २७ क ट पिय। २८. क °हिं; ख ग °हिं। २९ क ट पुण्णि°; व पुन°। ३० ख ग °हिं। ३१ क ट अज्जु वि। ३२. क ख ट °णाणें, ख ग मइणाणें। ३३ ख खोहणु। ३४. क ट य। ३५ क °क्कउ। ३६ क ट °हिं। ३७ क ख ग ट °ट्ठ। ३८ ग ट °इं। ३९ ख ग ख °ट्ठउ। ४० क ट °इ ख सुण्णउ। ४१ क ख ट °रहिं। ४२ क °डं। ४३ ख °। ४४ क °वउ। ४५ क ख ग °इ। ४६ क °इ। ४७ ख ग °णिहिं। ४८. क ट °निहिं, ख सुण्ण°।

इय विसयसोक्खु अचयंतु संतु　　पलयहो न पवच्चमि एहु[1] मंतु।
तो कहइ रूवसिरि कवलियप्पु　　एरिसथोहें गउ खयहो सप्पु।
कालम्मि कम्मि महिजणियसत्तु　　सिहिवल्लहु वासारत्तु पत्तु।
पाउससिरि-संतरयंबरीय[2]　　हेट्ठामुह[3]-लंबियपओहरीय[4]।
घणपडलछण्णतारयविहाडे[5]　　उल्लसियकासु[6] जरथेरि नाइ[7]।
वरिसइ घणोहु अच्छिन्नधारु[8]　　तरुवरदलघट्टणतारतारु[9]।
गिरिकडणि सिलायडे[10] मंदमंदु　　हलकिट्ठछेत्तमालेसु संदु।
आलावणिवज्जहो अणुहरंतु　　सरि-सर[11]-निवाण-दरि-दह[12] भरंतु।
पडणुच्छलंतजलु धरणि[13] वहइ　　फलिहमयलिंगजडिले व सहइ[14]।

घत्ता—निसिदिवससत्त धाराहरु[15] वरिसइ पूरियधरणियलु[16]।
संचारु न लब्भइ सलिले हुउ आदण्णउ[17] जगु सयलु ॥९॥

[१०]

फुट्टतलायपालिवहनिग्गय[1]　　[2]नइउण्णाहलग्गजलयर गय।

हो जाता है, भौरा उसमे-से निकल नही पाता, व उसीमें मर जाता है। इसीप्रकार विषय-सुख-का त्याग न करके मै विनाशके मार्गपर नही चलूँगा, यही मेरा मंतव्य है। इसपर रूपश्री बोली—ऐसे ही पराक्रम(आत्माभिमान)से एक सर्प अपने-आपको कालकवलित करके विनाश-को प्राप्त हुआ। किसी समय पृथ्वीमें अनेक सत्त्वोको उत्पन्न करनेवाला शिखि-वल्लभ वर्षाऋतु प्राप्त हुआ। अंबरमे रज शात हो गया, पयोधर(मेघ) अधोमुख होकर आकाशमे लटक गये, मेघपटलसे तारकगण आच्छादित हो गये, और काश(घासविशेष) खूब फूल उठे; इसप्रकार वह पावसलक्ष्मी ऐसी जराजीर्ण वृद्धाके समान प्रतीत हुई, जिसका रजोवर शांत हो गया है, अर्थात् ऋतुमती न होनेसे जो रजोवस्त्र धारण नही करती; जिसके पयोधर(स्तन) अधोमुख होकर लटक गये है; जिसके अक्षि-तारक (आँखोकी पुतलियाँ) घने अक्षि-पटल (मोतियाबिंद)से आछन्न(आवृत्त) हो गये है, और जिसका काश अर्थात् खाँसी रोग (श्वास) अत्यधिक बढ गया है। उत्तम वृक्षोके पत्रोसे संघट्टन करता हुआ वारिद-समूह गिरिमेखला और शिलातटोपर मद-मद, एवं हल चलायी हुई क्षेत्र-मालाओमे खूब घना, अतः आलापिनी(वीणा)के वादनके स्वरका अनुहरण करता हुआ, और नदी, तडाग, गढ़ो, दर्रो व द्रहोंको भरता हुआ अविच्छिन्न धारासे बरसने लगा। वर्षा गिरनेसे उछलते हुए जलको धारण करती हुई पृथ्वी ऐसी शोभायमान हो रही थी, मानो स्फटिकमय लिंगोसे जड़ दी गयी हो। सात रात-दिनो तक मेघ निरंतर बरसता रहा, और उसने धरातलको जलसे पूर दिया। पानीके कारण संचरण (मार्ग) मिलना भी कठिन हो गया, और सारा जग व्याकुल हो गया ॥ ९ ॥

[१०]

तालाबोकी पाल(मेढ) फूट गयी, और उससे जलका प्रवाह वह निकला। नदीकी बाढ़में

[९] १ घ एउ। २ व ड °वलीय। ३. क ड °मुहु। ४. क ड पयो°। ५ क °ड। ६. ख ग °कास। ७ क घ ड °इ। ८ क ख व ड अच्छिण्ण°। ९ व तरवर°; ड °दलघणत्तारुण्णतारु, क °दलवट्टुणतारतारु। १० क ड °वड, ख ग घ °यड। ११. क °सरि। १२ ख ग दर°। १३. ख ग °णे। १४ ख ग दं°। १५ घ °घरु। १६ क ड °यलु। १७. क घ ड °ण्णउं।

[१०] १ ख ग °पहनि°। २. क ड णय°, ख ग नय°।

थिप्पिर-जुण्ण[3]-तण्ण[3]-कुडिलीणइँ[4] कंदिरडिंभइँ[5] तवणविहीणइँ[6]।
सलसलंति मुक्खइँ सविडंबइँ[7] निव्ववसायइ[8] रोड[10]-कुडंबइँ[11]।
नीडनिवासिएहिँ अच्छिज्जइ वार वार पक्खिहिँ[12] मुच्छिज्जइ।
गिरिकुहरेसु थक्कु वणयरगणु तल्लूवेल्लि करइ पीडियतणु।
मंदी जाइ जलोहि नियत्तिए पविरलजलसंचार[13]-पवत्तिए[14]।
नियआहारु चरंतें सरढें दिट्ठउ कालसप्पु मइजरढें[15]।
कुंडलियंगु तडियउद्धरफणु ललणललंतु[16] जगु जि भक्खणमणु।
खद्धु भुयंगमेण कहिँ[17] लुक्कमि केण उवाएं आयहो चुक्कमि।
पुव्वदिट्ठनउलद्दरि सरंतें जय-जय सद्द करेवि तुरंतें।
वुच्चइ सामिसाल मइँ[18] मारहिँ[19] खुद्दजंतुजोणिहिँ[20] उत्तारहिँ[21]।
एम भणेवि करेवि[22] मुहुँ[23] वुण्णउ[24] अंसुपवाहु मुयंतें[25] रुण्णउ[26]।
अहिणा भणिउ[27] काइँ[28] विवरेरउ चरिउ तुहारउ[29] जणे अच्छेरउ।
करकेटिउ कहेइ[30] तुहुँ कुलपहु पइँ[31] खद्धउ[32] पावेसमि सिवपहु[33]।
इय जयकारु रहसकिउ मण्णहि[34] रोविउ जं पि तं पि आयण्णहि[35]।

पडकर जलचर वह गये। खाद्य पदार्थोंके न मिलनेसे क्रंदन करते हुए बच्चे गलती हुई जीर्णतृण-निर्मित कुटियोमे लीन हो गये। कुटुंबीजन भूखसे व्याकुल होकर सलबलाने लगे और व्यवसाय-हीनताके कारण हैरान हो गये। पक्षी अपने नीडोमें ही निवास करते रह गये, और बार-बार मूच्छित होने लगे। वनचर-समुदाय गिरिकदराओमे स्थित हो गया, और पीडित शरीर होकर तडफडाने लगा। जलके प्रवाहमे-से निवृत्त होकर(बचकर), उथले जलमे संचरण प्रवृत्तिसे धीरे-धीरे चलते हुए एक मतिवृद्ध (प्रौढमति) करकैटेने स्वयके आहारके लिए विचरण करते समय एक काला सर्प देखा, जो शरीरको कुडलित किये हुए अर्थात् कुंडली मारे हुए, विस्तीर्ण फणको ऊपर उठाये हुए, मानो सारे जगको भक्षण करनेके मन(इच्छा)से अपनी जीभोको लपलपा रहा था। अब मै भुजंगमसे खाया गया, कहाँ लुकूँ और किस उपायसे इससे बचूँ ? (ऐसा सोचकर) पहले देखी हुई एक नकुल गुफाका स्मरण करके उस करकैटेने तुरत जय-जय शब्द करके कहा—हे स्वामिश्रेष्ठ। मुझे मार डालिए और क्षुद्र जतु योनिसे उद्धार कर दीजिए। ऐसा कहकर, उद्विग्न मुख करके अश्रुप्रवाह छोडता हुआ रोने लगा। सर्पने कहा—तुम्हारा चरित्र लोगोमे बडा विपरीत और आश्चर्य-कारक है, इसका क्या कारण है ? करकैटा कहने लगा—तू हमारा कुलदेवता है, तुम्हारे-द्वारा खाया जाकर मै शिवपथको पाऊँगा, इस कारण तो हर्षसे जय-जयकार की ऐसा मानिए, और जो रोया, उसका कारण भी

३. घ °त्र। ४. क कडि°। ५ ख ग ड °डिभइ। ६ क घ ड तवणि°। ७ क घ ड °इ। ८. ड °वइ। ९ क घ °यइ। १० क रोड। ११ क ड °वइ। १२ क ड पंखिहि। १३ क घ ड °रि। १४ ख ग पवि°, ड पवत्तिय। १५ घ मइ°। १६ घ ललइ°। १७ ख ग कहि। १८ ख ग मइ। १९ क °हि। २०. क घ ड °जोणिहि। २१ क घ °रहि°। २२. क करवि। २३ क घ ड मुहु। २४ ख ग ड चुं°, घ वुन्नउं। २५. घ मुवंति। २६ घ °उ। २७ क ख ड °उ। २८ क ड काइ। २९ क ड °रउ। ३०. घ भयेइ। ३१ ख ग पइ। ३२ क घ °उ। ३३ क °पहुं, °सुहु। ३४. क ड °हिं, घ मन्नहिं। ३५ क ख ग °ण्णहिं।

महु कुडंबु संताणगरिल्लउ   मइँ[36] एक्केण जि त्रिणु एक्कल्लउ।
केम हवेसइ त्ति दय किज्जउ   तो[37] वरि तं पि देव[39] भक्खिज्जउ।
वुत्तु कुडंवु कहहि[38] जहिँ[39] अच्छए   चल्लिए चलिउ सो वि तहो पच्छए।
निउ गिरिदरिहि[40] भडारा लक्खहि[41] गोत्तु महारउ[42] पइसिवि भक्खहि[43]।
तुट्ठु पइट्ठु[44] दिट्ठु मुहतंबें   खद्धउ फाडिवि नउलकयंबें।
अहिलसंतु अहि अहिउ[45] जि लक्खइ   इट्ठु[46] नियइ वडिपहरु न पेक्खइ।
घत्ता—[47]इच्छंतहो अहिउ असिद्धउ सिद्धविणासु वि [48]पियहो किह[47]।
सिवमाहवधुत्तविलोहिउ[49] रायपुरोहिउ मुद्धु[50] जिह ॥१०॥

[११]

तं निसुणेवि कुमारें वुच्चइ   विसु साहीणु किं न लहु मुच्चइ[1]।
रयणिहि[2] नयरे सियालु पइट्ठउ   मुउ वलद्द रच्छामुहे दिट्ठउँ[3]।
भक्खंतेण दंत-वणे[4] काणिउँ[5]   रयणिविरामपमाणु न जाणिउँ।
हुए[6] पहाए[7] वस-आमिससुज्झिउ[8]   जणसंचारवमालें वुज्झिउ।
भयकंपिरु नीसरिवि न सक्कउ[9]   चिंतियमंतु पडेविणु[10] थक्कउ[9]।

सुन लीजिए! मेरा कुटुंब बहुत संतानोंवाला है। मुझ एकके बिना अकेले (निराश्रय) होकर उसका कैसे क्या होगा? इसलिए हे देव! दया कीजिए, और उसको भी खा लीजिए! सर्पने कहा—तुम्हारा कुटुंब कहाँ रहता है, यह बताओ! करकंटेके चलनेपर वह सर्प भी उसके पीछे-पीछे चला। गिरिकदरामे ले जाकर करकंटेने कहा—भट्टारक, यह देखिये हमारा कुल! भीतर प्रवेश करके इसे खा लीजिए! प्रसन्न होकर वह(सर्प) प्रविष्ट हुआ, वहाँ लाल मुँहवाले नकुल समूहने उसे देखा, और फाड़कर खा लिया। अभिलापाके वशीभूत हुआ सर्प अधिकको ओर ही लक्ष्य करता है; अतः अपने इष्ट(दुग्ध)को तो देख लेता है किंतु प्रतिप्रहारको नहीं देखता। और अधिक अनुपलब्ध(सुखों)की इच्छा करनेवाले प्रियतमके उपलब्ध सुखोंका भी विनाश उसीतरह हो जायेगा, जिसप्रकार शिव और माधव धूर्तों-द्वारा ललचाया हुआ राजपुरोहित ठगा गया॥१०॥

[११]

इस कथाको सुनकर कुमारने कहा—अपने आधीन विषको (भी) क्या तुरत त्याग नहीं दिया जाता? रात्रिमे एक शृगाल नगरमे प्रविष्ट हुआ और (उसने) रास्तेके मुँहपर ही एक मरा हुआ बैल देखा। (उसे) खाते-खाते उसके दाँत व मुख छिद गये और वह रात्रिके अंत होनेको अवधिको भी नहीं जान सका। प्रभात होनेपर वृषभके माससे मोहित वह शृगाल लोगोके सचारके कोलाहलसे सचेत हुआ। भयसे काँपता हुआ वह (नगरसे) निकल भी नहीं

३६ ख ग मइ। ३७ ख ग घ वरि देव ते (घ त) पि। ३८ ख घ °हिं। ३९ ख ग जहिं। ४०. क ङ °हिं। ४१. क °हिं। ४२. क °रउं। ४३ क ख ग °हिं। ४४. क ङ पयट्ठु। ४५ क °उं। ४६. क घ ङ दुद्धु। ४७. ख ग मे पूरी पंक्ति इस प्रकार—लोहें जाइ खउ अहि वि विणासु वि पियहो किह। ४८. क °हु। ४९ क ङ °धुत्तु°। ५०. क ङ मुद्धु, ख ग मुद्ध।

[११] १ क °इ। २. प्रतियोंमे °णिहिं। ३ क °उ, ङ दिट्ठिउ। ४. क घ ङ °वण, ग °वणु। ५ क ङ °उ। ६ क ङ हुय, ख ग हुउ। ७. क ङ °इं। ८ क हामिस°। ९ क °इ, ख ग घ ङ °इ। १०. घ °प्पिणु।

अप्पउ मुयउ करिवि दरिसावमि किर वणु पुणु वि निसागमि पावमि।
दीसइ दिवसि[११] मिलिय पुरलोएं एके नरेण पवड्ढियरोएं।
ओसहत्थु[१२] लुउ पुच्छ[१३]-सकण्णउ[१४] चिंतइ जंबुउ अज्ज वि धण्णउ[१५]।
जीवेसमि अपुच्छु[१६] विणु कण्णहि एक्कवार जइ छुट्टमि पुण्णहिं।
बोल्लइ अवरु एक्कु कामुयजणु गेण्हमि[१७] दंतु करमि वसि पियमणु।
पाहणु लेवि दंत किर चूरइ जाणिवि जंबुउं[१८] हियइं[१९] विसूरइ।
खंडियपुच्छ[२०]-कण्ण मण्णिय तिणु[२१] दुक्करु जीवियास दंतहिं[२२] विणु।
चिंतवि[२३] मुक्कु धाउ जव-पाणे लइउ कंठे हरिसरिसें साणे।
मारिउ ताम जाण कयनाएं खद्धउ मिलिवि सुणहसमवाएं।
इय विसयंधु मूढु जो अच्छइ कवणभंति सो पलयहो गच्छइ।

घत्ता—[२४]गय अद्धरत्ति[२४] बोल्लंतहं[२५] तो वि कुमारु न भवे रमइ[२६]।
तहिं[२७] काले चोरु विज्जुचरु चोरेवइ[२८] पुरे परिभमइ[२९] ॥११॥

[१२]

थिरइयगाढगंठिपरिहणसलु कियआयत्तछुरियपिहुकडियलु।
निविडनिबद्धजूडसिरपरियरु[१] अयरुग्गारधूव[२]-सुरहियसरु[३]।

सका और यह मंत्र सोचकर निश्चल होकर पड़ रहा—अपनेको मरा हुआ दिखला देता हूँ, पुनः रात आनेपर वनको चला जाऊँगा। दिनमे नगरके लोगोने मिलकर देखा। एक मनुष्यने जिसका रोग बढा हुआ था, औषधिके लिए उसकी पूंछ व कान काट लिये। जबूक सोचने लगा—अभी भी धन्य (भाग्य) हूँ; यदि एक बार पुण्यसे छूट जाऊँ तो बिना पूछ और कानोके ही जी लूँगा। एक दूसरा कामी पुरुष बोला—इसका दाँत ले लेता हूँ, (उससे) प्रियाका मन वशमे करूँगा। और पत्थर लेकर सचमुच ही उसके दाँत तोड डाले। (यह) जानकर शृगाल अपने हृदयमे खेद करने लगा—पूछ व कानके काटे जानेको तो मैने तृणके समान समझा, परतु दाँतोके बिना तो जीनेकी आशा दुष्कर ही है। ऐसा सोचकर (लोगोसे) छूटते ही जब वह अपने प्राण लेकर भागा, तो सिहके समान श्वानने उसे गलेसे पकड लिया, और जानसे मार डाला, तथा शोर मचाते हुए कुत्तोके समुदायने मिलकर खा डाला। इसप्रकार जो मूढ विषयाध होकर रहता है, वह अवश्य विनाशको प्राप्त होगा, इसमे क्या भ्राति है ? (इसप्रकार) कथा-वार्ता करते-करते आधीरात बीत गयी, तो भी कुमार ससारमे आसक्त नही हुआ। उसीसमय, विद्युच्चर नामका चोर चोरी करनेके लिए नगरीमे भ्रमण कर रहा था ॥११॥

[१२]

सुदृढ गाँठसे अपने परिधानमे शलाका (डडा) लगाये हुए, और पृथुल (विशाल) कटितलपर छुरीको स्वाधीन किये हुए अर्थात् लटकाये हुए, शिरके चारो ओर घना जटाजूट बाधे हुए, अगरुके

११. घ °स। १२ क ड असं°। १३ क ख ड पुच्छु। १४.-घ ङ °ण्णउ। १५ ख ग धन्नउ, घ ङ °उं। १६ घ °च्छ। १७. क ङ °वि। १८. ख ग जंबू। १९ ग हियय। २० ख ग घ खडिउ°, °पुच्छु। २१. क घ ङ तणु। २२ ख ग °हि। २३ क ङ चिंतिवि। २४ क ख ग ङ गउ °रत्तु। २५ क ङ °तह, ख ग °तहो। २६ ख घ ङ °इ। २७ ख ग तहे। २८ घ चोरिज्जइ। २९ ख ग °इ।

[१२] १. ख ग निबड°। २ ख ग घ °धूय। ३. घ पसरिय°।

सियतंबोलवत्तवीडियधरु फेरियपत्तिवालदाहिणकरु।
कामिणिकामलयहे[4] मेल्लिवि घरु वेसावाडउ नियइ निरंतरु।
वेसउ जत्थ विहूसियरूवउ नरु मण्णंति[5] विरूउ विरूवउ।
खणदिट्ठो वि पुरिसु पिउ सिट्ठउ पणयारूढु न जम्मे[6] वि दिट्ठउ[7]।
नउलुब्भउ ताउ किर गणियउ[8] तो वि भुयंगदंतनहवणियउ[9]।
वम्महदीवियाउ[10] अवितत्तउ[11] तो वि सिणेहसंगपरिचत्तउ[12]।
लग्गिरसाइणिसत्थसरिच्छउ[13] [14]कामुयरत्ताकरिसणदच्छउ।
मेरुमहीहरमहिपडिबिंबउ[15] सेवियबहुकिंपुरिसनियंबउ।
नरवइनीइसमाणविहोयउ दूरुज्झियअणत्थसंजोयउ।
अहरे राउ मयणु[16] वि जहिँ[17] वट्टइ पुरिसविसेससंगि न पयट्टइ।

उद्‌गार व धूपसे पवनको सुगंधित करते हुए, श्वेत तावूल(पका पान)पत्रका बीड़ा चबाते हुए दाहिने हाथसे तलवार घुमाता हुआ, कामलता नामक कामिनीके लिए घर छोड़कर निरंतर वेश्यावाटको देखा (जाया) करता था, जहाँपर वेश्याएँ खूब सजे हुए रूपवाले मनुष्यको भी रुपयेसे रहित अर्थात् धनहीन होनेसे विरूप (कुरूप) मानती हैं। क्षण-भरके लिए देखा हुआ (धनवान्) पुरुष जहाँ अतिवल्लभ कहा जाता है, और जीवन-भर प्रणयासक्त रहनेवाले पुरुषको (भी निर्धन हो जानेपर) ऐसा कहा जाता है कि इसे जन्म-भर कभी देखा ही नही। जो नकुल सतान होकर भी भुजंगो(सर्पो)के दत-नखोसे व्रणित (घायल) होती है(यह विरोधाभास है); अर्थात् वे न-कुल—हीन कुलमे उत्पन्न होती है, और भुजगो अर्थात् कामीजनोके दाँतो व नखोसे उनके अगोपर व्रण लगा दिये जाते है(विरोध परिहार)। (कामभोगसे) कभी भी तृप्त न होनेवाली कामदेवकी दीपिकाएँ होते हुए भी वे स्नेहसंगसे परित्यक्त होती हैं (विरोधाभास), अर्थात् कामवासनाका उद्दीपन करनेवाली होनेपर भी किसीसे सच्चा स्नेह (प्रेम) नही करती (विरोध परिहार)। रक्त चूसनेमे दक्ष व लगी हुई शाकिनियोके समूहके समान वे कामुक व्यक्तियोका रक्त (शक्ति व धन) चूसनेमें दक्ष होती है। वे मेरुपर्वतकी समभूमिके प्रतिबिंबके समान होती हैं। मेरुपर्वतकी समभूमि किंपुरुषादि देवोसे सेवित होती है, वेश्याओके नितंब किंपुरुषो अर्थात् क्षुद्र मनुष्योसे सेवन किये जाते है। वे राजनीतिके समान ऐश्वर्यसपन्न होती हैं, और अनर्थ सयोगोको दूरसे ही छोड़ देती है। राजाकी नीति ऐश्वर्यवृद्धि करनेकी तथा राजा और प्रजाको हानि करनेवाले कारणोंको दूरसे ही छोड़नेकी होती है; उसीप्रकार वेश्याएं ऐश्वर्य और ऐश्वर्यवानोको तो चाहती हैं, और अर्थहानिके संयोगों अर्थात् जिन लोगोसे कोई अर्थलाभ होनेवाला नही, ऐसे धनहीन लोगोके सपर्कको दूरसे ही त्याग देती हैं। जिनके अधरोमें राग(प्रेमरस) भी विद्यमान है और मदन(कामदेव) भी, तथापि वह पुरुष-विशेषके साथ प्रवृत्त नही होता (यह विरोधाभास है); (विरोधपरिहार) जहाँ ओठो व अधम(अहरे) पुरुषोंमे राग होता है, और जो नीच मदन(काम)से युक्त है, अथवा जिनके ओठोमे नीच पुरुषोके प्रति राग

४ ङ °लयहो। ५ घ मन्नति। ६ ख ग जम्म। ७ ग दिट्ठिउ। ८ घ °यउ। ९. क घ ङ °दतखय°। १० प्रतियोंमे वम्मह°। ११ क ख ग ङ °भत्तउ। १२ क ङ सणेह°। १३ ख ग °सायणिसत्थ°। १४ ख ग कामुअ°। १५ घ °बिंबिउ। १६ ख ग पमाणु। १७ ख ग जहुं, घ जहु; ङ जहि।

परकोऊहलत्थु[18] विरइज्जए कडिपरिहाणु न लज्जए[19] किज्जए।
सरलत्तणु बाहुलयहिँ[20] सिट्ठउ परवंचणअ[21] हियाए[22] न दिट्ठउ।
रुइरवेसविरयण[23] न सरूवउ कामुयमण[24]-सायड्ढणभूवउ[25]।
जं मिट्ठत्तु न सद्धहे[26] इहु गुणु तरुणे[27] चित्तरंजण[28] पीडइ[29] पुणु।
मंडणे[30] वण्णावेक्ख[31] न विडजणे[32] [33]गउरउ रवणे[33] न माणुसे निद्धणे।
घत्ता—आयरेण सुइरु[34] आलिंगिवि[35] सरसु[36] पुरिसु महुसंचु जिह।
रिच्चेवए निउणउ[37] खुद्दउ खुद्दउ[38] संचुंबति तिह[39] ॥१२॥

[१३]

का वि वेस नवदविणु गणंती हियवणमणुससंगु अगणंती[1]।
ईसामिसेण निरोहवि[3] वारइ मंदिरि अवरु सधणु पइसारइ।

व काम रहता है, वहाँ पुरुष-विशेष अर्थात् उत्तम-पुरुषमे उसका प्रवृत्त न होना स्वाभाविक है। और जहाँ दूसरोको कौतूहल (औत्सुक्य) उत्पन्न करनेके लिए ही कटिवेशकी विरचना (सजावट) की जाती है, लज्जासे नही। और सारल्य उनकी बाहुलताओमे तो कह दिया गया है, परंतु उनके परवंचक हृदयमे किसीने नही देखा अर्थात् उनके हृदयकी कुटिलतापर किसीने लक्ष्य नही दिया। और जिनमे कामीजनोके मनको आकर्षण करनेवाली रुचिर(सुंदर) वेशरचना तो होती है, परंतु स्वाभाविक रूप (नैसर्गिक सौंदर्य) नही होता। और उनमे जो मीठापन है, तो यह गुण श्रद्धाके लिए, अर्थात् श्रद्धाके कारण नही; क्योकि वह तरुणाईमे तो चित्तका अनुरंजन करता है, परतु पीछे पीड़ा देता है। अपने शारीरिक मडनमे तो उन्हे सब वर्णों(रगो)की अपेक्षा (चिंता) रहती है, परन्तु विटजनोके सबधमे उन्हे किसी वर्ण—जातिकी कोई अपेक्षा नही रहती। और उनका गौरव (गुरुता, गुरुभाव) उनके रमण(भोग करनेवाला धनी व्यक्ति अथवा नितब-प्रदेश)मे होता है, निर्धन मनुष्यमे नही। जिसप्रकारसे किसी छत्तेसे उडायी हुई निपुण मधुमक्खियाँ मधुके उस सरस(मधुयुक्त) छत्तेको रिक्त करनेके लिए आदरपूर्वक खूब देर-तक चूमती अर्थात् चूम लेती हैं, उसीप्रकारसे ये क्षुद्र(दुष्टाभिप्राय) व निपुण वेश्याएँ किसी सरस (स-काम, स-धन) व्यक्तिको रिक्त (धन-हीन) करनेके लिए आदर(अनुराग)-पूर्वक चिरकाल तक आलिंगन करके चुबन करती है (अर्थात् पूर्णत. चूस लेती हैं।) ॥१२॥

[१३]

कोई वेश्या किसी नये-नये धनिकको गिनती (आदर देती) हुई किसी हृतधन अर्थात् धनहीन मनुष्यके संसर्गकी अवगणना(अवहेलना) करती हुई ईर्ष्याके बहानेसे (कि तुझे यहाँ देखकर उस धनिकको ईर्ष्या होगी) उसका गृहप्रवेश निपिद्ध करके, उसे हटा देती है, और घरमे

१८. ख ग °रलत्थु। १९ क ड °हिं; घ °ड। २० ख ग °लयहो। २१ क ड वचण, घ °वचणु। २२ क घ ड हिययाए, ख ग हिउए। २३ क घ ड °यणु। २४. ख ग कामुअ°। २५. क ख ग ड साट्टयण,° क ख ग ड °भूयउ। २६ ख ग सद्दहे। २७ ख ग घ °ण। २८ क ड चितु°। २९. ख ग °ए। ३० घ °ण। ३१. घ वन्ना°। ३२ घ °यणि। ३३ क °रउ वणि; ख ग गउर वणे। ३४ ग सुयरु। ३५ ड °घिवि। ३६ ग °स। ३७ ख ग णेउणउ, घ °णउ। ३८ ख ग °ए। ३९ ड निर।

[१३] १ ख घ ग °वणु। २ क ख ग ड अमु°; घ अय°। ३. क घ ड °हिवि।

काए वि जूरंतीए[४] विग्रप्पिउ[५] वंचयकामुएण[६] जो अप्पिउ।
कूडउ दम्मु निएवि विसत्तिए किज्जइ काइँ कज्जे निव्वत्तिए।
भग्गभाडिविडु[७] दिट्ठउ काय वि लयउ कडच्छए[९] चोडए[१०] धाएवि[११]।
पच्छए जं धणु लद्धु चउग्गुणु नियसोहग्गखोरे निक्खइ पुणु।
धणु वि दिण्णु निरवेक्ख वियंभइ ढोउ न लहमि[१२] को वि उवलंभइ।
इय पेक्खंतु चोरु किर गच्छइ मिहुणहँ[१३] निहुवणु[१४] [१५]कहिँ मि[१५] नियच्छइ।
गाढालिंगणचप्पियथणयडु [१६]कामट्ठाण चारुचुंबणपडु।
दसणकोडिपीडियबिंबाहरु नच्चावियभूभंगमणोहरु।
सेयसलिलकणललियकवोलउ[१७] अद्धक्खरखलंतकलरोलउ।
गामासन्नवणु[१८] व हयवच्छउ[१९] रायउलं व करणपरिहच्छउ[२०]।
कम्मवियारु व रूवियबंधउ रिद्धकिसाणु[२१] व अप्पियखंधउ।

दूसरे धनीको प्रवेश कराती है। किसी मतिहीन (किंकर्त्तव्यविमूढ) गणिकाने, धूर्त्त कामुकके द्वारा अर्पित झूठे द्रमको देखकर खेद करते हुए सोचा कि अब कार्य समाप्त हो चुकनेपर क्या किया जा सकता है? किसीने अपना भाड़ा लेकर भागे हुए विटको देखा तो दौड़कर उसको कछौटे व चोटीसे पकड़ लिया। पीछे जो चौगुना धन मिला, उसे अपनी शृंगारपिटारीमें डाल लिया। (अत्यासक्तिके कारण) धन दी जानेपर भी कोई वेश्या (यह निर्धन है, ऐसा सोच-कर) उसके प्रति निरपेक्ष रहती है (उसे स्वीकार नही करती), और किसी अन्य(धनी)के प्रति बड़ा अनुराग दिखलाती है, (ऐसा देखकर) मुझे अपनी भेंट नही मिली, इस प्रकार कोई किसी गणिकाको उलाहना देता (फिरता) है। विद्युच्चोर यह सब देखता हुआ चला जा रहा था, तो कही उसने मिथुनोके सुरत (व्यापार) को देखा। कही गाढ़ आलिंगनके द्वारा स्तनोके अग्र-भागोको आक्रांत करके कामस्थानोके सुंदर चुंबनमे पटुता दिखाई जा रही थी। कही दाँतोके अग्रभागसे बिंबाधरोका पीड़न, भ्रूभंगिमाका मनोहररूपसे नर्तन, स्वेदसलिल कणोसे सुंदर कपोल और आधे अक्षर स्खलित होते हुए (प्रणयक्षणोकी) वार्त्ताका कलकल हो रहा था। कही स्त्री-पुरुषोके जोड़े ग्रामके निकटवर्ती वनके समान हो रहे थे—ग्रामका निकटवर्ती वन हतवृक्ष होता है, अर्थात् उसके वृक्ष काट भी लिये जाते है, व नानाप्रकारसे आहत भी होते हैं, उसीप्रकार स्त्री-पुरुष युगल भी परस्परके वक्षस्थलोको आहत कर रहे थे; और भी वे स्त्रीपुरुषोके जोड़े राजकुलके समान करण दक्ष थे—राजकुल न्यायालय, मंत्री, सेना, दुर्ग आदि अनेक करणो—साधनोसे परिपूर्ण होता है, मिथुन कामक्रीड़ाके समस्त साधनो (व आसनो) में परिपूर्ण (व दक्ष) थे। ज्ञानावरणादिरूप अथवा प्रकृति-स्थिति आदिरूप अनेक प्रकारके कर्म-विकारकृत बंधनके समान, वे जोड़े अनेक प्रकारके रतिबंध रच रहे थे। समृद्ध किसानके समान उन्होने अपने कंधे

---

४. क ह °तियइं। ५ क ह विअ°। ६ क ह वंचइ°। ७. क °चिउ। ८. क ह लइउ। ९ क ह °च्छहि। १० क ह °ए। ११. क ह धायवि, घ धाविवि। १२. पं० मे 'लहइ'। १३. क ह °णहुं, ख ग घ °णहु। १४. क ह °अणु। १५ क ह कहि मि, ख ग कहिं वि। १६, क कामट्ठीण°। १७. क °वलियकवो°। १८. क ह गामासण्ण°। १९ क ख ग °वत्थउ। २० क ख ग °हत्थउ। २१ क ह रिद्धि°।

अंधयवहु व जायनहरव्वणु[२२] मेल्लियसरु णं धाणुक्कियरणु।
फारक्कु व कड्ढियकरवालउ[२३] नइपुलिणं पि व रेयविसालउ।
दाणवबलु व[२४] समुग्गयसुक्कउ वणवियलंगु व मुच्छहे ढुक्कउ[२५]।
घत्ता—इय मिहुणइँ सयणासीणइँ नयणदलइँ[२६] मउलंताइँ[२७]।
निव्वत्तियरयभरखिन्नइ[२८] निद्दइ[२९] नियइ[२] घुलंताइँ[२७] ॥१३॥

[१४]

धवलहरपंतिछायए[१] चलंतु हिंडिरतलारकलयलु[२] कलंतु[३]।
निहुअं[४] जि मुणिय पाहरियसासु[५] संपत्तु अरुहयासहो निवासु।
आसरेवि थक्कु कयचोरवित्ति जंबूकुमारवासहरभित्ति।
चिंतइ चोरत्तणु कवणु मज्झु जइ हरमि न इउ धणु जं असज्झु।
तं सुउ वर-वहुव[६] कहावसेसु[७] परियाणिउ[८] कारणु निरवसेसु।
तावेत्तहिँ जंबुकुमारजणणि परिसुसइ डज्झमाणे व[९] धरणि।

अर्पण कर रखे थे; समृद्ध किसान सहारेके लिए (दूसरे वधुओंको) कंधा अर्पित करता है, युगलोंने परस्पर आलिंगनमें अपने कंधे अर्पित कर रखे थे। युगल किसी अंधेकी वधूके समान थे—अंधा व्यक्ति अपनी वधूको यत्र-तत्र अनुचित स्थानोंमें नख-व्रण लगा देता है; उसीप्रकार युगल भी विवेक किये विना परस्परको अनुचित स्थानोंमें नख-व्रण लगा रहे थे, और इसप्रकार स्वर छोड़ रहे थे, मानो धनुर्धरोंका युद्ध हो, जिसमें वाण छोड़े जाते हैं। फारक्क धारण करनेवालोंके समान वे करवाल (तलवार, युगलपक्षमें हाथोंसे बाल) खींच रहे थे। नदीके पुलिन(तट)के समान वे अत्यधिक रेत (बालू, युगल पक्षमें रेतस्-रज, वीर्य) से युक्त थे, अथवा नदीके रेत एवं जलके आगार तटके समान, युगल रेतस्रूपी जलके आगार थे। युगल दानव सैन्यके समान थे—दानव सैन्यमें शुक्र अर्थात् शुक्राचार्य उत्पन्न हुए थे, और युगल समुत्पन्न शुक्र अर्थात् (रति क्रीड़ामें) अत्यंत वीर्यवान् थे, तथा व्रणोंसे विकलांग अर्थात् घायल होकर मूर्च्छित हो रहे थे। इसप्रकार विद्युच्चरने शयनोंपर आसीन मिथुनोंको, जिनके नेत्र मुकुलित हो रहे थे, संपन्न किये हुए रतके आयाससे थककर निद्रामें घुलते (डूबते) हुए देखा ॥१३॥

[१४]

प्रासाद पंक्तिकी छाया(ओट)में चलते हुए, घूमते हुए नगर रक्षकोंके द्वारा किये जाते हुए कोलाहल व पहरेदारोंके श्वासको मौन हुआ जानकर, वह अरहदासके घर प्राप्त हुआ, और जंबूकुमारके वासगृहकी भित्तिका आश्रय लेकर चोरवृत्तिसे अर्थात् छिपकर वहाँ खड़ा हो गया, एवं सोचने लगा—यदि इस असाध्य(दुर्लभ)धनका अपहरण न करूँ तो मेरा चोरपना ही क्या ? इसके अनंतर (वहीं खड़े-खड़े) उसने वर-वधुओंके उस अवशेष कथालापको सुना और निःशेष कारण (वृत्तांत) को जान लिया। तबतक इधर जंबूकुमारकी माता जलती

२२. ख ग °नहुरच्चणु। २३ ख ग कड्ढिय°। २४ ख ग दाणु व बलु व। २५ घ °उ। २६. क इ °लइ। २७. इ °ताइ। २८ क इ °खिण्णइ। २९ क घ इ °इ।

[१४] १. क °छायइ। २ क इ हिंडियतलार°। ३ क कयतु, ख ग कन्तु। ४ क इ °अउ; ग °वउ। ५. ख ग वाहि°। ६. क इ वहुय। ७. ग °विसेसु। ८ क घ इ °णिउ। ९ ख ग वि।

सिवएवि जेम दुहवियलपाण[१०]　　सिरिनेमिकुमारें मुच्चमाण[११] ।
घरु पंगणु मेल्लइ[१२] वार-वारु[१२]　　पुणु जोवइ[१३] सुयवासहरदारु[१४] ।
एत्तहिं[१५] कुमारु किर दढपइज्जु[१६]　　बहुवाहु[१७] चउक्कु[१८] वि कलियविज्जु[१९] ।
किं अज्ज वि सुउ तवचरणवुद्धि　　किं वट्टइ बहुमुहरायलुद्धि ।
किं अज्ज वि मण्णइ[२०] मोक्खवासु　　कि कंठे पडिउ पियबाहुपासु ।
किं अज्ज वि अप्पउ महइ सिद्धु　　किं तिक्खकडक्खसरेहिं विद्धु ।

घत्ता—इय चिंताचक्कचडावियए[२१] चित्तब्भमणचमक्कियए[२२] ।
जिणवइए कुड्डसंलीणउ[२३] दिट्ठु चोरु अदवक्कियए[२४] ॥१४॥

[१५]

बोल्लावियउ तिमिरि कि वंछइ[१]　　माणुसु कवणु एउ रे अच्छइ[१] ।
तक्करु भणइ[२] माए[३] मा वीहहि[४]　　सहलु होउ जं हियवइ ईहहि[५] ।
हउँ नामेण चोरु विज्जुचरु　　हिंडमि नयरु निसिहिं[५] नीसंचरु ।
करमि अकम्मु सिट्ठजणदूसिउ　　मंदिरु तं न जं न मइँ मूसिउ[६] ।
तेरउ एक्कु नवर न निहेलणु　　चोरमि अज्जु तं पि पेरिउँ[७] मणु ।
ताम कुमारहो मायए[८] वुच्चइ[८]　　गेण्हहि[९] दविणु पुत्त जं रुच्चइ[८] ।

हुई भूमिके समान (दीर्घ और उष्ण) श्वास ले रही थी। श्रीनेमिकुमार (२२वें जैन तीर्थंकर) के घर छोड़ते समय जिसप्रकार शिवदेवी दुःखसे विकलहृदय हुई थी, उसी प्रकार विकलात्म होकर बार-बार घर-आँगनको छोड़ती (आती-जाती) थी, फिर पुत्रके वासगृहका द्वार देखती कि क्या कुमार अभी भी दृढ़प्रतिज्ञ है, अथवा वधूचतुष्ककी (काम)विद्याके वशमें हो गया ? क्या अभी भी पुत्रका मन तपश्चरणमें हो लगा है, अथवा उसे वधुओंके मुखरागका (कुछ) लोभ हुआ है (अर्थात् वधुओंमें आसक्ति हुई है) ? क्या अभी भी वह मोक्षवासको ही (श्रेष्ठ) मानता है, अथवा क्या उसके कंठमे प्रियाओंका बाहुरूपी पाश पड़ गया है ? क्या अभी भी अपनेको सिद्ध बनाना चाहता है, अथवा तीक्ष्ण कटाक्ष शरोसे बिंध गया ? इस प्रकार चिंता-चक्रपर चढाई हुई उद्भ्रात चित्त व विस्मित जिनमतीने बिना डरे हुए, भित्तिसे लगकर छिपे हुए चोरको देखा ॥१४॥

[१५]

(जिनमतीने) उसे पुकारा—अरे ! अधेरेमें यह कौन आदमी है ! और क्या चाहता है ? तस्करने कहा—माँ डरो मत, तू जो हृदयसे चाहती है, वह बात सफल हो। मै विद्युच्चर नामका चोर हूँ, रात्रियोमे नगरका भ्रमण करनेवाला निशाचर हूँ, तथा शिष्टजनों-द्वारा दूषित अपकर्म करता हूँ। ऐसा कोई घर नही है, जिसे मैंने लूटा नही। एक तेरा ही घर नही लूटा। इसमे भी आज चोरी करूँ, इस प्रकार मेरा मन प्रेरित हुआ। तब कुमारको माँ

१०, ग °पाणि। ११ ख ग वुच्च°, ङ मुंच°। १२. क वारु°, ख तारुहार, ग °वार; घ तारुहार। १३. क ङ जोयइ। १४ ख ग घ सुअ°, ख ग °दार। १५. ख ग °हि। १६. क ङ °ज्ज। १७. क ङ °याउ; ख ग °याहु। १८ ख ग °क्क। १९ घ °विज्ज। २०. क ङ °इं; घ मन्नइं। २१. घ चिंताचक्कि चडा°; ख ग °चडावियइं। २२ ख ग °ब्भमणें। २३ ख ग °सइंलीणउ,, व °सइलीणउ। २४. ख ग अवद°; घ °यइं।

[१५] १. क °हिं; घ ङ °हि। २. क घ ङ °इं। ३. ख ग माय। ४. क °हि। ५ ख ग घ °हिं। ६ घ °उं। ७. घ पेसिउ। ८ क °इ। ९. क ङ °हिं; घ गिन्हहि।

निसुणेवि वोल्लिज्जइ कुसुमालें तउ धणु पेक्खमि सरिसु पलाले।
चोरिय चित्ते[10] एत्थु न पयट्टइ चिंतासल्लु अवरु महु वट्टइ।
वार-वार जं निलए पईसहि[11] मंदिराउ पुणु पंगणि दीसहि[12]।
दारकवाड पुणु वि जं लक्खहि[13] कारणु कवणु माए तं अक्खहि[13]।
सीसइ तासु [14]सगग्गिरवयणए वइयरु अंसुजलोल्लियनयणए[15]।
एक्कु जि पुत्तु पुत्त अम्हारउ बंधव-पियरमणोहरगारउ।
अज्जु[16] जि परिणावियउ विवत्थए[17] लेसइ दिक्ख [18]विहाणए सत्थए[18]।
घत्ता—इय पुत्तविओयकुढारें फाडेवि खंडु खंडु कियउ[19]।
अंगारपुंजे संदिण्णउ[20] लवणु व सयसक्करु हियउ ॥१५॥

[१६]

निसुणेविणु[1] तं वयणं पवरो वयणं पडिजंपइ विज्जुचरो।
करुणारसरंजियसुद्धमणो पडिवन्न[2]-पवड्ढिय नेहघणो[3]।
सुणियं[4] [5]व मए[5] रहसुब्भवियं वहुवाहि[6] वरेण समं लवियं।
न पवत्तइ[7] केम वि पुत्तु[8] तउ वहुवोल्ल-[9]महल्ल-नए-ण-जउ[9]।
अवरेक्क पयासमि माए[10] मइ विहडेइ न अज्ज वि कज्जगइ।

बोली—पुत्र तुझे जो रुचे वह द्रव्य ले ले। यह सुनकर चोरने कहा—मै तेरा धन पुआलके समान समझता हूँ। यहाँ मेरे चित्तमे चोरीकी भावना ही प्रवृत्त नही हो रही है। मुझे तो दूसरा ही चिंताशल्य उत्पन्न हुआ है। तू बार-बार घरमें प्रवेश करती है, घरसे फिर प्रागणमे दिखाई देती है, फिर द्वार कपाटोको देखती है; तो हे माँ! इसका क्या कारण है? सो बताओ! गद्गद वचनों और अश्रुजलसे आर्द्रनेत्रोसे वह उसको वृत्तात कहने लगी—हे पुत्र! हमारा एक ही पुत्र है, जो बांधवों और माता-पिता सबके लिए सुखदायक है। आज ही व्यवस्था (विधि)पूर्वक उसका परिणय कराया गया है; और विहान (प्रभात) होते ही वह शास्त्र-विधि-के अनुसार (दिगंबरी)दीक्षा ले लेगा। इस पुत्रवियोगके कुठारने हृदयको फाडकर खड-खंड कर दिया है, और अगारमे डाले हुए लवणके समान शतशः विदीर्ण कर दिया है ॥१५॥

[१६]

विद्युच्चर करुणारससे रजित शुद्ध मन और स्नेह प्राप्त करनेसे वर्द्धित-स्नेह होकर ये प्रतिवचन बोला—मैने वधुओके द्वारा वरके साथ किया हुआ समस्त उत्कंठाजनक वार्तालाप सुन ही लिया है। तुम्हारा पुत्र किसी भी तरह ससारमे प्रवृत्त नही होगा, यह वधुओके बड़े-बड़े वोलोके न्यायसे जीता नही जा सकता। हे माता! एक ओर युक्ति प्रकट करता हूँ, जिससे (संभवत.) अभी भी कार्यकी गति (अर्थात् अभीप्सित कार्य) विघटित न हो। हे अम्मा!

१०. ख ग चित्तें। ११ क ग घ °इ, °हि। १२ क ड °इ। १३ क ग ट °हि। १४. ग ग गगि°; घ सगगर°, °वयणइ (सभी प्रतियोमे) १५ क घ ट °णइ। १६ ग अज्ज। १७. क विउत्थए; ग ग वियत्थइ, ड विडत्थइ। १८ क विहाण पमत्थइ। १९ क घ °उ। २० क घ °णउ।

[१६] १ क ट °ण्णिणु। २ क ख ग ट °वण्ण। ३ क ट °घणो। ४. क ट °उं। ५ ग ग °नयणए अजअो, घ वइयर। ६. ख ग° याहि; घ °वाहि। ७ घ °त्तइ। ८ ख ग पुत्त। ९ क ग ग ट °ल्ल नएण जुओ। १० घ माय।

मइँ[11] एत्थु पवेसहि[12] अम्मि[13] जइ लिह[14] बोल्लमि वड्ढइ[15] जेम[16] रइ ।
सुइ[17]-सत्थइँ बुज्झमि[18] आरिसइँ[19] परचित्तइँ[20] जाणमि जारिसइँ ।
जणकम्मण-थंभण-मोहणयं[21] भुवणस्स[22] वि खोहण[23]-जोहणयं ।
नयणंजणजायरभंजणयं सुहसुत्तपवोहणरंजणयं ।
विहडंतमहादिहिजोडणयं पियमाणुससंगमतोडणयं ।

घत्ता—वहुवयणकमलरसलंपडु भमरु कुमारु न जइ करमि ।
आएण समाणु[24] विहाणए[25] तो तवचरणु[26][27] हउँ मि[27] सरमि ॥१६॥

[१७]

तो कुमारमायरीए[1] [2]पुत्तदुक्खकायरीए ।
चोरवीर[3]सासियाए[4] सुद्धसुद्ध[5]भासियाए[6] ।
ढिल्लवाहुकंकणाए[6] [7]छित्तदारढंकणाए[6] ।
सुण्हनामु[8] उच्चरेवि पिल्लिया कवाड वे वि ।
नंदणो मुणेवि माय कारणेण केण आय ।
आनमंसियं[9] पयाइँ[10] पुच्छइ त्ति अम्मि काइँ ।
एरिसम्मि जं सुसुत्ति[11] आगयासि मज्झरत्ति[12] ।
अक्खए कुमार बुज्झु गब्भसंठियस्स तुज्झु ।

यदि तू मुझे यहाँ (भीतर) प्रवेश करा दे तो मैं ऐसा बोलूँगा जिससे उसकी संसारमे रति बढ़े । मै ऐसे श्रुतिशास्त्रोको जानता हूँ, जिनसे लोगोंको जैसी चित्तवृत्तियाँ है, उन्हे जान लेता हूँ, और जो लोगोका वशीकरण, स्तभन व मोहन करनेवाले, व सारे भुवनको भी विक्षुब्ध कर देनेवाले एवं लड़ा देनेवाले है; तथा ऐसा नेत्रांजन भी जानता हूँ, जो जागृतोको सुला देनेवाला एवं सुखसे सोये हुओको जागरणका आनंद देनेवाला, तथा विघटित होती हुई (छूटती हुई) महा-धृति (महान् प्रीति-सुख) को भी जोड़नेवाला, और प्रियजनोके संगमको तोड़नेवाला है । अतः यदि मै कुमारको वधुओके मुखकमलरूपी मधुका लंपट भ्रमर न बना सकूँ; (अर्थात् कुमारको वधुओके प्रति अत्यंत आसक्त न कर सकूँ) तो विहान होते ही मै भी इसके साथ तपश्चरणका अनुसरण करूँगा ॥१३॥

[१७]

तब पुत्र दुःखसे कातर कुमारकी माताने उस चोर वीर(भ्राता)के सरल व निश्छल वचनोसे कहेको सुनकर, ढोले बाहु कंकणोसे (शब्द करते हुए) द्वार कपाटोको छूकर वधूका नामोच्चारण करके दोनो किवाड़ोको ढकेल दिया । किसी कारणसे माँको आयी जानकर पुत्रने माँके पैरोको नमस्कार करके पूछा—माँ क्या बात है, जो इसप्रकार सोनेके समय अर्द्धरात्रिको ही तू आ गयी? माँने कहा—कुमार समझो(सुनो)—जब तू गर्भमें ही था तो मेरा एक कनिष्ठ भाई जो तभीसे

११ क ड मइ । १२ ख ग °सहि । १३. क ड अति । १४. व तिह । १५ ख ग वट्टइ । १६ क ड जेण । १७ सुह । १८ घ वोल्लमि । १९ क ड °सई । २०. क परि° । २१. क ड खो° । २२. ख ग भुय° । २३. क ड मो° । २४ क ड °ण । २५ क व ड °णइं । २६. क ड तउ° । २७ क ड हउ°, ख ग °वि ।

[१७] १ क ड °रीय । २. ख ग वुत्तु° । ३ क °वीह° । ४ क °याइ, ड °याइ । ५ क सुद्धमुद्ध° । ६ क घ ड °णाइं । ७ क ड छित्तवार°, ख छिण्ण° । ८. घ सुन्ह° । ९ क ड ता णमसिओ, घ ता नमसिउं । १०. क °ई । ११ ख ग °त्ते । १२ ख ग मज्झे ।

मे कणिट्ठ भाइ एक्कु　　संडलंतरम्मि थक्कु ।
वच्छरेसु आउ अज्जु　　जाणिऊण तुज्झ[13] कज्जु ।
दंसणाणुरायबद्ध　　दुल्लहेट्ठगोट्ठिसद्ध[14] ।
नेच्छए निसाविरामु　　अच्छए दुवारे मामु ।
बोल्लए कुमारु बूहि　　[15]आगुरु लहू व ऊहि[15] ।
किं[16][17]विलंबए सुधम्मि[17] आवउ समाणि अम्मि[18] ।
घत्ता—पुत्ताणुमइए उवलद्धए[19]अब्भंतरथियाए थिरए[19] ।
जिणवइए[20] भाइ हक्कारिउ [21]निविडनेहकोमलगिरए ॥१७॥

[१८]

तं सुणिवि[1] सरीरि[2] धरंतु समु　　परियत्तवि[3] तं चिररूवकमु[4] ।
पयडियकिराडमयवेसपडु　　आजाणुलंबपरिहाणपडु ।
वंकुडियकच्छ[5]-कयडिल्लकडि[6]　　कण्णंत[7]लुलावियकेसलडि ।
[8]पुट्ठीनिहित्तकयबंधभरु[9]　　उग्गंठियविसरिसकुंचधरु[10] ।
[11]आउत्तसंगपंगुरियतणु　　सिढिलाहरोट्ठदंतुरवयणु[12] ।
डोल्लंतबाहुलयललियकरु　　वासहरि पइट्ठउ[13] विज्जुचरु ।

देशांतरमे रहता था, वह आज तेरा विवाह कार्य जानकर अनेक वर्षोंपर तुम्हारे दर्शनोंके अनुरागसे बंधा हुआ, एवं ऐसी दुर्लभ अभिलषित गोष्ठीकी श्रद्धा(अभिलाषा)से यहाँ आया है, और द्वारपर ठहरा है, परंतु वह रात्रिमे विराम(रुकना) नही चाहता। तब कुमार बोला—माँ! वे बहुत बडे अर्थात् पितृस्थानीय है, और मै लघु अर्थात् पुत्र स्थानीय हूँ, यह सोचो! (अतः) स्वधर्म(स्वकर्त्तव्य)मे देर क्यो? वे ससम्मान आवे (अर्थात् सम्मानपूर्वक उन्हे ले आओ)। (यह सामानिक छंद है)। पुत्रकी अनुमति मिलनेपर भीतर ही खडी हुई जिनमतीने स्थिर एवं अत्यंत स्नेहपूर्ण कोमलवाणीसे भाई(विद्युच्चर)को हाँक लगायी ॥१७॥

[१८]

यह सुनकर अपने थकावट-भरे शरीरका वह पुराना वेष बदलकर उसने अपना ऐसा रूप प्रकट किया—किरातोके समान मृगछालाका पटु(दक्ष या फुर्तीला) वेश, आजानुदीर्घ परिधान वस्त्र, बाँका उरोबंधन, कमरमे कटिवस्त्र (धोती) बाँधे हुए, कर्णांत तक लहराती हुई केशलटाएँ, पीठपर डाला हुआ केशसमूह, खुली हुई विसदृश (असमान या अद्भूत) कूर्चोंको धारण किये, संपूर्ण शरीरको उत्तमागपर्यंत आच्छादित किये, शिथिल अधरोष्ठ व दंतुर (दाँत दिखाई देता हुआ) मुख तथा डोलते हुए बाहु और सुंदर कर धारण किये हुए वह विद्युच्चर

---

१३. घ तुज्झु। १४. ग °गोट्ठ°। १५ ड आवुत्तलघुकुलऊहि। १६ ख ग कं। १७ क ड विलंब परसु धम्मि। १८. क ड यम्मि। १९ ख ग अब्भतरमि माएरिए। २० क ड °वयए। २१ ख ग निवड°।

[१८] १. क ड मु°। २ क ड °र। ३. घ °त्तिवि। ४ क ड °रुय°। ५ क ड °कच्छु। ६. ख ग घ °ढिल्लकडि। ७ घ कन्नत°। ८ घ पिट्ठी°। ९ ख ग °वद्धभरु। १० घ °कुंचु°। ११. क ड आवत्तसग°। १२ ख ग °दत रुव°। १३ ख ग पय°।

तं नियवि कुमारु समुट्ठियउ दरपणमियसिरु[14] समहिट्ठियउ।
[15]अण्णोण्णालिंगणरसभरिया [16]विहिं पीढहिं[16] वेण्णि वि वइसरिया।
पुच्छिज्जइ कुसलु पंथसमिउ[17] बहुदिवस माम[18]कहि कहिँ[18] भमिउ[17]।
घत्ता—विज्जुचरिं कुसलु कहिज्जइ निसुणि कुमार कालु[19] गमिउ।
वाणिज्जकज्जि दिढचित्ते जं जं मंडलु मइँ[20] भमिउ[21] ॥१८॥

[१९]

दक्खिणाए दिसाए समुद्दं धरेऊण मलयाचलं सिंघलं केरलं तोसलं कोसलं लंजिया-तंजिया-मंडलं चोडदेसं। असेसं सिरीपव्वयं गंगवाडीसमं पंडि-द्दविडंध[1]-चीणं[2]-सकण्णाड[3]-कंचीपुरं कुंतलं। सज्झगिरि-रट्ठमहरट्ठ[4]-वइदब्भ-वइरायरं भद्दरंगं वराडं च तावीयडं नम्मयाडं[5]। सविज्झं-पभासं[6]-पइट्ठाणं[7]-आहीर-चेउल्ल[8] संजाण-भरुयच्छ-कच्छेल्ल सोपारयं कोंकणं। नागरं[9] सिंधुतीरं कवेरीतडं कडहतं[10] वइरि-किक्किंध[11]-तोयावली दीवयं पारसं हंस-छोहारदीवं-[12]लुंठु मम्मणं[12]। पच्छिमेणं थलीमंडलं[13] वालभं सोमसोरट्ठ-कच्छं[14]महं भिल्लमालं[14] विसालं च सोवण्णदोणी-

---

वासगृहमे प्रविष्ट हुआ। उसको देखकर कुमार थोड़ा नत-शिर होकर (प्रणाम करते हुए)-उठ खड़ा हुआ और बहुत अधिक प्रसन्न हुआ। परस्पर स्नेहपूर्वक आलिंगन करके दोनो दो पीठोंपर बैठ गये। पश्चात मामासे (कुमारने) कुशल समाचार एवं यह पूछा कि हे मामा! कहो! इतने दिनोतक कहाँ भ्रमण किया? विद्युच्चरने कुशल कहा—(और बोला) हे कुमार सुनो! वाणिज्यकार्यसे सुदृढ चित्तसे मैने जैसे काल गमाया और जिस-जिस देशका भ्रमण किया ॥१८॥

[१९]

दक्षिण दिशामे समुद्रको धरकर मलयाचल, सिंहल, केरल, तोसल, (महा)कोशल, लंजिया व तंजिया प्रदेश, चोडदेश, श्रीपर्वत, गंगवाडी और उसके साथ पांड्य, द्रविड, आंध्र देश एवं चीनका भ्रमण किया। फिर कर्नाटक, कांचीपुर, कोंतल, सह्याद्रि, महाराष्ट्रदेश और विदर्भ तथा वज्राकर और भद्ररंगमे घूमा। फिर बरार, ताप्तीतट, नर्मदातट, विंध्य, प्रभासतीर्थ, पैठण, आभीर, चेउल्लदेश, जहाजोका स्थान (बंदरगाह) भरुकक्ष (भड़ौच), कक्ष, सोपारक (सूरत), कोकण, नागर देश, सिंधु तट, कावेरी तट, कडहत (?), वइर देश (?) किष्किंधा, तोयावली द्वीप, पारस देश, हंस द्वीप जहाँके लोग दूसरोको लूटनेवाले(लुंठ) और अव्यक्त वचन बोलनेवाले हैं, उन द्वीपोका भ्रमण किया। पश्चिमसे स्थलीमंडल (राजस्थान), वालभ (वल्लभी?), सोमनाथ, सौराष्ट्र तथा महान् भिल्लमाल (भीनमाल) जिसकी रचना एक विशाल सुवर्णद्रोणी

---

१४. क ड °पणविवि सिरु। १५ घ अन्नुन्ना°। १६ क विहि ए ट्ठिहि, ख ग ड विहि पी°, घ विहि वी°। १७. घ °मिउ। १८ ख ग °कहि, घ कहिँ°। १९ क काल। २० क ड मइ। २१ ख घ °उं, ड भरिउ।

[१९] क ख ग ड दिवि°। २. क ख ग ड °वीणं। ३. घ सकन्नाड। ४. ख ग रिट्ठ°, घ °मरहट्ठ। ५ ख ग व °पाडं। ६. प्रतियोमें 'प्रयास°'। ७ ख ग घ पय°। ८ क ग घ ड वे°। ९ ख ग नारंग। १० क ड करहत, ख ग करहत। ११ क ड किंकिव, ख ग किंकिव। १२ क ड लुड वकण, घ लुट्टु व मड मकणं। १३. क ड थनी°। १४ ख ग मसभिल्ल°, घ मव भिल्ल°।

सगं। अव्वुयं[15] लाडदेसं[16] च मेवाड-चित्तउड[17] मालव य तलहारियं। पारियत्तं[18] अवंती[19] तहा तामलित्ती[20] भडं दुग्गमं। उत्तरेण य सायंभरी[21] गुज्जरत्ताए खस-वव्वरं[22] टक्क[23]-करहाड[23]-कसमीर-हम्मीर-कीरं तुरुक्कं[24] तहा ताइयं। वज्जरं सिंधु-सरस्सइतडं[25] मेच्छदेसं सकिंकाण-लोहउर-पुट्ठाहरं[26] वालुयासायरं[27] इत्थिरज्ज अवज्जं[27] समासाइयं[28]। एक्कवयकण्ण[29]-पावरण-हयवयण-गोवयण-करिवयण-हरिवयण-वाणरमुहं[30]। पुव्वभायम्मि गउडं[31] कुरुं[32] कण्णउज्जं[33] स-राढं[34] वरेंद्रीसिरी मज्झदेसं वरं। गोल्ल-वंगंग कोंगं कलिंगं महाउड्डियाणं च जालंधरं। गंग-जउणं सरूवायरं कामरूवं[35]-डहाला-पयागं[36]-चणघट्ट[37]-वाणारसी-वडहर[38] सत्तगोयावरीभीमगंगोवहिं[39] जोहणारं[40] सुहं।

घत्ता—विहुणवि[41] सिरु विंभियचित्तें वुच्चइ माम[42] न वणियवरु।
पच्चक्खु दइउ[43] इय सत्तिए[44] अवस होंमि[45] तुहुं[46] वीरनरु[47] ॥१९॥

इय जंबूसामिचरिए सिंगारवीरे महाकव्वे महाकइदेवयत्तसुयवीरविरइए वहू-वरक्खाणयं नाम [48]नवमो संधी समत्तो[48] ॥ संधिः ९ ॥

के समान है; फिर अर्बुद (आबूपर्वत), लाटदेश, मेवाड, चित्तौड, मालव तथा तलहारको देखा। फिर पारियात्र, अवंती तथा भटोंके लिए दुर्गम ताम्रलिप्तीको देखा। उत्तरदिशासे शाकंभरी [साभर-अजमेर], गूर्जरत्रा, खसदेश, बर्बरदेश, टक्कप्रदेश, करहाट, काश्मीर, हम्मीर, कीर देश, तुरुष्क (तुरुक्क-तुर्की), तथा ताजिक, वज्जर देश, सिंधु व सरस्वतीका तट, म्लेच्छ देश, केक्काण देश सहित लोहपुर एवं अन्य (स्थानो)को छूता हुआ वालुकासागर, स्त्रीराज्य व अव्जको पहुँचकर प्रेमतत्पर वचन बोलनेवाली एक म्लेच्छ जातिके देश, एवं अश्वमुख, गोमुख, हरि-मुख, व्याघ्रमुख और वानरमुख इन देशोमे गया। पूर्वभागमे गौडदेश, कुरु(जागल), कन्नौज, राढ, वरेंद्रश्री, और सुंदर श्रीमध्यदेशको देखा। फिर गोल्लदेश, वग, अंग, कुर्ग, कलिंग, और महान् उडियो (उडीसा निवासियों)के जालंधर (?), गगा, यमुना, सौंदर्यके आकर कामरूप, डहाला (डाहल-जबलपुर) प्रयाग, चुनार, वाणारसी, बडहर, सप्तगोदावरी, भीम, गंगोदधि (गंगासागर) तथा शुभ(सुंदर)योधनद्वीपकी यात्रा की।

(यह सब सुनकर) सिर हिलाकर विस्मित चित्तसे कुमार बोला—मामा! तुम वणिक्वर नही हो। इसप्रकारकी शक्तिसे तुम प्रत्यक्ष दैत्य हो, और अवश्यमेव एक बडे वीरपुरुष हो।

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित जंबूस्वामीचरित्र नामक इस श्रृंगार-वीर-रसात्मक महाकाव्यमे वधूवर आख्यान नामक नवम संधि समाप्त ॥ संधि ९ ॥

---

१५. क ख ग घ अच्चुय। १६ ख ग डाल°। १७ क ङ °वड। १८ ख ग °यत्तू। १९ ख ग यवती। २० ख ग नामभत्ती, घ ताम°। २१ क ङ गुज्जरा तार ख सवच्छर, ख गुत्तरत्ता खसं वव्वर, ग गुत्तरत्ता खस चच्चर। २२ क तुक्क। २३. घ °हार। २४ क ङ ग ङ तुरक्क। २५. क ङ °वज्ज। २६ क ङ पुव्हाहण। २७ क ङ पच्छिरज्ज, ख ग घ °अतज्ज। २८ ख ग °इणए। २९ क ङ पवकवय°। ३० ख ग °मुहा। ३१ क ङ गढड, घ मउड। ३२. क ग ङ कुर। ३३ ख ग कणउज्ज, घ कन्न°। ३४. क ङ भराह, ख ग राढ। ३५ क ङ कान°। ३६. क ङ पयाग। ३७ ख ग चणेघट्ट, घ वन व घट्ट। ३८. क ङ चहु°। ३९ क ङ सोत्तगोयावरीसीम°। ४० ख ग घ लोहं°। ४१ क घ ङ °णिवि। ४२ क ख ग घ मामु। ४३ क दइयउ, ङ दयउ। ४४ क ङ सत्तिथए। ४५ घ होहि। ४६ क ङ तुह, ख ग तुह। ४७ क घ ङ वीरु°। ४८ क घ ङ णवमा इमा सधी।

संधि—१०

[१]

विहवेण[1] रायनियडत्तणेण कलहेण जत्थ कव्वगुणो ।
कव्वस्स तत्थ[2] कइणा वीरेण जलंजली दिण्णा[3] ॥१॥
जत्थ गुडाईण जहा महुरत्ते[4] भिण्ण-भिण्णमुवलंभो[5] ।
निव्वडइ तत्थ गरुवं[6] रसंतरं वीरवाणीणं ॥२॥
[7]पडिपुच्छियकुसलकयायरेण[8] मायामामेण विज्जुचरेण ।
[9]संदिण्णसुयणमणरणरणउ[10] बोल्लाविउ[11] अरुहयासतणउ[12] ॥३॥

अहो विमलचार[12]-जंबुकुमार मारावयार-भुवणेक्कसार ।
सारंगचंगचलदीहनयण नयणाहिरामछणइंदवयण ।
वयणामयपीणियसुयणकण्ण कण्णाइसाइ[13] चायप्पवण्ण[14] ।
[15]वण्णाखिलधवलियसिहरिसिंग[16] सिंगारकमलमयरंदभिंग ।
भिंगालिसरिसघणनीलवाल बालक्किरणतणुतेयमाल ।
मालंकियंग-कित्तिलयकंद [17]कंदावियपडिभडरमणिविंद ।

---

[१]

जहाँ ऐश्वर्यसे, राजाके (निरंतर) नैकट्यसे अथवा कलहसे काव्यगुण उत्पन्न होता है, वहाँ, उस काव्यके लिए वीर कविने जलांजलि दे दी है ॥१॥ गुड़ादिकसे जहाँ (व जिसप्रकार) भिन्न-भिन्न माधुर्यकी उपलब्धि होती है, उसीप्रकार वहाँ वीर कविकी वाणीमें उत्कृष्ट रस-भिन्नता निष्पन्न होती है ॥२॥ कुशल समाचारपृच्छा आदिके द्वारा आदर प्राप्त छद्म मामा विद्युच्चर, स्वजनोंके मनमें उद्वेग उत्पन्न करनेवाले अरहदासपुत्रसे इसप्रकार बोला—॥३॥

हे शुद्धाचरण जंबूकुमार ! तुम कामदेवके अवतार हो, और लोकके एकमात्र श्रेष्ठधन हो । तुम्हारे नेत्र हरिणके समान सुंदर, चंचल व दीर्घ हैं, और मुख पूर्णचंद्रमाके समान नेत्रोंको आनंद देनेवाला है । अपने वचनामृतसे तुम सज्जनोंके कानोंको प्रीणित(तृप्त) करनेवाले हो, और तुमने महाराज कर्णको भी मात करनेवाले त्यागको अंगीकार किया है । तुम्हारे गौर-वर्णसे संपूर्ण गिरिशिखर धवल हो रहे हैं । श्रृंगाररूपी कमलकी मकरंदके लिए तुम भ्रमर हो (अर्थात् कामदेवके श्रृंगारकमलका समस्त मकरंद तुम्हींने पी लिया है, अतः भुवनमें तुम्हीं सुंदरतम हो) । तुम्हारे बाल भृंगावलिके समान अत्यंत काले हैं । बालसूर्यकी किरणोंके समान तुम्हारा शरीर तेजसे वेष्टित (व्याप्त) है । तुम्हारा अंग-अंग लक्ष्मी (सौंदर्यलक्ष्मी एवं विजय-लक्ष्मी)से विभूषित है, और कीर्तिलताके तो तुम मूल अंकुर ही हो । शत्रुभटोंकी रमणियोंको

---

[१] १. क ड °एण । २ क ख ड तस्स । ३ घ दिन्ना । ४ क °रत्तेण । ५. ख ग °लंभे । ६ क घ ड °य । ७. क ख ड परि° । ८ क ड °यएण । ९ ख ग °सुअण° । १०. क ख °णउं । ११ ख ग °विउं । १२. क °चारु । १३. क ड कण्णाइं भाडं, ख ग °ड चाइ । १४. ख ग चाइ°; घ °वन्न । १५. क ड वण्णा-विल° । १६ क ख ग ड °सिहर° । १७ क ड कंदलविय° ।

वंदिणपढंत[१८]-जयथोत्तसंग [१९]संगामुप्पाइयवइरिभंग[२०]।
भंगागयकेरलवलवियास आसाइयजयसिरिसोक्खवास।
घत्ता—तुहुँ[२१] सुंदरु परमविवेउ तुहुँ[२१] जाणहि[२२] दुल्लहु संसारसुहु[२३]।
लायण्णलच्छि[२४]-आरोयतणु पइँ[२५] मेल्लेवि अण्णहो[२६] कासु भणु ॥१॥

[२]

भोयणसत्ति न भोयणु एक्कहो भोज्जु न भोज्जसत्ति अण्णेक्कहो।
कामुच्छाहु न कामिणी एक्कहो रमणि न रमणसत्ति अण्णेक्कहो[१]।
दाणपवत्ति[२] न धणु पर एक्कहो दविणु न दाणवसणु अण्णेक्कहो[१]।
जसु पुणु [३]उहय-पक्ख[४] संपज्जइँ[५] सो किम [६]छलइ अप्पु पावज्जइ।
भग्गविहीणालसियहँ[७] सिट्ठउ[८] भिक्खनिमित्तु लिंगु उद्दिट्ठउ।
सिज्झए काइँ[९] एण परिभावहि सुक्कलेसि[१०] अप्पु म तावहि[११]।
तउ नामेण कम्मु किर कायहो कारणे[१२] कासु[१३] कवणु[१४] फलु आयहो[१५]।
[१६]सुद्धु अवद्धु[१६] जीउ निद्दिट्ठउ [१७]तणुमणवयणचेट्ठअप्पिट्ठउ।

(उनके वीर पतियोको स्वर्ग भेजकर) रुलानेवाले हो, और वंदीजनो-द्वारा पढे जाते हुए जय-स्तोत्रके साथ संग्राममे वैरियोका भंग अर्थात् विनाश उत्पन्न कर देते हो। पराजित होकर आये हुए केरल सैन्यको तुम्ही प्रफुल्लित करनेवाले हो और तुमने सुखको निवासरूप जयलक्ष्मीको प्राप्त कर लिया है। तुम सुदर हो, और तुममे परम विवेक भी है, तथा तुम (स्वयं) जानते हो कि यह संसार-सुख अत्यंत दुर्लभ है। (ऐसी) लावण्यलक्ष्मी और नीरोग(स्वस्थ)शरीर तुम्हे छोड़कर बताओ और किसके पास है? ॥१॥

[२]

एकके पास भोजन करनेकी शक्ति है तो भोजन नही, दूसरेके पास भोजन है, तो खानेकी शक्ति नही। एकको कामोत्साह है तो कामिनी नही; दूसरेको रमणी है तो रमण शक्ति नही। एकको दान प्रवृत्ति है तो धन नही; दूसरेको द्रव्य है तो दानका व्यसन (आसक्ति-रुचि) नही। जिसे दोनो पक्ष (भोग भी व भोग शक्ति भी) सप्राप्य है, वह प्रव्रज्या-द्वारा अपने आपको प्राप्त सुखोसे क्यों वचित करेगा? लिंग(साधुवेष)का प्रतिपादन भिक्षाके निमित्तसे किया गया है, जो भाग्यविहीन आलसियोके लिए अत्युत्तम है। इससे क्या सिद्ध होगा? यह विचार करो, और शुष्क (निरर्थक) (काय)क्लेशसे अपनेको मत तपाओ। तप नामकी वस्तु शरीरका एक कर्म है, इसे किस कारणसे करना चाहिए, और इसका क्या फल होगा? जीवको शुद्ध व अवद्ध (निर्गुण-अकर्त्ता) तथा तन-मन और वचनकी चेष्टाओंमे अस्पृष्ट रहनेवाला कहा गया है।

१८ ख ग पढंति। १९ क ममासु°। २० ख °वइरभग। २१. क ट तुहु। २२ क ग °हि। २३ ख ग
ग °सुहु। २४ ख लायन्न°। २५ क ट पइ। २६ ख अन्नहु।
[२] १ ख अन्ने°। २ ख ग °पवित्ति। ३ क ट उवह°। ४ मभो प्रनियोम 'पागु'। ५ ग
ग ख °ज्जइ। ६ ख ग छलड अप्पु, ख छलइज्जइ। ७. क ट °यहि। ८. ट निट्ठउ। ९ क ट काइ।
१०. क ट ख ग °लेसे। ११ ख ग मा°। १२ क ट °णु। १३ क ट कज्ज। १४ क ट °ण। १५ ग
ट आवहो। १६ क ट सुद्धु अवद्धु, ख ग सुद्धु अमुद्धु। १७. क ख ग ट °मणु°।

तासु विसेसु को वि सविसेसें[18] किज्जइ[19] [20]काइँ न[20] कायकिलेसें।
घत्ता—तणुकम्मु न जीवदव्वु[21] सरइ न वियारु[22] वियप्पु तासु करइ।
जाणिवि कुमारु इय[23] कज्जु निउ तं किज्जइ जं स-सरीरहिउ ॥२॥

[३]

आगब्भमरणपज्जंतु एहु न वि जीउ न जीवहो कज्जु देहु।
अहमिय[1] वियप्पु इह[2] मोहु भणिउ[3] पडिफुरइ[4] भूयसमवायजणिउ[5]।
गुड-धायई-जलजोएण जेम महुसत्ति[6] न अण्णहो[7] कज्जु तेम।
पुग्गलकिउ अह संभूउ कम्मु पुग्गलु जि न अण्णहो[8] तणउ[9] धम्मु।
सो चेय जीउ पडिहाइ जं जि दप्पणमुहबिंबु व भाति[10] तं जि।
जीवहो परिणामासंभवेण सिद्धउ परलोयाभाउ तेण।
परलोयाभावे न सग्गु मोक्खु न नियत्थु[11] मुयवि[12] संसारसोक्खु।
तं निसुणेवि ईसिहसंतएण इंदियवावार[13] चयंतएण[14]।

आत्माके लिए इस अतिविशेष कायक्लेशके द्वारा कुछ भी विशेष(हित) नहीं किया जाता अथवा उस आत्मामें इस अतिविशिष्ट कायक्लेशके द्वारा कोई भी विशेषता उत्पन्न नहीं की जाती। शरीरका कर्म जीवद्रव्यका अनुसरण नहीं करता और न उसमें कोई विकार-विकल्प ही उत्पन्न करता है। इस(सिद्धांत)के अनुसार अपने कार्य(कर्त्तव्य)को जानकर ऐसा करो जो अपने शरीरको हितकारी हो ॥२॥

[३]

यह शरीर गर्भसे लेकर मरणपर्यंत रहता है, और यह देह न तो स्वयं जीव है, और न जीवका कार्य ही है, मै (देहसे अतिरिक्त अमूर्त-शाश्वत व चैतन्यस्वरूप स्वतंत्र आत्मा) हूँ, इसप्रकारके विकल्पको (चार्वाक् दृष्टिसे) मोह कहा गया है। वास्तवमें यह देह भूतसमवाय (पंचमहाभूत—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश)से उत्पन्न होकर स्फुरायमान (प्रगट) होता है। जिसप्रकार गुड़, धातकी और जलके योगसे मधुशक्ति (मादक शक्ति) उत्पन्न हो जाती है, वह किसी अन्य (अव्यक्त-अमूर्त्त) कारणका कार्य नहीं है, उसीप्रकार कर्म भी पुद्गल-निर्मित है, और उसीसे उत्पन्न हुआ है, वह स्वयं भी पुद्गल ही है, किसी अन्य वस्तुका धर्म (स्वभाव) नहीं है। जो कुछ प्रतिभासित होता है, वही जीव है (उसके अतिरिक्त जीव नामकी कोई स्वतंत्र-अमूर्त्त वस्तु नहीं है) और वह दर्पणमे मुखके प्रतिबिंबके समान (एक स्वतंत्र वस्तुके रूपमे) भासित होता है। जीवमें किसीप्रकारका अध्यवसायरूप परिणमन असंभव होनेसे परलोकका अभाव सिद्ध होता है, और परलोकका अभाव होनेसे स्वर्ग व मोक्ष नहीं रहते। अतः संसारसौख्यको छोड़कर अपना कोई अर्थ (हित, लाभ) नहीं हो सकता। - यह सुनकर थोड़ा

---

१८ ङ °सेसे। १९ ग °इं। २० क ड एगण, घ काइ न। २१ क जीउ°। २२ कड °र। २३ घ इउ।
[३] १. क ड °तिय, ग °णिय। २. क ड इहु। ३. क ड °उं। ४. क व ड परि°। ५. प्रतियोंमें °उ। ६ क घ ड °इ। ७. क पहु°। ८ घ अन्नहो। ९. क ङ भणउं, घ °उ। १० क व ड भनि, ग हुंति। ११ क ड वि अत्थु, घ णिअत्थु। १२. क ड मुइवि। १३. न घ °वारु। १४. ग घ ङ रनंत°।

[15]धम्मद्दिसिहरधरणीरुहेण वोल्लिज्जइ जिणवइ तणुरुहेण ।
घत्ता—इय सव्वु वि सुउ पमेयविसमु मिच्छापवंचवंचियसुसमु ।
[16]तत्तत्थु साहुजण-उवहसिउ पइँ मुयवि माम को साहसिउ[17] ॥३॥

[४]

सवियप्पहो नाणहो साहारणु भूयइँ[1] अंतरंगु जइ कारणु ।
तो न काइँ समपरिणइ[2] मुत्तहो पडरंगेण रंगु जिम[3] सुत्तहो ।
अह सहयारिनिमित्तु निरूविउ[4] अण्णु जि अंतरंगु पइँ सूइउ ।
कज्जहो कारणु नवर सलक्खणु मिउपिंडो[5] व्व-घडहो अविलक्खणु[6] ।
सच्चउ अंतरंगु आयण्णहि[7] नाणहो कारणु नाणु जि मण्णहि[8] ।

हंसते हुए, जो इंद्रियोंके व्यापार(प्रवृत्तियाँ, प्रवृत्तिमार्ग)को त्याग रहा था, और जो धर्मरूपी पर्वतके शिखरका (उन्नत) वृक्ष था, ऐसे जिनमतीके पुत्रने कहना प्रारंभ किया—

यह समस्त श्रुत (सिद्धात व तर्क) प्रमेयविषम है, अर्थात् बहुत कठिन प्रमेयोंको लिये हुए है, मिथ्याप्रपचसे रहित व· ठीकप्रकारसे सतुलन-युक्त है; तथा यह सारा तत्त्वार्थ साधु-अर्थात् शोभन है, और साधारणजन- अर्थात् अविचक्षण लोगोके द्वारा (कठिन होनेसे) उसका· उपहास किया जाता है, परंतु साधुजनोके लिए उभयशिव-अर्थात् दोनो लोकोमे कल्याणकारी है·। हे-मामा! ऐसी बात आपको छोडकर और तो कौन- कह सकता है; (यह इसका स्तुतिपरक अर्थ· है। श्लेषमे निंदापरक अर्थ इसप्रकार है—) अथवा आपका यह सारा सिद्धात प्रमेयविरुद्ध है, मिथ्यात्वके प्रपंच द्वारा साधारणलोगोको. धोखा देनेवाला है, एव सज्जनोके द्वारा उपहास करने योग्य है; तत्रभवान्(तत्तत्थ-तत्रत्यः) आपको छोडकर हे मामा! ऐसा (कहनेवाला) और कौन साहसी है ॥३॥

[४]

(पचेद्रियों एव मनसे उत्पन्न) सविकल्पक ज्ञानका सामान्य (उपादान) कारण यदि पंच-भूत ही है, तो फिर सभी जीवोके मूर्त्तकारणसे उत्पन्न मूर्त्तज्ञानकी परिणति (प्रवृत्ति) एक जैसी क्यो नही होती, जिसप्रकार किसी पटके प्रत्येक सूत्रका रंग संपूर्ण पटके रगके अनुसार ही होता है। इन(भूतो)को आपने ज्ञानका सहकारी-निमित्त निरूपित किया है, और इन्हीको अतरग (उपादान) कारण भी सूचित किया है। (किसी भी) कार्यका कारण केवल स्वजातीय लक्षण-वाला होता है, जिसप्रकार घटरूप कार्यका कारण उससे (द्रव्यत) अविलक्षण मृत्पिड-ही होता है। अतः (आपके सिद्धातके अनुसार) अचेतन पृथिव्यादि भूतोसे उत्पन्न अचेतन शरीरादिकके समान ज्ञान भी अचेतन ही होना चाहिये (परतु ऐसी वास्तविकता नही है, क्योकि ज्ञान एक चेतन तत्त्व है, और ज्ञप्ति–जानना यह चेतनकी ही क्रिया है)। इसलिए सच्चा अंतरंग कारण सुनिये! ज्ञान(रूप चेतन तत्त्व)का कारण ज्ञान(ा-त्मक चेतनशक्ति-आत्मा)को ही मानिये।

१५ क-धम्मद्दि° । १६ क ङ त तित्थु । १७ घ उ ।
[४] १ ग भूअइं । २. क ड °णय । ३ क ड जिह-। ४ क ट-°यउ, ग °इउ । ५ क ड मउ° ।
६ क ड सवि°, घ अवियक्खणु । ७ प्रतियोमे °ण्णहि । ८ क-ड °हिं, व मण्णहिं ।

बद्धउ जीउ मोहु पइँ[9] सूइउ[10]   दप्पणे वयणाभासु निरूविउ ।
अवियारिउ सिद्धंतु तुहारउ   विहडइ पेक्खु नएण असारउ ।
दप्पणे वयणु[11] ताम न[11] पईसइ   वयणु मुएवि वयणु कहि दीसइ[12] ।
दप्पणतेयमिलिउ नच्छेरउ[13]   [14]नायणु तेउ होइ विवरेरउ ।
चक्खु निरुद्धु[15] पुरउ न पलोयइ[16]   वयणसरूउ वलेवि अवलोयइ[17] ।
नाणु वि कम्मसत्तिसंवलियउ   जायइ मिच्छादंसणे मिलियउ[18] ।
मोहवसेण वत्थु अवगण्णइँ[19]   दप्पणे मुहु[20] तुम्हारिसु मण्णइँ ।
वट्टइ सज्झु[21] भंति तुट्टइ जिह[22]   सुद्धसरूउ[23] वियाणहि[24] करु[25] तिह[26] ।
घत्ता—सुहभावे असुहु न परिचयइ[26] सुद्धे[27] नएण[28] बिण्णि वि खयइँ[29] ।
मणुयत्तु लहेवि जो सो भमइ तिल्लियवलहु जिम[30] भवे भमइ[31] ॥४॥

'जीव बंधा है', ऐसे विचारको (साख्यदर्शनके अनुसार) आपने मोह कहा है, और दर्पणमे वदनाभासके समान (मिथ्या) निरूपित किया है। आपका यह सिद्धांत अविचारित व असार है, और देखिये ! यह नयो(युक्तियो)से खंडित हो जाता है। (मूर्तस्वरूप)दर्पणमें (मूर्तिमान्) मुख तो प्रवेश करता नही, और (स्वशरीरस्थ) मुखको छोडकर मुख दिखाई ही कैसे दे सकता है ? (तब फिर दर्पणमे मुख कैसे दिखाई देता है ? इसका समाधान यह है कि) दर्पणके तेजसे मिलकर नेत्रोका तेज विपरीत हो जाता है (अर्थात् मूलत. दर्पणाभिमुख होते हुए भी लौटकर स्वशरीराभिमुख हो जाता है) इसमें कोई आश्चर्य नही है, क्योकि दर्पणके तेजसे प्रतिहत होकर चक्षुओके (तेजकी गति) निरुद्ध हो जानेसे वह दर्पणमे स्थित मुखके शुद्ध स्वरूपको नही देखता, बल्कि लौटकर (अपने शरीरमे स्थित) वदनके स्वरूपको ही देखता है (विशेषचर्चाके लिए देखिये परिशिष्ट)। उसीप्रकार ज्ञान भी कर्मशक्तिसे संवलित (मिश्रित) होकर मिथ्यादर्शनसे मिल जाता है, और इसप्रकार मोहके वशसे अथवा अविवेकके कारण जो वस्तुस्वरूप (अर्थात् यह कि शुद्धदर्पणका स्वरूप तो मुखरहित ही है, और मुख वास्तवमे दर्पणमे नही, अपने शरीरमे ही है) की अवहेलना करते है, ऐसे तुम सरीखे लोग ही दर्पणमे मुखका होना मान लेते है। जो साध्य हो, जिससे भ्राति नष्ट हो जाय, और जिस तरह तुम अपने शुद्ध स्वरूपको जान सको, वैसा करो।

मनुष्यत्व प्राप्त करके जो व्यक्ति शुभभावके द्वारा अशुभ(भावो)का त्याग नही करता, तथा शुद्धनय(शुद्ध आत्मस्वरूपके ध्यान व चिंतन)के द्वारा(शुभ व अशुभ)दोनोंका ही क्षय नही करता, वह अमति(कुमति या मतिहीन) तेलीके बैलके समान संसारचक्रमे भ्रमण करता रहता है। (विशेषके लिए देखिये परिशिष्ट) ॥४॥

९ ग पइ। १०. ग सूविउ, घ सूयउ। ११ क ङ ण ताम। १२ क °इ। १३ ख ग ण°। १४ घ नयणु। १५. क घ ङ वि°। १६. क ङ °वइ। १७ क ङ °यउ। १८. ङ मलि°। १९ घ °ण्णइं। २० क घ ङ मुहु। २१ क ख ग ङ मज्झु। २२ घ °हं। २३ घ सिद्ध°। २४ ख घ °णहि। २५ ग घ करु। २६. क °यइं। २७ प्रतियोमे 'सुद्धेण'। २८ क एण। २९. ख घ ङ °इ, ग °ए। ३०. क ङ जिह। ३१. क घ ङ °इ।

[५]

अह एयंतनएण अबद्धउ अच्छउ परए जीउ सुविसुद्धउ।
पुग्गलकम्मे[1] न वियारिज्जइ[2] तेण वि तणुहे[3] न काइँ[4] मि किज्जइ[2]।
अप्पु स मोहु भणिउ[5] पइँ[6] पोग्गलु करहि कम्मु भुंजहि[7] कम्महो फलु।
सुक्खु दुक्खु जं पयडु जि माणहि धम्माहम्मचिण्हु[8] तं जाणहि[9]।
धम्में सग्गु मोक्खु आवज्जहि[10] पावें नरयदुक्खु अवहुंजहि[11]।
धम्माहम्म[12] केम समभावहि[13] जाणमि कालकूडु जइ चावहि[14]।
दुक्खें धम्मरसायणु पिज्जइ किव्विसु[15] विसु[16] लीलए[17] कवलिज्जइ[18]।
करहि[19] न धम्मु दिसवि[20] परु डंभहिं तुम्हइँ[21] जेहा घरे घरे लब्भहि।
अप्पणु[22] करइ परहो तह सीसइ[23] पविरलु एक्कु[24] कहि मि सो दीसइ।
पावकम्मे को नाम न ईसरु[25] को उज्झाउ न तह[26] अग्गेसरु।
सो ज्जि समोहु एहु संसारिउ चउगइ भमइ कम्मफलखारिउ।

[५]

(एक ओर तो) एकात नय (साख्यमत)से (आपने कहा कि) जोव अबद्ध है और (सदैव) पूर्णतः विशुद्ध रहता है। पुद्गल कर्मसे वह विकृत नही होता, और उसके द्वारा इस शरीरके लिए कुछ क्रिया भी नही की जाती। (दूसरी ओर चार्वाक् मतका आश्रय लेकर) आपने बताया कि आत्मा पुद्गल(स्वरूप) ही है, यह सब (आपका) मोह है। (तो ठीक है) कर्म कीजिये और कर्मके फलको भोगिये। जो सुख व दु:ख (बिलकुल) प्रगट है, उसे (तो) मानिये, और उसे (क्रमश) धर्म व अधर्मका चिह्न समझिये। धर्मसे लोग स्वर्ग व मोक्ष प्राप्त करते हैं, और पापसे नरक दुःख भोगते हैं। धर्म और अधर्म समान कैसे हो सकते हैं? इसे तो मैं ऐसा मानता हूँ जैसा कालकूट विषको दातोसे चबाना। (लोगोके द्वारा) धर्मरूपी रसायन तो बड़े दुःखसे पीया जाता है और पापरूपी विषको लीला(क्रीड़ा)पूर्वक निगल लिया जाता है। स्वयं धर्म नही करनेवाले, और पापोपदेश देकर दूसरोको वंचना करनेवाले आप सरीखे लोग घर-घर मिलते हैं। परंतु जो स्वय करे, और दूसरेको भी वैसी ही शिक्षा दे, ऐसा कोई विरला ही कहीं-कहीं दिखाई देता है, पापकर्म करनेमे कौन ईश्वर(समर्थ), उपाध्याय (उपदेष्टा) और अग्रसर(नेता) नही बन जाता। जो आत्मा मोहयुक्त है, उसीको ससारी कहा जाता है, और वह अपने कर्मफलसे [illegible] (पीड़ित) होता हुआ चारो गतियोमे भ्रमण करता है।

[५] १ ग घ ट वम्मेण। २ क °ज्जउ। ३ क ट °हि घ °हिं। [illegible] क ग [illegible]। ५ [illegible]। ६ ख ग मइं। ७ क ग °हिं। ८. घ °चिन्हु। ९. क घ ट °हिं। १० घ °ज्जहि। ११ [illegible] घ अणुहुजहिं। १२ ग °हम्मु। १३ घ ट °वहि। १४ क चावहि, ग °हि, ट चावहि। १५ [illegible] किविसु। १६ ग विस, घ मे 'विसु' नही। १७. क घ ट °ए। १८. क °ज्जइ। १९. क ग [illegible]। २०. [illegible] दिवसि। २१ ग घ °हिं। २२ क अप्पुण, घ ट अप्पुणु। २३. [illegible]। २४ [illegible] मि। २५ [illegible]। २६. क घ ड तहो।

घत्ता—अहमिय मइ[27] जा ता कम्मरइ[28] वोल्लिज्जइ जीवहो वंधगइ[29] ।
इय रूवाभावि[30] विसुद्धु ठिउ सो मोक्खु[31] निरंजणु[32] संतु सिउ ॥५॥

[६]

पयडमि निययाइँ[1] निरंतराइँ आयण्णि[2] माम जम्मंतराइँ[3] ।
भवएउ नाम हउँ वडुउ आसि तउ चरिवि जाउ सुरु[4] सोक्खरासि ।
सग्गाउ चयवि[5] हुउ कुमरु[6] सारु चक्कवइहि[7] नंदणु सिवकुमारु ।
तवचरणविसेसे हयतमालि नामेण देउ हुउ विज्जुमालि ।
तव[8] वहिणिहे सुउ[9] पुणु गरुयमाणु[10] संजाउ जंवूसामीह जाणु[11] ।
भवे भवे तवचरणावज्जियाइँ मणुयामरसोक्खइँ भुंजियाइँ[12] ।
चिल्लिसावणे माणुससोक्खे मुद्धु किहँ[13] अच्छमि एमहि[14] पंके छुद्धु ।
तो भणइ[15] विज्जुचरु कम्मकीउ मण्णमि[16] संसारिउ अत्थि जीउ ।
घत्ता—[17]चिरजम्मकम्मपरिणइए[18] तुहुँ संपत्तु कह व जइ[19] सग्गसुहु[20] ।
भवे भवे हियइच्छियलाहु[21] कउ आयण्णि कहाणउ[22] कहमि तउ[23] ॥६॥

'यह मैं' (या मेरा), इसप्रकारकी मति जबतक रहती है तभीतक जीवको कर्मोमे रति (आसक्ति) रहती है, और उसीको जीवकी बंधगति कहा जाता है—अर्थात् इस कर्मरतिके कारण ही जीवको कर्मबंध होता है, व चतुर्गतियोमे भ्रमण करना पड़ता है । इसप्रकारके रूपके अभाव अर्थात् ऐसे विकल्प (मैं, मेरा)के सर्वथा अभावसे शुभाशुभ कर्मोपार्जनसे रहित होनेसे जो जीव शुद्धावस्थामें स्थित हो जाता है, वह आत्मा ही स्वयं मोक्ष, निरंजन, शात एवं शिव (कहलाता) है ॥५॥

[६]

हे मामा ! मै अपने निरतर कई जन्मातरोको बतलाता हूँ, उनको सुनिये ! (पहले)मै भवदेव नामका बटुक था । तपश्चरण करके सुखराशि संपन्न देव हुआ । स्वर्गसे च्युत होकर मै चक्रवर्तीका पुत्र शिवकुमार नामका श्रेष्ठ राजकुमार हुआ । विशेप तपश्चरण द्वारा (अज्ञान) अंधकार समूहका नाश करके मै विद्युन्माली नामका देव हुआ । फिर तुम्हारी बहनका विशेप सन्मान-भाजन पुत्र जंबूस्वामी हुआ । मैने तपश्चरणसे प्राप्त किये हुए मनुष्य व देव संबंधी सुखोको भोगा है । इस जुगुप्सोत्पादक मनुष्यगति सबंधी सुखमे मुग्ध(मोहित)होकर, (बताओ कि) मै कैसे इसीतरह (संसार)पंकमे पड़ा रहूँ ? तव विद्युच्चर बोला—मै तो ऐसा मानता हूँ कि ससारी जीव कर्मक्रीत अर्थात् कर्मोका दास है । पूर्वजन्मकी कर्मपरिणतिसे यदि किसीतरह तुझे स्वर्ग सुख प्राप्त हो गया, तो फिर भव-भवमे हृदयेच्छित लाभ कहाँसे होगा । तुम्हे एक कथानक कहता हूँ, वह सुनो ॥६॥

२७ क ग ड °मइ । २८ क °रडं । २९. क ड °रइ । ३०. ख घ °भाउ, ग °भाव । ३१ क च ड मोक्खु; ख ग मोक्ख । ३२ घ °जण ।

[६] १ क °याइ । २. घ °ण्णि । ३. ड °राइ । ४ ख ग सुर । ५ क ड चइवि, घ चविवि । ६. क घ ड °र । ७ क °वइहि । ८. घ तउ । ९ क ड वहिणि सुओ, घ °णिहिं सु° । १० क घ ड °माण । ११. क घ ड जाण । १२ क °याइ । १३. क ड किह । १४ ख ग एवहि, घ एवहि । १५ क घ ड °इ । १६ घ मण्णमि । १७ क घ ड चिरु जम्मि°, ख ग चिरु° । १८ क ड °णइय, घ °णइउ । १९ ख ग जइ । २० ख ग °सुहु । २१ क ख ग °इच्छिय° । २२ क घ ड °णउ । २३ घ तउ ।

[७]

केण वि-भम्महेण सकज्जचुक्कु खसपीडिउ अडविहि[1] उंटु[2] मुक्कु[3] ।
सच्छंदचरणे हुउ बलविसट्ठु[4] वहु दिणहिँ[5] कहि मि[6] महु तेण खद्धु ।
तं[7] महुरु[8] सरंतु वहंतु वाह कि चरउ म चरउ करीरसाह ।
इय भुत्तु[9] सरंतउ सग्गसोक्खु को करइ मूढु इह[10] सग्ग-मोक्खु ।
पडिकहइ कहाणउ[11] तो कुमारु वणिउत्तु वहइ कु वि तिट्ठभारु[12]
एक्कल्लउ मणे वाणिज्जतिट्ठु आरण्णे[13] [14]सीयसरसलिलु दिट्ठु ।
चोरेहिँ मुसिउ[15] कंपिरसरीरु[16] तिसपीडिउ[17] सुत्तु सरंतु नीरु ।
सुइणंतरि तं सरु नियइ जाम जलु पियवि विउज्झइ तिसिउ ताम ।
जीहाइ[18] लिहइ उंसाजलाइँ तिस फिट्टइ आयहो[19] तेहिँ[20] काइँ ।
घत्ता—इय माम सग्गसुहु जो सरइ अहिलासछेउ तहो किम करइ ।
एउ माणुससोक्खु विणावणउ[21] अवियारिउ परकोड्डावणउ[22] ।।७।।

[८]

अह चवइ चोरु विडपुरिसगमणि घणि एक्कु थेरु तहो तरुणि रमणि ।

[७]

किसी घुमक्कड़ने अपने कार्यसे च्युत(भ्रष्ट) एव खस (खारिश) व्याधिसे पीडित ऊँटको अटवीमे छोड दिया । स्वच्छंद चरनेसे वह पर्याप्त बलशाली हो गया । बहुत दिनोपर उसने कही मधु खाया । उस मधुका स्मरण करता हुआ एव भूखकी बाधाको वहन करता हुआ वह ऊँट करीलकी शाखाओको कभी चरता था, कभी नही भी चरता था । यही बात भोगे हुए स्वर्गसुख स्मरण करनेकी है । (वरना) यहाँ स्वर्ग-मोक्ष किस मूढको मिलता है ? तब कुमार भी उसके उत्तरमे यह कथानक कहने लगा—कोई वणिक्पुत्र भारी (असीम) तृष्णाको धारण करता था । अकेले ही मणि-व्यापारकी तृष्णासे जाते हुए अरण्यमे उसने शीतल सरोवर-जलको देखा । (वहाँ) वह चोरो-द्वारा लूट लिया गया और (भयसे) अंग-अंग काँपता हुआ, एवं तृषासे पीड़ित हुआ, जलका स्मरण करता हुआ सो गया । स्वप्नमे जब उसने उस सरोवरको देखा तो (स्वप्नमे ही) जल पीकर (वास्तवमे) प्यासा ही जाग उठा, और जिह्वासे ओस बिंदुओंको ही चाटने लगा । भला उनसे उसकी तृष्णा कैसे मिटे ? इसप्रकार हे मामा ! जो स्वर्गसुखका स्मरण करता है, वह अपनी अभिलाषाका छेदन कैसे करे ? यह मानुषिक सुख बडा घिनौना, और विचारहीन (अर्थात् विवेक भावसे रहित) है, एवं दूसरोको (व्यर्थ) कौतुक उत्पन्न करनेवाला है ।।७।।

[८]

अब चोर कहने लगा—एक वृद्ध वणिक् था, और उसकी जार पुरुषोसे गमन करने-

[७] १ क ङ °विहि । २ क ख उट्टु । ३ ङ मुक्क । ४ क घ ङ °विमुट्ठु । ५ ख ग °हि । ६. क ङ कहि मि, ग कह मि । ७ ख ग तें । ८ क ङ °र । ९ ख ग घ भुत्त । १० क ङ सग्गु । ११ क घ ङ °णउ । १२ क तिट्ठ° । १३ घ °न्ने । १४ क ख ग ङ पीय° । १५ घ °उ । १६ क ट कण्णि°, घ कपिर° । १७ क तेम° । १८ घ ङ °इ । १९ ग °हि । २०. घ ङ तेहि । २१ प्रतियोंमे °वणउ । २२ घ ट °णउ ।

भम्मुट्ठि नाम चट्टें समाण   नीसरिय लेवि मणिगणनिहाण।
वच्चंतहो तहो थोए वि काले   नरु एक्कु मिलिउ देसंतराले।
वहुकवडभरिउ धुत्ताण धुत्तु-   भम्मुट्ठि चट्टु पहि तेण वुत्तु।
सुहलक्खणलक्खिउ[1] चारु देहु   पइँ[2] पेक्खिवि वड्ढिउ[3] मज्झु नेहु।
तुहुँ[4] भाइ भज्ज तउ-भाइजाय[5]   जम्मे वि न मेल्लमि तुम्ह पाय।
गच्छइ सकंतु इय धुत्तनडिउ   [6]पडिवण्णइ वड्ढियनेहजडिउ[6]।
[7]कइवयदिणेसु लोए सलज्जु[8]   उवलक्खिवि तं परयारकज्जु[8]।
कलु पढइ नियंविणि जेम सुणइ[9]   वम्महसंदीवणु गेउ झुणइ[10]।
चोरियउ चित्तु धुत्तेण ताहि[11]   वोल्लइ हउँ[12] जोग्ग[13] तुमम्मि नाहि[14]।
लइ[15] करहि मंतु एम वि मयच्छि[16]   इह गामतलारहो[17] पासि गच्छि।
भणु एम एत्थु[18] देउले[19] सकंतु   सोवेसमि हउँ[20] गुरुपंथसंतु।
जं सुप्पइ तुम्हहँ[21] कहवि पवरु   तो निसिहि[22] होइ कल्लाणु नवरु।
इय सुणेवि दिणेवि परूढराउ[23]   संकेउ तलारहो कहवि[24] आउ।

घत्ता—ता देउले सुहरंजियमणइँ रयणिहिँ सुत्तइँ[25] तिण्णि वि[26] जणइँ।
भम्मुट्ठि सयणे एक्कहि[27] सपिउ वीयम्मि धुत्तु जग्गंतु थिउ ॥८॥

वाली एक तरुणी रमणी थी। वह ब्रह्ममुष्टि नामके एक चटके साथ मणिसमूह आदि खजाने को लेकर निकल गई। चलते-चलते ब्रह्ममुष्टिको थोड़े काल पश्चात् कही देशोंके मार्गमें एक पुरुष मिला, जो बहुत कपटसे भरा हुआ और धूर्तोंका भी धूर्त था। रास्तेमें उसने ब्रह्ममुष्टि चटसे कहा—शुभ लक्षणोंसे युक्त सुंदर शरीरवाले तुमको देखकर मुझे बड़ा स्नेह बढ़ गया है। तू मेरा भाई है, और तेरी भार्या मेरी भ्रातृजाया (भौजाई) है। आजन्म तुम लोगोंके पैर (चरण-सेवा) नही छोड़ूँगा। इसप्रकार अत्यधिक स्नेहसे जड़ा हुआ वह ब्रह्ममुष्टि बदलेमे उसकी स्तुति करता हुआ उस धूर्तसे ठगा हुआ अपनी कांताके साथ चलता रहा। कतिपय दिनोमे लोकमे निंद्य उस परदार-कार्य (परस्त्री रमण) को देखकर वह मधुरतासे इसप्रकार गाने लगा जिससे वह सुंदरी सुन ले, और कामोद्दीपन करनेवाले गीत आलापने लगा। धूर्तने उसका चित्त चुरा लिया। वह बोली—मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ। धूर्तने कहा—हे मृगाक्षी लो! यह मंत्र (उपाय) करो! इस ग्रामके ग्रामरक्षकके पास जाओ, और ऐसा कहो—यहाँ इस देवालयमें लंबे पथसे श्रांत हुई मैं अपने कांतके साथ सोऊँगी। यदि किसीतरह तुममे-से प्रवर (अर्थात् पुरुष) सो गया, तो रातमें निश्चयसे कल्याण हो जायगा। यह सुनकर रागारूढ हुई वह (धूर्तके द्वारा दिये हुए) उस संकेतको दिनमे ही नगररक्षकसे कह आयी। तब देवकुलमे सुखसे प्रसन्न मनसे वे तीनो जन रात्रिमे सो गये। एक शयनपर प्रियाके साथ ब्रह्ममुष्टि (सो गया) और दूसरे पर धूर्त जागता हुआ पड़ रहा ॥८॥

---

[८] १. क ड °लक्खिय। २ ख ग पइ। ३ ख ग वड्ढिउ। ४. क ख ग तुहु। ५. ख ग भाउजाउ; घ भाउजाय। ६ ख ग° पडिवण्ण पवड्डिय°, घ पडिवन्न चडिउ° नेह। ७ क ख ग ड कय°। ८ ख ग °ज्ज। ९ क ख ग घ °इ। १० क घ ड °इ। ११ क ख ग घ ताहिं। १२. घ हउ। १३ क ड जोगु। १४ क णाहिं, ख ग घ नाहे। १५ ख ग लउ। १६ ख ग घ मअच्छि। १७ प्रतियोमें गामि°। १८ क इत्थ, घ ड इत्थु। १९ क ड देवलि। २०. क ड हउ। २१ क °ह। २२ क ड °हिं, ख ग °हे। २३. क ए रुढ°। २४. घ ड कहिवि। २५ ख ग °इ। २६ क घ ड मि। २७ ख ग °हे; घ °हिं।

[९]

तओ अद्धरत्ते दिसामुक्कसद्दा पसोवणि पवज्जंत डिंडिमनिनद्दा[1]।
जमाइट्ठदूयाणुरूवा पयंडा[2] [3]महाचुण्णपंडुरियधियं[4] लउडिदंडा।
समाणं तलारेण वग्गंतभिच्चा नियच्छेवि आवंत-संता दइच्चा।
पमेल्लेवि चट्टं पसुत्तं पि जाया असुत्तस्स धुत्तस्स सयणम्मि आया।
सुणेऊण भडहुक्कियं कयवमालो समालत्तु धुत्तेण तो कोट्टवालो।
दिणे चेव कहियं इमे दो वि अम्हे न याणेमि तइयं गवेसेह[5] तुम्हे।
तओ दिट्ठु भम्मुट्ठि लइओ वराओ निओ वंधिऊणं वडोदिण्णघाओ।
तियं लेवि धुत्तो वि तहव्वरत्तो पणट्ठो त्ति वेलाणई तीरे पत्तो।

घत्ता—तो वोल्लइ दुत्तर नियवि नइ सो धुत्तु कयडकियनेहमइ[6]।
वत्थाइवत्थु[7] ता वहमि सइँ[8] उत्तारमि पुणु वाहुडवि[9] पइँ ॥९॥

[१०]

इय निसुणेवि अप्पिउ ताए[1] सव्वु भूसणु[2] सकडिल्लु सुवण्णु[3] दव्वु।
तं लेवि तरवि[4] उत्तरिउ[5] धुत्तु परतीरु जि वोलवि[6] जंतु वुत्तु[7]।
मइँ सुयवि[8] विवत्थ[9] तडम्मि दास रे कित्थु चलिउ वंचिवि हयास।

[९]

तब अर्द्धरात्रिमें जबकि सब सो रहे थे, और दिशाएँ शब्दरहित हो गयी थी, उस समय डिंडिम निनाद करते हुए, यमसे आदिष्ट दूतोके समान प्रचंड, महाचूर्ण(मुर्दागंखचूर्ण)से पांडुरवर्ण बने हुए, एवं लकुटि दंडोको लिये हुए, खूँखार शब्द करते हुए, भयानक दैत्यो जैसे भृत्योको नगर-रक्षकके साथ आते हुए देखकर वह स्त्री सोते हुए चटको छोड़कर न सोते हुए धूर्त्तके शयन पर आ गई। भटोके हुंकारसे उत्पन्न कोलाहलको सुनकर धूर्त्तने कोटपालसे कहा—दिनमे ही कह दिया था कि ये दो तो हम (पति-पत्नी) हैं, तीसरेको नही जानते, तुम लोग खोज लो। तब (इन लोगोने) ब्रह्ममुष्टिको देखकर बेचारेको पकड़ लिया और बहुत मार-पीटकर बांधकर ले गये। धूर्त्त भी उसके बनमे आसक्त हुआ, स्त्रीको लेकर, भागकर समुद्रकी तटवर्ती एक नदीके तीरपर पहुँचा। तब वह धूर्त्त उस दुस्तर नदीको देखकर कपट-स्नेहमति करके बोला—तो अब एक बार वस्त्रादि वस्तुओंको लेकर जाता हूँ, पुनः चलकर (आकर) तुम्हे भी पार उतार दूँगा ॥९॥

[१०]

यह सुनकर उसने अपने आभूषण, कटिमेखला, सुवर्ण, द्रव्य आदि सब कुछ उसको अर्पित कर दिया। उस सबको लेकर धूर्त्त तैरकर पार उतर गया, और दूसरे तीरको अतिक्रमण करके जाने लगा, तो वह बोली—अरे दुराशय दास! मुझे तटपर विवस्त्र(नग्न) छोड-

[९] १ क ड °णिनद्दा। २ ख ग घ °रूवा°। ३. क °वुण्ण°। ४ ख ग धय°। ५ ख ग °वेय। ६. ख ग °कयनेहमइ। ७ क ड वत्थइयवत्थु। ८ क सई। ९. क घ ङ °डिवि।

[१०] १ घ ताई। २ क ड °ण। ३ क ड °ण्ण। ४ ग घ तरिवि। ५ क ड °रउ, ख ग °रिवि। ६ ख ग वोल्लवि। ७ क ड धुत्त। ८. क ड सुइ वि, घ मुएवि। ९ ख ग °त्थु।

पच्चुत्तरु हत्थु[10] वलंतएण　　[11]तहे दिज्जइ सिग्घु चलंतएण।
परिणिउ[12] वि मुक्कु भत्तारु सारु　　माराविउ पुणु अण्णत्थु[13] जारु।
किं भक्खणमण मज्झु वि मयच्छि　　लइ[14] जामि भडारिए[15] एत्थु अच्छि।
गइ तम्मि असइ थिय[16] तीरे जाम　　संगहियमंसदलु आउ ताम[17]।
जंबुउ[18] जलाउ थले नियवि मच्छु　　पलु मेल्लवि[19] धाइउ[20] गहणदच्छु।
जले बुड्डु[21] मीणु एत्तहे[22] दवत्ति　　निउ सेणे आमिसखंडु[23] झत्ति।
उहयासावंचिउ[24] हुउ विलक्खु　　अडयणए[25] हसिउ तहो देवि लक्खु।
वुच्चइ निव्वुद्धिय[26] रे सियाल　　साहीणु मुयवि कउ लाहु बाल।
तो[27] तेण भणिउँ[28] हउँ[29] परकुबुद्धि　　कहिँ [30]लब्भइ एही परसुबुद्धि[30]।
एक्कत्थ मुक्कु पइ पावकम्मे　　जारु वि माराविउ[31] पुणु अहम्मे[32]।
कल्लाणकारि तउ बुद्धि लग्ग　　निल्लज्जे लज्ज[33] वोल्लंति[34] नग्ग[35]।

घत्ता—इय असइ कहाणउ[36] अवगमहि[37] सुरसोक्खकज्जे मा मणु दमहि[38]।
अणुहुंजि मणुयफलु दुलहु[39] तुहुँ सायत्तु चयंतहँ कवणु सुहु ॥१०॥

कर, व ठगकर कहाँ चला। उसने शीघ्र चलते हुए, एवं हाथ हिलाते हुए, प्रत्युत्तर दिया—(एक जगह तो) परिणय किये हुए भर्त्तारको छोड़ा, अन्यत्र अपने जारको मरवा डाला, हे मृगाक्षी! क्या (अब) मुझे भी खानेका मन है? ले, भट्टारिके! मै जा रहा हूँ, तू यहीं रह! उसके चले जानेपर जब वह असती तीरपर खड़ी थी, तभी मांसका टुकड़ा लिये हुए एक शृगाल वहाँ आया। जलसे स्थलपर आये हुए एक मच्छको देखकर, मांसके टुकड़ेको छोड़कर, उस मच्छको पकड़नेकी दक्षतासे दौड़ा। मच्छ (तुरंत) जलमे डूब गया, और इधर वह मांसका टुकडा झटसे एक श्येन (बाज) द्वारा उठा लिया गया। दोनो आशाओसे वंचित होकर शृगाल बड़ा लज्जित और उदास हो गया। वह कुलटा उसे लक्ष्य करके हँसी और बोली—अरे निर्बुद्धि श्याल! रे मूर्ख! स्वाधीन (वस्तु) को छोड़कर क्या लाभ हुआ? तो उसने कहा—मै तो अवश्य परम दुर्बुद्धि हूँ; पर, अरे पापकर्म करनेवाली दुराचारिणी! ऐसी (तेरे जैसी) परम सुबुद्धि कहाँ मिले कि एक जगह तो तूने भर्त्तारको छोड़ा, और फिर (दूसरी जगह) जारको भी मरवा डाला। अरे निर्लज्ज कल्याणकारिणी! तेरी ऐसी सद्बुद्धि तुझे खूब लगी है (अर्थात् तेरी परम दुर्बुद्धिका अच्छा फल तुझे मिला है)। नग्न अवस्थामे (खड़े हुए) भी बोलते हुए कुछ तो लज्जा कर! इस असती कथानकको समझो। देव सुखोके लिए मनका दमन मत करो। दुर्लभ मनुष्य फल (शारीरिक विषय-भोग) को भोगो। स्वाधीन(सुख)को छोड़नेवालोंको कौन-सा सुख मिलता है? ॥१०॥

१०. क ड हत्य। ११ क घ ड तहिं। १२ क ब ड °णिउ। १३ क ड °त्थ, ख ग घ अन्न°। १४. ख ग लए। १५ क ड °रिय। १६ ख ग घ थिए। १७ ख ग ताउ। १८ ख ग °म। १९ क ब ड मेल्लिवि। २०. क ड धायउ, ब धाविउ। २१ क घ ड वुड्डु। २२. क ड °हिं, घ °हि। २३ क ड °खड। २४ क ड उहआसा°। २५. क ड अडइणए, ब अडयणइं। २६ क ड णिवु°; ख ग निव्रु°। २७ क ड ता। २८ ख ग °उ। २९ क ख ग ड हय। ३०. क ड ल° तेरी इह सु°, ब एही ल° परसु°। ३१. क ड भत्तारु मरा°। ३२ प्रतियोमें °म्मि। ३३. क ड लज्जि। ३४ ख ग °त। ३५ ख ग लग्ग। ३६. क घ ड °णउ। ३७. क घ °हिं। ३८. क घ ड °हिं। ३९. क °हु।

[११]

जंबूसामि कहाणउ[1] साहइ वाणिउ[2] को वि परोहणु वाहइ[3] ।
गउ परतीरे [4]पुहइधणतुल्लउ एक्कु जि रयणु किणिउ वहुमोल्लउ ।
चडिवि पोइ लंघइ सायरजलु आवंतउ चिंतइ मणे[5] मंगलु ।
जा वेलाउलु पावमि तहिँ[6] पुणु विक्कमि ऐउ माणिक्कु महागुणु ।
हरि-करि किणवि भंडु नाणाविहु[7] घरु जाएसमि निवसंपयनिहु ।
अह हत्थाउ गलिउ दरनिद्दहो पडिउ रयणु तं मज्झे समुद्दहो ।
धाहावइ तरियहुँ[8] दीहरगिरु हा हा जाणवत्तु[9] किज्जउ थिरु ।
निवडिउ [10]एत्थु रयणु[10] अवलोयहो तं [11]आणेवि पुणु वि महु[11] ढोयहो ।
सायरे नट्ठु वहंतहो पोयहो कहिँ लब्भइ माणिक्कु पलोयहो ।
घत्ता—इय मणुयजम्मु माणिक्कसमु रइसुहनिद्दावसजायभमु[12] ।
संसारसमुद्दि[13] हरावियउ जोयंतु केम पुणु लहमि हउँ ॥११॥

[१२]

विज्जुच्चरु [1]भणइ दिढप्पहारि[1] विज्झम्मि भिल्लु कोयंडधारि[2] ।
सरघाएं मारिउ हत्थि तेण एत्तहे[3] सो दट्ठु भुयंगमेण ।

[११]

(अथानन्तर) जंबूस्वामी कथानक कहने लगे—कोई बनिया जहाज लेकर दूसरे तीरपर गया। वहाँ उसने पृथ्वीके (समस्त)धनके तुल्य एकमात्र अति बहुमूल्य रत्न खरीदा। पोतमें चढ़कर जब वह सागरको लांघ रहा था तो अपने मनमें इसप्रकार इष्टार्थ सिद्धिकी बातें सोचने लगा—जैसे ही मैं वेलाकूल(समुद्रतट)पर पहुँचूँगा, वहीं इस महागुणवान् माणिक्यको बेच दूँगा, और फिर हाथी, घोड़े व नानाप्रकारके भांड खरीदकर राजाके समान सपदासहित घरको जाऊँगा! थोडी नीद आनेपर वह रत्न उसके हाथसे गिरकर समुद्रके मध्यमे जा पडा। वणिक् दीर्घ स्वरसे तैरनेवालोको चिल्लाया—अरे! अरे! जहाजको रोकिये! यही रत्न गिर गया, उसे देखिये, और उसे लाकर मुझे उपस्थित कीजिये। देखिये! पोतके चलते हुए, सागरमे नष्ट हुआ माणिक्य (भला) कहाँ मिले? यह मनुष्यजन्म माणिक्यके समान है। रतिसुखरूपी निद्राके वशसे भ्रममे पडकर, ससार समुद्रमे हराकर, खोजनेपर भी मै (इस मनुष्यजन्मरूपी माणिक्यको) फिर कैसे पाऊँगा? ॥११॥

[१२]

(तब) विद्युच्चर कहने लगा—विंध्यपर्वतमे दृढप्रहारी नामका एक धनुर्धर भील रहता था। उसने बाणके आघातसे एक हाथीको मार डाला। इधर वह स्वयं भुजंगमसे डँस लिया

[११] १ क घ ड °णउ। २ क घ ड °उ। ३ क °ड। ४. ख ग मुहइ°। ५ क घ ट मणि। ६. घ तहो। ७. क °विहु। ८ क ड तर°। ९ क ड °वुत्तु। १० क ख ग ट र° ए°। ११. क ट अण्णेसंवि पुणु महु। १२ क ड °भमुउ। १३ क ड संमारि°।

[१२] १. क ड °इं दिढ°, ख ग घ पभणइ दिढपहारि। २. क घ ट कोवड°। ३ क ट एत्तहि, घ °हि।

धणुघाएं[4] मारिउ विसहरो वि भिल्लु[5] वि विसमुत्तु[6] विवण्णु सो वि।
करि-भिल्ल-सप्पुँ-धणु धरणिपडिय विहरंतसिवालहो[8] चित्ति चडिय।
छम्मासु हत्थि नरु एक्कु मासु अहि होसइ पुणु दिवसेक्कु[9] गासु।
तावच्छउ फेडमि दुट्ठभुक्ख[10] इय[11] खामि दो वि धणुनद्ध[12]-सुक्ख[13]।
करडंतहो तहो दिढनद्धु[14] तुडिउ धणुकोडिए[15] तालु कवालु फुडिउ।
मुउ जंबुउ जेम[16] मुणंतु अहिउ[16] नासेसहि[17] विह[18] परमत्थु कहिउ।
घत्ता—तो भणइ[19] कुमारु माम सुणहि[20] अक्खाणउ[21] अज्जु वि नउ मुणहि[22]।
कव्वाडिउ[23] को वि कहि मि[23] वसइ[24] इंधणु आहरिवि अन्नु[25] गसइ[24] ॥१२॥

[१३]

वणे एक्कदिवसे सज्जियकुठारु[1] गउ सीसे चडाविउ[2] कट्ठभारु।
उण्हालइ[3] खररविकिरणतत्तु भरु मेल्लिवि तरुतले निद्दपत्तु।
सुइणंतरे[4] पेच्छइ रायलील वरकामणीहिँ सहुँ[5] कामकील।
अप्पाणु कलइ महिवइसमाणु सिंहासणे[6] चमरहिँ विज्जमाणु[7]।
करि-तुरय-जोहसामग्गिसारु रायउलु[8] रुद्धपडिहारदारु।

गया। धनुषके प्रहारसे उसने विषधरको भी मार डाला, और वह भील भी विषभुक्त (विष-व्याप्त) होकर मर गया। पृथ्वीपर पडे हुए हाथी, भील, सर्प और धनुष एक घूमते हुए शृगालके चित्तमे चढ गये। हाथी छह मास, मनुष्य एक मास, और यह सर्प एक दिनका ग्रास होगा। तो ठीक, ये सब तवतक रहे, आज तो मै इस दुष्ट भूखको धनुषके दोनो ओर बँधे हुए सूखे वंधन(तांतकी गाँठ)को खाकर मिटा लेता हूँ। उसके चबानेसे वह दृढ़ गाँठ टूट गया, और धनुषके शिरेसे उसका तालु व कपाल फूट गया। जिसप्रकार अधिकसे और अधिक लाभ-को चाहनेवाला जबूक मर गया, तू भी उसीतरह नष्ट होगा, इसप्रकार मैने यह परमार्थ कह दिया। तब कुमार बोला—हे मामा! एक आख्यान सुनो, जिसे तुम अवतक भी नही जानते। कही कोई कबाड़ी रहता था, और ईंधन लाकर (उसे वेचकर) अन्न खाता था ॥१२॥

[१३]

एक दिन वह अपने कुल्हाड़ेसे सज्जित होकर वनमे गया, और शिरपर काष्ठका भार चढ़ा लिया। ग्रीष्ममे प्रखर रविकिरणोसे संतप्त होकर भारको छोड़कर(शिरसे उतारकर), वृक्षके नीचे निद्राको प्राप्त हुआ। स्वप्नमे उसने राजलीला देखी, और सुंदर कामिनियोके साथ काम-क्रीड़ा। अपने आपको राजाके समान समझा, जो सिंहासनपर विराजमान था, जिसके ऊपर चमरोसे वीजना किया जा रहा था; जिसका राजकुल करि-तुरग एवं योद्धाओ इत्यादिकी समस्त सामग्रीसे सार-युक्त अर्थात् समृद्ध था, और जिसका द्वार प्रतीहारसे अवरुद्ध (सरक्षित)

४. क ड °घार्याहि। ५. क ड भिल्ल। ६ क ड विसु°। ७ क घ ड सप्प। ८ क घ ड सियालहु। ९. क ड °सेक। १० क ड °भुक्खु। ११ ख ग पर। १२. क ख ग ड. °वद्ध। १३ क मुक्खु, ख ग सुक्कु। १४. क ड °णद्धु। १५ क ड °य। १६ ख ग सुहेण छुहिउ। १७ क °सहि। १८ घ तिह। १९. क घ ड °इं। २०. ख ग मु°, घ मुणहि। २१ क घ ड °णउं। २२ क ड °हिं, घ सुणहि। २३ क ड कहिमि को वि। २४ क °इ। २५ प्रतियोमे 'अण्णु'।

[१३] १ घ °कुढारु। २ घ °विवि। ३ ख ग घ उन्हा°। ४ क ड मुय°। ५. क सहु। ६ क ड सिंघा°। ७ ख ग विज्जु°। ८ ख ग रुद्धु तं नियवि सारु, ग प्रतिमें दूसरा पाठ भी = चिह्न लगा कर लिखा गया है।

अह आगयाए[९] छुहसोसियाए[१०] उट्ठाविउ महिलए[९] रोसियाए।
अंतरिउ रज्जु पर दिट्ठ[११] पत्ति मसिकसणवण्ण णं कालरत्ति
सुकंग-पयडसिरसंधिजाल[१२] उद्धुसियरुक्खखरविसमबाल।
असहंतु विरसु तं तीए वुत्तु सा पिट्टिवि[१३] धाडिय[१४] पुणु वि सुत्तु
तो नियइ[१५] सुइणु अडइहे[१६] सबाहु मलमलिणवहंत[१७]-पसेयवाहु।
ईंधणभरपीडियउत्तमंगु ता उट्ठिउ[१८] दुक्खझुलुक्कियंगु।
घत्ता—जइ सुइणे रज्जु संपत्तु तहो पुणु पुणु वि तं पि संभवइ कहो।
इय माणुसजम्महो जइ ल्हसिउ तो अच्छमि नरयदुक्खगसिउ ॥ १३ ॥

[१४]

तक्करु कहइ[१] निसुणि बहुचेडउ[२] पाउसे कम्में[३] नयरे नडवेडउ[४]।
नच्चहु निसिहिं[५] गयउ निवपासइ[६] मुक्कउ रक्खणु निय-आवासए[८]।
वोडु नाम नडु ठिउ जरजुण्णउ[१०] तरुसंकडआरामासण्णउ[१०]।
ता पुराउ आहरणहिं लंछिय सासुयाए[११] क वि [बहु निब्भच्छिय[१२]।
आविवि[१३] रुक्खे ताइँ[१४] संथाविउ[१५] मरणोवाय[१६]-पासु गले लाविउ[१७]।

था। अथानतर क्षुधासे शोषित एव रुष्ट हुई उसकी स्त्रीने आकर उसे उठा दिया। राज्य (दृष्टिसे) ओझल हो गया, और स्याही जैसे काले वर्णवाली एवं काल-रात्रि जैसी पत्नी दिखाई दी। उसके अग सूख रहे थे, शिराएँ और सधिसमूह प्रकट हो रहे थे, एव बाल रोमाचित (खड़े हुए), रूखे, कठोर तथा असमान थे। उसके कठोर वचनको सहन न करते हुए(कबाडीने) उसे पीटकर निकाल दिया, और फिरसे सो गया। तो उसने स्वप्नमे देखा कि अटवीमे उसके आँसू बह रहे हैं, मलसे मलिन अतिशय प्रस्वेदका स्रोत बह रहा है, और उसका उत्तमाग (शिर) ईंधनके भारसे पीड़ित (दबा हुआ) है। तब दुःखसे झुलसते हुए शरीरसे वह उठ खडा हुआ। यदि स्वप्नमे उसको राज्य मिल गया तो वह भी पुन.-पुन. मिलना कैसे सम्भव है ? इसी-प्रकार यदि मै इस मनुष्यजन्मसे गिर गया, तो नरकदु खोमे ग्रसित होकर रहना होगा ॥१३॥

[१४]

तब तस्कर कहने लगा—सुनो! बहुत-से चेटोसे युक्त नटोका एक वेडा(दल) वर्षा ऋतुमें (आजीविकाके) कार्यसे नगरमे आया, और रातमे नाचनेके लिए राजाके पास गया। अपने आवासमें रक्षाके लिए उन्होने एक रक्षक छोड दिया। वोड नामका एक जरा जीर्ण (अतिवृद्ध)नट वृक्षोसे सकीर्ण आरामके पास बैठ गया। तो उसी समय आभरणोसे लाछित (युक्त) कोई बहू सासकी निर्भर्त्सना पाकर, नगरसे आकर उसी वृक्षके नीचे ठहरी, और मरनेके उपाय स्वरूप

९. क घ ङ °इ। १०. क घ °याउ। ११ ख ग दिट्ठि। १२. ख ग °सिरिमधि°। १३ क ङ पिट्टवि। १४. ख ग °उ। १५. क °इ। १६ क घ ङ °इहि। १७ घ °वहंतु। १८ क ख ग दुवखु°।

[१४] १ घ भणइ। २ क ङ °वेडउ। ३. क घ ङ कम्मि। ४. ख ग घ नर°। ५. ख ग घ ङ °हि। ६ क घ ङ °सइ। ७ ख ग नियइ। ८. क ङ °सइ। ९ ख ग नरु। १०. क घ ङ °ण्णाउ, ख ग °न्नउ। ११ क घ ङ °याइ। १२ क ङ णिब्भ°। १३ क घ ङ आइवि। १४ ख ग तावे, घ ताए। १५. घ सत्थां°। १६ क ङ °पाय। १७. घ ङ लायउ, ख ग लायय।

चिंतइ वोडु मुयहे[18] [19]महु जायउ कंचणलाहु वइट्ठहो आयउ।
मरहु न जाणइ[20] सइँ उवएसमि मुइयहि पुणु [21]आहरणइँ लेसमि[21]।
पुच्छिय[22] भणइ[23] भाय उद्देसहि[24] सुहमिच्चुए[25] मइँ[26] जमउरि[27] पेसहि[28]।
पासगाहु तो नडिण कडिज्जइ[29] आणवि मुरउ रुक्खतलि दिज्जइ[30]।
तहिँ सइँ चडवि[31] पडेण निबद्धउ साहहि पासु पुणु वि गले वद्धउ।
सुंदरि [32]मुरउ एम[32] ढालिज्जइ[33] गाढबंधपासेण मरिज्जइ[30]।
इय तहो दक्खालंतहो वेएं मद्दलु[34] ढलिउ दइवसंजोएं।
निवडिउ[35] पासगंठि गलि गाढिउ चडफडंतु जमदूयहिँ[36] काढिउ[37]।
तो तिय पेक्खवि[38] वोडु[39] मरंतउ नट्ठिय सभय करेवि अवरत्तउ[40]।
घत्ता—इय कज्जु असिद्धउ[41] अहिलसइ[30] परिणामे न जाणइ[20] तासु गइ[42]।
जो सो नडवोडहो अणुहरइ[30] नियवुद्धिए सोक्खचत्तु मरइ[30] ॥१४॥

[१५]

वोल्लइ जंबूकुमारु न जाणसि पुरि नामेण अत्थि वाणारसि[1]।
लोयवालु[2] तहि[3] रज्जधुरंधरु[4] सत्तु जिणेवइ गउ देसंतरु।
विग्गहे लग्ग पंच संवच्छर पच्छए तासु महिसि णं अच्छर।

पाशको गलेमे लगाया। वोड सोचने लगा—इसके मरनेसे मुझे (यही) वैठे-वैठे ही स्वर्णलाभ हो गया। यह मरना नही जानती, अतः मै स्वयं इसको शिक्षा देता हूँ, मरजाने पर आभरण ले लूँगा। पूछी जानेपर उसने कहा—भाई मुझे सुखमृत्युसे यमपुरी भेज दो। तो नटने पाशका फदा बनाया और वृक्षके नीचे मुरज लाकर रखा। फिर वहाँ उसके ऊपर स्वयं चढ़कर एक वस्त्रसे शाखामे वाँधकर फिर पाशको गलेमे बाँध लिया। और वोला—हे सुदरी! मुरजको इसतरह लुढका देना चाहिये, और दृढ पाशवंधसे मरना चाहिये। इसप्रकार वेगसे उसको दिखलाते हुए, दैवसंयोगसे मर्दल लुढक गया। सुदृढ पाशग्रंथी गलेमे पड़ गई और वह तड़-फड़ाता हुआ यमदूतोके द्वारा खीच लिया गया। स्त्री वोडको मरते देखकर अनुताप करके भयभीत होकर भाग गयी। इसप्रकार जो असिद्ध कार्यकी अभिलाषा करता है, और परिणाममे उसकी गति नही जानते हुए, उस वोड नामक नटका अनुसरण करता है, वह अपनी ही वुद्धिसे सुखरहित होकर (अर्थात् दु खपूर्वक) मरता है ॥१४॥

[१५]

तब जंवू कुमारने कहा—तुम नही जानते। वाराणसी नामकी एक नगरी है। वहाँका राज्यकी धुराको धारण करनेवाला लोकपाल नामका राजा शत्रुको जीतनेके लिए देशांतरको गया। युद्धमे पाँच वर्ष लग गये। पीछे उसकी अप्सरा जैसी विभ्रमा नामकी महादेवी जिसे

१८ क ड मुअहि, ख °हि। १९ ख ग मुहु। २० क व ङ °णड। २१ ख ग °णइ ले°, घ °रण लएसमि। २२. क ड पु। २३ क घ ड भणिउ। २४ क घ °सहि। २५. क घ ड °मिच्चुइं। २६. क मइ, घ मए। २७ घ °पुरि। २८ क ख ग घ °हि। २९ क ख ग ड कहि°। ३० क °ड। ३१ क ख ड चडिवि। ३२ क ड एम मु°। ३३ ख ग ढालि°। ३४ क ड मदलु। ३५ घ निवि°। ३६. क ङ °यइं। ३७ क °उं। ३८ क व ड पेक्खिवि। ३९ क ड वोड। ४० क ड °त्तउं। ४१ क ड °द्धउं। ४२ क व गइ।
[१५] १. क ड वारा°। २ क ड °वाल। ३ क ड तहि। ४. ख ग रज्जु°।

विब्भम नाम निलए जा मुक्की नरजोएं[5] त्रिणु मयणझुलुक्की[6] ।
चडेवि तवंगे अलज्जिर डोल्लिय एक्कए जरदासिए[7] सहुँ बोल्लिय ।
हले दीहुण्हसास[8] अवलोयहि[9] सुसिउ अहरु कंपंतउ जोयहि[10] ।
पेक्खहि[11] हियवउ कज्जविमुल्लउ [12]रयजलसित्तु[12] जंघजुवलुल्लउ[13] ।
आणि जुवाणु को वि गलि लावहि[14] संदीवउ वम्महु[15] उल्हावहि[16] ।
वेसिणि भणइ[17] चविउ किं दीणए[18] काइँ असज्झु[19] [20]मइँ मि[20] साहीणए[21] ।
घत्ता—इय रहसकज्जु दोहि मि तियहु[22] धवलहरउवरि बोल्लंतियहु[22] ।
रच्छाइ जंतु जणजाणियहे[23] दिट्ठोवहे[24] निवडिउ राणियहे[23] ।

[१६]

वियडयडवच्छु[1] सुकुमारभुओ चंगाहिहाणु सुण्णारसुओ[2] ।
सालत्तयनहमणिपयकमलु उप्पुंछियनिद्धजंघजुयलु[3] ।
घोल्लंतचूल-सोहणपडउ[4] [5]पच्छललंबावियकच्छडउ ।
विप्फुरियछुरियआयत्तकडि कण्णंतखित्त[6]-तालदलधडि[7] ।
नवकुसुमसंच[8]-गब्भिणु[9] पवरु खंधंते लुलावियकेसभरु ।

घर छोड दिया था, पुरुष संयोगके बिना कामवासनासे जल उठी, और प्रासादपर चढ़कर निर्लज्ज भावसे डोलने लगी, तथा एक बूढी दासीसे बोली––सखी ! मेरे दीर्घ व उष्ण स्वासो को देखो, और काँपते हुए सूखे अधरोको देखो । और भी कार्यको भूले हुए अर्थात् कृत्याकृत्य विवेकशून्य, मेरे इस (सूने) हृदयको देखो । मेरी दोनों जाँघे रज-जलसे सिंच गई हैं । किसी जवानको लाकर गले लगाओ, और संदीप्त मदनको बुझाओ । तब वह कुलटा दासी कहने लगी—इस प्रकार दीनतासे क्यो कहती हो ? मेरे स्वाधीन आपके आधीन) रहते हुए (आपके लिए) क्या असाध्य है ? प्रासादके ऊपर दोनो स्त्रियोके इस गुप्तकार्यकी चर्चा करते समय जन-मान्य(प्रख्यात) रानीके दृष्टिपथमे मार्गसे आता हुआ—॥१५॥

[१६]

—अतिविस्तीर्ण वक्षस्थल और सुकुमार भुजाओवाला चग नामका सुनार पुत्र पड़ा, जिसके चरण कमलोंकी नखमणियोमे आलक्तक(अलता) लगा हुआ था । उसकी जघाएँ स्निग्ध और मसृण थी, व केश लहरा रहे थे। वह एक सुंदर पट धारण किये हुए था, पीछे लम्बा लटकता हुआ कछोटा पहने था, और उसकी कमरमे एक चमकती हुई छुरिका लगी थी । अपने कानोमे वह तालपत्र निर्मित कुडल पहने था । नये पुष्पोके संचय(गुच्छे अथवा माला)से सजाया हुआ

५ ख ग °जोए । ६ ख ग °छुलुक्की । ७ क ड °दासिय । ८ क ड °सासु, घ °न्हसास । ९ घ °यहिं । १०. क °हिं, ख ग जोवहिं । ११ ख ग °हिं । १२. ख ग घ रइजलु भिन्न । १३ ख ग घ °जुयलु° । १४. ख ग °हे, घ लायहिं । १५ ख ग वम्हहु । १६. क °वहिं । १७. क ड °इ, घ भणिउ । १८ क घ ड °इ । १९. ग °ज्जु । २० क ड मइ मि, ख ग मइ वि । २१. क घ ड °णइ । २२ क ड °यहु, घ °यहो । २३. क ख ग ड °यहो । २४ क ड °पहि ।

[१६] १. क घ ड °वच्छ । २ घ सुनार° । ३. क ड °जमलु । ४ सोसण°, ख ग घ ड णेसण° । ५ ख ग पच्छड° । ६ ख ग घ कन्नत° । ७. ख ग वाल° । ८ ख ग °कुसम° । ९. क ड °ण ।

संचप्पियवड्डुलकुंचधरु उप्फोडियदाढिय[10]-वामकरु[11]।
सो नियवि कहिउ सण्णंतियए[12] पडिहाइ जुवाणु[13] एहु हियए।
आणिज्जइ कि पि म खेउ करु गय दूई जहिं सो[14] सुहयवरु।
संकेयवि[15] छुडु छुडु आणियउ[16] छुडु छुडु दिट्ठिए परियाणियउ[17]।
छुडु छुडु महएवि रायभरिय[18] छुडु छुडु नियसेज्जहि[19] वइसरिय[20]।
घत्ता—ता[21] परियणलोयसहायसहुं धयचिंधछत्तपच्छइयनहु[22]।
वरतुरयथट्टसंवाहियउ संपत्तु राउ उम्माहियउ ॥१६॥

[१७]

पसरियथाणंतरि[1] मग्गु रुद्धु देविए[2] पच्छाहरे चंगु छुद्धु।
अह आउ राउ महएविगेहु बहुवरिसहँ[3] रूढनवल्लनेहु।
थोवंतरि समए निरोहसमणु जाणवि[4] पच्छाहरे रायगमणु।
उत्तालियाए[5] भयजणियभंगु घल्लिउ पुरीसकूवम्मि चंगु।
निच्चं चिय माणुसपोसु[6] तासु पेसइ[7] जिह होइ न जीवनासु।
छम्मास जाम तहिं[8] वसइ चंगु दुग्गंधविट्ठु[9] हुउ पंडुरंगु।

उसका केशपाश कंधोंके नीचे तक लहरा रहा था। वह अच्छी तरहसे चाँपी हुई बडी-बड़ी मूँछे धारण किये हुए था, उसकी दाढ़ी खूब सुंदरतासे सँवारी हुई थी, और हाथ बहुत मनोहर थे। उसको देखकर इशारा करते हुए रानीने कहा—यह जवान हृदयको भाता है, इसको लाओ। जरा भी विलब मत करो। दूती वहाँ गई, जहाँ वह श्रेष्ठ सुभग था। तदनंतर उसको सकेत करके ले आई। फिर दृष्टिसे पहचान हुई (आँखोंसे आँखे मिली) और फिर झटपट रागभरी महादेवीने उसे अपनी शैयापर वैठाया। तभी श्रेष्ठ अश्वोके समूहपर सवार अपने परिजन लोगों व सहायकोके साथ, ध्वजा, छत्र और पताकाओसे आकाशको आच्छादित करता हुआ बड़े उमाह(उत्साह)से युक्त राजा आ गया ॥१६॥

[१७]

(उस समय) राजपरिवारके स्थानांतर तक फैल जानेपर अर्थात् राजमहलके विलकुल निकट आनेपर मार्ग अवरुद्ध हो गया और महादेवीने चंगको पीछेके घरमे डाल दिया। तब तक इधर बहुत वर्षोसे अभिनव-वर्द्धित स्नेहसे भरा हुआ राजा महादेवीके निवासको आया। थोड़ी देर बाद श्रम निवारणके लिए पीछेके घरमे राजाका आगमन जानकर उतावली और भयसे पराभूत रानीने चंगको पुरीषकूपमे डाल दिया, और नित्यप्रति उसके लिए मनुष्य(शरीर) के पोषण भरके लिए इतना भोजन देती रही, जिससे उसका जीवनाश अर्थात् मरण न हो। जब छह मास तक चग वहाँ रहा, (तो) उसका शरीर दुर्गंधसे आविष्ट और पांडुरवर्ण हो

१० क ह उप्फेडिय°, घ उप्फेरिय°। ११. क काम°। १२. ख ग °यइं, घ सन्नंतियइं। १३ क ह °ण। १४. क ह सा। १५ घ °एवि। १६. घ ड °यउं। १७. प्रतियोमे °यउं। १८. प्रतियोमे °भरिउ। १९. ख ग °ज्जहे, घ °ज्जए। २० क घ ह °सरिउ, ख ग वइसारियउ। २१ घ परिमिय°। २२. क ह धयछत्तचिंव°; ख ग °नहुं।

[१७] १ ख ग घ °तरु। २ ख ग °य। ३. क °सइं, ख ग °सह, ड °सड। ४ क घ ह जाणिवि ५. क ह °याइं। ६. ख ग °तोस। ७ क ह पो°। ८. क ह तहि। ९ क ह दुग्गंधु विद्धु।

अह [10]कम्मकरेहिँ विहच्छभूउ[10] सोहिज्जइ नीरे असुइकूउ।
[11]विट्ठंतरंधद्दारिण अगाहे निवडइ अमेहु गंगापवाहे।
चंगो वि विणिग्गउ वाहमिलिउ सुरसरिहे[12] तीरे लोएहिँ कलिउ।
पुच्छिउ तुहुँ होसि न होसि चंगु पंडुरिउ काइँ[13] दुग्गंधु अंगु।
अक्खइ हउँ रूवासत्तिएहिँ पायालसग्गि[14] पन्नयतिएहिँ[15]।
निउ दिवसेहिँ[16] घरु सुमरंतु मुणिवि घल्लिउ रोसेण विवण्णु[17] कुणिवि[18]।
घरु[19] जाएवि दव्वहिँ सुरहिएहिँ[20] जलसेयहिँ[21] तेल्लहिँ[21] सुरहिएहिँ।
वहुवासरेहिँ[22] संजाउ[23] चंगु [24]चामीयरवण्णउ पुणु नवंगु[24]।
कालम्मि कम्मि भूओ वि राउ गउ दिवसेहिँ देविहि विरहु जाउ।
पुणुरुत्तु[25] दिट्ठु वाहरिउ[26] चंगु [27]वोल्लइ वि[27] सहिए[28] दुहकंपिरंगु।
सुहयत्तणफलु अणुहविउ[29] जं जि [30]अज्ज वि[30] तणुगंधु न समइ[31] तं जि।
पुण्णेहिँ[32] छुट्टु जइ एक्कवार तो पुणु वि जाइ किं वार-वार।
घत्ता—तिज्जंच-नरयगइ अणुहवेवि मणुयत्तु लद्धु जइ भवि[33] भमेवि।
रइसुहलवकारणि मूढमणु को माम [34]पडइ पुणु नरइ[34] जणु ॥१७॥

गया। इसके बाद जब कर्मकरो(मेहतरो)के द्वारा उस वीभत्स हुए अशुचि कूपका जलसे शोधन किया जाने लगा तब विष्टाके भीतर अध(गुप्त)द्वारसे वह अमेध गगाके प्रवाहमे पड़ा। चंग भी उस (अशुचि)प्रवाहके साथ मिला हुआ निकल गया। सुरसरिके तीरपर लोगोने उसे पहचाना, और पूछा—हो न हो तू चंग है, तुम्हारा शरीर दुर्गंध युक्त और पाडुरवर्ण कैसे हो गया ? उसने कहा—मैं (मेरे) रूपमे आसक्त नागसुंदरियो-द्वारा पाताल लोकमे ले जाया गया। वहुत दिनोपर मुझे घरका स्मरण करते जानकर उन्होने रोषसे मुझे विवर्ण(कुरूप) करके छोड़ दिया। घर जाकर देवताओंके द्वारा लाये गये अर्थात् दिव्य द्रव्यो, सुरभित जल सेचन व सुरभित तेलोके—(प्रयोग-)द्वारा वह चंग वहुत दिनो वाद पुनः कंचन-वर्ण और अभिनव अंग अर्थात् नवीन तारुण्य एवं सौदर्यसे भरपूर अगोवाला हो गया। किसी समय पुनः राजा गया, और कुछ दिन वीतनेपर रानीको पुनः विरह उत्पन्न हुआ। पुनः वैसेके वैसे सुदर चंगको देखकर उसे वुलाया, तो दु.खसे कापते हुए गात्रसे चंग उसकी सखीसे यू बोला—मैने सुभगत्व(सुंदरता)का जो फल अनुभव किया (उससे) आज भी शरीरकी वह दुर्गंध पूर्णतः नही मिटी। पुण्योंसे यदि कोई एक वार (संकटसे) छूट गया, तो क्या वह वार-वार (संकटमे पड़ने) जाता है ? तिर्यंच और नरकगतिका अनुभव करके यदि भवभ्रमण करके मनुष्यत्व प्राप्त हुआ तो, हे मामा ! रचमात्र रतिसुखके लिए कौन मूढमति पुरुष पुनः नरकमे पडे ॥ १७ ॥

१० क ड °करहि वो°। ११ क विट्ठित°, ग वट्टत, घ विच्छिन्न°। १२ क व ड °हिं। १३ क काइ। १४ ख ग °सगि। १५. क ख ग ड पन्नय°। १६. क व ड °सहिं। १७ क °न्नु। १८ ग कुणवि। १९ क ट घरि। २० ड °एहि। २१. क °हि। २२. क तहु वास°। २३ ख ग °य। २४ ख ग °वण्णु पुणुण्णवंगु; व वन्नु पुणु°। २५ घ पुण°। २६ क ड वाहरउ। २७ क ड वोलाइ वि। २८. प्रतियोमें °य। २९ क ट °भविउ। ३० क ड अज्जु वि। ३१. घ °ड। ३२ ख ग °हि, घ पुन्नेहि। ३३. क ड भुवि। ३४. क ड णरइ पुणु पडइ।

[१८]

[1]तो नवर-नयमग्गपडिवोहदित्तेण　नीसारसंसारवइरायचित्तेण।
अणवरयपसरंतरोमंचसंचेण　आसन्नभव्वेण[2] वंचियपवंचेण।
कुरुविसयनायरपुररायउत्तेण　विज्जुच्चरनामेण[3] जुत्तीपउत्तेण।
पोमाइओ जंबुसामीमहाभव्वु　मइणाण-सुयणाण[4]-परिमुणिय-छ-दव्वु।
तुहुँ परमगुणखाणि तुहुँ धम्मतरुकंदु　अम्हाण कइरवगाणं[5] तुमं चंदु।
इय थुणिवि[6] पुणु कहिउ तं तक्करायारु　अप्पणउ[7] नीसेसु वासहरपइसारु[8]।
एत्थंतरे गयणमयरहरे[9] पवहंति　निसिनाव दिवसयरदोत्तडिहे[10] अरहंति[11]।
संघट्टविहडंतकट्ठागयाफुट्ट　पुणु किरणसंताणगुणबंधु[12] वहु तुट्ट[12]।
निव्वुड्ड[13] सियवडु व[13] ससिलंछणो गलिउ[14] सउणयणवणिवग्गु साकंदु कलयलिउ।
एत्तहिँ[15] तयाहारु रुइतारु तारोहु　दीसेइ मज्जंतु माणिक्कसंदोहु।
　　घत्ता—वंधुक्ककुसुमसंकासछवि उययाचले[16] छज्जइ उयउ[17] रवि।
　　　　विज्जुचरविमुक्कहो भवघरहो[18] उड्डिउ[19] भायणु व रायभरहो[20] ॥१८॥

[१८]

तो फिर शुद्ध नीतिमार्गसे प्रतिबोधको प्राप्त, निःसार संसारसे वैराग्य(विरक्त)-चित्त, अनवरत प्रसरणशील रोमांच-समूहसे युक्त, आसन्न भव्य और (संसारके माया-मोहके) प्रपंचसे रहित तथा कुरुदेशमें नागरपुर (हस्तिनागपुर) के विद्युच्चर नामके उस राजपुत्रने युक्तिप्रयोग-द्वारा (अर्थात् युक्तिपूर्वक) महाभव्य जंबूस्वामीकी, जिन्होने मतिज्ञान व श्रुतज्ञान-पूर्वक छह द्रव्योंको जान लिया था, इसप्रकार स्तुति की—तू परमगुणोंकी खान है, धर्मवृक्षका मूल है; और हम-जैसे व्यक्तियोरूपी कुमुदवनोके लिए तू ही चंद्रमा है। इसप्रकार स्तुति करके उसने अपना वह तस्कराचार (चोरवृत्ति) और वासगृहमें प्रवेश संबंधी निःशेष वृत्त कहा। इसके अनंतर गगनरूपी मकरगृहमें प्रवहमान रात्रिरूपी नाव सूर्यरूपी दोस्तटिका-के कारण अवस्थितिको प्राप्त न कर पाती हुई संघर्षमे विघटित होकर फूट गयी और उधर जिसका किरणसंततिरूपी रज्जुबंध टूट गया है, ऐसे (रात्रिरूपी नौकाके) डूबते हुए श्वेतपट (पाल)के समान चंद्रमा भी गलित हो गया (डूब गया)। (इसप्रकार मानो रात्रिरूपी नावके खंड-खंड होकर टूटनेसे) शकुनजन(पक्षी समूह)रूपी वणिक्वृंद क्रंदन करने लगा, और इधर उसका आधारभूत सुंदर व विशाल तारासमूहरूपी माणिक्यसमूह भी डूबता हुआ दिखाई देने लगा। बंधूक पुष्पके समान छविवाला सूर्य उदयाचलपर उदित होकर ऐसा शोभायमान हुआ, मानो संसाररूपी गृहसे मुक्त विद्युच्चरका राग(मोह, घट पक्षमें लालरंग)से भरा हुआ भाजन ही उडकर सूर्यके रूपमे आकाशमें जा लगा हो ॥१८॥

[१८] १. प्रतियोमे इस पक्तिके पूर्व चरितमें आये अठारह कथानकोके नाम इस प्रकार दिये गये है—हालिय-वायस-खेयर-कइ-सखिणि-भमर-विसहर-सियाल-उंट्टु-वणि-असड-रयण-जंबुय (व कोल्हय) कन्नाडिय-नडो-चगो—एतानि कथानकानि षोडश, राजपुरोहितो मधुलेहलवनं च इति कथानकद्वयमध्याहार्यं, क ङ में 'अह कूप सिव-माधवधूर्तेति कथानकमध्याहार्य,'। २. क ख ग ङ आसण्णं। ३ ख ग °च्चरे नाम। ४. ख ग घ सुइ°। ५. ख ग कयरव°। ६. ख ग भणेवि। ७. क घ ङ °णउ। ८. ख ग पयसार। ९. ख घ °हर। १०. क ङ °त्तडिहि, घ °त्तडिहिं। ११ घ अहरति। १२. क ङ °दिढतुट्ट। १३ ख ग सियचड्डु, ङ °सिडवडु व्। १४ क °उं। १५. घ °हि। १६. क ङ उयआचलि, घ °यलि। १७. क घ ङ उइउ। १८ क ग घ ङ °धरहो। १९. ख ग °य। २० ख ग °हरहो।

[१६]

तास घरपंगणे घुसिणचंदणघणे पडहपडु[1] लालियं ।
करड-करडंतयं टिविल[2]-टंटंतयं । तूरमप्फालियं ।
झल्लरीरामयं मद्दलुद्दामयं[3] तडियतडिकाहलं ।
डक्कडमडक्कियं रुंजगुंजंकियं संखकोलाहलं ।
सुणिवि रय[4]-रइसुहं जिणवईतणुरुहं तुरय-करिसंगओ ।
नेहसंवाहिओ रायराआहिओ सेणिओ आगओ[5] ।
तेण मणिजुत्तयं कडय-कडिसुत्तयं सेहरं सिरहियं ।
समउसिय वत्थेण[6] अप्पणो[7] हत्थेण[8] भूसणं परिहियं ।
गाढ-नरजाणए[9] ढुक्क जंपाणए पुत्तदुहकणविया ।
वहुउ मेल्लंतिणा सिद्धिवहुरत्तिणा मायपिउ पणविया ।
चडिवि संचल्लिओ वंधुजण[10] सल्लिओ । लग्गओ मग्गए ।
खुहिय जणनायरो[11] धाविओ[12] सायरो संठिओ अग्गए ।
धुयधयाडंबरं छत्तछन्नंवरं[13] पासजणनंदणी ।
वहलरहसंठिया[14] निवइयलऊरिया[15] वट्टए संदणी ।

[१९]

तब घने केशर और चंदनसे सुगंधित घर-आगनमें पटु पटह ललितस्वरसे बजाया गया । करडवाद्य करड-करड ध्वनि करने लगा, टिविल-वाद्य ट ट करने लगा, तूरका आस्फालन किया गया, उद्दाम मर्दल सहित झल्लरी रमण कराने लगे (अर्थात् मनोरंजन करने लगे), काहल-वाद्य विद्युत्के समान तड़-तड, एवं डक्का डमडक्क-डमडक्क करके बजने लगा । रुंज नामक वाद्यने गूँज उत्पन्न कर दी और शंखोने कोलाहल । जिनमतीके पुत्रके रतिसुख (अर्थात् स्त्री आदि विषयसुखको भोगनेकी आकाक्षा) को नष्ट हुआ जानकर, स्नेहसे संवाहित अर्थात् संचालित व प्रेरित होकर घोडे, हाथी समेत राजाधिराज श्रेणिक आया । उसने जंबूस्वामीको मणिमय कड़ा और कटिसूत्र एव शिरपर शेखर (मुकुट) पहनाये, और स्वयं अपने हाथसे उसे वस्त्र पहनाये और आभूषण धारण कराये । तब मनुष्यो-द्वारा ले जाये जानेवाले सुदृढ़ जपानकयान(पालकी)के उपस्थित किये जानेपर, वधुओको छोडकर सिद्धिवधूमें अनुरक्त हुए जंबूस्वामीने पुत्रके (वियोग)दु खसे क्रंदन करते हुए माता-पिताको प्रणाम किया, और पालकीपर चढ़कर चल पड़ा । (इसपर) वधुजनोके हृदय (दु खसे) विध गये, और वे मार्गसे लग गये, अर्थात् मार्गमे खडे हो गये । नागरजन क्षुब्ध हो गये, व सागरचंद्र (दुःखसे विह्वल होकर) दौड़ पड़ा, और मार्गमे आगे आकर खडा हो गया । ध्वजा पताकाएँ फहराने लगी, अबर छत्रोसे छा गया, और राजमार्ग दोनो ओर खड़े हुए लोगोको आनद देनेवाले

[१९] १. क ह पड्ढु° । २ क ह ति°, ख ग °ल्ल । ३. ख ग घ मद्दलुद्दामियं । ४ ख ग रम° । ५ क आयओ । ६. क ह °वत्थय । ७ ख ग °णे । ८ क ह हत्थिए । ९ ह °णए । १० क ख ग °जणु । ११ क ह °यरे, ख ग घ जणु° । १२ घ धाइउ । १३ क ख ग ह छत्तछण्ण° । १४. क ह °सट्टिया, घ °सड्ढिया । १५ क ह °वट्टिया, घ °वड्ढिया ।

एम नंदणवणं फुल्लफलदलवणं वंदिथुव्वंतओ[16] ।
रुक्खसंपण्णयं[17] मुणिगणाइण्णयं[17] आसमं पत्तओ ।
घत्ता—मणुयामरसिरसेवियरयइँ पणविवि सुहम्ममुणिगुरुपयइँ ।
विण्णविउ[18] कडक्खियसिद्धिवहु किज्जउ पव्वज्जपसाउ पहु ॥१९॥

[२०]

दिण्णाणुग्गह गुरुणा सारे किज्जइ दिक्खग्गहणु कुमारे ।
सीसहो[1] कुसुममाल[2] जं मेल्लिय वम्महवाणपंति तं[3] पेल्लिय ।
रयणफुरंतु[4] मउडु जं छोडिउ तं कंदप्पदप्पु णं मोडिउ ।
जं सिरे कारिउ वालुप्पाडणु तं[5] किउ[6] मयरचिधनिद्धाडणु[7] ।
हारुज्झिउ तिरेहु[8] रेहइ[8] गलु को आयरइ वित्तमुत्ताहलु[9] ।
मुक्कउ मणिचामीयरकंकणु विहरंते[10] नरजम्महो कं-कणु ।
उत्तारिवि[11] घल्लंति न मुद्दिउ तणु-मण[12]-वयणगुत्तित्तउ[13] मुद्दिउ ।
छोडिवि खित्त-सपरियर[14]-सत्थी मुच्चइ लोहिणि-बंधसमत्थी ।

बहुत-से रथोमे संस्थित राजसेनासे भरपूर हो गया। इस प्रकार बंदीजनों-द्वारा स्तुति किया जाता हुआ कुमार, नंदनवनमें फूलो, फलों एवं पत्रोसे सघन वृक्षोसे संपन्न तथा मुनिगणोसे आकीर्ण (भरे हुए) आश्रमको प्राप्त हुआ। मनुष्यों व देवोके शिर जिनकी (चरण) रजको लेते हैं, ऐसे मुनि सौधर्म नामक गुरुके चरणोको प्रणाम करके उसने विज्ञापना की—हे सिद्धिवधूको कटाक्ष (लक्ष्य) करनेवाले प्रभु (मेरे ऊपर) प्रव्रज्या(-दान)रूपी प्रसाद कीजिए ॥१९॥

[२०]

श्रेष्ठ गुरुका अनुग्रह पाकर जंबूकुमारने दीक्षा ग्रहण की। सिरसे जो कुसुममालाको त्यागा, तो मानो कंदर्पकी बाणपंक्तिको ही फेंक दिया। रत्नोसे चमकता हुआ मुकुट छोड़ा, तो मानो कंदर्पके दर्पको ही भग्न कर दिया। शिरपर-से बालोको उखाड़ा तो मानो मकरध्वजका निष्कासन कर दिया। हार त्याग देनेपर (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप त्रिरत्नके समान) तीन रेखाओसे-युक्त उसका गला स्वयमेव सुंदर लगने लगा, तो फिर वृत्तमुक्त अर्थात् आचरणसे रहित (=शुद्धाचरणके विपरीत), अतएव निष्फल, ऐसा हार धारण करनेरूप निरर्थक आचरण कौन करे? मणिसुवर्णमय-कंकणको छोड़ा तो मानो उसने नरजन्म (अर्थात् संसारमें मनुष्यरूपमे जन्म) के लिए जलकण छोड़ दिये, अर्थात् जलांजलि दे दो। मुद्रिकाओंको तो उसने अवश्य उतारकर डाल दिया, परतु वह तन, मन और वचन इस गुप्तित्रयसे मुद्रित हो गया। स्त्रियो सहित अपने क्षेत्र व परिकरको छोड़कर उसने (संसार या कर्म)बंधनमे समर्थ लोभरूपी लौह-शृखलाको त्याग दिया। उसने (बाह्य)परिधानवस्त्रको तो त्याग दिया,

१६ क घ ड थुव्व°। १७ ब °न्नय। १८ ख ग विण्णि°।

[२०] १ क ख ड °हु। २ ख ग कुसुम°। ३ क ड ण। ४ ख ग °फुरत। ५ ख ग नं। ६. ख ग किय। ७ ख ग °ह। ८ क °ड। ९ क चित्त°। १० क ड विरयत्तें। ११ क ड °रवि। १२ क ड मणु। १३ ग °गुत्त°। १४. ख ग °यरि।

जं परिहाणवत्थु[15] परिसेसिउ[16] वत्थुसरूवे चित्तु तं पेसिउ।
पाणि जि पत्तु पवित्तु विसुद्धउ भिक्खाभमणभोज्जु[17] अविरुद्धउ।
आसउ वासु निरासु पदिण्णउ[18] संथरु[19] धरणिपीढु[20] विथिण्णउ[21]।

घत्ता—इय बाहिरत्थपरिहारु[22] किउ तं अंतरसुद्धिहे[23] हेउ[24] थिउ[25]।
नीसंगवित्तिइंदियदवणु[26] निम्मूलहि[27] कम्म[28] भंति कवणु ॥२०॥

[२१]

एत्तहे[1] वि पडिच्छियवयभरेण पव्वज्ज[2] लइय विज्जुच्चरेण।
अण्णहि[3] दिणे सुयणाणंदणासु[4] संताण सहोयरसंदणासु[5]।
जिणसेणहो अप्पिवि ललियबाहु हुउ अरुहयासु[6] निग्गंथसाहु।
जिणवइयए सुप्पहअज्जियासु[7] तवचरणु लइउ[8] पासम्मि तासु[9]।
पउमसिरिपमुह बहुआउ[10] जाउ पव्वजिउ[11] अज्जिउ जाउ ताउ।
कइदिणेहिं[12] सुहम्महो गणहरासु उप्पण्णउ[13] केवलनाणु तासु।
केवलिसहसंठिउ[14] सुद्धगामि तउ चरइ महामुणिजंबुसामि।
अणसणु पहिलारउ कम्मडहणु नियमियदिणेसु आहारचयणु[15]।

पर वह वस्तुस्वरूप(के ज्ञानके रूप) मे उसके चित्तमे प्रविष्ट हो गया। हाथ ही उसके पवित्र एवं विशुद्ध पात्र बने, और भिक्षाभ्रमण ही उसका अविरुद्ध (निरतिचार) भोजन। निर्जन आश्रय (गृह, कुटीर) जो दूसरेका दिया हुआ हो, वह उसका आश्रय स्थान हुआ, और विस्तीर्ण पृथिवी-पृष्ठ ही उसका संस्तरण (बिछौना) बना। इसप्रकार किया हुआ बाह्यार्थोंका जो परिहार है, वह आभ्यंतर शुद्धिका हेतु होता है। निःसंगवृत्ति और इंद्रियोका दमन करनेवाला व्यक्ति कर्म-को निर्मूल करता है, इसमे क्या भ्रांति है! ॥२०॥

[२१]

इधर व्रतोंको स्वीकार करके विद्युच्चरने भी प्रव्रज्या ले ली। दूसरे दिन अपने वंशजोंको, अपने सहोदरके पुत्र जिनसेनको, जो कि स्वजनो (व सज्जनो) को आनंद देनेवाला था, अर्पित करके, सुंदर भुजाओवाला अरहदास भी निर्ग्रंथ साधु हो गया। जिनमतिने भी सुप्रभा आर्यिकाके पास तपश्चरण ले लिया। पद्मश्री प्रमुख जो बहुएँ थी, वे भी प्रव्रजित होकर आर्यिकाएँ हो गयी। कुछ दिनोमे सौधर्म गणधरको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। केवलीके साथ रहते हुए शुद्धाचारी जंबूस्वामी इसप्रकार तप करने लगे। सर्वप्रथम कर्मोंको दहन करनेवाला

१५. ख ग °वत्थ। १६ ख ग सवि°। १७ ख ग भिक्खाभवण°, क °भोजु, ड °भोज्ज। १८ क घ ड °ण्णउ। १९ घ सत्थरु। २० क ड °वीढु। २१ क ख ग ड विच्छि°, घ °ण्णउ। २२ ग °हार। २३ क ख ग ड °हि, घ °हि। २४ ख ग होउ, घ देउ। २५ क थिरु। २६ ख ग घ °दमणु। २७. क घ ट °लहिं। २८. क ड कम्मु।

[२१] १ क ड °हि, घ हिं। २ क ड पावज्ज। ३. क घ ट °हिं। ४ ख ग सयणा°, घ णयणा°। ५ ख ग सहोयरु णंद°। ६. ख ग °यास। ७. क ड °याहि। ८ क घ ट लयउ। ९ क ड ताहि। १० घ °याउ। ११ क ड पाव°। १२ क ड कइदिणहिं। १३ घ °न्नउ, ड °ण्णउ। १४. ख ग घ °सुहसंठिय। १५ ख ग °गहणु।

अणुद्दिट्ठयभिक्ख[16] फलाणुमेउ[17] संजमझाणागमसुद्धिहेउ[18]।
घत्ता—अवमोयरु एक्कगासु पढमु दिणि दिणि एक्कोत्तरकवलक्कमु।
वत्तीस जाम पुणरवि सरइ एक्केक्कउ जा एक्कु जि हवइ[19] ॥२१॥

[२२]

इय तवेण मुणिमग्गे[1] वलग्गइ[2] दंसणनाणसमाहिहि[3] जग्गइ।
तइयउ नवर वित्तिपरिसंखउ एक्कपमुहघरनियमियभिक्खउ।
वहुसंकप्पचित्तअवहारणु आसापासविणासण[4] कारणु।
आसानाम नरहो[5] दुक्खायरु परमनिरासवित्ति सुहसायरु[6]।
तउ चउत्थु[7] रसचाउ चरिज्जइ दिढपंचेंदियदप्पु हरिज्जइ।
पंचमु पुणु विवित्तसिज्जासणु [8]सुण्णागारुज्जाणनिवासणु।
[9]जंतुपीडविरहिउ [10]वयविद्धिहि कारणु झाणजुयलनयसिद्धिहि[10]।
छट्ठउ[11] कायकिलेसु महातउ जायइ[12] जेण परीसहभयजउ।
जो किर होइ जहिच्छहो[13] दूसहु मुणिणा सो सोढव्वु[14] परीसहु[15]।

अनशन (नामक तप) है, जिसमे नियमित दिनों(अष्टमी चतुर्दशी आदि)में आहार त्याग किया जाता है, अपने उद्देश्यसे न वनायी हुई दीक्षा ली जाती है, एवं जिसका फल अनुमान प्रत्यक्ष है कि वह संयम, ध्यान व ज्ञान-शुद्धिका हेतु होता है।

अवमौदर्यमें पहले दिन एक ग्रास, और फिर प्रतिदिन क्रमशः एक-एक अधिक करते हुए जब वत्तीस हो जावे, तो फिर एक-एक करके ग्रासोंको घटाया जाता है, जवतक कि पुनः एक ग्रास हो जावे ॥२१॥

[२२]

इसप्रकारके तपसे मुनि मार्गमें लगे हुए वे जंवूस्वामी दर्शन, ज्ञान और समाधिसे जागते थे। इसके अनंतर तीसरे वृत्ति-परिसंख्यान नामक तपमें एक(दो) आदि घरों(की संख्या)को निश्चित करके भिक्षा की जाती है। यह (तप) वहु-संकल्पी चित्तका निरोध करनेवाला और आशा-पाशके विनाशका कारण है। 'आशा' यह नाम ही मनुष्यके दुःखोंका आकर है, और निराश वृत्ति अर्थात् सर्वथा निष्काम भावना सुखका सागर है। चौथा रसत्याग(नामक)तप किया जाता है, जिससे प्रवल पंचेंद्रियोंके दर्पका अपहरण होता है। पांचवां विविक्त-शय्यासन (नामक) तप शून्यघर उद्यान आदिमें निवास करना है। जन्तु पीड़ासे रहित होनेसे यह तप व्रतोंकी वृद्धि एवं ध्यान-युगल(धर्म व शुक्ल)रूपी पर्वतकी सिद्धि (आरोहण) का कारण है। छठा काय-क्लेश नामक महातप है, जिससे परीषहोंके भयका विजय हो जाता है। स्वेच्छाचारीके लिए

---

१६ क °विक्खय दिट्ठ°, ख ग °वेक्खिय दिट्ठि°, व °दिट्ठिय°। १७. व °मोउ। १८. व °सिद्धिहेउ। १९ व हरइ।

[२२] १ ख °मग्ग, ग °लग्ग। २. क ख ग व °ग्गइं। ३. ख ग °हिंहि। ४. क ङ °विणासइ। ५. ख ग °हे। ६. ख ग सहयायरु। ७. ख ग चउथउ। ८ व मुन्ना°। ९. ख ग °पीडविरहियउ। १० प्रतियोंमें 'वयविद्धिहिं कारणु झाणजुयलु नयसिद्धिहिं'। ११. ख छट्टउ। १२ ख ग व °इ। १३. क ङ जइच्छहि, ख ग जइ°। १४ ख ग °व्व। १५ क °सहुं।

नियमविसेसें जो सइं किज्जइ[16] कायकिलेसु एम [17]सो गिज्जइ[17]।

घत्ता—इय छप्पयारु बाहिरउ तउ बहिरत्तु वि आयहो भणिउ[18] कउ[19]।

[20]बहिदव्वावेक्खहो तणउ[21] गुणु अण्णु वि जं परपच्चक्खु पुणु ॥२२॥

[२३]

अब्भंतरु पमायपरिहरणउ[1] पायच्छित्तु चरणु भवतरणउ[2]।

पुज्जरिहि[3] [4]जं आयरु[4] किज्जइ[5] नयपालणु तं विणउ भणिज्जइ।

तणुचेट्ठए[6] अहवा देविणु धणु विज्जावच्चु भणिउ[7] तमनासणु[8]।

नाणब्भासे[9] अलसु जं मुच्चइ निम्मलु तं सज्झाउ पवुच्चइ।

अप्पणत्तु संकप्पु[10] न मण्णइ तं वोसग्गु महातउ भण्णइ[11]।

परसंकप्पचित्तविणियत्तणु अप्पाणे[12] ज्जि अप्परूवियमणु।

[13]सम्मण्णाणबोहिसंसिट्ठउ तं परमत्थझाणु[14] निद्दिट्ठउ।

छव्विहु नाणविसुद्धिहि[15] दीसइ[16] अब्भंतरउ तेण तउ सीसइ[17]।

एम महातउ गणहरसण्णिहु[17] जंबूसामि चरइ बारहविहु[18]।

जो दुःसह होता है, मुनिके द्वारा वह परीषह सहन किया जाना चाहिए। नियम विशेषसे जो स्वयं किया जाता है (जैसे खड्गासनमें रहना, शीत, उष्ण व वर्षाको सहन करना आदि) उसीको कायक्लेश(तप) कहा जाता है। इस तरह यह छहप्रकारका बाह्य तप है। इसका बाह्यत्व किस कारणसे कहा गया? क्योंकि इसकी गुणवत्ता बाह्यद्रव्यों(के त्यागादि)की अपेक्षा से है, और दूसरे यह पर-प्रत्यक्ष (दूसरे लोगोंको दिखाई देनेवाला) भी है ॥२२॥

[२३]

प्रमादका अपहरण करनेवाला प्रायश्चित्त नामका आभ्यतर आचार(तप) संसारसे पार उतरनेवाला है। पूजार्हजनोंका जो आदर किया जाता है, उस नीतिपालनको 'विनय' कहा जाता है। शरीर-चेष्टासे (शरीरसे सेवा करके), अथवा धन देकर जो वैयावृत्य किया जाता है, वह (मोहरूपी)अंधकारका नाश करनेवाला कहा गया है। ज्ञानके अभ्यासमें जो आलस्यको छोड़ा जाता है, अर्थात् आलस्य छोडकर जो ज्ञानाभ्यास किया जाता है, उसे निर्मल स्वाध्याय कहा जाता है। जो (देहादिकमें) अपनत्वका संकल्प नहीं करता है, उसे व्युत्सर्ग (नामक) महातप कहते हैं। मनकी उस अवस्थाको जबकि वह परद्रव्य संबंधी संकल्पसे अपने-को लौटाकर आत्मामें ही आत्म-रूप होकर, सम्यक्ज्ञान व (आत्म)बोधिसे संश्लिष्ट हो जाता है, उसे परमार्थ ध्यान निर्दिष्ट किया गया है। यह छहप्रकारका तप ज्ञानकी विशुद्धिसे जाना जाता है, इसीसे इसे आभ्यंतर-तप कहा जाता है। इस प्रकार (सौधर्म)गणधरके समान (अथवा समीप रहते हुए) ही जंबूस्वामी बारहप्रकारका महातप करने लगे।

१६. क ख ग °इ। १७. ख ग सोहिज्जइ, घ साहिज्जइ। १८ क घ ङ °उ। १९. क घ °उं। २०. ख ग बहु°। २१. ख ग ङ °उ।

[२३] १. प्रतियो मे °णउ। २ ख ग घ °णउ। ३ ख ग घ °रिहि। ४ घ आयरु ज। ५ क °इ। ६. ख ग घ °इ। ७. क ङ °उं। ८ क ङ तमु णा°। ९ क घ ङ °ब्भासु, ख ग °ब्भास। १०. क घ संकेउ, ग मे दोनो पाठ है। ११. क ख ग ङ °ड, घ मन्नइ। १२. ख ग घ °णो, ङ °णि। १३. ख ग घ सम्मन्नाण°। १४ क ङ परमत्थु°। १५. क घ ङ °द्धिहि, ख ग °द्धेहि। १६. क °इ। १७ क °हु, घ °सन्निहु। १८. क °विहु।

घत्ता—अट्ठारहवरिसहँ[१९] कालु[२०] गउ माहहो सियसत्तमि पसरे तउ।
विउलइरिसिहरे[२१] विसुद्धगुणि[२२] णिव्वाणु[२३] पत्तु सोहम्मु[२४] मुणि ॥२३॥

[२४]

तत्थेव दिवसि पहरद्धमाणि　आऊरियजोएं[१] सुक्कझाणि।
पलियंकासीणहो णिम्ममासु　जंबूकुमार[२]-मुणिपुंगमासु[३]।
गय खयहो विलीणउ[४] मोहसेसु　दंसणणाणावरणु वि असेसु।
अत्थवणपवत्तिउ अंतराउ　परियाणिउ जीवें जीवभाउ[५]।
उप्पण्णउं केवलु पुणु[६] णिरंधु　अवलोयउ तिहुयणु[७] एक्कखंधु।
[८]करयलजलं व[८] णीसेसु[९] दव्वु　पच्चक्खु जि लोयालोय सव्वु।
देवागमु जायउ णहु[१०] कमंतु　परिमियसहायसहुँ[११] परिकमंतु[१२]।
भव्वयणचित्तचूरियकुतक्कु　अट्ठारहवरिसहँ[१३] जाम थक्कु।
विउलइरिसिहरि कम्मट्ठचत्तु　सिद्धालय[१४]—सासयसोक्खपत्तु[१५]।
सल्लेहणमरणे[१६] जणणु-माय　बंभोत्तरि इंद-पडिंद जाय।
बहुवउ[१७] चयारि चंपापुरम्मि　[१८]जिणवासुपुज्जचेईहरम्मि।
मासेक्कु करेवि[१९] सण्णासु[२०] तम्मि　अहमिंद जाय बंभोत्तरम्मि।

अठारह वर्षका समय बीतनेपर, माघकी श्वेत(शुक्ल)सप्तमीको प्रातः विपुलगिरिके शिखरपर विशुद्ध गुणोवाले सौधर्म मुनि निर्वाणको प्राप्त हुए ॥२३॥

[२४]

वही, उसी दिन अर्द्धप्रहर प्रमाण दिन व्यतीत हो जानेपर शुक्लध्यानमें, परिपूर्ण योगसे पर्यंकासनसे स्थित, निर्मम मुनिपुंगव जंबूकुमारका शेष (बचा हुआ) मोह (मोहनीय कर्म) क्षय हो गया; दर्शन व ज्ञानावरण कर्म भी अशेषरूपसे विलीन हो गये, और अंतराय कर्म भी अस्तंगत हो गया। जीवने जीवके (शुद्ध)स्वभावको जान लिया। निरंध्र अर्थात् संपूर्ण लोकमें अखंडरूपसे व्याप्त केवलज्ञान उत्पन्न हो गया, जिससे तीनों लोकोंको एक स्कंधके समान स्पष्ट देख लिया; अखिल द्रव्योको करतल-स्थित जलके समान जान लिया और लोकालोक सभी प्रत्यक्ष हो गये। आकाशका अतिक्रमण करते हुए अर्थात् आकाशमार्गसे, परिमित सहायकोके साथ परिक्रमा करते हुए देवताओंका आगमन हुआ। (इस प्रकार) अठारह वर्षो तक भव्यजनोंके चित्तका कुतर्क (मिथ्यात्व) दूर करते रहकर, (अंतमे) विपुलगिरिके शिखरपर अष्टकर्मोको त्याग कर मोक्षके शाश्वत सुखको पा लिया। संलेखनापूर्वक मरण करके पिता-माता ब्रह्मोत्तर स्वर्गमे इंद्र व प्रतीद्र हुए। चारों बहुएं चंपापुरमें वासुपूज्यजिनके चैत्यघरमें, एक मासका संन्यास करके (मरणोपरांत)

---

१९. क ङ °वरिसइ, ख ग °सह, घ °सइ। २०. ख ग काल। २१ क घ ङ विउलइरिहिं सि° ख ग विउलिउरि सि°। २२ ख ग °गुणे। २३ ख ग °ण। २४. ख ग °म्म।

[२४] १ ख ग घ आऊरिए°। २. क ङ °कुमारु। ३ क घ ङ °वासु। ४. क घ ङ °उ। ५. क घ °उं। ६. क ङ पणु। ७ क ङ °वणु। ८ क घ ङ °जलु व (घ व्व)। ९. क ङ °स। १०. क ङ णहि, घ नहि। ११ घ °सहाए°। १२. प्रतियोमे 'परिभमतु'। १३. क ङ °सइ, ख ग °सह, घ °सइ। १४ क घ ङ °लउ। १५ घ °सोक्खि°। १६. ख ग °मरणे। १७. क घ ङ °यउ। १८ क ङ जिणवास°। १९. घ करवि। २०. क °स।

घत्ता—अह सवणसंघसंजुउ[21] पवरु एयारसंगधरु[22] विज्जुचरु।
विहरंतु तवेण विराइयउ पुरि तामलित्ति[23] संपाइयउ[24] ॥२४॥

[२५]

नयराउ नियडे रिसिसंघे थक्के अत्थवणहो[1] ढुक्कए सूरचक्के[2] ।
अह आया[3] ताम कंकालधारि कंचायणि[4] नामे भद्दमारि[5] ।
आहासइ सविणय[6] दिवसपंच महु जत्त हवेसइँ सप्पवंच ।
आमंतिय[7] भूयावलि रउद्द उवसग्गु करेसइ तुम्ह खुद्द ।
इय कज्जें अण्णहिँ[9] [10]कहि मि[10] ताम पुरि मेल्लिवि गच्छहु जत्त जाम ।
गय एम कहेवि तो जइवरेण[11] मुणि भणिय एम विज्जुचरेण ।
लइ[12] जाहु पमेल्लहु एह थत्ति तो[13] तेहिँ चविउ[13] परिगलउ[14] रत्ति ।
बीहंतहँ[15] को किर धम्मलाहु[16] उवसग्गसहणु[17] साहूण साहु[18] ।
इय वयणु[18] दिढवि[19] सव्वे वि[19] अवक्क[20] निक्कंपिर नियमु करेवि थक्क ।
घत्ता—संजायरयणि मसिकसिणपहु[21] अंधारियदसदिसि[22] कूरगहु ।
गयणंगणु-महि एक्कहिँ[23] मिलइँ खयकालसरिसु[24] [25]तमु जगु[25] गिलइ[26] ॥२५॥

ब्रह्मोत्तर-स्वर्गमें अहमिंद्र हुई। इसके अनंतर ग्यारह अंगोंके धारी, एवं तपसे सुशोभित श्रेष्ठ विद्युच्चर महामुनि विहार करते हुए अपने श्रमणसंघ सहित ताम्रलिप्ति नामक नगरीमें आये ॥२४॥

[२५]

ऋषिसंघके नगरके निकट ही ठहर जानेपर एवं सूर्यमंडलके अस्तंगमनके लिए प्रवृत्त होनेपर कंकालको धारण करनेवाली भद्रमारी नामकी कात्यायनी देवी वहाँ आयी, और विनयपूर्वक बोली—'पाँच दिनों तक पूर्ण विस्तारके साथ यहाँ मेरी यात्रा होगी। उसमे रौद्र भूतसमुदाय आमंत्रित है, वह तुम्हे क्षुद्र (असह्य) उपसर्ग करेगा। इस कारण जब तक यात्रा है तब तक इस पुरीको छोड़कर अन्यत्र चले जाइए।' यह कहकर वह चली गयी, तो यतिवर विद्युच्चरने मुनियोंको इसतरह कहा—अच्छा (हो कि), आप लोग इस स्थानको छोड़कर अन्यत्र चले जावें। तो उन लोगोने कहा—'रात्रि व्यतीत हो जावे (तब चले जावेंगे); (क्योंकि उपसर्गसे) डरनेवालोंको क्या धर्मलाभ (हो सकता) है? उपसर्ग सहना ही साधुओंके लिए साधु (कल्याणकर) है।' इस वचन (से अपने)को दृढ करके सभी वहीं रह गये, और मौन लेकर निष्कंपरूपसे नियम करके स्थित हो गये। रात्रि होनेपर दशो दिशाओंको अंधकारमय करनेवाले एवं स्याहीके समान कृष्णवर्णवाले क्रूरग्रह(राहु ?)के समान, तथा गगनांगन और पृथ्वी मानो एकत्र मिल रहे हो, ऐसा प्रलयकालके समान (निविड) अंधकार सारे लोकको गीलने (ग्रसने) लगा ॥२५॥

२१. घ °संघु सं° । २२. ख ग °धर । २३. क ह तात्रलित्त, घ ताव° । २४ ख ग संपराइयउ ।
[२५] १. क ड अथ° । २. ख ग सूरे चक्के । ३. क घ ह आय । ४. घ °इणि ५ क रुद्द° ।
६. क ह सिविणउ, ख ग सिविणय । ७. ख °सइ । ८. ख ग घ आव° । ९. क ह °हिं; घ अन्नहि । १० घ कहिं मि । ११ क ख ग घ जय° । १२ क वइ । १३ क ह चविउ तेहिं । १४ ख ग °गलिउ । १५. ख ग °तह । १६. क °हुं । १७ क ह °सहण । १८ क ह दिढु वि । १९ क ड सव्वहिं, घ सव्व वि । २० ख ग थक्क । २१ क ह °कमुण° । २२. क ड °दिसु । २३. ख ग घ ह °इ । २४ क °कालु° । २५ ख ग घ जगु तमु । २६. क °इं ।

[२६]

समुद्धाइया[१] ताम भिउडीकराला कवालेसु[२] पसरंत कोलाललीला।
समुल्लालयंता महामंसखंडा[३] सधूमग्गि-पम्मुक फेक्कारचंडा।
गले[४] बद्धकंकालवेयालभूया कयाणेयदुप्पिच्छवीहच्छरूया[५]।
थिया के वि मसियाल[६] हुंवडयमाणा[७] तहा मंकुणा के वि कुक्कुडपमाणा।
रिसीणं सरीराइँ[८] खाउँ पवत्ता[९] सहंता न तं वेयणं जोयचत्ता।
पयंपंति दुक्खं सहेउं गरिट्ठं[१०] अहो तवफलं केण कत्थेव दिट्ठं।
अधीरा तओ के वि मुणिणो अयाणा तणुं[११] कंडुयंता[१२] वराया पलाणा।
सरे के वि कूवम्मि चीयाहुयासे[१३] विवण्णा पडेऊण तरु—वेल्लिपासे[१४]।
ठिउ नवर विज्जुचरो जोयलीणो[१५] महाघोरउवसग्गसंगे अदीणो।
घत्ता—सण्णासु[१६] चउव्विहु संगहेवि वयखग्गें[१७] मोहवइरि वहेवि।
संठिउ आराहणसुद्धमणु एक्कल्लवीरु[१८] इंदियदमणु[१९] ॥२६॥

इय जंबूसामिचरिए सिंगारवीरे महाकव्वे महाकइदेवयत्तसुयवीरविरइए विज्जुचरअक्खाणयं जंबूसामिनिव्वाणगमणं नाम [२०]दसमो संधी समत्तो[२०] ॥ संधिः १०॥

---

[२६]

तब कराल भृकुटियों वाले, कपालोमे-से लोहूकी धार बहाते हुए, महामांस(नरमांस)-खंडोंको उछालते हुए, धूम्र व अग्नि सहित प्रचंड फेत्कार छोड़ते हुए, गलेमें ककाल बाँधे हुए, अनेक दुष्प्रेक्ष्य और बीभत्स रूप बनाये हुए बैताल और भूत वहाँ उठ खड़े हुए। कोई स्याहीके समान काले भूत हुंकार करने लगे। कोई कुक्कुटके समान विशाल मत्कुणोके रूपमे प्रकट हुए और ऋषियोके शरीर खानेको प्रवृत्त हो गये। उस वेदनाको सहन नही करके कोई (मुनि) योग (ध्यान) छोड़कर बोले, यह दुःख तो सहनेके लिए बहुत भारी है। अरे तपका फल कब, किसने, कहाँ देखा है? इससे कोई वेचारे अज्ञानी मुनिजन अधीर होकर शरीर खुजलाते हुए भाग निकले। कोई तालावमे, कोई कूपमें, कोई चिताग्निमे और कोई वृक्षों एवं लताओके जालमे पड़कर मर गये। केवल एक विद्युच्चर (महामुनि) ही योगमे लीन हुआ, महाघोर उपसर्गके प्रसंगमे अदीन (निर्भय) भावसे स्थित रहा। चार प्रकारका संन्यास धारण कर, व्रतरूपी खड्गसे मोहशत्रुका वध कर आराधनामे शुद्धमन व इंद्रियोंका दमन करनेवाला वह अकेला वीर वहाँ स्थित रहा ॥२६॥

इस प्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित जंबूस्वामीचरित्र नामक इस शृंगार-वीररसात्मक महाकाव्यमें 'विद्युच्चरका आख्यान' एवं 'जंबूस्वामिका निर्वाणगमन' नामक यह दशम सधि समाप्त ॥ संधि १० ॥

---

[२६] १. ड °च्चाइया। २ ख ग कपा°। ३ ख ग घ °मास°। ४ क ख ग ड गला। ५. क ड °रूवा। ६ क ख ड मस°। ७ क घ ड हूचडयमाणा। ८. ख ग घ °राण। ९ ख ग घ पउत्ता। १०. घ असज्झ। ११ क ग तणु। १२ क घ ड °वता। १३ क ख ग ड वीया°; ख ग °हुवासे। १४. ख ग °पासि; घ पेल्लि°। १५ ख ग जोव°। १६. घ सन्नासु। १७. ख ग °खग्गे। १८ क ड इक्कल्लउ°। १९ क ख ग ड °दवणु। २० क घ ड दसमा इमा संधो, ख ग °सम्मत्तो। संधि° १०।

सन्धि–११

[१]

सो जयउ देवयत्तो कइत्तधामोत्ति वीरपडितुल्लो।
जस्स सयासे सिद्धा सीसा सव्वत्थगयवण्णा[1] ॥१॥
विज्जुचरहो महामुणिहो[2] जीवहो कम्मनिबंधण[3] छुरियउ।
अइदूसहे उवसग्गे तहिँ[4] बारह मणि[5] अणुवेक्खउ[6] फुरियउ॥२॥

जिह[7] जिह[7] घोरुवसग्गु पहावइ   तिह[7] तिह[7] जगु अणिच्चु परिभावइ।
[8]गिरिनइपूरु व[9] आउसु खुट्टइ   पक्कफलं पि व[10] माणुसु[11] तुट्टइ।
सिय-लावण्णु[12]-वण्णु-जोव्वणु-बलु   गलइ[13] नियंतहो[14] णं अंजलिजलु।
बंधव-पुत्त-कलत्तइँ अण्णइँ[15]   पवणाहयइँ जंति णं पण्णइँ[16]।
रह-करि-तुरय-जाण-जंपाणइँ   अहिणवघणउन्नयणसमाणइँ[17]।
चामर-[18]छत्त-चिंध[18]-सिंहासणु[19]   विज्जुलचवलविलासुवहासणु।
आसि[20] निमित्तु जं जि अणुरायहो   दिवसहि[21] कारणु[22] तं जि[22] विसायहो

वे (महाकवि) देवदत्त जयवत हो, जो कवित्वके धाम हैं, और उन वीर (भ० महावीर) के प्रतितुल्य है, जिनके पास सीखे हुए शिष्य सर्वत्र कीर्त्तिको प्राप्त हुए—वीर भगवान्‌के पास तप साधनामे सिद्ध हुए शिष्य केवलज्ञानमे समस्त अर्थोको व्यक्त करनेकी शब्द शक्ति प्राप्त करके अंतमे सिद्ध हुए व सर्वत्र स्तुत्य हुए; महाकवि देवदत्तके पास काव्य-रचनामें सिद्ध हुए शिष्योंको कवित्वमे समस्त अर्थोको व्यक्त करने योग्य शब्दशक्ति प्राप्त हुई, तथा वे सर्वत्र प्रशंसाको प्राप्त हुए ॥१॥

विद्युच्चर महामुनिके मनमें उस अत्यंत दुःसह उपसर्गमे जीवके कर्मके कारणोको छेदन करनेवाली बारह अनुप्रेक्षाएँ स्फुरित हुई ॥२॥

जैसे-जैसे वह घोर उपसर्ग अधिक समर्थ अर्थात् कठोरतर होता जाता था, वैसे-जैसे विद्युच्चर यह जगत् अनित्य है, ऐसा चिंतन करता था। गिरिनदीके पूरके समान आयुष्य खडित हो जाती है, और मनुष्य पके फलके समान (जीवन वृक्ष-से) टूट जाता है। लक्ष्मी, लावण्य, वर्ण (शरीरका गौर, कृष्ण आदि रंग), यौवन और बल देखते-देखते अंजलिके जलके समान गलित हो जाते है। बांधव, पुत्र और कलत्र ये सभी जीवसे अन्य हैं, और इस तरह चले जाते है, जैसे पवनसे आहत होकर पत्ते (उड जाते हैं)। रथ, हाथी, घोडे, यान और जंपानक (पालकी) नये मेघ उन्नयनके समान हैं। चमर, छत्र, ध्वजा और सिंहासन विद्युत्‌के चंचल विलासका भी उपहास करनेवाले (अर्थात् उससे भी अधिक क्षणिक) हैं। (पहले) जो कुछ अनुरागका निमित्त

[१] १ क °धण्णा, घ °वन्ना। २ क ब ड °हि। ३ घ °वणु। ४ ख ग ट तहि। ५. ख ग घ च विह। ६ क ड वेहउ। ७ घ °ह। ८. ख गिरिनय°, ग °नयपूर व। ९. क °ड। १०. क ढ य। ११ ख ग °स। १२ घ लायन्नु, ब लाय°। १३ ख °उ। १४ ग घ °तह, ग °तह। १५. घ अन्नइं। १६ घ पन्नइ। १७ क ख ग ट °उणयण°। १८ क ट चिंधछत्त। १९. ख ग णिया°। २०. ख आस। २१ ख ग °महो, घ °सहि। २२ ग ग जनि।

मोहें तो वि जीउ अवगण्णइ[23] अजरामरु अप्पाणउ[24] मण्णइ[25]।
घत्ता—अद्धुवभावण एह मणे जायइ[26] जासु विवज्जियकामहो।
दंसणनाणचरित्तगुणु भायणु होइ सो जि सिवधामहो ॥१॥

[२]

मरणसमए जमदूयहिँ[1] निज्जइ[2] असरणु[3] जीउ केण[3] रक्खिज्जइ[2]।
जइ वि धरंति धरियधुर माणव गरुड[4]-फणिंद-देव-दिढदाणव[5]।
अक्क-मियंक[6]-सुक्क[7]-सक्कंदण[8] हरि-हर-बंभ[9] वइरि-अक्कंदण[10]।
[11]पण्णारहं खेत्तेसु सुहंकर[12] कुलयर-चक्कवट्टि-तित्थंकर।
जइ पइसरइ गाढपविपंजरे गिरिकंदरे सायरे नइ[13]-निज्झरे।
हरिणु जेम सीहेण दलिज्जइ तेम[14] जीउ[15] कालें कवलिज्जइ।
आउसु कम्मु[16] निवद्धउ जेत्तउ जीविज्जइ भुंजंतहँ[17] तेत्तउ।
तहो कम्महो[18] थिरु खणु वि न थक्कइ तिहुवणे[19] रक्ख करेवि को सक्कइ।
घत्ता—दुत्तरे भवसायरसलिले[20] वुड्डंतहँ[21] जगे को साहारइ।
जिणसासण-उवएसियउ दहविहु धम्मु एक्कु पर तारइ ॥२॥

था, वही दिन बीतनेपर विपादका कारण हो जाता है। तो भी जीव मोह (वश)से(इस सत्यकी) अवमानना करता है, और अपने आपको अजर, अमर मानता है। जिस कामत्यागीके मनमे यह अध्रुव भावना उत्पन्न होती है, वही दर्शन, ज्ञान व चरित्र गुणोसे युक्त मानव शिवधाम(मोक्ष) का भाजन होता है ॥१॥

(२)

मरणके समय जब यमदूत जीवको ले जाते हैं; उस समय उस अशरण जीवकी रक्षा कौन कर सकता है। चाहे बड़े-बड़े संग्राम धुरंधर सुभट पुरुष ही (जीवको कालसे रक्षाके लिए) धारण कर लें, चाहे, गरुड़, फणीद्र, देव या बलिष्ठदानव; चाहे सूर्य, चंद्र, शुक्र या शक्र; चाहे शत्रुको आक्रंदन करानेवाले हरि और हर; चाहे पंद्रह क्षेत्रोमें कल्याणकारी कुलकर, चक्रवर्त्ती, या तीर्थंकर उसे धारण कर ले, चाहे वह सुदृढ़ वज्र-पंजरमें प्रवेश कर जाय, या गिरि कंदराओं, सागर, नदी अथवा निर्झरमें, तो भी जिस प्रकार हरिण सिंहके द्वारा मार डाला जाता है, उसी प्रकार जीव कालसे निगल लिया जाता है। जितना आयुष्य कर्म बाँधा है, उतना ही भोगते हुए उसे जीया जाता है। उस आयुकर्मसे अधिक एक क्षण भी स्थिर अर्थात् जीवित नही रह सकता। तीनो लोकोमे कौन उसकी रक्षा कर सकता है? दुस्तर भवसागर सलिलमे डूबते हुओके लिए कौन सहारा देता है? बस एकमात्र जिन-शासन-द्वारा उपदिष्ट दशविध धर्म ही पार उतार सकता है ॥२॥

---

२३. क °ण्णइं, घ °न्नइ। २४. क ब ड °णउं। २५ क °इं, घ मन्नइं। २६ क ख ग ड °इं।

[२] १. ख ग °दूइहे। २. क °ज्जइं। ३. ख ग केण जीउ। ४. घ °ण। ५. क ड दानव। ६ ख ग म°। ७ ख ग सक्क। ८ व °क्कण। ९. ख ग वयरि°। १०. व पक्कन्दण। ११. घ पन्ना°। १२ च महकर। १३ ख नय। १४. ख ग ड तो वि। १५. घ जीवु। १६ ख ग व कम्म। १७. क °तह। १८ क ड समयहो। १९. ख ग °यणे। २०. ख न °सायरे°। २१. ख ग °तह।

[३]

संसाराणुवेक्खे[1] भाविज्जइ कम्मवसेण जीउ पाविज्जइ[2]।
जोणि-कुलाउ-जोय[3]-सय-संकडे चउगइभमणे[4] विवज्जियकंकडे।
जम्मंतरइँ[5] लेतु मेल्लंतउ कवणु न कवणु गोत्तु[6] संपत्तउ।
बप्पु[7] जि पुत्तु पुत्तु जायउ[8] पिउ मित्तु जि सत्तु सत्तु बंधउ[9] थिउ।
माय जि महिल महेली मायरि बहिणि वि धीय धीय वि सहोयरि।
सामिउ[10] दासु होवि[11] उप्पज्जइ[2] दासु वि सामिसालु संपज्जइ[2]।
केत्तिउ कहमि[12] मुणहु[13] अणुमाणें जम्मइ[14] अप्पाणउ[15] अप्पाणे।
नारउ तिरिउ तिरिउ पुणु[16] नारउ देउ वि[17] पुरिसु नरु वि[17] वंदारउ।
घत्ता—इय जाणेवि संसारगइ दंसण-णाणु जेण नाराहिउ।
अच्छइ[18] सो मिच्छा-छलिउ काम-कोह-भय-भूयहिँ[19] वाहिउ[20] ॥३॥

[४]

जीवहो नत्थि को वि साहिज्जउ[1] कम्मफलइँ जो भंजइ[2] विज्जउ[3]।
एक्कु जि पावइ निउइ[4] महल्लउ निवडइ घोरनरए एक्कल्लउ।
एक्कु जि[5] खरघम्मेण[6] विलिज्जइ[7] एक्कु वि वइतरणिहि[8] वोलिज्जइ।

(३)

अनंतर वह संसारानुप्रेक्षाका चिंतवन करने लगा। चतुर्गति भ्रमणमे मर्यादा (टि॰ रहित होकर जीव कर्मवशसे सैकडो संकीर्ण योनियो, कुलो, आयुष्य तथा योगो (नाना संयोगो) को प्राप्त करता है। जन्मातरोको लेते और छोडते हुए इसने कौन-सा गोत्र नही पाया। बाप पुत्र और पुत्र पिता हो जाता है। मित्र शत्रु और शत्रु, बांधव हो जाता है। माता स्त्री और स्त्री, माता बन जाती है। बहिन पुत्री हो जाती है, और पुत्री सहोदरा। स्वामी दास होकर उत्पन्न होता है, और दास स्वामि-श्रेष्ठ हो जाता है। कितना कहे, अनुमानसे जान लीजिए, यहाँतक कि स्वयं अपनेसे आप ही उत्पन्न हो जाता है (देखिये भूमिकामे महेश्वरदत्तका कथानक) नारक तिर्यंच हो जाता है, व तिर्यंच नारकी, देव भी पुरुष हो जाता है, और पुरुष देव। इस प्रकार ससारगतिको जानकर जिसने दर्शन-ज्ञानको नही आराधा, वह मिथ्यात्वसे छला जाकर, काम, क्रोध व भयके भूतोसे चालित होकर रहता है, अर्थात् काम क्रोधादि कपायोके वशीभूत होकर जीवन व्यतीत करता है ॥३॥

(४)

जीवका ऐसा कोई सहायक विज्ञ (ज्ञानी) या वैद्य नहीं है जो उसके कर्मफलोको काट दे। जीव अकेला ही महान् मोक्षपदको पाता है, और अकेला ही घोर नरकमे गिरता है, तथा वहाँ

[३] १ क ड °पेक्ख। २ क °ज्जइं। ३ ख ग जोणि। ४ ख ग घ °भवणे। ५. क ड °रइ। ६. क गोत्त। ७ क ड वापु। ८. क ड °इ। ९ ख ग °व। १०. क घ ड °उ। ११. क ख ग ढ होइ। १२ ग कहिमि। १३. घ °हुं। १४. प्रतियोमे °इ। १५. क घ ड °णउ। १६. क ड तह। १७ घ जि। १८ ख ग °उ। १९. क घ ड °भूयहि। २०. घ °उ।

[४] १. ग ब °ज्जइ। २. प्रतियोमे भु°। ३. च °ड। ४. ख ग ढ निउ जि। ५. घ वि। ६. क °धम्मेण। ७. ख ग लइज्जइ। ८. ख ग घ °णिहिं।

एक्कु जि ताडिज्जइ असिवत्तहिँ[९] एक्कु जि फाडिज्जइ करवत्तहिं[१०]।
एक्कु जि जले जलयरु वणे वणयरु एक्कु जि महिहरकंदरे अजयरु।
एक्कु जि मेच्छु चंडपरिणामउ[११] एक्कु जि[५] संढु[१२] त्रिसमवहुकामउ[१३]।
एक्कल्लो वि महिल एक्कु जि नरु एक्कु जि महिवइ एक्कु जि सुरवरु।
एक्कु जि जोएं[१४] गलियवियप्पउ[१५] जायइ जीउ सुद्धपरमप्पउ।
घत्ता—एक्कु जि भुंजइ कम्मफलु जीवहो बीयउ[१६] कवणु[१७] कलिज्जइ[१८]।
सत्तु मित्तु कहिँ संभवइ[१९] रायदोसु कसु उप्परि किज्जइ ॥४॥

[५]

अण्णत्ताणुवेक्ख[१] भावइ पुणु अण्णु सरीरु अण्णु जीवहो गुणु।
वज्झइ अण्णकम्मपरिणामें जणे कोकिज्जइ अण्णें नामें।
गोत्तु निवंधइ[२] अण्णहिं खोणिहिँ उप्पज्जइ[३] अण्णण्णहिँ[४] जोणिहिं।
अण्णेण जि[५] पियरेण जणिज्जइ अण्णइ[६] मायइ[६] उयरें[७] धरिज्जइ।
अण्णु[८] को वि एक्कोयरु भायरु अण्णु मित्तु घणनेहकयायरु।
अण्णु कलत्तु मिलइ परिणंतहँ अण्णु जि पुत्तु होइ कामंतहँ[९]।

अकेला ही तीक्ष्ण तापसे (पारदके समान) गलाया जाता है। अकेला ही वैतरणीमे डूबता है, अकेला ही असिपत्रोसे फाड़ा जाता है, और अकेला ही करौतसे चीरा जाता है। अकेला ही जलमें जलचर और वनमे वनचर होता है। अकेला ही पर्वत-कंदरामें अजगर होता है। अकेला ही चंड परिणामोवाला म्लेच्छ होता है। अकेला ही तीव्र एवं विषम काम(वासना) से युक्त नपुसक होता है। अकेला ही महिला और अकेला ही पुरुष होता है। अकेला ही महीपति, और अकेला ही देव, और अकेला ही योग(ध्यान व तप)से समस्त (सासारिक) विकल्पोको त्याग कर यह जीव शुद्ध परमात्मा हो जाता है। अकेला ही कर्मफलको भोगता है, जीवका दूसरा (मित्र या बांधव) किसे गिना जाय ? (किसीका) शत्रु या मित्र होना कहाँ सम्भव है ? राग व द्वेष किसके ऊपर किया जाय ॥४॥

(५)

फिर वह अन्यत्वानुप्रेक्षाका चिंतन करने लगा। शरीर अन्य है, जीवका स्वभाव (गुण) अन्य है। परिणामोके अनुसार यह जीव अन्य (अर्थात् अपनेसे भिन्न व पुद्‌गलमय) कर्मपरिणामों (कर्म-प्रकृतियो) से बँधता है। लोगोमे किसी अन्य ही नामसे पुकारा जाता है। भिन्न-भिन्न पृथिव्योमे भिन्न-भिन्न गोत्र बाँधता है और भिन्न-भिन्न योनियोमे उत्पन्न होता है। अन्य पितासे उत्पन्न किया जाता है, और अन्य माँके उदरमें धारण किया जाता है। सहोदर भाई भी कोई अन्य ही होता है, और घना स्नेह व आदर करनेवाला मित्र भी अन्य ही होता है। परिणय करते हुए (अपनेसे) भिन्न ही स्त्री मिलती है, और कामभोग करनेसे कोई

९ ख ग °पत्तहिं; घ °पत्तिहिँ°। १० ख घ °त्तिहिं, ङ °त्तहि। ११ क घ ङ °मउं। १२. ख संढ। १३ घ ङ °कामउं। १४ ख ग जोए। १५. क घ ङ °प्पउं। १६ ख ग घ च विज्जउ। १७ क °ण। १८ क ङ कहिँ°। १९ क °वइ।

[५] १ घ अन्न°। २ क ङ वि°, ख ग °धइं। ३ क अण्णुज्जइ। ४ घ अन्नन्नहिं। ५ क ङ वि। ६ क घ ङ °इ। ७ क ङ च उवरि, ख ग उइरि। ८. ख ग अण्ण, घ अन्नु। ९ ख काम्मंतह, ग कम्मतह।

अण्णु होइ धणलोहें किंकरु अण्णु जि पिसुणु होइ असुहंकरु।
अण्णु अणाइ[10]-अणंतु[11] सचेयणु[12] सावहि[13] अण्णु पवड्ढियवेयणु।
घत्ता—अण्णण्णाइँ[14] कलेवरइँ लइयइँ मुक्कइँ[15] भवसंधारणे।
अण्णु जि निरवहिजीउगुणु[16] कवणु ममत्तिभाउ[17] तणुकारणे ॥५॥

[६]

जंगमेग संचरइ अजंगमु[1] असुइ सरीरे न[2] काइँ मि[2] चंगमु[3]।
अट्ठवियट्टहड्डसंघडियउ[4] सिरहिँ[5] निबद्धउ चम्में[6] मढियउ[7]।
रुहिर-मास-वस-पूयविटलटलु[8] मुत्तनिहाणु पुरीसहो[9] पोट्टलु।
थवियउ तो किमि[10]-कीडु[11] पयट्टइ[12] [13]दड्ढु मसाणे छारु पलट्टइ[14]।
मुहबिंबेण जेण ससि तोलहिं[15] परिणइ तासु कवोले[16] निहालहिं[17]।
लोयणेसु कहिं गयउ कडक्खणु कहिँ दंतहिं दरहसिउ[18] वियक्खणु।
विप्फुरियाहररत्तु कहिँ[19] वट्टइ कोमलवोल्लु[20] काइँ न पयट्टइ[14]।
धूयविलेवणु बाहिरि थक्कइ[21] असुइ गंधु को फेडिवि सक्कइ[21]।

अन्य ही पुत्ररूपमे उत्पन्न होता है। धनके लोभसे सेवक भी अन्य ही होता है, और अकल्याण-कर दुर्जन भी अन्य ही होता है। जीवका अनादि अनत सचेतन स्वरूप कुछ अन्य ही होता है, तथा सवेदन अर्थात् कर्मोंकी उदोरणासे युक्त सावधि (सादि-सान्त) स्वरूप कुछ अन्य ही। बार-बार भवविसर्जन अर्थात् शरीरत्याग करनेमे भिन्न-भिन्न ही शरीर लिये और छोड़े। जीवका निरवधि ज्ञान गुण भी इन सब बाह्य वस्तुओंसे अन्य ही है। अतः इस शरीरके लिए ममत्व ही क्या? ॥५॥

(६)

चेतन(आत्मा)के सहारेसे अचेतन(शरीर)का संचरण होता है। इस अशुचि शरीरमें कुछ भी चंगा नहीं है। आडे-टेढे हाड़ोसे यह संघटित है, शिराओसे निबद्ध है, और चमंसे मढ़ा हुआ है। यह शरीर पूति रुधिर, मांस, व वसाकी गठरी और मूत्रका निधान व पुरीषकी पोटली है। (मरणोपरात) इसको रख दिया जाय तो यह कृमि व कीटरूप प्रवृत्त हो जाता है, और श्मशानमें जलानेपर क्षार रूपमे पलट जाता है। जिस मुखबिंबसे चद्रमाकी तुलना की जाती है, (आयु व्यतीत होनेपर) कपोलोपर उसको परिणति देखिये! लोचनोका कटाक्षसे देखना कहाँ गया? दाँतोसे वह विचक्षण ईषत् हास्य अर्थात् वह मद-मद मुसकराना कहाँ गया? ओठोंकी वह शोभा कहाँ गयी? और कोमल वचन अब क्यो प्रवृत्त नही होते? धूप (आदि) विलेपन बाहर ही रहता है; (शरीरके भीतरकी) अशुचि गधको कौन मिटा सकता है?

१०. क अण्णाय, ङ अणाय। ११. क अण्ण, ख ग अण्णु, घ अन्नु। १२. क ङ अचे°। १३. क ङ सव्वहि। १४. ख ग °ण्णाइ, घ अन्नन्नाइ। १५ क ङ °ङ। १६ ख ग निरवहें°, क घ ङ °जीउ हउ°। १७ घ ममित्ति°।

[६] १. क घ ङ च °गउ। २. ख ग घ काइ मि। ३ क अद्ध°। ४. च °सङ्घडियउ। ५. क ख ग ङ सिरिहिं। ६. ख ग च चम्महिं; घ चम्मिहिं। ७. क घ ङ जढि°। ८ ख ग घ पूयटल-टलु। ९ ख ग °सह। १०. ख ग किम। ११ ख ग कोड, घ कडु। १२. क घ ङ °ट्टइ। १३ क घ दड्ढ। १४. क °ट्टइं। १५ क घ ङ °हिं। १६ क ङ °ल। १७ क ख ग घ ङ °लहिं। १८. ख ग °हसिय। १९. ख ग कहि। २० क ङ °लु वोल्लु। २१. क °इ।

घत्ता—असुइसरीरहो कारणेण केवलु सुद्धु अप्पु अवगण्णई[२२]।
किसि-कव्वाड[२३]-वणिज्जफलु सेवकिलेसु सुहिल्लउ मण्णई[२४] ॥६॥

[७]

नारय-तिरिय-नरामर थावण मुणि परिभावइ आसवभावण ।
तणु-मण-वयण जोउ जीवासउ कम्मागमणवारु[१] सो आसउ ।
असुहजोएं[२] जीवहो सकसायहो लग्गइ निविडकम्ममलु[३] आयहो ।
कप्पडे जेम कसायइं[४] सिट्ठउ जायइ वहलरंगु[५] मंजिट्ठउ ।
अबलु नरिंदु जेम रिउसिमिरें[६] मंदुज्जोउ दीउ जिहं[७] तिमिरें[८] ।
जीउ वि वेढिज्जइ तिह[९] कम्में निवडइ दुक्खसमुद्दे अहम्में ।
अकसायहो आसवु[१०] सुहकारणु कुगइ-कुमाणुसत्तविणिवारणु ।
सुहकम्मेण जीउ अणु संचइ[११] तित्थयरत्तु[१२] गोत्तु[१३] संपज्जइ[१४] ।
घत्ता—मिच्छादंसणें[१५] मइलियउ[१६] कुडिलभाउ जायइं[१७] सकसायहो ।
काय-वाय-मणपंजलउ[१८] पुण्णनिमित्तु[१९] होइ अकसायहो ॥७॥

अशुचि शरीरके कारणसे (अज्ञानी जीव) अनुपम व शुद्ध-आत्माकी अवगणना करते हैं, एवं कृषि, कबाड़ीपन, वाणिज्यफल और सेवाके क्लेशको सुखकर मानते हैं ॥६॥

(७)

अब (वह विद्युच्चर) मुनि नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगतिमें स्थापन करनेवाली आस्रव भावना भाने लगा। जीवके आश्रयसे होनेवाला तन, मन व वचनका योग (क्रिया) ही जो कर्मोंके आगमनका द्वार है, वही आश्रव है। सकषाय जीवके अशुभ योगसे उसको घना कर्ममल इस तरह आकर लग जाता है, जैसे कषाय(गोंद)से श्लिष्ट कपड़ेमें मंजीठका रंग खूब गाढ़ा हो जाता है। जिस प्रकार दुर्बल राजाको शत्रुसेनाके द्वारा, एवं मंद प्रकाशवाले दीपकको अंधकारके द्वारा घेर लिया जाता है, उसी प्रकार सकषाय जीव भी कर्मोंसे वेष्ठित कर लिया जाता है, और अधर्म करके जीव दुःख समुद्रमें पड़ता है। अल्पकषायवाले जीवका आस्रव शुभ बंधका कारण होता है, और वह कुगति और कुमनुष्य (अधम मनुष्य जाति) योनि (में जन्म होने)का निवारण करता है। शुभक्रियाके द्वारा कर्म परमाणुओंका संचय करनेवाला जीव तीर्थंकर गोत्रको प्राप्त कर लेता है। सकषाय जीवका भाव (परिणाम) मिथ्यादर्शनसे मैला होकर कुटिल हो जाता है, और प्रांजल (शुभ) काय, वाक् व मनवाले अल्पकषायी जीवका भाव पुण्य(बंध)का निमित्त होता है ॥७॥

२२ घ °न्नइं ! २३ क ढ °डु। २४. घ मन्नइं।

[७] १ क ख ग ढ °चारु। २. प्रतियोंमे 'असुहजोउ'। ३. ख ग घ °कम्मु फुडु। ४. क घ ढ °यहिं°। ५. ख ग घ वहुल°। ६. ख ग °समरें। ७. घ जिहं। ८. ख ग तिमरें। ९. ख ग घ तिहं वेढिज्जइ। १० प्रतियोंमें °व। ११. क सचइ, घ संचइ। १२ घ °रत्ति। १३ क ढ जाम। १४ क घ ढ विणिवधइ। १५. च °सण। १६ ख मय°। १७. क °इं। १८. घ °लिउ। १९. घ पुन्न°।

[८]

सहइ[1] परीसहु[2] परमदियंबरु आसवथंभणु[3] जायइ संवरु ।
इंदियविचित्तिछिद्दु दिढु ढक्कइ नवउ कम्मु पइसरेवि[6] न सक्कइ ।
नावारूढु जेम जलि जंतउ सुसिरसएहिँ सलिलु पइसंतउ ।
जो देविणु पडिवंधणु वारइ तीरुत्तारु तासु को वारइ ।
अह मोहिउ मइंधु[8] जइ अच्छइ कवण भंति वुड्डेवि खउ गच्छइ[9] ।
इय कज्जें अकसाउ कसायहो दिज्जइ विरइ-निबंधणु रायहो ।
कोहहो खंति नाणु अण्णाणहो[10] लोहहो तोसु अमाणु वि माणहो ।
अणसणु रसगिद्धिहि[11] निद्धाडणु पायच्छित्तु पमायहो साडणु ।
घत्ता—इय जो कुम्मायारसमु संवरियप्पु[12] न आसउ[13] गोवइ ।
लाइवि[14] दावानलु[15] गहणे[16] मारुयसम्मुहे[17] होइवि सोवइ ॥८॥

[९]

दूरि निरत्थ मरण-जम्मण-जर पुणु अवलोयइ भावण निज्जर ।
वइउ[2] सुहासुहफलु भुंजिज्जइ[3] आसियकम्महो निज्जर किज्जइ ।

(८)

परीषहको सहन करते हुए उस परमदिगंबर विद्युच्चर महामुनिको आस्रवको रोकनेवाला संवर(भाव) उत्पन्न हुआ। इन्द्रिय-वृत्तियोंरूपी छिद्रोको दृढतासे ढँक दिया, जिससे नया कर्म प्रवेश भी नही कर सकता। जिस तरह कोई नावारूढ व्यक्ति जलमे जाते हुए सैकडो छिद्रोसे प्रवेश करते हुए जलको, छिद्रोको बद करके रोक देता है, तो उसको तीरपर उतरनेसे कौन रोक सकता है ? परन्तु यदि कोई मतिका अंधा मोहित (मूढ) होकर बैठा रहे (व छिद्रोको बंद नही करे), तो इसमे क्या भ्राति है कि वह डूबकर विनाशको प्राप्त होगा ? इस हेतुसे कषायके लिए अकषाय, रागके लिए विरति, क्रोधके लिए क्षाति, अज्ञानके लिए ज्ञान, लोभके लिए संतोष, और मानके लिए अमान (मानहीनता, मार्दव भाव) रूपी निबंधन अर्थात् उपशमका उपाय करना चाहिए। उसी प्रकार अनशन रस-लोलुपताका निष्कासन करनेवाला है, तथा प्रायश्चित्त प्रमादको दूर करने वाला है। इस प्रकार जो कूर्माकारके समान अपनेको संवृत करके आस्रवोसे अपनी रक्षा नही करता, वह मानो वनमे आग लगाकर पवनके सन्मुख मुँह करके सोता है ॥८॥

(९)

फिर वह निर्जरा भावना करने लगा, जिससे जन्म, मरण व जरा दूरसे ही निरस्त हो जाते हैं। उदित हुए (कर्मानुसार) शुभाशुभ फल भोगने चाहिये, और आसित (स्थित)

---

[८] १ क घ ङ सहिय, ख °य। २ ख ग °सह। ३ क ङ °हंभणु। ४ क घ ङ चितइ। ५. क ढुक्कइ, ख ग ढक्कइ, घ ढंकइ। ६ ख पय°। ७ क ख ग ङ धा°। ८ क घ ङ मयवु। ९ क °इ। १० घ अन्ना°। ११ क घ ङ °गिद्धिहिं। १२ क ख ग ङ °अप्पु। १३ क ङ °वु। १४ ख ग घ लायंवि। १५ क ख ग ङ °णलु। १६ क ङ °णें। १७ क ङ मारुवसम्मुहु; घ °सम्मुहुं।

[९] १. क ङ °वइ। २. क उयउ। ३. क °ज्जइं।

[4]मोक्ख-बंधभेएहिँ[4] नियाणिय   कुसलाकुसलमूल[5] परियाणिय।
नरयसमुब्भव[6]-नारयजीवहँ   सेसहँ[7] मिच्छादंसणकीवहँ।
दुह-सुहभुंजणएहो[8] निज्जर   अकुसल-अट्ट-रउद्दनिरंतर।
जं निज्जरइ दुक्खु[9] मुणि अंगें   कायकिलेस-परीसहसंगें।
अवरु वि जो सम्मत्तालोयणु[10]   [11]उवयसहाव-सुहासुहभोयणु।
रायरोसरहियउ[12] नीसल्लउ   सुक्खु[13] दुक्खु निज्जरियउ भल्लउ।
घत्ता—पक्कउ फलु तले निवडियउ विंटें [14]पुणु वि[14] जेम-नउ लग्गइ।
कम्मु वि निज्जरसाडियउ   पुणु वि न [15]उवइ नाणे जो जग्गइ[15] ॥९॥

[१०]

पुणु लोयाणुरूवे थावइ मणु   सुद्धायासे परिट्ठिउ तिहुयणु।
चउदहरज्जुमाणे[2] परियरियउ   [3]तिहिँ मि समीरण वलयहिँ[4] धरियउ।
रज्जुय[5] सत्त लोउ हेट्ठिल्लउ   पुढविउ[6] सत्त जि दुहहिँ[7] गरिल्लउ।
पढमहि[8] तीसलक्खनरयायरु   रयणप्पहहे[9] आउ जहिँ[10] सायरु।

अर्थात् अभी उदयमें न आये हुए कर्मोंकी (उदीरणा-द्वारा) निर्जरा की जानी चाहिए। मोक्ष और बंधकी विशेषताओंके अनुसार, उनके मूलकारण रूपसे निर्जरा भी कुशलमूल व अकुशल-मूल, ऐसी दो प्रकारकी जानी जाती है। नारकी जीवोंको नरक दुःख भोगनेसे और शेष अपुरुषार्थी (क्लीव) लोगोंको दुःख-सुख भोगनेसे निरंतर आर्त व रौद्र ध्यान पूर्वक जो निर्जरा होती है, वह अकुशल(मूल) है; तथा शरीरसे दुःखका बोध होते हुए भी कायक्लेश करते हुए, परीषहोंको सहन करके जो निर्जरा की जाती है, और जो समताभावसे आलोचना है, (कर्मोंके) उदय स्वभावानुसार (निर्द्वंद्व व निष्काम भाव से) जो शुभाशुभका भोगना है, एवं राग-द्वेषसे रहित निःशल्य भावसे जो सुख-दुःखकी निर्जरा है, वह भली (कुशलमूल) है। पका फल नीचे गिरकर जिस प्रकार पुनः डंठलमें नही लगता, उसी प्रकार जो कर्म निर्जरा-द्वारा दूर कर दिया गया है, वह भी उस व्यक्तिको पुनः प्राप्त नही होता जो ज्ञानमें अर्थात् ज्ञानाराधनामें निरंतर जागरूक (सावधान) रहता है ॥९॥

[१०]

फिर उसने लोकके स्वरूप (का चिंतन करने) मे अपने मनको लगाया। यह त्रिभुवन शुद्ध आकाशमे परिस्थित है। यह चौदह राजू प्रमाणवाला है। तीनो लोक वातवलयसे धारण किये हुए है। अधोलोक सात राजू है। उसमे अत्यंत दुःखदायक सात पृथ्वियाँ है। पहली रत्नप्रभामे तीस लाख नरक-बिल है, और एक सागर आयु है (१)। (दूसरी) शर्करा प्रभामे

४ ख ग वंधु मोक्खु भें°, घ वंध-मोक्खु भें°। ५ ख ग घ °कुसलु मूलु। ६ घ °ब्भउ। ७. क ख ग °ह। ८ ग °भंजण°। ९. क दुक्ख। १०. क ङ समता आलो°। ११ क ङ उअय°; घ च उववासहसु°। १२. क ङ °दोसविरहिउ। १३ ख ग सुक्ख। १४. घ पुणउ। १५ घ उयइ नाणि जो लग्गइ।

[१०] १. ङ °अणु। २ क घ ङ °माण। ३. ख ग तिहि। ४. ख °र्हि। ५. क घ ङ रज्जुय। ६ ख ग च °विहि। ७ ख ग °हे। ८ क ख ग घ ङ °महि। ९. घ ङ °हहि। १० क ङ जहि।

लक्खइँ पंचवीस नरयइँ[11] तउ सक्करपहे[12] आउसु सायर तिउ[13]।
वालुपहे[15] लक्खइँ[14] पण्णारह[16] उवहि मत्त नइयहि[17] [18]सायर दह[19]।
पंकप्पहहे[19] नरइँ[20] लक्खइँ[21] दह धूमहि[22] तिण्णि[23] उवहि[24] सत्तारह।
पंचविहीणु[25] लक्खु तमनामहि[26] बावीसोवहि आउसथामहि[27]।
नरयमहातमेहि[28] पंच वि थिय आउसु तिण्णितीस सायर किय।
घत्ता—धनुहइँ[29] सत्त पढममहिहे[30] हत्थसवातिण्णि[31] वि जायइँ[32] तणु।
विउणउ[33] विउणउ[33] नारयहँ सेसमहीसु[34] होइ[35] उच्चत्तणु ॥१०॥

[११]

मज्झिमलोउ रज्जुपरिखंडिउ दीवसमुद्दहिं सयलु वि मंडिउ[1]।
जोयणलक्खु मेरु मज्झंकिउ[2] जंबूदीउ मज्झे दीवहँ[3] ठिउ[4]।
चउदिसु वेढिउ[5] वलयायारें लवणण्णवेण[6] विउणवित्थारें।
हिमवंताइ तत्थ[7] पव्वय छह गंगापमुहउ[8] नइउ चउदह।
देवोत्तरकुरुहिं[9] सहुं निम्मिय छेत्तचयारि[10] भोयभूमी थिय।

पच्चीस लाख नरक(-बिल) हैं, और आयुष्य तीन सागर है (२)। तीसरी बालुकाप्रभामें पंद्रह लाख नरकबिल और सात-सागरकी अवधि (आयु) है (३)। चौथी पंकप्रभामें दस लाख नरकबिल और दससागर आयु है (४)। पाँचवी धूमप्रभामें तीन लाख नरकबिल और सत्रह सागर आयु है (५)। छठी तम.प्रभामें पांच कम एक लाख नरक-बिल औरआयुष्य बाईस सागर है (६); तथा सातवीं महातम.प्रभामें केवल पाँच नरकबिल और आयु तेतीस सागर होती है (७)। पहली पृथ्वीमें शरीर सातधनुष व सवा तीन हाथ ऊँचा होता है। शेष सब पृथ्वियोंमें नारकियोंकी ऊँचाई दुगुनी-दुगुनी होती जाती है ॥१०॥

[११]

मध्यलोक विस्तारमें चतुर्दिक् एक राजू है, और साराका सारा द्वीप व समुद्रोंसे मंडित है। सब द्वीपोंके बीचमें एक लाख योजन विस्तारवाला जम्बूद्वीप है, जिसके मध्यमें सुमेरुपर्वत है, जो कि दुगुने विस्तारवाले लवणोदधिसे चारों दिशाओंमें वलयाकार वेष्टित है। वहाँ हिमवंतादि छह पर्वत हैं। गंगाप्रमुख चौदह नदियाँ हैं। देवकुरु व उत्तरकुरुके साथ निर्मित

११ क ख ग ड °यह, घ °यहिं। १२. क ड सक्कराहिं। १३ ख ग तउ। १४. क ड °प्पह, ख ग °याइं, घ °याहिं, च °याहे। १५ ख ग च °हं। १६ क °रह। १७. क ड °यहिं, ख ग घ च °यहं। १८ क °रदहं। १९ क घ ड °प्पहहिं। २०. ख ग ड च °इं। २१ ख ग °हुं; घ °इ। २२. क ख ग ड °हिं। २३. ख ग घ तिन्नि। २४ ख ग घ उअहि। २५. ख ग च पंचहिं°, घ पंचहिं°। २६ क ड °हिं, ख ग घ °हो। २७. क ड आउसु°; ख ग घ °थामहो, घ °थामहो। २८ क °तमेहिं, ख ग °तमोहु। २९ ख ग °हरउ। ३०. क ड °महिहिं, ख ग पढमहे महिहिं। ३१. ख ग घ °तिन्नि। ३२ घ °इं। ३३ क घ ड °णउ। ३४ घ °महीहिं। ३५ घ होउ।

[११] १. क °उं। २ ख ग °किय। ३ क ख ग ड °हं। ४ ख ग ठिय। ५ ख ग मढिउ। ६. घ °ण्णवेण। ७ क ड नित्थ। ८. घ °हउं। ९ घ देउत्तर°, क ड °कुरुहिंहिं, ख ग °कुरुत्तहिं। १०. क ड खेत्त°।

पुव्वावरविदेहे[11] सुपसत्थउ   एक्करूउ थिउ कालु चउत्थउ।
भरहेरावएसु उवसप्पिणि[12]   विहि मि पवत्तइ[13] तह[14] अवसप्पिणि[15]।
दाहिणमज्झि हिमालय उत्रहिहि[16]   विजयद्धेण गंग-सिंधुहिँ विहि।
भरहखेत्तु छक्खंडिउ छज्जइ[17]   आयारे रोवियधणु[18] नज्जइ[19]।
इय दीवाउ खेत्तकमु विउणउ[20]   धाइयखंडे[21] पुक्खरद्धय[22] तउ।
घत्ता—अड्ढाइयदीवइँ[23] धरेवि[24] मणुसोत्तरगिरि जाम नरालउ[25]।
पुक्खरद्ध धुरि परइ पुणु तिरिय-देव-संचारु विसालउ ॥११॥

[१२]

उवरिमु[1] पंचरज्जु परिमाणे   सोलहसग्ग मुरयसंठाणें।
नव-गोविज्जे[2]-विजयचउजुत्तउ   उवरि[3] सव्वत्थसिद्धि पजत्तउ।
विण्णि-पढमसग्गहिँ[4] विहि[5] सायर   तइय[6]-चउत्थे सत्त रयणायर।
उवरिमेसु विहि[7] विहिँ[8] सग्गइँ[9] तह[10] दस[11]-चउदस[12]-सोलह-अट्ठारह[13]।
वीसोवहि-बावीस सुहायर[14]   साणुत्तर[15]-गेवज्जहिँ[16] सायर[14]।
वड्ढइ[17] एक्कु चउहु उवरिल्लहिँ   तेतीसोवहि आउसु[18] सव्वहिँ[19]।

और भी चार भोगभूमि क्षेत्र स्थित हैं। पूर्व और अपर (पश्चिम)विदेहमें कल्याणकारी व सुखकर चौथा काल सदैव एकरूप स्थित रहता है। भरत और ऐरावत दोनो क्षेत्रोमे कालके उत्सर्पिणी व अवसर्पिणो आरोंका प्रवर्त्तन होता है। हिमालयके मध्यसे दक्षिणकी ओर विजयार्द्ध (पर्वत)से होकर सागरपर्यंत बहनेवाली गंगा व सिंधु इन दोनो नदियोसे भारतवर्ष छह खंडोमे विभक्त होकर विराजमान है, और आकारसे चाप चढ़ाये हुए धनुषके समान (अर्धचंद्राकार) जाना जाता है। इस क्रमसे द्वीपोसे क्षेत्रोकी संख्या दुगुनी है। फिर धातकी खंड और पुष्करार्द्ध हैं। इस प्रकार अढाई द्वीपोको लेकर मानुषोत्तर पर्वत-तक मनुष्योका आवास है। पुष्करार्द्धकी धुरी (मानुषोत्तर पर्वत) के परे तिर्यंच और देवोंका विशाल सचार क्षेत्र है ॥११॥

[१२]

ऊपर पाँच राजू परिमाण मुरजके आकारसे सोलह स्वर्ग तथा चार विमानोसे युक्त नव-ग्रैवेयक हैं। (इन सबके) ऊपर सर्वार्थसिद्धि (नामक स्वर्ग) कहा गया है। प्रथम दो स्वर्गोमें दो सागर, तृतीय और चतुर्थमे सात सागर तथा ऊपरके दो स्वर्गोमे दस, चौदह, सोलह, अट्ठारह और बोस सागर आयु है। आरण और अच्युत तथा नव-ग्रैवेयकोमे क्रमश बाईस सागर व उससे एक-एक सागर बढती हुई सुखाकर (सुखदायक) आयु है। ऊपरके चारो विमानोमें एक

११ क °वरहिंदेहि, ख ग °विदेह। १२ क घ ङ ओस°। १३ घ °त्तइं। १४ क ख ग ङ तह। १५. घ ओस°, ङ उस°। १६ क ख ग ङ °हिंहि, घ उअहिहिं। १७ क °इं। १८ ख ग रोविउ°। १९ ग नि°। २० घ ङ °णउं। २१ ख ग ङ °सडे, घ धादइसडि। २२ ख ग °द्धए, घ °द्धइं। २३ क ङ °दीवइ, च दीवहं। २४ ख ग मण°। २५ ख ग नरलोउ।

[१२] १ क ङ °रिम। २ क ङ गेवज्जु, घ गेवज्ज। ३ क ङ धरि, घ धरि। ४ ख ग घ °सग्गेंहि, ङ °सग्गहि। ५ क ङ विहि। ६. ख ग तइयइ, घ तयइं। ७ ख ग घ विहि। ८. ख ग विहें, घ विहि। ९ क ङ °ड, ख ग °हि। १०. क घ तह। ११ च दह। १२ ख ग घ °दह। १३. घ °रहं। १४ ख ग घ च °यरु। १५ ख ग आणु°। १६ घ °ज्जहि। १७. ख ग घ वड्ढइ। १८ क ङ °वि। १९ क ङ सल्लहिं।

इय कप्पेसु विसयसुक्खारह[20] वेमाणिय[21] हवंति[22] तह बारह[22]।
भावणदसपयार[23] अण्णे तहिँ[23] अट्ठभेय विंतर एक्कत्तहिँ[24]।
जोइस पंचपयार पमाणिय एम निकाय चयारि[25] वि जाणिय[26]।
घत्ता—एक्करज्जु[27] लोयग्गु[28] थिउ[29] विवरियछत्तायारु[30] सुहावइ[31]
दंसण-णाण-चरित्ततणु[32] अमलकलंकु सिद्धु[33] तं पावइ ॥१२॥

[१३]

पुणु वि मुणिंदु कम्मु निकंतइ बोहिमहागुणु रयणु[1] वि चिंतइ।
बालुयसायरम्मि ठिय भावइ[2] हीरयकणिय[3] कवणु किर पावइ[4]।
इय संसारि[5] जोणिसंकिण्णइ थावरजंगमजीवपवण्णइ[6]।
वियलिंदियबाहुल्लु[7] वियंभइ[8] पंचेंदियतणु दुक्खहिँ[9] लब्भइ[10]।
तहिँ[11] मि[12] सिंगि-पसु-पक्खि[12] बहुत्तणु कह व पमाए[13] लहइ[14] नरत्तणु।
लद्धए[15] माणुसत्ते[16] सुकुलक्कमु[17] संपुण्णिंदियत्तु[18] सुइसंगमु।
सव्वु वि दुल्लहु[19] लहेवि वियक्खणु धम्मु न पावइ जइ दसलक्खणु[20]।

समान तेतीस सागरकी आयु है। इन कल्पोमे विषयसुख भोग सकनेमे समर्थ बारह वैमानिक देव होते हैं। दूसरे दस प्रकारके भवनवासी देव हैं, और व्यंतर एकत्र रूपमे आठ प्रकारके हैं। पाँच प्रकारके ज्योतिष देव कहे गये हैं। इस प्रकार देवोंके चार निकाय जाने गये हैं। (सबसे ऊपर) एक राजू- प्रमाण लोकाग्र (सिद्धलोक) स्थित है, जो खुले हुए छातेके आकारका शोभायमान है। दर्शन, ज्ञान व चारित्ररूपी शरीरको धारण करनेवाला अमल(कर्ममल रहित) व अकलंक सिद्ध पुरुष ही उसे प्राप्त करता है ॥१२॥

[१३]

फिर वह मुनीद्र कर्मोको काटते हुए बोधिरूपी महान् गुणकारी रत्न (बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा) का चितन करने लगा—बालुकासागरमे पड़ी हुई हीरेकी कणिकी इच्छा करनेपर उसे कौन पा सकता है? इसी प्रकार नाना योनियोमे संकीर्ण तथा स्थावर व जगम जीवोसे भरे हुए इस ससारमे विकलेद्रिय जीवोका अतिशय बाहुल्य है। पचेंद्रिय शरीर बड़े कष्टमे मिलता है। वहाँ पर भी सीगोंवाले एवं अन्य पशुओ तथा पक्षियोका ही बहुत्व है। किसी तरह बड़े कष्टमे मनुष्यत्व प्राप्त होता है। मनुष्यत्व मिलनेपर (फिर किसी तरह) उच्च कुलपरपरा, इंद्रियोकी पूर्णता, एवं श्रुति(शास्त्र)का सगम (सयोग) होता है। और इन सब दुर्लभ वस्तुओंको

---

२०. ख ग °रह, घ °रिह। २१. ख ग वइमाणिय। २२ घ तह बारह, ङ बारहविह। २३ क ङ अवरे त्तहिं, अन्ने त्तहिं। २४. क घ ङ एक्केत्तहिं, च एक्कहिं तहिं। २५ ख ग °रे। २६ क ङ यां°। २७ घ एक्कु°। २८ घ ग्गे°। २९. क ङ ठिउ। ३० घ °यार। ३१ क °वइ। ३२ ख ग °गुणु। ३३ क ङ सिद्ध।

[१३] १. क °ण। २. क °इ। ३ क ख ग ङ हीरइ°। ४ ख ग घ °र। ५ ख ग घ °णाइ, घ °न्नइ। ६. घ °न्नइ, ख ग °ण्णइं। ७ ख घ च °ल्ल। ८ घ °भइं। ९ क घ ट दुक्खिहिं, ख ग °हे। १० क घ °इं। ११ ख ग तहि। १२ क ङ पक्खि-पसु सिंगि। १३ क °ए। १४ क घ ट °इ। १५. घ °इ। १६ क ङ °सुत्ति। १७ क ङ सुकुलुग्गमु, घ सुकुलग्गमु। १८ घ °सुन्नं°। १९ ख ग °हो। २०. क घ ङ दह°।

तो निरत्थु जम्मु वि संपत्तउ वयणु व[21] विमलु[22] चक्खुपरिचत्तउ।
धम्मु वि[23] लहेवि जो न तं पालइ छारनिमित्तु घुसिणु सो जालइ।
घत्ता—इय चिंतिव्वउ रत्ति-दिणु दिढसम्मत्तविंत्ति-दय-संजमु।
भवे भवे सामिउ[24] परमजिणु होउ समाहिए[25] महु मरणु[26] ॥१३॥

[१४]

पुणु वि पुणु वि परिभावइ मुणिवरु[1] दसविहधम्महँ[2] आवज्जणपरु।
कयदोसेसु[3] रोसु वंचिज्जइ[4] उत्तमखमइ[5] धम्मु मंडिज्जइ[6]।
जाइमयाइमाणपरिहरणउ[7] मद्दवविंत्ति[8] धम्मआहरणउ[9]।
कायवायमण जोउ अवक्कउ अज्जवभावे धम्मु तहि थक्कउ[10]।
[11]पत्तपरिग्गहलोहु चयंतहो सउचायारपरहो[12] धम्मु वि तहो[13]।
सप्पुरिसेसु साहुसंभासणु सच्चु[14] वि धम्मु[15] अहम्मविणासणु।
दुद्दमइंदियगिद्धिनिरोहणु संजमु नामु धम्मु[16] मणरोहणु।
कम्मक्खयनिमित्तु निरवेक्खउ तउ चिज्जंतु[17] करइ[18] पावक्खउ।
सीलविहूसियाण जं दिज्जइ[19] जोग्गु दाणु तं[20] चाउ भणिज्जइ।

उपलब्ध करके भी यदि कोई बुद्धिमान् दशलक्षण धर्मको प्राप्त न कर सके तो उसका जन्म वैसे ही निरर्थक हुआ, जिस प्रकार चक्षुरहित निर्मल(सुंदर)मुख। और धर्म पाकर भी जो उसे नहीं पालता, वह मानो राखके लिए केशरको जलाता है। पूर्वोक्त प्रकारसे रातदिन सोचना चाहिए, और दृढ़ सम्यक्त्ववृत्ति तथा दया व संयम रखते हुए यह भावना करनी चाहिए कि भव-भवमें परम जिन (अंतिम तीर्थंकर महावीर) हमारे स्वामी (इष्टदेव) हों, व मेरा मरण समाधिपूर्वक हो ॥१३॥

[१४]

दशविध धर्मके अभ्यासमें तत्पर वह श्रेष्ठ यति पुनः पुनः चिंतन करने लगा—दोष (अपराध) करनेवालोंके प्रति रोषका त्याग करना चाहिए। उत्तम क्षमासे धर्मको अलंकृत करना चाहिए। जातिमद आदि मानका अपहरण करनेवाली मार्दववृत्ति धर्मका आभूषण है। काय, वाक् और मनका अवक्र(निष्कपट, सरल)-योग आर्जवभावमें ही होता है, और उसीमें धर्म स्थित रहता है। पात्र आदि परिग्रहके प्रति लोभ त्यागनेवाले तथा शुद्धाचारपरायण व्यक्तिका ही शौच धर्म सच्चा होता है। सत्पुरुषोंके साथ साधु संभाषण ही सत्यधर्म है, जो अधर्मका विनाश करनेवाला है। दुर्दम इंद्रिय-लोलुपताका निरोध करना यह संयम नामका धर्म है, जो मनका निग्रह करनेवाला है। कर्मक्षयके निमित्त निरपेक्ष (निष्काम) भावसे तपका संचय करनेवाला व्यक्ति ही पापोंका क्षय करता है। शीलसे विभूषित

२१ क ख ग ङ वि। २२ प्रतियोंमें 'विमल'। २३ क ङ में 'वि' नहीं। २४. क ख ग ङ °ई। २५. क ङ °हिय। २६ घ मरणुज्जमु।

[१४] १ क ङ जय°। २. क ङ दहविहयम्महो, घ °धम्मह। ३ क ङ °सेंसु। ४. क घ ङ च दडि°। ५ क ख ग ङ °खमइ। ६ क °ज्जइ। ७. ख ग णडं, घ ङ °णउं। ८ क ख ग ङ °वित्तु। ९ क ङ धम्मु आहरणउ, घ °णउं, ख ग °णड। १० क °उ। ११ क ङ पत्तु°। १२ क घ ङ °यारु प°। १३ क तहु, ङ तहु। १४ क ख सव्चु, च सच्छु। १५. क वम्म। १६ ख ग वम्म। १७ क वि°; ख ग ङ कि°। १८ क ख ग °ह। १९. घ कि°। २०. ख ग घ सो।

एहु[21] महारउ इय मइ मुचइ[22] परिवज्जियकिंचित्तु[23] पवुच्चइ।
नवविह-बंभचेरु[24] जो[25] रक्खइ[26] चडेवि धम्मि सिववहुय[27] कडक्खइ[28]।
घत्ता — [28]दसलक्खणधम्माणुगउ[29] जीउ न जाम कम्मु[30] निकंदइ[31]।
मिच्छादंसणविणडियउ[31] सुद्धचरित्ति ताम कउ नंदइ[26] ॥१४॥

[१५]

अणुवेक्खाउ एम भावंतहो निम्मलझाणे चित्तु[1] थावंतहो[2]।
देहभिन्नु[3] अप्पाणु गणंतहो निरवहि-[4]सासयसोक्खु मुणंतहो[4]।
पत्तपरीसहदुहअवसायहो[5] विज्जुच्चरहो विमुक्ककसायहो।
[6]जिह जिह[6] रुहिरु पियइ[7] भूयावलि [8]तिह तिह मुणि मण्णइ[9] गय भवकलि।[10]
मासु वि तडयडतु तुट्टंतउ पेक्खइ[11] कम्मोवहि खुट्टंतउ।
हड्डइँ[12] कडयडंत[13] खज्जंतइँ जाणइ[14] कट्ठाइ व भज्जंतइँ।
एम समाहिए[15] मरेवि सुसत्तउ[15] गउ सव्वत्थसिद्धि[16] संपत्तउ।

व्यक्तियोको जो योग्य दान दिया जाता है, उसे त्यागधर्म कहा जाता है। 'यह मेरा है' इस मतिको छोड देना परिवर्जित-किंचित्त्व अर्थात् आकिंचन्य धर्म कहलाता है। जो नव-विध ब्रह्मचर्यका रक्षण करता है, वह धर्म(रूपी पर्वतके शिखर) पर चढकर शिववधूको कटाक्षोसे देखता है, अर्थात् मोक्षलक्ष्मीसे परिणय करता है। जबतक जीव दशलक्षण-धर्मोका अनुगामी होकर कर्मोका उन्मूलन नही करता, तबतक मिथ्यादर्शनसे छला हुआ वह जीव शुद्ध चारित्र अर्थात् शुद्ध आत्मस्वभावमे लीनतामें कैसे आनंदित हो ? ॥१४॥

[१५]

इस प्रकार अनुप्रेक्षाओकी भावना करते हुए, निर्मल(धर्म)ध्यानमे अपने चित्तको स्थापित करते हुए, अपने आत्माको देहसे भिन्न मानते हुए, निरवधि-निःसीम शाश्वत(मोक्ष) सुखको समझते हुए अर्थात् उसीका ध्यान करते हुए, एवं आये हुए परीषह-दुखके वशीभूत न होनेवाले तथा कषायरहित विद्युच्चर महामुनिका जैसे-जैसे भूतोका वह समुदाय रुधिर पान करता, वैसे-वैसे मुनि अपना भवकलह अर्थात् ससारमे बार-बार जन्म-मरणका झगडा, मिटा हुआ मानता। मासके तड-तड़ करके टूटनेको वह महामुनि कर्मोपाधिके खड-खंड होनेके समान देखता; और कड़-कड करके खाये जाते हुए हाडोको वह भग्न किये जाते हुए काष्ठादि पदार्थोके समान जानता। इसप्रकार वह शुद्धसत्त्व अर्थात् शुद्धात्मा मुनि (शुद्धभावोसे)

२१ क घ ङ च एउ। २२. क °इ, घ मुज्जइ। २३. क ङ °किंचत्तु। २४ क घ ङ णवविहु बभं°।
२५ क जे, ङ ज। २६ क °इ। २७ ख ग °वहुव। २८ क ङ दह°। २९ ख ग °ण गइ, घ °णु
गइ। ३० क ङ कम्म। ३१ घ °दंसणि विण°, ख ग °निवडियउ।

[१५] १ ख घ चित्त। २ ख ग थाव°। ३ क देव°; क ङ °भिण्णु। ४ ख ग °मोक्ग-
मग्गंतहो। ५. घ °परीसह°, क घ ङ °अविसायहो। ६ ख ग जह जह, घ जिह जिह। ७. घ °इ।
८. ख ग तहं, तह, घ तिहु तिह। ९ ख ग मन्नइ, घ मन्नइ। १०. क ग ग ङ °मलि। ११ क घ ट
पेक्खिवि। १२ क ग ङ °इ, ख हड्डय। १३ क ङ °डति। १४ ख ग व ङ °उ। १५. क घ ट °विगु
सुत्तउ। १६ च सव्वट्ठ°।

हत्थपमाणु देहु जायउ तहिँ सायर तिण्णितीस [17]आउसु जहिँ।
जत्थहो[18] चइवि जीउ[19] नासियरइ[20] एक्कभवेण लहइ पंचमगइ।
इयक्कमेण आरिसे जिहँ[21] जाणिउ[22] जंबूसामिहो[23] चरिउ[24] समाणिउ[25]।
घत्ता—सोयारनरहँ तह[26] पाढयहँ [27]चाउवण्णसंघसमदिट्ठिहि[27]।
सोक्खपरंपरु[28] परमफलु मंगलु[29] देउ वीरु जिणु गोट्ठिहिँ ॥१५॥

इय जंबूसामिचरिए सिंगारवीरे महाकव्वे महाकइदेवयत्त[30]—सुयवीरविरइए बारहअणुपेहाउ[31]
भावणाए विज्जुचरस्स [32]सव्वट्ठसिद्धिगमणं नाम [33]एयारसमो
संधी समत्तो[33] ॥संधिः ११॥

समाधिमरण करके सर्वार्थसिद्धिको प्राप्त हुआ। वहाँ उसका हस्तप्रमाण देह हुआ, और तेतीस सागरकी आयु, जहाँसे च्युत होकर जीव समस्त रति अर्थात् राग (एवं द्वेष) का नाश करके एक बार ही जन्म लेकर पंचमगति अर्थात् मोक्षको पा लेता है। इस क्रमसे आर्ष-परंपरासे जैसा जाना, वैसा जंबूस्वामी चरित्रको पूरा किया। श्रोता पुरुषोंको तथा पाठकोको और सम्यग्दृष्टियोके चतुर्वर्ण संघकी गोष्ठीके लिए महावीर भगवान् सौख्य परंपरापूर्वक परमफल(मोक्षप्राप्ति)रूपी कल्याण प्रदान करे ॥१५॥

इस प्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित जंबूस्वामीचरित्र नामक इस
श्रृंगार वीर रसात्मक महाकाव्यमें बारह अनुप्रेक्षाओंकी भावनासे विद्युच्चरका
सर्वार्थसिद्धि-गमन नामक एकादश संधि समाप्त ॥ संधि ११ ॥

१७ ख ग घ तिन्नितीस। १८. क ङ °हु। १९ ख ग जीव। २०. क °रइं। २१. ख ग जहि, ङ जिह। २२. घ ङ °उं। २३ क ग ङ °सामिहिं; ख °सामिहि, घ °सामिहे। २४ क °उं। २५. क ख ग सम्माणिउ, घ वखाणिउ, ङ °णिउं। २६ ख ग घ तह। २७. क °वण्णहो संघहो सम°, घ °समदिट्ठिहिं; ङ °वण्णसंघहो सम°। २८ घ प्रति यहाँ समाप्त। २९ ख मंगल। ३० क प्रति यहाँ समाप्त। ३१ ङ °पेक्ख। ३२ ङ सव्वत्थ°। ३३ ख ग एयारसमो संधिपरिच्छेउ सम्मत्तो, ङ एयारहमा संधो।

॥ संधि ११ ॥

प्रशस्ति

वरिसाण सयचउक्के सत्तरिजुत्ते जिणेदवीरस्स ।
निव्वाणा उववण्णे विक्कमकालस्स उप्पत्ती ॥१॥
विक्कमनिवकालाओ छाहत्तरदसससएसु वरिसाणं ।
माहम्मि सुद्धपक्खे दसम्मि दिवसम्मि संतम्मि ॥२॥
सुणियं आयरियपरंपराए वीरेण वीरनिद्दिट्ठं ।
बहुलत्थपसत्थपयं पवरमिणं चरियमुद्धरियं ॥३॥
इत्थेव दिणे मेहवणपट्टणे वड्ढमाणजिणपडिमा ।
तेणावि महाकइणा वीरेण पयट्ठिया पवरा ॥४॥
बहुरायकज्ज-धम्मत्थ-कामगोट्ठीविहत्तसमयस्स ।
वीरस्स चरियकरणे एक्को संवच्छरो लग्गो ॥५॥
जस्स कई देवयत्तो जणणो सच्चरियलद्धमाहप्पो ।
सुहसीलसुद्धवंसो जणणी सिरिसंतुआ भणिया ॥६॥
जस्स य पसण्णवयणा लहुणो सुमइ सहोयरा तिण्णि ।
सीहल्ल लक्खणंका जसइ नामे त्ति विक्खाया ॥७॥
जाया जस्स मणिट्ठा जिणवइ पोमावइ पुणो वीया ।
लीलावइ त्ति तइया पच्छिमभज्जा जयादेवी ॥८॥
पढमकलत्तंगरुहो संताणकयत्तविडविपारोहो ।
विणयगुणमणिनिहाणो तणओ तह नेमिचंदो त्ति ॥९॥

वीर जिनेंद्रके निर्वाण प्राप्त होनेके चार सौ सत्तर (४७०) वर्ष होनेपर विक्रम काल (वि० संवत्) की उत्पत्ति हुई ॥१॥ विक्रम नृपके कालसे दस सौ छिहत्तर (१०७६) वर्ष होनेपर माघ मासमे शुक्लपक्षमे दशमीका दिन आनेपर वीर (कवि) ने वीर भगवान्के द्वारा निर्दिष्ट प्रचुर अर्थ और प्रशस्त पदोसे युक्त इस श्रेष्ठ चारित्रको आचार्य परंपरासे सुनकर उद्धार किया ॥२-३॥ इसी दिन मेघवनपत्तनमे उसी महाकवि वीरने वर्द्धमान-जिनकी श्रेष्ठ प्रतिमा प्रतिष्ठित की। बहुत-से राजकार्य एवं धर्म, अर्थ और कामगोष्ठीमे विभक्त समयवाले वीर कविको इस चारित्रको रचनेमे एक संवत्सर लगा। शुभशील, शुद्धवंश, सच्चारित्र व लब्ध माहात्म्य कवि देवदत्त जिसके पिता थे, और जिसकी जननी श्री संतुआ कही गयी है, जिसके प्रसन्न-मुखवाले सद्बुद्धिमान् तीन छोटे सहोदर भाई थे, जो सीहल्ल, लक्षणाक और जसई नामोंसे विख्यात थे; जिसकी पहली इष्ट भार्या जिनमती, दूसरी पद्मावती, तीसरी लीलावती और चौथी अंतिम भार्या जयादेवी हुई; और जिसकी पहली पत्नीके गर्भसे संतानोंके लिए समृद्धिरूपी विटप-का प्ररोहरूप, विनयगुणरूपी मणिका निधान नेमिचंद्र नामक पुत्र हुआ; ऐसा वह वीर कवि

---

१ प्रतियोंमे 'कय'।

सो जयउ [1]कई वीरो वीरजिणंदस्स कारियं जेण ।
पाहाणमयं भवणं पियरुद्देसेण मेहवणे ॥१०॥
अह जयउ जसनिवासो जसनाओ पंडिओ त्ति विक्खाओ ।
वीरजिणालयसरिसं चरियमिणं कारिय जेण ॥११॥

॥ इय जंबूसामिचरित्तं समत्तं ॥



जयवंत हो, जिसने अपने पिताको उद्देश्य करके अर्थात् अपने पिताकी स्मृतिमें मेघवन पट्टणमें वीरजिनेंद्रका पाषाणमय भवन बनवाया; और यशका निवास एवं 'यश' इसी नामसे विख्यात वह पंडित जयवत हो जिसने वीरजिनालयके समान इस चारित्रको लिखवाया (अथवा रचना करनेकी प्रेरणा दी ?)॥४–११॥

इति जंबूस्वामी चरित समाप्त ।



१. प्रतियोंमें कय० ।

जम्बूसामिचरिउ

संस्कृत टिप्पण

§ १ ये टिप्पण 'जम्बूसामिचरिउ' की जयपुरके जैन-शास्त्रभण्डारोंसे उपलब्ध ख एवं ग प्रतियों तथा जम्बूस्वामिचरित्र-पंजिका (पं) इन तीन प्रतियोंपर-से संकलित किये गये हैं। ख एवं ग प्रतियोंमें ये टिप्पण ऊपर-नीचे, बायें-दाहिने इन चारों हाशियोंपर मूलके केवल एक शब्दके ऊपर = का चिह्न लगाकर प्रतिकी पंक्ति संख्याका उल्लेख करते हुए लिखे गये हैं, फिर वह टिप्पण चाहे उसी शब्दपर हो, शब्दांशपर हो, किसी पादांशपर हो, पूरे पादपर हो, अथवा पूर्ण पंक्तिपर। इन प्रतियोंमें मूल शब्दका उल्लेख क्वचित् ही टिप्पणके साथ किया गया है, शेष सर्वत्र उपर्युक्त पद्धतिके अनुसार केवल = चिह्नसे ही काम चलाया गया है। पंजिकामें इसके विपरीत सर्वत्र मूल शब्द, अथवा एक साथ यथावश्यक कई शब्दोंका उल्लेख करके टिप्पण लिखे गये है। इस पद्धतिसे टिप्पणों व मूल दोनोंको समझनेमें अत्यधिक सहायता मिली है। तीनों प्रतियों (ख ग पं) का पूर्ण परिचय भूमिकामें 'जम्बूसामिचरिउ' की सम्पादन सामग्रीके अन्तर्गत दिया गया है।

§ २ टिप्पणोंकी भाषा अधिकांशतः सरल-संस्कृत है, जो स्थान-स्थानपर संस्कृत व्याकरणकी दृष्टिसे शुद्ध नहीं है। संयुक्त व्यञ्जनोंमें मध्यवर्ती एवं अन्त्य पंचमाक्षरों ङ्, ञ्, ण्, न् एवं म् इन सबके स्थानपर सर्वत्र अनुस्वार ( ) का प्रयोग किया गया है, जैसे सम्बन्ध > संबंध, अङ्ग > अंग, पञ्च > पंच, दण्ड > दंड कार्यम् > कार्यं इत्यादि। ऐसी कुछ अन्य विशेषताएँ भी हैं, जिससे टिप्पणोंकी भाषाको सामान्यरूपसे अपभ्रंश-संस्कृत कहा जा सकता है। टिप्पणोंकी भाषाका कुछ परिचय टिप्पणोंके पाठभेदोंसे भी प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकारकी भाषाका प्रयोग अनेक प्राचीन जैन-हस्तलिखित ग्रन्थोंमें हुआ है।[1]

टिप्पणोंके सम्पादन में 'मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला'के प्रधान-सम्पादकोंके निर्देशानुसार टिप्पणोंकी भाषामें निम्न दो प्रकारके परिवर्तन सम्पादकने किये हैं। एक तो जहाँ-जहाँपर मूलमें पर-सवर्ण (वर्ग का पचमाक्षर) का प्रयोग नहीं मिलता, जैसा कि उपर्युक्त कुछ उदाहरणोंसे स्पष्ट है, ऐसे स्थलोंपर सर्वत्र पर-सवर्ण जोडकर शुद्ध-संस्कृतके अनुरूप बना दिया गया है; एवं दूसरे जहाँ-जहाँ पूर्ववर्त्ती र् के साथ संयुक्त अवस्थामें क्, ग् ज्, ण्, द्, प् ब्, म्, य् एवं व् का द्वित्व मिलता है, जैसे तर्क > तर्क्को (१.३ ३) दुर्ग > दुर्ग्गं (१ १२.६) पूर्वोपार्जित > पूर्वोपार्ज्जितं (२.५.६) °वर्ण > अमरकतवर्ण्णं (१.११.३) निर्दलित > निर्द्दलित (४ २२ ५) वलीवर्द > बलीवर्द्द (७.६.२२) सर्प. > सर्प्प (३ ७ १२) समर्पितः > समर्प्पित. (९.१३ १२) गर्भो > गर्ब्भो (४.१३ १६) मर्मदा > मर्म्मदाः (४ १५.११) सौधर्म > सौधर्म्म. (११ १२ ३) कार्यं > कार्य्यं (३ १३.५) द्रोणाचार्य. > द्रोणाचार्य्य· (८.२ ९) गीर्वाणो > गीर्व्वाणो (२ ३ ९) °पर्वत > कुरुलपर्व्वत (५.१० ११) इत्यादि इत्यादि, ऐसे समस्त स्थलोंपर 'र्'के परवर्ती संयुक्त व्यंजनके द्वित्वका लोप कर दिया गया है। इनके अतिरिक्त अन्य कहीं कोई संशोधन-परिवर्त्तन सम्पादकने अपनी ओरसे नहीं किये हैं। जहाँ किसी ईषत् संशोधन या अर्थ स्पष्ट करनेके लिए कोई सूचना देनेकी अनिवार्यता प्रतीत हुई है, वहाँ उसे [ ] के भीतर दिखाकर मूलसे स्पष्टतः अलग रखा गया है। कुछ उपयोगी पाठभेद भी मिले हैं, उनका यथास्थान मूल अपभ्रंश पाठमें उपयोग कर लिया गया है, और अन्य पाठभेदोंको टिप्पणोंके पाठभेदोंमें सुरक्षित रखा गया है। टिप्पणके द्वारा सूचित अर्थ जहाँ मूलके शब्दार्थके अनुकूल नहीं है, ऐसे स्थलोंपर परिशिष्टमें विचार किया गया है। मूल अपभ्रंश-पाठके संशोधन एवं हिन्दी

---

१ द्रष्टव्य : डॉ० बी० जे० साडेसरा-द्वारा सम्पादित Lexicographical notes on Jain Sanskrit.

अनुवादमें ये टिप्पण बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी सिद्ध हुए हैं, इस कारण समस्त टिप्पणोंको उनके मूलरूपमें यहाँ प्रकाशित किया जाता है।

टिप्पण सन्धि-१

म० प० २ सुतरणि छंकारा—(ख पं) आदित्यजलकणालग्न, (ग पं) तरणिरादित्यस्तस्य तनु शरीर तस्या लग्नन्तश्च ते बिन्दवश्च जलकणास्तेषां छङ्कारास्ते जयन्ति। कथं पुनरचेतनबिन्दुछङ्कारा वन्द्यन्ते ? जगद्वन्द्यतीर्थंकरदेवाङ्गसंपर्कात् तद्‌बिन्दूना वन्द्यत्वं जातम्, तेषामपि वन्द्यत्वमुपपद्यते। दृष्टं च भगवदङ्गसंपर्कात् पुष्पगन्धोदकादीना वन्द्यत्वम्, पुष्प त्वदीयचरणार्[चं ?]नपीठयोग्य भवति, देव जगत्त्रयस्य अस्पष्टमन्यशिरसि स्थितमप्यतस्ते को नामसाम्यमनुशास्ति खगेश्वराद्यैरित्यभिधानात्, 'तरणिल-ग्गंतबिंदुछंकारा' इत्युपलक्षणमेतत्, तेन त्रिभुवनाधिपतिसमाश्रितत्वेन तरणिवत् त्रिभुवने सचरता निर्मल-तोयबिन्दूनां भगवदीयाऽमलज्ञानादिवदप्रतिहतगतित्वमुक्तम्[२], (पं) [उक्त च]

सपूर्णमण्डलशशाङ्ककलाकलाप-शुभ्रागुणास्त्रिभुवन तव लङ्घयन्ति।
ये सश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेक कस्तान्निवारयति सचरतो यथेष्टम्॥

—भक्ता० स्तोत्र श्लोक १४

म० प० ६ अणियच्छिय 'लोयणो जाओ – (ग पं) अस्य व्याख्यानम् : कथं तत् ? परिकल्पितानि सहस्रसंख्याया परिसख्यातानि यानि लोचनानि तै. परिकल्पितलोचनैर्दुःस्थो जात., अपरिपूर्णलोचनो जात, सहस्र[णा]मपि लोचनानामरुणनखमणिरूपावलोकने एव प्रतिलग्न अन्यावयवरूपावलोकने तद्व्यापाराभावात् इन्द्रियान्तरासम्भवात् च तदवलोकने दुस्थत्वं तस्य सजातम्, (प) उक्त च –

'रूवालोवणे रूवासत्तहं तित्ति न पत्त पुरंदरनेत्तहं।
जहिं निवडियइं तहिं चिय गुत्तइं दुब्बलगा इव पकि चहुट्टइ॥'

(ग पं) जिनस्य शरीरेऽष्टोत्तरसहस्रलक्षणानि, इन्द्रशरीरे सहस्रलोचनानि सर्वावयवावलोकने असमर्थानि इति नयनावलोकने दौस्थ्यं दारिद्र्यं जातम्, (पं) उक्त च –

'अट्ठोत्तरसहासलक्खणधरु इदोऽपि सहसनयणु' इति प्रसिद्धम्।

म० प० ७ भमिर…दिणसंकं – (ग पं) भ्रमणशीलभुजवेगभ्रमितज्योतिश्चक्रजनितरजनी-दिवसशङ्केति यथा भवति तथा (पं) क्षणे क्षणे जनितरात्रि-दिवसशङ्काम्', इन्द्रस्य हि सहस्रभुजविकुर्वणा कृत्वा नृत्यतोऽनवरत[३]करणाङ्गहारादिविधानेन भ्रामितज्योतिश्चक्रेण दिवसे स्वस्थानच्युतेन रात्रिशङ्का क्रियते, रात्रौ स्वस्थानच्युतेन दिवसशङ्केति, अथवा क्षणे क्षणे स्वस्थानच्युते[४] क्षेत्रान्तरगते. रात्रिशङ्का, पुनः स्वस्थाने आगतै[५]र्दिवसशङ्केति, ख ओहुस>शरीरदीप्त्या।

म० प० ९ झाणानल…जस्स—(ग) ध्यानाग्नौ होमितः रति>रमणसुखम्, विषयसेवनसुख यस्माद्येन वा, अथवा रते[ ] निजभार्यायाः सुख यस्मात्सौ रतिसुख काम, रइसुहो—(प) रति>रमणात् विषयसेवनात् सुख यस्मात् असौ रतिसुख काम।

म० प० १२ गहियण्ण…सासिउं—(ग प) गृहीतमन्यन्मूलशरीररूपात् व्यतिरिक्त शरीररूपयुगलं येन सः, किमर्थम् ? त्रिजगदनुशासितुं सन्मार्गे प्रवर्त्तयितुम्, न हि रूपत्रयविधानव्यतिरे[६]केन त्रिजगदनुशासितु[७] शक्यते।

म० प० १३ रेहइ—(ग पं) शोभते।

[०.१] १ पं वा। २. प °गतित्वमुण्णत्व (°मुक्तत्व ?)। ३ प °ऽनवरत। ४. प °च्युतेः। ५. पं आगते दिवस°। ६ पं °रेकेणा। ७ प °शासित्वं।

म० प० १४ फणिणो ...फणकडप्पो—(ग पं) धरणेन्द्रस्य [8]विद्युताछिद्रि [°छद्रि]तः आपाढोद्भूतनव-जलधर इव मस्तकचूडामणिकर्बुरितः फटाटोपः फटासघातो वा[9]

आदिदेवं स्तुत्वा पार्श्वनाथस्तवनानन्तर वर्द्धमानस्वामिनः स्तवनकर्तुमुचितः, तत्र क्रमोल्लङ्घनेन स्तवनकरणे किं कारणम् ? ग्रन्थकारस्य वर्द्धमानस्वामितीर्थे रत्नत्रयलाभः। उक्तं च—

जस्संतियं धम्मपइं नियच्छे तस्सविय वेणइय पउंजे।

काएण वाचा मणसा वि णिच्चं सक्कारए त सिरपंचमेण ॥

१.१.२ पारंभिय जिह कह—(ख ग पं) यथा कथा आगमे प्रसिद्धा तथैव प्रारब्धा।

१.१.३ वड्ढमाणु—(ग पं) वर्द्धमाननामा, तित्थु—(ग पं) संसारसागरोत्तरणहेतुभूतत्वात् तीर्थमागमः, उत्तमक्षमादिधर्मचारित्रं च, जगे वड्ढमाणु—(ग प) जगति सर्वोत्कृष्टं।

१.१.४ जम्माहिसेउ—(ग प) जन्माभिषेकः; सेउ—(ग पं) सेतुबन्धः।

१.१.५ धीरु—(ग पं) निष्कम्पः, निन्नासिय ...वीरु—(ग पं) निर्नाशिता °आशङ्का शङ्का[10] येन, हस्ते हि [11]अष्टयोजनायामदैर्घ्य, योजनैकमुखाऽष्टोत्तरसहस्रकलशान् गृहीत्वाऽन्तरं भगवच्छरीरमवलोकयतः इन्द्रस्य शङ्कोत्पन्ना एतावता जलप्रवाहेन भगवान् [12]वाहयित्वा नीयते लग्न इति शङ्का चरणाग्रेन मेरुचलनान्निहिता [°हता] निर्नाशिता ततो भगवतः शक्रेण वीर इति नाम [°मं ?] कृतवान् [कृतम् ?]

१.१.६ धामु—(ग पं) तेज, लोया....धामु—(ग पं) लोकालोकस्थिति।

१.१.७ जयसासणु—(ख ग पं) जगत शासनं सन्मार्गे प्रवर्तनात्, सरणु—(ग पं) त्राता रक्षक[13] इत्यर्थः।

१.१.८ भूइ—(ख पं) राख वा भस्म, भूइकय—(ग पं) भस्मीकृत, कंमेंदृबधु—(ग पं) [14]पद्मबन्धुरादित्य इत्यर्थ; बंधु—(ख पं) चन्द्र वा रविः।

१.१.९ वरकमला ... मुत्ति—(ग प) वरा चासौ कमला च लक्ष्मीरित्यर्थस्तया आलिङ्गिता, चार्वी शोभावतीमूर्तिः विशुद्धात्मस्वरूपं शुद्धस्फटिकशङ्काश[15] [°सकाशं ?] शरीरस्वरूपं च यस्य, साहिय परममुत्ति—(ख पं) साधितं मुक्ति मोक्षं वा, परममुत्ति—(ग पं) परममुक्ति सम्यक्त्वाद्यष्टगुणोपेता सिद्धावस्था।

१.१.१० वयणामय ...सत्तु—(ग पं) वचनामृताश्वासितसकलप्राणिगण।

१.१.११ तित्थंकरु (ग पं) तीर्थमागम उत्तमक्षमादिलक्षणो धर्म चारित्रं च, करोति परेषामग्रे प्रतिपादयति स्वयमनुतिष्ठतीति [16]चेत्तीर्थकर, सासयपयपहु—(ग पं) शाश्वतपदं मोक्ष तस्य प्रभु स्वामी, पन्था वा मार्ग, सम्मइ—सन्मति नामा।

१.१.१२ सम्मइ—(ग पं) शोभनामति[17] केवलज्ञानम्।

... ...

१.२.१ मंदमइ—(ख) स्वल्पमति, (ग पं) स्वल्पमतिः [1]घनमतिश्च निपुणमतिरित्यर्थ; सविणयगिरु—(ग पं) सविनयवचन.।

१.२.२ जियइ—(ग पं) जागर्ति[2] उद्यतरि[ति इ]त्यर्थः, न जियइ—(ख पं) न पश्यति।

१.२.३ नारुहइ—(ख ग पं) न योग्यो भवति।

१.२.४ पयडइ दोसछलु—(ख पं) असद्भूतदोषोद्भावनम्[3], खलु (ख पं) दुर्जनः।

८ प विद्युत°। ९ प वा तत्। १० पं आसंकिना। ११. पं द्वादशयोजनप्रमाणकलशं। १२ पं वाहियित्वा। १३ पं रक्षक। १४ पं °रादित्येत्यर्थः। १५ पं °शकाश। १६. ग च तीर्थ°। ७. ग °मति।
[१.२] १. पं °मतिश्चेन्निरंतरं निपुणं। २. पं जाग्रति। ३. पं °द्भावनं।

१.२.५ परगुण""परंपरए—(ग पं) परेषां गुणास्तेषां परिहारस्य परम्परा सातत्यं तया; कथंभूतया ? परए—(ख ग पं) परया परमप्रकर्ष[4] प्राप्तया; ओसरउ—(ग पं) मम काव्याग्रे मा भूत्, हयासु—(ग पं) हृतवाञ्छः मदीयं काव्ये दोषाणामभावात् तदीया दोषोद्भावनवाञ्छा हृता।

१.२.६ विउसहो—(ग पं) पण्डितस्य, मज्झत्थहो—(ग पं) गुणान् गुणरूपतया, दोषान् दोषरूपतया च परिभावयतो मध्यस्थस्य।

१.२.७ परिछंछिवि—(ग प) विनाश्य।

१.२.८ एक्कगुणु—(ग पं) काव्यकर्तृत्वमेव एकः कस्यचित् गुणः, पउजेव्वइ णिउणु—(ग प) व्याख्यानयितु निपुणः। अत्रार्थे दृष्टान्तमाह।

१.२.९ एक्कु जे""जणइ—(ग पं) एक[5] सुवर्णपाषाण हेमं स्वर्णं जनयति, न तस्य परीक्षा कर्त्तुं समर्थः; अण्णेक्कु""कुणइ—(ग पं) अन्नेक्कु—कसवट्ट. रोषपाषाणस्तस्य सुवर्णस्य गुणदोषपरीक्षा करोति।

१.२.१० बहयमइ—(ग पं) करण—[6]व्याख्यानोभयमतिः।

१.२.११ सुइ सुहयरु—(ख ग पं) [7]श्रुतिसुखकरः, फुरंतु मणे—(ग पं) चेतसि परिस्फुरन् प्रतिभासमानः, कव्वत्थु णिवेसइ—(ख ग पं) काव्यार्थमारोपयति।

१.२.१२ रस—(ख) शृङ्गार-हास्यादि, रसभावहिं—(ग) रसा नव शृङ्गारादय, भावाश्चित्तोद्भवा वल्हा[ल्ला]सास्तै., रसभावहिं—(पं) रसा नव :

> शृङ्गार-वीर-बीभत्स-हास्य-रौद्र-भयानकाः।
> करुणाद्भुत-शान्ताश्च नव नाट्ये रसा. स्मृताः।

इति वचनात्। चित्तोद्भवैरुल्लासविशेषैः—

> हावो मुखविकार. स्याद् भावः स्याच्चित्तसभव।
> विलासो नेत्रजो ज्ञेयो विभ्रमो भ्रूयुगान्तयो—रित्यभिधानात्।

१.२.१३ सो चेय"""करइ—(ग प) स्वयंभूसमानः पुरुष., गव्वं—अहङ्कारम्, यदि न करोति, तहो कज्जे"" "धरइं—(ग पं) तस्य निमित्त पवनो वातवलयरूप, एवंविध पुरुषरत्न त्रिभुवने तिष्ठतीति मत्वेति त्रिभुवनं धरति।

१.२.१४-१५ अकहिज्ज°" °जाणहिं—(ग पं) अकथ्यमानोऽपि कविश्चौरश्च लक्ष्यते, कैः लक्ष्यते ? बहुजाणहिं—प्रचुरज्ञानवद्भि, किं विशिष्टोऽपि ? कय अण्णवण्णेत्यादि—कृतान्यवर्णपरिवर्तमानोऽपि। कविः कृतान्यवर्णपरिवर्तन. [8]अकारादिवर्णगचितवर्णरचनाविशेष, चौरस्तु कृतब्राह्मणादिपरिवर्तनरूपविशेष.; कैः कृत्वा लक्ष्यते ? पयडवन्धसंधाणहिं—(ग पं) सुकवि प्रकटै· प्रसन्नोदार-गम्भीर-सुश्लिष्ट-रसाढ्यकाव्यबन्धसघानै, (पं) सधिविधानैश्च, चौरस्तु प्रकटैर्बहुबन्धसंधानै. लक्ष्यते।

१.३.१ वावडेण—(ख) व्याप्तेन, सामग्गि""जडेण—(ख) एव गुणविशिष्टमहाकवीश्वरान् काव्यबन्धकृतम्, मया जडेण—मूर्खेण कें [किम् ?]।

१.३.२ परिकलिउ"""सद्दसत्थु—(ख पं) सहृदयालक्षणेनार्थेन वर्तत इति सदर्थः यः प्रदीप एव मया परिकलित., परिज्ञात, न तु शब्दशास्त्राणि अष्टौ व्याकरणानि, सुत्तु—सूत्रार्थम्, सुत्तु वि""वत्थु—(ख पं) सूत्रमपि येन वस्त्र निष्पाद्यते तत्परिज्ञातम्, न तु सन्दर्भसिद्धिवत्त्वनव्याकरणसूत्रम्, चतुष्काहृतातन्त्रसूत्राणि।

---

४. पं °प्रकर्ष। ५ ग एवकः। ६. ग व्याख्यातुरुभय°। ७. ग श्रोत्र°। ८ पं आकारादि°।

१३-३ वणगड सुणिउ—(ख) वने गज एवं श्रुतम्; वणगउ…सुणिउ—(ग पं) स्वच्छन्दो घण्टारहितश्च वनगज एव मया श्रुत., न तु सहछन्दो[1] समात्रा प्रस्तारेण निघण्टो[2] नाममालाऽमरकोशादिर्न[3] श्रुत.[4], गोरस……सुणिउ—(ग पं) तक्र गोरसविकारो दधिविकार एव श्रुतम्, विज्ञातम्, न तु तर्को युक्तिशास्त्रं कन्दली किरणावली अष्टसहस्री[5] प्रमेयकमलमार्त्तण्डादिकं न श्रुतम्, न ज्ञातम्[5]।

१३.४ महकइ…सेउ—(ग पं) समुद्रबन्ध रामायणे एव श्रुत. न तु सेतुबन्धो नाम महाकविना प्रबन्धेन [प्रवरसेनेन ?] राज्ञा विनिवद्धः काव्यभेद काव्यविशेष., सेउ—(ख) समुद्रबन्ध.।

१३.५ गुणु 'सुयनामकरणि—(ग पं) गुण. स्वजने एव वृद्धिश्च सुतनामकरणे एव श्रुतः, न तु 'नाम्यन्तयोर्द्वौ' 'तु विकरणयोर्गुणः' इति 'वृद्धिरादौ सणे इति (?) च एते गुणवृद्धी व्याकरणे प्रसिद्धे[6] ज्ञाते; चारित्तविंत्तु—(ग पं) वित्तं चारित्रमेव ज्ञातम्, न तु वृत्त एकाक्षरादि वृत्तजातिविशेष; पयबंधुवरणे—(ग पं) पयसः पानीयस्य बन्धः वरण एव ज्ञातः, न तु गद्य-[7]पद्यबन्धरूपाः काव्यविशेषा.[7]।

१३६ दुव्वयणु—(ख) दुर्जनवत् दुर्वचन, दुव्वयणु…जाणिउ—(ग पं) दुर्वचनः पिशुन एव ज्ञात, न तु द्विर्वचन द्विर्वचनमनभ्यासस्यैकस्वरस्याद्यस्य, उवलक्खिउ…समासु—(ग पं) सहमासेन वर्तत इति स-मासः सवत्सर एवोपलक्षितो ज्ञातः, न तु व्याकरणे प्रसिद्ध[8] समासोऽव्ययीभावादि[9]।

१.३.७ सुहियए—(ग पं) एवमेव।

१.३.८ निरत्थु—(ग पं) विकलप्रयास।

१.३.९ अह…पवंधु—(ग) अथ महाकविरचितप्रबन्धः।

१.३.१०. विद्धउ…पइसिज्जइ—(ग पं) यथा अतिकठिने महारत्ने हीरकेण विद्धे कृतछिद्रेण मृदुना सूत्रेणापि प्रविश्यते, तथा महाकविरचिते[10] गाथाप्रबन्धरूपे जम्बूस्वामिचरित्रप्रबन्धः पच्छडिका [पज्झटिका ?] प्रबन्धद्वारेण सुखेन क्रियते इत्यत्र न किंचिदाश्चर्यम्।

१४.१ गुडखेड—(ख ग) गुडखेडदेशात्, सुहचरणु—(ग पं) शोभनानुष्ठानः।

१.४.२ सिरिलाडवग्ग—(ख) गोत्र; निव्वूढकसु—(ग पं) काव्यकरणे सुकविकशोत्तीर्णः।

१.४.४ कविगुण—(ग पं) कवितागुणः।

१.४.७ तहो—(ख ग) देवदत्तस्य कवे.।

१.४ ८ संतुवगब्भुब्भउ वीरु—(ख ग) संतुवा माता, वीर कवि।

१.४.९ अखलिय…कलिवि—(ग पं) संस्कृतकविरस्खलितस्वर इति ज्ञात्वा, सुउ—(ग) वीर कविः।

१४.१० कि इयरें—(ग पं) संस्कृतप्रबन्धेन किम्।

१५.३ रसइ—(ग पं) वार्यति।

१५४ सुही—(ख ग पं) मित्र; वीरु…दिहि—(ख पं) हे स्वजनधृते वीर.; (ग) कृतसुजनधृते वीर.।

१५५ उद्धरिउ—(ख ग पं) विरचितम्, संकिल्लहि—(ग) संक्षेपं कृत्वा कथय।

१५६ पडिभणइ—(ग पं) प्रतिवचन ददाति।

[१.३] १ पं °छंद। २. पं निघंटो। ३. पं °कोशादि न। ४ ग श्रुता.। ५. ग °दिक न श्रुत न ज्ञातः। ६. पं प्रसिद्धा। ७ ग °रूपः काव्यविशेषः।। ८. पं °द्धाः। ९ पं °भावादि। १० पं °रूपो।

१.५.७ किय तुच्छकहा—(ग) मक्षिप्ता स्वल्पा कथा कृता सती, (पं) संक्षिप्त-स्वल्पा कृत कथा।

१.५.८ सरहु—(ग पं) अष्टापद ।

१.५.१० निवाणु—(ग पं) जलस्थानम्।

१.५.११ थोवड करयत्थु—(ख ग पं) स्तोक करकलियतं संस्कृतम्।

१.६.१ अवि य—(ख ग पं) अपि च; समत्थमाणेण—(ख ग पं) भरतवचन समर्थयमानेन :

१.६.३ जाणं—(ख पं) येषाम्।

१.६.४ उग्गिरंता—(ख ग पं) प्रकाशयन्ती[१] ।

१.६.५ संति ...वाई वि—(ग पं) कवयः, वाई वि हु—वानुर्वादिनोऽपि बहव सन्ति, हु—(ख) इह लोके ।

१.६.६ रससिद्धिसंचियत्थो—(ख) रससिद्धि सचियर्थो [°तार्थो ?] निपातितार्था वा सुवर्णशृङ्गारादि नवन[वा]दि, (ग पं) रससिद्धया संचितार्थ. निष्पादित[२] सुवर्ण, पक्षे शृङ्गारादिरसाना सिद्धयाऽन्यथा संचितो[३] रचितः शोभनवर्णेषु अर्थो येन स , विरलो—(पं) प्रविरल, एक्को—(ग पं) अन्य ।

१.६.७-८ जाणं वाणी साहयवट्टि व्व अदिट्ठपुव्वत्थे निव्वडइ—(ग पं) यथा सावकवर्तिरदृष्टपूर्वेऽपि निधानलक्षणेऽर्थे उपयोगविशेषान्निपतति, (ख ग पं) तथा येषां कवीनां वाणी केनापि कविना अदृष्टपूर्वेऽर्थे निपतति प्रवर्तते, अथवा निव्वडइ—विचार्यमाणा कषोत्तीर्णा भवति। कथं पुन केनाप्यदृष्टेऽर्थे केषांचिन्मति. प्रवर्तत इत्याशङ्कयाह ।

१.६.९ जाणं ...रमइ—(ग पं) येषा कवीना समग्रशब्दौघ. संस्कृतशब्द-प्राकृतशब्दसंघात. स एव क्षिन्दुक रमति स्फुरति उच्छलति नानार्थेषु प्रवर्तते, कस्मिन् सति ? मइफलहम्मि—(ग) मत्येव स्फटिकस्तस्मिन् कन्दुकोच्छलन् भूमिप्रदेशे, (पं) मत्या फडक. उच्छलनमनेकार्थेषु प्रवर्तनम् ।

१.६.१० ताणं....परिप्फुरइ—(ग प) तेभ्योऽप्युपरितना अधिका कस्यापि बुद्धिः परिस्फुरति अपूर्वार्थेषु प्रवर्तते ।

१.६.१६ जिणवइनाह—(ख ग पं) जिनमतं[४][:]भार्यायाः नाथ, जिनपतिर्वा[५] नाथो यस्य[६] ।

१.६.१८ धम्मायार ...भारहभूसणु—(ख ग पं) पाण्डवाना नाथो युधिष्ठिर· - धर्माचारयुक्त (९) निर्दूषणश्च, तहा[था] मगह[ध] देशोऽपि, भारहभूसणु—पाण्डवनाथो भारतपुराणस्य भूषणो मण्डनभूत, मगधदेशस्तु भरतस्येश (?) भारता (?) भरतक्षेत्रं तस्य भूषणः।

१.६.१९ विसयसारु हंसु व—(ख ग पं) वीनां पक्षिणा शतानि तेषु मध्ये यो हंस. सार उत्कृष्टो वर्ण्यते, तथा विषयाणां देशविशेषाणा मध्ये मगधदेश. सारो वर्ण्यते; किं तु " हंसु व —(ख) हविष· मध्ये यथा तरुणी तेन पयोधरासार. तस्य स्पर्शो तथा मगधदेश विषयसार., (ग पं) किन्तु यथा[७] तरुणीस्तनमण्डलस्पर्श इव, तरुण्या स्तनमण्डलस्पर्शो यथा विषयेषु मध्ये सारस्तथा मगधदेशो विषयेषु सार ।

१.६.२० कुकइ " वीसरु—(ख ग पं) कुकविकृतकथाप्रबन्धो हि विगतस्वरबन्ध विशिष्टसन्धिविधान· विकलः देशस्तु विशिष्टोद्यानादिषु[८] वेनां पक्षिणा स्वरै शब्दै युक्त; कुकइकव्वकहवन्धु नीरसस्स सुमनोहरु भावइ—(ख ग प) कुकविकृतकथाप्रबन्ध. नीरसस्य ग्राम्यस्य पुरुषस्य, भावइ—प्रतिभासते, सुमनोहरः, न तु पण्डितानाम् देशस्तु विशिष्टनीरै. सरसैश्च सुमनोहरः।

[१.६] १ ग °यती। २ पं °दित। ३. ग सिं° । ४ पं °मतो। ५. ख °पतेर्वा। ६. पं यस्या । ७ प तथा। ८. पं °ष्टोपवनादिषु।

१ ६.२१ जहिं—(ग पं) यत्र देशे; जऊ'' गमणउ—(ख ग पं) जलवाहिन्यो नद्यः स्त्रीसमाना[९], स्त्रियो हि स्थिरगमना, नद्योऽपि मन्दगमना, मन्दप्रवाहाः, गुरु'''रमणउ—(ग पं) तया स्त्रियो गुरुगम्भीर-बलात्रिकरमणा नितम्बप्रदेशा.[१०] भवन्ति, नद्यः पुनर्ये गुरवो गम्भीराश्च वलात्रिका महाह्रदास्त[११] एव प्रमाणा नितम्बप्रदेशा. यासां ता, बलाहियरमणउ—(ख) रमणदेशवलाधिकः।

१.६.२२ वियसियइंदीवर—(ग पं) विकसितपद्म ।

१ ६.२३ जलगय '''थणहारउ—(ग पं) स्त्रियो हि स्थूलस्तनधारिण्यो भवन्ति, नद्य. पुनर्जलगजा-जलहस्ति-नस्तेषा[१२] कुम्भस्थलानि तान्येव स्थूला-महान्तः स्तना. तद्धारिण्यः ।

१.६.२४ उहयकूल''' वसणउ—(ख ग पं) [१३]उभयतटवृक्षपरिहितवस्त्राः; सज्जियरसणउ—(ग पं) बद्धमेखला ।

१ ६ २५ सरिउ—(ख ग पं) आश्रितः[१४]; अपेउ—(ग पं) अपेयपानीयम्[१५], विसायरु—विषं कालकूटं पानीयं च तस्य आकरः समुद्र तम् ।

१ ६ २६ जडमइयहिं[१६]—(ग पं) जडमतिभिर्जलमयीभिश्च, अह व तियहिं[१७]''''आयरु—(ग पं) अथवा स्त्रीणा स्वरूपमेतत् गुणवन्तं परित्यज्य सलवणे लावण्ययुक्ते आदरं कुर्वन्ति ।

१ ७ १ जहिं '''कुकलत्ता इव— (ख ग पं) यत्र देशे सरोवराणि सन्ति कुकलत्रसमानानि, कुकलत्राणि हिडहिडितपात्रत्वात् हसितशतवाराणि-वक्त्राणि भवन्ति, सरोवराणि तु हसितानि विकसितानि शतपत्राणि पद्मानि यत्र तानि; अविणय—(ख) अविनयः, सरोवरपक्षे जलनिर्गमनप्रवेश.; अविणयवंतइ—(ग पं) अविनयवन्ति, सरोवराणि तु अविनयवन्ति, जलनिर्गम-प्रवेशोऽविनय., तेन युक्तानि भवन्ति ।

१.७ ३ मार—(ख ग पं) मारः हडवृक्ष. कामश्च; उज्जाणइं '' पियालवणसारइं—(ग पं) उद्यानानि परिवर्द्धित हडवृक्षाणि भवन्ति, यौवनानि तु परिवर्द्धितकामानि भवन्ति; उद्यानानि प्रियाला चारवृक्षास्तैर्वनैः पानीयैश्च साराणि उत्कृष्टानि भवन्ति; यौवनानि तु प्रियाणामालापाः कामोद्रेककारीवचनानि तैः साराणि, पियालवणसारइं—(ख) चारुवृक्षै. पानीयै साराः, पक्षे प्रियाणामालापाः तैः ।

१ ७.६ असुहाविय''''रहियहिं—(ख ग पं) अतिगौल्यादसुखापितमुखै. रुचिरहितैरुचियुक्तैः ।

१.७७ छुहछिज्जइ—(ग पं) बुभुक्षा नश्यते ।

१ ७९ गोट्ठंगणे नीलनियंसणिहिं—(ख ग पं) गोकुले परिहितनीलचेलाभि ; घणथण''''क्कंतिहि—(ख पं) घनास्थूलोन्नतोभयाऽन्योन्यसंलग्ना. ये स्तना. रमण च नितम्बप्रदेशस्तैराक्रान्ताभिः ।

१ ७ १० पहि'''विलंबु—(ग पं) पथि मार्गे, पथिकानां गमनविलम्बः क्रियते ।

१.८ १ समीरणु''''रंधु—(ख ग पं) वायुभृतदरीविवरप्रदेशा[१] ।

१ ८ २ हल्लिर '' वसेण—(ख ग पं) दोलायमाना महल्ला[२] महत्यो मञ्जर्य.[२] कलमशालिकणिशानि तद्वशेन तद्व्याजेन, घुम्मइ व धरणि—(ग पं) [३]घूर्मतीव धरणी पृथ्वी ; कथंभूता सती ? रंजियरसेण—(ग पं) रसो मद्य[४], कलमशालिमकरन्दास्वादनं[५] च तेन रञ्जिता ।

१ ८.३ उद्धस '''वूमरेहिं—(ख ग पं) रोमाञ्चिता इव अतिनिर्गतवूमरमुद्गैः; उच्चलइ व'''' वक्करेहिं—(ख ग पं) उत्पततीव चपलकोपर्युपरि-सिम्ब.ग्रन्थै ।

१.८ ४ विसट्ट''''फलेहिं—(ख ग पं) विकसितमुखकर्पासफलै ।

---

९. ग °समाना। १० ग °प्रदेशा। ११. पं °द्रहदास्त। १२ पं °हस्तिना. तेषां। १३. पं °तटवृक्षाः°। १४ पं आश्रिताः। १५. पं °पानीयाः। १६. पं जल°। १७ पं तियह। [१.८] १ ग °प्रदेश। २. पं °महती या मंजरी। ३. पं घूर्मयतीव। ४ ग मद्यं। ५ प्रतियोमें °रन्द. स्वादनं।

१ ८.५ सव्वंगुक्करसिय—(ख ग पं) सर्वाङ्गोत्कर्षिता सर्वाङ्गे हर्षिता इत्यर्थः ।

१ ८ ६ जंतचिक्कारएहिं—(ग पं) यन्त्रचीत्कारशब्दैः, गायइ व—(ग प) गीतं गायन्तीव; सुक्क सिक्कारएहिं—(ख ग पं) यन्त्रवाहकास्वाद्यमानरससीत्कारैः ।

१ ८ ७ जंपिएहिं—(ग पं) जल्पकैः ।

१ ८ ८ देवउल ...गाम—(ग पं) देवकुलैर्देवगृहैर्विभूषिता[ः] ग्रामा शोभन्ते, अवइण्ण—(ग पं) अवतीर्ण [ ], गामसग्ग व विचित्तधाम—(ग पं) ग्रामा [ः] नानाप्रकारस्थानाः, स्वर्गास्तु विचित्रस्थानाः, नानाप्रकारतेजसश्च ।

१ ८ ९ परिहा—(ग पं) खातिका; सुरपुर....वट्टणु—(ग पं) इन्द्रपुरीलक्ष्मीनिर्दलन.[६] ।

१.९ १ गोउर—(ख ग पं) प्रतोली; दुग्गमं— (ख ग पं) शत्रूणा दुष्प्रवेशम्[१]; कुंभविलया—(ख ग पं) पानीहारिण्य ।

१.९ २ संघट्टियगो—(ख) अङ्गो शरीरसङ्घट्ट [नम्] ।

१ ९ ३ सेयजुयकुंकुमे —(ग पं) प्रस्वेदगलितकुङ्कुमे, कुसुमदामेहिं—(ग पं) पुष्पमालाभिः; गुप्पए—(ग) स्खलति ।

१.९ ४ गब्भंतरे— (ख ग पं) गर्भगृहे; कामपंडुर....गवक्खतरे—(ख ग पं) कामोद्रेकेन सजातपाण्डुरकपोला, गवाक्षान्तरे गवाक्षछिद्रे ।

१ ९.५ सासमरु ... दावए—(ख ग पं) सुगन्ध [२]श्वासवायुस्तेन सम्मिलिताः[२] भ्रमरा. यत्र तत् तथाविधं मुखं लोकाना दर्शयति, राहुससि ...समुप्पायए—(ग पं) राहुशशियोगे ग्रहणं तद्भ्रान्ति समुत्पादयति । |

१ ९ ६ फलिहसिल—(ग पं) स्फटिकमणि[३]; पोमराएहिं ...दीसिया—(ख ग पं) पद्मरागैः रक्तवर्णैः प्राङ्गणे[४] रङ्गावली विरच्य प्रकाशिता, सा च स्फटिकमणि शुभ्राकान्त्या तन्मिश्रिता सबलिता ।

१ ९ ७ रविकंतकिरणेहिं— (ग पं) सूर्यकान्तमणिकिरणैः. खिज्जए— (ग पं) नश्यति, जामिणी—(ग पं) रात्रिः ।

१ ९ ८ कसणमणिखंड—(ख ग पं) इन्द्रनीलमणिसंघातः, . चिचइय—(ख ग पं) खञ्चितं मण्डितमित्यर्थ, चलवलियकिरणुज्जलं—(ग प) स्फुरितकिरणोज्ज्वलम् ।

१.९.९ आहणइ...थिरं—(ग पं) आहन्ति [?] स्थिरं यथा भवति तथैव केवलम्; कुंचइयचंचू—(ग पं) भग्नचञ्चू ।

१.९-१०-११ घरि घरि इसइ जणु । नियरिद्धिए....दयावणु—(ख ग पं) एवंविध विभूतियुक्त राजगृहनगरं दृष्ट्वा स्वर्गोऽप्यात्मनो हीन मन्यते, दुस्थ दीन च, स्वर्गे हि एका गौरी सीमन्तिनी स्त्री, इह गृहे गृहे गौर्यः, सीमन्तिन्य ; [५]स्वर्गे, शक्र[५] एक एव धनदः, इह तु गृहे गृहे धनदायकाः, धनेश्वरा , स्वर्गे एक एव ईश्वर , इह तु गृहे गृहे ईश्वरा धनकनकसमृद्धा इत्यर्थ ।

१ १० २ गधव्वाणुलग्ग आलावणि—(ख ग पं) गीतानुसारिणी वीणा ।

१ १०.३ जहिं नेउर ...हंसहो गई—(ग पं) हसशब्दसमानेन नूपुरशब्देन [१]पृष्ठिलग्नान् हसान् प्राङ्गणे[१] भ्रामयति, नूपुराणि अस्मान्स्वजातीयानीति भ्रान्ति वा तेषामुत्पादयति, गो—(ख पं) वाणी शब्द. ।

---

६ ग °लन । [१.९] १ प °शः । २. पं वायु. तस्मिन् मिलिता । ३ ग °मणि । ४. ग °प्रागणे. । ५. पं शक्र स्वर्गे । [१.१०] १ पं हसानुलग्ना प्रा° ।

१.१० ४ दप्पण ···आसत्तिए—(ग पं)—रूपावलोकने आस[क्]त्तया ।

१ १०.५ मुद्धियाए—(ग पं) अनुत्पन्नया, इहंतिए सियगुणु—(ख ग पं) दन्तानां श्वेतगुणमभिरूपतया इत्यर्थः ।

१.१०.६ कामिणोउ···सणाहउ—(ग पं) चन्दनशाखा. विरचितभोगैः कृतफटाटोपैः भुजगैः सर्पैः सनाथाः समन्विताः, कामिन्यस्तु विरचितवस्त्राभरणाद्युपभोगैः कामुकैः सनाथाः, भोय—(ख पं) भोग , फटाटोप , वस्त्राभरणाद्युपभोगश्च ।

१.१०.७ जाहं रूउ पिच्छिवि—(ग प) यासां कामिनीनां रूपं प्रेक्ष्य; कलइत्तउ—(ख ग पं) सकलकलायुक्तम्, हेलए···चित्तउ—(ग पं) हेलया–अप्रयासेन जित-वशीकृतं [2]महेश्वराणां चित्तं येन रूपेण ।

१ १० ८ जय···भयथट्टउ—(ग पं) त्रिनयनजयाभिलाषी, त्रिनयनो महेश्वरस्तद्भयात् त्रस्तो बिभीत; सरणउ···पइट्ठउ—(ग पं) तासामङ्गेऽनङ्गः काम. शरणं प्रविष्ट. ।

१.१० ९ घणथण···ठवेप्पिणु (ग पं) तेन तत्र शरणं प्रविशता कामेन निजसर्वस्वं शृङ्गारभाण्डागारं घनस्तनकलशेषु मुद्रां रचयित्वा कृत्वा स्थापयित्वा ।

१.१० १० अहरए ''छुहेवि—(ख ग प) ओष्ठे मधु आत्मीयं माधुर्यगुणं प्रक्षिप्य काममदम्, घणु सज्जीउ—(ख ग पं) धनु प्रत्यञ्चायुक्तं कृतम्, मयसंगहिं भूसंगहिं मुक्कु—(ग पं) काममदस्य यौवनमदस्य च संगः संबन्धो येषु भ्रूभङ्गेषु [तेषु] मुक्तं कृतम् ।

१.१० ११ बाण···कइक्खहिं—(ग प) आत्मीयबाणाः नयनकटाक्षेषु समर्पिताः; कथंभूतेषु ? कामुअ···दक्खहिं—(ग पं) कामुकजनमन.[3]कदर्थनदक्षेषु ।

१.१०.१२ रमणुल्लए—(ग प) श्रोणितले, ऊरुखंभ···सुवणुल्लए—(ख ग पं) जङ्घास्तम्भशोभितधवलगृहे, रइ···कियउ—(ग पं) रति-प्रीतिलक्षणान्तःपुरस्य आवास. कृतः ।

१.१०.१३ रइवरु—(ग पं) काम ।

१.१०.१४ लवणण्णवकूलावहि—(ग पं) लवणार्णवतटपर्यन्त [.], (ख) आसमुद्रपर्यन्त [ः] [4]सधर···पालियकरु[4]—(ग) पर्वतसमन्वितपृथ्वीमण्डलगृहीतकरः ।

१.११.२ बलिमंडए—(ग प) बलात्कारेण ।

१.११.३ मरगय ''णुप्पण्णउ जसु जसु—(ख) मरकतवर्णः कृष्ण. स चासौ कृपाण. खड्ग तस्मादुत्पन्नं यस्य यश , मरगय ''गयवण्णउ—(ग पं) यद्यपि कृष्णकृपाणादुत्पन्नम्, तो वि—तथापि, जसु जसु—यस्य यशः, अमरगयवण्णउ—अमरकतवर्णं श्वेतम्, अथवा अमरगजः ऐरापतिः तद्वद्वर्णं शुभ्रो यस्य, अमरेषु वा गत [ ] वर्ण व्यावर्णन यस्य ।

१.११.४ पयाव '' अतित्तउ—(ख ग पं) प्रतापाग्निः अतृप्त., खीणा···मियंतउ—(ख ग पं) क्षीर्णं च तदरिरेवेन्धनं च शत्रुकाष्ठं तस्य, खोज्जु नियंतउ—तद्गत्वा प्रविष्टमिति मार्गं पश्यन् अन्वेषयन् सन्[2] १ ११.५-६ रिउ · पज्जलियउ—(ग प) शत्रुभार्याणां हृदये प्रज्वलितः, अवस··· पाविज्जइ—(ख ग पं) अवश्यमेव विपक्षः शत्रु अत्र रिपु [वधू] गृहिणी हृदये प्राप्यते, कुत ? विहवी····सुमरिज्जइ—(ख ग प) यस्मात् कारणात् विधवीभूताभिः रण्डिताभिः अनवरतं हृदये मदीयशत्रु. स्मर्यते, अत्र शत्रुनिवासस्थानत्वात् प्रतापाग्निना हृदय तासां दह्यते ।

---

२. पं महा ईश्व° । ३ ग °मन° । ४. पं सधर···पानीयकरु—पर्वतसमन्वितपृथ्वीमण्डलं, पानीयकरु गृहीतसिद्धादय । [१.११] १. पं तदिंधन । २ पं मार्गमन्वेषयते ।

१.१२.३ कलयठि ···सह—(ग पं) कलो मनोज्ञः कण्ठो यस्याः सा कलकण्ठि-कोकिला तस्याः इव कण्ठो कलो मनोज्ञो मधुर श्रोत्र-मन प्रीतिकरः स्वरो यस्याः; चंचूयकुसुम—(ग पं) माध्याह्निकपुष्पवत्[२] ।

१.१२.४ कलहोयकलस—(ग पं) सुवर्णकलश.; निव्विट—(ख ग पं) विण्टनिकाररहितः; चक्कलरमणु—(ख ग पं) चक्राकारस्थूलनितम्ब. ।

१.१२.५ सुहमरु—(ग पं) मुखस्वा[°स्वा°]सवातः ।

१.१२.६ सहु (अरयाणे ?)—(ग पं) समाम्, सपंगरज्जु—(ख) स्वाम्यमात्यश्च राष्ट्रं च दुर्गं कोशो बल सुहृदिति सप्ताङ्गं राज्यम्; (ग पं) स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशो देश-दुर्गं बलं तथेति सप्ताङ्गं राज्यम् ।

१.१२.९ अइ—(ग पं) अथ, एतस्मिन् प्रस्तावे, कणय····पट्टु—(ग पं) कनकदण्डे विशेषेण निबद्धः पट गुडिकारूपो येन ।

१.१२.१० दडवारिय—(ग प) प्रतीहारः ।

१.१३.१ जयसिरिरस—(ख ग पं) जयलक्ष्म्याशक्त[°सक्त]चित्त'; चउरयणायरंत—(ख ग पं) चतुःसमुद्रपर्यन्त ।

१.१३.३ अच्चंभउ—(ग पं) आश्चर्यम् ।

१.१३.४ वणु—(ख ग पं) निरन्तर [.], काणणु—(ग पं) उद्यानादिवनम् ।

१.१३.५ °क्खालिय—(ग पं) क्षालित, प्रक्षालित ।

१.१३.६ अकिट्ठपच्च –(पं) अवाहितपक्वा ; पसविय—(ग पं) प्रसूत, निष्पन्न; बहुवण्णहिं—(ख ग पं) बहुवर्णै धान्यै. ।

१.१३.७ गाविउ—(ग) गाव.; खिरंति—(ग पं) श्रवन्ति[स्र° ?]; अमोहउ—(ग पं) परिपूर्णं बहुतरमित्यर्थः ।

१.१४.४ कंटइयगत्तु—(ग पं) रोमाञ्चितगात्रः ।

१.१४.५ कण्णंत—(ग पं) कर्णान्तिमध्य, दियंत—(ग पं) दिग्मध्यं दिक्पर्यन्तं वा ।

१.१४.६ मुरय—(ग पं) माईल[म° ?]

१.१४.९ पूरंतसासु—(ग पं) पूरणसमर्थः, महाप्राणमुक्त. श्वासो यत्र ।

१.१४.१० परिघुट्ठुनाउ—(ख ग पं) उच्चारितशब्द ।

१.१५.२ दसियारेहिं—(ग) हस्तिपकै.; वीरेहिं—(ख ग पं) पडिकारै (?) ।

१.१५.३ कस[१]—(ग पं) चर्मयष्टि ।

१.१५.४ वियलिया····वेसरो—(ख ग पं) विगलितः पतित', आसणनरो—अश्ववारो [२]यत्र तत् विगलितासननर यथा भवत्येव नश्यति[२] ।

१.१५.५ तकडं—(ग पं) समर्थम्, धंत—(ग पं) धावन्त[३]; [४]पाइक्कथडसंकडं—(ख ग पं) भड-भट-सुभटसंघातः ।

---

२. प °ह्निक. पुष्पः । ३ ग °दंड । [१.१५] १. पं कसा । २. पं यथा न भवति एवं नश्यति । ३. पं धावंतः । ४. पं पायक्क° ।

१.१५.६ भूमीकम छड्डिरी—(ख ग पं) निज-निज भूमिक्रमपरित्यागिनो, वारिया—वारिभिर्वारिता[ ], निवारिताः, [५]निरवीरमोसारिया—(ख ग प) निजभृत्यसमूहः निज-निज भूम्या धृतः।

१.१५.७ डंबरं—(ग पं) आटोपम्; छइयंबरं—(ग पं) प्रच्छादिताकाश।

१.१५.१० नियय ... हिट्ठओ—(ख ग पं) निजशोभास्वीकृतः, कणयसेलो—(ग पं) मेरुः।

१.१५.११ तुंगिम—(ख ग पं) महत्त्वम्, परए कस—(ख ग पं) दूरत[६] उत्सारय, देवनिकायहो—(पं) भवनवास्यादिदेवसंघातस्य; किम समसीसी—(ख ग पं) समगणना का।

१.१५.१२ आयहो—(ग) एतस्य मेरो, (पं) कनकगिरे।

१.१६.१ दूरुज्झिय—(ख ग प) [१]दूरत [°त] एव परित्यक्त, पत्तें—(ख) पात्राणि, (ग) पत्राणि, वाहनानि; परियण ... जुएण—(ख ग पं) परिजन, पुरनिवासीलोकयुक्तेन।

१.१६.२ केवलवाहें (ख ग पं)—केवलज्ञानवाहेन।

१.१६.१० सुहभावण —(ग पं) शुभपरिणामाः[२]।

१.१६.११ दल—(ख ग पं) पत्र।

१.१७.१ हरिविट्ठरे—(ग पं) सिंहासने, किरणाहय ... करे—(ग पं) किरणैर्निर्जित. सुरेन्द्रमुकुटकिरणो।

१.१७.२ पत्तपहुत्त[१]—(ख ग पं) प्राप्तत्रिभुवनाधिपत्यः, कुसुमंकिए—(ख पं) पुष्पाञ्चिते।

१.१७.३ मइए—(ख ग) मनोज्ञे।

१.१७.४ सयलभासलवलियए—(ख ग पं) अष्टादशदेशोद्भवभाषासमन्वितया।

१.१७.५ छज्जिउ (ग पं)—शोभितः, पडिबिंब—(ग पं) प्रतिच्छाया।

१.१ .७ [२]तइलोक्कपियामहु—(ग पं) त्रैलोक्यपितामहः।

१.१७.८ पयाहिण देंतें—(ग) प्रदक्षिणा ददता सता।

१.१७.९ रइतमगहिउ—(ख ग पं) विषयासक्तितम प्रच्छादितः[३]।

१.१७.१० सुत्तउ—(ख ग प)—विवेकरहितम्।

१.१८.१ वण्णिऊणं—(ग) वर्णितुम्, थालो—(ख ग पं) अज्ञ।

१.१८.२ समुज्जोइया ' पईवेण सूरो—(ख ग पं) समुद्योतितदिशौघो वा किं न पूज्यते प्रदीपेन सूर्य ? किं विशिष्ट. ? तेयपूरो—(ख ग प) तेज संघातः, तेजोनिर्विरित्यर्थ.।

१.१८.३ संनचइरस्स—(ग प) क्षीणकषायस्य।

१.१८.४ पउं—(ख ग प) पवित्री करोतु, [१]सुक्खथाम—(ख ग पं) सौख्योत्पादनपराक्रम समर्थमित्यर्थ.।

१.१८.५ सावज्जलेसो—(ख ग पं) सावद्यलव।

१.१८.६ कणो " हलप्पसत्थो—(ख ग प) कणो-कणिका, हालाहलः कालकूटस्य संबन्धी, जीवा[२] यथा तथा सप्पसत्थो-सर्पसार्थं, सुहासायरं—(ख ग पं) अमृतसमुद्रम्।

१.१८.७ अविग्घो—(ख ग पं) अविघ्न. प्रतिबन्धरहित', तए—(ख) त्वया, तिलोयग्गगामीण—(ख ग पं) मोक्षगामिनाम्।

---

५ पं निरवीरमोसारिया। ६ ग दूरत। [१.१६] १ पं दूरतर। २ पं °णामा। [१.१७] १. पं °पहुत्तु। २. पं तयलोय°। ३ ग °दित। [१.१८] १ पं सोक्खधाम। २. ग जीवो।

१.१८.८ मोहकालाहि—(ख ग पं) मोहकृष्णसर्प , वायासुहाए—(ग प) वाचामृतेन; विसुद्धो—(ग पं) विशुद्ध , स्वच्छः ।

१.१८.६ कूवार—(ग प) समुद्र , संपुण्णविज्जा—(ग प) केवलज्ञानम् ।

१.१८ १० तए—(ग पं) त्वया, नाण ''उद्दित्तमेयं—(ग पं) ज्ञानदीप्त्या उद्‌गततेजः कृतमिदं हत-प्रतापीकृतमित्यर्थ ; समुब्भासए—(ग) समुद्भासति, शोभते ।

१.°८.११ सुहामासय—(ग प) मुखप्रतिवन्धम् [°छन्दम् ?] ।

१.१८.१२ वत्थुरूवं—(ग पं) वस्तु-पदार्थम्, नित्यं निश्वे [°स्वे] दत्वमित्यादिशरीरस्वरूपम्; अहंबुद्धि-लुद्धा ते मुद्धा सरूव निरूवति—(पं) तव स्वरूपमिति निरूपयन्ति—(ग पं) वयं भगवत्स्वरूपं यथावत् ज्ञात्वा प्रतिपादयामः इत्यहङ्कारेण विपर्यासिताः, शरीरस्वरूपाद्भगवत्स्वरूपस्यानन्तज्ञानाद्यात्मकस्यान्य-त्वात्[3] ।

१.१८.१८ भूयो—(ख ग पं) पुनरपि ।

टिप्पण सन्धि–२

२.१.१ समवाएं—(ख पं) सर्वेषा अभिप्रायेण ।

२.१.३ पयंपइ—(ग पं) प्रजल्पति ।

२.१.४ निरंजणु—(ख ग पं) कर्ममुक्त. ।

२.१.५ निरवहि—(ख ग पं) अनाद्यनन्त , सण्णाण '' मेत्तु (ख ग पं) स्वज्ञानप्रमाणमात्र ; 'आदाणा-णपमाण' इत्यभिधानात् ।

२.१.६ परेण मिक्किड—(ख ग पं) परेण स्पृष्टः परामृष्टो वा; आयास''' दव्वहिं—(ग पं) आकाश-प्रमुखैराकाशाद्यैर्द्रव्यैः ।

२.१.७ नीसेस—वाहि—(ग पं) [1]नि शेषं शरीरी-मनुष्यो-देवो-बाल-कुमारः सुखी-दु खीत्यादिरूपो निरर्थो-ऽनात्मस्वरूप कर्मजनितमित्यर्थ. उपाधिविशेषणम्; सहइ—(ग पं) सहते, भजते, तथा भजते चात्मनि सति अचेतनशरीरादिकं ससारे प्रवर्त्तते, केन सता क इव ? जंगमेण—(ग पं) जङ्गमेन बलीवर्दादिना अजङ्गमं शकटादिकम्, जेम—यथा, तथा कर्मणा सता शरीरादिकं ससारे [2]प्रवर्तयिष्यति ।

२.१.८ भवसमत्थु—(ख) संसारकर्मकरणे समर्थः, संतें गयणे''' समत्थु—(ग पं) अतः किमात्मनेत्या-शङ्कयाह—संतें—सता आत्मना भव. प्रादुर्भाव. कर्मपरमाणुस्कन्ध समर्थो भवति, आत्मनि वा अवकाशं लभते, केन, क इव ? गयणेण व—(ग पं) आकाशेन सता यथा (ख ग पं) पृथिव्यादिपदार्थ· आकाशे अवकाशमवगाहं प्राप्नोति स्वकार्यकरणे समर्थश्च भवति, आत्मानं च सकषायं प्राप्य कर्मणो योग्यपरमाणु-स्कन्धोऽपि विचित्रफलदाने [3]समर्थः कर्मरूपतया परिण [म] ते, 'सकषायत्वात् जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्ध ' इत्यभिधानात्; (ख) अत्र दृष्टान्त [:] सूर्यकान्त [मण] य ।

२.१.९ दिवसयर''' अग्गिवंतु—(ग पं) [4]अमुमेवार्थं प्रति दृष्टान्तमाह, दिवसयरेत्यादि—दिवसकरकिरण-कारण सहायम[सहाय°]लभमान सूर्यकान्तो यथा अग्निना [अग्निमान्] दृश्यते—

---

३ ग ज्ञानाद्यात्मकस्यान्यत्वात् ।

[२.१] १ पं प. । २. पं °प्रवर्तिष्यते । ३. पं °र्थो । ४. पं अत्रैवार्थे ।

२.१.१० तिहे जोग्ग '''बुद्धिबंधु—(ग पं) कथंभूत. ? स्वकर्मयोग्यपरि[पर°]माणुस्कन्ध ;, परिवद्धितोऽहमिति वुद्धिबन्ध आत्मनि संबन्धो येन, ननु इन्द्रियाण्येवाहमिति वुद्धिमुत्पादयिष्यन्ति,[५] तत्किमात्मना कर्मणा वा ? अत्राह—

२.१.११ [६]जीवेन''''करणगामु[६] (ग पं) जीवेन निमित्तीभूतेन करणग्राम. इन्द्रियसंघातः, किं विशिष्ट ? मोहथामु[७]—(ग पं) महामोहनीयकर्मण: सकाशात् (पं) मोहो वा मोहजनने विपयासक्तिः प्रादुर्भावि थामु–थामा. [थामः] सामर्थ्यं यस्य स , वियप्पु भाव—(पं) द्रव्येन्द्रियभेदसहित , वियभइ—(पं) स्वविषये यथेष्टया प्रवर्त्तते ।

२.१.१२ इयजाउ '''जीउ सो वि—(ग प) एवमुक्तप्रकारेण आत्मान निमित्तीकृत्येन्द्रियद्वारेण जनितोपयोगलक्षण लक्षित सन् निमित्तिकोऽपि जात , व्यवहारेण सोऽपि जीवः इत्युच्यते, निश्चयेन एकोऽविनश्वर उपयोगयुक्त इति, (ख) [८]निश्चयेन ह्येकोऽविनश्वरो स उपयोगयुक्त इति चिद्रूपलक्षणो जीवः, न तु क्षयोपशमिकादिनश्वरैरिन्द्रियोपयोगयुक्त इति ।

२.१.१३ ससार''''जणिउ—(ग पं) संसारस्य भवान् भवान्तराप्राप्तेनिबन्धनं कारणभूतं कर्म तेन व्यवहारनयेन जीवेन, जनितं—आत्मनि प्रादुर्भावितं भवति, तं नासु मोक्खु भणिउ—(ग पं) तस्य तथाभूतस्य कर्मणो नाशो मोक्षो[८] भणित , निरामउ—(ग पं) आमयो व्याधिस्तस्मान्निष्क्रान्तः ।

२.१.१४ खिज्जइ—(ग पं) म्रियते, उप्पज्जइ '''अणुहवइ—(ग प) स एव जीवो व्यवहारिक मोहसघातं क्षपयति; किं विशिष्टः सन् ?

२.१.१५ [९]कम्मासवयवारणु ' खवइ—(ग पं) कर्मास्रववारणः कर्मणामास्रवस्य 'मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोग'लक्षणस्य निवारकः, किंविशिष्ट सन् तन्निवारको भवति ? भावियकारणु—(ग पं) भावितकारण. भावित कारणं मोक्षमार्गो रत्नत्रयस्वरूपो येन ।

२.२.८ अणिट्ठु—(ग पं) अनिष्टं दु:खम्, मइ—(ख ग पं) मया; कट्ठें—(ख ग पं) महातापकष्टेन ।

२.२.११ संसारिणि-तिस – (ख ग पं) संसारिणीतृष्णा भोगाकांक्षा ।

२.३.१ नरामरे '''वहंतए—(ख ग पं) नरामरेषु विशुद्धभावना धारयमाणे ।

२.३.२ एंतय—(ग) आगच्छन्; नियच्छियं''' तेयवारि—(ख) स्फुरन्त तेयवारि(?)विज्जु(?)मालिविमान नमेद्यार्भ(?)तदृश दृश्यते आगच्छन्तु शुद्धतोन्या (?) धारयन्ते, पूरिया दिसंतय—(ख ग प) [१]पूरितदिगा[दिग°]न्तम् ।

२.३.३ अतिव्वतावय—(ग प) अतीवप्रतापः, (पं) अतीव्रतापं येन, सूर्यकिरणसघातस्तु अतीव्रतापकः; न सूरगोनिउंजय—(ख ग पं) सूरस्य आदित्यस्य, गोनिकुञ्जः—किरणसघातो न भवति ।

२.३.४ साहुवाइणा—(ख ग पं) साहु-गणधरवचनेन, सुन्दरवाचा वा कृत्वा ।

२.३.६ सत्तमे '''चविस्सए—(ख ग पं) सप्तमे दिने आयुष्यक्षये आयुष क्षयात् च[च्य°]विष्यति; भवेण—(ख ग पं) अग्रेतनमनुष्यभवेन, केवलीह''''भविस्सए—(ख ग पं) इह—भरतक्षेत्रे, पश्चिमोऽन्तिमः केवली भविष्यति ।

२.३.८ पियाचउक्कपंचमो—(पं) प्रियाचतुष्टेन[°ष्केन] सह पञ्चमः; सहाए दिट्ठओ—(ख ग पं) सभामण्डपिकानिवासीजनेन दृष्टः ।

२.३.९ गिव्वाणु—(ख ग पं) गीर्वाणो विद्युन्मालीदेवः ।

---

५. प्रतियोमें यष्यति । ६. पं जीवेनेत्यादि । ७. ख ग °थामु । ८. ग मोक्षः । ९. पं कम्मासव° । [२ ३]
१. पं पूरिता° ।

२.४ ३ आयहो—(ग) एतस्यागतस्य वा।

२.४.४ न मिल्लिउ—(ग) न त्यक्तः; पच्चेल्लिउ—(ख) अनूद्रुत (?), (ग) केवलम्।

२.४.५ एण—(ग) विद्युन्मालिना।

२.४.१० दिवि दिवि—(ग) दिने दिने।

२.४.११ सघणलयाहरे—(ग पं) निरन्तरलतागृहे, कडुय—(ख ग पं) कटुकः कर्कशवचनः।

२.४.१२ चलसिह[1]—(ग पं) चलचूलिका।

२.५ १ संसु—(ग पं) प्रशंस[1]; गुणवंतु—(ख ग पं) गुणाः सुशीलत्वादयः, पक्षे (ख पं) प्रत्यञ्चा चापः; वंसु —(ख ग पं) संतान- वंशश्च।

२.५.२ सुत्तकंठु—(ख ग) ब्राह्मण।

२.५ ३ कमलायरो व्व—(ख ग) सरोवरवत्, गोविसनिहाणु—(ख ग पं) ब्राह्मणपक्षे गावो धेनवः, [2]वृषभाः बलीवर्दास्तेषां निधानम्, कमलाकरपक्षे गो[3] पानीयम्, विषाः—पद्मिनीकन्दास्तेषां निधानम्; मंडलवइ व्व—(ख ग पं) मण्डलपतिरिव राजा इव स ब्राह्मण इति; महिसीपहाणु—(ग पं) ब्राह्मणपक्षे महिष्यः प्रधानाः बहुदुग्धघृतदायिन्यो यस्य, मण्डलपतिपक्षे महिषी-अग्रमहादेवी पट्टराज्ञी प्रधाना [4]यस्य।

२.५ ४ [5]पइवयधारिणी—(ख ग पं) पतिव्रतधारिणी, (ग) अन्यभर्तृकत्वव्रतधारिणी।

२.५ ५-६ (ग प) समयणेत्यादि पाणहियकंतेत्यनेन संबन्धः; प्राणाना हिता-कान्ता-भार्या प्राणहिता वाहणा कान्ता-कमनीया; समयणतणु—(ग पं) कान्तापक्षे समदना कामोद्रेककारीतनुर्यस्या [सा], पाणहियपक्षे तु समदनेन सिक्ता लिप्ता तनुर्यस्याः; रत्ती—(ख ग पं) कान्तापक्षे निजभर्त्तुरनुरक्ता, [6]पाहणियपक्षे रक्तवर्णा, ललियकण्ण—(ग पं) कान्तापक्षे [7]ललित[ललितकम् ?] आभरणविशेषपरिधानशोभायमानौ कर्णौ यस्या, [8]पाहणियपक्षे तु[8] ललितकर्णा; नेह—(ग प) स्नेहः तैलं च।

२.५ ६ अविहत्तसंग—(ग पं) अविभक्तसङ्गौ[9] अविनाभाविनावित्यर्थः।

२.५.१२ घत्थु—(पं) गृहीतः।

२.५ १४ सरंतु—(ग) स्मरन्; विट्ठु—(ग) विष्णुम्।

२.५ १५ तहिं पविट्ठ—(ग) चिताग्नौ प्रविष्टा।

२.५.१६ दुक्खरवविय—(ग पं) [10]दुःखपूर्णौ।

२.५ १७ संठविय—(ग) संस्थापितौ।

२.६.१ लयणिट्ठु—(ग पं) लघुभ्रातृसंयुक्तः।

२.६.९ जीवणणिओय—(ख ग पं) जीवनव्यापारा. असि-मसि-कृष्यादयो[1] यस्य तत्, सण्णालुयउ—(ख ग पं) आहारभयमैथुननिद्रापरिग्रहलक्षणसंज्ञायुक्तम्।

२.६ १० खारियउ—(ख ग) कदर्थितम्।

२.६.१२ सहियए—(ग) स्वहृदये।

२ ७ १ किलेसिं—(ग पं) क्लेशेन प्रयासेन।

[२.४] १ पं चलसिहु [२.५] १ पं °सा। २. वृषाश्च। ३. ख ग गौः। ४. पं यत्र। ५. पं पयवय°। ६ पं पाणादिता। ७. पं °ओ। ८. पं पाणहिता तु। ९ पं °संगा। १०. पं °पूर्णः। [२.६] १. पं °दया।

२.७.३ रूंकेसु—(पं) संक्लेशः।

२.७.४-५ अब्भंतरु ···नियइ बाहिरउ ···दंडकरु—(ग पं) बाह्यं देहस्वरूपं यद्यपि इन्द्रियाणामभिलाषकरन्, तो वि—तथापि आभ्यन्तरदेहस्वरूपं यदि वा बाह्य पश्यति तदा मांसपिण्डस्वरूपत्वात् वायसमेव दण्डकर [1]उड्डापयति।

२.७.७ विन्नत्तु—(ग पं) विज्ञप्त ।

२.७.११ गुरु····रइ—(ग पं) गुरुवचनश्रवणरतिः, कम्मा°····संवरु—(ग) कर्मास्रवकृतसवर.।

२.८.२ भमिवी—(ग) भ्रमित्वा।

२.८.६ समनियपरहो—(ख ग पं) समौ निजपरौ यस्य, समं वा परमोपशमं [1]संसारोपशमं वा[1] नीत. परः आत्मा येन।

२.८.७ अणुउ—(ख ग पं) लघुभ्राता; भवगुरु सरिहिं[2]—(ख ग पं) संसारमहानद्यां, दरिहिं—(ख ग पं) गर्त्तायाम्।

२.८.९ जोयण अज्झाणु—(ख ग) योजनाध्वान योजनमार्ग इत्यर्थ।

२.८.१० न पमाउ—(ख) न दोषः।

२.८.११ नत्थि····दिसि—(ख ग प) दोपलेशोऽपि नास्ति।

२.८.१३ वड्ढमाणु—(ख ग पं) वर्द्धमाननामनगरम्।

२.९.८ सिप्प—(ख ग पं) [1]काष्ठचित्रकर्मादिविशेष[1]।

२.१०.१ महिवीढे निवेसिवि—(ग) क्षितितले निवेश्य।

२.१०.२ सुय—(ग) भो सुत भो भ्रात, धम्मविड्ढिसंभवउ—(ग) धर्मवृद्धि. संपद्यताम्, तउ—(ग) तव।

२.१०.३ तउ—(ग) ततः पश्चात्, करिवी—(ग) कृत्वा।

२.१०.४ पइरणु—(ग) पगरणं[प्रक°]विवाहमहोत्सव.।

२.१०.७ सवाहनयणु—(ख ग पं) अश्रुप्रवाहयुक्तलोचन; [1]उद्धंतमण्णु—(ख ग पं) उद्भूताभिमानः।

२.१०.८ जणणि-जणेरहं—(ग) जननी-जनकयोः।

२.१०.९ जो—(ग) स्नेह, भसियउ—(ख ग पं) नाशितः।

२.१०.१० अजपमाणहि—(ख ग पं) [2]संप्रत्यनुभूयमाने, कय आगमणहिं—(ग पं) कृतागमने, पुणुण्णउ—(ग पं) पुनर्नवो नवीन ।

२.११.३ मइ—(ग) मया।

२.११.१० नियहिउ—(ख ग) निजहितहेतु ।

२.११.११ [1]ही तं[1]—(ख ग पं) धिक् निन्द्यं तं मनुष्यम्, अवगण्णहि—(ग पं) अवधीरय।

२.१२.३ विहाणें—(ग प) आगमोक्तविधिना।

२.१२.५ नियत्तणाए ससद्ध—(ख ग पं) [1]व्याघुट्टनश्रद्धायुक्त.।

[२.७] १. ग उड्डा°। [२.८] १ पं °परमो वा। २. पं °सरिहो। ३ पं °दरिहे। [२.९] १. पं कोष्ठ···· विशेषा। [२.१०] १. प °मंनु २. ख सांप्रत्य°। [२.११] १. पं हित्तं। [२.१२] १. ग °घुटन।

२.१२.७ उद्देसई—(ख ग पं) कथयति; अण्णालावलीलु—(ख ग) अन्योक्तिलीलाम्, (ग) अन्योक्त्यासक्तः।

२.१२.८ पाउ—(ख ग पं) शाखा, प्ररोहम्, नग्गोह—(ग पं) वटवृक्षः।

२.१२.११ परिसीलिय—(ग) दृष्टा , (पं) दृष्ट्वा (?)।

२.१३.६ नववहुवाए—(ग पं) नूतनवध्वा।

२.१३.७ अपरिगव—(ख ग पं) प्रागेव[1] इति लोकोक्ती, [2]जेट्ठें ⋯निच्छइयउ—(ग पं) भवदत्तेन, चिरु = पूर्वं सङ्घस्याग्रे, निच्छइयउ—प्रतिज्ञातं भवदेवं तपोग्रहणार्थं अहमिह गृहीत्वा आगमिष्यामीति।

२.१३.९ °रडे—(ख ग पं) रडि-पूत्कारः।

२.१३ १२ समासइ—(ख ग पं) पर्यालोचयति।

२.१३.१३ भवयत्त—(पं) भवदत्तो यथा, पडंतउ भववइतरिणिहे उद्धरहि—(ख ग पं) भव एव वैतरणी-नरकनदी. (ख ग) तस्या (तस्याम् ?) पततः उद्धर इति भवदेव ।

२.१४.१० कवलिज्जए—(ख ग पं) चिन्त्यते।

२.१४.१२ धण्णउ—(ख ग पं) कृतार्थः।

२.१५ ५ (ख) [1]इय आयंत[1]—ईदृक्कूजाकया (?), (ग) इय सेच्छय—स्वेच्छया।

२ १५.९ वियडए—(ख पं) शीघ्रया।

२.१५.१० परिओसइ—(ग) परितोषयति।

२.१५.१२ दिसउ—(ग) दिश ; निज्झाएवि—(ख ग पं) अवलोक्य।

२.१५.१७ परिसक्कइ—(ख ग पं) आक्रामति; चित्तु⋯चमक्कइ—(ख ग पं) चित्तेन समं ऊहापोहं करोति।

२.१५.१८ इउ कारणु—(ख पं) विषयसेवानिमित्त व्रतभङ्गादिकम्, धिद्धिक्कारिउ—(ख पं) निन्दितम्; आरिसहिं—(ख पं) आगमैः।

२.१६ १ वीणोवमझुणि —(ख) वीणावज्ज[°वाद्य]इव ध्रुनि [ध्वनिः]।

२.१६ ५ डहइ —(ख) पश्चात्तापं कारयति।

२.१६ ६ विकासपिया—(ख ग पं) रतिक्रीडाभिलाषिणी, कवणकिया—(ख ग) का क्रिया, का गतिस्तस्या वर्त्तत इत्यर्थः।

२.१६ ११ चेइहरु—(ग) चैत्यालयः।

२ १६ १४ सूलिनि—(ख ग पं) चण्डिका।

२.१७ ४ अज्जवसुदियहो—(ग प) आर्यवसुनाम्नो द्विजस्य।

२ १७.५ विसिदइयंवरिया—(ख ग पं) दिगम्बराणामिय दैगम्बरी-निर्ग्रन्थप्रवृत्तिरित्यर्थ.।

२ १७ ७ किह—(ग पं) केन पतिव्रताप्रकारेण, विवरीयकिया—(ख ग पं) विपरीतक्रिया, कुलमार्गपरित्यागक्रिया, (ख) कुलभ्रष्टक्रिया।

२.१८ ४ परिगलियवयसि—(ख) गतवयसे वृद्धकाले, (ग) परिगलिते वयसि सति, वृद्धत्वे सतीत्यर्थ.।

२.१८ ७ लेइदिसि—(ख ग पं) व्रतानुष्ठानादिदिशाप्रभ्रष्टो भवति।

[२.१३] १. पं प्र णेव। २ पं जेट्ठइ। [२.१५] १ पं पयसिज्जइ।

२.१८.९ जा····लायण्णरसु—(ख) हे मुने त्वया पृष्टा तस्याः नागवस्वा· स्वरूपं कथयामि, त्वं शृणु।

२.१८.१२ चिच्चुय—(ग)[1] चिबुक (?) [हिंदी—चिचुड जाना, पिचक जाना]।

२.१९ ६ संलद्ध 'पमाणो—(ख ग पं) [1]संलब्धः शिक्षातोऽपमानो[1] येन।

२.१९.८ पुव्वसकेयचत्तो—(ख ग पं) पूर्वसङ्केत विषयसेवासङ्कल्पः स त्यक्तो येन।

२ १९.१० म वंकहि—(ख) मदीया प्रार्थनाया सज्ज्यक्ता [संत्यक्ता ?] मा कुरु, (ग) मदीया प्रार्थना, तामवक्रा कुरु, (पं) मदीयप्रार्थनायामवक्रा कुरु, उव्वेइयउ—(ख) सक्लेशकल्पनाभावत्यक्तः, (ग पं) उद्विग्न.।

२.२०.२ अब्भसइ—(ग पं°) ध्यायते[1]।

२ २०.५ अजिब्भु घ—(ख ग प) जिह्वारहित इव, जिह्वायास्वादनमगृह्णन्नित्यर्थः।

२ २०.८ (ग पं) पुव्वज्जिय[2]—(ख ग पं) पूर्वोपार्जित[म्]।

२.२०.१० मइए—(ख ग पं) परिमिते।

सन्धि—३

३ १ ३ लक्खे पयाइं—(ख) लक्षपदानि, (ग) लक्ष्ये पदानि।

३.१.७ किविणमाणसा—(ग पं) अल्पमतय.।

३ १.८ जे संपण्णनाणसा—(ग प) ये सम्प्राप्तज्ञानलक्ष्मीका·, केवलज्ञानश्रीसमन्विता इत्यर्थः; सव्वु दि···· दिणसमु—(ग प) तेषा सर्वमपि कालद्रव्यं [1]सुषमसुषमादिभेदभिन्न षड्विधमपि दिनसमानं, यथा दिन· मथिर पुनः पुनरुदयास्तमनरूपतया परिणमति, तथा कालद्रव्यमप्यथिरतया[2] पुनः पुन. सुषम-सुषमादिरूप-तया परिणमते[3] [इ]ति।

३.१ ९ मंदराउ—(ख ग) मेरोः, पुव्वासए—(ख ग पं)·पूर्वस्या दिशि।

३.१.११ जया—(ख ग प) मेघेश्वर।

३ १ १३ विवक्ख—(ग पं) शत्रु।

३ १ १४ घरसिंग—(ख ग पं) गृहशिखराग्र,[4] पज्झरिय—(ख पं) क्षरितपानीयम्, घणु—(ग पं) मेघः।

३.१ १५ दिसमाणरिद्धि—(ख ग पं) दिक्मानऋद्धि.[5], या या दिक् अवलोक्यते तत्प्रमाणा[6] यस्य· रिद्धिरित्यर्थ।

३ १.१६ कणकणिरदसण—(ख ग पं) दशन-दन्तकम्पजनक, विलु—(ख ग पं) कन्दरं विवरम्।

३.१ १७ सरलु—(ख ग पं) वृक्षविशेष; सरलु ·· तरलु—(ख प) सरलफलन्तहरिणी—प्राञ्जल· फालविशेष[7] कुर्वाणाभि हरिणीभि· तरलं—चंचलम्।

३ १ २० मणिसारपायार—(ख पं) रत्नमयप्राकार[ ]।

[२.१८] १ पं चिवुर्कं, अथवा चिचुक्तं। [२.१९] १ पं °त्र शिक्षाऽपमानो। [२.२०] १. ग °यतो। २. पुव्वासिय। [३.१] १ पं सुखमपुखमा°। २ पं °स्थिरतया। ३ ग °मनि। ४. पं °राग्रं। ५ पं दिक्समानाऋद्धि। ६. पं °माण। ७ ख ग प्राजलफाल।

३ १.२४ (ख ग) मढ[१]—(ख ग पं) मड. वृक्षविशेषः धवलगृहविशेषश्च, (ख ग) लतामण्डपादि(?); निवथाणइं[२] —(ख ग पं) राजकुलानि ।

३.२.५ वाढोउ—(ख ग) तालाब, वाटिकाः; तालउ—(ख ग पं) वृक्षविशेष , ताल-मञ्जीर-समताला-दिवाद्यवादनविशेषश्च, स च महापुराणटिप्पणके नीलञ्जसा[३] नृत्यसमये विशेषेण व्याख्यात[४] इह द्रष्टव्यः[५] ।

३.२.६ सरपालिउ—(ख ग पं) सरोवरपाल्यः, (ख ग) वेश्यापक्षे कामयुक्ता., विडंगणहं वणियउ—(ख ग पं) विडङ्गाः वृक्षविशेषाः, [६]नखाः-जे[व]विशेषा. [७]तै. वणियउ—उपलक्षिताः,[७] वा वणियउ—वणिकाः—लघुनिरन्तरवृक्षविशेषसमूहाः, वणि इति लोके, वेश्यापक्षे विडंग'''वणियउ—विटैरङ्गेषु नखैः, व्रणिता ; गणियउ—(ग पं) गणिका, वेश्याः ।

३.२.७ मुणिवर—(ख ग पं) अगस्तियकवृक्षविशेषाः[८], मुनिप्रधानाश्च ।

३.२.८ सुपओहरउ—(ख ग प) शोभनपयोधारिण्यः, स्त्रीपक्षे शोभनपयोधरा , सुरमणिउ—(ख ग पं) सुरमण्य., शोभनरमण्यः सोपानपङ्क्तय , (पं) स्त्रियश्च, (ख ग) स्त्रीपक्षे शोभनरमणशीला, रमणिउ—(ग) स्त्रिय. ।

३.२.९ सहल''''थाणइं जणदाणइं—(ख ग पं) मण्डपस्थानेषु फलै सहितानि शोभनानि पत्राणि, जन-दानपक्षे तु सफलानि जनाना चिन्तितफलसम्पादकानि शोभनपात्राणि[९] उत्तम-मध्यम-जघन्यभेदभिन्नानि यति-श्रावक-श्रा[ ]वका-अविरतसम्यग्दृष्टिलक्षणानि ।

३.२ ११ गयडकाइं—(ग पं) हस्तिसङ्घातानि, रयणुल्लयइं—(ग पं) रदना दन्तास्तेषां रुक् दीप्तिर्येषु, बालकपक्षे रत्नाभरणदीप्तियुक्तानि, डिमरुल्यइ—(ख) डिम्भाः बालका. तेषां रत्नाभरणदीप्त्या, (ग) लेकरुकानि(?)बालकानीत्यर्थ. ।

३.२ १२ वज्जयंतु—(ख ग) वज्रदन्तु ।

३.३.१ °ऽच्छउ—(ग पं) अच्छ स्वच्छं निर्मलमित्यर्थ. ।

३.३ २ कमला इव—(ख ग पं) लक्ष्मी इव ।

३ ३.४ सायरचंदु—(ख) सागरचन्द्रनाम, वाहरइ—(ग) आकारयति ।

३.३ ७ हवि—(ख ग पं) हवि. अग्निः, महाणसि—(ख ग पं) रसवत्याम्, (ख) रसोई लोके; पवणछवि—(ख ग पं) पवने छवि. तेजः प्रभावमित्यर्थ ।

३.३ ६ मरगय''''सामलिया—(ख ग पं) मरकतमणिभित्तौ कृतश्यामवर्णाः; गोरंगी—(ख ग पं) उज्ज्वल-गौरशरीरापि, णाहें '''कलिया—(ग पं) भर्तारेण न ज्ञाता[१] ।

३.३.११ अत्थियजण—(ख ग पं) याचकजनाः; पउमालंकरिउ—(ग पं) लक्ष्म्यालङ्कृत , महापउमु—(ख ग) महापद्मनामा ।

३.३.१२ धरियकरु—(ग पं) गृहीतसिद्धादय ।

३.३.१५ हरिणंकसिरिआ—(ख ग पं) चन्द्रकान्तिशोभा[२] ।

३ ३.१८ वणमालहे—(ग पं) वनमालायाम् ।

३.४.७ संथविउ—(ख ग पं) कृतयुवराजपट्टबन्धः ।

३.४.८ देहि आएसु जीवि—(ख पं) यस्यादेशदत्ते जीवितं मन्ति [मन्त्री ?] ते कुमार मन्त्री सामन्तादि ।

[३.२] १. पं मड्ड° । २. पं निय° । ३ पं नीलंयसा । ४. पं °ख्याता । ५ पं °व्या । ६. पं नक्खा । ७. पं तैः उपलक्षिताः । ८. पं अगस्तियकं° । ९. पं °पत्राणि । [३ ३] १. ग ज्ञाता । २. चंद्रकांत° ।

३ ५.२ सुबंधुतिलउ—सुबन्धुतिलको मुनिः।

३ ५.१३ राउत्तहिं—(ग पं) राजपुत्रै ; उयहिचंदु—(ख पं) सागरचन्द्रः।

३ ६ १ राय ···ताउणो—(ख ग पं) क्रोधादि-विकथादिनिर्नाशकः।

३.६.७ पग्गिव—(ख ग पं) प्रागेव।

३.६.८ इह निम्मलु—(ग पं) ईदृशो[2] निर्मलः।

३ ६.१० विहिणा—(पं) आगमोक्तविधिना।

३.६ १२ मणि मिण्णउ—(ग प) कृताश्चर्यवितर्कः।

३.७.१२ भवकालसप्पु—(ग पं) भव एव कृष्णसर्प।

३.७.१३ विसरिस—(ग पं) अद्वितीयः।

३ ७.१४ उद्धरिय—(ग) [1]उद्धृतः।

३.८.२ विहडप्फडु—(ग पं) विकलगात्र.।

३.८.१० नउ वंकइ—(ख ग पं) शरीरं न मोटयति।

३.८.१२ निलउ—(ग प) स्थानम्।

३.८.१३ चयणिज्जहे—(ग पं) त्यजनीयाया, अविज्जहे—(ख ग पं) अविद्यारूपायाः मोहवृद्धिहेतुभूताया[1] इत्यर्थ, तहे[2] (पं तहो)—राजलक्ष्म्याः, अविलंबेण[3]—(ख ग पं) शीघ्रमेव, विकउ[4]—(ख ग प) 'परित्याग'।

३.९.२ निग्गहु····तउ तं किर—(ख ग पं) तत्तप किल इन्द्रियाणा निग्रह.।

३.९.७ चरकज्जचुओ—(ग पं) त्यक्तगृहस्थव्यापारः।

३.९.१० आहारु··· [1]ग्घविउ[1]—(ग पं) आरनालेन कञ्जिकेन सहितः आहारः ममाय योग्य; [2]इति शंशितः[2]।

३.९.१२ पारणकज्जु—(ग पं) पारणार्थम्, मुणि—(ख ग पं) जानीहि।

३.९.१६ दिणसंज्झहे—(ग पं) दिन-सन्ध्यायाम्।

३.९.१७ महुभोयणहिं—(ख ग) वायुभोजनेषु सर्पेषु।

३.९ १८ अज्जियतववफलु—(ग पं) अर्जिततपःफलं अशुभकर्मनिर्जरा[3]—शुभकर्मावाप्तिलक्षण येन।

३.१०.१ वाउ —(ख ग पं) वातः।

३ १०.४ अबाहिए[1]—(ख ग पं) व्याधिरहिते बाधारहिते च।

३ १०.६ इय तवफलु महंत —एतस्य कञ्जिकाहारस्य तपसः फलं महत्, इय तणुपह—(ग पं) एषा शरीरप्रभा।

३.१०.१० विहियतववंतरु—(ख ग पं) अनुष्ठिततपोविशेष.।

३ १०.११ जणकिण्णी[3]—(ख ग पं) जनसङ्कीर्णा[4], वित्थिण्णी—(ग) विस्तीर्णा।

[३ ६] १. पं इउ। २. ग ईदृश्यो। [३.७] १. पं उद्धृत्य। [३ ८] १. ख ग °भूताया.। २. प तहो। ३ ख ग अव°। ४ पं °ओ। [३ ९] १. पं °ग्घविओ। २. पं प्रशंसित.। ३. ग °निर्ज्जर। [३.१०] १ अबाहियए। २. पं तवहलु। ३ पं °कित्ती। ४ पं संकीर्ण्ण।

३.१०.१२ सुचित्तउ (पं सहचउ)—(ग पं) सुचित्तः साभिप्रायः[५] धूर्त्त इत्यर्थ., नामें[६] सूरसेण—(ख ग पं) सूरसेननाम्ना इभ्यः श्रेष्ठि; धणइत्तउ—(ख ग पं) धनाढ्यः।

३.१०.१४ सज्जिय—(ख ग पं) तीक्ष्णीकृत.।

३.११.१ तेहिं—(ग) तावत्तस्तः, सकम्ममणिणं(पं °मावेणं)—(ग पं) स्वकर्मणा स्वकीयमनोव्यापार-भव[१] प्रादुर्भावो[२] यस्य।

३.११.२ वाहि''''घत्थु—(ख ग) व्याधिग्रस्त. ग्रस्त. पीडित (पं) गृहीत.; णिप्पहु—(पं) अनादेय-मूर्त्ति[], अज्जियपुव्वपावित्तिणं—(ग पं) पूर्वोपार्जितपापकर्मणस्तेन।

३.११.४ °वाउ—(ख ग पं) वातो व्याधि.।

३.११.५ कंतह—(ख ग) भार्याविलुप्त.।

३.११.८ सहुट्ठउ—(ग) उष्ट[ओष्ठ]सहितम्।

३.११.९ सखुद्दु—(ग) स क्षुद्र, समुद्दु—(ख ग) स्वमुद्राङ्कितम् मुद्रासहितम्।

३.११.१५ रइयावणु—(ग पं) सर्वेषा रवे.[३] प्रीतेर्वा[४] जनक.।

३.१२.१-२ नववसंतओ हणुवंतु व—(१) विरहा ''अंतओ—(ग पं) विरहातुरेण रामेण हनुमान् आलोक्यमानः, नववसन्तस्तु विरहातुररामाभिरालोक्यमानः, (२) मारुयचुंबियासु—(ग पं) हनुमान् मारुता वायुना पित्रा चुम्बितास्य. चुम्बितमुखः, नववसन्तस्तु मारुता दक्षिणवायुना कामोद्रेकजनकेन चुम्बितदशदिशः।

३.१२.५ मानहो मउखिज्जइ—(ख ग पं) मानस्य मदः क्षीयते।

३.१२.६ करंति''''सुम्मइं—(ग पं) गृहस्योपरि सुष्ठुर्मति अतिशयेन अनुरागवृद्धिं कुर्वन्ति।

३.१२.८ पहावइ—(ख ग पं) प्रधावति; पहावइ—(ख ग पं) प्रभावती मति कान्तिमती नायिका।

३.१२.९ विरहु णिद्धाडइ—(ख ग प) विरहं निर्द्धाटयति, स्फेटयति[१]; (पं) णिद्धाडइ—(पं) स्निग्धा-सजलअटवी।

३.१२.१० मालइ''''वज्जइ—(ग पं) भ्रमरो यथा वर्जयति मालतीकुसुमम्, पाटलादिकुसुमेषु तदा तस्य शक्ते [वासक्ते.]।

३.१२.१२ वेयल्लें—(ग पं) शीघ्रेण।

३.१२.१३ °अंत''''किं सुय[२]—(ख ग पं) शुकपक्षसमानै. हरितपत्रै., मुखसमानै सुरक्तपुष्पैः भ्रान्तचित्तो जन. किंशुका. एते इति जानाति।

३.१२.१४ पुज्जसमारइ—(ख) समारति ' पूजा, समारइ—(ग) करोति, वट्टइ—(ग) वर्त्तते; मिहुणहं—(ग) मिथुनस्य स्त्रीपुरुषयुगलस्य, हियइ—(गं) हृदये, समारइ—(ग) समा रति., [३]समाना रतिः[३], समद्युतिः इत्यर्थ, (ख) हियइ समारइ वट्टइ—हृदये रति प्रवर्त्तते।

३.१२.१५ तुरयहिं''''न चिज्जइ—(ग प) आर्द्रस्वादिका.[४] चणकाः, न चिज्जइ—[५]न भक्ष्यते[६], तदा चणकानां प्रक्षरत्वात् तद्भक्षणात् [७]तुरगाना [८]शूलप्रकोपनात्; (ख) अल्लहज्जि न चिज्जइ—नीलचणका[·] न भक्ष्यते [°यन्ते]।

---

५. पं °प्रायो। ६. पं नामइ। [३ ११] १. ग °भावा। २. ग °भावा। ३. पं रति-। ४. पं प्रीतिर्वा। [३ १२] १ पं स्फोट°। २. पं अंतचित्तु जणु जाणइ किं सुय। ३. पं समरातः। ४. पं आद्रस्वादिका। ५ ग नाम। ६. पं भक्षते। ७. ग तुर°। ८ पं मूल°

३.१२.१७ वल्लइ—(ख ग पं) वीणा।

३.१२.१८ वसंतहो—(ख ग पं) वसन्तमासे, (ख) वा उपवासे; वसंतहो—(ख ग पं) तिष्ट[ठ]तः[1]।

३.१२.१९ नायहो जलणहो—(ख ग पं) ज्वलननाम्नो नागस्य।

३.१२.२० निवइ—(ग) नृपतिः, विहउ—(ग) विभव; पयडीकयविहउ—(ख) प्रकट[ीकृत] विभवम्।

३.१३.१ रविसेणें—(ख ग) सूरसेनेन।

३.१३.२ जत्तुच्छवि—(ग) यात्रोत्सवे, रक्खणसहिउ—(ख ग) रक्षा[रक्षक]संयुक्तः।

३.१३.३ अहिभवणु—(ख ग) नागभवनम्।

३.१३.४ फणसच्छायहो—(ख पं) फणेषु[1] सती शोभना छाया रत्नदीप्तिः, शोभा वा यस्य[2]।

३.१३.५ एत्तडउ करेज्जहि—(ग) एतावन्मात्र कार्यं कुर्या, म दिज्जहि—(ग) मा दद्याः।

३.१३.७ सुमइ—(ग) सुमतिनामा।

३.१३.८ तेहिं—(ग) ताभिश्चतसृभिः स्त्रीभिः।

३ १३.१२ ववगयसत्तउ—(ख ग पं) व्यपगतसत्त्वः।

३.१३ १३ केवलवाहहो—(ख ग पं) केवलज्ञानधारकस्य।

३.१३.१४ सुव्वय—(ख) व्रतिका [सुव्रता नाम आर्यिका], चयारि वि कंतउ—(ख) चतु.भार्या., निक्खंतउ—(ख ग पं) गृहीतदीक्षा.।

३.१३.१६ एउ चयारि " पियउ—(ग) एता चतस्र. प्रियाः जाताः।

३.१४.४ विज्जुच्चरहिहाणु—(ग) विद्युच्चराभिधानम्।

३.१४ ६ °वरु (पं °धरु)—(ख ग पं) प्रधानम्।

३.१४.७ पलयमहामरु—(ग पं) प्रलयकालमहावातः।

३.१४ १३ जग्गंतो वि—(ग पं) जाग्रदपि।

३.१४.२१ °भाविणि—(ख ग प) प्रतिभासिनी[1] वल्लभेत्यर्थ.।

३ १४.२३ विणु निन्तिए—(ग) नीत्या विना।

सन्धि–४

४.१ १ दट्ठु न सहंति—(ख) दृष्टि नावलोकते, दट्ठुं—(ग) द्रष्टुमवलोकयितुम्।

४.१.४ मगहाहिउ—(ख) श्रेणिकु [°कः]।

४.१.६ धाराहरे—(ख ग पं) मेघे[1]।

४.१.८ एयहो—(ग) अर्हद्दासस्य, पियहो—(ग) प्रियाया.।

---

१. पं तिष्ठतत.। [३.१३] १. ग फणासु। २. पं यस्याः। [३.१४] १. ख °पिणी, पं °सिनी।
[४.१] १ पं मेघ।

४.१.९ जक्खु—(ख) जक्ष [यक्ष] कथा ।

४.२.२ सइत्तउ—(ग) सचित्तः सावधानः, संतप्पिउ—(ख ग पं) नामेदं श्रेष्ठि[ठ]नः; धणइत्तउ—(ग) धनाढ्यः ।

४.२.४ जिणयास—जिनदासः ।

४.२.७ ढक्कुडुक्क—(ख ग) ढाक डिंडिम, समाणइ—(ख ग पं) सहिते, आवाणए—(ख पं) [1]मद्यपानगोष्ठ्या मिलित्वा[1] मद्यपानस्थाने ।

४.२.१० छलय (ख) टींटा नामम्, छलयनामजूयारें—(ग) छलकनामद्यूतकारेण ।

४.२.११ पमणइ—(ग) जिनदास [उत्तरं ददाति], तउ—(ग) तव ।

४.२.१३ विप्फारहिं—(ग पं) प्रयोगिभि ; हँवाइउ—(ख ग पं) गर्व नीतः ।

४.२.१५ पगिव ""जायउ—(ख ग) प्रागेव प्रतिज्ञा कृत्वा ईर्ष्या गत" ।

४.२.१६ गिरग्गलु—(ख ग पं) निवारकरहितम्, असिछुहियए—(ख ग पं) छुरिकया ।

४.३.१ तं वइयरु—(ग) तं व्यतिकरं वृत्तान्तम्, अरुहयासें—(ख ग) अर्हद्दासेन भ्रात्रा [भ्रात्रा] ।

४.३.२ अंतइं ओविवि—(ख) अन्तनिये (°पे° या °वे°) सिवि (?)

४.३.८ महभाइहि—(ख) वडउ भाइउ मदीयं मम भ्रातु. ।

४.३.१२ भवजलु—(ख पं) संसारजाड्यम्[1] ।

४.३.१४ कम्मा""दप्पिणिहि ओसप्पिणिहिं—(ख) कर्माश्रव·[2]स एव[2] मरुत् वात , तस्य दर्पः उत्कटता, सा विद्यते यस्यां सा अवसर्पिणी; कम्मा""दप्पिणिहिं—(ग पं) कर्मभिरभिभूतं[3] आशयं चित्तं तदेव[4] मरुत् वातः, तस्य दर्पः[5] उत्कटता सोऽस्याः (सोऽस्या अस्तीति) सा कर्माशयमरुद्दर्पिणी, तस्यां [अवसर्पिण्यां] ।

४.३.१५ तमनियरु—(ग पं) अज्ञाननिकरः ।

४.४.१२ जयसासण—(ख ग पं) प्राणिनां आश्वासकः, अथवा इहलोक-परलोकाकाशानिराकारकः ।

४.४.१३ धर (पं धरा)—(ख ग पं) अभ्युद्धारकम् ।

४.५.३ सहाभासिरीए—(ख ग पं) सभाया भासनशीलया[1] शोभायमानया ।

४.५.४ ससामंतविंदो—(ख ग पं) सामन्तवृन्दसहित. ।

४.५.५ सरंतो—(ग) स्मरन् सन् ।

४.५.६ मयालोयणीणं—(ख ग पं) मृगवदा[°वत्°]लोचनीनाम् ।

४.५.६ मणत्थोहयेणो—(ख ग पं) मन एव अर्थौघ. तस्य स्तेनश्चौर·, परहृदयहारकः इत्यर्थः ।

४.५.८ समुट्टंतरावो—(ख ग पं) उच्छलत् कोलाहल ।

४.५.९ रमालीढवच्छो—(ख ग पं) लक्ष्म्यलङ्कृतवक्षस्थलः ।

४.५.९ पयापालणिट्ठो—(ख ग पं) प्रजापालनमिष्टं यस्य ।

४.५.१२ तओ सत्तिरत्ते—(ख ग) तद्दिनात् सप्तमदिने ।

[४.२] १. पं मद्यपानामिलित्वा गोष्ठ्या । [४.३] १. पं संसारें । २. ग तदेव । ३. पं °भूत । ४ पं स एव । ५ पं दर्प्प । [४.५] १. ख ग °शालाया । २ पं °लंड ।

४.५.१४ वासधामे—(ख ग पं) चित्रशालिकायाम् ।

४.५.१५ तमोसेसरामे—(ख ग पं) रात्रिशेषे रमणीये ।

४.५.१६ तूलियंके —(ख ग प) तूलिचिह्ने तूलिमध्ये च ।

४.६ २ जोइय सव्वासं—(ख ग पं) द्योतितसमस्तदिशम्[1], सव्वासं—(ख ग पं) अग्निम् ।

४ ६.४ कूइय—(ख ग पं) गर्जित.[2] ।

४.६ ५ मयर "पायारं—(ग पं) मकरमत्स्यकच्छपानां प्रकारा भेदा. यत्र, पारावारं—(ख ग पं) समुद्रम् ।

४.६.६ सुयणालोयं—(ख ग) स्वप्नालोकम् ।

४ ६.१० परमत्थं—(ग) सत्यस्वरूपम्, (ख) परमं अत्युत्कृष्टं अर्थं पुत्रलाभलक्षणम् ।

४ ६ ११ जंबुफलालोए—(ख ग पं) जम्बूवृक्षफलालोकनेन ।

४ ६.१३ रयणाहारो—(ख ग) रत्नाना धारकः, (पं) रत्नधार ।

४ ७.३ लालसइं—(ख ग पं) दोहदलम्पटानि ललितानि मुकोमलानीत्यर्थ., सालसइं—(ख ग पं) [1]आलस्ययुक्तानि ।

४.७ ४ सिय—(ख ग पं) पाण्डुर ।

४.७.५ मरगय""सेहरिया—(ख ग पं) मरकतकलशैः शेखरिता., अग्रभागे मरकतकलशोपेता इत्यर्थः ।

४ ७.९ नव ''पओहरिया—(ख ग पं) प्रावृड्लक्ष्म्या नव पयसा अभिनवपानीयेन [2]पूर्णा पयोधरा[3] मेघा. भवन्ति गर्भवत्यां तु नवपयसा दुग्धेन [2]पूर्णा. पयोधरा.[3] स्तना.[4] भवन्ति; आसन्न 'सिरिया—तथा प्रावृड्लक्ष्म्यां आसन्नं ज्येष्ठानक्षत्रं भवति, गर्भवत्यां तु आसन्ना. ज्येष्ठा[5] प्रसवनकर्मकुशला.[6] वृद्धा स्त्रिय.[7] सूयिन्यो (?) भवन्ति ।

४.७.१० रोहिणिठिए""लंछणे—(ख ग) रोहिणीनक्षत्रे स्थिते चन्द्रे, सयलंछणे—(ख) सोमवासरे ।

४.७.११ पच्चूसे—(ग पं) प्रभाते, पसूय—(ग) प्रसूता ।

४.७.१३ कण्ण °पडियइ—(ग) कर्णयोः पतितमपि न श्रूयते ।

४ ८.१ अलंकियनिसंतेण—(ख ग पं) अलङ्कृतं भूषितं निशान्तं राज्यवसानम्, राजगृह वा येन सूर्येण, (ख) प्रभातेन, (ग) कुमारेण च, बालेण—(ग पं) तेन जम्बूस्वामिनाम्ना, पसरेण—(ग पं) प्रसरेण वा प्रभातेन वा ।

४.८ २ सूयाहरे—(ख ग पं) प्रसूतिगृहे, दिण्ण '''निहित्ता—(ग) कृतदीपोद्योताः, निक्षिप्ता, (पं) दिनदीपौधप्रभाकृता तद्वत्, कथंभूतेन तेन बालेन प्रभातेन वा ? (४.८ १) तथा तरुणा''' तेएण—तरुणश्चासौ अरुणश्चारक्त स चासावादित्यश्च तस्यैव तेजो यस्य बालस्य प्रभातस्य [1]वा तेन ।

४.८ ३ विद्धि '''लोएहिं—(ग पं) वृद्धिवर्द्धमाने[वर्द्धापिते] आगच्छद्भि.[2] लोकैः ।

४.८.४ दरमत्त—(प) यौवनमदेन (ख ग पं) ईषन्मत्त [ ] ।

४ ८ ५ महायट्टसंघट्ट—(ग पं) महामेलापकसङ्घट्ट ।

४.८.६ पंडो '''नेत्तेहिं—(ख ग) पण्डुदेशोद्भूतानि प्रभावन्ति नेत्रदेशोद्भूतानि च तै. (प) पण्डोबालं चीर प्रभावन्त नेत्राणि च, अथवा पण्डोदेशोद्भूतानि च प्रभावन्तनेत्राणि च ।

---

३. पं °अके । [४.६] १. पं °सर्व्वदिगं । २. पं °ता । [४.७] १. ख ग आलस° । २ पं पूर्णा । ३ पं °धरा । ४. पं स्तना । ५ पं ज्येष्टा । ६. पं °कुशला । ७. पं स्त्रिया । [४ ८] १. ग च । २ °च्छन ।

४.८.६ वियाणेसु—(ख ग पं) विमानेषु चन्द्रोपकेषु ।

४.८.७ सक्काउहायार—(ख ग पं) [3]पञ्चवर्णेन्द्रधनुषसदृशाकाराः ।

४.८.१२ अकत्तिए—(ख ग) अकार्त्तिके, निरंतरंतरं—(ख ग पं) अतिशयेन निरन्तरम्; निरब्भमंबरं—(ख ग) अभ्ररहिताकाशम् ।

४.८.१३ असारयं—(ख ग पं) निरुदकम्, खयं—(ख ग पं) नष्टम् ।

४.८.१४ रुक्खसतई पफुल्लिया—(ग) सा वृक्षसन्तति प्रफुल्लिता; तई—(ख ग पं) तस्मिन् काले; वणासई सई—(ख ग पं) न केवलं वृक्षसन्तति , सई—पापि वनस्पतिरपि प्रकर्षेण पुष्पिता ।

४.८.१५ सुवण्ण ' सासुरा सुरा—(ख ग पं) सुवर्ण इत्यादिः सुवर्णवृष्टिम्, किं लक्षणाम् ? (ग पं) भासुरां दीप्तां मुञ्चन्ति तथा सुरा. शोभन रा द्रव्यं मुञ्चन्ति, के ते ? सासुराः असुरकुमारैः समन्विताः सुराः देवा. ।

४.९.५ गुरु '''सत्थइं—(ख ग प) गुरुश्चाध्यायः[1] निमित्तमात्रम् शास्त्राणि पुनः पठितानीव स्वयमेव तेन ज्ञातानि, (ग पं) तथा मन्त्राश्च शस्त्राण्यायुधानि स्वयमेव तेन ज्ञातानि, मतत्थइं सत्थइ—(ख) तथा मन्त्राणि च शस्त्राणि च आयुधानि ।

४.९.६ नीसेसाउ''''अब्भसियउ—(ग पं) तथा निःशेषाः समस्ता कलाः अभ्यस्ता ; कथंभूता कलाः ? संपाइय''' रसियउ—(ग प) संपादित च तत् त्रिवर्गफल च धर्मार्थकामफल तेन रसिकादिचत्तानन्दजनकाः यास्ताः ।

४.९.९ विहुयणममि सइत्तिए—(ग पं) त्रैलोक्यभ्रमणे दत्तचित्तया ।

४.१०.४ कवणु ''सुरकरि—(ग पं) [1]को [हस्ति] ? न कश्चिद्धस्ती[1] अस्ति यो यशसा धवलितः [2]सुरकरि-एरावनिर्द्धावल्यगुणेन न जात ; सा सरि '''सुरस.रि—तथा सा का सरित् नदी या यशसा धवलिता सुरसरित् गङ्गातुल्या धावल्यगुणेन न जाता।

४.१०.५ तुहिणायलु—(ग) हे(हि)माचलः।

४.१०.७ लुद्द (पं लोद्द)—(ग पं) लोद्रावृक्ष ।

४.१०.१० [3]मइ '''मणु—(ग पं) मा दुःखमात्रनं करोति; तत्किं द्वितीयमपि मनोऽस्ति ?

४.११.१,२ काहे वि '''कचोले खित्त; पल्लट्टइ''''सुण्णु—(ग पं) विरहानलेन संप्रज्वलितः[1] स चासौ अश्रुजलौघश्च तेन [2]तु इलित प्लावित [2] स चासौ कचोले क्षिप्तो; दत्तो हस्तश्च त हस्तं शून्यं चूडकरहितं कुर्वन्, पल्लट्टइ—प्रवर्त्तते (परिवर्तते ?), कथं पुन. हस्तस्य चूडकरहितत्व संपन्न ? (पं) अश्रुजलौघेन विरहानलसंपन्नाग्निवर्णेन ओहलितस्य (?) दन्तिमचूडस्य अवस्यंतिशयेन(?) चूर्णीकृतत्वननेष्टत्वात् ।

४.११.५ कजपुंजु[3]—(ग) कमलशय्याम् (पं) पद्मशय्या ।

४.११.६ नीसा (°जु) हुंतु—(ख ग पं) निःश्वास एव [4]चल्लिचुणं अरहट्टघट्टिका विरहानलस्य बहिर्निक्षेपकं यदि नाऽभविष्यत्, बदिसंदोह—(ग पं) [5]वन्दीना नग्नाचार्याणा, सदोह संघातः ।

४.११.८ कंठालु[6]—(ग पं) कसणि (?) ।

४.११.९ उत्तालियाए—(ग पं) उत्सुकया[7] ।

---

३. पं °धनुष मदृश आकाज । [४.९] १ ख ग °ध्याया । [४.१०] १. पं कश्चिन्न हस्ति । २. ग करी । ३ मइ । [४.११] १. ग °ज्वलित. । २ पं तुलित ओहप्लाँ । ३. °पुंज । ४, पं चल्लिचुणं अरगर्त्तघटिका । ५. ग वंदिनां । ६. पं कंठाणलु । ७. पं °कयाः ।

४.११.१० कवरी—(पं) वेणी ।

४.११.१२ मयजल—(ग) प्रेमसलिलम्, (पं) शुक्रः ।

४.११.१४ नहे—(ख ग) नभसि ।

४.११.१५ नसावडइ—(ख) न संपद्यते ।

४.१२.३ मलतकणय—(ख ग पं) कनकमाला[1] ।

४.१२.५ वयसवणजुत्ति—(ख) कुबेरसदृशम्, (ग) ऐश्वर्यादिना वैश्रवणयुक्तिरुपपत्तिर्यस्य ।

४.१२.६ रूवलच्छी—(ग पं) रूपश्री ।

४.१२.७ फेरियाड—(ग प) [2]हस्तेनोत्क्षिप्य भ्रामिता[3] ।

४.१२.११ भासा... लक्खु—(ख ग पं)—संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंशस्वरूप भाषात्रय तल्लक्षण च; लक्खु—(ख पं) तद्वाच्यम्, दसण[4]—(ग प) दर्शनानि षड्, नआ—(ग पं) नया. नैगमादय. सप्त ।

४.१२.१३ सचित्तु—चित्रेण सह ।

४.१३.१ नवल्लु—(ग) अभिनव, (प) अभिनव अन्यजनासम्भवम् इति, उम्मीलइ—(ख ग पं) प्रकटीभवति ।

४.१३.३ आउंचिय—(ग पं) कुरुण्टायमान, अंगुलितणावलि—(ग पं) अङ्गुलयः (पं ग्राण अङ्गुलिः) षोडषाका. तासा आवलि[1] पङ्क्तिः ।

४.१३.७ नासावंसु—(ग पं) नासिका, अहरमुद्द—(ख ग पं) अधरस्वरूपम्, करमुद्दव—(ख ग प) हस्तमुद्रिकेव ।

४.१३.८ धणुगुणु... टंकारइ—(ग पं) तासा कोमलध्वनिद्वारेण मकरचिन्ह[2] काम· धनुषो गुणं दोर टङ्कारयति, वादयतीव ।

४.१३.९ अच्छं—(ग पं) अच्छं पत्तलं निर्मल वा ।

४.१३.१० रेहाइल्लु—(ग पं) रेखायुक्त, कलु—(ग पं) मनोज्ञ, विजयसंखु—(ग पं) त्रिभुवनविजय-सूचकशङ्ख, नज्जइ—(ग पं) ज्ञायते ।

४.१३.११ विडंवइ—(ग पं) कदर्थयति ।

४.१३.१२ उक्कुक्किकरियसिहिण—(ग प) [3]प्रथमतो उद्गतवन्तौ, सिहिण—स्तनौ, रइपइरायहो—(ग पं) कामस्य ।

४.१३.१३ गुलिया—(ख ग) 'गुल्ही' इति लोके ।

४.१३.१४ रोमंचिए[4]—(ग प) रोमावल्या ।

४.१३.१६ रंभागब्भोरु व[5]—(ग प) रंभा-कदली, तस्याः गर्भो (?) इव, रइरामहो—(पं) रत्या रमणीयस्य, वम्महधामहो—(पं) मन्मथवलगृहस्य-श्रोणिततलस्य ।

४.१३.१७ कुम्मायारु—(ग प) कूर्मोन्नताकारम् ।

४.१३.१९ ताउ—(ग) ताश्चतस्र, अहिट्ठिड—(ग पं) अधिष्ठिता यत्र देवे स्थिता प्रत्यक्षीभूता न यत्र दृष्टा इत्यर्थ ।

[४.१२] १. ख ग °माला । २ पं हस्ते उत्क्षिप्य । ३. ग °ता । ४ प त्रसुदंसण । [४.१३] १. प °लि । २. ग °चिन्ह । ३. ग. प्रथम । ४. पं °चइ । ५. पं य ।

४.१४.१ मयणसयणं व—(ख ग पं) मदनस्य शयनं शय्या इव ।

४.१४.२ धारंति ताउ—(ख ग पं) ताः धरन्ति, विद्दुम.....अहरं—(ग पं) ओष्ठम्, कथभूतम् ? विद्दुम... दंतुर—(ख ग पं) विद्रुमं प्रवालक हीरकश्च प्रसिद्धः तयो. रुचि. दीप्ति. तया दन्तुर कर्बुरं विद्रुमोपमाधरबिम्बं शय्यास्थानीयम्, हीरकतुल्या दन्तरुचिः पुष्पप्रकरस्थानीयेति ।

४.१४.५ चलणच्छविसाम—(ख ग पं) चरणाना पादाना छवि. कान्ति. तया, साम—तुल्यता[1]; अहिलासि—(ग) अभिलाषेन, वाञ्छया, कमलेहिं—(ग) पद्मैः ।

४.१४.६ नियय....पमाणम्मि—(ग) निजमात्मान क्षिप्त्वा कण्ठप्रमाणे ।

४.१४.७ सलग्गहिखाइयाले—(ख ग पं) नाभेरधोरेखा सैव खातिका तथा युक्ते, तिवलि—(ग पं) नाभेरुपरि रेखात्रयम् ।

४.१४ १० आयउ—(ग) एता, निम्मविउ—(ग) निर्मिता; पयावइ—(ग) ब्रह्मा ।

४ १४.११ नियवि—(ग) दृष्ट्वा; हसिय—(ख) उपहसितम्, (ग) उपहसति ।

४.१४.१९ नासंकमि—(ग प) अस्माकमसंख्यमप्यमुमर्थं सवज्ञैः सहोपोद्वृतं[2] वक्तुं (न) शक्नोमि ।

४.१४.११ लग्गु—(ग पं) लग्नः, जोईसें—(ग) ज्योतिष्केन ।

४.१५.१ पंचप्पयारु—(ख ग पं) पञ्चपरमेष्ठीभेदभिन्नं पञ्चप्रकारम् ।

४.१५.८ केरलि—(ख ग पं) केरलदेशोद्भवानायिकाः ।

४.१५.६ (ख) सज्झइरि—(ख) सह्याचलस्य; कणिर—(ग) कण कण इति शब्दित.; कण्णावतंसु—(पं) ताडपत्रम् ।

४.१५ १० कोंतलि—(ग प) कोन्तलदेशोद्भवा नायिका[1]; कोंतलभर—(ग पं) केशसंघात ।

४.१५.११ उद्दीविय—(ख) उत्कृष्टं कृतम्, उद्दीविय[2]... विडंबु—(ग पं) उद्दीपितम् उत्कटं कृतं कामक्रीडनं यासा ताश्च ता[3] रम्घ्रश्च[3] नर्मदाः तत्तद्देशोद्भवानायिकास्तासा विडम्बक.[4] कदर्थक.; पं नर्मदातटदेशो० ... ।

४.१५.१२ पयडिय दरोरुभाउ—(ख ग पं) ईषत् प्रकटित ऊरुदेशरूपो[5] येन ।

४.१५.१५ कीवइ—(ख ग पं) क्रीडानि ।

४.१६.३ तरलदल—(ग पं) तिर्यक्प्रसूनपत्रावली, लवली—(ग पं) लवङ्ग; कयलीमुहं—(ग पं) कदलीप्रभृति ।

४.१६.५ नग्गोह—(ग पं) वटवृक्षः ।

४.१६.८ रइवराणत्ता—(ग पं) कामादिष्टा, अवयण्ण—(ग) व्यावृत्ता, (प) व्यावृत्य; माहवसिरि—(ग पं) वसन्तलक्ष्मी ।

४.१६.१२ थण ...विडविणि—(ख ग पं) स्तनरमणप्राग्भारकदर्थिता, निहुअणकेलिहि—(ख ग पं) कामक्रीडाया ।

४.१७.१ अणुणइ—(ख ग पं) अनुकूलं करोति, परिहासा ...भणइ—(ख ग पं) विशिष्टाना परिभाषणयोग्यानि पेशलानि मनोज्ञवचनानि भणति एव वक्ष्यमाणा कन्या येन ।

[४.१४] १ ख ग समा°, पं समतुल्यता । २ प °पोद्वृत्त्ये । [४.१५] १. पं °का । २ पं °विए । ३. पं तरीधश्च । ४. प विट° । ५. पं °रूप. । [४.१६] १. पं निहुवण° केलिहिं ।

४.१७.२ कुरओ[1]—(ख ग पं) वृक्षविशेष, साणदु[2]जं न[2] आलिंगिओ सि—(ख ग पं) यतः यस्मात्र [3]सानन्दो भवसि[3] आलिङ्गितः सन् ।

४ १७ ३ केम्परुक्ख—(ग पं) बकुलवृक्ष. ।

४.१७.४ कलिओ "रुक्ख—(ग पं) आकलितोऽसि ज्ञातोऽसि त्वं अशोकवृक्ष इति, लइ—(ग पं) - पूर्यता, पाय ‴मुक्ख—(ग पं) यत पादप्रहारेण त्वं मूर्ख हससि, विकसति ।

४.१७५ विवरीयवयण—(ग प) विपरीतवदना, पराङ्मुखा, पणयकुद्ध—(ग) प्रणयकोपा, (पं) सभया—भयात्रिरयवसप्रणयकोपा [°कोपा] ।

४.१७७ परियत्तवि—(ग) व्याघुटय ।

४ १७८ विराइ—(ग प) विराजते, धाइ—(ग पं) धावति ।

४.१७.९ नववहुवहे—(ग) नवीनकान्तायाः ।

४.१७.१२ आवाणए[4]—(ग पं) आपानके हि मद्यप-मद्यपानमेलापकस्थाने ।

४.१७.१४ झिज्जन ‴मयणु वयणु वहइ—(पं) मद्यपानरहितप्रदेशे प्रसर-मदनवशादचलमवृ(रि)पतकोप-प्रदेशे वा रक्त मुख धरतीति ।

४.१७.१५ फलिहमय अवाणयचषउ—(ग प) स्फटिककोशकपीयमानमद्य ।

४.१७.१६ मयणाहि—(पं) कस्तूरिका ।

४.१७ १६-१७ मयणाहि ‴चंदमरिसु सुहु किउ एउ कूडमंतु—(ग पं) निष्कलङ्क मुख कस्तूरिकातिलकं कृत्वा सकलङ्क कृतमिति कूटमन्त्रोऽयम् ।

४.१७ २० लहासु—(ग पं) लडहिमा[5] ।

४.१७ २१ सं सत्त ‴पवत्तु—(ग पं) तव विघ्नत्व सकलमप्युद्यान प्राप्तम् ।

४.१७ २२ कलइ—(ग पं) आकलयति ।

४ १७ २३ वकालावहिं " पडिक्खलइ—(ग पं) परिस्खलइ वक्रोक्त्या अर्थान्तरे योजयति ।

४.१८ १ नच्चंता मोरा—(ग प) जम्बूस्वामिनोऽभिप्राये मयूरा, नायिकया च तद्वचन छलितम्, त्वदीया नृत्यन्तमिति, 'मोरा' शब्दो हि मयूरे आत्मीये च वर्तत इति ।

४.१८ २ कारंडाण "रिउवरिणिहुं—(ग प) का रण्डाना विधवाना पङ्क्ति चेत्पृच्छसि[1] । या तव रिपुगृहिणीनामिति छलोक्त्या उत्तर [2]दत्तम्

४.१८.३.सरु‴चावे वहइ—(ग पं) सरु—शब्द. कोकिलायाः कोमल एव वहति प्रवर्तते इति स्वामिनो वच, तच्छलोक्त्या प्रश्नं करोति, कः शर. कोमल एव वधते इति चेत् ? उत्तरमाह—(ग प) य शर मेदनधनुटापिते चापे गृह्णाति स पुष्पमयबाणत्वात् कोमलोऽपि वधते ।

४ १८ ४ एयं च ‴जणाण—(ग प) इह चारवृक्षेवन[3] आनोहीति स्वामिनो वच, तत्र छलोक्तिः प्रिया-लान[4] प्रियतमस्य आलपनं संभाषण दुर्लभ दुर्भगजनानाम् ।

४.१८.५ सारंगं ‴पडइ गच्छ—(ग पं) सारंग-हरिण गता, सारंगी-हरिणी, दक्षा धूर्ता इति (पं) स्वामिनो वचः, तत्र छलोक्तिः यदि सारङ्गो उत्तमाङ्गेना सारङ्ग गता भूमि प्रविष्टा तत सा नृत्यतु, पटह वादय त्वं ! गच्छ !

[४.१७] १ प कुरवो । २ पं जन्न । ३. पं सानदं भि । ४ पं °णइं । ५. ग °हिम । [४.१८] १. पं °से । २. दत्त. । ३ पं चारवन वृक्ष । ४. °लवण ।

४ १८.६ पिय····कामधेणु—इन्द्रगोपकान् रक्तकीटकविशेषान् विगतरेणून् निर्मलान् [५]पश्य पश्येति[६] स्वामिनो वचः, तत्र छलोक्ति. यदि इन्द्रगोः कामधेनुस्तस्याः पादान् पश्यसि, विरेणून्—परिस्फुटान् तदा लड्-पूर्यताम्, कामधेनुरियमिति, मग्गि दुद्धु—याचय दुग्धम् ।

४.१८ ७ जले ···जलम्मि मंदु—(ग प) जले कङ्को बकः, हंगो चेय, हंसो यद्यपि स न भवति, तथापि मन्दमन्दगतिः, क्व ? जलम्मि—जले, इति स्वामिनो वच, तत्र छलोक्ति. तु हंसो चिवय त्वमेव स कङ्क कं परमात्मा मुखं (पं स्वरूप) कौति (प कोपति) प्रतिपादयतीति कङ्क, जलम्मि मंदु—जडे [७]जडस्वरूपे मन्द [८]निरन्तर [°तर]जडस्वरूपमित्यर्थ. ।

४.१८.८ सुइ....कज्जु नाह—(ग पं) शुक. कीरो विशेषेण जल्पतिस्तत्र [अत्र] का बाधा का पीडा इति स्वामिनो वचः, तत्र छलोक्ति —यदि सुतः पुत्रो विलपति, हे नाथ ! तदा संठवि—सस्थाप्य श्रद्धा कुरु, यतः इद परकीयकार्य न भवति ।

४.१८.९ म हे सरु···णिच्चणहाणु—(ग पं) माघमासे सरः कमलसरोवर. शिशिरेण हिमेन दग्धं जानीहि त्वमिति स्वामिनो वचः, तत्र छलोक्तिः—माहेश्वरो महेश्वरभक्त.[९] गडुकादिकं ददाति[१०] यदि शीतेन म्रियते[११] तदा मरिहिइ—त्रिदण्डी अतिशयेन म्रियता[१२] यतो यस्य नित्यमेव त्रिसन्ध्यास्नानम् ।

४.१८.१० सुद्धिहे····कत कंतावसाणु—(ग पं) तापसाना शुद्धे. कारण कं-पानीयमिति स्वामिनो वचः, तत्र छलोक्ति कंतावसाण[१३]—कान्तावशवर्त्तिना रागिणा तापसानां जलस्नानमात्रेण का शुद्धिर्न कदाचि-दपीत्यर्थ [काचि० ?] ।

४ १८.११ केरिस ···हरिणंकरेह—(ग पं) हे तन्वङ्गि त्व अथ च कीदृशा वक्रा ? अतिवक्रासीत्यर्थ.[१४] इति स्वामिनो वच , तत्र छलोक्ति—हे नाथ यासौ तन्वङ्गी अतिवक्रा च सा हरिणाङ्कस्य चन्द्रस्य रेखा द्वितीयाचन्द्रस्य कलेत्यर्थ. न चाहं तथाभूता इति ।

४.१८.१२-१३ (पं) दोहडा —गोरी····सुकति । तं वा ···न मंति ॥—(ग पं) गौरी गौरवर्णाताम्राधरेण आरक्तौष्ठेन सुकान्ता सुष्ठुरमणीया केवल न भवति, किन्तु सामली—श्यामवर्णाताम्राधरेण सुकान्ता भवतीति स्वामिनो वच॰, तत्र छलोक्ति —तंबा गौः, वसहें—वृषभेण, रमिय—सेविता, न पुनः तम्बा हरेण महेश्वरेण सेविता, हरेण पुनर्गौरी रमिता अनार्थे न कदाचिदपि [काचि० ?] भ्रान्तिः, सर्वथा सुप्रसिद्धमेतत् ।

४.१८.१४-१५ जइ साहिवि····सिंगाररसु । दूरंतरे ···विसयकसु—(ग० प०) तत्रोद्यानवने क्रीडता[१५] जम्बूस्वामिप्रभृतीना योऽसौ शृङ्गाररस , मदनोऽपि तं यदि साहवि सक्कइ—वर्णयितुं शक्नोति, अथवा सोऽपि न शक्नोत्येव, दूरन्तरे तिष्ठतु,[१६] आरिसु[१७]—अव्युत्पन्न.[१८] अस्मदृश कवि.[१९] कथं परिजानाति, विसयकसु— —(ख ग पं) शृङ्गारविषयविभागनिश्चयम् ।

४.१९.१ कामवेए—(ग पं.) कामस्य वेगे[१] आवेशे[२] अथवा कामवेदे[३] गुणपताकादिकामक्रीडाप्रतिपादके[४] शास्त्रे[५] ।

४.१९.६ विसइ—(ग पं) प्रविशति, वरंगु—(ख ग पं) नितम्बप्रदेश ।

४ १९ ८ विवरीयसुरउ—(ख ग पं) विपरीतरत[६] (प °रतं) ।

४.१९.१० तलत्राइहिं ··सरीरि—(ख ग पं) तलत्राईहिं—तरन्ती शरीरलघुत्वं स्थापयन्ती ।

४.१९ ११ उरसोल्लिकणि[७] ·· तरंग(ख ग पं) हृदयेन पानीयपिल्लणम् ।

---

५ प पश्यामीति । ६. प °यतीति । ७ प जल° । ८ निरंतरजलस्व° । ९. प °भक्त॰ । १०. पं °मि । ११ पं मृयते । १२ पं० मृयते । १३. पं °वसान । १४. पं अतीववक्रा° । १५ प °ता । १६. पं तिष्टतु । १७ पं °सो । १८ प °पन्नो । १९ पं कवि । [४ १९] १. पं वेग. । २. पं °श॰ । ३. प °वेदो । ४. पं °पादकं । ५. पं शास्त्रं । ६. ख ग °रत । ७ पं °सेल्लिण ।

४.१९.१६ आवास तवंगु—(ख ग) आवासं धवलगृहम् (पं) आवासधवलगृहे ।

४.१९.१८ जलकोल ···परिहणाहे—(ख ग पं) जलकल्लोलैरितस्तत क्षिप्तवस्त्रायाः ।

४.२०.२ सइंछए—(ग) स्वेच्छया, पोत्तइं—(ख ग प) परिधानवस्त्राणि ।

४.२०.९ डुलण—(ग पं) वेध ।

४.२१.२ दालिमालि—(ग प) दाडिमपङ्क्तिः, मंदमार—(ग पं) घनहृन्दवृक्षा. ।

४.२१.४ वारिकोलल्लोलसाग—(ग पं) जलकल्लोलैरितस्ततः क्षिप्यमाणाः[1] ।

४.२१.५ भूमिभायखुडियहिं—(ग पं) त्रोटयित्वा भूमिभागे आस्फालितैः, वकएहि—(ग) अड्डवियड्डैः, (पं) अडवियाडे (हिंदी-आड़े-टेढे), कुल्लतल्ल—(ग पं) कुल्यासारिणी, (पं) तल्ल—छिल्लराणि (हिन्दी-छिछला)

४.२१.७ वाहथट्ट—(ख ग प) घोटकसघाता.[2] ।

४.२१.११ दोमियंग—(ग प) दुःखिताङ्गा[3] ।

४.२१.११ गुंडि (गोट्टुं)—(ख ग पं) मारः ।

४.२१.१२ तरट्टिलोट्टिया—नवयौवना,[4] तरङ्गट्टिका, विसट्टवत्थ—(ख ग पं) नग्ना ।

४.२१.१७ सदाणं—(ख ग पं) समदम् ।

४.२१.१८ वेसा सुरंगं—(ख ग पं) वेश्याया सुरङ्गमस्यासक्तम् ।

४.२१.१९ पई पत्तिणा—(ख ग पं) प्रभुः[5] भृत्येन ।

४.२१.२० वियाणं—(ख ग पं) मणिवितानम् । अथामं—(ख ग पं) सामर्थ्यरहितम्; यक्खिट्टेन—(ख ग प) बलवता ।

४.२२.१ नाएण—(ख ग पं) नागेन हस्तिना ।

४.२२.३ कियदूरवीरेण पडिकारेण—(ख ग पं) दूरीकृतप्रतीकारेण सुभटेन वा ।

४.२२.४ डमरेण—(ख ग प) भयानकेन ।

४.२२.५ चूरियभुयंगेण—(ख ग प) निर्दलितखेपेण ।

४.२२.६ दुव्वारवारस्स—(ख ग पं) दुर्वाराणा दुष्टानां (पं दुर्वाराणामयशाना ?) वारकस्य विजेतुः ।

४.२२.१० रणरंगलुद्धेण—(ग पं) सङ्ग्रामभूमौ जयकाङ्क्षिणा[1] ।

४.२२.१३ बंध जणतेण—(ख ग पं) करबन्ध कुर्वता ।

४.२२.१७ कंधुद्दय—(ख ग पं) आपीडित , [2]धुयकधु—(ख ग पं) कम्पितस्कन्ध , विहडियसिरावधु —(ख ग प) गलितदर्पत्वात् विघटितशिराबन्ध , संजातशिथिलसर्वगात्र इत्यर्थ ।

टिप्पण सन्धि ५

५.१.३ आवण्णं—(ख ग) प्राप्तम् ।

५.१.४ नियत्त—(ख ग) प्रवर्तितम् ।

५.१.५ बालु—(ख ग) जम्बूस्वामी ।

[४ २१] १ पं °माण । २. ख ग °संघातः । ३. पं °ताणाः । ४. प °वना । ५. पं प्रभु । [४ २२] १. पं °काक्षिणाः । २. पं० धुव° ।

५.१.८ एक्कु पासि—(ख ग पं) एकस्मिन् पार्श्वे ।

५.१.१४ पायत्थवणफलएण—(ख ग प) पादपृष्टे[ठे]न ।

५.१.१५ नक्खत्तसामिणा—(ख ग पं) नक्षत्रस्वामिना, चन्द्रेण ।

५.१.१८ रायसासणं—(ख ग पं) आज्ञा शासनम् ।

५.१.१९ राय''''समीहमाण—(ख ग पं) आज्ञा प्रतीच्छन् ।

५.१.२० अमोसारुणा—(ख ग) दूरीकरण ।

५ १.२१ सत्थाणमुवविसंत—(ख ग पं) स्वकीयस्थाने उपविशन्त' ।

५.१ ३० सुहि—(ख ग) सज्जन ['] ।

५.२ ४ मारुयवेयवहुत्तु—(ख ग पं) समीरणवेगादधिक वेगम् ।

५.२.६ हउं गयणगइ—(ख ग) गगनगतिरहम् ।

५.२.११ उत्तलु—(ख पं) उत्सुकः ।

५.२.१४ अणंगु थवइ—(ख ग पं) कामदेवो रचयति ।

५.२ १९ मुण्डमाला—(ख ग पं) मुकुटः[1] ।

५ २.२३ मियंके—(ग पं) मृगाङ्केन विद्याधरेण, देवउ—(ग) दातव्यम् ।

५.३ १ असमसाहस—(प अह-अथ, सुसाहसु)—(ग प) साध्वससहितः ।

५ ३ ८ जिण''''संघट्टणाइं—(ग पं) जिनभवनरमणीयत्वम्, (पं जिनभवने रमणं रमणीयत्वं) तेन संघट्टणं संबन्धो येषाम्, रवण—(ख) रमणीयत्वम् ।

५.३ ९ निव्वासियाइं—(ख ग पं) उद्वासितानि, नग्नीकृतानि वा ।

५ ३.१० रामइं—(ख ग पं) रमणीयानि ।

५ ३.११ मारियाइं—(ख ग पं) मरणिकया मृतानि ।

५ ३.१२ कयनीडइं—(ग पं) कृता निनाहलादिभिः पक्षिभिर्वा नीडानि गृहाणि येषु ।

५.३.१३ तरुतीरइं—(ग पं) तरवस्तीरेषु तटेषु येषाम् ।

५ ३.१५ परिरक्खियछलु—(ख ग पं) परिरक्षितं छलं पौरुषं येन, वयणं यहे—(ख ग पं) लोकवाच्यतया ।

५ ४ ४ गोहत्तणु—(ग) पौरुषत्वम्; सव्वासु—सर्वा[र्व?]स्यापि ।

५.४.५ मणुसइय—(ग) पौरुषत्वम् ।

५ ४.८ पासंगिउ—(ख ग पं) प्रसंगायातम्, लहुं—(ख ग पं) संक्षेपेण ।

५ ४.९ समउ—(ग) समयोऽवसर, सत्तुवरे—(ख ग पं) वैरिपर्वते, पवी—(ग) वज्रम् ।

५.४.११ साहेज्जउ—(ग) सहायो ।

५.४.१३ विज्जु —(ख ग) वैद्यः; सप्पु—(ख ग) सर्पः ।

५.४ १४ गड्डु—(ख पं) व्यूहं, सयदिउड्डु—(ख ग) १५० ।

५ ४ १७ अणुवलु (ख ग पं) साहाय्यनिमित्तं सैन्यम् ।

---

[५२] १ ख ग °टा ।

५.४.१८ समियंकु—(ग प) मृगाङ्केन सह।

५.५.३ सव्वासे—(ख ग) अग्नौ।

५.५.५ कप्पंतुट्टतु[1] जलु—(ग प) कल्पान्ते प्रलयकाले भ्रमितमूर्द्ध्वकल्लोलमालाकुलित जलं यत्र।

५.५.६ समं भासिरेण—(ख ग प) भाषणशीलेन विद्याधरेण, समं—सह।

५.५.८ विडप्परस (ख ग पं) राहोः।

५.५.९ वंकस्स पक्खिरायस्स—(ख ग पं) दुष्टाशयस्य गरुडस्य।

५.५.११ भूईनिहाणो[2]—(ख ग पं) भस्मविधान.।

५.५.१३ खेयरो—(ख) गगनगति नाम खचर, रायहाणीं—(ग) राजधानीम्; (ग) देवि पाणें—(ग) दत्वा हस्तम्।

५.५.१५ खणद्धेण दिट्ठ सहाए—(ग पं) श्रेणिकस्य सभया क्षणार्द्धेन विमानं दृष्टम्।

५.५ १६ चित्तुत्तालें (ग पं) उत्सुकचित्तेन।

५.५.१७ निवेण—(ख ग) श्रेणिकेन।

५.६.१ सरसे[1]—(ख ग पं) सङ्ग्रामरसैकचित्ताः[2]।

५.६.२ तंतवालद्दलनिबिड—(ग) सैन्यनिबिडाः, भडथड—(ख पं) भटसंघात, (ग) भट्टसंघातम्, (पं) भडसंघातम्।

५.६.३ आइट्ठ—(ख ग प) आविष्टाः आकृष्टा[3] वा शीघ्रं प्रयाणके चलन्तु भवन्त इत्यर्थः; सामग्गिवावड[5]—(ग प) प्रयाणकसामग्रीव्यापृताः[6] व्याकुला वा।

५.६.५ सवाहियकरकट्ट—(ख ग पं) सवाहितं चालितम्, प्रयाणकयोग्य वस्तु (ख) °ज्ञात येषा ते।

५.६.७ पहय ...दड्डिडंवर—(ग पं) प्रहताश्च पटुपटहाश्च तेभ्यः प्रतिरडिताः[7] प्रतिवादिताः अपि प्रतिशब्दिताः दड्डिडंवराः ढक्काख्या. वाद्यविशेषा।

५.६.८ सालकंसाल—(ग पं)विस्तीर्णकंसाल।

५.६.६ टंकार—(ग प) शब्दः।

५.६.१० ‘गाहयं—(ग प) निनादयुक्तम्[1], संदिण्णसमघाइयं—(ग पं) दत्तसमहस्तम्।

६.११.१४ (ग पं) थरगट्ठुगे....वित्थारियं—(ग पं) सज्जियं—एतैः शब्दैः सज्जित[1]—प्रगुणीकृत[2] यत् एतैः प्रागुक्तैः [3]प्रगदितशब्दैः प्रहृतसमहस्तेन सुप्रशस्तं यथा भवति एव विस्तारित।

५.७.४ हरिखुर ...समुग्गारण्ण[1]—हरिखुरैर्त्रोटकनखैः क्षुण्णभोच्छलितेन[2] समुत्पन्नेन गगनतले गतेन।

५.७.६ जइल्लु—(ख ग पं) जयनशीलः जययुक्त, मइल्लु[3]—(ख ग प) मलिनः।

५.७९ डरिल्लु—(ख ग पं) भयानक, तंडविय—(ख) ताणितम्, (ग) ताडित (पं) ताडितम्।

५.७.१० पाखिद्धयालि—(ख ग पं) वक्षलग्नचीरं, गरिल्लु—(ग पं) महाघोरत्वोपेत.।

५.७.११ कसहयहरिल्लु—(ग) तर्जनहताश्व।

[५.५] १ पं °धंत। २ पं °निहाणे। [५.६] १ पं °सा। २ पं °चित्ता। ३ पं °ष्टः। ४ पं °ष्ट। ५ पं °वावडा। ६ प सामग्र्य व्यावृता। ७ पं °रट्टिताः। ८ पं नायय। ९ पं °युक्तः। १० प °घायर्यं।

[५.६] १ पं °ता। २ पं °कृता। ३ पं पडगति°। [५.७] १ पं °खमुण्णएण। २ पं °च्छालितेन। ३ पं मयल्लु।

५.७.१२ सिरिजूड'''वरिल्लु—(ग पं) सिरो जूडे बद्धं थोरिकैरिल्ल उपरितनवस्त्रं यत्र ।

५.७.१३ पयचप्पण'''तडिल्ल—(ग पं) [4]पादयोश्चर्पणेन कृतानि विकलानि नद्योभयतटानि यानि तैरिल्ल· युक्त. ।

५.७.१४ तट्ठ—(ग पं) त्रस्त·, नट्ठ—(ग पं) भग्न. ।

५.७ १६ विबंधणीए—(ग पं) विगतबन्धननिमित्तपुरुपया असहायया इत्यर्थः ।

५.७.२० मुक्काडु—(ग पं) मुक्ताक्रन्दः ।

५ ७.२१ मज्जथट्टु—(ग) मद्यचपक (पं गत्र चटसः) मद्यतृत्वा वा ।

५ ७ २४ हत्थिरोहु—(ग) गजारोहक[5] ।

५ ७.२६ कारणु '''महल्लउ—(ख ग पं) महदपि स्त्रीपराभवादिलक्षण[6]कारणं, महल्लउ—अतिशयेन महत् ।

५.८.७ वंसिज्झंसी—(पं) वंसज्जाली समूह. ।

५ ८ १४ करिकाणणा—(ग पं) हस्तिकदर्थिकाका:[1] ।

५ ८.१५ वग्घेहि गुंजारिया—(ग पं) व्याघ्रत्रासिता[2] ।

५ ८.१६ कोलउल—(ग पं) सूकरसंघाताः ।

५ ८.२५ विसरिस—(ग पं) परस्परानुगतः ।

५ ८ २६ हलभूमिलील—(ग पं) कृष्टभूक्षेत्रलोलाम्[3] । संपच्च '''नील—(ग प) संपच्यम नगोधूमैर्नीला भवति, सस्यमानगवा[4] धूमैश्च[5] नीला भवति ।

५ ८ ३१ विंज्झाडई भारहरणभूमि व :—

(i) सरहभीस—(ख ग पं) भारतरणभूमि. सरथा रथसमन्विता, भीसा–भयानका; विन्ध्याटवी तु शरभैरष्टापदैर्भयानका[6] ।

(ii) हरि '''डोस—(ख ग पं) भारतरणभूमौ हरिर्वासुदेव·, अर्जुनो, नकुलः शिखण्डी च पाण्डवबले राजपुत्रविशेपाः एते दृश्या भवन्ति; विन्ध्याटव्यां तु हरिः–सिंह·, अर्जुनो—वृक्षविशेप , नकुल —प्रसिद्ध , शिखण्डी—मयूरः एते दृश्या भवन्ति ।

५.८.३२ (iii) गुरु '''चार—(ख ग पं) भारतरणभूमौ गुरुर्द्रोणाचार्यः तत्पुत्र. अश्वत्थामा, कलिङ्गः कलिङ्गदेशाधिपति राजा, एतेपा चारः—चेष्टा भवति, विन्ध्याटव्यां तु गुरुर्महान् , अश्वत्थः —पिप्पलः, आमः—आर्द्र ,[7] कलिंगा—वल्य , चाराः वृक्षविशेपा· भवन्ति ।

(iv) गयगज्जिर सार—(ख ग पं) भारतरणभूमौ गजगर्जिरा[8] सारा भवन्ति, सशराः बाणसमन्विता , महीशाः राजान., ते. सारा भवन्ति यत्र, विन्ध्याटव्यां तु गजगर्जिताः,[9] ससरा—सरोवरसमन्विता., महीमसारा—महिपा. सारा भवन्ति यस्याम् ।

५.८.३३ विंज्झाडई लकानयरी व ·—

(i) सरावणीय—(ख ग पं) लङ्का रावणसहिता भवति; विन्ध्याटवी तु सरावणीया—रावणवृक्षविशेपसहिता भवति ।

---

४ पं पादो चप्प° । ५ प मेहिला (?) । ६ पं °लक्षण । [५ ८] १ प °कदर्थिक । २ पं °वासिताः । ३ पं °लोला । ४ पं गवं । ५ पं धूमैः । ६ पं °पदैर्भीसा । ७ पं सार्द्र. । ८ ख °गज्जिता । ९ पं °गज्जिरा ।

(ii) चंदणहिं····°वणीय—(ख ग पं) लङ्कानगरी चन्द्रनखाचारेण चेष्टाविशेषेण कलहकारिणी भवति, विन्ध्याटवी तु चन्दनैः चन्दनवृक्षविशेषैः[10]श्चारैः चारवृक्षैः वा मनोज्ञैः कलभैः लघुहस्तीभिर्युक्ता[10] भवति ।

५.८.३४ (iii) सपलास ···थट्ट—(ख ग पं) लङ्कानगरी सपलाशा, पलाशैः राक्षसैर्युक्ता,[11] सकाञ्चना, [12]अक्षयकुमारो रावणपुत्रस्तेन[13] युक्ता, विन्ध्याटवी तु पलाशवृक्षसमन्विता, सकाञ्चना-मदनवृक्षविशेषसहिता, अक्षा —विभीतकवृक्षाः ते तच्छा [तत्स्था ?] यत्र ।

(iv) सविहीसण····रसड्ढ—(ख ग पं) लङ्कानगरी विभीषणसहिता भवति, विभीषणो रावण-भ्राता, कइउल—कपीना वानराणा, कवीना काव्यकर्तॄणा वा कुलानि—सघाता (पं कुलैः सघातैः) तैः समन्विता, फलानि रसाढ्यानि, [14]एतैः सहिता,[14] विन्ध्याटवी तु सविहीसणा —नाना विभीषिकाभि सहिता भवति, वानरसंघाता [सघातैः सहिता] फलरसाढ्या च ।

५.८.३५ विंज्झाडई कंचायणिव्व :—

(i) द्वियकसणकाय—(ख ग पं) कात्यायनी-चामुण्डा घृतकृष्णकाया भवति, विन्ध्याटवी तु [15]धृतकृष्णकाका ।

(ii) सद्दूलविहारिणि—(ख ग पं) कात्यायनी तु शार्दूलेन वाहनेन विहारिणी—विहरणशीला, विन्ध्याटवी तु शार्दूला विहारिणो यस्याम् ।

(iii) मुक्कनाय—(ख ग पं) कात्यायनी मुक्तनादा, मुक्तफेत्कारा; विन्ध्याटवी नानाजीवै-र्मुक्तनादा च ।

५.८.३६ विंज्झाडई तिनयणतणुव्व :—

(i) दारुवणछंद—(ग पं) त्रिनयनो महादेवस्तस्य तनु, छन्देन-गौर्या अभिप्रायेण नानाछ दैर्नर्तित, दारा (पं दारु) भवानी [16]गौरी, तस्याः दारुणिकः नृत्यो भवति, विन्ध्याटवी तु दारुभिः काष्ठैः पवनैः पलाशैः छद्मा—प्रच्छादिता ।

(ii) गिरिसुय··· खंडचंद—(ख ग पं) त्रिनयनतनु गिरिसुतायाः[17] गौर्या, जटाभिः कन्दलैः —कपालखण्डैः, खण्डचन्द्रेण च सहिता[°ता ?]भवति, विन्ध्याटवी तु गिरिभिः, शुकैः, जटाभिर्नानामूलैः कन्दलैरङ्कुरविशेषैः, खण्डकन्दैश्च सहिता भवति ।

५.८.३७ परिसक्कइ—(ख ग पं) अग्रेतनभूमिमाक्रामति, छइल्लु—(ख ग प) विदग्ध ।

५.९.२ गामार वि—(ग पं) कुटुम्बिका अपि ।

५.९.४-५ जहिं गोवाल व गोवाल—(ग प) यत्र देशे गोपालाः गवा रक्षकाः,[1] गोपाला इव—राजान इव ।

(i) महिसी···अहिं—(ग प) राजानो हि महिष्यां अग्रमहादेव्यां बद्धस्नेहा भवन्ति गोपालास्तु महिष्या धेन्वा च बद्धस्नेहा भवन्ति ।

(ii) कमलायरगयसाल—(ग प) तथा राजान कमलाकराः कमलायाः लक्ष्म्या आकराः गजशालायुक्ताश्च भवन्ति; गोपालास्तु कमलाकरात्[2] पद्मिनीखण्डमण्डितसरोवरात् शालीन-विशालगुणान्[3] गताः महिषीणा तत्र रतिसद्भावात् (?) ।

५.९.७ कद्दंदइं—(ख ग पं) पद्मानि, कमलानि ।

---

१० प °श्चारैः कलभो लघु° । ११ प °युक्तः । १२ मं अक्षय° । १३ प °पुत्रस्तयो । १४ प यत्र । १५ पं घृताः । १६ पं गौर्या । १७ ख ग °सुतया । [५.९] १ ग °णाः । २ प °करा । ३ प °गुण ।

५.९.८ कीरेहि—(ग पं) कीरैः शुकैः, ट्ठिया—आगता. [°ता]।

५.६.६ कणइल्ल—(ख ग) शुका., (पं) शुकः ।

५.६.१२ जनवेस—(ख ग पं) जनवेषो, जनाना वेष. शरीराकारः ।

५.९.१४ लालिया—(ख ग पं) सन्मानिता.[४] ।

५.६.१५-१६ सेविज्जइ कंतारउ—(ख ग पं) कान्तारतम्, गण्डकविशेषश्च सेव्यते, कथंभूतं तत् ? कोमल-बहुरसु—(ग पं) तदुभयकोमलं बहुरसं च, किं कृत्वा ? मेल्लिवि (ख ग पं) परित्यज्य, परवसु—(ख प) विगतस्वादुरिति, किं तत् ? वेसायउ—(ख ग पं) वेश्यारतम्, किमिव ? उच्छुव—(ख ग पं) इक्षुरिव, कथभूतम् तत्—(पं) विगतस्वादं इक्षुस्वरूपं वेश्यास्वरूपं च, कयथक्कउ—(ख ग पं) क्रये मूल्ये स्थितं च उभयं च; तथा निट्ठुर—(ख ग प) निष्ठुरं, निस्नेहं (पं निस्नेहलं) अकोमलं च, वंकउ—(ख ग प) वक्रम्, वैशिकप्रधानम्, (पं रतिकप्रधानम्) अप्राजलं च, गंठिहु भरिउ—(ख ग पं) ग्रन्थिभि हृदयकुटिलभावैः प्रचुरपर्वविशेषश्च भृतम्, सखारउ[५]—(ख ग पं) पूर्वभागं पश्चाद्भागं उभय-मपि सेव्यमान मधुररस न भवति ।

५.१०.१ संदण—(ग) रथा., (पं) रथः ।

५.१०.४ मणिट्ठ—(ग पं) चित्ताह्लादजनका ।

५.१०.८ पुळिण "'कच्छो (ग पं) पुलिनस्थानेषु निवेशिता कच्छो यथा ।

५.१०.६ गंधंद्धिर—(ग) गन्धे अत्याश[स]क्ताः ; (पं) गंधधिय—(पं) स्वं चिरं गन्धेनाऽतिशयेन अत्याश[स]क्ता. ।

५.१०.१० चहरी—(ख ग पं) दरमलिता ।

५.१०.११ [१]कुलुक्कगिरिंदु—(ग पं) कुलपर्वत.[२], निववाहिणि—नृपसेना ।

५.१०.१८ सूइज्जइ—(ग पं) सूच्यते ।

५.१०.२२ वल्लि (पं वेल्लि)—(ग प) मन्दुरा ।

५.१०.२४ रेवाणए कण्णए—(ग पं) रेवानदीसमीपे ।

५.११.६ (पं) गुणेल्लिका—(पं) गुणतणिका ।

५.११.१० (पं) आर्या; कमालु—(ख ग पं) कोलाहल ।

५.११.१६ तमारि—(ख ग पं) आदित्य. ।

५.११.१६ रयणचूलु—(ख ग) रत्नशेखर. ।

५.११.२२ पहुण्णउ—(ख ग) शीघ्रगति ।

५.१२.८ समत्त—(ख ग) समस्ताः सर्वा ।

५.१२.१४ करजुयलु "कमलकंबु—(ख ग पं) करकमलेषु उद्भासितौ लक्ष्यतया शोभितौ, कमलकम्बू-पद्मशङ्खौ यस्य ।

५.१२.१८ पीणखधु—(ख ग पं) उन्नतस्कन्ध ।

५.१२.२० रेहा न होइ—(ग पं) हुंकारः चिह्नः न भवति ।

५.१२.२३ सावलेउ—(ख ग पं) सदर्प. ।

---

४ प °निता । ५ पं सखारं । [५.१०] १ पं कुलु° । २ प °पर्व्वत । [५.१२] १ पं लक्ष° ।

५.१२.२४ अणयायारु—(ग) अन्यायाचारम्, (पं) अन्यायपर ।

५.१३.२ निद्दवि । छायहो—(ग पं) निराकृतमाहात्म्यस्य ।

५.१३.३ ढ्य—(ग) आगत ।

५ १३.६ दंडकरंबिउ—(ख पं) दण्डगर्भित ।

५.१३.१० पलि त्तउ—(ख ग पं) कोपाग्निना प्रज्वलित ।

५.१३.१२ वओहरु—(ख ग पं) दूतः ।

५.१३.१४ खयरविस रेस—(ख ग प) प्रलयकालाङ्गिरसदृशः ।

५ १३.१७ अयसु ···समुच्चयवंसे[1]—(ख ग पं) अयशोऽपकीर्तिरेव, सम्यगुच्चवंशो—महावंश तस्मिन् तत्र वा।

५.१३ १६ पढम···रंजइ—(ख ग पं) प्रथमतो विवेक पापमेव रसस्तेन रज्यते, मलिन क्रियते ।

५ १३.२० पहिल उ····डकइ—(ख ग पं) योऽपौ एतदीय. काल एव [2]सर्पं प्रथमतो मनो ग्रसति ।

५.१३.२२ दस्मइ—(प) उपशाम्यते ।

५.१३.२३ जित्तु जि एण वि—(ग) कोपाग्निना अयं जित , (प) जित्थु ज एण जि—(पं) निर्जितेनापि, कोपाविना अयं जिन ।

५.१३.२६ जउ ठवहि—(ग पं) जय स्थापयति ।

५.१३.२६ रहुवइ—(ख पं) श्रीराम ।

५.१३.३० कायहो—(प) काकस्य, तो किं—(ख ग पं) ततः आकाशगामित्वम्[3], सो जिज—(ख ग पं) स एव काक , थाणु गुणमायहो—(ख ग पं) स्थान गुणविभागस्य, गुणवत्तायाः[4] ।

५.१३.३३ अक्खहि—(पं) कथय ।

५ १४.३ अवस' कयंतहो—(ग) तेन यमदिशि कृतमित्यर्थः (प) तेन यमदेसे [देशे°] कृ त्यमित्यर्थ ।

५.१४.१३ असिदुहिय[1]—(ग प) छुरिका, छुहदुहिय—(ख ग पं) क्षुधादु खिता, (प) वरवमुकारकः । (?)

५.१४.२१ अवहत्थ—(ख ग प) शत्रोरभिघात , समहत्थ—(ख ग प) वामपार्श्वे शत्रोरभिघातः, दढकाकवट्टेहिं—(ख ग प) [2]अभिमुखे शत्रोरभिघात[2], करिदाण—(ग प) हस्तिदन्तवेध[3]वंमे गल कसि[°त्ति ?]कया खड्गमुनासिकया च अधोमुखेन भूत्वा शत्रोरभिघात , रुढ.ण—(ख ग पं) उपविश्य शत्रोरभिघात , कुम्मासणट्ठेहिं[4]—(ख ग प) सपक्ष रथ हस्ति-घोटकाना कूर्मासनेन करचरणाभिघात ।

५ १४ २२ पच्चाणणालोय—(ख ग पं) सिंहावलोकनेन अग्रेतनशत्रूणा क्रम दत्त्वा प्राक्तनशत्रुहनन, मिग···पाएहिं—(ख ग प) मृगवत् अग्रकृतपादे क्रमेण अग्रेतनशत्रुभूमिमाक्रम्य शत्रुहनन, सविंगास—(ग प) वामपार्श्वे फरक दत्त्वा खड्गं पृष्ठप्रदेशे तिरोहित कृत्वा आत्मान निरवधान शत्रोः प्रदर्श्य निरवधानोऽयमिति विश्वासेन हननार्थमागतस्य शत्रोरभिघातः सविश्वास , संकोय—(ग प) चक्रामूत शत्रुभिरभिहन्यमान. [5]शिरसि फरकं दत्त्वा शत्रोरभिघात. सकोच , अवसारघाएहिं[6]—(ग प) शत्रुभि अक्षत्रेणा [°वन° ?] भिहन्यमान. झटिति तान् हत्वा [हन्त्वा ?] स्थानान्तरे अपसरण सक्रमण अपसारघात ।

[५ १३] १ प °वसो । २ प समर्थः । ३ प °गामित्वाक्षि [°ङ्खि ?] । ४ प °वनाया । [५.१४] १ प °दुहिया । २ प अभिमुखशत्रुऽभि° । ३ पं °वत्तु अथवा वन्नु, यो वन्नुनेगलकत्ति° । ४ प °सण सगृहु । ५ प शिरछि. । ६ प अवसरे ।

सन्धि–६

६.१.१ दंत—(ख) दन्त, सव्वस्सं—(ग प) सर्ववनम्, (पं) साटकछन्दः ।

६.१.३ हत्थे चाओ इत्यादि—(ग) साटकछन्दः ।

६.१.४ वच्छे सच्छा पवित्ती—(ख ग प) हृदये निर्मला प्रवृत्तिः ।

६.१.५ कण्णाणेयं इत्यादि—(ग) [1]अन्यार्थे अन्या स्थितिः, सप्तम्यर्थे षष्ठी, कण्णाणेयं—(ख पं) कर्णेष्विद, सुयसुयणड्ढणं—(पं) आकर्णितश्रुताश्वारणम्, दोळयाणं—(ख ग पं) दोलॅंड्रासु, बाहुलतासु, बाहुदण्डेष्वित्यर्थः ।

६.१.६ सहज ''कज्जमण्णं—(ग पं) सर्वदा पुनः सहजपरिकरो भवति, किन्तु [सांप्रतम् ?] कार्यमन्यत् उत्तरकालीनम् ।

६.१.७ केरलनिवे धरिए—(ख ग पं) सिद्धावलोकनन्यायेन वचनम्, विजयंतरिए—(ख) विजयेन अन्तरिते, (ग पं) विजयेन अन्तरितेन [2]हरिषितीत्यर्थः (?)

६.१.१० उव्वेविए—(ग पं) अस्तो व्यस्तम् ।

६.१.१६ सरायउ—(ख ग पं) राजासहितम् ।

६.१.१८ कडए—(ख ग पं) कटके ।

६.२.३ करवालकेरए—(ख ग पं) खड्गसम्बन्धिनी ।

६.२.४ लीलबोलियं—(ख ग पं) अतिशयेन बोलितम् ( ) भुयण''' तोलियं—(ख ग प) भुवनभार-भाराभ्यां, भुवनभारधरणसमर्थाभ्यां भुजाभ्यां तोलितम् लीलया आकलितम् ।

६.२.६ रत्तपीत्त'' रंडियं—(ख ग पं) रक्तानि पीतानि वस्त्राणि धरन्ति या ता रामाश्चैता रण्डिता यत्र ।

६.२.८ रणरसिय—(ख ग पं) समररसिका. संग्रामरसिका इत्यर्थः ।

६.२.९ तुट्टंत 'सट्टउ—(ख ग पं) अतिपौरुषात् समुत्पन्नरोमाञ्चकञ्चुकेन तुट्टन्ते (ग तुटन्तो, पं तुट्टते) ये कवचा. ते भूमौ प्रविष्टा. ।

६.३.३ कय—(ख ग प) क्रयेन, मौल्येन ।

६.३.१० अगलियखग्गफर—(ख) खड्गहस्तात् अपतित , (ग) अगलितखड्गखेडक. ।

६.६.१० कय-सिरउ—(ग पं) [1]शिर शब्देन मस्तकं मस्तककेशाश्च (पं केशाश्चारमरतरजश्च ?), सरसव्वणु—(ग पं) सरसाः व्रणाः जाता यत्र रणे यौवनं च सरसव्रणम् ।

६.६.११ नह—(ग प) नखानि, नभश्च, हियउ (ग पं) चित्तं उरश्च ।

६.८.२ हा महु '''वंससेसु—(ग पं) सर्वेऽपि शत्रवो मया निर्मूलिता., [1]तदीयगृहस्थितापत्यमात्रावस्थानात् वंशशेषा.[3] (ग) 'कृताः वैरिण इति, इदानीं तेषां संग्रामे युद्धमानानामुपलम्भ विस्तरयति' (ख ग) 'हा वैरिणो न जाता वंशशेषा इति' ।

६.८.३ निभुत्तु—(ग पं) निस्तीर्णम्, सुयइ—(ख) सुपति [स्वपिति ?] ।

६.८.५ मज्झ सुहनिहाणु—(ख ग पं) मदीयप्रभोपकारित्वात्[4] सुखनिधानमयं[5] पक्षः[6] ।

[६.१] १ पं °र्थो । २ पं हरिसतो° । [६.६] १ ग शर । [६.८] १ पं त्वदीय । २ पं °स्थिता.° । ३ पं °शेषा । ४ प °कारत्वात् । ५ पं °विधान° । ६ ख ग पक्षः ।

६.८.७ सिरु ···सक्कु (ख ग पं) यद्यपि शिरो दत्तम्, तो वि-तथापि, स्वामीप्रसादऋण[7] स्फेटयितु न शक्त इति, सामिय····थक्कु—(ख ग पं) स्वामीप्रसादऋणशेषस्य सद्भावात्।

६.८.८ अंतावलि···लद्धबंधु—(ख ग प) अन्त्रावलिनिगडैर्लब्धबन्ध.।

६.८.९ पलासहं[8]—(ख ग प) मासाशिना राक्षस-पक्षिप्रभृतीनां।

६.८.१० महिहे वण्णु[9]—(ख ग प) पृथिव्यामात्मीयगुणव्यावर्णना दत्ता।

६.८.११ उर-सिर-सरीर—(ग प) उर. शिर. शरीरं च, सव्वचूरिउ—(प) सर्वमपि चूरितम्, स[ष]वस्य वा मृतकस्य चूरितम्।

६.९.१ समसत्तइं (पं६ संतइ)—(ख ग पं) हीनाधिकस्वरहितानि।

६.९.३ अवलंबियसत्तइं—(ख ग पं) स्वीकृतपौरुषाणि, अपरित्यक्तवीरवृत्तीनीत्यर्थः।

६.९.६ चोरविय—(ख ग पं) चूर्णीकृताः।

६.९.९ रसवविय पलासइ[1]—(ख ग पं) रुधिरप्रीणितानि राक्षसानि।

६.१०.१ गरुयनाथ—(ख ग पं) महानाद (पं) महाहस्तिमदच।

६.१०.३ खंड···वेयण्ड—(ख ग पं) खण्डा सोण्डा येषा ते च ते वेदाण्डाश्च (ग प वेयदडाश्च) ते चण्डास्ते, भिंमले—(पं भेमला)—(ख ग प) विह्वला भयानकाश्च यत्र (प), भीमले—(पं) भयानके।

६.१०.४ कडविमद्दगे—(ख ग प) महासंग्रामे।

६.१०.५ घडिय[1]—(ख ग पं) घृष्टा, अन्योन्यसलग्ना; गयणगमण—(ख ग प) गगनगति.।

६.१०.६ लच्छिलक्ख—(ख ग पं) लक्ष्म्या उपलक्षितो[2] लक्ष्म्या वा लक्ष्यो[3]।

६.१०.८ मणिसिहेण—(ख ग पं) रत्नचूलेन।

६.१०.९ निरत्थु—(ख ग प) अस्त्र (प शस्त्र) रहित, आयुधहीन; जउ मुणेहु आहणेइ—(ख ग पं) वेगेन घातयामीत्यर्थ।

६.११.१ वणियसत्तु—(ख ग पं) व्रणितशत्रुः।

६.११.५ सलेव—(ख ग पं) सदर्प, आरोहु—(ख) रथवाहिमहावन्त [°वत ?]

६.११.८ निसिंस—(ख ग पं) खड्ग।

६.११.१० जंमुहलोयणेण—(ख) सन्मुखलोचनेन।

६.१२.२ इय···बंधु—(ख ग प) गगनगतिना सदृश. समान. कथ बन्धुरपि भवति, अपि तु न भवति।

६.१२.४ रज्जु—(ख ग पं) राज्यम्, रज्जु—(ख ग पं) दोरः।

६.१२.१० ओवडिय—(ख ग) उच्छरिता, प च्छरिता।

६.१३.२ बलुद्धर—(ख ग पं) बलोत्कट, रसड्डिय[1] वीररसेन आढ्यभूताः।

६.१३.३ रणंगण ...वच्छ (ख ग प) रणाङ्गणेन संग्रामेन, सङ्ग.-सबन्ध, तेन विलसित वक्ष—हृदयं ययो सग्रामदत्तहृदयौ (°या) इत्यर्थः, दच्छ—(ख ग प) संग्रामकुशला [°लौ]।

---

७ प °रिण। ८ प °सहिं। ९ पं महिहिं वन्नु। [६.९] १ प रसवविय°। [६.१०] १ प °या। २ पं °लक्षिताः। ३ प °लक्षाः। [६.१३] १ प रसड्ढिय।

६.१३.५ तमारि—(ख ग पं) आदित्य. ।

६.१३.७ घसक्किय—(ख ग पं) परस्परं तेषां घातनं विलोक्य (पं घातनमवलोक्य) घमुक्यते, कस्यानयोर्मध्ये जय. इति संशयतुलारूढा ।

६.१४.३ तिव्वातवेण—(ख ग पं) तीव्रातपेन ।

६.१४.१३ कबंध''''नच्चाविय—(ग पं) कबन्धा बन्धेन—[1]प्रबन्धेन तूर्येन[1] नृत्यं कारिताः ।

६.१४.१५-१६ पहि ''वसेण—(ग पं) प्रतिभटखड्गाधीनेन[2]; खडियाकसेण—(ग पं) खटिकेव कशः स्वामिरिणनिस्तरणपरीक्षाया कसवट्टः, रणमहि''''विरिथिण्णउ अंकनिरंतरउ—(ग पं) कडित्तं रिणस्यमूलकरन्तरसूचकं एकत्वादिसंख्याविशेषरूप कतितरं भवति, रणमहिकडित्तं तु अङ्क. परस्परं युद्धैनिरन्तरं भवति । सकलंतरउ—(ग पं)पकलन्तर, [3]प्रभुदत्तप्रसाददानमानादिकं तरां(?) प्रभुकार्यकरणात् सकलन्तरं रिणं [ऋणं] दत्तम्, साम्भिरिणु—(ग) स्वामिरिणं [°ऋणम्] ।

संधि ७

७.१.१ (पं) °महुणा—(ग) प्रतिमौल्येन ।

७.१.४ गिरइ—(ख ग पं) प्रतिपादयति; नेम्मि[1]—(ख ग पं) परिमिति. ।

७.१.१७ तं—(ग पं) मग्नदर्त्तं; सेयइ डाइणि—(ग पं) स्वेदते डाकिनि; कथा (?) कथंभूतया ? भल्लुक्कि समरसाइं—(ग पं) भल्लूकीमुखाग्निकृतोष्णया[2]; नरवस इं—(ग) [3]नरवसया [?]

७.१.१८ दिण्णसंक—(ग पं) भयजनकाः[4] ।

७.१.२० (पं) हेइलक्खण—(पं) प्रहरणलक्षाः ।

७.१.२१ चरमतणु—(ख ग पं) जम्बूस्वामि; हड्डरुंडविच्छड्डिर—(ख ग पं) सर्वतो विक्षिप्तहृदरुण्डा.[5] ।

७.१.२२ बहुरुसघणउ—(ख ग पं) प्रचुररक्तनिरन्तरम् ।

७.२.२ बहुपहरण—(ग पं) बहूनि प्रहरणानि ।

७.२.९ मडलग्ग—(ग) खड्ग, (पं) खड्गाग्रम् ।

७.३.१ पडहडमरु (पं समर०)—(ग पं) महासंग्रामाटोपः ।

७.४.१२ तियक्खस्स—(ग पं) त्रिलोचनस्य ।

७.४.१३ णिमिसं (निमिसं)—(ग) निमेषमात्रमपि ।

७.४.१५ खरं खारियं—(ग पं) अतिशयेन परिभवितम् ।

७.५.३ परिवडिय[1]—(ग पं) परिपतित[2] (°ता) ।

७.५.४ गयणवहपहय—(ग पं) वायुप्रहत[3] ।

७.५.८ समरु परियरवि—(ग पं) संग्रामं स्वीकृत्य ।

[६.१४] १ पं सातत्येन । २ पं० धीतेन । ३ पं प्रभुदत्ते° ।

[७ १] १ प निम्मि । २ ग °ग्निकृतोष्णया । ३ प नरेवासाए । ४ ग °जनिका । ५ प °रुडः ।

[७ ५] १ पं °वडिया । २ पं °पतिता । ३ पं °प्रहतं° ।

७.५.६ खयविसम··· णिहो—(ग पं) क्षयकालरौद्रयमसदृश ।

७.५.१२ समयतडिफिडवि[4]—स्वमर्यादातटमुल्लङ्घ्य[5] ।

७.५.१५ कलि····मरट्टई—(ग पं) कलिकालेन कृतान्तेन च तुल्यो मरट्टो गर्वो येण ते ।

७.५.१६ पुणु—(ग पं) पुनरपि ।

७.६.७ विरस—(प) भयानकाः ।

७.६.१२ सुरसुंदरी ···कुमरं—(ग पं) सुरसुन्दरीदर्शितमूर्छोऽज्ञो मध्य येषा तानि[1] उद्भ्रान्तानि नयनानि येषा ते च उल्लिताश्च—पतिता सामन्तकुमारा.[2] यत्र ।

७.६.१३ लंबंतचूल—(ग पं) लम्बंत-चुञ्चल, पविहच्छकच्छ—(ग पं) किरिविलव छुटक ।

७.६.१४ अलद्ध ··णिम्माणिय—(ग पं) प्रभो-सकाशाद्यत्र कव्यसम्मानास्तिता[3] प्रभुकार्यं न कुर्म इत्य-भिमानरहिता ; सच्चविय—(ग पं) प्रकाशिताः ।

७.६.१४[4] णिसग्गचारहडिय—(ग पं) सहजपौरुषम् ।

७.६.१८ कसरेसु····गहवइणो—(ख ग पं) कसरेसु कर्बुरेषु बलीवर्दवर्गेषु यत्प्रतिपालनं तस्मात्पृष्ठत:[5] प्रति-लग्नास्ते वर्गा यस्य धनिकस्य ।

७.६.२५ गरुयभर····एक्को (ख ग पं) एकाकिनो मे भरोद्वहने समर्थस्य अकिंचित्करोऽयं[6] प्रतिभारो द्वितीयभर एक केवल भविष्यति ।

७.६.२६ समसीसियाए[7]—(ख ग पं) समस्पर्द्धया ।

७.६.३० (पं) डोहडा सीहसिलिंवु—(ख ग पं) सिंहशावकम् ।

७.७.५ हेवाइउ—(ख ग पं) गर्वितः ।

७.७.८ किं बलवलेण—(ख ग पं) किं सेन.बलेन ।

७.७.१२ (पं) अवसन्नदइ[1]—(पं) परित्यक्तसन्नद्धास्वरूपाणि ।

७.८.१ सरवंत्तइं[1]—(ग पं) बाणाः, तोणहिं[2]—(ग) भस्त्रासु, (पं) भस्त्रासु ।

७.८.१० टलकिंय[3]—(ग पं) टलटलितानि ।

७.८.११ दुवक्कीय—(ग पं) मीता. ।

७.८.१३-१४ गाढवि····इत्यादि —खयरें—(पं) रत्नचूलविद्याधरेण, मग्गणवीसविसज्जिय—(ग पं) विंशतिमर्गिणा -त्राणा. विसज्जिता , किविणेण व—(ग पं) कृपणेन इव, किं कृत्वा ? गाढवि····धणु—(ग पं) गाढमाक्रम्य करेण धनु (प) स्तानक-विशेषेण, वकैवि तणु—(ग पं) तनुं वक्रं कृत्वा—(पं) मार्गणा विसर्जिता ।

७.११.६ सीसइ—(ख ग पं) कथयति ।

---

४ पं °फिडिवि । ५ प °मर्यादातटी° । ६ प मड गर्व्वो । [७.६] १ प ऊर्द्धा° । २ पं °कुमारा । ३ ग °नाश्रिताः । ४ पं णोसग्ग° । ५ प °पृष्ठतः । ६ प व्यग्रमकिंचित्करो । ७ प °याइ । [७.७] १ प्रतियो में °सण्णदइं । [७.८] १ प्रतियोमें °वत्तहिं । २ प्रतियो में तोणइ । ३ प टल° ।

सन्धि ८

८.१.८ थावउ—(ख) स्वीकारं करोतु ।

८.२.६ नामदेवोत्तर—(ख) भवदेवः ।

८.२.१३ जलकंत—(ख ग) नाम्नि [विमाने] ।

८.३.६ सावयं—(ग) श्रावकं श्वापदंश्च ।

८.३.७ सलक्खणु रामधरु—(ख ग) लक्ष्मणेन सहितो राम , लक्षणसहिताः रामाश्च; नट्ठपरु—(ख ग) नष्टः परमार्थः, नष्टशत्रुश्च ।

८.३.८ बहुवाणिउं—(ख ग) बहुवाणिजम्, बाहुपानीयं च ।

८.३.९ दोणु—(ख ग) द्रोणाचार्य., मापविशेषश्च ।

८.३.१५ सुपइट्ठिय—(ख ग) सुप्रतिष्ठो नाम राजा ।

८.४.११ सउहम्म—(ख) सौधर्मः ।

८.५.१४ सुहु—(ख) शुभमनन्तचतुष्टयम् ।

८.७.२ आउच्छेविणु—(ख ग) पृष्ट्वा ।

८.७.३ अम्मि (ख ग) मात. ।

८.७.७ जसहंसु—(ख) परब्रह्म, (ग) यशोहंसः ।

८.७.८. पयापरिपूरणेण—(ख ग) उदरपूरकेण[१] ।

८.९.२ वरताई—(ख ग) वरपित्राः ।

८.६.६ अघडियउ—(ख) अघटमानवस्तु ।

८.१२.१ तो''''न वज्जियं—(ख) सयणान् वचनं जम्बूस्वामिना [न] लङ्घितम् ।

८.१२.३ उण्णामउ—ऊर्णामयम् ।

८.१२.७ कण्णावरि—(ख ग) कन्याप्रतिपक्षे ।

८.१२.८ बहुकरसंगहो—(ख ग) पाणिग्रहणं वधूनां वा करेण सङ्ग्रहो यस्य ।

८.१२.११ चेल्लिउ कंचिवालु—(ख ग) काञ्चीदेशनिष्पन्नपटपरिधानम् ।

८.१३.३ कायमाण—(ख) कइवाणं (?)

८.१३.४ पहंजण—(ग पं) पवनः ।

८.१३.५ कोवुण्हविय—(ख ग) ईषदुष्णीकृतम् ।

८.१३.१४ भियाणखणे—(ख ग) भोजनावसानसमये ।

८.१३.१५ पेम्मघवक्कउ—(ग पं) प्रेमपुञ्जसदृशम्, विशेषणमिदम्; कइय''''परिहरि:—(ग पं) आहारमागतं भुक्त्वावसाने त्यक्तमित्यर्थः ।

८.१४.२ दरुण्हयं—(ग पं) ईषदुष्णम् ।

८.१४.५ सेविय महुमत्तउ (पं मयमत्तउ) निवडइ—(ग प) षट्पदैः संबन्धः; मद्यपाल इव आदित्यो निपतितः[१] मद्यपालो हि मधुना निपतति, आदित्यस्तु सेवितकमलकोशमकरन्देन-मद्येन-(पं) मधुना मत्तो

[८ ७] १ ख °पूरणेण । [८ १४] १ पं °तितो ।

निपतति; गलियनियंसु वि—(ग पं) मद्यपाल· गलितनिजांशुकः पतितनिजवस्त्र·, आदित्यस्तु गलिता निजांशुकाः किरणा यस्य स तथोक्त·, रत्तउ—(ग पं) अनुरक्तः ।

८.१४.६ लग्गेत्यादि—(पं) लग्नमादित्य प्रेक्ष [प्रेक्ष्य ?], क्व लग्ने ? अत्थ····वणराइहे—(ग पं) अस्तशिखरि[2]वनराजिकाया ; कथभूताया· ? [3]सिलायड·· विराइहे[3]—(ग पं) शिलातलमेव रमणं गुह्यं तेन विगलिताया , तं तथाभूतम् आदित्यम्, पेक्खेवि—(ग पं) दृष्ट्वा ।

८.१४.७ ईसाइवि—(ग पं) ईर्ष्यां कृत्वा; पच्छिमदिसपत्तिए असहतिए—(गं पं) पश्चिमदिशिपत्न्या भार्यया असहमानया, किउ ··मुहु—(ग पं) कोपेन कृत आताम्र मुख सन्ध्यारागव्याजेन, तेन चास्तमनं [4]कुर्वता ।

८.१४.८ तेउ हुयासें—(ग) तेजो अग्निना ।

८.१४.२०-२१ विरहग्गिफुलिंग—(ग पं) विरह एव अग्निस्तस्य स्फुलिङ्गा ; जोइंगण—(ग पं) ज्योतिर्गणकव्याजेन, छड्डिय—प्रसृता ।

८.१५.१ अहिसारोहिं—(ख ग पं) अभिसारिकाभिः, पुंश्चलीभि ।

८.१५.३ हेमेयउ—(ग पं) सुवर्णनिर्मिताः ।

८.१५.४ गयवइ··· सहुं—(ग पं) गतभर्तृकाहृदयैः सह ।

८.१५.६ धुद्धउ—(ग पं) धवलम् ।

८.१५.९ किहइ—(ग प) आस्वादयति ।

८.१५.१० मुद्धमुहिय—(ग पं) मुग्धमुखो; करवावड—(ग पं) करास्तद्गुणव्यावृत्ता[1] यस्या. ।

८.१५.१२ नियडाउ निवासए—(ग पं) गृहसमीपे, उच्चिणंति [2]मालइ कुसुमासइ—(ग पं) मालती पुष्पाणि मालतीशब्देनोच्यन्ते तानि चन्द्रकरैर्धवलीकृतानि[3] पुष्पाणि [इत्या·] शया त्रोटयन्तीत्यर्थः ।

८.१५.१३ सवरि—(ग) शर्वरी (हिंदी शवरी) ।

८.१५.१५ एरिसे·· नंदिणए—(ग पं) कैरवाणि कुमुदानि नन्दयन्ति विकाशयन्तीत्येवं शीला, संसिट्ठउ—(ग) संशब्दित ।

८.१६.४ [1]छिण्णु ···किज्जइ—(ग प) प्रदीपो द्वितीये दीपे दत्ते छिन्नच्छायो[2] भवति ।

८.१६.७ पयासइ—(ग प) उद्योतयति ।

८.१६.८ नियंसणसारें—परिधानवस्त्रसारेण[3] ।

८.१६.९ कवणें[4]—(ग पं) केन व्याजेन ।

८.१६.१२ विरायए[5]—(ग पं) विराजते ।

(पं) इति अष्टम सन्धि

---

२ पं अस्तशिखर° । ३ पं सिलायल ममविगलयन्ति । ४ ग कुर्वति । [८.१५] १ पं °तद्गुणाव्यावृत्ता । २ पं मालइ । ३ प °द्धवली° । [८.१६] १ प छिन्न° । २ पं °छाया । ३ पं °वस्त्र.° । ४ प कवणई । ५ पं विरायइ ।

सन्धि ९

९.१.४ रसदित्तं—(ग पं) आवर्त्तितं सत् सुवर्णं दीप्तं भवति, काव्यं तु शृङ्गारादिरसैः दीप्तं भवति, पयछिण्णं[1]—(ग पं) सुवर्णं पदेन मार्गेन खटिकाद्येकदेशेन छिन्नेन परीक्ष्य गृह्यते, काव्यं तु पदैः छिन्नैर्विविधैः शुद्धं परीक्ष्य गृह्यते।

९.१.५ भेल्लियउ[2]—(ग प) आकलितान्तस्तिवताः।

९.१.६ वाउल्लियउ—(ग) पुत्तलिकाः।

९.१.८ मयणकालसप्प—(पं) मदनबाण.।

९.१.९. अमिय-वासउ—(ग पं) अमृतमधु-आवास; वयणासउ—(ग प) वदनमेव आसवो मद्यं[3] [4]वदनमद्यमित्यर्थ.।

९.१.१५ वहि ''दव्वहो—(ग प) वहि' स्त्रीद्रव्येषु।

९.१.१८ तुअयागउ ''सव्वें—(ग पं) कर्मोदयवशात् उदयागत भाव विवेकी उदासीनः सन् भुङ्क्ते; भुंजइ ''जिणु—(ग पं) कर्माश्रयेण विना कर्माण्युपार्जयन् भुङ्क्त इत्यर्थ।

९.३.१ हले—(ख ग) कमलश्रीरुवाच (ख) हालो कथा, (ग) कृषीवल कथा।

९.३.४ दुल्ललिउ—(ख ग पं) दुश्चेष्टितः।

९.३.५ पंचत्तु—(ग पं) मृत्युम्।

९.३.७ वाहियउ—(ग पं) वञ्चित, विवाहियउ—(ख ग पं) विवाहिता।

९.४.८ उद्दमविल—(ग पं) दुर्दमबलीवर्द.।

९.४.१२ सिद्धउ '' वंछहि—(ग पं) सिद्धं त्यक्त्वा असिद्धं वाञ्छसि।

९.४.१६ किच्छें—(ग प) महता कष्टेन।

९.५.४ जामि न ''कोहे—(ग पं) भवदीयवचनात् विषयाभिलाषेण[1] क्षय न व्रजामि।

९.५.५ आउक्खति—(ख ग पं) आयुषः अन्ते।

९.५.१० थोवउ '''ममेवि—(ग पं) स्तोकं भ्रान्त्वा।

९.५.१२ सज्झु (ग पं) साध्य.[2] भवति, मयणें—(ग प) कामे [न]।

९.६.२ सयदक्किउ—(ग पं) शतखण्डो भूत्वा।

९.६.८ अब्भहिउ—(ग पं) अभ्यधिकम्[1]।

९.७.९ जर—(ग) वृद्धः[1]।

९.७.१३ निहिउ (पं विहिउ)—(ग पं) पङ्के कृतः।

९.७.१६ अवडे—(ग पं) कूपे; महु केहणे—(ग पं) मधुबिन्द्वास्वादने आसक्तः।

९.८.१ सीसइ—(ख ग पं) कथयति।

९.८.४ रूयउ एक्कु—(ख ग पं) द्रममेकम्।

[९.१] १ पं °छिन्न। २ पं भिल्लि°। ३ पं मद्य.। ४ पं °मदोरित्यर्थ.। [९.५] १ पं विषयामिषलोभेन। २ पं साध्या। [९.६] १ पं °धिकः। [९.७] १ पं वृद्धता।

९.८.५ महिलसहाएं—महिला सहायो[1] यस्य तेन; रहसें चडिउ—(ख ग पं) रूययो[2] ? सम्पत्तौ यः समुत्पन्नो रमसः तेन उभाभ्या चटितो[3] महति।

६.८.१० निउ—(ग पं) निजं। गरिल्लउ—(पं) अनर्घो-[°र्घो?] यम्।

६.८.१२ रूयउ""विलसिज्जइ—(ग पं) अस्योपयोगः कर्त्तव्य इति परिभावितम्।

९.८.१५ मइं पाणें—(ग पं) मतिक्रमणेन।

६.८.१८ पव्वे—(ग पं) पर्वणि; हियए न पइट्ठउ—(ग पं) हृदये न प्रविष्टं (पं) मद्ये [मह्यं ?] झटिति।

९.८.२२ महइ—(ख ग पं) वाञ्छति; समग्गल—(ख ग पं) समधिका; सग्गदिहि—(ख ग पं) स्वर्गधृति, स्वर्गलक्ष्मी पूरिपूर्णमित्यर्थः।

६.६.३ विवण्णु—(ख ग पं) मृतः।

९.९.४ एहु मंतु—(ख ग पं) इति एतत् वा तात्पर्यम्।

९.६.५ कवलियप्पु—(ख ग पं) विनाशितात्मस्वरूपम् पुरिसयोहें (ख प) ईदृशेन स्तोभेन व्युद्ग्राहेण।

६.६.६ महि""सत्तु—(ख ग पं) पृथिव्यामुत्पादितं द्वीन्द्रियादिप्राणिगणः।

९.९.७-८ (पं) पाउससिरि इत्यादिपदचतुष्टयेन संबन्धः—पाउससिरि जरथेरि नाइं विहाइ (पं) प्रावृट्काललक्ष्मी जरस्थविरी इव प्रतिभाति, पाउससिरि जरथेरिनाइ (I) संतरयंबरीय—(ख ग पं) प्रावृट्कालश्रीः—लक्ष्मी[1] शान्तमुपशमं गतं रजो धूलिर्यस्या [2]यस्या अम्बरे सा, जरस्थविरी पक्षे तु प्रशान्त रजोम्बर[3] रजस्वलावस्त्रं यस्याः (II) पओहरीय—पयोधराः मेघाः, स्तनौ च, (III) घन""विहाइं—(ख ग पं) घनतिमिरेण निबिडान्धकारेण छन्नाः प्रच्छादिताः तारका. नक्षत्राणि (ख) 'आकाशे' यस्या प्रावृट्कालक्ष्म्या सा, [4]जरस्थविरी पक्षे तु[4] घनेन प्रचुरेण च चक्षुर्दोषेण छन्ना तारका [4]यस्या [:] सा[4], (IV) उल्लसियकास—(ख ग पं) उल्लसिताः पुष्पिताः काशाः तृणविशेषा. यस्या प्रावृट्लक्ष्म्या सा, जरस्थविरी तु उल्लसितकाशाः—उत्कटकाश-श्वासा भवति।

९.९.९ तारतार—(ख ग पं) अतिशयेन तार.।

६.६.१० मंदमंदु—(ख ग पं) अतिशयेन मन्दः; संदु—(ख ग पं) सान्द्रो मनोज्ञश्च।

९.९.१२ फलिह—""जडिलेव (ख ग पं) स्फटिकमयलिङ्गैर्जटिता इव।

९.१०.१ वह—(ख ग पं) प्रवाह।

६.१०.२ जुण्णतण्ण—(ख ग पं) जीर्णतृणमय।

६.१०.७ सरडे—(ख ग पं) करकण्टकेन, (ख) कणघेन्यो लोके; मइजरढें—(ख ग पं) अतिप्राज्ञेन।

६.१०.१० सरंतें—(ख ग पं) स्मरता।

६.१०.१२ चुण्णउ (पं चुन्नउ)—(ख ग पं) दीनम्, (पं) वै स्फुटम्।

९.१०.२० कयबें—(ख ग पं) समूहेन।

९.१०.२१ अहि—(ख) सर्पः, वडिपहर—(प) प्रतिप्रहार।

६.१०.२४ सिव-माहव—(ख) शिवभूति ब्राह्मणः, द्वितीय नाम सत्यघोषः।

[९.८] १-ख ग °था। २ पं रूवउ। ३ पं चडितो। [९.९] १ पं सा हि। २ ख ग संत्या। ३ ख ग रजः°। ४ पं °स्थविरस्त्री तु। ५ पं प्रतिभाति।

९.११.३ दंतवणे (पं दंतमुहं) काणिउं—(ख ग पं) दन्तैर्मुखेन च काणितः, दन्तैर्वा मुखे मुखप्रदेशे काणितः कृतच्छिद्रः।

९.११.४ मुज्झिउ—(ख ग पं) अत्यासक्त.।

९.११.१२ तिणु—(पं) तृण।

९.११.१३ जवपाणें—(ग पं) अतिशयेन वेगेन।

९.११.१४ कयनाएं—(ख ग पं) कृतनादेन; सुणह समवाएं—(ग) सुनां [श्वानानां] समवाएन [येन]।

९.१२.५ विहूसियरूवउ—(ख ग पं) विभूषितं रूपं दृष्टम्; नरु ... विरूवउ—(ख ग पं) स एव नरः विरूपक. रूपरहितः ताभिर्वेश्याभिर्मन्यते, विरूवउ—(ख) यो रूपकेण द्रव्येण रहितः।

९.१२.६ खणदिट्ठो ... सिट्ठउ—(ख ग पं) सहिरण्य. पुरुष. प्रथमतः क्षणमात्रेण दृष्टोऽपि प्रियो वैशिक-व्याजेन (ग) अतीव वल्लभ. शिष्ट. प्रतिपादित.; पणया ... न दिट्ठउ—(ख ग पं) य. पुनराजन्मनः प्रणयारूढो मित्रः स एव निर्धनो जातो यदा तदा स जन्मनि अपि मया न दृष्टोऽयम् इति परित्यज्यते।

९.१२.७ नउलु ... वणियउ—(ख ग पं) नकुलोद्भवा (ख ग द्भूताः) नकुलोदरास्ताः गणिकास्तदा ताः कथं भुजङ्गैः सर्पै. दन्तनखै व्रणिताः, भुजङ्गानां नकुलाभिर्वध्यमानत्वात्? अत्राह–यतो न कुलोद्भवाः कुलहीनास्ततो भुजङ्गैर्विटैर्दन्तनखैर्व्रणिता।

९.१२.८ वम्मह ... परिचत्तउ—(ख ग पं) मन्मथस्य कामस्य दीपिकाः उद्दीपिकाः न तु दं पिका स्नेह-सङ्गवत्यो भविष्यन्ति; अत्राह—यद्यपि ताः दीपिकाः, तोवि–तथापि स्नेहसङ्गपरित्यक्ता, कार्यवशाद्वेव वैशिकेन ताः केनचित् सह स्नेहसङ्ग प्रदर्शयन्तीत्यर्थ.।

९.१२.९ डगिर ... दच्छउ—(ख ग प) शाकिन्यो हि रक्ताकर्षणे दक्षा. भवन्ति, गणिकास्तु रक्तानामुत्पा-दितानुरागाना कर्षणे दक्षाः।

९.१२.१० मेरु ... नियंबउ—(ख ग पं) मेरोः महीधराणा (ग पं) षट्कुलपर्वतानां च मही-भूमिस्तत्-प्रतिबिम्ब तेन सदृशः तन्मही हि किंपुरुषादिभिर्बहुभिर्देवविशेषै. सेवितनितम्बा इति, गणिकास्तु किंपुरुषै-र्बहुभि. कुत्सितै. पुरुषै. सेवितनितम्बाः इति।

९.१२.११ नरवइ ... संजोयउ—(ख ग पं) नरपतिनीतिभिः समानविभोगाः, नरपतिनीतयो हि अर्थ-वन्त्य प्रवर्त्तन्ते, अनर्थसंयोग दूरतः परिवर्जयन्ति, गणिकाना विभोगा अपि अर्थवन्त्येव प्रवर्त्तन्ते, अनर्थ-संयोगं दूरतः परित्यजन्तीत्यर्थः।

९.१२.१२ अहरे राउ—(ख ग पं) ओष्ठे नीचे च राग., मदनोऽपि कामोऽपि नीचः एवं यासा वर्त्तते।

९.१२.१४ परवंचण—(ग पं) परवञ्चनादि सम्बन्धे स्त्रीजने (पं) परवंचनहहियाए इति पाठे।

९.१२.१५ न सरूवउ—(ख ग पं) तत् स्वभावस्वरूपं न।

९.१२.१६ जं मिट्ठंतु ... पीडए पुणु—(ग पं) मिष्टान्नं यत् तत्रैव नायं श्रद्धाया गुण., तथा सुन्दरं यत् तत्रैव तरुणचित्तेपु रञ्जिता प्रीति. रञ्जनार्थं पीडा वा इति पाठ., तदभिलाषः यस्य प्रयासस्य च नायं गुणः, (पं) एतेन किं सूक्तम् [उक्तम्]? सेव्यासेव्यं वेश्या न पश्यति [इति]।

[९.११] १ पं °प्रदेशो। २ पं तणु। [९.१२] १ पं नरो विरूपको रूपकरहितस्ताभिर्मन्यते। २ पं न दृष्ट इव। ३ पं °ता। ४ ग भुजं°। ५ पं विटदंतनखैर्व्रणिता। ६ पं °पिका। ७ पं °दिभिर्देवविशेषैर्बहुभि.। ८ ख ग °च। ९ पं °नितंबा। १० ख ग °वंति। ११ ख अर्थवंत एव। १२ पं नीच। १३ पं मृ°। १४ पं यत्रैव।

९.१२.१७ मंडणे ... विहजणे (ग पं)—[मडने] श्वेतपीतादिवर्णापेक्षा[१५] न ब्राह्मणाद्यपेक्षा[१५]; गउ-रवणे—(ग प) नितम्बे एव गुरुता ।

९.१२.१८-१९ आयरेण ... महुसंचु जिह । रिच्चेवइ ... सचुंवंति तिह—(ग पं) यथा मधुसञ्च[१६]—मधुछत्र सरसं कर्तुं, निउणउ—निपुणाः[१७] दक्षाः उड्डापिताः सन्त्यः[१८] खुद्दउ—मधुमक्षिकाः सञ्चुम्बन्ति मधुसञ्चं, तिह—तथा आदरेण सरस पुरुष सुचिरमालिङ्ग्य रक्तं कर्तुं निपुणा.[१९] गणिका. क्षुद्रा. पर-वञ्चकत्वेन दुष्टाभिप्राया ।

९.१३.१ का वि ... गणती—(ग पं) चतुष्पदे संबन्ध., नवदविणु—अभिनवोपार्जितार्थ[१] पुरुषम्, गणंती—चित्ते धरन्ती, हियधणमणुम—(ग पं) गृहीतार्थपुरुषम्, अमुणती[२]—अनिच्छन्ती ।

९.१३.२ निरोहवि[३]—(ग प) गृहे प्रवेश निषिध्य ।

९.१३.३ जो अप्पिउ—(ग) दत्त यद्द्रव्यम् ।

९.१३.४ विमत्तिए—(ग) बुद्धिहीनया, (पं) बुद्धे हीनया ।

९.१३.५ [४]कडच्छए—(ग प) कच्छायाम् ।

९.१३.७ धणु वि उवलंभइ—(ग पं) [५]कश्चिदन्यस्याशक्तिवशाद्दत्तधनापि[६], ढोउ न लहमि[७]—निर्द्धनोऽयमिति ज्ञात्वा न स्वीकरोति[८], तत्र निरपेक्षा, अन्यत्र विजृम्भते, ततोऽसौ उवलभइ—उपालम्भयति लोकानामग्रे तस्या कथा कथयति ।

९.१३.८ निहुवणु[९]—(ग पं) सुरतव्यापारम् ।

९.१३.११ सेय—(ग प) प्रस्वेद, कल—(ग पं) मनोज्ञ[१०] ।

९.१३.१२ वणु व हयवच्छउ—(ग प) वनो निवारितवृक्षम्[११], [मिथुनः] हतवक्षस्थल[१२] च, करणपरि-पूर्णम्, यथा राजकुल करणैरधिकम्, किंपुरुषे पूर्णं च ।

९.१३.१३ रूवियबंधउ[१३]—(ग प) निरूपितकर्म-प्रकृत्यादिबन्ध[१४] निधुवन च रतिकृतकरणबन्ध विलास-शास्त्रे[१५] विशेषत ; रिद्ध ... खधउ—(ग पं) कृषीबलाः समर्पितसिद्धदायाः [°सिद्धयादय.] (पं कृषाणा समर्पन्ति सिद्धादाय) मिथुनमपि अर्पितस्कन्धम् ।

९.१३.१४ अंधय ... व्वणु—(ग प) अन्धकदानवस्य वधू इव मिथुननिहुअणं तद्वधार्थं[१६] हि न जाता[१७] हरस्य व्रणा[१८], [१९]निधुवनं तु जातनखव्रणम्[१९], सरु—(ग पं) शब्द बाणश्च ।

९.१३.१५ कड्ढियकरवालउ—(ग प) करवाल—खड्ग.,[२०] आकर्षिता. करेण वालाः[२१] [२२]केशा यत्र तत् च[२२], रेय—(ग पं) रेत शर्करा[२३] सूक्ष्मवालुका च ।

९.१३.१६ समुग्गयसुक्कउ—(ग पं) समुद्गतशुक्रः गृहविशेषो दानवबले[२४]; पक्षे शुक्र—रेत मिथुन-निधुवने ।

९.१३.१८ नियइ—(ग पं) अवलोकयते ।

९.१४.१३ चित्तब्भमणे—(पं) अन्यमनस्कतया गमने ।

---

१५ प °पेक्षणं । १६ ग °सिंचं । १७ प °णा । १८ ग सत्य । १९ ग °णा । [९.१३] १ पं °तोर्थं । २ पं अग° । ३ पं °हेवि । ४ पं °च्छुहे । ५ पं कश्चिदन्या° । ६ प °धनोपि । ७ पं °इ । ८ पं स्वोकारयति । ९ पं °यणु । १० पं °ज्ञं । ११ पं °वृक्ष । १२ पं °स्थल । १३ पं °वतउ । १४ पं °बन्ध । १५ पं °बन्धयोरि[रति°] विलासशास्त्रे । १६ पं °र्थे । १७ पं जातं । १८ प व्रण । १९ पं मिथुन निहुव्रणे जात नखव्रण । २० पं खड्ग । २१ पं बाला । २२ पं केशाकर्षणं च । २३ पं शर्कर । २४ प °बलो ।

९.१५.२ तक्करु—(ग पं) चौरः।

९.१५.७ कुसुमालें—(ग पं) चौरेण।

९.१५.१३ विवत्थए—(ग पं) व्यवस्थया[1]।

९.१६.४ न पवसइ पुत्तु तउ—(ग पं) तव पुत्रः[1] न व्रजति, न गच्छति।

९.१६.६ जायरमं ज़णयं—(ग पं) जाग्रतो निद्राकरणम्।

९.१७.१० वच्छरेसु—(ग पं) संवत्सरेषु।

९.१७.११ सद्धु—(ग पं) श्रद्धावान्।

९.१७.१३ बूहि—(ख ग पं) ब्रूहि; आगुरू—(ख ग पं) आसमन्तात् महान्तः एते पितृस्थानीयाः[1]; लहू व—(ग पं) अहं लघु. पुत्रस्थानीयः एतेषाम्; ऊहि—(ख ग पं) एतत् स्वचित्ते सप्रधारय।

९.१७.१४ आवओ समाणि अम्मि—(ख ग पं) [2]आगतः सन्[2], समाणि—सन्मानय, अम्मि—हे मातः; (ग पं) अन्यत् आगुरुलघुचतुष्क[3]गणैरागतं समानिका छन्दो नाम[4]।

९.१७.१५ पुत्ताणुमइए—(ख ग पं) पुत्रानुमत्या।

९.१८.२ वेसपड्ड[1]—(पं) वेशदक्षः[2]।

९.१८.३ केसकडि—(ग पं) केशा।

९.१८.४ कयबंधमए—(ख ग पं) केशबन्धसद्भावात; उग्गंठिय—(ख पं) छोडितग्रन्थी, (ग) छोडितग्रन्थि।

सन्धि १०

१०.१.६ कण्णाह ''ण्वत्रण—कर्णातिशयात् स्याम. प्रास प्राप्तौ येन।

१०.१.१० वण्णाखिल[1]·····सिंग—वर्णेन यशसा धवलितानि [2]अखिलानि शिखरिणा शृङ्गानि[2] शिखराणि येन।

१०.१.१२ मालंकिय—(ख ग पं) लक्ष्मीभूषिता।

१०.१.१४ वियास—(ख ग प) विकास[3]; आसाइय—(ग पं) समासादित।

१०.२.७ तउ—(ख ग पं) तप.; कायहो कारणे—(ख ग पं) कायस्य निमित्ते; आयहो—(ख पं) एतस्मात् कृततपस आ शारीराख्यस्य फलं किम् ? न किमपि[1]।

१०.२.८ सुदधु · निद्दिट्ठउ—जीवो-जीवः शुद्धो निर्गुणो अकर्त्ता कायादिभिरसस्पृष्ट.[2] इति विशेषोक्ति; चेट्ठ-अचिट्ठउ—(ख ग पं) एताभिश्चेष्टाभिरस्पृष्ट[2]ः।

१०.३.५ भति—(ग पं) वञ्चयन्ति।

१०.३.७ न नियच्छु · सोक्खु (ग पं) संसारसौख्यं मुक्त्वा अन्यो[1] निजार्थो[2] नास्ति (पं) अत. किम् ?

१०.३.६ धम्मद्दि····रुहेण—(ग पं) धर्म एवाद्रि. पर्वतस्तस्य शिखरं तत्र यग्णीरुह.[3] वृक्ष.[4] यस्तेन।

[९.१५] १ प व्यवस्थाया। [९.१६] १ पं पुत्रं। [९.१७] १ पं °नीया। २ ग आगंतं संतं। ३ पं °चतुष्क°। ४ पं नामो। [९.१८] १ ख ग वंसपड्ड। २ ख ग वशदक्षः।

[१०.१] १ पं वत्रेत्यादि। २ पं अखिलशिखरिश्रृंगानि। ३ पं °सो। [१०.२] १ पं कस्यापि। २ पं °स्पृष्ट। [१०.३] १ पं अन्यं। २ पं °र्थं। ३ ग °रुहो। ४ ग वृक्षो।

१०.३.१० मिच्छा....सुसमु—(ग प) मिथ्या असत्यो य. प्रपञ्चः जीवो नास्ति, धर्मो, नास्ति, परलोको नास्ति इत्यादिरूपस्तेन वञ्चितताना सुसमः सुन्दरः।

१०.३.११ तत्तत्थु....हसिउ—(ग पं) तत्तत्थु-तत्त्वार्थः, तत्त्वभूते परमार्थभूते अर्थे जीवादौ ये साधवो जनाः गणधरदेवादयस्तैरुपहसितः[५]।

१०.४.१ सवियप्पहो....कारणु—(ग पं) पञ्चेन्द्रियमनः प्रभवतया ,सविकल्पस्य षट्प्रकारभेदभिन्नस्य ज्ञानस्य भूतानि पृथिव्यादीनि, साहारणु कारणु—सर्वेषा समानं यदि अन्तरङ्गकारणं स्यात्।

१०.४.२ तो म....सुत्तहो—(ग प) तो—ततः मूर्तकारणजन्यत्वात् मूर्तस्य ज्ञानस्य तदा समाना परिणतिः[१] सर्वेषा समानो ज्ञानपरिणाम. किं न स्यात्? अत्रार्थे दृष्टान्तमाह—पटरंगेण....सुत्तहो—(ग पं) विशेषोक्ति-पदाग्रे दिनमूर्त्तेण[२] साधारणकारणेन पटे रञ्ज्यमाने पटरङ्गेण समानः सूत्रस्य रङ्गो यथा भवति।

१०.४.३ अह ....निरूविउ—(ग पं) सहकारिकारणं ज्ञानोत्पत्तौ भूतानि निरूपितानि नोपादानकारण तर्हि[३] अण्णु जि[३]....सूइउ—(ग पं) अन्यदेव जीवलक्षणं [४]अन्तरङ्ग उपादानभूत ज्ञानावरणादिक्षयोपशम-लक्षणं च त्वया एव सूचितं प्रतिपादितम्।

१०.४.४ कज्जहो....सलक्खणु—(ग पं) यत् सहकारिकारणभूत पृथिव्याद्यात्मकं [५]शरीरादिकार्यं च ज्ञानादि तत् कारणं सहकारिभावेन जनकं नवर वपुर्लक्षणं येन शरीरस्याचेतनत्वे ज्ञानादेरप्यचेतनत्वं स्यात्; अत्र दृष्टान्तमाह—मिउ....सविलक्खणु—(ग पं) यथा मृत्पिण्डो घटस्य जनकोन पुन. तस्य लक्षणं स्वरूप, न हि मृत्पिण्डसदृशो घट मृत्पिण्डस्य जलधारणाहरणे [ऽ] समर्थत्वात्, घटस्य तु तत् समर्थत्वात्, पृथुबुध्नो-दराद्याकारत्वाच्च उपलक्षणदृष्टान्तमाह; अविलक्षणमिति पाठे मृद्रूपतया मृत्पिण्डो घटेन अविलक्षण. सदृशः पृथुबुध्नोदराद्याकारतया जलधारणाहरणाद्यर्थक्रियाकारितया च विलक्षण इति।

१०.४.५ सच्चउ ....आयण्णहि—(ग पं) यस्यान्तरङ्ग उपादानभूतं यत्कारणं तत् सत्य कथयामि, आकर्णय; नाणहो.. मण्णहि—(ग पं) ज्ञानस्योत्पाद्यमानस्योपादानकारण ज्ञानमेव उपयोगलक्षणलक्षिता-त्मैवेत्यर्थः।

१०.४.६ बद्धउ ....निरूइउ—(ग पं) साङ्ख्यमतमाश्रित्य त्वया सूचितं सदैव जीवो मुक्तः, बद्धो जीव इति तन्मोह;[६] अज्ञानमेतत् प्रकृतेरेव बन्धसद्भावात् यथा दर्पणे मुखमेव सम्बद्धं, मोहवशान्मुखदर्पणे सम्बन्ध [सम्बद्ध° ?] मिति दर्पणे वदनाभासो न[७] पुनः सत्यो वदनप्रतिभासस्तत्रेति।

१०.४.७ अत्र दूषणमाह—अवियारिउ....असारउ—(ग पं) अय सिद्धान्तस्त्वदीयो[८] अविचारितः—विचार-क्षमो न भवति यतो विघटितेन युक्त्या विचार्यमाणः, अतो असारोऽयमिति प्रेक्ष्य अवलोकय त्व मध्यस्थो भूत्वा, दर्पणे हि मूर्ते वदनं मूर्तं तावन्न प्रविशति अतः शरीरस्थवदनं मुक्त्वा दर्पणे वदन कथं दृश्यते? किन्तु शरीरस्थमेव वदनं तत्प्रतीयते तत् प्रतिपत्तौ च प्रकृत्या प्रदर्श्यते।

१०.४.८ दप्पणतेय....विवरेरउ—(ग पं) दर्पणतेजसि मिलित नायनं—तेज.[९], (पं) नायना रश्मयः, होइ विवरेरउ—दर्पणेऽभिमुखं सत् व्याघुट्य शरीराभिमुख भवति तदिदमाश्चर्यम्, नच्छेउ—(पं) नेद-माश्चर्यम्।

१०.४.१०-११ चक्खु ....अवलोयइ नाणु वि....मिलियउ—(ग पं) चक्षुषा निरुद्ध दर्पणतेजसा प्रतिहतम्, पुरउ—अग्रे स्थित, शुद्धं दर्पणे स्थितं स्वरूपम्, न विलोयइ—न पश्यति, वदनस्वरूप तु वलेवि—व्याघुट्य अवलोकते, तत् प्रभव च ज्ञानमपि कर्मशक्तिसंचालितं[१०] मिथ्यात्वकर्मोदयसहित मिथ्यादर्शनसहचरित-

---

५ पं °हसितो। [१०.४] १ प °णति। २ पं दिनामूहूर्त्तेन। ३ प अन्नु जे। ४ ग अंतरंग°। ५ पं °कार्यश्च। ६ प °हो। ७ ग नः। ८ पं सिद्धातं त्व°। ९ पं तेजो। १० पं संच°।

मुत्पद्यते; मिळियमिति पाठे–मिथ्यादर्शनेन मिलित जायते[11] इत्यर्थः, तथा च मोहवसे[शे]न—मोहनीयकर्म-सामर्थ्येन अविवेकसामर्थ्येन वा ।

१०.४.१२ वत्थु—(ग पं) दर्पणस्वरूपं मुखविविक्तम्, मुख तु शरीरप्रदेशवर्ती[12] इति एवविधं वस्तु-स्वरूपम् ।

१०.४.१३ वियाणहि[13]—(ग पं) विशेषेण जानीहि, सुद्ध""कुरु तिह—(ग पं) मामं ! तथा कुरु त्वं सम्यग्दृष्टिर्भूत्वा यथा स्वरूप पश्यतु[14] इत्यर्थ. ।

१०.४.१४ सुहभावें ""खयइ—(ग पं) दुर्लभ मनुष्यत्वं लब्ध्वा शुभभावेन सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रपरिणामेन अशुभं मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रं न परित्यजति, तथा शुद्धेन भावेन परमोदासीनतालक्षणेन न त्यजति, विण्णि विशुद्धाशुद्धमावौ[15] क्षपयति ।

१०.४.१५ अमइ—बुद्धिहीन.[16] ।

१०.५.१-३ अह""अवद्धउ—(ग पं) अथ साङ्ख्यमतमवलम्ब्य एकान्तनयेन अबद्धो जीवो[1] इष्यते[2] तथा—अच्छउ""सुविसुद्धउ–(ग पं) आस्ता परितः[3] सुविशुद्धो जीवो यतः—पुग्गल ""वियारिज्जइ—पुद्गल-कर्मणा तथाभूतो जीवो न विकार्यते[4] सुखदुःखादिस्वरूपा परिणति न नीयते, तेण वि"" किज्जइ—तेनापि शुद्धस्वभावेनात्मना, तणुहे[5]—शरीरस्य, न काइ मि[6]—न किमपि विविधव्यापारादिलक्षण फल क्रियते; यत् च चार्वाकमताश्रयेन अप्पु पोग्गलु भणिउ[7] स मोहु—(ग पं) आत्मा पुद्गलः शरीरपरिणामस्वरूपो[8] भणितः, स मोहः, तन्मोहविजृम्भितं भवतीत्यर्थ.[9], अतः करहि कम्मु—(ग पं) धर्माधर्मसंज्ञक कर्म कुरु ।

१०.५.७ किव्विसु[10]—(ग पं) किल्विषं पापं तदेव विष.[11] ।

१०.५.८ दिसवि—(ग पं) पापोपदेशं दत्त्वा ।

१०.५.१० पावकम्मे""अग्गेसरु—(ग पं) पापकर्मविषये ईश्वरः उपाध्याय अग्रेसरश्च ।

१०.५.११ सोज्जे 'संसारिउ—(ग पं) स एव, यः[12] आत्मा समोह मोहनीयकर्मग्रस्त[13] स ससारी अभिधीयते, 'खारिउ—(ग प) कर्दथित इत्थंभूतस्य चात्मन ।

१०.५.१२ अहमिय मइ—(ख ग पं) अहमिति मति , जा—यावत् , ता—तावत् कम्मरइ"" बंधगइ—कर्मोपार्जने रतिः आसक्तिः सैव जीवस्य बन्धगति', बन्धश्च कर्मभिः सश्लिष्टः, गइ—गतिश्चतुर्गति-परिभ्रमणम् ।

१०.५.१३ [14]रूवाभावि—(ख ग पं) विकल्पपरित्यागेन परमोदासीनतायाम्, विसुद्धु ठिउ—(ख ग पं) शुभाशुभकर्मोपार्जनरहित , सो मोक्खु"" सिउ (ख ग पं) स मोक्षः सकलकर्मकलङ्करहितो विशुद्ध आत्मा मोक्ष निरञ्जन शान्त शिव.[15] इत्यादिभिः शब्दैरभिधीयते ।

१०.६.४ हयतमालि—(ख ग पं) स्फेटितरकर-तमोनिकरः ।

१०.६.८ कम्मकीउ—(ख ग प) [1]कर्मक्रीतमुपार्जितं येनासौ कर्मक्रीतः ।

१०.७.२ बऊविसुद्धु—(ख ग प) बलेन विशुद्ध[1] अतिपुष्टो[2] मन्दगतिरित्यर्थः ।

१०.७.३ तं महुरु ""[3]वहतु बाह—(ख ग पं) त–तत् , महुरु—मधुरं स्मरन् अन्यपदार्थभक्षणे बुभुक्षा[4] बाधा पीडा, वहंतु—वहन्, धरन् (ख) धरंतु ।

---

११ ग ˚ते । १२ पं ˚र्वर्ति । १३ पं ˚र्णाहि । १४ पं पश्येत् । १५ पं ˚भावं । १६ पं ˚हीनाः । [१०.५] १ पं जीव । २ पं ईष्यते । ३ पं परतः । ४ ग विचार्यते । ५ ग तनुहे । ६ पं वि । ७ पं ˚तं । ८ ग ˚रूपं । ९ पं भवे[दि]त्यर्थः । १० ग किं विसु । ११ ग विषं । १२ पं य । १३ ग ˚गुप्तः । १४ पं रूवाभावे । १५ पं शिव । [१०.६] १ पं कम्मंकृत˚ । [१०.७] १ ख विशुद्धः । २ पं ˚पुष्टा । ३ पं महंतु । ४ पं सुमक्षां ।

१०.७.५ तिट्टमारु—(ख ग पं) असरालतृष्णाम् ।

१०.७.६ एक्कल्लउ—(ख ग पं) [5]अतितृष्णावशात् एकाकी भट्टपुत्रमेकमपि [6]ससहायं न चरति, मणिवाणिज्ये तृष्णा यस्य[7]; पीय····दिट्ठु—(ख ग पं) [8]पूर्वं पीत सरसि सलिलं यत्र तत्तथाविध पीतसर सलिल दृष्टं ।

१०.७.७ चोरेहिं मुसिउ—(ख ग पं) ततो अग्रे गच्छन् चौरैर्मुषित. ।

१०.८.२ गुरुपंथसतु—(ग प) बृहन्मार्गश्रान्त ।

१०.९.२ जमाइट्ठ[1]—(ग पं) यमेनादिष्ट[2] ।

१०.९.८ वेलाणई तीरे पत्तो—(ख ग पं) समुद्रोपकण्ठनदी [3]तस्या वेला चटति ।

१०.१०.९ निउ सेणें—(ख पं) [1]नीतं सन्धाणकेन ।

१०.१०.१० अहचाणए—(ख ग पं) पुरुचेल्या[2], देवि कक्खु—(ख ग पं) अभिमुखमवलोकयित्वा ।

१०.१०.१४ कल्लाणकारि—(ख ग पं) इत्युपहासकारी वचनमेतत्, [3]तउ बुद्धिलग्ग—(ख ग पं) तव बुद्धिफल सञ्जातमित्युपहासवचनम्[4] ।

१०.१०.१५ अवगमहि—(ख ग प) जानीहि ।

१०.१२.३ विवण्णु—(ख प) मुनः ।

१०.१४.६ वोड्ड—(ख) नटाव [नटव ?] ।

१०.१४.८ उरि—(ख) पुरि ।

१०.१५.५ सवगे—(ग पं) प्रासादे ।

१०.१५.७ कज्जविमुक्कउ—(ग पं) कृत्याकृत्यविवेकशून्यम् ।

१०.१५.९ वेसिणि—(पं) विलासिणी ।

१०.१६.१ चंगाहिहाणु—(ग पं) चंगउ नाम ।

१०.१६.२ उप्पुंछिय—(ख) मुण्डित, (ग पं) पश्चाद्भागमुण्डित ।

१०.१६.३ चूल—(ख ग) उज्वल, (पं) चूलम् ।

१०.१६.४ कण्णत—(ग पं) कर्णमध्य ।

१०.१६.५ नव '' पवरु—(ग पं) नवानि प्रत्यग्राणि तानि कुसुमानि फलानि-पुष्पाणि तेषा सम्ब सङ्घातो माला वा, तेन गर्भिणः-उपचितः (पं) स चासौ करश्च केशभारः ।

१०.१६.६ [1]उप्फोडिय—(ख प) समारितः ।

१०.१६.११ सहायसहु[2]—(ग पं) सहायशोभः ।

१०.१६.१२ संवाहियउ—(प) सहित ।

१०.१७.२ रूढ—(ख ग पं) रूढ उदात्तः प्रौढो वा ।

१०.१७.३ निरोहसमणु—(ख ग पं) निरोधभाजनम् ।

१०.१७.७ विहच्छ—(ख ग पं) विरूपकः ।

---

५ पं अवि° । ६ ग सहाय । ७ ग यस्या । ८ पं पूर्वपीतसरसि । [१०.९] १ पं दट्ठा । २ पं जमेनादृष्ट । ३ पं तस्या । [१० १०] १ पं नीतो । २ पं °चल्या । ३ पं तव । ४ पं °हास्यवचनम् । [१० १६] १ पं उप्फेडिय । २ पं °सहु ।

१०.१७.१२ विवण्णु—(ख ग पं) विरूपकरूप ।

१०.१७.१३ सुरहिएहिं[3]—(ग पं) देवानामपिहितै ।

१०.१७.१५ भूओ वि—(ख ग पं) भूयोऽपि, पुनरपीत्यर्थः, राउ—(ख ग) राजा ।

१०.१८.२ वंचियपवंचेण—(ग पं) परित्यक्तमायाप्रपञ्चेन ।

१०.१८.३ जुत्तीपउत्तेण—(ग पं) युक्तिज्ञेन ।

१०.१८.४ पोमाइउ—(ग पं) प्रशंसित ।

१०.१८.५ कइरवखणाणं—(ग पं) कुमुदसङ्घातानाम् ।

१०.१८.६ तं तक्कायारु—(ग पं) तत् तस्कराचार.[1] [2]चौराचार. इत्यर्थः[3] ।

१०.१८.७ गयण…हरे—(ग पं) आकाशसमुद्रे, दिवसयर—(प) दिवसतरे; दीत्तढिहि—(पं) दुष्टघटे[3]; अरहंति—(प) अवस्थानं अलभमाना, संवट्ट—दिवसकरदुस्तटै अभिघातः ।

१०.१८.६ सियवहुव—(पं) श्वेतवट्ट इव; सउणगण—(पं) पक्षिगणः ।

१०.१८.१० तयाहारू—(पं) तदाधारो, तारोह माणिक्कसंदोहु—निसिनीग[°का ?] धारयस्य तागीयस्य स अन्यत् माणिक्यसन्दोहः ।

१०.१८.११ उययाचले—(ग पं) उदयाचले; उइउ रवि—(ग पं) उदित सूर्य. ।

१०.१८.१२ भवभारहो—(ग) संसारधारकस्य, (पं) भवधां[°] ।

१०.१९.५ लय' 'सुहं—(ग पं) नष्टरतिमुखम् ।

१०.१९.७ सिरट्ठियं—(ग पं) शिरसि धृतं स्थापितम् ।

१०.१९.१२ सायरो—(ग पं) सादरः ।

१०.१९.१३ पासजणनंदणी—(ग पं) पार्श्वजना प्रेक्षकजनास्तेषा नन्दिनी[1] वृद्धिकरी[°रा] ।

१०.१९.१४ बहुक…संठिया—(ग पं) प्रचुररस ढ्या; संदणी—(ग पं) सङ्घट्टः ।

१०.१९.१६ सेवियरयइं—(पं) सेवितधूनी ।

१०.२०.५ वित्तमुत्ताहलु—(ग पं) वृतानि मुक्ताफलानि यत्र, विशेषेण वा इत गत मुक्तानां कर्मवन्धरहि-तानां फलं येन रागवृद्धिहेतुतया हि तेन फल त्यक्तम् ।

१०.२०.६ विहरंतें[1]…कंकणु—(ग पं) विचरता यत्र तत्र नरजन्मनः क-कणु—कं—पानीयम्, तस्य कणं—लवं, नरजन्मनः[2] पानीयं दत्तमित्यर्थः ।

१०.२०.७ तउ मुद्दिउ—(ग प) ततो (पं ततः) मुद्रिता ।

१०.२०.८ सपरियर—(ग) परिकरसहिता, (पं) परियरेदुलकपट्टिकया सहिता; सत्थी—(ग पं) छुरिका; लोहिणि—(ग पं) लोहनिर्मिता, लोभिनी, लोहमयावस्तु; बंध-समत्थी—(ग पं) बन्धसमर्था यत कारणात् ।

१०.२०.११ आसउ—(ग पं) आश्रयः ।

१०.२०.१२ परिहारु—(ग पं) मोचनम् ।

[१०.१७] १ पं °हिएहि [१०.१८] १ पं °चारो । २ पं °चारमित्यर्थ. । ३ पं °घटं-[°तटे.] । [१०.१९] १ पं नंदनी । [१०.२०] १ पं वियरतें । २ पं °जम्मनो ।

१०.२२.११ बहिरत्तु वि आयहो भणिउ—(ग प) बाह्यत्वमथास्य भणितम्, कउ—(ग पं) कृत.।

१०.२२.१२ बहिदव्वावेक्खहे—(ग पं) आहारादिबाह्यद्रव्यापेक्षया[2] कृतो गुणो बाह्यत्वम्, अण्णु[3]···पुणु—(ग पं) अन्यदपि यद्बाह्येन्द्रियै. प्रत्यक्षत्वं तत् कृतमपि बाह्यत्वं तस्य[4]।

१०.२३.५ पं गाथा अप्पणत्तु—(ग प) आत्मन[1] शरीरम्।

१०.२३.९ गणहरसण्णिहु[2]—(ग पं) सौधर्मस्वामिगणधरसन्निभः सदृश समीपवर्ती वा।

१०.२३.१० पसरे तउ—(ग पं) प्रभाते ततः।

इति दशमसन्धिः

सन्धि ११

११.१.१ पं गाथा।

११.१.२ सयासे—(ग पं) समीपे, सव्वत्थगयवण्णा—(ग पं) सर्वस्मिन् [सर्वत्र ?] गतो वर्णो यश स्वकाव्यरचिता [°त] अकारादिवर्णा वा येषाम्।

११.१.३ छुरियउ—(ग पं) छुरिका।

११.१.१० विज्जुल 'उवहासणु—(ग पं) अतिचपलत्वेन विद्युच्चपलविलास उपहसति, ततोऽपि [1]क्षणदृष्टादृष्टतया अतिचपलान्येतानीत्यर्थ.।

११.२.२ धरियधुरमाणव—(ग प) सङ्ग्रामधुराधारकाः सुभटा इत्यर्थ.।

११.२.३ सक्कंदणु—(ग पं) इन्द्र, वइरिअक्कंदण[1]—(ग पं) वैरिणा प्रकर्षेणाक्रन्दका [ ]।

११.३.२ विवज्जियसंकडे—(ग पं) विवर्जिता मर्यादा येन, भ्रमणेन क्वचिदुत्पद्यते क्वचिन्नोत्पद्यते इत्येवं मर्यादारहित[1] [2]सर्व उत्पद्यत[2] इत्यर्थ.।

११.३.८ वंदारउ—(ग पं) देवः।

११.४.९ कलिज्जइ—(ग पं) गण्यते।

११.५.७ कामंतहं—(ग पं) कामसेवा कुर्वताम्।

११.७.२ जीवासउ—(ग पं) जीवाश्रितः।

११.७.४ सिट्ठउ—(ग) श्लिष्ट, (पं) सृष्ट, निर्मितः नियसाम्।

११.८.२ आसियकम्महो—(ग पं) उपार्जितकर्मण।

११.९.३ णियाणिय—(ग पं) निर्जिता।

११.९.४ कीवहं[1]—(ग पं) क्लीवस्य।

११.९.७ उवय[2]—(ग पं) उदयः।

११.१०.२ रज्जू—(पं) असङ्ख्यातयोजनकोटिभि. एका रज्जू, तिहिंमि····धरियउ—(ग पं) घनोदधि-घनानिल-तनवातवलयै.।

[१०.२२] १ प कओ। २ प °पेक्षा। ३ पं अन्नु। ४ पं तस्या.। [१०.२३] १ पं आत्मान। २ पं °सन्निहु। [११.१] १ पं क्षणदृष्ट तया। [११.२] १ प वइरियक्कंदण। [११.३] १ पं °रहितं। २ प सर्वोत्पद्य। [११.९] १ पं °हा। २ प उदउ। [११.१०] १ ग पीनोदधि°।

११.१०.४ तीस[1]···सायरु—(ग पं) त्रिशल्लक्षादिनरकविलानामाकरः, एकसागरोपम आयु. एकादि-सप्तभूमिषु बोधव्यम् ।

११.१०.१० पं घत्ता–धणुहइं ···सवातिण्णि—(ग पं) सप्तधनुंषि त्रयो हस्ता.[2] षडङ्गुला उत्सेध.,[3] धनुः ७, ह० ३, अं० ६ ।

११.११.१ परिखंडिय—(ग पं) परिछिन्नः ।

११.११.८ हिमालय-उवहिहिं—(ग प) हिमवत्पर्वतसमुद्राभ्याम् ।

११.११.६ आयारें—(पं) आकारेण, रोत्तियधणु—(ग) आरोपितधनु. चटापितधनुः ।

११.११.१० तउ—(ग पं) तत. ।

११.१२.२ नव-गेविज्ज (पं °गेव°)—(ग पं) 'नव' शब्देन नवानुदिशा गृह्यन्ते, 'गेवज्ज' शब्देन नवग्रैवेयकाः, उवरि—(पं) उपरि ।

११.१२.३ बिण्णि··· सायर—(पं) सौधर्मेशानयो द्विसागरोपमायु. इत्यादि बोधव्यम् ।

११.१२.५ सुहायरु—(ग) शुभकर, (पं) शुभाकरः ।

११.१२.१० सुहावइ—(ग पं) सुधा अमृतम्, तस्याः पतिः ।

११.१३.६ घुसिणं—(पं) कुङ्कुमम् ।

११.१४.२ कयदोसेसु—(ग पं) कृतदोषेषु प्राणिषु ।

११.१४.३ जाइमयाइ—(ग पं) जातिमदादि ।

११.१४.५ पत्त····वि सहो—(ग पं) कस्यचित् सम्बन्धीयः स[1] परिग्रहः सुवर्णादिपदार्थः तत्र-लोभ त्यजता निर्लोभाता शौच भवति ।

११.१४.१० परिवज्जियकिंचत्तु—(ग पं) आकिञ्चन्यमित्यर्थः ।

११.१५.२ सुणंतहो—(पं) अभिलपतः ।

११.१५.११ सोयार—(ग) श्रोतृणाम्, समदिट्ठिहिं—(ग पं) सम्यग्दृष्टे. मध्यस्थदृष्टेर्वा ।

पं इति श्री जम्बूस्वामिचरित्रे एकादशम सन्धिः समास ॥११॥

प्रशस्ति

१. वरिसाणसयचउक्के—(ग) ४७० । २. छाहत्तरदससएसु—(ख ग) १०७६ ।

२ प °हस्ता । ३ पं उत्सेधं । [११.१४] १ पं सप्त ।

शब्द-कोष

'अ'

अ–च ३.११ ६;५ १३ १७

अइ–अति १.१२ ४,८ १३ ९

√ अइक्कमंत–अति + क्रम् + शतृ० ८ ८ ८

अइकिण्ह–अतिकृष्ण ४.१३ १४

अइट्ठ–अदृष्ट १ ५ १८

अइमुत्तअ–(i) अति + मुक्तकः—स्वच्छन्द

(ii) पु० अतिमुक्तक (पुष्पम्) ३ १२ १२

अइमाइ–अतिशायी, मात करनेवाला १० १.९

अउव्व–अपूर्व ९ २ ४

अंक–अङ्क, आसन ८ १२ १२

अंकियंग–अङ्कित + अङ्ग १० १ १२

अंकुरिअ–अङ्कुरित ४.१९ १३

अंकुसिय–अङ्कुशित ४ १९.१५

अंकोल्ल–वृक्ष एवं पुष्प विशेष ५ ८ ८,५ १० ९

°अंग–अङ्ग ६ ११ ८,७.२ ८,९ ११ ८

अंगरक्ख–अङ्गरक्षक ३ ४.९,४ १२ १५

°अंगरुह–अङ्गरुहः, पुत्र प्रश० १७,३ ५ १०

अंगार–अङ्गार ६.६ २

अंगारपुंज–अङ्गारपुञ्ज ९ १५ १५

°अंगुलि–अङ्गुलि २ ५ १३,४.१३.३

√ अंच–अर्चय्, अंचवि ५ १.५

अंजण–अञ्जन वृक्ष ३ ९.१७,५.८ ७

अंजलि–अञ्जलि ८.७ ५;११.१.७

°अंत–अन्त २ ४ १

अंत–अन्त्र, हि० आत ४.३ २

अंत–अन्त, आभ्यन्तर ९.१६ ६

अंतड–अन्त्र, हि० आत ४ २ १७

अंतर–अन्तर १.४ ९

अंतरसुद्धि–अन्तरशुद्धि १० २०.१२

अंतरंग–अन्तरङ्ग, आभ्यन्तर उपादान १०.४.१

अंतराअ–अन्तराय (कर्म)

अंतराअ–अन्तराय, विघ्न २ १५ ८

अंतराल–अन्तराल ५ ११ १०,९.५.९

अंतरिअ–अन्तरित १०.१३.७

अंतरुअल–अन्त्रडी हि० आतें ६ १०.३

अंतेउर–अन्तःपुर ६.८.८,१ १९.१४;३.३ १४

अंतोघण–अन्तर्घन ८ १४ १०

अंथवण–अस्तगमन ८ ८ १४

अंध–अन्ध. २.२०.६

अंध–आन्ध्र. (देश) ९.१९.१

अंधय–अन्ध + क (स्वार्थे) ९.१३ १४

अंधल–अन्ध २ ६ ८

°अंधयार–अन्धकार ८ १५ ५

अंधारिय–अन्धकारित ६ ५ ४,१० २५.१०

अंब–अम्बा, मातः २ १७.२

°अंब–आम्र ४ २१.२

°अंबर–अम्बर, आकाश, १ १५.७,४ ८.१२,५ ६.७; १० १९ ६

अंबाएविय–अम्बादेवता, अम्बादेवी १.२.६

अंसु–अश्रु ४ ११ १,९.१०,१२

अकत्तिअ–अ + कार्तिक. ४ ८ १२

अकम्म–अकर्म ९ १५ ४

अकयवंगु–अविकृताङ्ग ७ १ १३

अकलकिअ–अ + कलंकित २ १४ ३

अकसाय–अकषाय ११.७ ७,११ ७ १०

अकहिज्जमाण–अकथ्यमान १.१ १५.

अकिट्ठ–अ + कृष्ट १ १३.६

अकित्ति–अकीर्ति ५ १३.२१.

अकुलीण–(i) अ + कुलीन

(ii) अ + कु + लीन ६ ५.२

अकुसल–अकुशल ११ ९.३

अक्क–अर्क, सूर्य ४.५.१.,५ १३.९

अक्ख–(i) अक्ष, रावणका एक पुत्र

(ii) अक्ष-बहेडा वृक्ष, ५ ८ ३४

√ अक्ख–आ + ख्या ४ १ ३,५ ४ ८,५ १३ ३३,

°इ ९.१५ १०;१०.१६.११

°ए ९.१६.८

अक्खय–अक्षय २.१३.४

अक्खय–अक्षत बिना टूटे सफेद चावल ७ १२ ५

अक्खयणिहि–अक्षय + निधि ३ १४ १९

अक्खयतइय–अक्षय + तृतीया ४.१४.२१

अक्खर–(1) वर्णमाला अक्षर

(ii) अक्षर—अंक संख्या २.१४.५;८ ३.१

अक्खाण–आख्यान ९ ५.१.

अक्खाणअ–आख्यानक १०.१२.९

अक्खिअ–आख्यात १ १५ ८,४.४ २,६.१ १७

अक्खिय–आख्यात ३.१०.६,५ २ १०

अक्खुहिय–अक्षुभित, अक्षुब्ध ४.२१ १५

अक्खयणिहाण–अक्षयनिधान ३ ८ ६

अखिल–अखिल १० १.१०

अखुहिय–अ + क्षुभित ४.२१ १९

√अगज्जर–अ + गर्ज् + इर (न.च्छोल्ये) २ ३.३

√अगण–अ + गणय, अगणय,

अगणयित्वा ५ ७ २६

अगणंत–अ + गणय् + शतृ

°हिं २.१० ९

अगलिय–अगलित ६ ३.१०

अगाह–अगाध १०.१७ ८

अगुण–(वि०) अ + गुण निर्गुण ४ १ १

अग्ग–अग्र २.१२.१४

अग्गअ–अग्रत. १०.१९ १२

अग्गए–अग्रत. हि० आगे. ४.४.१,५.१०.९,५.१३ १४

अग्गाहार–अग्रहार २.४ ८

अग्गिम–अग्रिम ८ ५ ७

अग्गिवत–अग्नि + मतुप् २.१.९

अग्गेय–आग्नेय ७ ९५

अग्गेसर–अग्रसर १०.५ १०

अघडिय–अघटित ८ ९.६

अचप्पिअ–अ (न्) + आक्रान्त, अनाक्रान्त ५.३.२

√अचयत–अ + त्यज् + शतृ ९.९.४

अच्चंभअ–आश्चर्य हि० अचभा १.१३ २,

अच्चग्गल–अति + अग्रल ८.१०.१६

अच्छ–(दे) अच्छा, स्वच्छ ४.१३ ९

√अच्छ-आस् °इ ५ १ ३१

अच्छहिं ३.१.६

अच्छर–अप्सरा १०.१५.३

अच्छरिअ–आश्चर्य ३.६.११

अच्छि–अक्षी, नेत्र ४.१७.८

√अच्छिज्ज–(1) आस् (कर्मणि) °इ ९.१० ४

अच्छिन्न–अछिन्न ९ ९.९

अच्छेरअ–आश्चर्य (कारक)

अच्छोडिअ–अवमुक्त: अवछोटित: हि०

छोड़ना २ १.७;११.६.१

अजंगम–अजङ्गम-अचेतन

अजिब्भ–अजिह्व २.२०.५

अज्ज–आर्य १.७.६

अज्ज–अद्य, आज २.१०.१०;४.१४:१२,७ ११.१०;

१०.१२.९

√अज्ज–अर्जय् °वि ९.८.१६

अज्जवभाव–आर्जवभाव ११ १४.४

अज्जवसू–आर्यवसू पु० २ ५ २

अज्जिआ–आर्यिका १०.२१.५

अज्जिय–अजित ३.९.१८,३.११.२

अज्जिया–आर्यिका ३.१३.१४;१०.२१.४

अज्जेणअ–अद्यतन ५.२ १०

अज्जुण–(1) अर्जुन पाण्डव (ii) अर्जुनवृक्ष ५.८.३१

अज्झाण–अध्यान २.८.९

अट्ट–आर्त्त ११.९.५

अट्ठभेय–अष्टभेद ११.१२.८

अट्ठम–अष्टम हि० आठवाँ १.१६.८;८.१६,१८

अट्ठवरिस–अष्टवर्षीय. ३.४.६

अट्ठसहस–अष्ट + सहस्र १.१२.१,६.१४.२०

अट्ठारह–अष्टादश हि० अठारह २.५.१०,१०.२३.१०

अट्ठिवाउ–अस्थिवात ३.११ ४

अडइ–अटवी १०.७.१;१०.१३.१०

अडयणा–(दे) व्यभिचारिणी स्त्री १०.१०.१०

अडवी–अटवी १०.७

?अडोहिय–अ + दोहित, मथित, अवगाहित ५.१० २

?अड्डवियड्ड–अर्दवितर्द, आडे, टेढ़े, ११.६.२

?अड्ढाइय–अर्द्धत्रिक, ढाई ११.११.११

अणउ–अ + नय अनीति ५ १३.८

अणंग–अनङ्ग ३.१२.१६,४.१३.३; ५.२.१४

अणंत–अनन्त २.२.१०;३.१४.१९

अणत्थ–अनर्थ ५.१३.७,९.१२.११

अणयचार–अ + नय + चार अनीत्याचार

५.१२.२४

अणवरय–अनवरत ५.१.२८;१०

अणसण–अन + अशन् अनशन २ २०.९,१०.२१ ८

अणाइ–अनादि ११ ५ ८

अणिच्च–अनित्य ११.१.५

अणिट्ठ—अनिष्ट २.२.८
अणिट्ठसंघ—अनिष्ट + संघ ४.५.८
अणिमिस—अनिमेष निर्निमेष ८.९.८
अणियच्छिय—अ + दृष्टः १.१.६
°अणिल—अनिल ६ ८.५
अणुअ—अनुज २.५.१०,२.८.७
अणुकारिअ—अनुकारी ५ १.२५
अणुग्गह—अनुग्रह १०.२०.१
√ अणुचिट्ठ—अनु + चेष्ट (विधिलिङ्ग)
°यउ ३.७.१६
√ अणुणअ—अनुनय् ४.१७ १
√ अणुणत—अनुनय् + शतृ ९.३.११
अणुदिट्ठय—अनुद्दिष्ट १०.२१.९
अणुदिण—अनुदिन २.८.४३,३.११.५
अणुपेहा—अनुप्रेक्षा ११.१५.१४
√ अणुमण्ण—अनुमोदय् °ण्णिवि ७.७.८
अणुमण्णिअ—अनुमोदित २.८.११,२.१२ ३
अणुमाण—अनुमान ११.३.७
अणुमेअ—अनुमेय १०.२१.९
°अणुराय—अनुराग ९.१७ ११,११.१.११
अणुरूव—अनुरूप १०.९.४
अणुलग्ग—अनुलग्न १ १०.२
अणुवच्च—अनु + व्रज् °वि २.१२.४
अणुवल—अनुबल, सहायक सैन्य ५ ४.१७
अणुविक्खा—अनुप्रेक्षा ११ १५.१४
अणुवेक्ख—अनुप्रेक्षा ११.३.१
अणुवेक्खा—अनुप्रेक्षा ११ १.४
√ अणुसंचअ—अणु + सञ्चय् °इ अणु
कमपरमाणु सचय ११.७.८
अणुसर—अनु + सृ °मि १.२ ६
°रेवि ९ ३.१३
अणुसासिउ—अनु + शास् + तुमुन् सन्मार्गं
प्रवर्तयितुम् (टि०) १ १०.१२.
√ अणुहर—अनु + हृ २.१६.१४,१० १४ १६
°हरत—अनु + हृ + शतृ ९.९ ११
अणुहरिअ—अनुसृत ४.१९ २२,९.३ २
√ अणुहव—अनुभव °इ २ १ १४
°हविवि १०.१७.१९
°हविअ—अनुभूत १०.१७ १७

√ अणुहुंज—अनु + भुञ्ज °हि ५.४.१८
°हुंजि—(विधि०) १०.१०.१६
अणूव—अन् + उप(म) अनुपम ४.१९ २२
°अणेय—अनेक १०.२६.३
अण्ण—(I) अन्य १.२.१२;२.१६.५;४ १४ १०;
६.८.१०,९.८.७, (II) आत्मभिन्न ११ ५ १
अण्णत्ताणुविक्ख—अन्यत्वानुप्रेक्षा ११.५.१
अण्णत्थ—अन्यत्र १० १०.५
अण्णवण्ण—अन्य + वर्ण १ २ १४
? अण्णहि—अन्यत्र! १०.२५ ५
अण्णहो—अन्यस्य ३ ६ ८
अण्णाण—अज्ञान ८ ३ ७;११ ८ ७
अण्णामिज्जअ—आ + नम् (कर्मणि) °इ १ ७.८
अण्णालाव—अन्यालाप, अंन्योक्ति २ १२ ७
अण्णासिरी—अन्या + श्री ४ ८.११.
अण्णेक्क—अन्य + एक १.२ ८
अण्णे तहिं—अन्ये तत्र ११ १२.८
अण्णेसअ—अन्वेषय् °वि १० ११ ८
अण्णोण्ण—अन्योन्य ७.६ २,९.१८ ८
अतित्त—अतृप्त °उ १ ११.४
अतिव्व—अतीव्र -२.३.३
अत्थ—अर्थ, धन ३.१४.२२,८.६.१३,१०.३ ७
अत्थ—अर्थ-पदार्थ २ १ ८
अत्थ—शब्दार्थ, भावार्थ ७ १.४,८ २ ८
अत्थइरि—अस्त + गिरि-अस्ताचल ६ १० १४
अत्थंगय—अस्तगत ८ १४ १३
√ अत्थंत—अस्त गम् + शतृ ५.७ ३,८.१३ ९
अत्थछेअ—अर्थछेद ९ ४.१०
अत्थवण—अस्तवनम् ८.९.१४;१० २४ ४
अत्थवणहो—अस्तवनस्थ ८.१४.४
अत्थसिहर—अस्तशिखर ८.१४ ६
अत्थाण—आस्थान, सभा ५.१.७,५ १२.८,७ ६.३६
अत्थाणुरूव—अर्थ + अनुरूप ७ १ ३
अत्थात्थि—अर्थ + अर्थी ८ ८.९
अत्थि—अस्ति १ ४ १,३ १० १०
अत्थिजण—अर्थीजन ३ ३ ११
अथाम—अ + स्थाम ४.२१.१६
अदवक्किय—(दे) निर्भय ९.१४ १४
अदीण—अदीन १० २६.९
अद्ध—अर्द्ध ७.१०.६

अद्धंजिअ–अर्ध + अञ्जित ४ ११.९
अद्धक्खर–अर्द्ध + अक्षर ९.१३.११
अद्धरत्ति–अर्द्धरात्रि ९.३ १०;९.११.१६,१०.९.१
अद्धासण–अर्द्ध + आसन ५.१.५
अद्धुव–अध्रुव ११.१.१३
अद्धेंदु–अर्ध + इन्दु ४.१३.४
अधीर–अधीर १०.२६.७
अन्त–अन्त १०.१२.१०
अपाउस–अ + प्रावृष ४.८ १३
अपूर–अ + पूर ५.५ १२
अपेअ–अपेय १ ६.१०
√अप्प–अर्पय् °इ १.११.२०
अप्प–आत्मा, आत्मनः २.७.१,६ ५.२,
९ ११.६,११ ६.९,११.८ ९
अप्पउ–आत्मन. ८.१४.१५,९.१.१३,
९.१४.१२
√अप्पअ–अर्पय् °इ २ १९.९,५ ४.४,
अप्पिवि १०.२१.३
√अप्पत–अर्पय् + शतृ ८.१४.९
अप्पाण–अप्पाण, आत्मनः १० १३ ४,११ ७ ७
११ १५.२
अप्पणअ–आत्मन १० १८ ९
अप्पणत्त–अपनत्व १०.२३.५
अप्पमाण–अ + प्रमाण, असीम ५.३ ३,५ ४.१
अप्परुचिय–आत्मरुचित १०.२३.६
अप्पाणअ–आत्मनः ९.५११; ९.६९, ११.३.७
अप्पिअ–अर्पित ९.१३ ३,१० १०.१
अप्पिट्ठ–अस्पृष्ट १०.२.८.
अप्पिय–अप्रिय ९ १३ १३
अप्फालिअ–आस्फालित १ १४.५,७ ८ ८
अबल–(तत्सम) बलहीन ११ ७ ५
अबाहि–अबाध, निर्बाध ३.१० ४
अब्बुय–अर्बुद, आबू पर्वत ९ १९.६
अब्भतर–आभ्यन्तर ३ २.४,७ ११.१२
१०.२३ १०
अब्भतंरिअ–आभ्यन्तरिक १० २३.८
अब्भत्थण–अभ्यर्थना १.२.६,३ ९ ५
√अब्भस–अभि + अस् °इ २.२०.२,
अब्भसियअ–अभ्यस्त ४.९ ६ ;४ १७.१९
अब्भहिअ–अभ्यधिक ९.६ ८

अब्भासु–अभ्यास १.२.४
√अब्भिड–(दे) सामने आकर भिड़ना
°इ ६.१.८,६.१४ १०,७.३.४
अब्भुत्थाण–अभ्युत्थान ८ ९.३
√अभव–अ + भू, अभूत. ३.५.११
°अभाउ–अभाव १०.३.६
°अमय–अमृत १०.१.९
अमयमहु–अमृतमधु ९ १.९
अमर–(तत्सम) ३.३ ३;४.४.७
८.४.१४,११.७.१
अमरगय–अमर + गज-ऐरावत १.११ ३
अमरालय–(तत्सम) स्वर्ग ३ १.५
°अमरिंद–अमरेन्द्र ४.१.५
अमल–अ + मल, निर्मल ११.१२.११
अमाण–अ + मान. २.१३.१०;११.८.७
अमारिअ–अ + मारित ७ ६ ३६
अमिय–अमृत ८ २ १६
अमुक्क–अ + मुक्त, युक्त ३.१० ३
√अमुणंत–अ + ज्ञा + शतृ ३ १.१३; ७ ११ १३
अमुणंति ९ १३ १
अमुणिय–अज्ञात ५ १४ ११,७ ६ २३
अमेह–अमेघ १० १७ ८
अमोहड–'अमोघ', प्रचुर १ १३.७
अम्म–माता हि० अम्मा ९.२७ ६
अम्ह–अस्माकम्, नः ५ ११.१५,७ ३ १०;७ ३ १४
अम्हाण–अस्माकम् ७ ३ ८
अम्हाम्ह–हमारा ९ १५ १२
अम्हारिस–अस्मादृश २.१५ १९;४ १८ १५
अयरु–अगरु ९.१२ २
अयस–अयश, अपयश ५ १३ १७
अयाण–अजान, अज्ञानी १ १८ ११,१०.२६.७
अयाल–अकाल १ १३.३,४ ८.२३
अरहंत–अर्हन्त ४.४ ११
√अरहंति–अ + रह (दे) + शतृ °ई (स्त्रियाम्)
१० १८ ७
अरिमित्त–अरि + मित्र २ २० ४
अरिसंकड–अरिसंकट ५ ४ ५
अरुण–(तत्सम) अरुण २ १४ ७
°अरुणच्छाअ–अरुण + छाया १ ११ १५
°अरुणत्त–अरुणत्व ६ ६ १

अरुहणाह–अरहनाथ, अर्हन्तनाथ ३.१३.७
अरुहभत्त–अर्हन् + भक्त १.११ ८
अरुहयास–अरहदास (श्रेष्ठि) ४.१७,४.३ १०,९ १३ २;१०.२१.३
अलंकरिय–अलङ्कृत २ ५.२
अलंकार–अलङ्कार ४ १२ १२
°अलंकिअ–अलङ्कृत १.१६.२;३.८ ३, °य ४ ८.१; ५ २ ८
अलंभिरी–अ + लभ् + °इरी (ताच्छील्ये, स्त्रियाम्) ४ २१ ९
√अलज्ज अ + लज्ज् °इर (ताच्छील्ये) हि० लज्जाहीन १० १५.५
अलद्ध–अलब्ध ७ ६ १८
अलय–अलक हि० अलके १ ११ १६
अलयावलि–अलक + अवली ४.१३ ३;५ २.१७
अलस–आलस्य १० २३.४
अलि–(तत्सम) भ्रमर ८ १४.१७,९ ९ २
अलिउल–अलिकुल १ १७.६
अलिमाला–(तत्सम) भ्रमर पङ्क्ति १.११ १६
अलिय–अलीक ५.१३.७
अल्लय–आर्द्रक हि० अदरक ७ १.२
अल्लहज–आर्द्रचणका: गीले चने (टि०) ३.१२.१५
अवइण्ण–अवतीर्ण १.८ ८,४ १६.८
°इण्णी ४ १४ २३
अवंती–अवती ९ १९.८
अवक–अवाक् १० २५ ९
अवक्क–अवक्र ११ १४ ४
√अवगणअ–अप + गणय् °हि ५ १३ २५
°इ ११.१.१२
°णिवि ९ ६ ८
अवगण्ण–अप + गणय् (विधि) °हि २ ११ ११
अवगण्णिय–अवगणित, अवमान ७ ६.२६
√अवगम–अव + गम् (विधि) °हि १० १० १५
अवजस–अपयश ९ ४.६
अवज्ज–अब्ज (देश) ९.१९.९
अवड–कूप ९ ७ १६
√अवतस–अप + त्रस् °इ ४.२२ ११
अवत्थ–अवस्था ७ २.१६,१०.५.१
अवद्ध–अवद्ध १०.५ १
√अवमाण–अप + मानय् °इ (विधि०) ५ १३ २४

अवमाणिय–अपमानित ७.६ २१
अवमोयर–अवमौदर्य १०.२१.१०
√अवयरंत–अव + तॄ + शतृ ५.२.३
°अवयार–अवतार १०.१.७
अवयास–अवकाश २.१ ८
अवर–अपर, हि० और २.१८.१४,२.२०.३
अवर–अपरा (स्त्री०) ४ ११ १५,८ ६.३,९ ८.२०
अवरह्ण–अपराह्ण ८.१४.२
अवरत्तअ–अनुताप १०.१४.१४
अवरिक्क–अपर + एक ९.६.३
अवरुंडण–(दे) आलिङ्गन २ १४.९
√अवरुंड–अवरुण्ड, आलिङ्गय्, °डेवि आलिङ्ग्यित्वा ९.४ १५
अवरुप्पर–परस्पर २.२.२,५.२ ३
अवरोप्पर–परस्पर १.१५ ८;२.४.११
अवलंबिय–अवलम्बित ६.९.३,७.११.७
अवलोइअ–अवलोकित ९.८ ७
√अवलोय–अवलोकय् °यइ ९.१.७;१०.४.१०; ११ ९.१
°यत ९.१९.१७,४.१२.१६
°यहि (विधि०) १०.१५.६
°यहु, °यहो (विधि०) ८.९ १३;१० ११.८
अवस–अवश्य १.११ ४,३.६.७
अवसद्द–अपशब्द १.२.७
अवसप्पिणी–अवसर्पिणी, कालचक्र ३.१ १०,४ ३. १५,११ ११.७
अवसर–(तत्सम) ६.३.५,७ ३.११
अवसाण–अवसान २.२०.९;९ ५.१
अवसार–अपसार, पीछे हटना ५ १४ २२
अवहत्थ–देखें . टि०,ण . ५ १४ २१
अवहारण–अवधारण १० २२ ३
अवहि–अवधि (ज्ञान) २.२ ७;३ ५ १
√अवहुज–उप + भुञ्ज °जहि (विधि) १०.५.५
अवहेर–अपहार, अपहरण ९ ५ २
अवाणअ–आपानक ४.१७ १५
अवि–अपि १ ५ १२
अविग्घ–अविघ्न १ १८ ७
अविज्ज–अविद्या ३ ८ १३
अविणट्ठ अ + विनष्ट ८.४.१२
अविणयवत–अविनय + मतुप् १.७ १

अवितत्तअ-अवितृप्त (वेश्याजन) ९.१२ ८
अवियारिअ-अविचारित १० ४.७,१०.७.११
अविरुद्धअ-अविरुद्ध, निर्दोष १०.२०.१०
अविलंब-(तत्सम) ३.८.१३
अविलक्खण-अविलक्षण १०.४.४
अविवेई-अविवेकी ७.८.१४
अविवेयहो-अविवेकस्य ९.२.७
अविसाय-अविषाद ११ १५.३
अवहित्त-अ + विभक्त २.५.९
अवेक्ख-अपेक्षा ९.१२ १७
असइ-असती (वेश्या) १०.१०.७;१०.१८ २
असंकिअ-अशङ्कित ८.२ २९
असंभव-असम्भव १० ३.६
असक्क-प + शक्य ५ १३.३१,६ १ १२
असगाह-असद् + आग्रह ५ १३ ४
असज्झ-असाध्य ९.१४ ४,१० १५.९
असम-अ + सम, असमान ५.३.१
असमत्त-असमाप्त ८ ९.७
असमत्थ-असमर्थ ८ २.५
असरण-अशरण ११.२.१
असराल-बहु, अपर्यन्त
असरिस-असदृश ४.२२.२६
असवार-अश्व + वार, घुड़सवार ६.५.७
√असहंत-अ + सह् + शतृ २ ५.१५; ५.१.१६, ६ ४.१०
°ि (स्त्रियाम्) ८.१४.७
असहमाण-असहमान ९.७.१०
असहिय-अ + सह्य ९.७.२
असार-(तत्सम) सारहीन ९.८.८, १०.४.७
असारय-(i) अ + सार (ii) अ + शारदीय ४.८.१९
°असि-अस्ति ६.१.२
असिघाय-असि + घ त ६ १.१६
असिद्ध-असिद्ध, अनुपलब्ध ९ ४.१२,१० १४.१५
असिद्धअ-असिद्ध, अप्राप्त ९.१०.२२
°असिधार-(तत्सम) असिधार ६.७ ३
असिवसण- ६.१४ १५
असुइ-अशुचि १०.१७.७, ११.६.१,११.६.८
असुत्त-अ + सुप्त १०.३.४
असुद्द-अशुद्ध १०.२.८
असुह-अशुभ १०.४.१४, ११.७.३
असुहंकर-अ + शुभंकर ११.५.७
असुहाविय-असुखापित, हि० स्वादरहित १.७.६
असेस-अशेष २.१२.११, ६.१.१६,१०.२४.३
असोय-अशोक (वृक्ष) १.१६.१२; ४.१७.४
अह-अथ ३.१२.१८, ९.८.६; ११.८.५
अहं-अहम् १ १८.१, २.१६.३
अहमिंद-अहमिन्द्र १०.२४.१२
अहमिय-अहम् + इदम् १०.५.१२
अहम्म-अधर्म १०.५.४; १०.१०.१३
°अहर-अधर १.११.१५; २.१६.४,४.१७.११
अहर-(i) अधर (ii) अधम ९.१२ १२
अहरत्त-अधरत्व ११.६.७
अहरमुद्द-अधरमुद्रा ४.१३ ७, ८ १.१५
अहरबिंब-अधरबिम्ब २ १५ १५,५.१३.२०
अहरल्ल-अधर + उल्ल (स्वार्थे) २ १४ ७
अहरोट्ठ-अधर + ओष्ठ ४.२२.१०
अहरोवाहि-अधर + उपाधि-सन्निधि, नैकट्य १.१०.४
अहरोट्ठ-अधर + ओष्ठ ९.१८.५
अहल-अफल ८.१४.४
अहलीकअ-अफरी + कृत १.११.१६
अहव-अथवा ४.१८.१४; ८.१.४, १०.२३.३
अहि-(तत्सम) अहि, सर्प ४.१०.१३; ८.७.७
अहिअ-अधिक ९.१०.२१; १०.१२.८
अहिणंदिअ-अभिनन्दित २.१३.१
°दिउ ४.४.९
√अहिणेउ-अभिनय् + तुमुन् ८.२.१०
°अहिट्ठिअ-अधिष्ठित ४.१३.१९; ५.१.३४
अहिभवण-अहिभवन, नागमंदिर ३.१३.३
अहिमार-वृक्ष विशेष ५.८ ६
अहिमुह-अभिमुख ७.१०.१८
अहिय-अधिक ८.२.१
अहिराम-अभिराम १०.१.८
√अहिलस-अभि + लष् °इ १०.१४.१५
°सिवि ९.७.१२
°हि ५.१४.३
√अहिलसंत-अभि + लष् + शतृ ९ १०.२१
अहिलास-अभिलाषा १ ५.११, २.७ ५, १०.७.१०
°अहिलासी-अभिलाषी ४ १४.४
अहिसारिआ-अभिसारिका ८.१५.१
√अहिसिंच-अभि + सिच् °इ ४.१९.७

अहिहाण-अभिधान, नाम ३.५.११, ३.११.२१, १०.१६.१

अहो-(तत्सम) आश्चर्यार्थे १.१३.१

[आ]

आइअ-आगत १.११ १०, ६.२.१

आइच्चदंसणा-(स्त्री०) आदित्यदर्शना ३.१४.१

आइट्ठ-आदिष्ट ५.६.३

आइण्ण-आकीर्ण, सङ्कीर्ण १०.१९.१६

आइय-आगत ८.४.१३

आउ-आगतः २.१३.२; ६.११.६, १०.८.१४ १० १७.२, ११.३.३

आउंचिय-आकुञ्चित ८ १३ ३

√ आउच्छ-आ + पृच्छ् °इ ३.५.५

°च्छेप्पिणु ८.७.२

आउण्ण-आ + पूर्ण ४.६.५

आउत्त-आयुक्त (अधिकारी) ५.१.१०

आउत्तमंग-आ + उत्तमाङ्ग ९.१८.५

°आउल-आकुल ५.१.२०, ५.६.१७

°आउस-आयुष्य ३.१.६, ३.५.८, ८.२.२६, ११.१.६

आउसमअ-आयुष्यमय २.२०.१०

आऊरिय-आपूरित १० २४ १

आएस-आदेश ३ ४.८, ५.२.२२, ८.७.३

आएसिअ-आदेशित १.४.९, ५.१२.१०

आकरिसण-आकर्षण ९ १२.९

आगअ-आगत १०.१८.६

आगब्भ-आ + गर्भ १०.३.१

आगमण-आगमन २.१०.१०, ११.७.२

आगया-आगता ९.१७ ७, १० १८.११

आगुरु-(तत्सम) पूज्य, गुरु-स्थानीय ९.१७.१३

आजाणु-आजानु ९.१८.२

आढत्तिअ-आरब्ध ३.९ १०

√ आण-आनय् °इ ३ ९.१४

°वि १०.१४.९

°हि (विधि०) ३.९.१२

आणि (विधि०) १० १५.८

आणिज्जइ (विधि०) १०.१६.८

आणंद-आनन्द ४.१.१४,४ ८.४

आणंदण-आनन्दन-आनन्ददायक ४.६ १४

आणंदतूर-आनन्दतूर १.१४.५

°आणंदयर-आनन्दकर ८ ४.६

°आणंदयरी-आनन्दकरी (स्त्रीयाम्) ३.३.६

आणंदरूअ-आनन्दरूप ९.२ १२

°आणंदवद्धावण-आनन्द + वर्द्धापन-बधाई ३.४.३

आणंदिय-आनन्दित ४.६.७

आणयर-आज्ञाकारी ३.३.१३

आणत्त-आज्ञप्त ४.१६.८,५.१४.८

आदण्णअ-(दे) व्याकुल ९.९.१४

आ + नमसीय-नमस्कृतम् ९.१७.५

आपंडुर-आ + पाण्डुर, समन्तात् पाण्डुर ४.७.४

√ आपीड-आ + पीडय् °इ ४.१७.११

आभिट्ट-(दे) भिडना ६.१२ ९

आमंतिय-आमन्त्रिता (स्त्रियाम्) १०.२५.४

आमिस-आमिष ९.५.४,९.११.४,१०.१०.९

आमुक्क-आ + मुक्त ५ ११.१३

°आमोय-आमोद ५.१ २२,७.१२ २;८ ५.६.

आय-आगता (स्त्री०) ८.५.५.

आय-आगत ६.१०.७

आयअ-आगत १० १९.६,

°उ ४.२.४,७ १३.१०

आयउ-एषः, यह ९.६.११

आयंबिर-आताम्र ८.१३.७

आयड्ढिय-आकृष्ट ४.६.१

√ आयण्ण-आकर्णय्् २ ४ ५,४ ३ १

°इ ९.३.३

आयण्णवि ९ ७ १,

आयण्ण (विधि०) १० ६ १

आयण्णहि (विधि०) ९.१०.१५, १०.४.५

°णियई (आत्मने०) ४ ७ १३

आयत्त-(तत्सम) स्व + आधीन ९ १२ १,१०.१६ ४

आयम-आगम ३.९.१९

आयर-आदर १.७.११,९.१२ १८,१० २३.२

√ आयर-आदृय् °इ १०.२०.५

आयरिय-आचार्य २ ८ ९,२ १७ ५

आयरियपरंपरा-आचार्य-परम्परा प्रश० ५

आयहु-अस्य, एतस्य ५ १२.१९,

°हो २.१८ १,५ १२.२१

आया-आगता (स्त्री) १० ९ ४,१० २५ २

°आयार-आकार, समान ४.८.८

आयार–आचार ८.८.४
आयास–आकाश २.१.६
आरडिय–आरटित ७.८.९
आरणाल–आरनाल, कांजी, साबूदाना ३.९.१०
आरण्ण–अरण्य १०.७.६
आरत्त–आरवंत ४.२२.११
आराम–उद्यान ५.३.१०
आराहण–आराधना १०.२६.११
आरिस–ईदृश ९.१६.७
आरिसकहा–आर्षकथा ८.२.१
°आरुट्ठ–आरुष्ट ७.६.४
आरूढ–(तत्सम) आरूढ ११.८.३
आरोयतणु–आरोग्यतनु १०.१.१६
आरोह–(तत्सम) सवार, महावत ६.११.५
°नर ६.११.९
आलत्त–आलप्त ९.२.३
√आलावअ–आ + लापय् °इ ४.१७.१८
आलावणि–आलापिनी, वीणा ९.९.११
°आलिंगण–आलिङ्गन ९.१८.८
आलिंगिअ–आलिङ्गित ४.१७.२
√आलिंगिवि– ९.१२.१८
आलीढ–आसक्त ४.५.१३
आलोइणिविज्जा–अवलोकिनी विद्या ५.२.१०
√आलोइयंत–आलोचय् + शतृ ३.१२.१
आलोयण–आलोचन ११.९.७
√आव–आ + या (आना) °इ २.१४.५
°उ (विधि०) ९.१७.१४
आविवि १०.१४.५
√आवंत–आ + या + शतृ ५.१२.११,६.११.२; १०.११.३
आवइ–आपत्ति ८.७.१७
आवज्जण–आवर्जन, उपयोग ११.१४.१
°आवज्जिय–आपादित, अर्जित २.५.१२,४.९.४, १०.६.६
आवट्टिय–आवर्तित ६.९.२
आवण्ण–आपन्न ५.१.३
°आवद्ध–आवद्ध १०.२६.३
√आवलग्ग–आ + वल्, आवग्गिवि ४.२२.१४
√आवह–आ + वह् °ई ७.६.२३
आवाणअ–आपानक, मद्यगृह या चषक ४.२.७
आवास–(तत्सम) १०.१४.२
आवासिअ–आवासित ५.१०.२५
आविय–आगत ७.४.१६
आस–आशा ८.७.१६
आसअ–आश्रय (स्थान) १०.२०.११
आसंक–आशङ्का २.१६.५
आसंकिअ–आशङ्कित ५.१.२१
√आसव–अश्नवस्, या आ + धूप् आसंवग्गि ६.१२.८
आसकअ–आशाकृतः ९.७.१६
आसण्ण–आसन्न, निकट ३.१३.६,१०.१८.५
आसत्ति–आसक्ति १.१०.४
आसत्थाम–(i) अश्वत्थामा
(ii) पीपलका गाछ ५.८.३२
आसन्न–(तत्सम) ९.१३.१२,१०.१८.२
आसम–आश्रम १०.१९.१५
√आसर–आ + श्रो °रिवि २.२०.९
°रेवि ९.१४.३
आसव–आसव ११.८.१
आसवार–अश्व + वार, हि० सवार ४.२१.७
आसा–आशा १०.१०.१०
आसाइय–आसादित, प्राप्त १०.१.१४
आसापास–आशापाश १०.२२.३
आसासियअ–आश्वासित ७.४.१८
√आसि–आसीत् ५.१३.१९;११.१.११
आसिय–आश्रित ११.९.२
आसीण– आसीन १०.२४.२
आहंडल–आखण्डल, इन्द्र २.४.७
√आहण–आ + हन् आहणेइ ६.१०.९
°आहय–आहत ८.७.१२
√आहर–आ + हृ °रिवि १०.१२.१०
आहरण–आभरण ४.८.५;११.१४.३
आहार–(तत्सम) २.१२.३
आहास–आ + भष् °इ २.१८.८,१०.२५.३
आहीर–आभीर (देश) ९.१९.४

[इ]

इउ–(अद०) इदम्, अयम्, इति २.२०.८,५.११.१५; ६.३.७
इंद–इन्द्र १०.२४.१०

इंदगोवय–इन्द्रगोपक ४.१८.६
इंदनील–इन्द्रनील ३.३.१०
इंदसमाण–इन्द्रसमान ३.१०.५
इंदाएस–इन्द्र + आदेश १.१६.३
इंदिंदिर–भ्रमर ८.१३.६
इंदिय–इन्द्रिय ३.९.२, ८.८.१३, १०.२०.१३
इंदियगिद्धि–इन्द्रियगृद्धि ११.१४.७
इंदियदप्प–इन्द्रियदर्प ३.६.२
इंदियदवण–इन्द्रियदमन २.१८.३
इंदियफडाल–इन्द्रिय + फणा + ल (स्वार्थे) ३.७.१३
इंदियवित्ति–इन्द्रियवृत्ति ११.८.२
इंदियविसय–इन्द्रियविषय २.२०.३
इंदीवर–(तत्सम) १.६.७
इंदु–(तत्सम) ४ ९.१
इंधण–इंधन १०.१३.११
इक्क–एक १.५.१७, ६.२.१
इक्कल्लअ–अकेला १०.२६.११
√इच्छ–इच्छ् इच्छमि १.३.७
इच्छिय–इच्छित ३.९.११, १०.६.१०
इट्ठ–इष्ट २.५.१५, ९.१०.२१, ९.१७.११
इट्ठच्छर–इष्ट + अप्सरा २.२.७
इण–इदम् ८.१२.१
इत्थ–अत्र १.६.२
इत्थइ–अत्रैव ९.१५.१३
इत्थिरज्ज–स्त्रीराज्य (देश) ९.१९.१२
इब्भ–इभ्य, धनवान ३.१०.१२
इमं–इदम् २.३.१
इय–इति, एव ७.१२.१०, ९.४.७, ११.१५.१०
इयर–इतर १.४.१०, ४.१४.१४
इयरा–इतरा (स्त्री०) ८.११.१
इयराउत्त–इतर + आयुक्त ५.१.१०
इव–(तत्सम) ८.३.३
इहु–ईदृक्, (अप०) एतत् ३.१.२, ७.३.७

[ई]

√ईस–ईर्ष्य्, ईसाइवि ८.१४.७
ईस–ईर्ष्या ९.१३.२
ईसर–ईश्वर, समृद्ध १ ९.१०
ईसालुअ–ईर्ष्यालु + क (स्वार्थे) ३.११.५
ईसि–ईषत् १०.३.८
√ईह–ईह्, °इ ८.११.१२;
°हि ९.१५ २
√ईहंतिय–ईह् + शतृ °तिय (स्त्रियाम्) १.१०.५

[उ]

उअय–उदय ११ ९.७
उअयागअ–उदय + आगत ९.१ १८
उइय–उदित ८.१५.४; १० १८.१४, ११.९.२
उंट–उष्ट्र (कथा) १०.७ १; १०.१८.२
उंबर–उदुम्बर, वृक्ष विशेष ४.२१ २, ५ ८ १३
उंस–ओस १० ७.९
√उक्कंकसंत–(दे) उक्कक + शतृ, धनुष पर डोरी चढ़ाते हुए ६.७.१०
उक्कंठिअ–उत्कण्ठित ७.१२.१८
°उक्कंति–उत्क्रान्ति १ ७.९
उक्कत्तिय–उत् + कर्तित ५.८ २६
√उक्कम–उत् + क्रम °वि ६.७.८
उक्करिसिय–उत् + कर्षित १ ८ ५
उक्कीरिय–उत्कीर्ण २ १५ १
√उक्कीरअ–उत् + कीरय् °मि, हि० उकेरना ८ ८.११
उक्कुक्किरिय–उत्क + उत्क + कृतः ऊपर उठे हुए ४ १३.१२
√उक्खण–उत् + खन् °इ, हि० उखाड़ना ५ ५ १
उक्खय–उत् + खात ५.११.१३
उक्खित्त–उत् + क्षिप्त, उखाड़े हुए ५ १४.१
°उक्खेव–उत्क्षेप ८ १३.४
उक्खेविअ–उत् + क्षेपित ७ १०.१५
उग्गअ–उत् + गत ५.७ ४; ८.१३.११
उग्गंठिय–उत् + ग्रथित खुले हुए ९ १८ ४
उग्गय–उद्गत १ १७ ७
उग्गामिअ–उद् + गमित ६.४.८
°उग्गार–उद्गार ९ १२ २
उग्गिण्ण–उत् + गीर्ण, उद्गीर्ण ५.१४.१०
√उग्गिरंती–उत् + गृ + शतृ °ी (स्त्रियाम्) १.५.४
√उग्घाड–उद्घाटय् °इ ९ ८.२०
उच्चंत–(दे) ऊँचे उठाये हुए ७ ६ १५
उच्चत्तण–उच्चत्व, उत्सेध ११.१० ११
√उच्चल–उत् + चल् °इ, हि० उछलना १.९.३

√उच्चलंत–उत् + चल् + शतृ ४ २१ ११
√उच्चर–उच्चारय्, उच्चरेवि ९.१७.४
√उच्चाअ–उच्चय् °इवि ६.१४.७;
°यवि ७.११.२
उच्चाइय–उच्चायित, ऊपर उठाया हुआ ४.२०.८
√उच्चारय–उत् + चारय् (कर्मणि) °रिजइ २.४.९
उच्चारिय–उच्चारित १.१७.८
उच्चालिय–उत् + चालित ५.४.१०
√उच्चिण–उत् + चि, उच्चिणंति (बहु व०)
८.१५ १२
उच्चेडिय–उच्चाटित ६.४ ६
√उच्छक–उत् + चल् °इ ६.५ १
√उच्छलंत–उत् + चल् + शतृ ९.९ १२
उच्छलिअ–उच्छलित ५.६.१७
उच्छव–उत्सव ४.८ १०
°उच्छहिय–उत्साहित ७.६.११
उच्छाह–उत्साह ७ १२.१०
°उच्छाहमण–उत्साह + मनस्, उत्साहितमन ३ ५ ३
उच्छाहिअ–उत्साहित ५.८ ३८
उच्छु–इषु, बाण ३.१०.१४
उच्छु–इक्षु ५.९.१७
उच्छेह–उत्सेध ३.१ १२
उज्जल–उज्ज्वल १.१४ ३
उज्जाण–उद्यान ३ १२.२१,८.४.१३;१०.२२.६
√°उज्जाल–उत् + ज्वालय् °इ ८.८.४
उज्जीविअ–उज्जीवित ७.४.१७
उज्जोइअ–उद्योतित १.१५.९
उज्जोत्तिय–उद् + योक्तिता., जोत उतार दिये गये
५ १०.२०
√उज्जोयंत–उद्योतय् + शतृ ३.१३.३
उज्झाअ–उपाध्याय १० ५.१०
°उज्झिअ–उत्क्षिप्त ९ १२.११,१० २०.५
√उट्ठंत–उत् + स्था + शतृ ५.१४ ८
उट्ठचम्म–ओष्ठचर्म ९.१.१०
उट्ठाविअ–उत्थापित १० १३ ६
उट्ठिअ–उत्थित ३.७ ४,६.४.१०
√उट्ठिउं–उत् + स्था + तुमुन्, उत्थातुम्
४.२१.१२
उट्ठिय–उत्थित ५.६.१६;५.१४ ९
√उड्डंत–उत् + डी + शतृ ६ ७ २
√उड्डाव–उद् + डापय् °इ, हि० उड़ाना २ ७.५
उड्डिअ–उड्डित १०.१८ २५
√उड्डिज्ज–उत् + डी °इ (कर्मणि) ९ ५ ८
√उड्डी–उद् + डी, उडना °इर (ताच्छील्ये) ५.७.६
उड्डेविणु ७ १०.२२
उण्णइय–उन्नयित, उदितः ७.९.९
उण्णामय–ऊर्णामय २.१०.५,८ ११.३
उण्णाह–(दे) तीव्र प्रवाह, बाढ ९.१०.१
उण्ह–उष्ण १०.१५.६
उण्हविय–उष्णापित, ऊष्णीकृत ८ १३.५
उत्त–उक्त १०.८ ४
उत्तमंग–उत्तमाङ्ग, शिर ५.१.१७
उत्तमखम–उत्तम क्षमा ११.१४.२
√उत्तर–उत् + तृ, उत्तरेवि ७ १३.५;
°रइ १०.१०.२
°रिवि १०.२०.७
√उत्तार–उत् + तारय् उत्तारमि १०.९.१२;
°रहि (विधि०) ९ १०.११
उत्तरिअ–उत्तरित, उत्तीर्ण १०.१० २
उत्तारिय–उत्तारित ७.८.१
उत्ताल–उत्ताल, हि० उतावला ५.२.११
उत्तालिया–उतावली (स्त्री०) ४.११.९
°उत्ताविय–उत् + तापित ५ १०.४
°उत्तिण्ण–उत् + तीर्ण ५.११.२१
उत्तोडिय–(दे) उत्तिडित, बूद-बूंद कर फैली हुई
७.७.११,५.७.२१
√उत्थर–अव + तृ °इ ५.१४ १९
उत्थरिय–आक्रान्त ७ ८ ६,
उदिट्ठअ–उद्दिष्ट–कथित ९ ४.१३
उद्दंड–उद्धत ४ २०.११
°उद्दाम–उद्दाम, ऊंचे स्वरसे ४.८.३
°उद्दामइ–उद्दाम + मतुप् (स्त्रिय म्) ४.५.१८
उद्दिट्ठअ–उपदिष्ट १० २.५
उद्दित्त–उद्दीप्त १.१८ १०
उद्दीविय–उद्दीपित ४ १५ २०
°विअ ७ ४.१७
°उ स–उपदेस, कथन प्रश० २०
उद्देस–उद्देश्य, प्रदेश ७.४.३
√उद्देस–उपदेशय् °हि (विधि) १० १४ ८
उद्ध–उर्ध्व ५ १४.१२

उवयार–उपकार २.८.६
उवर–उपरि, हि० ऊपर ७.६.३६
उवर–उदर ९.३.१२
उवरि–उपरि, हि० ऊपर १.९.४,९.३.१,४.५.२५
उवरिम–उपरिम ११.१२.१
उवरिल्ल–उपरि + इल्ल (पष्ठ्यर्थे), हि० ऊपरका ११.१२.६
°उवलंभ–उपलम्भ, उपलब्धि ८.७.१३,१०.५.३
उवलभ–उपालम्भ २.१६.९
√उवलंभइ–उप + लभ् °इ ९.१३.७
उवलक्खिअ–उपलक्षित १.३.६
√उवलक्ख–उप + लक्षय् °हि (विधि) ७.१३.९
°क्खिवि १०.८.८
उवलद्ध–उपलब्ध ९.१७.१५
उववण–उपवन ३.५.२;७.१३.१५;८.३.६
उववण्ण–उपपन्न, प्रश० २
उववसिअ–उपवासित २.१५.७
उवविट्ठ–उपविष्ट ५.८.२८
√उवविसंत–उप + विश् + शतृ ५.१.२१
उवसग्ग–उपसर्ग १०.२५.४,१०.२६.९
उवसप्पिणि–उत्सर्पिणी (कालचक्र) ११.११.७
√उवसम–उप + शमय् °इ २.१८.४
उवसममण–उपशम + मनस्, उपशान्तमन ३.९.१५
उवसामण–उपशमन ८.१०.१४
उवसामिअ–उपशामित ६.५.११
उवसाव–उपशमय् °मि २.८.१०
√उवसावअ–उपशमय् °वमि ८.६.१०
उवहसिअ–(i) उपहासित (ii) उभयशिव १०.३.११
उवहासण–उपहासन, उपहास करनेवाला ११.१.१०
उवहि–उदधि सागर ४.१६.१३,११.१०.६,११.११.८
उवहिचंद–उदधि(सागर)चन्द्र ३.५.१३
उवहुंजिय–उपभुञ्जित, उपभुक्त ४.९.१२
उवाअ–उपाय ९.८.१५
उवाय–उपाय ९.१०.९, १०.१४.५
°उवाहि–उपाधि २.१.७
उव्वडिय–उत् + पतित ६.६.९
√उव्वर–उद् + वृ °इ, हि० उबरना, बचना ३.११.९
√उव्वलंत–उद् + वल् + शतृ पीछे लौटना, ४.२१.११
उव्वेअ–कामोद्विग्न ९.३.९
उव्वेढ्य–उद्वेजित २.१९.१०
उव्वेविर–उद्विग्न + इर (ताच्छील्ये) ६.१.१०
उहय–उभय ७.५.११; ७.७.१२; १०.२.४
उहयमई–उभयमति १.२.१०
ऊरिया–पूरिता (स्त्री०) १०.१८.१४
ऊरुय–ऊरु + क (स्वार्थे) २.१६.२
ऊसारिय–अपसारित ७.७.१२

[ए]

एअ–एतत् २.१३.७; ४.१७.१७, ७.१३.९ १०.११.४
एउ–एतत् ४.२२.३५; ९.१.१६
°एए–एते, हि० ये १.१८.१०
एएण–एतेन ५.५.७
एक्क–एक, अकेला ४.१.९; ४.५.२; ५.१.१; ७.४.८
एक्कंग–एक + अङ्ग ५.१४.१९
एक्कंतर–एकान्तर, एक दिनके अंतरसे ३.९.१२
एक्कत्त–एकत्र ११.१२.८
एक्कत्थ–एकस्थ १०.१०.१३
एक्कमेक्क–एकमेक १.९.२
एक्कल्ल–(दि०) अकेला ५.८.१७;७.१२.९
एक्कल्लउ–अकेला ९.१०.१६; १०.७.६;११.४.२
एक्कवयकण्ण–एक + पद + कर्ण एक चरण व एक कान वाली जाति ९.१९.९
एक्कसि–एकदा २.१५.१४
एक्केक्कमेक्क–परस्पर ६.४.९
एक्कोयर–एक + उदर, सहोदर भ्राता ११.५.५
एण–एतेन २.४.५; ६.३.६
एत्तड–एतावत् ७.७.५
एत्तहिं–इतस्, यहाँ से ३.१०.४
एत्तहिं–इधर ४.३.१; ९.१४.६, १०.१०.९
एत्तहे–अत्र, हि० इधर २.१३.९;३.४.११;६.४.४. १०.१२.२
एत्तिअ–एतावन्मात्र, हि० इतना ८.६.४
एत्थ–अत्र २.११.१;३.७.३;८.२.८;९.६.६

एत्थंतर–अत्रान्तर . २.५.११;१०.१८.१०
एम–एवम् ५.१२.१९; ६.१४.६; ९.६.४
एमइँ–एवमेव २.१८.१६
एमहि–इदानीम् ८.१०.७
एयअ–एतत् ९.२.७
एयं–एतत् ४.१८.४
एयंतनअ–एकान्त + नय १०.५.१
एयहो–एतस्य ४.१.८
एयाउ–एताः (कुमारिकाः) ४.१२.७
एयारसंग–एकादश + अङ्ग १०.२४.१३
एयारसम–एकादशम् ११.१५.१५
एयारहम–एकादशम् १.१८.१५
एरावअ–ऐरावत (क्षेत्र) ११.११.७
एरिस–ईदृश ६.१०.१; ८.१४.१५, ९.१.१३
एवड–ईदृश ७.२.१६
एवहि–(अप०) इदानीम्, एवधि, साम्प्रतम् ३.१०.७; ६.२.७; ७.३.११; ७.६.३७
एवि–आगम्य ७.७.३
एस–एषः १.१८.५, ९.१७.१४
एह–एषा(स्त्री०), (अप०) ईदृक् २.११.३; ५.१३.१४
एहउ–ईदृक् १.१३.७
एही–ईदृशा (स्त्री०) २.१३ ८,१० १०.१२
एहु–एषः ३ १०.२,५ ११ १५,७ ११ १३

[ओ]

ओछप्पिणी–उत्सर्पिणी, कालचक्र ३-१ १०
ओड्डिय–उद्धृत १ ११ ८
ओमुंछियअ–उन्मूर्छित ३.७.७
ओमुच्छिय–उन्मूर्च्छिता (स्त्री०) ८ ७ ११
ओलम्बिय–अवलम्बित ५-८ २५
ओवडिय–अव + पतित ६.१२ १०
ओसहत्थ–औषध + अर्थ ९ ११ ८
√ओसर–अप + सृ (विधि०) ५.७ २४
√ओसरंत–अप + सृ + शतृ ६ १२ ११
ओसरिय–अपसृत ७ ६.१०
ओसही–औषध ३ १४-१२
ओसारिय–अपसारित ७ ८.३
°ओह–ओघ ६ ४ १;७ ४ २
√ओहट्ट–अव + घट्ट °इ ८ ७ ७
ओहामिय–अवधामित, तिरस्कृत, अभिभूत २ ३ ९ ८ ५ ५
ओहाछिय–अवलिप्त ६.१०.१३

[क]

क–का (स्त्री०) १० १४ ४
कअ–कृत ७.१ २; ८ १३ ७
कइंद–कवि + इन्द्र १.५.१४
कइ–कवि ४ १८ १५; ८.१ ३; ९ ६ १
कइकुल–(I) कवि कुल (II) कपिकुल ५.८.३४
कइरव–कैरव, कुमुद ८ १४ १५
कइरव–कैरव वन १०.१८ ८
कइत्त–कवित्व १ ५ १३
कइत्तधाम–कवित्वधाम ११ १ १
कइदेवयत्त–कवि देवदत्त प्रश १
कइदिण–कई दिन १० २१ ६
कइयहं–कदा २ १४ १२
कइलासगिरि–कैलासपर्वत ९.६ १
कइवय–कतिपय १ १४ ४; ३ १३.१२; ७ १२ १७, १० ८ ८
कइवल्लह–कवि + वल्लभ ५.१.४
कइवीर–कविवीर प्रश. १९
कउ–कुत , कथम् १०.१०.११, ११.१४.१३
कउह–ककुभ (चम्पा ?) वृक्ष ५ ८.१२
कओ–कुतः १०.६ १०
कं–जलम् १०.२०.६
कंक–कङ्क, बक पक्षी ४.१८.७
कं क–काँव काँव (ध्वन्या०) ९.५.१०
ककड–(दे) रक्षा कवच ११-३-२
ककण–कङ्कण, चक्र १०.२०.६
कंकर–(दे) हि० ककर, कौड़ी ४ २ ८
ककालधारि–कंकालधारी १०.२५-२
√कंखिर–काङ्क्ष् + इर (ताच्छील्ये) ८.११.१४
कचण–कञ्चन, सुवर्ण ४.२.११,१०.१४.६
कंचाइणि–कात्यायनी, चामुण्डा ५.८.३५,७.६.८
कचाइणी ७.६.६
कंचायणी १०.२५ २
कंचिपुर–काञ्चीपुर (नगर) ९.१९.३
कंचिवाल–काञ्चीदेशोत्पन्न ८.१२.११
कचुय–कञ्चुक, हि० चोलो ४.११.८

कंज–कम् + जात, कमल ४.११.५
कंजिय–काजी ३.९.१३
कंटइय–कण्टकित १.१४.४
कंटय–कण्टक ५.८.२४
कंटिवोरी–कंटीली वेरी ५.८.६
कंठअ–कण्ठा, कण्ठाभरण ३.१४.१३
कंठक्क–कण्ठकूजन कण्ठरुत १.१२.३
कंठाल–(दे) कडाह, भार, काँठी ४.११.८,५ ७.१४
कठिय–कण्ठित, परिवृत ५.९.८
कंड–काण्ड, वाण ८ ५.७
√कंडुयंत–कण्डूय् + शतृ १०.२६ ७
कंडुवण–कण्डूयन, खुजलाना ८ १६ ९
कंत–कान्ता, पत्नी ४ १२ ३
कंतारअ–कान्ता + रत ५ ९.१७
कंतावसाण–(i) कान्ता + वशानाम्
(ii) कं–जलम् + तापसानाम् ४.१८.१०
√कंद–क्रन्द्य् °इ ८.१४.१६
°हि (विधि०) २.२ ६; ८ ७ ५
कंदण–क्रन्दन ४ २१ ११
कंदप्प–कन्दर्प १० २० ३
कंदर–कन्दरा ११ २ ५
कंदल–(अप०) कलह, झगड़ा ४ २ १६
कंदाविय–क्रन्दापयिता, क्रन्दन करानेवाला १० १ १२
√कंदिर–क्रन्द् + इर (ताच्छील्ये) ९.१० २
कंदोट्ट–(दे) कन्दोट्ट, नीलकमल ५ ९ ७
कंध–स्कन्ध ४ २२.१७
कंधर–स्कन्ध ८ ७ १६
√कंप–कम्प् °इ ८ १६ १३
√कंपंत–कम्प् + शतृ ७ ८ ११, १० १५ ६
कंपावण–कँपावन, कँपानेवाला ५.१३.९
कंपिय–कम्पिता (स्त्रियाम्) ८ ७.१२
√कंपिर–कम्प् + इर (ताच्छील्ये) २.४ १२;९.११ ५
कंपिरंग–कम्प् + इर + अङ्ग १० १७ १६
कंम्पिय–कम्पित २ ७.६
कंब–कम्ब, यष्टि, चावुक ६ ४.५
कंबु–कम्बु, शङ्ख ५ १२.१४
कंसार–(दे) कँसेरा, ठठेरा ५.७ १७
कंसाल–वाद्य विशेष १.१६ ७; ४ ८ ७
कक्खंतर–कक्ष + अन्तर ८ १६ ९
कच्च–काँच, शीशा २.१८.५
कच्छ–कच्छ (देश) ७ ६ १६; ९ १९.९
कच्छडअ–(°य) कछौटक, कछौटा ५.७.१३; १०.१६.३
कच्छव–कच्छप ४.६ ५; ९.७.५
कच्छी–कक्षी, कक्षवती (स्त्री०) ५.१०.८
कच्छेल्ल–कच्छ (देश) ९.१९.४
कज्ज–कार्य, हेतु १०.२.११; ११.८.६
कज्जंतर–कार्यान्तर ८.९.११
कज्जगइ–कार्यगति ९.१६.५
कज्जत्थिअ–कार्यार्थी + क (स्वार्थे) ६ १२ ३
कज्जलुद्ध–कार्यलुब्ध ४ १७.५
कज्जाकज्ज–कार्य + अकार्य ५ १३.१६
√कट्टंत–कृत् + शतृ ४.१५.१५
कट्ठ–कष्ट २.२ ८
कट्ठभार–कष्टभार १०.१३.१
कट्ठमय–कष्टमय ९ १.६
कट्ठाइ–काष्ठ + आदि ११.१५ ६
कट्ठियधर–काष्ठधर, दण्डधर ७.७ ११
कडअ–कटक, छावनी ६.१ १८
कडअ–कटक, हिं० कड़ा ३ १४.१३
कडक्किय–कडकडकृत, कडकडायित (ध्वन्या०) ७ ८.१२
कडक्ख–कटाक्ष १ १०.११; ८ १०.५
√कडक्ख–कटाक्षय् °इ ११.१४.११
कडक्खण–कटाक्ष करना ११.६.६
कडक्खिय–कटाक्षित २.२०.११; १०.१९.१८
कडच्छ–कटाक्ष ९.१३.५
कडय–कटक हिं० कड़ा २.२०.२१
√कडयडत–कडकडाय् + शतृ(ध्वन्या०) ११.१५.६
कडयडिय–कडकडायित (ध्वन्या०) ७.५.६
कडविमद्दण–कृत + विमर्दन, ६.१०.४
कडह–कटम्, कटहल ५.८.१०
कडहत–देश (?) ६.१९.४
कडाह–कटाह ६.१४.४
कडि–कटि ९.१८.३,१०.१६.४
कडिपरिहाण–कटिपरिधान ९.१२.१३
कडिबिंब–कटि + बिम्ब ५.९.११

कडियल–कटितल ४.१३.१५
कडिल्ल–(दे) कटिवस्त्र ४.१९.१२
कडिसुत्त–कटिसूत्र ३.१९.१३;१०.१९.७
कडिहार–कटिहार ३ ३.१४
कडुम–कटुक ७.६.१०; ७.६.१३
कडुय–कटु + क (स्वार्थे) २.४.११
कडुरडिय–कटु + रटित > कटुरुदन ४.२२.१८
कडुवयण–कटु + वचन ६.१२.९
√कड्ढंत–कृष् + शतृ ४.१५.१६;५.१४.११
कड्ढण–कर्षण ७.६.२९
कड्ढणिय–निकसनशील ५ ७ २४
कड्ढिअ–कर्षित ७ ६.२५
कड्ढिय–कृष्ट ६.१३.२; ९.१३.२५
√कढंत–क्वथ् + शतृ २.२.३
कणिट्ठ–कनिष्ठ २.५.१०;२.८.१०;९ १७ ९
कणिय–कणी ११.१३.२
कणियार–कर्णिकार, हि० कनेरका वृक्ष ५.८ ११
कणिर–क्वणित ३.८.३;४ १५.९
कणिस–कणिश, सस्य वा धान्यका तीक्ष्ण अग्रभाग १.१.१५
कण्ण–कर्ण, हि० कान ५ १.२५
कण्ण–कन्या ८.९ १३
कण्ण–कर्णराज. १०.१ ९
कण्ण–किनारा ५.१० २४
कण्णउ–कन्यकाः ४.१४ १४
कण्णउज्ज–कान्यकुब्ज, कन्नौज (नगर) ९ १९ १३
कण्णंत–कर्ण + अन्त, कर्णान्त ५.२.१९;९.१८.३; १०.१६.४
कण्णचउक्क–कन्या + चतुष्क ४ १४.१७
कण्णपुड–कर्णपुट ३.१ २
कण्णरयण–कन्या + रत्न ५.९-२३
कण्णवडिअ–कर्ण + पतित ४.७.१३
कण्णहीण–कर्णहीन ९ २.६
कण्णा–कन्या १०.१.९
कण्णाड–कर्नाट (देश) ६.६.११
कण्णाडि–कर्नाटी, कर्नाटकवासिनी (स्त्री) ४.१५.९
कण्णारयण–कन्यारत्न ७.१३.९
कण्णावतंस–कर्ण + अवतंस ४.१५-९

कण्णिय–कर्णिका, वाण विशेष ७.१०.५
कत्थ–कुत्र ७.१.२३; १०.२६.६
कत्थइ–कुत्रचित् ७.१.१९;८.३.११
कत्थूरिय–कस्तूरिका ८.१४.१९
कद्दमिल्ल–कर्दम + °इल्ल (स्वार्थे) ५.७.८,८.१३.६
कद्दमेल्ल–कर्दम + इल्ल-युक्त ४.२१.४
कद्दविय–कर्दमित ४.२२.३
कप्प–कल्प; प्रमाण, तुल्य ४.९.४
कप्पड–कर्पट हि० कपडा ११.७.४
कप्पंत–कल्प + अन्त ५.५.५
कप्पण–कर्तन ७.६.११
कप्पदुम–कल्पद्रुम ३.३.११
कप्पयरु–कल्पतरु ४.१६.८
कप्पवासि–कल्पवासी (देव) १.१६.९
कप्पिय–कर्तित ६.९.७,८.११.१
कप्पूर–कर्पूर ७.१२.२;८ १५ ७
कप्पूरायरु–कर्पूर + अगरु ८ १६.५
कबंध–कबन्ध, कवच ६.१४.१३
√कम–क्रम, उत्क्रम, कमंत ५ १४.२;७ १०.२२; ११.१५.१०
कम–क्रम, चरण ४.१.५
कमलदलच्छि–कमलदल + अक्षि ३.३.१
कमला–(तत्सम) लक्ष्मी ३.३.२
कमलायर–कमल + आकर, कमलाकर २.५ ३, ५.९.४
कमलालिंगिय–कमला + आलिङ्गित १.१.७
°कमलुज्जल–कमल + उज्ज्वल ३.३.२
कमागय–क्रमागत २.४.८
कम्म–कर्म २.२०.८;४.४.८
कम्मकर–कर्मकर, शोषक १०.१७.७
कम्मकिअ–कर्मक्रीत १०.६.८
कम्मकिस–कर्म + कृश २.३.९
कम्मक्खय–कर्मक्षय ११.१४.८
कमट्ठ–कर्म + अष्ट १०.२४.९
कम्मडहण–कर्मदहन, कर्मदाहक १०.२१.८
कम्मपरिणाम–कर्मपरिणाम ११.५.२
कम्मफल–कर्मफल ११.४.९
कम्मबंध–कर्मबन्ध
कम्मभंति–कर्मभ्रान्ति १०.२०.१३

कम्ममल-कर्ममल ११.७.३
कम्मरइ-कर्मरति, कर्मासक्ति १०.५.१२
कम्मवस-कर्मवश ११.३.१
कम्मवियार-कर्मविकार ९.१३.१३
कम्मसत्ति-कर्मशक्ति १०.४.११
कम्मासव (°य)-कर्म + आस्रव २.७.१२,४.३.१४;
९.१.१९
कम्मोवहि-कर्म + उपाधि ११.१४.५
कय-क्रय ६.३.३
कय-कृत २.९.१५,४.२०.११
°कयंत-कृतान्त ३.७.५;५.१४.३;७.५.१५
कयंब-समूह ९.१०.२०
कयंबु-कदम्ब (वृक्ष) ४.१६.४,५.१०.१३
कयग्गह-कृत + आग्रह ९.४.३
कयग्गह-कृत + ग्रह्-ग्रहण ५.१०.२३
कयडिल्ल-कडिल्ल, कटिवस्त्रयुक्त ९.१८.३
कयणाअ-कृतनाद ९.११.१४
कयणीड-कृतनीड ५.३.१२
कयत्तविडवि-समृद्धिविटपी, समृद्धि रूपी वृक्ष
प्रश० १७
कयत्थ-कृतार्थ ६.१.२
कयत्थड-कृतार्थ ४.१.३
कयदोस-कृतदोष, अपराधी ११.१४.२
कयपयज्ज-कृत + प्रतिज्ञ ५.११.१८
कयबंध-कचबन्ध, केशबन्ध ९.१८.४
कयबध-कृतबन्ध ८.११.२५
कयमण-कृतमना ८.४.१
कयरूव-कृतरूप ३.९.९
कयली-कदली, केला ४.१६.३
कयवमाल-कृतवमाल १०.९.५
कयायर-कृत + आदर १०.१.५; ११.५.५
कयावि-कदा + अपि ३.६.५,४.९.७
कर-कर, हस्त ३.१४.१९; ४.२२.७,९.८.२३
कर-शुण्डा ४ २२.७
कर-किरण ५.७.५
√कर-कृ °इ ९.१०.५
करेवि ९.८.१०
°उ (विधि०) ८.७.१
करेविणु ८.१४.१४
करेसइ-करिष्यति १०.२५.९
°ए (कर्मणि) ९.१२.१३
करु (आज्ञा०) ९.३.११
करहि (विधि०) १०.५.३
करेवि ८.१२.७; ९.८.१९; १०.१४.१४
करहु (विधि०) ८.९.१५
करिव्वउ (विधि०) ३.९.३
करंत-कृ + शतृ ४.११.२; ९.५.१०
करंक-अस्थि, घड़ ६-९.१०
करंबिय-करम्बित, व्याप्त ५-१.२३
करकट्ट-(दे) ले जाने योग्य वस्तुएँ ५.६.५
करकत्तिया-करकर्तिका, कैंची ७.६.१४
करकंटि-करकैंटा ९.१०.१४
करड-वाद्यविशेष ५.६.७; १०.१९.२
√करडंत-करड-करड ध्वनि करते हुए १०.१२.७
√करडंतयं-देखें : करडंत १०.१९.२
करडयल-कुम्भस्थल ७.५.३
करडि-करटिन्, हस्ति ६.९.१०
करण-(i) करण, राजसाधन, पैंतरा
(ii) करण, मैथुनविधि ९.१३.१२
करणगाम-इन्द्रियग्राम २.१.११
करणुज्जम-करण + उद्यम १.१५.१३
करतक्कड-(दे) ध्वन्या० १.१५.५
करफंसण-कर + स्पर्शन २.१०.३,५.४.१२
करमर-(तत्सम) वृक्ष विशेष ४.१६.५
करमुद्द-कर + मुद्रा—मुद्रिका ४.१३.७
करधणु-धनुष ७.१०.२
करयत्थ-करक + स्थ १.५.११
करयल-करतल ४.१७.२०; १०.२४.६
कररुह-(तत्सम) कररुह, नख २.१५.१५
करवंद-वृक्ष विशेष ४.१६.२
करवंदि-करवंदी, हि० करौंदा वृक्ष ५.८.१२
करवत्त-करपत्र, करौंत ८.९.१,११.४.४
°करवाल-(i) करवाल (तत्सम) असि
(ii) करेण वालाः केशाः ९.१३.१५
करवावड-कर + व्यापृत, व्याकुलहस्ता (स्त्री०)
८.१५.१०
करसंगह-करसंग्रह, पाणिग्रहण ८.१२.८
करह-करभ ५.६.५
करहाड-करहाटक (नगर) ९.१९.१०
कराल-(तत्सम) भयंकर १०.२६.१

कव्वर–कर्बुर, हि० कबरा ७.६.२२
कव्वाड्–कबाड़ीपन ९.८.१६
कव्वाडिअ °य–कबाड़ी ९.८.२,१०.१८.२
कव्वामय–काव्य + अमृत ७.१.१
√कस–कष्, कसेऊण ९.२.३.
कस–कषा, हि० कसौटी १.४.२; ९.१.२
कसण–कृष्ण (वर्ण) २.१४.८, ८.१५.२
कसमस–(दे) हि० कसमसाना ४.२२.११
कसमीर–कश्मीर (देश) ९.१९.१०
कसर–(दे) अधम बैल ७.३.१३
कसरक्क–कुड्मल, फूलकी कली ७.१.२
°कसवट्टअ–कषपट्टक, कसौटी ९.१.३
कसाअ–कषाय ८.६.६
√कसाइयंत–कषायमानः, कसैला बनाता हुआ ४.१५.१४
कसिण–कृष्ण (काला) १०.२५.१०
कसु–कस्य ४.२२.२५, ११.४.१०
कह–कथा ५.११.८
√कह–कथय् °ह ८.३.९; ९.३.४
कहहे (विधि०) ४.१.१४
कहमि २.१३ ९
कहवि १०.८१४
कहिवि १०.२५.६
कहेइ ८.१७.९
कहेमि ९.४.३
कहहि–(विधि०) ९.१०.१८
कहि–कथय् (विधि०) ९.१८.९
कहिज्ज–कथय् (कर्मणि)°इ २.११.९
√कहंत–कथय् + शतृ ५.४.९
कहतर–कथान्तर २.३.१
कहण–कथन ७.१.६
कहबंध–कथा + बन्ध १.७.५
कह व–कथम् वा २.१६.७; ३.११.४; १०.६.९
कहव कहव–कथम् कथम् + अपि ३.७.७
कहा–कथा १.५.७;७.१.६
कहाणअ–कथानक ९.५.३,१०.६.१०
कहार–काछी (जाति विशेष) ५.६.५
कहावसेस–कथा + अवशेष ९.१४.५
कहाविराम–कथा + विराम ४.४.९

कहिँ–कुत्र, हि० कहीं १.६.११;३.१४.५,९.७.६
कहिँमि–कुत्रचित्, कहीं भी १.१५.२;९.१३.८
कहिअ–कथित ३.५.११;९.८.१४
°य ७.११.१०,८.८.१६
कहि मि–कुत्रचित्, कही भी ३.४.५;८.२.१०
कहियंतर–कथित + अन्तर ७.४.९
कहु–कस्य ७.१.१६
कहो–कस्य ३.६.८;८.१०.७
का–(तत्सम) का (स्त्री०) २.१४.६
काअ–काक ८.१५.१४,९.५.११
काइँ–किम् २.१८.१४,३.१४.१७,१०.२.९
काइं मि–किमपि ८.११.११;१०.५.२
√काउं–कृ + तुमुन्, कर्तुम् ८.२.९
काउरिस–कापुरुष ७.२.१६
काढिय–कर्षित ६.४.९;१०.१४.१३
काणण–कानन २.१३.१२
काणिअ–काणित ९.११.३
काम–काम (देव) ४.१६.१०
काम–कामना ११.१.१३
√कामंत–कामय् + शतृ ११.५.६
कामकरि–काम + करि, मदनहस्ति ४.१९.१५
कामकरेणु–कामहस्तिनी ४.११.५
कामकील–कामक्रीड़ा १०.१३.३
कामट्ठाण–कामस्थान ९.१३.९
कामत्थ–काम + अर्थ ५.९.१५
कामधेणु–कामधेनु ४.१८.६
कामपंडुर–काम + पाण्डुर १.९.४
कामरूव–कामरूप (असम देश) ९.१९.१५
कामलय–कामलता (स्त्री) ३.१४.२१;
(वेश्या) ९.१२.४
कामवेअ–काम + वेग ४.१९.१
कामाउर–कामातुर ९.७.२
कामाउल–कामातुर २.६.९
कामिणी–कामिनी १.९.३;३.१४.२१
कामिणीजणाउल–कामिनीजन + आकुल ५.१.८
कामिणीयण–कामिनीजन ३.१२.११
कामुअ–कामुक ४.२१.९
कामुय–कामुक ३.१२.४
कामुच्छाह–काम + उत्साह १०.२.२

°काय–(i) काय, देह २,२०.३;
(ii) काक, कौवा ११.७.१०
कायाकिलेस–कायक्लेश १०.२२.८
कायमाण–(दे) आसन ८.१३.३
कायरी–कातरा (स्त्री०) ९.१७.१
√कार–कारय् ६.३.७
कारिवि ३.१३.१३
कारेवि ६.३.७
कारंड–कारण्ड (पक्षी विशेष) ४.१८.२
कारण–हेतु, कारण ४.१२.१२
कारिअ–कारित २.१९.५,१०.२०.४
कारियं–कारापितं, लिखाया प्रश० १९;२२
काल–(तत्सम) मृत्युराज २.१९.१;६.१.१५
कालकूड–कालकूट १०.५.६
कालदव्व–कालद्रव्य ३.१.८;८.८.१४
कालभुयंग–कालभुजङ्ग ३.८.१०
कालरत्ति–कालरात्रि १०.१३.७
कालवट्ट–कालपृष्ठ, धनुष ५.१४.२१
कालसप्प–कालसर्प ९.१.९;९.१०.७
कालाहि–काल + अहि, कृष्णसर्प १.१८.८
कावालिय–कापालिक ७.६.१३
कास–कास, खासी २.१३.९.३.११.३,९.९.८
कासु–कस्य ६.१.१५
काहल–कोल, भील ५.८.२१
काहल–वाद्यविशेष १.१४.९
काहि–कस्या ४.११.१
किउ–कृतः २.११.१०,४.९.१०
किं–किम् २.१४.११;८.१२.५
किंकर–किङ्कर, सेवक ६.८.४,७.१३.१२
किंकिणी–किङ्किणी, क्षुद्रघण्टिका २.३.७,५.२.१
किंवि–किम् + अपि ८.७.१
किंपुरिस–(i) किंपुरुष, देव
(ii) किंपुरुष, हीनपुरुष ९.१२.१०
किंसुय–किंशुक (पुष्प) ३.१२.१३
किक्किंध–किष्किन्धा नगरी ९.१९.४
किच्छ–कृच्छ्र ९.४.१६
√किज्ज–कृ (कर्मणि) °इ १३.९,२.१४.१०,
५.४.३;९.१२.१३
°उ (विधि) २.१२.२;९.१०.१७

किट्ट–कृष्ट ९.९.१०
किणंक–किणाङ्कित, चिह्नयुक्त ७.४.७
√किण–क्री °वि १०.११.५
°इ (विधि०) ९.१.२
किणिय–क्रीत १०.११.२
कित्ति–कीर्ति ४.९.९,४.१४.१६
कित्तिलय–कीर्तिलता १०.१.१२
कित्थ–कुत्र १०.१०.३
किपिण–कृपण ७.८.१४
किम्–कथम् ५.४.३
किमि–कृमि ११.६.४
किमेयमेरि–किम् + एतम् + एरि–किल २.३.४
कियउ–कुतः + क (स्वार्थे) १.१०.१८,९.१५.१४
कियंत–कृतान्त ८.८.१५
कियंतर–कियत् + अन्तर २.१५.१२
किया–क्रिया २.१६.६
किर–किल ७.७.१०;९.११.११
किरण–(तत्सम) १.९.७
किरणाहय–किरण + आहत १.१७.१
किरसुक्कअ–किल + विस्मृतः ९.४.१०
किराड–किरात, भील ५.७.२०;९.१८.२
किरिमाल–वृक्षविशेष ५.८.११
किरिरि–वाद्यविशेष ५.६.११
किरिरिकिरितट्ट–ध्वन्या० ५.६.११
किलेस–क्लेश ९.८.३
किवाण–कृपाण १.१.११
किविण–कृपण, दीन ३.१.७
किब्बिस–किल्विष, पाप १०.५.७
किसाण–कृषक, हि० किसान ९.१३.१३
किसि–कृषि ११.६.१०
किसोर–किशोर ५.१२.१४
कीड–कीट ७.२.१२,११.६.४
√कीर–कृ (कर्मणि) कीरति ७.४.५
कीर–(तत्सम) शुक ५.९.८
कीर–कीरदेश ९.१९.१०
√कीलअ–क्रीडय् °ए (आत्मने०) ४.१६.१०
कीलिय–क्रीडित ४.२०.२,७.४१
कीलण–क्रीडन ४.१६.१
कीलणअ–क्रीडनक, खिलौना ५.२.१६

कीलामहिहर–क्रीड़ा + महीधर ३.२.७
कीलाल–रुधिर ६.१०.१३
कीलाललीला–रुधिरप्रवाह १०.२६.१
कीव–क्लीव ४.१५.१५
कु–को, कोई १०.७.५
कुंकुम–(तत्सम) कुंङ्कुम १.९.३
कुंच–कूर्च, १०.१६.६
कुंचइय–कुञ्चित १.९.९
कुंचिय–कुञ्चित ४.१५.११
कुंजर–कुञ्जर १.१४.२
कुंडल–(कर्ण) कुण्डल १.१४.३
कुंडलियंग–कुण्डलित + अङ्ग ६.१०.८
कुंत–(तत्सम) कुन्त, भाला १.१५.५
कुंतल–कुन्तल (देश) ९.१९.३
कुंतलभर–कुन्तल + भार, केशकलाप ४.१५.१०
कुंताउह–कुन्तायुध ७.१०.१३
कुंद–कुन्द (पुष्प, वृक्ष) ४.११.१४,४.२१.२
कुंदुज्जल–कुन्द + उज्जवल ८.२.१६
कुंभ–कुम्भ, गण्डस्थल ६.३.४
कुंभंड–कूष्माण्ड ५.७.१७
कुंभत्थल–कुम्भस्थल ७.१.१८
कुंभयल–कुम्भतल, कुम्भस्थल ४.२०.८
कुंभविलया–घटवारिणी १.९.१
कुंभि–कुम्भी, हस्ति ८ १५ ३
कुकइ–कु + कवि १ ६ ५
कुकलत्त–कु + कलत्र १.७ १
कुक्कुड–कुक्कुट (पक्षी) १० २६ ४
कुगइ–कु + गति ११ ७.७
कुगइपह–कुगतिपथ २.१६ २
कुटणि–कुट्टिनी ५ ७ २४
कुट्टिणी–कुट्टिनी ४ १९ २०
कुट्ठ–कोष्ठ, हिं० कोठा ७ ६ ७
कुडंब–कुटुम्बी ४ ६.१
कुडय–कुटज वृक्ष ५ ८ ११
कुडि–कुटी ९ १० २
कुडिल–कुटिल ८ १६ १०
कुडिलभाव–कुटिलभाव ११ ७ ९
कुडुंबी–कुटुम्बी, कृषक १ ८ ७
कुड्ड–कुड्य, भित्ति १.१६.४; ९ १४ १४

कुढार–कुठार ९.१५ १४
√कुण–कृ °इ २ २०.६,५.४.१२
कुणिवि १० १७.१२
कुतक्क–कु + तर्क १०.२४ ८
कुत्थिय–कुत्सित, अधम २ २ ५
कुद्ध–क्रुद्ध ५.८ १४
कुद्धमण–क्रुद्धमन ९.७ ८
कुमइ–कु + मति ५,१३.२३
°कुमर–कुमार ३.४.८
कुमाणुसत्त–कु + मनुष्यत्व ११.७.७
कुमारभाव–(तत्सम) कुमार अवस्था ४.१४.१३
कुमारिया–कुमारिका ४.१२.७
कुम्म–कूर्म ४.२०.११
कुम्मायार–कूर्म + आकार ४.१३.१७
कुम्मासणट्ठ–कूर्मासन + स्थ ५.१४.२१
कुरंगसिसु–कुरङ्ग + शिशु ५-१० १५
कुरवअ–(i) कुरवक (वृक्ष विशेष)
(ii) कु + रत ४.१७ २
कुरु–कुरुदेश (हस्तिनापुर प्रदेश) ९ ११.१३
√कुरु–कृ (विधि०) १०.१४ १३
कुरुल–पर्वत ५.१०.११,७ १३.३
कुरुलभंग–कुरल + भङ्ग, केशभङ्गिमा ४.१५.८
कुरुविसय–कुरुविषय १०.१८.६
कुलउत्तिय–कुल + पुत्री, कुलवधू ४ ५ २६
कुलकम–कुलक्रम, कुलपरम्परा ५ ३.३.१५
√कुक्कुल–कुरकुराय्, कुर-कुर ध्वनि करना ५ १० १६
कुलच्छल–(तत्सम) कुलचातुरी ७.५ १५
कुलमइलण–कुल + मलिन., कुलको मलिन करनेवाला ४.३.४
कुलमंगल–कुल + मङ्गल ४.७ ११
कुलमग्ग–कुलमार्ग २.१७ ७
कुलपर–कुल + पर-परम, श्रेष्ठकुल ४ १.१२
कुलपहु–कुलप्रभु ९ १०.१४
कुलवालिया–कुलबालिका २ ९ १४
कुलभूसण–कुलभूषण
कुलयर–कुलकर ११ २ ४
कुलायार–कुल + आचार २ १९ ३
कुलिस–कुलिश,वज्र ७.४ १

कुल्लतल्ल–कुल्या + तल ४ २१.७
कुवलअच्छि–कुवलय + अक्षि ४.१२.६
कुवलय–(तत्सम) (i) कुवलय, नीलकमल
(ii) कु + वलय, पृथ्वीमण्डल ८ ३.१६
कुवि–कोऽपि ६ ५.७
कुविअ–कुपित ७.७.१०
कुस–कुश, अंकुश ५ ७.११
कुसम–कुसुम ८.१०.८
कुसल–कुशल ९.१८.९
कुसामि–कु + स्वामी, पृथ्वीपति ७ ६.२५
कुसुंभ–कुसुम्भ, रंग विशेष ६ १४ १३
कुसुमंकिअ–कुसुम + अङ्कित १ १७ २
कुसुमदाम–(तत्सम) कुसुममाला १.९ ३
कुसुमाल–स्तेन, चोर ९.१५ ७
कुसुमिय–कुसुमित १.८.५
कूअ–कूप १० १७ ७
कूइय–कूजित ४ ६ ३
कूडअ–कूट + क, प्रतिरूप ९.१३.४
कूडमंत–कूटमन्त्र ४ १७ १७
कूर–क्रूर ५ ५ ८
कूरगह–क्रूर + ग्रह १०.२५ १०
कूरग्गह–क्रूर + ग्रह ५ ५ ३
कूलावहि–कूल + अवधि १.१०.१४
कूव–कूप १० १७ ४
कूवार–सागर १ १८ ९
के–कः, कौन ७ ३ १०
केऊर–केयूर १.१४.३, २.२०.११
केणय–क्रययोग्य वस्तु ५.११.३
केणिय–क्रीत ६.३.३
केत्तिय–कियत्, हि० कितना ११-३.७
केम–कथम् ५.४.२१
केयार–केदार, खेत ५-९.६
केरअ–(अप०) षष्ठि प्रत्यय ६.२.३
केरल–देश ९.१९.१
केरलनयरी–केरलनगरी ५.५.१७
केरलपुरि–केरलपुरी ५.३.६
केरलबल–केरलसैन्य १०.१.१४
केरलि–केरलवासिनी स्त्री ४.१५.८
केरिस–कीदृश ४.१८.११
केलि–कदली, हि० केली ८ ७.१२
केवल–केवल (ज्ञान) ४.४.२
केवलदीवअ–केवल (ज्ञान) + दीपक ४.३.१४
केवलनाण–केवलज्ञान, सम्पूर्ण ज्ञान, १०.२१.६
केवलवाह–केवल(ज्ञान)वाहक १.१६.२
केस–केश १.१७.६
केसबंध–केशबन्ध ५ १२.१८
केसभर–केशभार १०.१६.५
केसर–(i) केशर-तिलक (वृक्ष) ४.१७.३;
(ii) सिंहके कन्धेपर-के बाल ७.४.३
केसरि–केशरी, सिंह ५.१३.१४
केसलट्ठी–केशलटी, केशोंकी लटें ९.१८.३
केसव–केशव, नारायण ४.४.४
को–कः, कौन २.१८.५
कोइ–कः अपि-कोऽपि, हि० कोई ४.१८.१
कोइल–कोकिला ५.१०.१६
कोऊहलत्थ–कौतूहल + अर्थ ९.१२.१३
कोऊहल–कौतूहल १.१३.८
कोंकण–कोंकण (देश) ९.१९.४
कोंग–कुर्ग देश ९.१९.१४
कोंत–कुन्त ५.१४.१०,७.१०.१३
कोंतकोडि–कुन्त + कोटि, भालेकी नोक ४,२१.११
कोंतग्ग–कुन्ताग्र (वस्त्र विशेष) ७.६.१
कोंताउह–कोन्त + आयुध ६.६.९
√कोक्किज्ज–व्या + हृ (कर्मणि) 'इ ११.५.२
√कोक्कि–व्या + हृ + इर ताच्छील्ये २.४.११
कोट्ट–कोट, दुर्ग ५.३.१३
कोट्टढाल–(दे०) कच्चे फलोंका समूह ६.४ १
कोट्टवाल–कोटपाल, हि० कोतवाल ५.११.३
कोट्ठअ–कोष्ठक, हि० कोठा १.१८.१५
कोट्ठा–कोष्ठ, हि० कोठा १.१६.४
कोड–(दे) कौतुक २.१२.६
कोड–कोटि, हि० करोड ६.३.२
कोडि–कोटि, किनारा, अग्रभाग ६.७.४
कोडी–कोटि, हि० करोड ३.४.९
कोड्ड–(दे) कौतुक ३.११.८
कोड्डावण–कौतुक उत्पन्न करनेवाला १०.७.११
कोढ–कुष्ठ, हि० कोढ २.५ १२
कोणंत–कोण + अन्त ५.१४.१६

कोणंतर–कोण + अन्तर, एक कोना	२.१६.१३
कोवंड–कोदण्ड, धनुष	१०.१२.१
कोलउल–कोल + कुल, जंगली सूअरोंका मुण्ड	५-८.१६
कोच–ईषत्	८-१४.५
कोविय–कुपित	६.४.६
कोस–कोष	८.१४.५
कोसंब–कोशाम्र (वृक्ष विशेष)	५.८.१३
कोह–कोध	११.८.७
क्खज्जोयय–खद्योतक	७.२.१३
क्खयकर–क्षयकर	३.७.१५
√क्खव–क्ष °प्य् °इ	२.७.१०
°क्खाणय–आख्यानक	९.१९.१९
क्खारिय–क्षरित °उ	२.६.१०
°क्खालिय–क्षालित	१.१३.५
√°क्खिखलंत–क्रीड् + शतृ	६.३.९
क्खीणारिंधण–क्षीण + अरि + इंधन	१.११.४
क्खोह–क्षोभ	६.४.१

[ख]

ख–(तत्सम) आकाश	२.३.७,५.५.८
खअ–क्षय, विनाश	९.७.१५,११.८.५
खइअ–क्षयित	३.५.८
खइय–खचित	७.१०.२३
खइर–खदिर, हि० खैर	५.८.६
खं–खम्, आकाश	५.७.४
√खंच–कृष् °वि	५.१.५
°हि (विधि०)	५.११.२९
√खंड–खण्डय् °मि	२.१५.१५
खंडिऊण	७.६ ३१
खंड–खण्ड	२ १७.११
खंडयंद–(i) खण्ड + चन्द्र (ii) खण्ड + कन्द (मूल)	५ ८ ३६
खडिय–खण्डित	१ ११ ९,७ १०.२
खंतव्व–क्षन्तव्य	७ १२ १२
खंति–क्षान्ति	११ ८ ७
खंध–स्कन्ध, समूह	७.४ ७ १० २४ ५
खंधंत–स्कन्ध + अन्त	१० १६ ५
खंधार–स्कन्धावार	५ ८ १,७ १३ ४
खंभ–स्तम्भ, हि० खंभा	१.१० १२
खग्ग–खड्ग	६.३.४,७ ६.१
खग्गंक–खड्ग + अङ्क	१.११ १०
खग्गफरु–खड्गफलक	६ १४.९
√खज्ज–खा (कर्मणि) °इ	२ २ २
√खज्जत–खा + शतृ	९.१ १०,९ ५ ६
खडक्किय–खटत्कृत (ध्वन्या०)	७ ६.५
खडखडिय–खडत्कृत, हि० खड़खड़ाना (ध्वन्या०)	६ ७.३
खडहड–(ध्वन्या०)	१ १४.७
√खडहडंत–(दे) खटत्कृ + शतृ	६ १०.११
खडिया–खटिका, हि० खड़िया	६.१४.१५
√खण–खन् °इ	९.८ १३
√खणंत–खन् + शतृ	५ १०.७
खण–क्षण (मात्र)	४.१९.५,८ १३.१०
√खणखणंत–खनखनाय् + शतृ	६ ६ ६
खणण–खनन, खनक	९.७ ६
खणंतर–क्षणान्तर	२.१६ १३
खणदिट्ठ–क्षण + दृष्ट	९ १२ ६
खणद्ध–क्षण + अर्द्ध	५ ५.१५
खत्तिय–क्षत्रिय	५ ३ १५
खद्ध–(दे) भुक्त	१.१८ ८;१०.७.२
खद्धउ–(दे) भुक्त	९.१.८
खप्पर–कपाल, हि० ठीकरा	५ २ २२
खम–क्षमा	३ ६.२
√खम–क्षम्, खमंतु (विधि०)	८ १.२
√खमावअ–क्षमापय् °मि	८ ७.१०
खमिय–क्षमित	८.७ १०
खय–क्षय	७ ९ ११,८.८ १५;१०.१९,५
√खय–क्षि °इ	१०.४ १४
खयकरि–क्षयकारी	८ ७.१६
खयकाल–क्षयकाल	१० २५ ११
खयचियउ–क्षत + चित्, क्षतयुक्त	६ ६.११
खयर–ख + चर, खचर, खेचर–विद्याधर (जाति)	५ ४.१२,५.११.१५
खयरंतअ–खेचर + अन्तक–मारक	७ ११ १४
खयरबल–खेचर + बल	७.१ ७
खयरवइ–खेचरपति	७ ५ १०
खयरवि–क्षय + रवि, प्रलयसूर्य	५ १३ १४

खयरोअ–क्षयरोग ३ ११.३
खयाण–खदान, खड्डा ५.१०.७
खयाल–कन्दरा ५.१३.३२
खर–क्षर, कठोर, प्रखर ५ ८.६
खलखलिय–खलखलायित ५ ८ २१
खलण–स्खलन ४.१५ १०
√खलंत–स्खल् + शतृ ३.८.३,९ १३.११
खलहल–खलखल (ध्वनि) १ ७ ९
√खव–क्षपय् °इ २ ११५;
°वि २.७.१४
खस–खश खुजली (व्याधि) ९.१९.७,१० ७ १
√खा–खाद्, °मि १०.१२ ६
खाइया–(दे) खातिका, गहरी खाई ४.१८.७
√खाउं–भोक्तुम्, खादितुम् १०.२६.५
खाणि–खानि, खान, निधान १०.१८.८
खामियअ–क्षमित + क(स्वार्थे) २.८.५,२.१६.१३
खारसमुद्द–क्षारसमुद्र ६.१.१३
खारिअ–क्षारित १०.५.११
खारिय–क्षारिय, कटु ७.४.१६
√खिज्ज–क्षि, (कर्मणि) °इ २.१.१४,३.१२.३
खित्त–क्षिप्त १०.१६.४
खित्त–क्षेत्र १०.२०.८
खित्तकम–क्षेत्रक्रम ११.११.१०
खिन्न–खिन्न, श्रान्त, ५.९.११;९.१३.१८
√खिर–क्षर् °इ १.१३.७
खीण–क्षीण (रहित) १.१८.१३
खीर–क्षीर १.१३.७
खीरमहण्णव–क्षीर + महार्णव, ८.१५.६
खीरोवहि–क्षीर + उदधि (क्षीरसागर) ४.१०.६
खील–कील २.१५.२
खुंद–खुदा, वाद्यविशेष ५.६.१२
खुण्ण–क्षुण्ण मर्दित ४.२१.८
√खुट्ट–त्रुट् °इ ३.८.९
√खुट्टंत–त्रुट् + शतृ ११ १५.५
खुत्त–(दे०) निमग्न २.७.९;६ १०.४,९७.१४
खुद्दअ–(I) क्षुद्र + क (स्वार्थे), क्षुद्राः जना.
(II) क्षुद्रा (विद्याजनाः) ९.१२.१९
खुद्दजंतु–क्षुद्रजंतु ९ १० ११
खुद्दु–क्षुद्र २.११.९
खुप्पाविय–मज्जित, निमग्न ६.१४ ९२
खुर–तत्सम १ १५.३
खुहिअ °य–क्षुभित ४.१०.८,१० १९ १८
खेअ–खेद १०.१६.८
खेड–खेल ४.१९.१९
खेत्त–क्षेत्र ११ ११.५
खेत्तक्कम–क्षेत्रक्रम, क्षेत्रसंख्या ११.११.१०
खोट्टिया–(दे) खोट्टिका, दासी ४ २१.१२
खोडी–गर्दभी ५.१० २२
खोणी–क्षोणी, पृथ्वी १.१५.३
खोणीरुह–क्षोणीरुह, वृक्ष ४ १६.३
खोयण–खोदना, खनन ९.८ १६
खोर–(दे) खोर ९.१३.६
खोह–क्षोभ ६ ११ ४

[ग]

गइ–गति १०.१४.१५
गइंद–गजेन्द्र ३.९.१६;४.२१ १३
गअ–गत ३.१२.२१,९.४.८
गउड–गौड (देश) ९ १९.१३
गउरव–गौरव ९ १२.१७
गंग–गङ्गा ९.१९.१५
गंगपाडी–गंगराजाओंकी राजधानी (आन्ध्रमें) ९.१९ २
गंगोवहि–गङ्गोदधि ९.१९ १५.
गट्ठि–(I) ग्रन्थी, हि० गांठ
(II) ग्रन्थी, छल ५.९.१८
गंड–गण्ड(स्थल) कपोल प्रदेश ५.१३.१०
गंडयमालण–दे० गण्डमाला (रोग) ८.७ ८
गंडयल–गण्डतल-गण्डस्थल ४ २२ १९
√गंतूण–गम् + तुमुन्, गम् + क्त्वा ८ ७ ८
गंथुद्धरिअ–ग्रन्थ + उद्धृत, विरचितम् १.५ ५
गंध–(तत्सम) गन्ध ८ ६.१
गंधलुद्ध–गन्धलुब्ध ९.९.२
गंधव्वाणुलग्ग–गन्धर्व + अनुलग्न, गन्धर्वोंके समान १.१०.२
गंधिधिर–गन्ध + उद्धित ५ १० ९
√गंधुद्धंत–गन्ध + उद्धाय् + शतृ ८.१६.४

गंभीर–(तत्सम) गम्भीर ९ ६ ६
√गग्गिर–गद्गद् °इर (ताच्छील्ये) २ १० ७
√गच्छ–गमय् °इ २.८.१८;१० ८ ७
°हि (विधि०) ९ ४ १२
गच्छि (विधि०) १० ८ ११
√गज्ज–गर्ज °इ ५.१३ २३
√गज्जंत–गर्ज् + शतृ ५ ८.१४
गज्जमाण–गर्ज् + शानच् ७.४.१५
√गज्जिर–गर्ज् + इर (ताच्छील्ये) ५ ८ ३२
गज्जिरव–गर्जि + रव, गर्जन ४ २० १२
√गडयडड्–(दे) गिड़गिड़ाना (ध्वनि) ६.१४ ४
√गड्डिवि–(दे) गाड़कर ९.८.१७
√गण–गणय् °इ ६ ७ १४
√गणंत–गणय + शतृ ६ १३ ६
√गणंती–गणय् + शतृ °ी (स्त्रियाम्) ९ १३ १
गणण–गणना ८.८.४
गणहर–गणधर १.१६.५
गणियड–गणिकाजनाः ९ १२ ७
गणियार–गणिकार वृक्ष ५ ८.११
गत्त–गात्र ६ ७ ६
गद्दह–गर्दभ ५.११.५
गब्भ–गर्भ ४ १ ८
गब्भब्भंतर–गर्भ + आभ्यन्तर ४ ७.२
गब्भंतर–गर्भ + अन्तर १.९ ४
गब्भवई–गर्भवती ४.७ ८
गब्भिण–गर्भित १० १६.५
गब्भुब्भअ–गर्भ + उद्भूत १ ५ ८
गब्भोरुय–गर्भ + उरु + ज ४.१३.१६
गम–गमन ८ ५.१३
गमण–गमन २ ८.१०
गमणविलंब–गमन + विलम्ब १.७ १०
गमणि–गमनी, जानेवाली १०.८ १
गमतूर–गमनतूर, प्रस्थानतूर्य ४.२.४
गमागम–गम + आगम–गमनागमन ५ १३ २७
गमिअ–गमित ६ १८.१०
√गम्म–गम् °इ (आत्मने) ३ १२.१३
गय–गज ५.३ १४
गय–गता: (स्त्री०) ४.१८.५
गयउल–गजकुल ३.२.११
गयद–गजेन्द्र ४.२१.१३
गयखेव–गतक्षेप, गतकाल ६ ३.५
गयगंड–गज + गण्ड (स्थल) ५.७ ८
गयघड–गजघटा ८.१३.१९
गयण–गगन १.१.१०
गयणगई–गगनगति(विद्याधर) ५.११.९; ६.१०.१३
गयणगमण–गगनगमन, गगनगति विद्याधर ६.१०.५
गयणंगण–गगन + आङ्गन ५.४ ७
गयणपव–गगनप्रवह–गगने प्रवहमान इत्यर्थः ७.२.१२
गयणवह–गगनपथ ७.५.४
गयपहरण–(i) गत + प्रहरण
(ii) गदा + प्रहरण १.११.१४
गयपार–गत + पार ४.६.१३
गयवइय–गतपतिका (स्त्री०) ८.१५.४
गयवर–गजवर ७.१०.१३
गयसारि–गजशारि, युद्धके लिए हाथीका पर्याण ७.११.२
गरल–(तत्सम) हालाहल ३.७.१४
गरिट्ठ–गरिष्ठ १०.२६.६
गरिल्ल–गरिष्ठ ७.११.१;११.१०.३
गरुअ–गुरु + क (स्वार्थे) ३.७.४
गरुड–(तत्सम) गरुड़ (पक्षिराज) ३.७.१५; ११.२.२
गरुय–गुरु + क (स्वार्थे) १.५.१४,६.१.५
गरुयड–गुरुक ८.११.३,७.४.६
गरुयमाण–गुरुक + मान १०.६.५
गरुयारउ–गुरुकार + क (स्वार्थे) १.५.९
गरुयारंभ–गुरुक + आरम्भ–उद्योग ५.८.३०
गरुव–गुरुक ४.२०.१२;९.५.७,१०.१.४
√गल–गल् °इ ११.१७
√गलंत–गल् + शतृ ५.१.२६;५.१३.१८
गल–गल, कण्ठ, हि० गला १०.२६.३
गल–वडिश, मछली पकड़नेका कांटा ५.८.२५
गलगज्जि–गल + गर्जित ६.५.६
गलत्थि–क्षेपक, फेंकनेवाला ४.२०.७
गलपमाण–गलप्रमाण ६.२.४
गलिअ–गलित १०.१८.१२
गलिय–गलित, त्रस्त ५.९.६,८.७.५

गवक्ख–गवाक्ष ८.१५.९
गवक्खतर–गवाक्ष + अन्तर १.९.४
गवय–नीलगाय ५.८.१५
√गवेस–गवेषय् °सेह (विधि०) १०.९.६
गव्व–गर्व ७.७.६;७.१२.१२
√गस–ग्रस् °इ १०.१२.१०
गसिअ–ग्रसित-ग्रस्त १०.१३.१३
गहण–गहन वन ११.८.१०
गहण–ग्रहण, लेना १०.१०.८
गहण–प्रवेश, सामर्थ्य ५.१३.२८
गहिअ–ग्रहीत १.१७.९
गहियण्ण–ग्रहीत + अन्य १.१.१२
गहियाहर–ग्रहीत + अधर ४.१७.१४
गहिर–गभीर, गम्भीर ५.१०.२,८.११.२
गहिरक्खर–गम्भीर + अक्षर १.१४.२
गहिरसर–गम्भीर + स्वर ३.४.४
√गाइज्ज–गा (कर्मणि) °इ ४.१५.१
√गायंत–गा + शतृ ५.१.१९
गापुव्वड–गाना ४.१२.१३
गाढ–गाढ, दृढ ६.४.९,७.८.१३
गाढगंठि–गाढ ग्रन्थि ९.१२.१
गाढत्तण–गाढत्व, दृढता ८.११.६
गाढिअ–गाढ, हि० गाढ़ी, दृढ १०.१४.१३
गाम–ग्राम ५.९.१;८.२.२०
गामलग्ग–ग्राम + लग्न २.१६.१०
गामार–(दे) ग्रामीण ५.९.१
गामि–(तत्सम)गामी, जानेवाला ३.५.२
गामी–(तत्सम) गामी, जानेवाली १.१८.७
गामीणजण–ग्रामीण जन ३.१.१९
गाविड–धेनव. १.१३.७
√गाविज्ज–गा (कर्मणि) °ए ५.९.११
√गास–ग्रासय्, °इ ६.९.९
√गाह–ग्रह्, गाहु–ग्रह् + क्त्वा १०.१४.९
गाह–ग्रह (कुग्रह) ९.२.७
गाहा–गाथा १.११.१५
√गिज्ज–गी (कर्मणि) °इ ४.१०.२
√गिज्जंत–गी + शतृ २.१२.१, ५.१.२३
√गिण्ह–ग्रह् °इ ८.१५.१३
°ह(विधि०) ९.१.४
°हि(विधि०) ९.१५.६
√गिण्हाविज्ज–ग्रह् + णिच् + °हु (विधि०) ९.८.९
गिद्ध–गृद्ध ६.७.७, ६.८.६
°गिर–गिरा ५.१३.१३,९.१७.१६
गिरा–(तत्सम)गिरा २.१९.७
गिरिंद–गिरि + इन्द्र ४.१०.५,५ १० ११
गिरिकडणि–गिरिकटनी, गिरिमेखला, ५-८.१४, ९ ९ १०
गिरितणय–गिरितनया, पार्वती ५.९.१४
गिरितुल्ल–गिरितुल्य ९.४ १०
गिरिदरि–गिरिविवर ९.१०.१९
गिरिनइ–गिरिनदी ८.७ ७, ११ १ ६
गिरिसिंग–गिरिशृंङ्ग ७ ८.७
गिरु–गिरा २-१८.१०
√गिल–गि, निगलना °इ ७ ५-१४
गिलिअ–गिलित ९.५.८
गिव्वाण–गीर्वाण, सुर ७.११ ३, ८.४ १५
गिहासम–गृह + आश्रम २ ६ ३
गुंजकियं–गुञ्जाकृत (ध्वनि) १० १९ ४
√गुंजंत–गुञ्ज् + शतृ ४.२२.४;५ ६ १०
गुंजा–गुञ्जा वृक्ष विशेष ५.८.१०
गुंजरिय–गुञ्जारिता (स्त्री०) ५.८.१५
गुंजिय–गुञ्जित १ १२ ५
गुंजुज्जल–गुञ्जा + उज्ज्वल ५.१३ ११
गुठ–(दे) कपटी, मायावी ४.२१ ११
√गुड–गुड्, हौदा आदि लगाकर सजाना गुडति (बहुव०) ५ ६ ४
गुडाई–गुड + आदि १०.१.३
गुड्डिअ °य–गुडित, कवचयुक्त ६ ११.३,७.५.७
गुडुर–(दे) तंबू, डेरा ५ १०.२३
गुण–(तत्सम) ज्या, प्रत्यञ्चा ५ १४.११
गुणजुत्त–गुणयुक्त ४.६ ११
गुणथाण–गुणस्थान ४.४ ५
गुणथाम–गुणस्थान ४.२.३
गुणनिलअ–गुणनिलय १ ५ २
गुणपरिमिअ–गुणपरिमित ३ ६ १
गुणवंध–रसना, मेखलाबन्ध १०.१८ ११
गुणभाय–गुण + भाग, गुणभाजन ५ १३.२०

गुणमंदिर–(तत्सम) गुणनिधान ३ २.१२
गुणसीला–गुणशीला (बहु व०) २ ११ ७
गुणहार–(तत्सम) हि० हारकी लड़ें ८ १६ ६
गुज्जरत्ता–गूर्जरत्रा, गुजरानवाला (सिन्ध) ९.१९ ९
गुज्झ–गुह्य (स्थान) ४.१९.१६
गुत्त–गोत्र ८.१० १२
गुत्त–गुप्त ८ १६ ६
गुत्तायार–गोत्राचार ८.१२.६
गुत्तिलय–गुप्तिलय १० २० ७
√गुप्प–गोपय् °ए (आत्मने०) १० १०.३
गुप्फाविय–गुल्फायित ६.१४ १२
गुमगुमिय–गुमगुमित (ध्वन्या०) ५ १.२५
गुरु–(i) गुरु द्रोणाचार्य
(ii) गुरु—बड़े-बड़े ५.८ ३२
गुरुपंथ–गुरुपथ, दीर्घयात्रा १०.८ १२
गुरुपय–गुरुपद, गुरुचरण १०.१९ १७
गुरुव–गुरुक ९ ५ ७
गुरुवयण–गुरुवचन २.७.१२
°गुरुसरि°–गुरुसरित्, महानदी २.८.७
गुरुहार–गुरुभार ४ ७.३
गुलखेड–ग्राम (मालवा) १ ४.१
गुलियाठाण–गुलिका–गुटिका + स्थान ४.१३.१३
गेअ–गेय, गीत १०.८ ९
√गेण्ह–ग्रह °इ ८.१६.१३,
°मि ९.११.१०
गेण्हेवि २.१२ १
गेय–गेय, गीत ८.९.१०
गेयारव–गेयरव, गीतरव ९ २ ६
गेरुय–गेरु + क (स्वार्थे) २ ९ ३
गेवज्ज–ग्रैवेयक ११ १३ ५
गेविज्जअ–ग्रैवेयक ११.१२.२
गेह–गृह ३.११ ११,१०.१७.२
गेहिणि–गृहिणी २.५ ४;२.१९ ३
गो–(i) धेनु (ii) जल २ ५ ३
गोउर–गोपुर १ ९ १;१ १६.३
गोट्ठ–गोष्ठ, हि० गोथान, भोजपुरी : वथान ८.१५.११
गोट्ठंगण–गोष्ठ + आङ्गन १ ७ ९
गोट्ठि–गोष्ठी ९ १७ ११
गोत्त–गोत्र ८.७ १६
गोत्तवइ–(स्त्री०) गोत्रवती ४ २ ३
गोधण–(तत्सम) गो + धन १ ९.२
गोधूम–(तत्सम) गोधूम, हि० गेहूँ ५.८.२९
गोमंडल–(तत्सम) गो (पृथ्वी) + मण्डल १.११.१३
गोमय–(तत्सम) हि० गोबर २ ९ २
गोरंगी–गौर + अङ्गी (स्त्री०) ३.३ ९
गोरसवियार–(i) गोरस + विकार
(ii) गो-वाणी + रस + विचार १ ३ ३
गोरी–(i) गौरी, पार्वती
(ii) गौरवर्णा स्त्री ४.१८ १२
√गोव–गोपय् °इ ११ ८ ९
गोवयण–गोवदन, गोमुख ९.१९.१२
गोवाल–(i) गो + पाल; पृथ्वीपालक, राजा
(ii) गो + पाल, गायोंका पालक; ग्वाला ५.९.५
गोवी–गोपी, गोपिका ५.९ ११
गोसामि–गो + स्वामी ५ ७ १५
गोसामिणि–गो + स्वामिनी १ १० ३
गोहण–(i) गो + धन, पशुधन
(ii) पृथ्वीधन ५.९.५
गोहसण–(दे) पुरुषत्व, पौरुष ५ ४ ४
ग्घविल °य–शोकसूचक ध्वनि २.५.१६;३ ९ १०

[घ]

घंट–घण्टा (वाद्य विशेष) ५.६.९
घग्घरियगिर–घर्घरित + गिरा, खोखलीवाणी २.१८ १०
घट्ठ–घृष्ट ५.१०.१०
घट्टण–घट्टन ४.२१.११
°घड–घटा, समूह ५.१०.४,६.६.५
√घड–घटय् °इ ४.१.४,८.१०.१५
घडिवि ४.१२.१५
√घडाव–घटापय् °इ ८.९.६
घडिअ °य–घटित ६.३.२,६.१०.५
घण–घना, सघन ४.१६.२,५.८.६;७.६.२२
घणउ–घना, निविड, सान्द्र ७ १.२२
घणणील–घननील १०.१.११
घणणेह–घनस्नेह ११.५.५
घणथण–घन + स्तन १.७.९
घणथणतड–घनस्तनतट ८.११.११

घणपटल–घनपटल, अभ्रपटल ९.९.८
घणुच्चत्थणी–घन + उच्च + स्तनी
(स्त्री० विशे०) ४.५.९
घणोह–घन + ओघ ९.९.९
घत्थ–ग्रस्त २.५.१२;३.११.२
घम्म–घर्म, हि० घाम ८.१३.१
घम्मण–वृक्ष विशेष ५.८.६
घरकज्ज–गृह + कार्य ३.९.७
घरपंगणु–घर + प्राङ्गण १.९.६
घरसंठिअ–गृह + संस्थित ३.९.७
घरहरिअ–घरघराहट (ध्वन्या०) १.१५.४
घरिय–घारित, विह्वल ७.४.१४
√ घल्ल–क्षिप्, घल्लिवि ९.६.९
√ घल्लंत–क्षिप् + शतृ ४.२२.२०
°f (स्त्रियाम्) १०.२०.७
घल्लिअ–क्षिप्त ६.१४.७,१०.१७.४
घवक्कड–उद्दीप्त ८.१३.१५
घविय–तृप्त ६.९.९
घाअ–घात ६.१०.८,७.३.५;१०.९.७
घाइअ–घातित ५.६.१०;६.१४.५
घाय–घात ६.१२.७
√ घाय–घातय् °हि (विधि०) ९.४.१४
घार–(दे) चील ७.१.१२
घिणावण–घृणा + आनयन, हि० घिनौना १०.७.११
√ घित्त–(अप०) क्षिप्, घित्तूण ४.१४.६
घित्तव्व–ग्रहीतव्य ९.१०.१
घुग्घुइय–घूघूयित, घूघू ध्वनि ५.८.१९
घुमघुम–(ध्वन्या०) १.१४.६
√ घुम्म–घूर्ण् °इ १.८.२
√ घुम्ममाण–घूर्ण् + शानच् ४.११.७
घुम्माविय–घूर्णायित १.१४६
घुम्मिय–घूर्णित ८.९.२
घुरुहुरिय–घुरघुरायित (ध्वन्या०) ५.८.१६
√ घुल–घुल °इ ७.१०.१२
√ घुलंत–घूर्ण् + शतृ ९.१३.१८
घुसिण–कुङ्कुम, केशर २.९.९,११.१३.९
घूयड–घूवड, उल्लू ५.८.१९,८.१५.१४
घोंटि–घोटी वृक्षविशेष ५.८.९
√ घोलंत–घूर्ण् + शतृ ४,१३.१;७.४.१३
√ घोलिर–घूर्ण् + इर (ताच्छील्ये) ४.२.१७
√ घोस–घोषय् °इ ४.१.४
घोसिअ–घोषित ७.११.४

[च]

√ चअ–त्यज्, चएसइ (भवि०) ४.६.१५
चएवि ९.१.१४
√ चव–च्यु, चएप्पिणु ३.१०.७
चइअ–त्यक्त ८.४.११
चउ–चतुः ८.११.१७
चउक्क–चतुष्क, हि० चौक ३.१०.१०;७.१२.३
चउक्कउ–चतुष्क ३.१०.१५
चउगइ–चतुर्गति १.१३.९;११.३.२
चउगइवयण–चतुर्गति + वदन (मुख) ३.७.१३
चउग्गुण–चतुर्गुण, हि० चौगुना ९.१३.६
चउत्थ–चतुर्थ १०.२२.५
चउत्थउ–चतुर्थ, हि० चौथा ४.१२.६
चउद्दह–चतुर्दश ११.१०.२
चउदिस–चतुर्दिश ११.११.३
चउपास–चतुः + पार्श्व ५.३.७
चउप्पह–चतुष्पथ ४.८.३
चउरंग–चतु + अङ्गः, चतुरङ्गः ६.२.१०
चउवण्णसंघ–चतुर्वर्ण संघ ११.१५.११
चउवीस–चतुर्विंशति, हि० चौबीस ४.४.३
चउव्विह–चतुर्विध १०.२६.१०
चउसट्ठि–चतु षष्ठी, हि० चौसठ ३.९.१२
चंग–(I) चङ्ग (सुनार पुत्र) १०.१६.१
(II) चङ्ग–स्वस्थ १०.१७ १४
चंगत्तण–(दे) चङ्गत्व, सौन्दर्य १.१५.१
चगम–सुन्दर, अच्छा, हि० चगा ११.६.१
चच्चरीय–चञ्चरीक, भ्रमर ४ २१ ५
चंचल–(तत्सम) चञ्चल °उ (स्वार्थिक) २.६.८
चंचु–चञ्चु, हि० चोंच ४.१६.६
चंचुक्खय–चञ्चु + क्षत ४.७.७
चंचू–चञ्चु ९.९.९
चंड–चण्ड १.११.१७.६ ७ २
चंद–चन्द्र ३.११ ७
चंदण–चन्दन १.११.१७
चंदणद्द–चन्दन + आर्द्र ४.२१.२
चंदणलित्त–चन्दनलिप्त ८ १२ ५

चंदणसाह–चन्दनशाखा १.१०६
चंदणह–(i) चन्द्रनखा, रावणकी बहन, (ii) चन्दनवृक्ष ५.८.३३.
चंदफलअ–चन्द्रफलक ८.८ ११
चंदमंडल–चन्द्रमंडल १.१२.२
चंदमुहिय–चन्द्रमुखी ७.१२.७
चंदवयण–चन्द्रवदन ३.३.४.
चंदसरिस–चन्द्रसदृश ४.१७.१६
चंदसूर–चन्द्रसूर्य १.१८.१०
चंदायण–चान्द्रायण (व्रत) ४.१४.१२
चंदिण–चांदनी ८.१५.१५
चंदोवय–चँदोवा १.१५.७
चप–(दे) भोजपुरी : चाँपना, दवाना १ ९.९
चंपाणयरि–चम्पानगरी ३.१०.११
चपापुर–चम्पापुर नगर १०.२४.११
चंपिअ–(दे) चंपित; देखें : 'चंप' १.१.१
चक्क–चक्र, हि० चक्का ६.१०.४,७.६.१६
चक्क–चक्र (i) समूह (ii) सुदर्शन चक्र ५.५.९
चक्कधर–चक्रधर ३.३.१२
चक्कक–(दे) चक्राकार, विशाल १.१२.४
चक्कवइ–चक्रवर्ती ३.१.११
चक्कवइविहुइ–चक्रवर्तीविभूति ३.३.१६
चक्कवट्टी–चक्रवर्ती ३.८.७
चक्कवाय–चक्रवाक, हि० चकवा ५.७.३,८.१४.१६
चक्की–चक्री, चक्रवर्ती ३.४.७.
चक्केसर–चक्र + ईश्वर—चक्रेश्वर ३.७.१०
√चक्ख–आ + स्वादय्, चक्खमि २.१५.११
√चक्खत–आ + स्वादय् + शतृ ९.५.१२
√चक्खिज्ज–आ + स्वादय् (कर्मणि) °इ १.८.६
चक्खु–चक्षु १.१.५;११.१३.८
चच्चर–चत्वर ४.१०.१,८ ७.६
चच्चरियबंध–चर्चरी + बन्ध १.४.५
चच्चिय–चर्चित ६.२.५
चट्ट–चट, शिष्य ८ ३.११,१०.८.२
√चड–आ + रुह्, °मि ५ १४.१६, °वि ८.११.११; १० १४.१०; °इँ (बहुव०) ८.१०.१६; °हि (विधि०) ५.१४.१६, चडेवि ९.३.१०,११.१४.११
√चडाव–आ + रुह् + णिच् °विवि ८.७.५
√चडफडंत–(दे) तडफड़ाते हुए १०.१४ १३
चडाविअ °य–आरोहित ४.१८.३;६.१३.१; १०.१३.१
चडिउ–आरुढ़ ७.५.७
चडिण–आरुढ़ ५.५.१४
चडिण्णउ–आरूढ ३.६.१२
चडिय–आरुढ १०.१२.४
चड्डिय–आरूढ ९.८.५
चत्त–त्यक्त २.१९.८,१०.२६.५.
√चप्प–आ + क्रम्, चप्पेवि ७ ११.१
चप्पण–आक्रमण ७.६.१०
चप्पिय–आक्रान्त ९.१३.९
√चमक्क–चमत् + कृ °इ २.१५.१७
चमक्कअ–चमत्कार ५ १२.११
चमक्किय–चमत्कृत ९ १४ १३
चमर–चामर, हि० चंवर १.१२.५;८ १३.४
चमराणिल–चमर + अनिल ३.७.७
चम्म–चर्म ११.६.२
चम्मजट्ठि–चर्म + यष्टि ४.२१.७
√चय–त्यज्, °मि ८ ५ १३, °वि ३.५.९;६.१०.१०; ९.८.६,१०.६.३
√चयंत–त्यज् + शतृ २ ७ ११,११.१४.५
चयण–त्यजन, त्याग १० २१.८
चयणिज्ज–त्यजनीय ३ ८ ५
चयारि–चत्वारि ३ १३.१४;११ ११.५
√चर–चर्, °ई ३.३ १०;चरिवि ८.३.१२;चरेप्पिणु ८.२.१०; १०.२१.७; °उ(विधि०)१०.७.३
√चरंत–चर् + शतृ ९.१०.७
चरण–(तत्सम) चारित्र ८.२.१२
चरणग्ग–चरण + अग्र १.१.१
चरणजुयल–चरणयुगल ३.३.५
चरमतणु–चरमशरीरी, जम्बूस्वामी ७.१.२१
चरमसरीर–चरमशरीर, अन्तिमशरीर ४.३.८;८.७.१
चरित्त–चरित्र १.१८.२२; ११.१५.१०
√चरिज्ज–चर् (कर्मणि) °इ २.२.११
चरिय–चरित्र प्रश० ६
चरियकरण–चरित्ररचना प्रश० १०
चरियसय–चरित्र + शत ४.४.६
चरिया–चर्या ३.६.६

चरियामग्ग–चर्यामार्ग २.१५.८
√ चल–चल °इ ५.१२.१; °उ (विधि०) ५.१२.२
√ चलंतु–चल् + शतृ (विधि०) ९.१४.१
चलण–चरण २.११.९; ३.५.३; ७.५.३
चलणग्ग–चरण + अग्र १.१.३
चलणच्छवि–चरण + छवि ४.१४.५
चलणयुगल–चरण + युगल ४.४.१३
चलरमण–चञ्चलरमणा (स्त्री० विशे०) ४.१९.८
चलवलिय–चलवलित, चञ्चल १.९.८
चलसिह–चञ्चल + शिखा २.४.१२
चलिअ–चलित १.११.६; ७.१३.२; १०.१०.३
चलिउ–चलित १.१४.१०; ४.१६.१
चलियअ–चलित ७.१३.२
√ चव–वद् °ई २.१८.१; ८.८.३, १०.८.१
चवण–च्यवन २.२.६
चवल–चपल २.९.६
चवलय–चपल + क (स्वार्थे) १.८.३
चविअ–कथित ५.१३.१३, १०.२५.७
√ चव्वंति–चर्व् + शतृ °ि (स्त्रियाम्) ७.१.१६
√ चव्विअ–चर्वित, चबाया हुआ ५.११.५
चवेड–चपेट ४.१९.२१
चसअ–चषक ४.१७.१५
चहरी–(दे) मर्दित ५.१०.१०
चहुट्ट–(दे) निमग्न होना, चपेटा जाना, फँसा हुआ °इ ७.६.२०;८.११.१०
चहुट्ट–(दे) चिपक गया, फँस गया ९.७.१२
चाअ–त्याग ८.१४.९, ११ १४.९
चाअ–चाप ४.१३ ५; ६.१.३
चाउरंग–चतुरङ्ग ५ ६.१५
चामीयर–चामीकर, सुवर्ण १.१२.७
चाय–त्याग १०.१.९
चार–(i) आचरण (ii) प्रियाल वृक्ष ५.८.३३
चारणरिद्धि–चारणऋद्धि ३.५.२
चारणाइ–चारण + आदि ३.६.४
चारहडि–चारभटी ७ ७.५
चारहडिय–चारभटी ७ ६.१९
चारित्त–चारित्र १.३.५, ११.१.१४
चारिय–चारित, ९.३.११
चारु–(तत्सम) सुन्दर १.१.७,१०.८.५
चालिय–चालित १.१२.१
√ चाव–चर्व् °हि १०.५.६
चाव–चाप ४.१८.३;६.१३.१
√ चाह–वाञ्छ °इ २.१४.२;७.१३.८
चाहिअ–वाञ्छित ६.११.१०
चिंचइय–(दे) मण्डित १.९.८
√ चिंत–चिन्तय् °इ ९.५.१;११.८.१;°वइ २.१४.६; ७.१.२१; °वि २.८.९; ९.११.१३; चिंतिवि ९.५.१; ९.८.१०; ११.८.१
√ चिंतंत–चिन्तय् + शतृ ८.२.३
चिंतासल्ल–चिन्ता + शल्य ९.१५.८
चिंतिअ–चिन्तित ९.६.७
√ चिंतिज्ज–चिन्तय् (कर्मणि) °इ ५.१३.११
चिंतिव्वउ–चिन्तयितव्यम् ११.१३.१०
चिंध–चिह्न, पताका ७.२.६
√ चिक्कमंत–चक्रम् + शतृ २.१५.१०
चिक्कराड–चीत्कार, चिंघाड़ ४.२१.११
चिक्कार–चीत्कार ५.७.१४
चिक्किण–चिक्कण, चिकना ७.६.२०
चिक्खिल्ल–(दे) कर्दम ७.६.२०
चिच्चुय–(दे) चिपटा २.१८.१२
चिण्ण–चीर्ण २.४.५
√ चिज्जंतु–चि + शतृ (कर्मणि) ११.१४.८
चित्त–मन १.१८.४,२.१५.१०
चित्तउ–चित्त + वतु, चित्त ३.१३.११
चित्तउड–चित्तौड ९.११.७
चित्तब्भमण–चित्त + भ्रमण ९.१४.१३
चित्तय–चित्र + क (स्वार्थे) ५.८.२६
चित्तलय–चित्रलित, चित्रित ४.८.८
चित्तुत्ताल–चित्त + उत्ताल, उतावला ५.५ १६
चिय–चिता २.५.१४
चिय–च + एव ७ १ ६
चिरकव्व–चिरकाव्य, प्राचीनकाव्य ९ १ ३
चिरजम्म–पूर्वजन्म २.५.१२
चिरभव–पूर्वभव ८ २.१४
चिरहिल्ल–वृक्षविशेष ५.८.८
चिराउस–चिर + आयुष्य २.१७.२
चिलिचिल–(दे) आर्द्र, गीला ५.७.८
चिलिसावण–(दे) जुगुप्सनीय २.५.१३
चिव्विल–(दे) परित्याज्य ९.१.१०

चीण–चीन (कोचीनपत्तन) ९.१९.२
चीया–चिता १०.२६.८
चीर–चीर, वस्त्र ८.१२.१२
चीरंचल–चीराञ्चल ७.४.१४
चुअ–च्युत ३.९.७;४.७.२;७.६.३३
चुंभल–चुम्भल, शेखर ६.१०.३
√चुंब–चुम्ब् °इ ४ १७.१८, चुंबवि ७.१३.७
चुंबण–चुम्बन ४.१६.११; ९ १३.९
चुंबिअ–चुम्बित ४.२१.४
चुंबियास–चुम्बित+आस्य ३ १२.२
चुक्क–भ्रष्ट २.९.३
√चुक्क–(दे) भ्रश् °मि ९.१०.९
चुक्का–भ्रष्टा (स्त्री० विशे०) २ १९.३
चुय–च्युत ३.७.३;७.९.३
चूडुल्ल–चूडा, बाहुवलय+°उल्ल (स्वार्थे) ४.११.२; ६.३.१
चूय–चूत, आम्र ३.१२ ५
√चूर–चूरय्, °इ ४.२१.३,७.६.१३,९.११ ११
चूरिअ °य–चूरित ४.२२.५;७.३.४
√चूरिज्जमाण–चूरय् (कर्मणि)+शानच् ९ ११.११
चूल–(तत्सम) केश १०.१६.३
चेइगेह–चैत्यगृह २.१९ ५
चेइहर–चैत्यगृह २.१६.११;३.२.७
चेउल्ल–चेउल्ल (देश) ९ १९.४
चेट्ठ–चेष्टा ५.७ १७
चेडअ–चेट+क (स्वार्थे) १०.१४.१
चेय–च+एव १.१८.११;१०.९ ६.
√चेयअ–चेतय् °इ २.२० ७,९ १.१६
चेल–(तत्सम) वस्त्र ८ १२.११
चेव–च+एव ७.४.८
चोइअ °य–चोदित ६.४.६;६.१२.५;६.१२ ९
चोज्ज–(दे) आश्चर्य १.३.९
चोड–(दे) चूडा, चोटी ९.१३.५
चोडदेस–चोलदेश ९.१९.१
चोर–(तत्सम) चोर ३.१० ८
√चोर–चोरय् °मि ९.१५.५
चोरत्तण–चौर्यत्व ९ १४.४
चोरिय–चौर्य हि०, चोरी ३.१४.१७
चोरियअ–चोरित १०.८.१०
√चोरेवइ–चोरय्+तुमुन् ९.११.१७

°च्चण–अर्चना ८.४.१
°च्चिय–च+एव, चैव ४.१८.७.
°च्छउ–अच्छतु, अस्तु १०.१२.६
°च्छरा–अप्सरा ९.२.९
°च्छि–अक्षि ३.१.२

[छ]

छइय–छादित ५.१२.१६;८.१४.१७
छइल्ल–(दे) विदग्ध, चतुर ५.८.३७
छंकार–जलकण १.१.२
√छंट–(दे) छंटय्, छाँटना, छंटइ ५.७.२१
छंद–छन्द ४.१२.१२
छंद–(i) अभिप्राय, (ii) आच्छादित ५.८.३६
छक्खंडवसुंधर–पट्खण्डवसुन्धरा ३.३.१२
छक्खंडिअ–षट्खण्डित ११.११.९
√छज्ज–छाज् °इ-शोभित ४.१३.१०;१०.१८.१४ ६.१४.१८
छट्ठ–षष्ठ १०.२२.८
छट्ठम–षष्ठ ३.९.१२.
छट्ठट्ठम–षष्ठ+अष्टम, ७.१२.२
छडअ–छटा
√छड्ड–छर्दि, मुच्, छड्डिवि ६.५.२;९.७.४; छड्डेविणु ७.१०.२३
छड्डाविअ–छर्दित, मोचयित ९.१.१०
छड्डिय–त्यक्त (त्यक्त्वा) ९.१.१९
छड्डिय–छर्दित, मुक्त ८.१४.२०
छण–क्षण, उत्सव ४.१९.२;९.८.१२
छणइंद–क्षण+इन्दु, पूर्णचन्द्र १०.१.८
छणदिण–क्षणदिन, उत्सव दिवस ९.८.१२
छणससि–क्षण+शशि, पूर्णचन्द्र ४.१०.३;८.३.१६
छणिंदु–क्षण+इन्दु ६.१३.३.
छण्ण–छन्न, छादित २.१२.९;९.९.८
छण्णवइ–षट्नवति ६.३.१४
छत्त–छत्र ६.७.६,७.१.१०
छत्तपड–छत्रपट ५.७.९
छत्तायार–छत्र+आकार ११ १२ १०
छद्दव्व–षड् द्रव्य १०.१८.७
°छद्दिय–छर्दित १.१.१४
छप्पयार–षट् प्रकार, छ. प्रकार १०.२२.११
छप्पयालि–षट्पद+अलि ४.२०.१०
√छमछम–छमच्छमाय् (ध्वन्या०) °छमेइ ४.११.३

√छमछमंति–छमच्छमाय् + शतृ °f (स्त्रियाम्) ७.१.१२
छम्मास–षण्मास २४.१, १०.१२.५
छम्मासावहि–षण्मासावधि ८.५ ३
छल–(तत्सम) छल, कौशल ६.९ ११,१० २४
छल–छल, बहाना ६ ५ ३
छलय–छलक (जुआडी) ४.२.१०
छलिअ–छलित ११.३ १०
छवि–(तत्सम) कान्ति, शोभा १०.१८ १४
छव्विह–षड्विध १० २३.८
छाअ–छाया, कान्ति ५.५.११
छाइय–छादित १.७.२
छाय–छाया, कान्ति २.१३.२
छाया–छाया ९ १४.१
छार–क्षार, भस्म ११.१३.९
छाहत्तरदलसअ–१०७६ प्रश० ३
√छिज्ज–छिद् (कर्मणि) °इ २.२.११
√छिज्जंत–छिद् + शतृ ४.१७.१४; ५.७.५
छिण्ण–छिन्न २ ५ १४; ६.१० ८
छित्त–स्पृष्ट ९ १७ ३
छिद्द–छिद्र ११.८.५
छिन्न–छिन्न ८ २.४
छिन्नुच्छाह–छिन्न + छाया, कान्तिहीन ८.१६.४
√छिव–स्पृश्, छिवेइ ६ १३.८
छुट्ट–(दे) मुक्त १० १७.१८
√छुट्ट–छुट् °मि ९.११ ९
छुडछुडु–(दे) (i)शीघ्र-शीघ्र, (ii)पुनः-पुनः ४ २० २
छुद्ध–क्षिप्त, निमग्न १०.६.७
छुद्धउ–क्षिप्तः ५.१३ १५, ८.१४ ६
छुरिय–छुरिका ९.१२ १
छुह–क्षुधा १ ७.७
√छुह–क्षिप्, छुहेवि(विधि०)३ ११ ९, छुहहि–(विधि०) ५.१३ ५; छुहेवि ९ ८ १८ १० ७ १०
छेअ–छेद ५ ९.९
छेत्त–क्षेत्र ९.९ १०
छेत्तमाला–क्षेत्रमाला ६.३ ५
छेय–छेद १०.४.९
छेरअ–आश्चर्य ५.९.९
छोक्कार–(दे) छोक्कार शब्द
छोडिअ–छोटित, त्यक्त १० २०.३
√छोलिज्ज–तक्ष् (कर्मणि) °इ हि० छीलना १.१०.५
√छोल्ल–तक्ष्, छीलना, °ई ५ २ १८
छोहार–छोहार (द्वीप) ९ ११.६

[ज]

जअ–जय-जेयः ९ १६.४
जअ–जग ७.४ ८
जइ–यदि २ १८.४; ४.११ ६
जइच्छ–यथा + इच्छा, स्वेच्छाचारी १० २२.९
जइयहुँ–यदा २ २.१
√जइल्ल–जि + इल्ल (ताच्छील्ये) ५.७.६
जइवर–यतिवर १० २५ ६
जइवि–यद्यपि ५.४.१; ८.११.३
जउ–जव, वेग, शीघ्रता ६ १०.९
जउण–यमुना ९ ११.१५
जं–यत् २.१३ ७
जंगम–जङ्गम २.१.७; ११.१३ ३
जंघ–जङ्घा, हि० जाघ १०.१५.७; १०.१६ २
जंघंतराल–जङ्घा + अन्तराल ४.११.१२
जंघथाम–जङ्घा + स्थाम बल ५.८ २८
√जंत–गम् + शतृ ३.६ १३, ३.११.१३; १०.१० २
√जंतअ–गम् + शतृ ११ ८.३
√जंति–गम् + शतृ °f (स्त्रियाम्) ९ २५
√जंतीण–गम् + शतृ °ीण (स्त्री० बहुव० विशे०) १.१० १
जंतु–जन्तु, जीव ८ १४.४; १० २२ ७
√जंप–जल्प् °इ ५.१३ १३
√जंपंत–जल्प् + शतृ ९ ४ १३
जंपाणअ–जम्पानक, पालकी ११ १ ९
जंपाणय–जम्पानक, पालकी ४ २० ४
जंपाणाहिरूढ–जम्पानक + अधिरूढ ३ १३.२
जंपिय–जल्पित ५ ५ ६, ८ ७.१२
जंबीर–जम्बीर, जंबीरी नीबूका वृक्ष ४ १६.४
जंबु–जम्बू (वृक्ष), हि० जामुन ४.२१.२
जंबुअ °य–जम्बूक ९.११.८ ५ ८ १०;
जंबुअ–जम्बूक, शृगाल १०.१०.८
जंबुह–वेतस् (बेंत का वृक्ष) ५.८ १३
जंबुसामि–जम्बूस्वामी ४.१०.२, ११ १५.१०
जंबुहल–जम्बूफल ४.८.२०

जंबूदीउ–जम्बूद्वीप ६.१.१३
जंबूदीव–जम्बूद्वीप ३ २ ३
जक्ख–यक्ष ४.१.९,४.३.७
जक्खामर–यक्ष+अमर, यक्षदेव
जक्खेसर–यक्ष+ईश्वर १ १७.३
जग–जगत् २.१४.१०
जगडण–(दे) कदर्थन, पीडन १.१० ११
√जग्ग–जागृ °इ १०.२२.१
√जग्गंत–जागृ+शतृ ३.१४.१३,१० ८.१६
जज्जरिअ–जर्जरित ४.१९ २१,६ ९ ६
जड–(i) जटाएँ (ii) जड, मूल ५ ८ ३६
जडमइ–जडमति १ ६.११,६ ५ ५
जडिल–(दे) जटिल °इल्ल (स्वार्थे) ५ ७ ७;१० ८ ७
जडिल–जटिल ९ ९ १२
जडिल्ल–जटिन्, जटाधारी ५.७ ७,१० ८ ७
जण–जन, लोक ९ १० १३
√जण–जनय् °इ ९.७ ३; °हि(विधि०)८.१०.१७; जणवि २.१७ १
√जणंत–जनय्+शतृ ४.२२ १३
जणअ–जनक २.१८ १४
जणकम्मण–जनकर्मण, वशीकरण ९ १६.८
जणकिण्ण–जन+आकीर्ण ३.१० ११
जणखेल्लणअ–जन+क्रीडनक; लोगोंका खिलौना ९ ३.९
जणजाणिअ–जन+ज्ञात, लोकप्रसिद्ध ८ ४.४
जणण–जनन, जनक प्रश० ११;८ ८ ९,१०.२४ १०
जणणंदिणी–जननन्दिनी १०.१९.१३
जणणयण–जननयन ३.१.९
जणणायर–जननागर, नागरिकजन १० १९ १२
जणणि–जननी ४ २२.२६; °णी ८.७.१
जणदाण–जनदान ३.२.९
जणघण–जनघन, जनसंकुल ५.४.७
जणंभोरुह–जन+अम्भोरुह ४.५.२
जणमण–जनमन ४.१५.५
जणवय–जनपद, पौरजन २.९.१३
जणविंद–जनवृन्द ४.२२.२४
जणसंकिण्ण–जनसकीर्ण ४.१४.२३
जणाणंद–जन+आनन्द ४ ८ ११
जणिअ °य–जनित २.१.१३, ९.९ ६
√जणिज्ज–जनय् (कर्मणि) °इ ११.५.४

जणेर–(अप०) जनक २.१०.८
जत्त–यात्रा ३.१२.१२; १०.२५.३
जत्तकज्ज–यात्रा+कार्य ३.१२.११
जत्तुच्छव–यात्रा+उत्सव ३.१३.२
जत्थ–यत्र १.९.१, १.९.७
जम–यम ७.४.११
जमउरी–यमपुरी १०.१४.८
जमणिह–यमनिभः, यमसदृश ६ १०
जमदूय–यमदूत ११.२.१
जममहिस–यममहिष ५ ५.१
जमल–युगल १०.१६.२
जमाइट्ठ–यम+आदिष्ट १०.९.२
जम्म–जन्म ९.१२ ६
√जम्म–जनी °इ ११.३.७
जम्मण–जन्मन, जन्म ११.९.१
जम्मंतर–जन्मान्तर २.८.२; ३.५.५
जम्मदिवस–जन्मदिवस ३ ४.३
जम्मावहि–जन्मावधि, आजन्म ८.१०
जम्माहिसेअ–जन्माभिषेक १,१.२
जय–मेघेश्वर ३.१.११
√जय–जि °उ (विधि०) १.१.३; ३.१.४, °हि० (विधि०) ४.४.१२
√जयकंखिर–जय+कांक्ष्+इर (ताच्छील्ये) १.१०.८
√जयकार–जय+कारय् °रिवि ५.२.७
जयकारिअ–जयकारित ३.४.८, ७.१३.५
जयघंट–(तत्सम) विजयघण्टा ५.६.९
जयथोत्त–जय+स्तोत्र १०.१.१३
जयमद्द–जयभद्रा (श्रेष्ठिपत्नी) ३.१०.१३
जयमंदिर–जगमन्दिर १.१७.६
जयवल्लह–जगवल्लभ ४.७ ११
जयसासण–जगशासन १.१.५
जयसिरि–जयश्री १०.१.१४
जयादेवी–वीर कविकी चौथी पत्नी प्रश० १६
जयास–जय+आशा ४.१४.२२
जयासय–जय+आशय ६.१३.६
जर–जरा ३.८.१०
जर–(तत्सम) वृद्ध ९.७.९
जरजुण्ण–जराजीर्ण १०.१४.३
जरमरण–जरा+मरण १.१.१०

जरमरणुब्भव–जरा+मरण+उद्भव ३.७.९
जल–जल, पानी, बिन्दु ४.१८.७
जलंजली–जल+अञ्जलि १०.१.२
√जलंत–ज्वल्+शतृ ४.६.२;५.५.३
जलकंत–जलकान्त (स्वर्गविमान) ८.२.२५
जलकील–जलक्रीडा ४.१९.३
जलगय–जलगत १.६ ८
जलण–ज्वलन (नाग) ३.१२.१९
जलनिहि–जलनिधि ९.५.८
जलपयर–जलप्रकर, जलप्रचुर ३ १.२०
जलपाण–जलपान ५.९ १०
जलबुब्बुय–जल + बुद्बुद् २ १८.११
जलयर–जलचर ११.४.५
जलयरबल–जलचर + बल ७.५.११
जलल्लोल–(तत्सम) जलकी लहरें ६.२.४
जलवाहिणी–(i) जलवाहिनी नदी
(ii) जलवाहिनी, हि० पनिहारिन १.६.२०
जलसेय–जलसेच(न) १०.१७.१३
जलहर–जलधर ४.२०.१२
जलहि–जलधि ६.१४.२
जलिय–ज्वलित ५.८.२३
जलोयर–जलोदर ३.११.३
जलोल्लिय–जल + उल्ल, आर्द्र–जलार्द्र ३.८.४
°जलोह–जल + ओघ ४.११.१
जव–(तत्सम) जव, वेग ५.५.१५;९.११.१३
जसइ–जसई, वीरकविका तीसरा अनुज प्रश० १४
जसणाउ–यशनाम प्रश० २१
जसणिवास–यशनिवास प्रश० २१
जसपडह–यश + पटह १.५.२
जसमइ–(स्त्री) यशमती (श्रेष्ठिपत्नी) ३.१०.१३
जसलंपड–यशलम्पट ६.७.१०
जसु–यशः १.११.३
जसुज्जल–यश + उज्जवल ७.१२.१६
जसोहणा–यशोघना (रानी) ३.३.२
जहा–यथा १०.१.३
जहिँ–यत्र, हि० जहाँ ९.१० १८
जहिच्छा–यथा + इच्छा ९.१.१४
√जा–गम्, जाएवि १०.१७ १३, जाइ १० १७.१८
जाएसमि (भवि०) १०.११.५, जामि ९.
५.४, जायवि १.१५.४; जाहि (विधि०)
२.१५.९,७.१२.१५; जाहु (विधि०)
१०.२५.७
जाअ–जात ५.१.४
जाइ–जात्य °इल्ल (स्वार्थे) ८.१२ १०
जाइमि–यानि + अपि ४.४.६
जाइँ जाइँ–यानि यानि ४.१२.१४
जाउ–जात ६.११.३
जाएव्वउ–गन्तव्यम् ५.४.१५,
जागरेल्ल–जागर + इल्ल, पहरेदार ५.७.२३
√जाण–√ज्ञ जाणिमो . ६.२.२;
°ए ३.४.१०; °मि ४.१४.९;९.३.२;
°सि १०.१५.१, °हि (विधि०)१०.१.१५
°वि १०.१७.३; °हुँ ८.९.१६; जाणिऊण
९.१७.१०; जाणिवि ९.११.११; जाणेवि
४.११.७,११.३.६
√जाणंत–ज्ञ + शतृ ४ १२.१३
जाण–यान ११.१.९
जाणवत्त–यानपात्र १०.११.७
जाणिय–ज्ञात ४.१७.२;२.११.११,१२.९
√जाणिज्ज–ज्ञ (कर्मणि) °इ ३.१ १०;७ ३.११
जाणु–जानु, घुटना ९ ७ १३
जाम–याम, प्रहर ४ ५ १५
जाम–यावत् १०२६११
जामहि–यावत् + हि ९ ५ ९
जामिणि–यामिनी, रात्रि ३.४.१०
√जाय–जनी, °इ ११ १ १३, ११ ८ १, °हि
(विधि०) ४ १४.१४, ७.४.३; जायउ–जात
८ ५ १;११.१५.८
जायण–याचना ९.१३ १४
जायर–जागर, जागृत ९ १६.९
जाया–(तत्सम) जाया, पत्नी १०.९ ४
जार–(तत्सम) व्यभिचारी १०.१०.५
जारिस–यादृश ९.१६.७
जाल–जाल, समूह ७ ९.१०
°जाल–ज्वाला ५.१३ १०
√जाल–ज्वालय् °इ ११ १३ ९
जालंधर–जालन्धर (नगर) ९ १९ १५
जालामुख–ज्वालामुख, अग्निमुख वैताल ७ ६.८
जालिय–ज्वालित ८ १५.४

जाव–यावत् २ १ १२
जि–एव, चैव, खलु १ १४ ५,८ ६.४
जिअ–जित. ७ ८.१४
जिउ–जीव ९.१.१७
जिट्ठ–ज्येष्ठ (मास) ४.३.२;४.७ ९
जिण–जिन (भगवान्) ३.३.५
√जिण–जि, °इ ५.९ १४; जिणिवि ६.१४.१; जिणेवए ३.१०.१५
जिणंद–जिन + इन्द्र १.१७.८,४.४ ९;४.५.११
जिणकित्तण–जिनकीर्तन ८ ८ ६
जिणण्हवण–जिनस्नपन ३.३ १७
जिणणाह–जिननाथ ३.१३.१३
जिणदंसण–जिनदर्शन, जिनधर्म २.१८.२
जिणदिट्ठ–जिन + उपदिष्ट ३ ९.१९
जिणपय–जिनपद १ ४ ६
जिणपडिम–जिनप्रतिमा ५.१० १५
जिणपुंगम–जिनपुङ्गव ४.१.५
जिणभवण–जिनभवन ५.३ ८
जिणमइ–जिनमती ४ ७ २
जिणयास–जिनदास ४.२ ५
जिणवइ–जिनवती ४ २२ ८,९ १७.१६
जिणवइणाह–जिनमतीनाथ, वीरकवि १.६.१
जिणवंदण -जिनवन्दना १ १४.११
जिणवयधर–जिनव्रतधर : (विशे०) ४ ३ १३
जिणवर–जिनवर ३ ७.१५
जिणवरिंद–जिनवरेन्द्र ४ १.१३
जिणसमय–जिनसमय, जिनधर्म ५ ९ ३
जिणसेन–जिनसेन १०.२१ ३
जिणहर–जिनगृह ८.३.२४
जिणुद्दिट्ठ–जिन + उपदिष्ट ४ ५ ५
√जिणेवइ–जि + तुमुन् १० १५.२, °वए ३ १५.१५
जिणेसर–जिनेश्वर १.१ १
जिणेसुर–जिनेश्वर ४.४.३
जित्त–विजित २ ३ १५;५ १.१४
जित्तसिरि–जितश्री (श्रेष्ठिकन्या) ८.१०.११
जित्थु–यत्र २ ११.९,३.११ ६
जिम–यथा १०.४.२,१०.४.१५
√जिम–भुज्, °इ ३.९ १४
जिय–जित, विजित ८.५.६
जिय–जीव २.७.४
जियअ–जीवित ७.४.८
√जियतु–जीव् + शतृ ७.१.१५
जिह–यथा ४.६.६,९.३.३
जीउ–जीव १०.२.१०;११.७.६,११.१४.१२
जीउगुण–जीवगुण ११.५.१०
√जीव–जीव् °इ ३.१.१२; जीवेसमि (भवि०) ९.११.९; जीवेसहिं ९.३ १३
√जीवंत–जीव + शतृ ७.६.३५
जीवण–जीवन २.६.९
जीवतत्त–जीवतत्त्व २.१.२
जीवभाउ–जीवभाव, जीवस्वरूप १०.२४.४
जीवसरण–जीवशरण १.१.५
जीवाइ–जीवादि (द्रव्य) २.६.७
जीवासउ–जीव + आश्रय ११.७.२
जीवासा–जीव (जीवन) + आशा २.५.१४
जीविअ–जीवित ८.७.७
जीविउ–जीवातु', जिलानेवाला ७.११.९
√जीविज्ज–जीव् (कर्मणि) °इ ११.२.७
जीवियमरण–जीवित (जीवन) + मरण २.२०.४
जीवियास–जीवित + आशा ९.११.१२
जीह–जिह्वा ५.१४.१३
जीहा–जिह्वा ८.७ ७
जुअ–युत १.१६.१
जुअल–युगल १.११.१५;८.१४ १४
√जुज्झ–युध् °इ ६.४.३; °हि (विधि) ५.१२.२५
√जुज्झंत–युध् + शतृ °उ ७.११.१४; °इं (बहुव०) ६.९ १
√जुज्झंतिय–युध् + शतृ ७.३.९
√जुज्झमाण–युध् + शानच् ७.१४.११
जुज्झभाव–युद्धभाव ७.४.१६
जुज्झमइ–युद्धमति ६ १.७
जुज्झिअ–युद्ध ६.५.५,७.१२.१२;८ १६.१५
जुण्ण–जीर्ण ९.१०.२
जुत्त–युक्त ८ २.४,११.१२.२
√जुप्प–युज्, जुप्पति (बहुव०) ५.६.४
जुयल–युगल १ १ १२
जुयलुल्ल–युगल + उल्ल (स्वार्थे) ४.१३.१७
जुवइ–युवती ४ १९.२२
जुवईयण–युवतीजन १.१६.६

जुवलुल्ल–युगल + °उल्ल (स्वार्थे) ४.४.१३;१०.१५.७
जुवाण–युवान, हि० जवान १०.१५ ८
जुवार–द्यूतकार ४.२.८
जुव्वण–यौवन २.१६.७
जूअ–द्यूत ४.२.९
जूड–जूट, जूडा ९.१२.२
जूयार–द्यूतकार ४.२.१०
√जूरंत–जूर + शतृ ७.६ १०; जूरंतिय (स्त्रियाम्) ९.१३ ३
जूवफल–द्यूतफल ४.३.८
जूवार–द्यूतकर ८ ३.१३
जूह–यूथ ८.१०.४
जूहवई–यूथपति ९ ७ १
जे–ये २.२ ६
जेट्ठ–ज्येष्ठ (भ्राता) २.१३.१०
जेत्तहे–यत्र ३.४ ११
जेत्थ–यत्र १.३ २;४.१०.२,५.४.१४:८.३ १४
जेम–यथा ३.४ ९
जेह–सदृश १०.५ ८
जेहउ–(अप०) यादृश ६.१०.१४
जोअ–जोग (ध्यान) ११ ४ ८
जोइंगण–ज्योतिर्गण, खद्योतक ८.१४ २१
जोइय–दृष्ट ४.६ २,७ १०.२
जोइस–ज्योतिष् (देव) १ १६.८,२ ५.८
जोइसगण–ज्योतिष् + गण १ १ ७
जोइसिअ–ज्योतिष्क ४ १४.२१
जोक्कार–जयकार ५.१.२१
जोग–योग्य ११.१४.९
जोग्ग–योग २.१.१०.,८.९ ४
√जोड–योजय्, °वि १.२.६.
जोडणय–योजनकः, जोड़नेवाला ९.१६.१०
जोडिअ °य–योजित ४.२.१७,२.९.१७
जोणि–योनि २.२.३;११ ३.२
जोण्हा–ज्योत्स्ना ४.१०.३
जोण्हारस–ज्योत्स्नारस ८ १५.६
जोत्तार–योक्तारः (कर्तरि) ५.१०,२०
जोय–योग (काय, वाक्. मन) ११.३.२
√जोय–दृश् °इ ९.५,९; °ह (विधि०) ८.१२.१४; °हिँ(बहुवचन)७.८.५, जोइ(विधि०)४ १८ १
√जोयंत–दृश् + शतृ ७.१३.७;१०.११.११
जोयण–योजन ७.८.५;१९..१२
जोयणसय–योजनशत ५ ४.३
जोयलीण–योगलीन १०.२६.९
√जोव–दृश् °इ ९.१४.८
°जोवण–यौवन २.१५.३
जोव्वण–यौवन २.१४.६
जोह–योद्धा ६.१०.४
जोहणय–योधनकः, लडानेवाला ९ १६ ८
जोहणार–योधनद्वीप ९.१९.१६

[झ]

झंकार–झङ्कार (ध्वनि) ५-१ २२
√झंकार–झङ्कृ °इ ४.१३.८;८ १९ ११
झंकोलिर–आन्दोल + °इर (ताच्छील्ये) ४ १५.१३
झंख–झखना °इर(ताच्छील्ये),परेशान होना८.११.१४
झंझं–ध्वनि ५.६ १०
√झंपंत–(दे) त्रुट् + शतृ ६ ७.३
झंपाण–आच्छादन, हि० झाँपना ४ १७.९
झंपिर–(दे) झम्प + इर (ताच्छील्ये) हि० कूदना २ ४.१२
झंसी–वृक्ष विशेष ५ ८.७
झडा–झडप ६ ६ ५
झडत्ति–झटिति ७.८.७
√झडप्पंत–आ + छिद् + शतृ ६ ७.३
झडप्पसाल–झपटनेवाला ७ २ १४
झडप्पिअ °य–आच्छिन्न ४.२०.१०;८ १० ४
√झणझणंत–झणझणाय् + शतृ(ध्वन्या०)१.१४ ७
झत्ति–झटिति ५.४ ६.८.१३.२; १०.१० ९
√झर–क्षर्, झरन्ति (बहुव०) ७ १.१०
झरिह–क्षरणशील ६.९.१०
झरि–(दे) झाडी ५ ८.२४
√झलक्क–जाज्वल् °हि ४.१९.७
झलक्किय–झलझलायित ७ ८.११
झलज्झल–झलझलाय् (ध्वन्या०), हि० झलझलाना ७.५ १२
झल्लरी–वाद्यविशेष १०.१९ ३
झसिय–(दे) पर्यस्त, उत्क्षिप्त, गलित २.५ १८
झाण–ध्यान १०.२३ ७
झाणग्गि–ध्यान + अग्नि १.६ ६

झाणजुयल-ध्यानयुगल १०.२२.७
झाणागम-ध्यान + आगम १०.२१ ९
झाणाणल-ध्यान + अनल ११.९
झाय-√ध्या °इ २ १४.५
झायमाण-ध्यायमान ११८.१३
झीण-क्षीण १.१२ ४
झुंबुक-(दे) झूमका ४ ८.८
√झुण-ध्वन् °इ १०.८.९; झुणन्ति (बहुव०) ४ १५ ३
°झुणि-ध्वनि १.५ ९;४ १३.८;८ ११.४
√झुल्लंत-आन्दोल् + शतृ ४ ८ ७
झुलुक्किअ-दग्ध २ १५.१६
झुलिक्किय-आन्दोलित ८ १४ ४
झुलुक्कियंग-(दे) झुलसते हुए अङ्गोंवाला १०.१३.११
°झुलुक्की-(दे) झुलस गयी (स्त्री०) १०.१५ ४
√झूर-क्षि, हि० झूरना
झूरिय-स्मृत, चिन्तित ७.६.३०
झेंदुअ-कन्दुक १.६.९

[ट]

टंक-जङ्घा ६ १०.२
टंकार-टङ्कार (ध्वनि) ५ ६.९
√टकारअ-टङ्कारय् °इं (बहुव०) ४.१.३८
टकारिअ-टङ्कारित ७ ८ ७
टटं-ध्वनि विशेष १०.१९.२
टक्क-ठक्क, पञ्जाब ९.१९ १०
टणक्किय-टङ्कारित ६ १३.४
टिंबर-टिम्बर वृक्ष ५ ८.९
टिविल-वाद्य विशेष १० १९.२
टेंट-(दे) टेंटा, द्यूतगृह ४.२.१०
ट्ठिअ-स्थित, स्थूल, कठोर २ १४.९,४.७.१०; ६ १०.१२

[ठ]

ठक्कुर-ठाकुर, योद्धा ७ ६ १९
√ठव-स्थापय् (विधि०) °हि ५ १३.२६; °वि २ ७ ९; ठवेप्पिणु १ १० ९
ठविअ-स्थापित ४ १४.२१, ९.१.९
ठाण-स्थान ५.१० २३
√ठा-स्था °हु (विधि०) ३.६ ९

ठिअ-स्थित १ ११ १९; १०.१४.३; ११.१२.२०
ठिय-स्थित २.१७ ४;३.३.१५

[ड]

√डंक-दंश् °इ ३ ८ १०; डंकेइ ८ १७ १२
√डंभ वञ्च् °हि १०.५.८
डक्क-(दे) डक्का (वाद्य विशेष) ४.२.७,५ ६.९
डक्कार-डक्कार (ध्वन्या०) ७ ६.१३
√डज्झ-दह्, °इ ८.१६ ५; °ए (आत्मने०)३.९.१
डज्झमाण-दह् + शानच् ४.१४.८; ९ १४.६
√डज्झं-दह् + शतृ °तिय (स्त्रियाम्) ६ ५.१
डमडंक-डमरु ध्वनि ५ ६.९
डमडक्किय-ध्वनि १०.१९.३
डमडमिय-डमडमायित ध्वनि ५.६ ९
डमर-भयङ्कर ४.२२.४
डमरु-डमरु वाद्य ५ ६ ९;७ ३.१
डर-डर, भय ३.२ १३;९ ४.२
डराविय-भीपित, डराये हुए ६.१३ ५
√डस-दंश °इ ४.१९.१७; डसन्ति (बहु व०) ४.११.१२,६ १३.५
डसिय-दष्ट ४ २२.१०
√डह-दह् °इ २ १६ ५; ३.३ १६
√डहंत-दह् + शतृ, दहत् ७.९ ६
डहण-दहन, अग्नि ७.९.११
डहाला-जबलपुर प्रदेश ९.१९.१५
डाइणि-डाकिनी, हि० डायन ७.१.११
डाढ-दंष्ट्रा ३.८ १०
डाल-(दे) शाखा ५ १०.१५
डाहुत्तार-दाह + उत्तार, अग्निमे तपाया हुआ ८.१२.९
डिंडिम-डिण्डिम वाद्य १०.९ १
डिंभ-डिम्भ, बालक ५ ७ १७
डिभरुय-डिम्भरत् ३.२ ११
डेविअ-डिप्त, उल्लङ्घित ७.१०.११
डोलहर-दोला ४.१६ ११
√डोल-दोल् °इ ८.७ ६;
डोल्लन्त-दोल् + शतृ, दोलायमान ९ १८.६
डोल्लिय-दोलित १०.१५ ५
डोव-डोम (एक जाति) ५ ११ ४
√डोह-दोह्, डोहिऊण-अवगाह्य ४.२१.३
√डोहिय-दोहित, अवगाहित ५ ७ १२

[ढ]

ढउह–ढौह वृक्ष ५.८.१२
ढक्क–ढक्का, वाद्य विशेष ४ ५.१२;५ ६ १०
√ढक्क–छादय् °इ ११.८.२
ढक्कसार–वाद्यविशेष १.१४ ८
ढलक्किय–(दे) ढुलक गये ७.८.१०
ढलिअ–(दे) ढलित, ढुलक गये १० १४ १५
√ढालिज्जइ–(दे) ढाला जाता है १०.१४.११
ढिल्ल–शिथिल ९.१७ ३
ढुक्क–ढौकित ६ ११.३
√ढुक्क–प्र + विश् °इ १० २५ १
√ढुक्कत–प्र + विश् + शतृ ६.९ ७
ढुक्कउ–ढौकित ८.१३.१४
√ढोइज्जमाण–ढौकय् + शानच् ५ १.२२;९.१३.७
√ढोय–ढौकय् (विधि०) °इ १०.११ ८
√ढोयंतु–ढौकय् + शतृ १ ३.८
ढोर–(दे) पशु ८ ११ १०

[ण]

णं–ननु १ १०.१, २.३.३, ४.७ ४, १० २० ७
ण्हविय–स्नापित ५ १० १६
√ण्हा–स्ना, ण्हाएवि ९ ८.१५
√ण्हाव–स्नपय् °इ ५ १० १५
ण्हाण–स्नान ४.१८ ८

[त]

तइअ °य–तृतीय २ २० १०, ३ ५ ८,१०.९ ६
तइयअ–तृतीय + क (स्वार्थे) ८ २ २२; १० २२ २
तइयहुँ–तदा २.२ १
तइया–तदा, तृतीया १ १ ४; प्रश० १६
तइलोक्क–त्रैलोक्य १ १ ८, १ १७ ७, ८ ११ ६
तई–तदा, तस्मिन् काले ४ ८ १४
तउ–तत', हि० तो ७ १३ १८
तउ–तव, तुम्हारा ८ ६.६
तउ–तप २ २० ८
तउधम्म–तपधर्म ८ १० १४
तए–तव, तुम्हारा १ १८ १०
तओ–ततः ४ ५ १६,१० ९ ७, १० २६ ७
तं–तत् २ १२ ३, ४ १७ १३
तं–तम् ६.४.२
तंजिया–तंजिका (देश) ९.१९ १
तंडविय–तत, विस्तीर्ण ५ ७ ९
तं तं–तत् तत् ३ १४ १०
तंतवाल–तन्त्रपाल ५ ६.२
तंति–तन्त्री (वाद्य) ४ १५.३
तंवा–गौ· ४ १८ १३
तम्बाहर–ताम्र + अधर ४.१८ १२
तंविर–ताम्र १.१२.३,५.१८.१२
तंबोल–ताम्बूल ८ ९ ४
तंबोलवत्त–ताम्बूलपत्र ९.१२ ३
तक्क–तर्क ४ १२ ११
तक्कर–तस्कर ९.१५.२
तक्करकम्म–तस्करकर्म ३.१४ १६
तक्करवित्ति–तस्करवृत्ति ३ १४.२३
तक्करायार–तस्कर + आचार १० १८ ९
तक्खड–(श्रेष्ठि) १ ५ ३;१ ५ ८
तक्खण–तत् + क्षण ५ १० २०; ६.१२ १०
तखिखितखितक्खि–वाद्य ध्वनि ५ ६.१२
√तज्ज–तर्जय्, तज्जिऊण ७.३ ६
तट्टअ–त्रस्त + क (स्वार्थे) १ १० ८
√तड–तन् °इ ६.५.२.
तड–तट ४.१९ ५
तडतडण–तडतडण (ध्वन्या०) १ १४ ९,५.६.७
तडतडिअ °य–तडतडित ५ ६ १३, ७ ८ ७
तडत्ति–तड इति, हि० तडसे ५ ७ १९
√तडत्तीह–तड् + इति + इह, तडसे २ १९ १
√तडफिड–(दे) तडफडाना, तडफिडवि ७ ५ १२
√तडयडंत–तडतडाय् + शतृ ११ १५ ५
तडि–तडित् ७ ८ ७
तडिखरतडि–ध्वन्या० १ १४ ७
तडिमालि–तडित् + माली, विद्युन्माली देव ४ ७ २
तडिय–तत, विस्तीर्ण ९ १० ८
तडियतडि–ध्वन्या १०.१९ ४
तडिवडण–तडित् + पतन ५ ६ ७
तण–तृण ६ १३.६
तणउ–प्रति, सम्बन्धी (सम्बन्धवाचक अव्यय) १.११ १९, २ १८ १४
तणअ–तनय, पुत्र ४.७ ११, ९ ३ १२
तणभूमि–तृणभूमि १ ९ ४

तणिया-(अप०) षष्ठि (सम्बन्धसूचक) अव्यय (स्त्री०) २.१६.३
तणु-तनु, शरीर ३.१० १,८.१२-१३.११.१२.११
तणु-तृण ४.२.११
तणुअ-तनुक-क्षीण ४ १८ ११
तणुकंति-तनुकान्ति, ३.१३ ३
तणुचेट्ठा-तनुचेष्टा, शारीरिक सेवा १०.२३ ३
तणुताण-तनु + त्राण, रक्षाकवच ६ ७ ४,६.९.७
तणुपह-तनु + प्रभा, देहकान्ति ३.१०.६.
तणुब्भव-तनूद्भव ८.६.३.
तणुरुह-तनुरुह, पुत्र १०.३९.
तणू-तनु ८.४.१०
तण्हालुयङ-तृष्णालु + क (स्वार्थे) २.६.९
तत्त-तप्त १०.१३.२
तत्त-तत्त्व २.१.५; २.६ ७
तत्तत्थ-(1) तत्त्वार्थ (ii) तत्रस्थ १० ३.११
तत्थ-तत्र ३ ७ ३; ११.११.४
तत्थत्थि-तत्र + अस्ति ३.१.१३
तदिदिखुदिखुंद-ध्वन्या० ५ ६.१२
तद्दव्व-तत् + द्रव्य १०.९.८
तद्दिवस-(तत्सम) तत् + दिवस ३ ९.६
√तप्प-तप् °इ १.११.१९; २.६.१२
तप्पणदेवय-तर्पण देवता ४.१७ १३
तम-(तत्सम) अन्धकार १.९ ७;१०.२५.११
तमणाम-तमनाम, तमःप्रभा नरकभूमि ११.१०.८
तमणासण-तमनाशन १०.२३.३
तमणियर-तमनिकर ४.३.१५
तमारि-(तत्सम) तम + अरि, सूर्य ५.११.१६
तमालि-(तत्सम) तमसमूह १० ६.४
तमी-रात्रि ४ ५ २२
√तर-तृ, तरेइ ५.५.५; तरंति (बहु व०) ७.१ १०; तरवि १०.१०.२
√तरंत-तृ + शतृ °इ (बहु व०) ६.९.८
तरड-वाद्य १.१४ ८
तरंग-तरङ्ग २.१२.९;४.१९.६
तरंगिणि-तरङ्गिनी, सरित् ८.११.१२
तरट्ट-(दे) प्रगल्भ ९ ३ ८
तरट्टि-(दे) प्रगल्भ स्त्री ४.२१ १२
तरणि-तरणि, सूर्य ४.१९ ३
तरल-चंचल ३.१.१७
तरलच्छि-तरल + अक्षि ४ ८.४
तरलदल-(तत्सम) चञ्चलपत्र ४.१६.३
तरवार-तलवार ७-६ ७
√तरिय-तृ + क्त्वा १०.१०.२
तरिया-हि० तैराक १०.११.७
√तरिल्ल-तृ + इल्ल (ताच्छील्ये) ५.७.१२
तरु-तरु २.४ ८
तरुणअ-तरुण + क(स्वार्थे) ९.३.८
तरुणत्तण-तरुणत्व, तारुण्य २.१८.३
तरुणभाव-तरुणभाव, तरुणावस्था ४.९.७
तरुणारुण-तरुण + अरुण ४.८.१
तरुणि-तरुणी ३.१२.१५
तरुणियण-तरुणीजन ४.१९.६
तरुणी-तरुणी, युवती ३.९.९
तल-तल १०.१३.२;११.९.९
√तलप्पंत-(दे) उछलकर आते हुए ५.१४.६
तलवायह-(दे) तलस्पर्शीगतिसे तैरना ४.१९.१०
तलाय-तडाग ४.६.४
तलार-(तत्सम) कोतवाल, नगररक्षक ९.१४.१; १०.८.११
√तलिज्ज-तल् (कर्मणि) °इ २.२.२
तल्लूविल्लि-(दे) तडफड़ाहट ९ १०.५
तव-तप २ ६.५
तव-तव, तेरा ४.६.१४;४.११.१३
√तव-तप्, °इ ३ ६ ७
तवंग-प्रासाद ४.१९ १६;१०.१५.५
तवंतर-तप + अन्तर, तप प्रकार ३.१०.१०
तवगहण-तपग्रहण ३.८.१
तवचरण-तपश्चरण ३.९.८,३ ९ ४,८.१२.१८; ९.१६.१२
तवण-तपन, सूर्य ८.१४.४; ९.१०,३;
तवतविय-तपतपित ८.४.१०
तवफल-तपफल १०.२६.६
तवसंतक्खर-तप + मन्त्र + अक्षर ३ ७ १५
तवसाहिय-तप + साधित ३.१३.१५
तवसिरि-तप. श्री ३ ६.१
तविय-तपित ५.१२.१२
तवोवण-तपोवन ८.११ २
√तस-त्रासय्, °इ ३.१६.१४
तह-तथा २.६ १२, ३.१२ ३; ९.५ १२

तिलोयग्ग–त्रिलोक + अग्र १ १८.७
तिल्ल–तैल २.२.२
तिल्लिय–तैलिक, हि० तेली १०.४ १५
तिवग्ग–त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) ४ ९.६
तिवलि–त्रिवली ४.१९ १६
तिव्व–तीव्र ५.१.१६
तिव्वतव–तीव्र ताप ६.१४.३
तिस–तृषा २.२.११
तिसट्ठि–त्रिषष्ठि ४.४ ५
तिसायअ–तृषित ९.७.१५
तिसिअ °य–तृषित ८ ११.१०; ९ ७.११
तिह–तथा १०.४ १३
तिहिवार–तिथि + वार (रविवारादि) ३ ४.१
तिहुअण–त्रिभुवन ४ ९ ९
तिहुयण–त्रिभुवन ४.१४.१६
तिहुयणतिलअ–त्रिभुवनतिलक २.१८.२
तिहुवण–त्रिभुवन २.४.६;७.५.१४,११ २ ८
तीर–तीर, तट १०.९.८;१० १०.७
तीरुत्तार–तीर + उत्तरण ११.८.४
तुंगिम–तुङ्गिमा १.१५.११
तुच्छ–तुच्छ १.९.११
√तुट्ट–त्रुट्, °इ १०.४.१३
√तुट्टंत–त्रुट् + शतृ ४.८.४;११.१५.५
तुट्ठ–तुष्ट ९.१०.२०
तुट्ठमण–तुष्ट + मन १.१४.१२
तुडिअ–त्रुटित १०.१२.७
तुण्हिक्क–तूष्णीक ८.२.६
तुरग–तुरङ्ग ४:२१.१४
√तुरंगम–तुरङ्गम ५.११.१२
√तुरंत–त्वरय् + शतृ ९.१०.१०
तुरय–तुरग ४ १३.१५; १०.१९.७
तुरयविंद–तुरगवृन्द ७.८.३
तुरिअ तुरिअ–त्वरया त्वरया २.१३.५
तुरुक्क–तुरुष्क, तुर्की (देश) ९.१९ १०
तुलिय–तुलित ७.४.९
तुल्ल–तुल्य ४.१३.१७
तुसार–तुषार ७.२.८
तुहिणायल–तुहिनाचल, हिमालय ४.१०.५
तूर–तूर (वाद्य) ५.१०.१४, ६.२.८
तूरसद्द–तूरशब्द ५.६.१५
तूल–तूल, रुई ८.१६.३
तूलियंक–तूलि + अङ्क, गद्दा ४.५.२३
तेअ–तेज ३.१२.१९;४.८.१
तेतीसोवहि–त्रयस्त्रिंशत + उदधि (आयु प्रमाण) · ११.१३.६
तेत्तड–(अप०) तावत् ६.१.१८
तेत्थ–तस्मात्, तत्र ५.४.६; ६.११.३
तेय–तेज १.१८.१९;५.१२.१२
तेयपूर–तेजपूर, तेजपूर्ण १.१८.२
तेयमाल–तेजमाला १०.१.११.
तेयवारि–तेज + वारि, तेजवारि २.३.२
तेरउ–(अप०) तेरा ५.१३.२७; ६.२.३
तेलोक्क–त्रैलोक्य ४.३.१४
तेल्ल–तैल ५.७.२३
तेल्लिय–तैलिक, हि० तेली ५.७.१९
तेहअ–तथैव ८.१३.८
तो–तत, तावत् २.१७.१; ६.७.१२; ९.२.१२
तोअ–तोय १.१.२
√तोड–त्रुट्, °मि ४.२.१२
√तोडंत–त्रुट + शतृ ४.७.१३
तोडणय–त्रोटनक, तोड़नेवाला ९.१६.१०
तोडिअ–त्रोटित ४.२१.५
तोण–तूणीर ७ ८.१
तोमर–तोमर, शस्त्र विशेष ७.९.१३
तोयावलीदीव–तोयावलीद्वीप ९.१९.६
तोरविय–(दे) उत्तेजित ५.१०.५
तोरा–(दे) तुम्हारा ४.१८.१
√तोल–तोलय् °ए (आत्मने०) ७.४.१०; °हि (विधि०) ११.६.५
तोलिय–तोलित ८.३.१०
√तोस–तोषय्, °इ ११.८.७
तोसल–तोशल (देश) ९.१९.१
त्ताडिअ–ताडित ५.५.१०
त्तार–तार, विशाल, ८.१२.९
त्तास–त्रास १.१५.४
त्ति–इति ५.१४.८
°त्थवण–अस्तवन ९.९.२
°त्थाणु–आस्थान ६.१.१६

[थ]

थंभ–स्तम्भ ५.१२.१३
√थंभ–स्तम्भय्, थभेवि ३.१४.१२
थंभण–स्तम्भनः, रोकनेवाला ९.१६.८;११.८.१
थक्क–स्तब्ध, ६.१३.८,७.९.११;८ १५.१४
√थक्क–क्लम् थकना, श्रान्त होना °इ ५.८.३७, ११.२.८; °उ (विधि०) ११.१४.४
√थक्किज्ज–क्लम् (कर्मणि) °ए ५.९.११
थगडुग–वाद्य . ५.९.११
थगथुगि–(ध्वन्या०) १.१४.६
थट्ट–समूह ४.८ ४,१०.१६.१२
थड–यूथ, समूह ५.१.११
थड्ढ–स्तब्ध ५.८ ३४,५.१०.१०
थण–स्तन ४.१९.११,५.९.१०
थणपब्भार–स्तनप्राग्भार ४.१९.२१
थणमंडल–स्तनमण्डल २.१४.८,२.१५ १५
थणयड–स्तनतट, चूचक ९.१३.९
थणवट्ट–स्तनवृत्त ४.१५.११,४.१९.१५
थणसिहर–स्तनशिखर ४.१९.६
थणहर–स्तनधर, वक्षस्थल ८ १६ ६
थणहारय–स्तनधरा, स्तनधारिणी (स्त्री० विशे०) १.६.८.

थत्ति–स्थिति, स्थान १०.२५.७
√थरहरंत–थरहराय् + शतृ ६.५.८
थरहरिअ–कम्पित १.१.१.
थलकमलिणि–स्थलकमलिनी १.७.४
थलीमडल–स्थलीमण्डल, राजस्थान ९.१९.७
√थव–स्थापय् °इ २.७.१
थवइ–स्थपति, निर्माता ५.९.१४
थविअउ–स्थापित, रखा हुआ ११.६.४
थाण–स्थान, आसन ५.१.३,७.१०.३
थाणंतर–स्थान + अन्तर १०.१७ १
थाणयर–स्थानकरः, पहरेदार ३.१४.१२
थाणु–स्थान २.५.१३
थाम–स्थाम, बल २.१.११,३.१०.८
थाम–स्थान ११.१०.८
√थाव–स्थापय् °इ ११.१० १, °उ(विधि०)८.२.८; थावन्ति (बहु व०) ४.१९.११
√थावंत–स्थापय् + शतृ ११.१५.१
थावण–स्थापन ११ ७.१
थावर–स्थावर (जीव) ११ १३ ३
थाविअ–स्थापित ३.७.१;७.११.१६
थाहर–स्थान, हि० ठोर ७.१०.२१
थिअ–स्थित ३.९.१८;८.४.११,९.६.९;१०.८ १६
√थिप्पिर–वि + गल् + इर (ताच्छील्ये) ९.१० २
थिय–स्थिता (स्त्री०) १० १० ७
थिय–स्थित °उ (स्वार्थिक) २.८.५,७.४.१७
थिया–स्थिता (स्त्री०) ९.६.६
थिर–स्थिर ४.९.९;५.२.७
थिरगमण–स्थिर + गमन °उ (वत्) १.६.६
थिरदिट्ठि–स्थिरदृष्टि ५.१२.१३
थिरिरि–वाद्य ५.६.१३
थिरिरिकिटक्टकट–(ध्वन्या०) ५.६.१३
थुइ–स्तुति ४.११.७
थुगियग–(ध्वन्या०) १.१४.६
√थुव्वंत–स्तु + शतृ १०.१९.१६
√थुण–स्तु थुणिवि १०.१८.६
थुत्थुक्कारिअ–धिक्धिक्कृत ८.७.१३
√थुव्वंत–√स्तु + णिच् + श १०.१९.१५
थेर–स्थविर १०.८ १
थेरि–स्थविरा (स्त्री०) ९.९.८
थोअ–स्तोक १०.८.३
थोत्त–स्तोत्र १.१८.१४
थोर–(दे) स्थूल, गोल ८.११.६
थोरियगरिल्ल–(दे) गोलाईसे मोटा ऊँचा लपेटा हुआ शिरोवस्त्र ५.७ १२
थोव–स्तोक ५.१०.१७
थोव–स्तोक + °उ (स्वार्थिक) १.५.११
थोवंतर–स्तोक + अन्तर १.१५.८
थोह–(दे) बल, पराक्रम ९.९.५

[द]

दइअ–दैव २ १५.२
दइव–दैव, दैत्य ९ १९.१८
दइच्च–दैत्य ५.१४.८;१०.९.३
दइय–दयिता, पति, प्रेमी ३.११.१४;४.१७.७
दइयंबरिय–दिगम्बरी + क (स्वार्थे) २.१७.५; ८.५.१४

दइयायत्त-दैव + आयत्त, दैवाधीन ७,१२.१४
दइव-दैव ४.१२.१६
दइवसंजोअ-दैवसंयोग १०.१४.१२
दउवारिय- दौवारिक १.१२.९
दंड-दण्ड (नीति) ४.२१ ८;५.३.५
दंडकर-दण्डकर , दण्डधारी, २.७.५
दंडकरंविअ-दण्डगर्वित ५ १३.९
दंडगब्भिअ-दण्ड + गर्भित-शक्तिगर्भित, मानगर्भित ५.१३.१३
दंडधार-दण्डधारक १ १५.६
दंडियाचउक्क-दण्डिका चतुष्क ५.१.१२
दंत-दन्त ५.२.१८
दंतग्ग-दन्त + अग्र ६.७.६
दंतपंति-दन्तपङ्क्ति १.१०.५
दंतवण-दन्तवन, दातून ९.११.३
दंति-दन्ती, हस्ति ६.७.६
दंतिम-दन्तमय ४.११.२
दंतुर-दन्तुर ४.१४.२;९.१८.५
दंसण-दर्शन २ ८.२,४.१०.८
दंसणावरण-दर्शनावरण (कर्म) १०.२४.३
दंसिअ-दर्शित २.१०.१०;६.१२.७
दक्ख-द्राक्षा, अंगूरका वृक्ष, १.१०.११,४.१६.३
दक्खवण-दर्शावन, दिखलाना ५.१४.५
दक्खविय-दर्शित ४.२.१०
दक्खारस-द्राक्षारस १.७.४
√दक्खालंत-दर्शय् + शतृ १०.१४.१२
दक्खिण-दक्षिण (दिशा) ९.१९.१
दच्छ-दक्ष १०.१०.८
दच्छि-दक्षा (स्त्री० विशे०) ४.१८.५
दट्ठ-दष्ट ६.६.१०
°दट्ठाहर-दष्ट + अधर ५.१३ ११
दट्ठोट्ठ-दष्ट + ओष्ठ ५.१४.१२
दट्ठुं-दृष्टुम् ४.१.१
दडिअ-दडदडायित (ध्वन्या०) ५.१४.१६
दडिडंवर-वाद्य ५.६.७
दड्ढ-दग्ध ४.१८ ९,११.६.४
दढ-दृढ ५.१४.२१
दढ-दग्ध २ ६.१
दढपइज्ज-दृढप्रतिज्ञ ९.१४.९
दद्दुर-दर्दुर ७.९.१०;८.१३.६

द प-दर्पण १०.२० ३,१०.२२.५
दप्पण-दर्पण १०.३.५;१०.४.८
दप्पणकरा-दर्पणकरा, दर्पणहस्ता (स्त्री० विशे०) १.१० ४
दप्पणतेय-दर्पणतेज १०.४.९
दप्पहरण-दर्पहरण ६.४.८
दप्पिअ-दर्पित ५.३.३
दप्पिट्ठ-दर्पिष्ठ ५.१४.९
दप्पिणि-दर्पिणी, दर्पित करनेवाली ४.३ १४
दप्पिय-दर्पित १.१२.१;५.१३.७
दप्पुब्भड-दर्प + उद्भट ५.१२.२५
√दम-दमय्-दमय् °हिं १०.१०.१५
दम-दम, इन्द्रियनिग्रह ३.६.२
दमण-दमनः, दमन करनेवाला ४.१५.७
दमदमिय-दमदमित (ध्वन्या०) ७.५ ५
√दम्म-दमय् °इ ५.१३.२२
दय-दया ९.१०.१७;११.१३.१०
दयवंत-दयावन्त ३.४.१२
दयावण-(दे) दयोत्पादक, दीन १.९.११
दर-दर, ईषत् ४.१३.१७,४.१५.१२
दरसाविय-दर्शित ७.१२ १
दरसिय-दर्शित ८.२.१६,८.११.७
दरहसिय-दरहसित ११.६.६
दरि-गिरिकन्दरा २.८ ७,४.२०.१२
दरिद्द-दारिद्र्य ६.१.१,९.८.२
√दरिस-दर्शय् दरिसावइ ४.११.५, दरिसावमि ९.११.६
दरिसि-दर्शी, दिखलानेवाली, दर्शनीय १.५.१
दरिसिअ-दर्शित ३.१२.१२
दरुण्ह-दर + उष्ण, ईषदुष्ण ८ १४.२
दलवट्टण-दलमर्दन १.८.९
दलिअ°-दलित ६.८.१,७.४ १;९.६.२
√दलिज्ज-दलय् (कर्मणि) °इ ११.२.६
दवक्किय-(दे) द्रुतकृत, दुबकना, छिपना ७.८.११
दवण-दमनः, दमन करनेवाला १०.२६.११
°दवण-दमन ५ १२.१६;६.१०.५
दवत्ति-झटिति, तुरन्त १०.१०.९
दविड-द्रविड़ ९ १९.२
दविण-द्रविण ९.१५.६,१०.२.३
दव्व-द्रव्य १०.२.१०;१०.१०.१

दव्वसरूव–द्रव्यस्वरूप ९.१.१७
दव्वावेक्ख–द्रव्य + अपेक्षा १०.२२.१२
दस–दश २.३.९
दसण–दशन ९.१३ १०
दसदिस–दशदिश् १०.२५.१०
दसदिसि–दशदिशि ४ ७.१२
दसपयार–दशप्रकार ११.१२.८
दसम–दशम १.१६.९,४.८.१
दसम्मि–दशमी तिथि, प्रश० ४
दसलक्खण–दशलक्षण ११.१४.१२
दससायर–दशसागर ३.१०.२
दह–द्रह ९.९.११
दह–दश ११.१०.६
दहम–दशम, दसवाँ, १.१६.९
दहमुह–दशमुख, रावण ३.१२.१
दहलक्खण–दशलक्षण (धर्म) ११.१३.७
दहविह–दशविध (धर्म) ११.२.१०
दहि–दधि, दही ७.१२.५;८.१५.११
√दाव–दा, °इ ५.७.३; दाऊण ६.७.९
√दिंत–दा + शतृ ४.१९.७
दाइज्ज–दायाद, दहेज ८.१२.८
दाढावलि–दंष्ट्रा + आवलि ९.७.५
दाढिय–दाढी १०.१६.६
दाढिय.ल–(दे) दाढीयुक्त ५.८.२७
दाढुक्खय–दंष्ट्रा + उत्खात ५.८.१६
दाण–दान २.१२.४,४ ७.८
दाणंबु–दान + अम्बु ४.२२.५
दाणपवत्ति–दानप्रवृत्ति १०.२.३
दाणवसण–दानव्यसन १०.२.३
दामिअ–दामित, दमित ५.७.१५
दार–द्वार ९.१७.३,१०.१३.५;१० १७.८
दारकवाड–द्वारकपाट ९.१५.१०
दारिय–दारित, विदारित ६.८.८,८ १०.३
दारुवण–(I) दारुण, ताण्डवनृत्य (II) दारु (वृक्ष)वन ५.८.३६
दालिमालि–दाडिम + माला ४.२१.२
√दाव–दर्शय् °इ १.१०.३; °ए (आत्मने०) १.९.५
√दावंत–दर्शय् + शतृ ४.१७.२२
√दाव–दापय् °इ ८.१७.८
दाविय–दर्शित ८.६.९
दासत्तण–दासत्व ५.१.११
दासि–दासी ४ १९.२०;८.१२.१२
दाहिण–दक्षिण, दाहिना ७.१०.१७,९.१२.३
दाहिणपह–दक्षिणापथ ५.२.१२
दिअ–द्विज २.११.१;२.१३.१
√दिंतु–दा + शतृ ३.११.६; देंतु ३.११.१४; ४.१७.११; दिंती (स्त्रियाम्) ८.११.९
√दिक्ख–दीक्ष्, दिक्खंकहि (विधि०) २.१९.१०
दिक्खकिअ–दीक्षाङ्कित २.७.१०,३.५.१३
दिक्खा–दीक्षा २.१४.२,१०.२०.१
दिक्खिअ–दीक्षित २.४.१०
√दिज्ज–दा (कर्मणि) °इ ४.२.१४;१०.१०.४; ११.८ ६. °उ (विधि०) २.८.११;८.५.१४; °हि (विधि०) ३.१३.५
दिट्ठ–दृष्ट २.३.८, ४ १३.१६, १०.९.७
दिट्ठअ–दृष्ट ९.१.६
दिट्ठु–दृष्टम् ५.५.१५
दिट्ठफल–दृष्टफल १० २१.९
दिट्ठि–दृष्टि २.८.४;८.११.१६
दिट्ठिवह–दृष्टिपथ १०.१५.११
√दिढ–दृढय् °वि १०.२५.९
दिढ–दृढ ७.४.६,११.८.२
दिढचित्त–दृढचित्त ९.२.१
दिढधम्म–दृढधर्म (मन्त्रिपुत्र) ३.७.८,३.९.१०
दिढप्पहारि–दृढप्रहारी (भील) १०.१२.१
दिढमइ–दृढमति २.७ १२
दिढवग्ग–दृढवल्गन, खूब कूदनेवाले ७.८.३
दिण–दिन ३ ९.१२
दिणमणि–दिनमणि, सूर्य ५.१०.४,७.२ १२
दिणयर–दिनकर २.११.६
दिणसंक–दिनसङ्का १.१.७
दिण्ण–दत्त ५.७.१३,६.१०.७
दिण्णअ–दत्त ६.८ ७
दिण्णदिहि–दत्तधृति, दुःसाहसी ८.९.६
दिण्णय–दत्त २ १९ ४
दित्त–दीप्त ४.८.१
दित्ति–दीप्ति २.१४.१०,४.८.२
√दिप्पिर–दिप् + इर (ताच्छील्ये) २.९ ३
दिम्मुह–दिङ्मुख ८ १४.१९
दिय–द्विज २.१७.४

दिय-(दे) दिवस ३.१०.७
दियंत-दिग् + अन्त २.३.२
दियंवर-दिगम्बर २.१३.४
दियणंदण-द्विजनन्दन ३.५.६
दियतणय-द्विजतनय २.१७.३
दियवर-द्विजवर २.४.८,२.८.१३
दियह-दिवस ४.१४.३
दिव-दिवस २.४.१०
दिवि-दिवि-द्यौ-द्यौ २.१४.६
दिवसपहर-दिवसप्रहर ३.१२.४
दिवसयर-दिवसकर, सूर्य १०.१८.७
दिवायर-दिवाकर ५.५.१,८.१४.१२
दिव्व-दिव्य १.१७.४
दिव्वच्छर-दिव्य + अप्सरा २.२०.११
दिव्वझुणि-दिव्यध्वनि ८.४.९
दिव्ववत्थ-दिव्यवस्त्र ५.१२.१५
दिव्वाउह-दिव्य आयुध ७.९.७
√दिस-दृश् °वि १०.५.८
दिसउ-दिशा २.१५.१२
दिसकरेणु-दिशागज ४.२०.९
दिसमाण-दृश्यमान ३.१.१५
दिसाविजअ-दिशाविजय ५.१४.२
दिसि-दिशा ६.१४.११
दिहि-धृति १.५.४;२.८.१
दीउ-द्वीप ८.१४.११
दीउ-दीपक ११.७.५
दीण-दीनता १०.१५.९
दीव-द्वीप ११.११.२
दीवअ-दीपक ८.१५.५
°दीवणि-वत् + दीपनः (स्त्री० विशे०) ८.११.४
दीवसमुद्द द्वीप + समुद्र ११.११ १
दीविय-उद्दीपक ८.१६ ११
दीविया-उद्दीपिका (स्त्री० विशे०) ९.१२.८
दीविय-दीप्त, ज्वालित °ा (स्त्रियाम्) ८ १५.१३
दीवोह-दीप + ओघ २.४.८
√दीस-दृश्य् °इ (आत्मने०) ४.१५.१५,६.११.८; १०.५.९, दीसति (बहुव०) ५.८.२४; ८.३.२४, दीसेइ (आत्मने०) १०.१८.१०, दिसिहिइ (भवि०) २.१४.११
दीह-दीर्घ ४.१३ १४,४.२१.४,१० १५ ६

दीहणयणि-दीर्घनयना (स्त्री० विशे०) ४.१७.१६
दीहत्त-दीर्घत्व ३.२.१
दीहर-दीर्घ १.६ ७;९.२.२
दीहरसर-दीर्घस्वर ९ ४.१५
दीहिदीहिआ-दीर्घदीर्घिका ४.२१.४
दुंदुहि-दुन्दुभि १.१७.३,५.१०.१४
दुक्कर-दुष्कर २.१४.९.९.२.८
दुक्किय-दुष्कृत ४.६.८
दुक्ख-दुःख २.२.१०;६.१२.५
दुक्खिअ-दुःखित ३.१३.१०;८.९.१६
दुक्खियाउ-दुखिता. (बहुव० स्त्री० विशे०) ३.११.१२
दुग्ग-दुर्ग ४.१४.७
दुग्गंध-दुर्गन्ध १०.१७.१०
दुग्गमिल्ल-दुर्गम + इल्ल (स्वार्थे) ५.७.८,९.१६.९
दुज्जण-दुर्जन ६.५.११
दुज्जोहण-दुर्योधन ५.१३.७
दुट्ठ-दुष्ट ५.१४.९,१०.१२.६
दुट्ठभाउ-दुष्टभाव ३.११.१२
दुण्णय-दुर्नय, दुर्नीति ५.१४.५
दुण्णिरिक्ख-दुर्निरीक्ष्य ५.१२.१२
दुत्तर-दुस्तर ३.८.९;४.४.१३;१०.९ ९
दुत्थ-दुःस्थ (विशे०) १.१.६,१.९.११
दुद्दम-दुर्दम ९.४.८;११.१४.७
दुद्ध-दुग्ध ४ १८.६
दुद्धर-दुर्द्धर ४.२०.१२;६.१०.१
दुन्नय-दुर्नय, दुर्नीति ५.१३.२
दुप्पिच्छ-दुष्प्रेक्ष्य १०.२६.३
दुब्बल-दुर्बल ८.११.१०
दुम-द्रुम ५.१०.१३,५.१४.५
दुम्मण-दुर्मन, दुःखी ६.१.१
दुम्मरिसण-दुर्मर्षण (ब्राह्मण) २.११.१
दुलंघ-दुर्लंघ्य ४.५.१०
दुलह-दुर्लभ १०.१०.१६
दुल्ललिअ-दुर्ललित, दुर्विदग्ध ९.३.४
दुल्लह-दुर्लभ २ ८.१,९ १७.११,१०.१.१५
दुवाल-दुर्वात, आँधी ९.३.८
दुवार-द्वार १.१६.२,९.१७.१२
दुवाल-द्वार ४.२०.१०
दुव्व-दूर्वा ७.१२.५
दुव्वयण-दुर्वचन (i) अपशब्द, (ii) दुर्जन १.३.६

दुव्वसण–दुर्व्यसन ४.२.५;८.८.९
दुव्वाय–दुर्वात, आंधी १.११.१८
दुव्वार–दुर्वार ४.२२.६
दुह–दुःख ३.१३.१०,११.१५.३
दुहमहाणल–दुःखमहानल ३.८.२
दुहयर–दुःखपर', दुःखी ६.८.६
दुहिय–दुहिता °उ (बहुव०) ४.१४.१५
दूअ °य–दूत ५.१२.७,५.१३.२४;१०.९.२
दूई–दूती १०.१६.८
दूयडिया–दूतिका ८.१५ १
दूयत्तण–दूतत्व + न (स्वार्थे) दूतपना ५.१२.१९
दूरंतर–दूर + अन्तर ४.१८.१५;४.१९.१९
दूरंतराल–दूर + अन्तराल २.१५.१३
दूरट्ठिय–दूरस्थित ७.८.५
दूरपिय–दूर + प्रिय (पति) ३.१२.३
दूरप्पयंत–दूर + प्र + यण् + शतृ, प्रयान्तम् ७.६.४
दूरयर–दूरतर ६.६.३;७.१.५
दूरुज्झिय–दूर + उज्झित, त्यक्त १.१६.१
दूरुब्भड–दूर + उद्भट ७.६.१३
दूव–दूर्वा ३.३.१०
दूव–दूत ५.१२.२०
दूवालाव–दूत + आलाप ७.३.१
दूसह–दुस्सह १०.२२.९,११.१.४
दूसावास–दूष्य + आवास, तम्बू ५.१०.२३
दूसिअ–दूषित ९.१५.४
√दूसिउं–दूषय् + तुमुन् १.१५.६
दूहव–दुर्भग ४.१८.४
√दे–दा, °इ ६ ७.९; देउ (विधि०) १.१.१२; देवि ७ १३.१४, १०.१०.१०; देविणु २.६ १;१०.२३.३, देहि (विधि०) ८ ६.१०; देहु (विधि०) ८.९.१५
√देंत–दा + शतृ ६.१.१
देउ–देव १.१.१२,१.१५.१२,११.३.८
देउल–देव + कुल ४.१०.१;१०.८.१५
देवउ–दातव्या (स्त्री० बहुव०) ४ १४.१५
देवत्त–देवदत्त (कवि) १.५.४
देवदारु–वृक्ष ४.२१.३
देवय–देवता ६ ९.४
देवयत्त–देवदत्त (कवि) ५.१.१
देवल–देवालय, देवल १०.८ १२
देवाउस–देवायुष्य ३.१.७
देवागम–देवागम १०.२४.७
देवाविअ–दापित, दिलाया ५.१२ २२
देवाहिदेव–देवाधिदेव १ १५.१२;४.४.१०
देवि–देवी ३ १०.१०
देविउ–देवता (स्त्री० बहुव०) १.१६.५
देवोत्तर–जिस नामके अन्तमें 'देव' पद है, अर्थात् भवदेव ८.२.९
देवोत्तरकुरु–देवकुरु + उत्तरकुरु, जैन पौराणिक भूमियाँ ११.११.५
देस–देश ५.३.९;६.१२.७
देसंतर–देशान्तर १०.१५.२
देसंतराल–देशान्तराल १०.८.२
देसभासा–देशभाषा ५.१.९
देसव्वहसिसंबंधियउ–तद्देशसम्बन्धी ५.१२.४
देहदित्ति–देहदीप्ति ३.६.८
देहरिद्धि–देह + ऋद्धि ४.९.१
दो–द्वि, दो (संख्या) ७.४.७;१०.१२.६
दोण–(i) द्रोणाचार्य (ii) द्रोण, माप विशेष ८ ३.९
दोणी–द्रोणी ९ ११.७
दोत्तडि–दुष्टतटी,दुष्टनद २.१३.९,५.७.१९,१०.१८.७
दोमियंग–दूमित + अङ्ग ४.२१.११
दोर–(दे) प्रत्यञ्चा ६.१३.४
दोर–(दे) डोर, कटिसूत्र ३.३.१४,६ १३.४
दोलिय–दोलित १.१ ३
दोस–दोष १.१.२;४.१८.१
दोस–द्वेष ५.१३.१७

[ध]

धअ–ध्वज ४.२१.१७,६.४.१०
√धंत–धाव् + शतृ १.१५.५
धक्कडवग्ग–धाकडवर्ग (कुल) १ ५ २
√धगधगंत–धगधगाय् + शतृ ४.६.२
धट्टि–(दे)कुण्डल १०.१६.४
धण–धन्या, भार्या २.१५ २
धण–धन १०.२.३,१० २३.३
धणअ °य–धनद, कुबेर १.९.१०,१.१६ ३
धणड्ढ–धन + वत्, धनवान् ३.१०.१२,४.२.२
धणकण–धन + कण, धनधान्य १ ५.१
धणकणय–धनकण + क (स्वार्थे), धनधान्य १.६ २

धणयत्तउ–धनदत्त (श्रेष्ठि) ४.१२.६
धणरासि–धनराशि (ज्योतिषीय नक्षत्र) ४.१४.२१
धणलोह–धनलोभ ११.५.७
धणहड–धनदत्त (कृषक) ९.३.२
धणिय–धनिक, कृषक, स्वामी ७.६.१६
धणिय–धन्या २.१६.१
धणु–धनुष २.५.१,७.९.१४,१०.१२.३
धणुंतउ–धनु + वत्, धनुषवान् ६.७.१४
धणुद्धर–धनुधर, कामदेव ३.१०.१४;८.५.७
धणुसय–धनुषशत ३.१.१२
धणुहर–धनुर्धर ६.४.९
धण्ण–धन्य २.१८.२
धण्णउ–धन्य २.१५.६,४.१४.१४
धण्णवउ–धन्य + वत्, धन्य २.१४.१३
धण्णिय–धन्या (स्त्री० विशे०) [illegible] १२.७
धम्म–धर्म २.११.५;५.९.१५
धम्मकज्ज–धर्मकार्य २ १९.४
धम्मचक्क–धर्मचक्र १.१७.७
धम्मण–धम्मन (वृक्ष) ५.८.६
धंम्मतरू–धर्मतरु १०.१८.८
धम्मत्थ–धर्म + अर्थ(दो पुरुषार्थ) ४.१२.१२; प्रश०९
धम्मद्दि–धर्म + अद्रि १० ३.९
धम्मरयण–धर्मरत्न ८.६.६.
धम्मलाह–धर्मलाभ १०.२५.८
धम्मवुड्ढि–धर्मवृद्धि २.१७.१
धम्माणुगअ °य–धर्मानुगत ५.९.३;११.१४.११
धम्मायार–धर्माचार १.६.३
धम्माहम्म–धर्म + अधर्म ४.४.८
धनुह–धनुप (उत्सेध प्रमाण) ११.१०.१०
°धय–ध्वज १.१५.७,६.१०.११;१०.१६.११
धयग्ग–ध्वज + अग्र ४.२१.१७
धयचिंध–ध्वज + चिह्न- छोटी पताका ६.२.१०
धयमाला–ध्वजमाला ५.२.४.
धयवड–ध्वजपट ७.५.४,७.५.१६
धयाडंबर–ध्वज + आडम्बर १०.१९ १३
धवलगेह–धवलग्रह, प्रासाद ४.७.६
धवलहर–धवलगृह ३.६.१२
धर–धरा', धारण करनेवाली स्त्रियाँ ६.२.६
धर–धरा, पृथ्वी ५.१०.२
√धर–धृ, °इ; ४.१९ १९,५.८.३, °हि (विधि०), धरेसइ (भवि०) २.१६.४; धरि (विधि०) ८.११.१७; धरेऊग ७.४ १४, ९.१९.१; धरेवि ७.११.१; ८.१० ९; ११.११.११
√धरत–धृ + शतृ ७ १०.९
√धरंतु–धृ + शतृ ९.१८ १
√धरंती–धृ + शतृ °ी (स्त्रियाम्) ६.१.२
धरण–धारणः, धारक ३.९.८
धरणि–धरणी १.८.२
धरणिपीढ–धरणिपीठ १०.२०.११
धरणियल–धरणीतल १.५.१९
धरणीयल–धरणीतल १.९.८
धरणीरुह–पर्वत १०.३.९
धरवीढ–धरा + पीठ ५.१२.३
धराइ–धरा + आदि २.१.८
धरायल–धरातल ९.८.५
धरिअ °य–धृत ३.६.१४,८.१४.११;११.२.२
√धरिज्ज–धृ (कर्मणि) °इ ११.५ ४
धरित्ति–धरित्री ६.४.११
धरियउ–धृतः ११.१०.२
धरियकर–धृतकर., 'कर' लेनेवाला ३ ३.१२
धव–धव (वृक्ष) ५.८.६
धवल–(तत्सम) श्रेष्ठ वृषभ ७.३.१३,७ ६.१७
धवलचिंध–धवलचिह्न, श्वेतपताका ५.११ ११
धवलहर–धवलगृह, प्रासाद १ ९.४, १०.१५.१०
धवलिय–धवलित १ १७.६;१०.१.१०
धवलीकिअ–धवलीकृत ४.१०.३
धसक्किय–धसक्कृत, भीत ६.१३.७
√धा–धाव्, °इ ४.१७.८; धाएवि ९.१३.५
धाउ–धावित ९.११.१३
धाइअ–धावित ७.११.१२, १०.१०.८
धाइयसंड–धातकीखण्ड (द्वीप) ११.११ १०
धाउ–धातु (वात, पित्त, कफ) ३.११.४
धाडिय–(दे) निस्सारित १०.१३.९
धणुक्क–धानुष्क ६.५.८; ६.७.२
धाणुक्किय–धानुष्क ९.१३.१३
√धाम–धाव् + इर (ताच्छील्ये) ४.२१.९
√धाय–धाव्, धायवि ९.१३.५
धाय़ई–धातकी, धतूरा १०.३ ३, °ई ५.८.८
√धार–धारय् धारति (बहुव०) ४.१४.२; धारिऊण ४.२१.९; ५.७.२५; धारेवि ६.३.७

धाराखंडण–धारा (असिधारा) + खण्डन १.११.१०
धाराहर–धाराधर, मेघ ४.१.६;९.९.१३
धारि–धारी, धारण करनेवाली ५.१.१५
धारि–धारी, धारक १०.१२.१
धारिणी–धारिणी (रानी) ३.१०.१३
धारिय–धृत °ह (स्वार्थे) २.६.१०
धारिय–धृत, वारित ८.९.११
√धाव–धाव् °इ ६.१ १०, ९.८.३; धावहो (आज्ञा०) ६.२.७, धावेवि ५.१४.१७
√धावंत–धाव् + शतृ ६.६.५
√धावमाण–धाव् + शानच् ७.६.८
धाविअ–धावित १.१६.२; ७.९.६; १०.१९.१२
√धाह–(दे) धाह, पुकार, चिल्लाहट, धाहावइ ४.१९.२०; १०.११.७
धाहाविअ–(दे) धाह, पुकार, चिल्लाहट ३.७.५
धिक्कारिअ–धिक्कृत ३.१४.१६
धिट्ठ–धृष्ट ५.७.१७
धिय–धृत १०.९.२
धीय–धूता, पुत्री, हिं० धी ११.३.५
धीरत्तण–धैर्यत्व; धीरता ५.४.३
√धुण–धुन् °इ १.९.९
धुत्त–धूर्त ४.१७.५; ९.१०.२३
धुत्ति–धूर्ता (स्त्री०) ८.१३.१५
धुमधुमिय–धुमधुमित-(ध्वन्या०) ५.६.८
धुमधुमुक–धुमधुमुक् (ध्वन्या०) ५.६ ८
धुय–धुत, कम्पित ४.२२ १७
धुयकंध–धुतस्कन्ध ७.६.२०
धुयधय–धुतध्वजा २ १६ १०
धुर–धुरा ७.१.२०,११.२ ३
धुरंधर–धुरंधर १.११.८,१०.१५.२
धुरधर–धुरा + धर, धुरन्धर १.४.६
धुरि–धुरी ११.११.१२
धुव–ध्रुव ७.६.२१
√धुव्वंत–धुत् + शतृ ५.७.९
√धुव्विर–धुत् + °इर (ताच्छील्ये) ५.२.४,५ ११. ११;७.५.१६
धूम–धूम्र (-प्रभा, नरकभूमि) ११.१०.७
धूमाउल–धूम्राकुल ७.९.६
धूमिर–धूम्र + इर (ताच्छील्ये) ४.१४.८
धूमुग्गार–धूम्र + उद्‌गार ६.५.१
धूय–धूप ११.६.८
धूलीरअ–धूलिरज ५.७.४
धूव–धूता, पुत्री ९.७.३, ९.१२.२
धूसर–मुद्ग, मूंग १ ८ ३
√धोव–धोव्, धोना, धोविवि ४.३.२

[न]

नअ–नय १०.४.७;१०.४.१४
नइ–नदी ९.१०.१,११.१.६;११.११.४
नइमित्तिअ–नैमित्तिक २.१.१२
नउ–न २.६.११,३.४.५; ३.४.९;७.९.११
नउरहियं–नग्रहृदय ४.६.९
नउल–(i) नकुल, पाण्डव (ii) नकुल-नेवला (iii) न + कुल–हीनकुल ५.८.२१; ९.१२.७
नउलदरि–नकुलदरि ९.१०.१०
√नंदअ–नन्दय्, नंदंति (बहुव०) ८.७.५
नंदण–नन्दन, पुत्र ४.६.१४,९.७.३
नंदणवण–नन्दनवन (उद्यान) १०.१९.१५
नंदणि–नन्दिनी पुत्री ५.२.१४
नंदणी–नन्दिनी (स्त्री० विशे०) १०.१८.१३
नंदिणअ–नन्दनकः, आनन्ददायक ८.१५.१५
नंदिघोस–नन्दीघोष ५.६.१४
नक्ख–नख ४.२१.८;६ १०.६
नक्खत्त–नक्षत्र १.१.१०
नक्खत्तसामि–नक्षत्रस्वामी, चन्द्रमा ५.१.१५
नग्ग–नग्ना (स्त्री० विशे०) १०.१०.१४
नग्गोह–न्यग्रोध २.१२ ८;४ १६ ५
नच्च–नृत्य ९.१.५
√नच्च–नृत् °इ ३.१.४,४.३.९;८.१४.१८;
√नच्चंती–नृत् + शतृ °ई (स्त्रियाम्) ३.१.४
नच्चणसाल–नर्तनशाला ३.२.६
नच्चाविय–नर्तित ६ १४.१३,९.१३.१०
√नच्चिज्ज–नृत् (कर्मणि) °इ १.५.६; ३.९.९
नच्चिय–नर्तित ७.९.९
√नच्चिर–नृत् + इर (ताच्छील्ये) ८ १४ १८
नच्चुच्छव–नृत्योत्सव ९ २ ६
नच्चेव्वअ–नर्तन ४ १२ १३
नच्छेरअ–न आश्चर्यकम् १०.४.९
√नज्ज–ज्ञ °इ (आत्मने०) ४.१३.१०;११.११.९ ७.७.१;८.३.७
नट्ठ–नष्ट

नट्ठिय–नष्टा (स्त्री०)	१०.१४.१४
नड–नट	१० १४.३
√नडंत–नृत् + शतृ	४ ७.१३
√नडंति–नृत् + शतृ f° (स्त्रियाम्)	९.१.५
नडवेडअ–नटवेडा, नटोका वेड़ा	१० १४ १
√नडाव–नृत् + णिच् °इ	५.१३ १७
नडिअ–नटित, छलित	२.१५ ४;१० ८.७
नत्थि–नास्ति	३.३.१६;९.४.६
नद्–नाद	१°१५°६
नद्ध–नद्ध, गाँठ	१०.१२.७
नद्ध-नद्ध, आच्छादित	२.१८.१६
√नम–नम्, नमंसेवि	४ ५.१
नमंसिय–नमस्कृत	१.१२.१०; ३.१०.५
नम्मय–नर्मदा	७.१३.३, ९.५.५
नम्माउर–नर्मपुर (नगर)	५.९.१२
नम्मयाड–नर्मदा + तट	९.१९.४
नय–नय, न्याय, नीति	३.५.१३
नय–नग	१०.२२.७
नयजुत्त–नययुक्त	४.१४.१२
नयण–नयन °उल्ल (स्वार्थे)	७.६.१२
नयणंजण–नयन + अञ्जन	९.१६.९
नयणदल–नयनदल	९.१३.१७
नयपवर–नयप्रवर	२.६.३
नयपसत्थ–नयप्रशस्त, नीतिकुशल	५ १२.६
नयमग्ग–नयमार्ग	१०.१८.१
नयर–नगर	१.१०.१३, १.१४.१२
नयरजण–नागरजन	४.२१.१८
नयरि–नगरी	४.२.२; ४.७.१२
नयरी–नगरी	१.५.१; ३.३.६
नयरीरक्ख–नगरीरक्षक	३.१२.२१
नर–नर	९.१९.१७, ११.७.१
नरअ–नरक	११.४.२
नरजम्म–नरजन्म	१०.२०.६
नरजाण–नरयान	१०.१९.९
नरजोअ–नरयोग, मनुष्यसंयोग	१०.१५.४
नरणाह–नरनाथ	४.४.६,७.१३.५
नरत्तण–नरत्व	११.१३.५
नरपरमेसर–नरपरमेश्वर, राजा	५.२.२३
नरय–नरक (गति)	४.४.७;११.९.४
नरयगइ–नरकगति	२.२.१
नरयायर–नरकाकर	११ १०.४
नररयण–नररत्न	४.१.४
नररूव–नररूप	६.३.७
नरवइ–नरपति	१.१२.६; १.१७.१८
नरवेस–नरवेश	४.२.४
नरसंकमण–नरसक्रमण	४.९.१०
नरामर–नर + अमर	२.३.१
नरालय–नरालय, मनुष्यलोक	११.११.११
नराहिव–नराधिप	३.१४.७
नराहिवइ–नराधिपति	१.१०.१३; ३.१.३
नरिंद–नर + इन्द्र	५.१२ ७; ११ ७.५
नरिंदसंदिणी–नरेन्द्र + स्यन्दनी, राजमार्ग	४.२१.१२
नरेंद–नरेन्द्र	४.१.५
नरेसर–नरेश्वर	१.१६.१४
नल–नल, सरकंडे	१.८.४
नल–चरण	७.५.६
√नव–नम् °इ ५.१२.२१; नविवि–५.१०.१६; नवेविणु ७ ११.८	
नवअ–नवक, नवीन	११.८.२
नवंग–नव + अङ्ग, अभिनव अङ्ग	१०.१७.१४
नवगेवज्ज–नव + ग्रैवेयक (स्वर्ग)	११.१२.२
नवनिहि– नवनिधि	३.३.१२
नवनेह–नवस्नेह	५.९.१४
नवम–नवम	१.१६.८
नवर–(अप०) केवल,	७.४.६; १०.२६.९
नवल्ल–नव + ल्ल (स्वार्थे) नवीन	१०.१७.२
नववत्थ–नववस्त्र	८.१२.५
नववहू–नववधू	४.१७.९
नवविह–नवविध,	३.९.८; ११.१४.११
नवसिय–नवीन वस्त्र, उपयाचितक	२.१०.५
नविण–नवीन	९.१.१८
नस–मज्जा	६.१४.१२
नह–नभ	६.६.१
नह–नख	७.४.१
नहकंति–नख + कान्ति	१.१.४
नहगण–नभ + आङ्गन	६.१३.७;८.१५.४
नहगइ–नभगति, गगनगति (विद्याधर)	७.७.४
नहणिउरंब–नख + निकुरम्ब, नखसमूह	५.१.१७
नहमग्ग–नभमार्ग	१.१७.१९
नहमणि–नखमणि	५.१२.१२,१०.१६.२

नहयल–नभस्तल २.१४.१०; ५.६.१६
नहर–नखर, नख ४.१६.१५
नहरुक्ख–नभवृक्ष ८.१४.१२
नहलच्छि–नभलक्ष्मी ८.१५.५
नाअ–नाग, हस्ति ४.२२.१; ५.१४.७
नाइँ–(अप०) इव, हिं० नाईं २.१५.२,४.१९.१३
नाइय–नादित ५.६.१०
नाउ–नाद २.१३.७
नाउ–नाम ९.१.११
नाग–नाग (वृक्ष) ४.१६.५
नागर–नागर (देश) ९.११.५
नाडय–नाटक ५.१.२६; ८.१३.९
नाडिय–नाटित ५.६.१३
नाणचउक्क–ज्ञानचतुष्क ३.५.१
नाणजोई–ज्ञानज्योति १.१८.१०
नाणदिट्ठि–ज्ञानदृष्टि ९.१.७
नाणब्भास–ज्ञान + अभ्यास १०.२३.४
नाणवंत–ज्ञान + मतुप्, ज्ञानवन्त २.१.४; ९.१.१३, १०.४.५
नाणावरण–ज्ञानावरण (कर्म) १०.२४.३
नामंकिय–नाम + अङ्कित ५.२.८
√नामंत–नामय् + शतृ ५.१४.१०
नामपत्थाव–नाम-प्रस्ताव, परिचय ५.१.२०
नामिय–नामित ५.१०.१४; ६.५.१०
नाय–नाग, हस्ति ३.१०.१
नायएवि–नागदेवी (ब्राह्मणी) २.११.२
नायक्क–नायक, नेता ७.३.८
नायण–नयन + पष्ठि, नेत्रौका १०.४.९
नायर–नागर, नागरिक ८.३.५
नायरजण–नागरजन, नागरिक ३.१२.२०
नायरमिहुण–नागरमिथुन ३.१.१९
नायरपय–नागरप्रजा, नागरिक ३.२.१०
नायरिय–नागरिक ५.९.१
नायवसू–नागवसू (ब्राह्मण कन्या) २.११.२
नायवेल्लि–नागवेल १.७.८, ४.२१.२
नायाहिट्ठिय–नागाधिष्ठित °ड(स्वार्थे) ८.३.६
नारअ °य–नारकी ११.३.८; ११.१०.११
नारइय–नारकीय २.२.२
नारउ–नारद ७.११.४
नारंग–नारङ्ग, नारङ्गी ४.१६.५
नाराय–नाराच, बाण ७.९.४
नाराहिय–न + आराधित ११.३.९
नालियर–नालिकेर २.१८.१०
नाली–कमलनाल ९.२.१०
√नाव–नम्, नाविवि ८.७.५
नावइ–(अप०) इव, हिं नाईं ७.४.१९
नास–नासा, नाक ३.११.८
√नास–नाशय्, °इ,२.२०.३; नासति (बहुव०) ३.९.१५
नासउड–नासापुट ५.१३.११
√नासंक–न + आ + शङ्क्, °इ ५.१३.२०
नासावंस–नासावंश, नासिका ४.१३.७
नासाहर–नासा + अधर २.५.१३
नासिय–नाशित ८.४.१२
नाह–नाथ ३.३.९;९.१२.७
नाहल–म्लेच्छ ५.८.२१
नाहि–नाभि ७.४.१२
ना हि–न + हि; न खलु, नहीं १०.८.१०
नाहिमंडल–नाभिमण्डल ४.१३.१३,नाही°८.१६.७; °बिंब-°बिम्ब ८.११.९
नाहेय–नाभेय, ऋषभजिन ३.१.११
√निअ–दृश्, निएवि ६.११.२,९.१३.४; निएह (विधि०) ३.११.८; नियच्छहिँ (बहुव०) ४.२०.३
निउ–निज ४.५.१२
निउ–नीत, ले जाया गया ३.१.१;९.१०.१०
निउ–नृप ५.१३.२५,१०.१०.९
निउइ–निवृत्ति, मोक्ष ११.४.२
निउंज–निकुञ्च २.३.३
निउण–निपुण १.२.८
निउणइ–निपुणाः (वेश्या) ९.१२.१९
निउरावल–नृप + राजकुल, प्रासाद ५.१.६
निउरंब–निकुरम्ब, समूह ४.६.१
निएमिअ–दृष्ट २.१५.७
निएसिअ–निर्देशित, निर्दिष्ट ७.११.१०
√निंद–निन्द्, निंदिवि २.१९.९
निंदा–निन्दा १.१८.३
निंदापसम–निन्दा + प्रशमा २.२०.४
निंब–निम्ब वृक्ष ४.२१.२,५.८.१३

णिओय–नियोग	२ ६.९
णिक्कंट–निष्कंटक	९.३.१५
√णिक्कंत–नि + कर्त् °इ	११.१३ १
√णिक्कंद–नि + कर्त् °इ	११.१४.१२
णिक्कंप–निष्कम्प + °इर (ताच्छील्ये)	१०.२५.९
णिक्कारण–निष्कारण	२.२.३
√णिक्खंत–नि + क्रम् + शतृ °उ (स्वार्थे)	३.१३.१४
√णिक्ख–निः + क्षिप् °इ	९.१३.६
णिक्खत्त–नि + क्षात्र, निःक्षत्रिय	७.७.३
णिक्खय–निः + क्षय, अशेष	४.८.१३
णिक्किलक्क–निः + क्रीड्, निष्क्रिय	४ ११.१२
णिग्गअ–निर्गत	१.१४.१२
णिग्गंथ–निर्ग्रन्थ	१० २१.३
णिग्गम–निर्गम (न)	२.१९.८
णिग्गय–निर्गत	९ १०.१
√णिग्गह–नि + ग्रह् °इ	३.९ २;५ ५.३
णिघंटु–निघण्टु	१.३.३
णिघण–निघन वृक्ष	५.८.९
णिच्च–नित्य	३.१४ २०; १०.१७.५
णिच्चल–निश्चल	५.४.१८
णिच्छअ–निश्चय	८ ६.११
णिच्छइ–न + इच्छति	९.६.११
णिच्छइयउ–निश्चित,	२ १३.७
णिच्छए–न + इच्छति	९ १७.१२
√णिज–नी °इ(आत्मने०)११.२.१; °ए(आत्मने०)	३.४.९
√णिजंतु–नी (कर्मणि) + शतृ	६ ७.११,७.६.६
√णिज्जर–निः + जृ °इ	२.२० ८;११.९.६
णिज्जर–निर्जरा	११.९.२
णिज्जरिय–निर्जीर्ण	११.९.८
√णिज्जिण–निः + जि °इ	४.७ ४
णिज्जिय–निर्जित	८.८.६
णिजीणअ–निर्जित	७.१ ९
णिज्झर–निर्झर	५.८.४,११ २५
√णिज्झा–नि + ध्याय् °प्पवि	२.१५.१२
णिज्झाइउ–निर्ध्यात, दृष्ट	४ ५ १७
णिट्ठ–निट्ठविय, मार डालना	७ ६.२
√णिट्ठव–नि + स्थापय् °इ, अन्त करना	४.२०.१०
णिट्ठुर–निष्ठुर	२ १३.४;६.६ ११
णिड्डरिय–(दे) निः + डरित, त्रस्त	४.२२.१८
णिड्डाल–(दे) ललाट	२.१८.१२
णिणाअ–निनाद	७.८ ८
√णिण्णास–निर्नाशय् °मि	२.१८.११;
णिण्णासिय–निर्नाशित	४.३.१२;५.१३.२
णित्ति–नीति	६.१४.२३
णित्तिंस–निस्त्रिंश, निर्दय	६.११.८
णिद्द–निद्रा	१०.१३ २
णिद्दा–निद्रा	६.८.३; १०.११.१०
णिद्दिट्ठ–निर्दिष्ट	१०.२३.७; प्रश० ५
णिव्विट्ठअ–निर्विष्ट	१०.२.८
णिद्दूसण–निर्दूषण	१.६.३
णिद्ध–स्निग्ध	१०.१६.२
णिद्धण–निर्धन	९.१२.१७
√णिद्धाड–नि + धाटय् °इ	३.१२.९
णिद्धाडण–निर्धाटन, निष्कासन	१०.२०.४
णिद्धूम–निर्धूम्र	४ ६.२
णिनद–निनाद	७.२.३; १०.९.१
णिनाअ–निनाद	४.२१.१;५.१४.७
णिप्पह–निष्प्रभ	३.११.२
णिप्पहा–निष्प्रभ	४.८ २
√णिप्पील–निष्पीडय् °इ	४.२०.२;७.४.१२
णिप्फंद–निष्पन्द	८.११.१०
√णिबंध–नि + बन्ध् °इ	११.५ ३
णिबंधण–निबन्धन	२.१.१३; २.२.३,११.८.६
णिबद्धिअ–निबद्ध + क (स्वार्थे)	११.२.७
णिव्वुड्ढिय–निर्वृद्धि + क (स्वार्थे)	१० १० ११
णिब्भच्छिय–निर्भर्त्सित	१० १४.४
णिब्भर–निर्भर	६.९.१०
णिब्भिंद–निर्भेद्य	१ १२.४
णिब्भिण्ण–निर्भिन्न	६.९.४
णिमिस–निमेष	७.४.१३
णिमुत्त–निमुक्त	६.८.३
णिम्मम–निर्मम	१०.२४.२
णिम्मयसरि–नर्मदा सरित्	९.५.५
णिम्मल–निर्मल	५.३ १५; ११.१५.१
णिम्मविउ–निर्मिता (स्त्री० बहुव०)	४.१४ १०
णिम्मंस–निर्मांस	२.१८.३
णिम्माअ–निर्माया, मायारहित	३ १०.९
णिम्माणिय–निर्मानित	७.६.१४

निम्मिय–निर्मित ११.११.५
√ निम्मूलक्ष–निर्मूलय °हि (विधि०) १०.२०.१३
√ निय–दृश्, °इ २.१२.६;२।१६.१२;९.१२.४; नियवि २.१६.१२;१०.९.९
√ नियंतु–दृश् + शतृ ३.११.५,७ ७ ६
निय–निज ६ १४ ७;८.७.४,९.८.१०
नियड–निकट ९ ४.७
नियडदेस–निकटदेश २ ८.५
नियंत–निज + अन्त्र ° इं (बहुव०) ६.८.६
√ नियंत–दृश् + शतृ ° ि याए (स्त्रियाम्) ९.२.१
नियंब–नितम्ब ९.१२ १०
नियंबिणि–नितम्बिनी ४.१६.१२.५.१०.१०;१०.८.९
नियंस–निवसन, वस्त्र ८.१४.५; °ण ८ १५ २
नियगोत्त–निजगोत्र,कुल ४.३.९
नियठाण–निजस्थान ५.१० २३
नियडीहुय–निकटीभूत ८ २ १९
नियणंदण–निजनन्दन ३.१४ १६
√ नियच्छ–दृश् °इ ९.१३.८; °वि३.५.३, °च्छेवि ५.४ ७,१०.९.३
नियच्छिउय–दृष्ट २ ३ २
नियत्त–निवृत्त १ १४.४
√ नियत्त–नि + वृद् °हि (विधि०) ५.१२.२५
नियत्तण–निवर्तन २.१२.५
नियत्तिय–निवृत्त ९.१९.४
नियथाण–निजस्थान, निजगृह ९.८ ६
नियदव्व–निजद्रव्य ३.१३.१३
नियनिय–निज-निज ३ १२.१३
नियपर–निजपर २ ८.६; °पुर ५.१३.३१, °बुद्धि १०.१४ १६. °भाल, ४ १७.१०, °राउल-राजकुल ५.१.६, °हल ९ ४ ४
नियम–नियम ३.९.५
नियमव्वय–नियम + व्रत २.१६ १३
नियमिय–नियमित १०.२१.८; ११.२२ २
नियय–निज + क(स्वार्थे) ५ १ २८
नियल–निगड ६.८ ८
नियसिय–निवसित, पहने हुए १.६.२३
नियहियं–निजहित २.११.१०
नियाणखण–निदानक्षण, अवसानसमय ८.१३.१४
नियाणिय–निदानित, निदानभूत ११.९.३
नियामि–नियामक ८.८.२
नियार–(I) काणेक्षित कृत, टेढी नजरसे देखना, (II) निक्कार, अपमान ४.२.१०
नियाहर–निज + अधर ६.१३.५
निरंजण–निरञ्जन, निर्मल २.२०.२; १०.५.१३
निरंतरंतरं–अतिशयेन निरन्तरम् ४.८.१८
निरग्गल–निरर्गल, निर्बाध ४.२.१६
निरत्थ–(I) निरस्त, अपकृत १.४.८
(II) निरर्थ(क) ११.९.१
निरब्भ–निरभ्र ४.८ १२
निरवसेस–निरवशेष ९.१४.५
निरवहि–निरवधि २.१.५, ११.५.१०
निरवीरमोसारिया–देखें. सं० टिप्पण ११.१५.६
निरवेक्ख–निरपेक्ष ४.१७.३,९.१३.७
निरवेक्खअ–निरपेक्ष + क (स्वार्थे) ११.१४.८
निरामअ–निरामय, नि शेष २.१.१३
निरास–निराश १०.२०.११; °वित्ति-°वृत्ति१०.२२.४
निरीक्खण–निरीक्षण ८ ११.५
निरुत्त–(दे) निश्चित ४.१४.२०
निरुवम–निरुपम ५.२.२१
√ निरुव–निरूपय् °वंति (बहुव०) १.१८ १२
निरुविअ–निरूपित १०.४.३
निरोह–निरोध १०.१७ ३
निरोहण–निरोधन, निरोधक ११.१४.७
√ निरोह–नि + रुध् °वि ९.१३.२
निलअ °य–निलय ३ ९.६,५.१.३,१०.१५.४; ८.७.१५
निडाल–ललाट ४.१३.४
निलुक्क–निर्लुप्त, छिप गये ८.१३.६
निलोहिअ–निर्लोहित २.१८.१३
निल्लज्ज–निर्लज्ज १०.१०.१४
निल्लोम–निर्लोम ५.८ २७
निव–नृप ६.१२.५,१०.१४.२
निवइ–नृपति ५.२ १२, ५.८.१, °बल-सैन्य १० १९.१४
निवकुमर–नृपकुमार १.१६.३,३ ५.९
निवघर–नृपगृह ८.१४.१९
√ निवज्झ–नि + बध् °इ (आत्मने०) ८.१६.५
निवट्टण–निवर्तित, उलटा ५.२.२१

√ निवड-नि + पत् °इ ६.८.८;८.१४.५,११.४.२; °हिं (बहुव०) ८.१५.७; निवडेवि ९.५.१३; °डिवि-९.५.१०
निवडण-निपतन ५.७.१८
निवडिअ-निपतित १०.१४.१३
निवथाण-नृपस्थान, राजकुल ३.२.४
निवनंदन-नृपनन्दन ३.९.१४
निवमण-नृपमन ५.६.१७
निववाहिणी-नृपवाहिनी, सैन्य ५.१०.११
निवस-निवास, गृह ३.११.६
√ निवस-निवस् °इ ३.१४.१९; ५.१३.३२
निवसंपय-नृपसम्पदा १० ११.५
निवसिय-निवसित १ १५ ११
निवसिरि-नृपश्री ८.४.११
निवाडिय-निपातित ७ ९.१३
निवाण-निपान ३.१२.७.९.९.११
निवायार-नृपाचार, राजनीति ४ ५ ९
निवार-निवारक ७.१०.८
√ निवार-निवारय् °इ २.१६.२
निवारिय-निवारित ५.७ १६,७ ७ १२
निवासण-निवासन, रहना १०.२२.६
निविट्ठ-निविष्ट ८ १३.७,८.१५.११
निविड-निविड, घना ९ ६.२,६.७ १
निविडअ-निविड + क (स्वार्थे) ८.१६ २
निविस-निमेष ५.११.९
निवेइय-निवेदित ५.१२ ८, °उ (स्वार्थे) २ ११ ९
√ निवेस-निवेशय् °इ १.२.११
√ निवेसंत-निवेशय् + शतृ ७.१४ ११
निवेसिय-निवेशित ४.११ ८,८.४.१०;८ ९.१८
√ निव्वट्ट-नि + वृत् °इ ६ १४.४
निव्वट्टिय-निर्वर्तित ७ १.२०
√ निव्वड-नि + पत् °इ १.१५.१९
√ निव्वड-नि + पादय् °इ १० १ ४
निव्वडिअ-निपतित १ १७ १८
निव्वडिय-निर्वृत्त, निष्पन्न, सिद्ध ५.१.१२
√ निव्वण्ण-निः + वर्णय् °मि ४.१.१०; °हि (विधि०) ५ १३.१५
√ निव्वत्त-निः + वर्तय् °मि २ १३ ५
निव्वत्तिअ-निवृत्ता (स्त्री० विशे०) ९ १३ ४
निव्वत्तिय-निवृत्त ९ १३.१८
निव्ववसाय-निर्व्यवसाय ९.१०.३
निव्वाण-निर्वाण, मोक्ष १०.२३.११
निव्वासिय-निर्वासित ५.३.९
√ निव्वाह-निर्वाहय् °इ २.१४.२
निव्वाहिय-निर्वाहित ९.३.६
निव्विग्ण-निर्विघ्न ६.४.११;८.५ १३
निव्वुड्ड-निमज्जित १०.१८.९
निव्वूढ-निर्व्यूढ १.४.२
निसंत-(i) निशा + अन्त
(ii) निशांत, राजगृह ४.८.१
निसग्ग-निसर्ग, नैसर्गिक ७.६.१५
निसा-निशा ९.१६ १२
निसागम-निशा + आगम ८.१५.१;९ ११.६
निसामिअ-निः + श्रुत ९.४.७
निसि-निशि, निशा ३.१४.१२; १०.१४.२; °नाव १० १८ ७
निसिय-निशित ५ १४.७,६ ५ ७
√ निसुण-निः + श्रु °हि (विधि०) ९.५ ३; निसुणति (बहुव०) ९.३.३; निसुणेवि ६ १.९; १०.१०.१; निसुणेप्पिणु ९.१६.१
√ निसुणि-निः + शृणु (विधि०), सुणो ९ १८ १०
√ निसुणंत-नि + श्रु + शतृ °उ (स्वार्थे) ४ १.९
निसुणिय-निःश्रुत ७ १.८
निसुंभिय-निशुम्भित ७.२.६
निह-निभ, समान ७ ५ ९
√ निहम्म-नि + हन् °इ ५ १३.२२;७.६ १७
निहय-निहत १.१७.३
निहस-निकष, कसौटी ७.४.६
निहसण-निघर्षण ७.६.३
निहाण-निधान ५.५.११;१०.८.२
√ निहाल-निभालय्, °हि (विधि०) २ १८.१४; ४ १७ ६; ११.६.५
निहि-निधि ९ ८ १;९ ८.२३
निहिअ-निहित ९.७.१३
निहित्त-निहित, निक्षिप्त ९.१८.४
निहिय-निहित, पिहित ८.९.१२
निहुअअ-निभृत + क (स्वार्थे) शान्त, मन्द ९ १४ २
निहुअणकेलि-निधुवनक्रीड़ा ४ १६ १२

निहुवण–निधुवन, सुरतक्रीड़ा ९.१३.८
निहेलण–निहेलन, निवासगृह ८.६.२
√नी–नी, निएवि ६.११.२१
नीइ–नीति ९.१२.११
नीइतरंगिणि–नीतितरङ्गिणी १.१७.७
नीडनिवासि–नीडनिवासी ९.१०.४
नीय–नीत ५.४.२१; ७.७.३
नीर–नीर २.१९.७, ४.१९.१०
नीरसस्य–(i) नीरसस्य, (ii) नीर + शस्य १.६.५
नील–नील (मणि) १.७.९
नीलंबर–नील + अम्बर ४.१६.५
नीलिमा–नीलिमा १.१.१३
नीलीरस–नीलरस, नीलवर्ण ८.१४.२१
नीलुप्पल–नील + उत्पल ४.१७.८; ५.२.१७
नीसंग–नि सङ्ग १०.२०.१३; °वित्ति–°वृत्ति २.७.२
नीसंचर–निःसंचार ९.१५.३
नीसद्द–नि शब्द ८.९.१०
√नीसर–निः + सृ, नीसरियइँ (बहुव०) ४.२०.१, नीसरिवि ९.९.३
√नीसरंत–निः + सृ + शतृ ६.१०.३
नीसरिअ–निःसृत ६.४.१
नीसरिय–निःसृता (स्त्री०) १०.८.२, ११.९.८
नीसल्ल–नि शल्य २.१९.२
√नीसस–नि श्वस् ४.२२.२२
नीसार–निःसार १०.१८.१
नीसास–निःश्वास ४.११.६; ९.२.२
नीसेस–नि शेष २.१.७, ५.३.९
√ने–नी, नेहु (विधि०) ५.४.१६
नेउर–नूपुर ५.१.२७; ८.९.११
नेउरत्त–नूपुरत्व १.१०.३
नेउरग्ग–नूपुराग्र ६.११.१५
नेत्त–नेत्र ४.८.६
नेमिचंद–नेमिचन्द्र (वीर कविका पुत्र) प्रश० १८
नेमित्त–परिमित, परिमित, निमित ७.१.४
नेय–ज्ञेय ६.१.५
नेवत्थ–नैपथ्य, वस्त्र ५.९.१३
नेवणद–(दे) वस्त्र ५.९.११
नेमिय–नि + नमित, पहने हुए ५.१०.१५
नेवेय–नि + वप्, नेवेसिउ–निवास्य ८.१४.१८

नेह–स्नेह, घृतादि द्रव्य ९.१.२
नेह–स्नेह, प्रेम ८.१३.१०; °ट्ठिअ–स्नेहस्थित ६.१२.१ °बद्ध–स्नेहबद्ध २.१२.५, °मइ स्नेहमति १०.९.९

[प]

पअ–पद (शब्द) १.२.७
पअ–पद, चरण ५.५.१४
पइ–पति ४.१२.९; १०.१०.१३
√पइज्ज–प्रति + ज्ञा, प्रतिज्ञा करना °जिवि ४.२.१४
पइज्ज–प्रतिज्ञा, हि० पैज २.१३.८,४.१४.१३
पइट्ठ–प्रविष्ट २.१५.८,४.५.९
पइट्ठउ–प्रविष्ट ८.१५.१६
पइट्ठाण–प्रतिष्ठान, पैठण ९.१९.४
पइण्ण–प्रकीर्ण, विस्तीर्ण ५.१०.१९;७.९.४
√पइस–प्रविश् °इइ + ११.२.५; °रमि २.१६.९; पइसउ (विधि०) ५.१२.१०; ५.११.४, °सिवि ५.१३.२६, ९.१०.१९, °रिवि ११.८.२; °रेवि ८.१०.९
√पइसंत–प्र + विश् + शतृ ११.८.४
√पइसार–प्र + वेशय् °इ ७.११.१६,६.१३.२;
पइसारिअ–प्रवेशित ५.१.६
√पइसिज्ज–प्र + विश् (कर्मणि) °इ १.३.१०
पइवय–पतिव्रत २.५.४
पई–पति, स्वामी ३.१६.७; ४.२१.१५
पईअ–प्रदीप, पतञ्जलिकृत व्याकरण महाभाष्यपर कैयट कृत टीका १.३.२
पईव–प्रदीप ३.२.३,४.३.१८
पईवय–प्रदीपक ८.१६.१
√पईस–प्र + विश् °इ ६.६.७,१२.१४;१०.४.८, °इ २.१८.६, °हि ३.७.११; °ि (गु० हि० पु० बहु०)
पउ–पद, शब्द १.३.७,४.३.१८
√पउंज–प्र + युज्, °जिज्जइ १.२.८,३.१३.६
पउत्त–प्र + उक्त-प्रोक्त ८.८.१७,१०.१८.३
पउमराय–पद्मराग (मणि) ४.१६.३
पउमासण–पद्मासन ४.१७.२
पउमसिरि–पद्मश्री (सिद्धि कन्या) ४.१२.३,१०.२१.१
पउमावइसिव–पद्मावती (रानी) + [illegible]
पउर–पौर (जन) १.१३.१,१.१८.१८, [illegible] १.१८.१
°[illegible] २.५.३

पउसिय–प्रवासित ३.११.१४
पएस–प्रदेश २.१२.११,५.५.१७
पओहर–पयोधर (i) स्तन (ii) मेघ °हरिया (स्त्री०-विशे०)४ ७.९;°हरीय(स्त्री० विशे०)९ ९.७
पंकअ °य–पङ्कज, कमल ४.२१.५;५.१३ ४, °दल ४.१३.१७;°सर ८ १४.१७
पंकप्पह–पङ्कप्रभा (नरक भूमि) ११ १० ७
पंकयसिरि–पङ्कजश्री, पद्मश्री (श्रेष्ठिकन्या) ९.२ ३
पंकिल–पङ्क + इल, पङ्कयुक्त ४.७.७
पंगण–प्राङ्गण ९.१५.९; १०.१९.१
पंगुरिय–प्रावृत ९.१८.५
पंचंग–पञ्च + अङ्ग ४ १५ २
पंचत्त–पञ्चत्व, मृत्यु ९.३.५
पंचमगइ–पञ्चमगति, मोक्ष ११ १५.९
पंचमुह–पञ्चमुख (सिंह) ५.१४.७
पंचबाण–पञ्चबाण, कामदेव ४.१५.४
पंचवीस–पञ्चविंशति, पच्चीस ११.१० ५
पंचसय–पञ्चशत ७.१३.१
पंचाणण–पञ्चानन, सिंह ५.८ १४
पचाणणालोय–सिंहावलोकन, देखें. सं० टिप्पण ५.१४.२२
पंचपयार–पञ्चप्रकार ११.१२.९
पंचिंदिय–पञ्चेन्द्रिय ११.१३.४
पंचेंदिय–पञ्चेन्द्रिय १०.२२.५
पंजर–पंजर, पिंजडा ८ ८.७
पंजलअ–प्राञ्जल + क (स्वार्थे), शुद्ध ११.७.१०
पंडवणाह–पाण्डवनाथ, युधिष्ठिर १.६.३
पंडि–पाण्ड्य (देश) ९.१९.३
पंडिअ–पण्डित प्रश० २१
पडियमरण–पण्डितमरण २.२० ९
पंडीपहावंत–पाण्ड्यदेशोद्भव ४.८.६
पंडुरंग–पाण्डुर + अङ्ग, पाण्डुर शरीर १०.१७ ६
पंडुरिअ–पाण्डुरित १० १७.१०
√पंडुरिज्जंत–पाण्डुर + कृ(कर्मणि) + शतृ १.१.३
पंडुरिय–पाण्डुरित १०.९.२
पंति–पङ्क्ति ४ १८ २,९.१४.१
पंथ–पथ ५.२.११
पंथसमिय–पथश्रमित, पथश्रान्त ९.१८.९
पंथिय–पथिक, ३.१२.६
पक्क–पक्व ४.२१.३,९.४.९; °उ ११.९.९
पक्ख–पक्ष, हि० पखवाडा ४.१०.७,६.२.३
पक्खालिय–प्रक्षालित ६.९.११
पक्खि–पक्षी ९.१०.४,११.१३.५
पक्खिराय–पक्षिराज ५.५.९
पग्गि–प्राक्. ४.२.१५
पग्गिव–प्राक् + एव २.१३.७
पच्च–पक्व १.१३.६
पच्चअ–प्रत्यय २.१३.८
पच्चक्ख–प्रत्यक्ष २.११.५,९ २.११
√पच्चारयंत–उपा + लम्भ् + शतृ ६ ६.४
पच्चारिअ–उपालब्ध, आहूत ७.६ ३२.
पच्चुज्जीवियअ–प्रति + उत् + जीवित-पुनरुज्जीवित ७.४.१८
पच्चुत्तर–प्रति + उत्तर १०.१०.४
√पच्चुप्फिड–प्रति + उत् + स्फिट् °प्फिडेवि९.२.५
पच्चूय–प्रत्यूपः ४.७.२१
पच्चेल्लिड–(अप०) प्रत्युत २.४.४,३.१४.२०
पच्छ–पृष्ठ १०.१५.१
पच्छ–पश्चात् ४.३.१३
पच्छअ–पश्चात् ९.१३.६;१०.१५.३
पच्छइ–पश्चात् ५ १३.१८
पच्छइय–प्रच्छादित १०.१६.११
पच्छल–पृष्ठभाग, नितम्ब ९.१.१२
पच्छा–पश्चात् ९.१.१५
पच्छाइय–प्रच्छादित ८ १६.३
पच्छामुह–पश्चात् + मुख ९.३.१०
पच्छाहर–पश्चात् + गृह, पीछेका घर १० १७.१
पच्छिम–पश्चिम, अन्तिम २.३.६; प्रश० १६
पज्जंत–पर्यन्त १०.३.१
पज्जलिय–प्रज्वलित °उ (स्वार्थे) १.११.६
पज्झरिय–प्रक्षरित ३.३.८;७.६.६
पट्टण–पत्तन ५ ३.८,५.९.१
पट्टहत्थि–पट्टहस्ति ४.२०.७
पडिवाहर–प्रति + व्याहर, प्रत्युत्तर ४.२१.१२
पट्टोल–वस्त्रविशेष ४.८.६
√पट्ठव–प्र + स्थापय् °वेवि ८.१६.२
पट्ठविअ–प्रेषित, हि० पठाया हुआ ५.१२.७
पड–पट ९.१८.२

पढिय–पठित ४.९.५
√पड–पत् °इ १०.१७.२०; °उ (विधि०) २.८.७; पडंति (बहुव०) ७.८.१०; पडेऊण १०.२६.८; पडेविणु ९.११.५
√पडंत–पत् + शतृ १.१८.८,९.७.१६
पउमावइ–पद्मावती (श्रेष्ठिपत्नी) ४.१२.२
पडह–पटह वाद्य ७.३.१,१०.१९.२
पडावेढ–पट + आवेष्ट(न),वस्त्रवेष्टन, चादर ४.५.१६
पडिअ–पतित ७.१ १३,९.६.२;९.१४.११
पडिंद–प्रति + इन्द्र ३.१०.५; १०.२४.१०
√पडिकह–प्रति + कथय् °इ १०.७.५
पडिकेसव–प्रतिकेशव (जैन पौरा० पुरुष) ४.४ ४
√पडिखल–प्रति + स्खल् °इ ५ ५.१
पडिखुहिय–प्रतिक्षुभित, प्रतिक्षुब्ध ७ ५.११
पडिगय–प्रतिगज, शत्रुहस्ति ६.६.५
पडिगाहिअ °य–प्रतिगृहीत ४.१७.२०;५.१० २१; ७ ७.३
√पडिच्छ–प्रति + इच्छ् °इ ६.६ ५
पडिच्छिय–प्रतीच्छित १०.२१.१; °यउ ३.९.११
पडिछंद–प्रतिछन्द, प्रतिरूप २.१८.१४
पडिछित्त–प्रति + क्षिप्त, प्रतिबिम्बित ५.१.१५
√पडिजंप–प्रति + जल्प् °इ ९.१६.१
पडिपण–पतित ५.५.१४
पडितुल्ल–प्रतितुल्य ११.१.१
पडितुल्लअ–प्रतितुल्य + क (स्वार्थे) ४.१३.१७
पडिपट्ट–प्रतिपट्ट, वस्त्र विशेष ४.८.६
पडिपुच्छिय–प्रतिपृच्छित १०.१.५
√पडिप्फुर–प्रति + स्फुर °इ १.५.२१
√पडिफुर–प्रति + स्फुर् °इ ७.१.३
पडिबधण–प्रतिबन्धन ११.८.४
पडिबिंब–प्रतिबिम्ब २.१५.१,९.१२.१०
पडिबिंबिअ–प्रतिबिम्बित ४.१७.१२
पडिबुद्ध–प्रतिबुद्ध, जाग्रत ४.६.६
पडिबोह–प्रतिबोध १०.१८.१
पडिभअ–प्रतिभय ९.४.६
पडिभड–प्रतिभट, शत्रुयोद्धा १०.१.१२
पडिभग्ग–प्रतिभग्न ४.२२.२
√पडिभण–प्रति + भण् °इ १.५.६;५.४.१६
पडिभरिअ–प्रतिभृत ५.७.१५
पडिमक्कड–प्रतिमर्कट, शत्रुवानर ९.७.२
पडिमयगल–प्रतिमदगल, शत्रुहस्ति ४.२०.७
पडिमा–प्रतिमा प्रश० ७
पडिमिलिउ–प्रतिमिलित ४ २२ २४
पडिय–पतित ५.१० ९;७.८.७
पडियार–प्रतिकार, खड्गकोष, म्यान ७.८.२
पडिरक्खिय–प्रतिरक्षित ५ ३ १५
पडिरडिय–प्रतिरटित (ध्वन्या०) ५ ६.७
पडिलग्ग–प्रतिलग्न १.१.५,७.६ ५
√पडिलग्गंत–प्रति + लग् + शतृ ८.५.९
पडिवक्ख–प्रतिपक्ष ८ ४ ६
√पडिवज्ज–प्रतिपादय् °ज्जेवि ९.४ ६
पडिवज्जिअ–प्रतिपादित ३ ९.६
पडिवण्णिय–प्रतिपन्न ४.१२.८
पडिसद्द–प्रतिशब्द १.१७.३
पडिहर–प्रतिभार ७.६.२५
√पडिहा–प्रति + भा °इ २.१५.१,१० १६ ७
पडिहार–प्रतिहार ५.१२.६
पडिहारय–प्रतिहार + क (स्वार्थे) ५.१.१८
पडिहासिय–प्रतिभाषित ३.१४.११
पड्डु–पटु ९.१३.९, १०.१९.२
पडुपडह–पटुपटह वाद्य ४.८.३;५.६.७
पडुल–पाटल पुष्प ८.१६.४
√पढ–पठ् °इ ८.१६ ११,१०.८.९
√पढत–पठ् + शतृ १०.१.१३
पढम–प्रथम ५ १३.१९,११.१०.४
पढमकलत्त–प्रथमकलत्र प्रश० १७
√पढमाण–पठ् + शानच् ५.१ २७
पढमुट्ठिअ–प्रथम + उत्थित ६ ६ २
√पढिउं–पठ् + तुमुन् ८ २ ९
√पढिज्ज–पठ् (कर्मणि) °इ ४ १० २
पण अ°य–प्रणय ७.११.१६; ८.११.१३
पणइणि–प्रणयिनी ८.११.१३
√पणच्च–प्र + नृत् °इ ४ १.१४
पणच्चिय–प्रनर्तित १. मं०८
पणट्ठ–प्रनष्ट ४.२१.१७;१० ९.८
पणमण–प्रनमन, प्रणाम ५.१ १६;६ १.३
पणमिय–प्रणमित ९.१८.७
पणयकुद्ध–प्रणयक्रुद्ध ४.१७.५

पणयारूढ–प्रणयारुढ़ ९.१२ ६
√पणव–प्र + नम् °इ, पणविवि १ २.१, पणवेवि ३ ५.५, पणवेप्पिणु ८.१.११
पणमिअ °य–प्रणमित ३ ६.९,७.१३ १७,१.१७ ८
√पणविज्ज–प्र + नम् (कर्मणि) °इ २.१०.१
पणाम–प्रणाम ५.१.१९
पण्ण–पर्ण, पत्ते ५ ८.२२;११.१.८
पण्णगतिय–पन्नगस्त्रिय, नागनियाँ १०.१७.११
पण्णसाल–पर्णशाला ५.११.२
पण्णारह–पञ्चदश, पन्द्रह ११.१०.६
पण्णारहखेत्त–पञ्चदशक्षेत्र ११.२.४
पत्त–पात्र, वाहन १.१६ १
पत्त–पदाति ४ २१.१६
पत्त–प्राप्त २.८.२,६.११.१;९ ८.११
पत्त–पात्र, भाजन १०.२०.१०,११ १४.५
पत्तउ–प्राप्त + वत्, प्राप्त ८.१४.३,१० १९ १५
पत्तल–(दे) पतली २.१५ ३
पत्ति–पदाति ४ २१.१५,७.६.१
पत्ति–पत्नी १०.१३ ७
पत्तिवाल–तलवार ९.१२.३
पत्थ–(i) पार्थ-अर्जुन (ii) प्रस्थ एक माप ८.३.९
पत्थाण–प्रस्थान ८.२.१
पत्थार–प्रस्तार, विस्तार, ४.९.२
पत्थाव–प्रस्ताव ५.१ २०
पत्थिव–पार्थिव, राजा ६.१२.१
पदिण्ण–प्रदत्त १० २०-११
पद्धडियाबंध–पद्धडियाछन्द १.४.३
पद्धा–स्पर्द्धा १.११.१३
पधाइय–प्रधावित ७.१३.३
पन्नय–पन्नग ५ ८.२२
पप्फुल्लिय–प्रफुल्लित ४.६.४
पबंध–प्रबन्ध १.४.१०;१ ५.१४
पबल–प्रबल ६.५.११
पबोह–प्रबोध ४.५.२
पब्भार–प्राग्भार ४.१३ २
√पभण–प्र + भण् °इ २.१०.७; ४.१४ १९; ५.१३.२४
पभास–प्रभास (तीर्थ) ९.१९.४
पमाअ–प्रमाद, कष्ट ११.१३ ५
पमाउ–प्रमाद २-८.१०
पमाण–प्रमाण, संख्या २.५.१०,५ १४.११
पमाणिय–प्रमाणित, कथित ११.१२-९
पमाय–प्रमाद-दोष २.८.११
पमुक्क–प्रमुक्त ४.२१.११
पमुह–प्रमुख ४.८.१०;८.८.१९
पमेय–प्रमेय १०.३.१०
√पमेल्ल–प्र + मुच् °ल्लेवि १०.९ ४
पमेल्लिअ–प्रमुक्त ७.११.२
पम्मुक्क–प्रमुक्त १०,२६.२
पय–जल १.१ ३
पय–पद, चरण १.२.१;६.५.२
पय–(i) जल (ii) दुग्ध ४,७.९
पयइ–प्रकृति ५.१३.३३
पयंग–पतङ्ग ५.१४.२५
पयड–प्रचण्ड १०.९.२
√पयंप–प्र + जल्प् °इ २ १.३; ६ ७.११; पयपति (बहुव०) १०.२६.६;
पयपिअ–प्रजल्पित ५ ४.२०
पयकमल–पदकमल १०.१६ २
पयखलण–पद (पाठ) स्खलन; (ii) पद-व्यवसाय (या मार्ग) स्खलन ८.४.११
पयग्ग–प्रयाग ९.१९.१५
पयचप्पण–पद + आक्रमण, पदाघात ५.७.१३
पयछिन्न–पदछिन्न, पदनिर्धारित ९.१.४
पयज्ज–प्रतिज्ञा, हिं० पैज ४.२ १४
√पयट्ट–प्र + वर्त् °इ ५.३.५;७.३.१,११ ६ ४
पयट्ठिया–प्रतिष्ठिता (स्त्री०) प्रश० ८
√पयडअ–प्रकटय् °इ ८.२.१०; ८.१६ ६; °मि १०.६.१; °डेवि ७ १ ६
√पयडंत–प्रकटय् + शतृ ६.४ १
पयडबन्ध–प्राकृतबन्ध १ २.१४
पयडिअ °य–प्रकटित २.९.८; ८ ७ १४
पयडीकय–प्रकटीकृत ३ १२.२०
पयणछवी–पवन + छवि ३.३ ७
पयणेउर–पगनूपुर ३.८ ३
पयदलिय–पददलित ६.८ ११
पयपूरण–पदपूरण २.१५.१९

परिणाविअ–परिणायित ३.४७,°यउ ९१५१३
परिणिअ °य–परिणीत १०.१०५ ५.२.१३
परिणेवउ–परिणायितव्या (स्त्री०) ४.१४.१५; ५.२.२३
परिणेयव्व–परिणायितव्य ८५.८
परित्त–परित्राण ७.३.१०
परितुट्ठ–परितुष्ट ७.६ १४
परितोसिअ–परितोषित, परितुष्ट ७ ११४
परिथिअ–परिस्थित २.५.१३
परियोडअ–परिस्तोक, बहुत थोड़ा ५४४
परिपक्क–परिपक्व °उ (वत्) १.७.५;८१३.१२
√परिपालअ–परिपालय् इ° ८.३.१५
परिपीडिअ–परिपीड़ित २५.११
परिपूरअ–परिपूरित ८.१३ १०
परिपूरिय–परिपूरित २.५.९
√परिफुर–परि + स्फुर् °इ १०.३.२
परिभट्ठ–परिभ्रष्ट २.२.८
√परिभम–परि + भ्रम्°इ९.११.१.७,°वि ९.५ १०
√परिभमंत–परि + भ्रम् + शतृ १०.२४.७
√परिभमिर–परि + भ्रम् + इर (ताच्छील्ये) ५.१२.३; ७.६ १०
√परिभाव–परिभावय् °इ ११.७.१; °हि (विधि०) १०.२.६
परिभाविअ–परिभावित ८११ १६
परिमिअ °य–परिमित १.१६ ३,४ ९.११;५.३.१४
परिमुणिय–परिज्ञात १०.१८.४
परियण–परिजन ८ १५.१६,१०.१६.११
√परियत्त–परि + वर्तय् °वि ४.१७.७;९.१८.१
परियत्तण–परिवर्त्तन १.२.१४
परियर–परिकर ६ १ ६
√परियर–परिचर् °रिवि ७ ५.८
परियरिअ °य–परिचरित १ १४ ११;११.१० २
√परियाण–परि + ज्ञ °इ ४.१८.१५,°वि ६.१२ १; ८.८.१८
परियाणिअ °य–परिजात १.१७.४, २.५.८; ४.१८.१५ ३ १४.१०;
परिरक्खिय–परिरक्षित ५ ९.५
परिवज्जिय–परिवर्जित ११ १४.१०
परिवडिय–परिपतित ७.५.३
√परिवड्ढ–परि + वृध् °इ ४.९.१
√परिवड्ढंत–परि + वृध् + शतृ ३.१४.९
परिवड्ढिअ °य–परिवर्द्धित २.१ १०;९ ७.५
परिवाडी–परिपाटी ९.२.३
परिवारिअ–परिवारित ३.४.८
परिसंठिअ–परिसंस्थित ११.११.१
√परिसक्क–परि + ष्वक् °इ २.१५.१७,५.८.३७
√परिसीलंत–परि + शीलय् + शतृ ३.१४.११
परिसीलिय–परिशीलित २ १२ ११
√परिसुक्क–परि + शुष् °इ २.४.२
√परिसुत्त–परि + स्वप् °इ ९.१४.६
परिसेसिअ–परिशेषित; परित्यक्त १०.२०.९
°परिहच्छ–उपरिहस्त ७.६.१३
परिहच्छअ–(दे) दक्ष ९.१३ १२
परिहण–परिधान ४ २०.३
√परिहर–परि + हृ °इ ९ ७.३, °हि (विधि०) २.१६.४; °रिवि ६.१२.११,९.४.१७
परिहरणअ–परिहरण., परिहारक ११.१४.३
परिहरिअ–परिहृत ८ १३.१५
परिहव–परिभव, पराभव ६.९.११;७.४.१५
√परिहव–परा + भू °इ ३.७.१२
परिहा–परिखा १.८.८
परिहाण–परिधान ९.१८ २
परिहामंडल–परिखामंडल ३ १.२०
परिहासापेसल–परिहास + आपेशल-अतिशय मनोज्ञ ४.१७.१
√परिहिज्ज–परि + हीय् (कर्मणि) °इ ३ १२ ७
परिहिय–परिधृत १०.१८ ८
परीसह–परीषह २.२०.७; ११.९.६
परूढ–प्ररूढ १० ८ १४
परोप्पर–परस्पर ३.११ १२,९.७.८
परोहण–जलयान १०.११ १
पल–(तत्सम) मांस ६.८.९;१०.१० ८
पलय–प्रलय ६.१४.२,९ ९-४, °काल ४.२२.१२
पलाण–पलायित १०.२६ ७
√पलायंत–पलाय् + शतृ ४ २१.१७
पलाल–(तत्सम) पुआल, तृण ९ १५.७
पलास–(I) पलाश, मांसभोजी राक्षस (II) पलाश वृक्ष ५.८.३४;६.८ ६

√पलाइ–परा + अय् (आज्ञा०) १.११.११
पलित्त–प्रदीप्त ५.१३.१०
√पलोय–प्रलोकय् °इ १०.४.१०, °यंति (बहुव०) ७.४.४; °हु (विधि०) १०.११.९
पलंक–पर्यङ्क ८.१५ १६
√पलट्ट–परि + वर्तय् °इ २.१५.९,४.११.२; ११.६.४
पलाणिय–पर्याणित ५.६४,७.१.१९
पल्लि–पल्लि, छोटा गाँव ५ ८.२९
पल्लीवण–(दे) चोरोंके निवास योग्य वन ५ ८.२४
पल्लत्थ–पर्यस्त, परिवर्तित ७.१.१९
पवंच–प्रपञ्च १० १८.२
√पवज्ज–प्र + व्रज् °ज्जेइ ५ ५.१२; °ज्जमि ९ ९ ४
√पवज्जंत–प्र + वद् + शतृ ४.५ ८;१०.०.१
पवड्ढिअ °य–प्रवर्धित ९ ३ ६,९.११ ७,११.५.८
पवणाहअ–पवनाहत ५.७ १
√पवत्त–प्र + वर्तय् °इ ११.११ ७, °हि (विधि०) ५.१२ २४
पवत्त–प्रवृत्त १०.२६.५
पवत्ति–प्रवृत्ति ९.१० ६
पवत्तिअ–प्रवर्तित ८ १२.१४,१०.२४.४
पवन्न–प्रपन्न ९ ८.४
पवर–प्रवर ४.१२.२;६.१० ६
पवरभुअ–प्रवरभुजः (पु० विशे०) ३.५.७
पवल–प्रबल २.९.१२
√पवहंत–प्र + वह् + शतृ °ि (स्त्रियाम्)१० १८.७
पवहाविय–प्रवाहित ७ ६.६
पवाल–प्रवाल ५ ९ ८
पवाह–प्रवाह ६.५ १०,१०.१७ ८
पवाही–प्रवाही (स्त्री० विशे०) ५.१० ७
पवि–(तत्सम) वज्र ५ ४ ९,५.१२.२५
पवित्त–पवित्र ४.५ १४,८ १२ ८
√पवित्तअ–पवित्रय् °त्तेउ (विधि०) १.१८.४
पवित्ति–प्रवृत्ति ६.१ ४
पविपंजर–पविपञ्जर, वज्रपञ्जर ११.२.५
पविरल–प्रविरल ९ १०.६,१० ५.९
√पविसंत–प्र + विश् + शतृ ५.१ २७
√पवुच्च–प्र + वद् °इ (आत्मने०) ४.१ १४,५ २२. २३;१० २३ ४
पवुत्तउ–प्र + उक्तः ४.२.५
√पवेस–प्र + वेशय् °हि (विधि०) ९.१६ ६
√पवोत्तुं–प्र + युज् + तुमुन् ८ ११.१०
पव्व–पर्व ९.८.१८
पव्वइअ–प्रव्रजित ८ ४ ११
√पव्वज्ज–प्र + व्रज् °ज्जेमि २ १३.११; °मि८.७.९
पव्वज्ज–प्रव्रज्या १०.१९ १८;१० २१.१
पव्वज्जिअउ–प्रव्रजिताः (स्त्री० बहुव०) १०.२१.५
पव्वय–पर्वत ८.१४.१८;११.११ ४
√पसंस–प्रशंस् °इ ४.३.९
पसंसणु–प्रसशन (कर्तरि) ४ ३ ९
पसंसिअ–प्रशंसित ६.१२.१
पसण्णवयण–प्रसन्नवदन* प्रश० १३
पसत्थ–प्रशस्त २.५ ८,५.१२.१५,९.१५.१३
पसत्थपद–प्रशस्त + पद (शब्द) * प्रश० ६
पसन्न–प्रसन्न ७.११ १५
पसर–प्रसार २.२०.३
पसर–पुरतः ९.४.८
पसर–प्रात', हि० पसर, सवेरा ९.४.४,१० २३.१०
√पसरंत–प्र + सृ + शतृ ८.३.९,१०.२६.११
पसरण–प्रसरण ५ ७.६
पसरिअ °य–प्रसृत १.१४.१;५.३.७,७.८.८,८.१४.९
पसविय–प्रसवित १.१३.६
पसाअ–प्रसाद २ १३.१२,१०.१९.१८
पसारिअ °य–प्रसारित ६.१४.१, ७ १ १३
पसाहण–प्रसाधन ५.२.१६
√पसिंचमाण–प्र + सिञ्च् + शानच् ८.१३.३
पसित्त–प्रसिक्त ८ १३.१
पसु–पशु २.६.१२,११.१३.५
पसुत्त–प्रसुप्त ९.४.७,१०.९.४
पसुया–प्रसूता ९.७.४
पसेय–प्रस्वेद ६.१३.५,१०.१३ १०
पसोवण–प्र + स्वपन १० ९.१
पह–पथ २.१६.५,१० ८ ४
पहअ °य–प्रहत ६ २.८,६,१०.११,७.५.४
पहंजण–प्रभञ्जन ८.१३ ४
पहर–प्रहार ९.१०.२१
√पहरंत–प्र + हृ + शतृ ७.९ १४
पहरण–प्रहरण. (कर्तरि) ६.४ ८,७ ११ ७

पहरणट्टिअ–प्रहरण + स्थित ३.९ १६
पहरद्ध–प्रहर + अर्द्ध १० २४ १
पहरिय–प्रहारित ८.११.१३
√पहसंत–प्र + हस् + शतृ ३.१ १९
पहाअ–प्रभाव .४ ६.६;९.११.४
°पहाउ–प्रभाव ३.१३.९
√पहाव–प्र + धाव् °इ ३ १२.८
√पहाव–प्र + भू °इ ११.१.५
पहावइ–मति, कान्ति, देखें सं० टिप्पण ३.१२.८
पहि–पथिक ९ ८.१८
पहिअ °य–पथिक १.७.६;३.१२ १२,५.९.९
पहिलउ–(दे) प्रथम, हिं० पहला ५ १३.१८
पहिलारअ–(दे) प्रथम, हिं० पहला १०.२१.८
पहु–प्रभु २.१९.९,६.८.४;८.५ १४
√पहुच्च–(दे) प्र + आप् °ए (आत्मने०) ३.४.५
पहुत्त–(दे) प्राप्त ३.११.१२,४.१५.७;५ १२.५
पहुल्लिय–प्रफुल्लित °या (स्त्री०) ४ ८.१४
पाअ–पाद, चरण २.१२.८
पाअ–पाद, प्ररोह ४.१९.१९
पाइअ–पदाति ६.११.१
पाइक्क–पदाति १.१५ ५;६.८ १०
पाउ–पाप ३ ११.६
पाउस–पावस १०.१४.१
पाउसंत–प्रावृष् + अन्त ९.५.५
पाउसपूर–पावसपूर ९.५ ६
पाउससिरि–पावसश्री ० ९ ९ ७
√पाड–पत् + णिच् °इ ५.१४.१४ °वि ५ ७.१४; पाडेवि २.६.२, °हिहि (भवि०) ५ ७.१७
पाडल–पाटल ३.१२ ८; ४.१५ १३
पाडिअ–पातित ७.९.१४, ७.१०.१८
पाढअ °य–पाठक ५.१.२७, ११.१५.११
√पाढंत–पठ् + णिच् + शतृ २.१४.५
पाढण–पठन ४ ९.५
पाण–प्राण ४.३ ६
पाणहिय–प्राणाधिक, प्राणप्रिय २.५-६
पाणिउ–पानी ४ १९.२२; ९ ७.११
पाणिग्गहण–पाणिग्रहण ४.१४ १८
पाणिपत्त–पाणिपात्र, करपात्र ३ ९ १४
पामर–(तत्सम) कृषक ९.४.१

पामरी–(तत्सम) कृषक वधू ५.९.९
पामा–खुजली रोग ८.७.८
पाय–पाद, चरण ६.७.९; १०.८.६
पायउ–पादप ४.१० ७
पायच्छित्त–प्रायश्चित्त १०.२३.१; ११.८.८
पायत्थवण–पादस्थापन, पादपीठ ५.१.१४
पायपहार–पादप्रहार ४.१७.४
पायय–प्राकृत १.४.१०
पायार–प्राकार ३.१.२०; ४.६.५
पायाल–पाताल ८.३.६
पायालसग्ग–पातालस्वर्ग, पाताललोक १०.१७.११
√पारअ–पारय्, °ए (आत्मने०) ४.१२.९
पारक्क–परकीय (विशे०) ६.१.१०
पारग्गह–(दे) युद्ध ६.१.१२
पारणकज्ज–पारणकार्य ३.९.१२
पारणत्थ–पारण + अर्थ २.१५.७
पारद्धि–पारधी, मृगया ४.१३.१
पारंभिय–प्रारम्भित १.९ १; १.१०.१२;५.३.५
पारस–पारस (देश) ९.१९.६
पाराविय–पारित ३-६.१०
पारिय–पारित ४.११-८
पारियत्त–पारियात्र (प्रदेश) ९.१९.८
पारोह–प्ररोह प्रश० १७
√पाल–पाल् °इ २.१६.७; ११.१३.९
पालंब–प्रालम्ब, शाखा २.४.१२
पालणिट्ठ–पालन + इष्ट, पालननिष्ठ ४.५.९
पालह्याल्लि–(दे) बाँसमे लगी हुई छोटी-छोटी कड़ियाँ ५.७.१०
पालि–(तत्सम) पङ्क्ति, मेड़ ९ १०.१
√पालिज्ज–पाल् °उ (विधि०) ३.१४.१८
पालियकर–पालितकर, शुल्कग्राहक १ १०.१४
पालियधर–पालित + धरा, धरापालक ५.२.२३
√पाव–प्रापय् °इ ५.१३.२१; ९.२ १३; ११.४.२; °मि ९.११.६; °हो (विधि०) ६.२ ७; पाविऊण ६.१०.१०; पाविवि ९.५ ५; पावेसमि (भवि० उ० पु०) ९.१०.१४
पाव–पाप ३.१३.१०
पावकम्म–पापकर्म २ ५.१२; १० १०.१३
पावक्खअ–पापक्षय ११.१४.८

पावज्ज–प्रव्रज्या ३.८.५
√पावज्ज–प्र + व्रज् + णिच् °इ १०.२.४
पावपिंड–पापपिण्ड २.२.४
पावमई–पापमति २.१८.१
पावरस–पापरस ५.१३.१९
पावालिया–प्रपालिका (स्त्री०) ५.९.१०
पाविअ–प्रापित, प्राप्त ७.१०.१४
√पाविज्ज–प्र + आप् (कर्मणि) °इ १. ११. ५. ११ ३.१
पाविय–प्राप्त १.७.८; ७.४.१६; ८.६.५
पास–पार्श्व, हि० पास २.१३.९; २.१९.८; ४.१२.२
पास–पाश १०.२६.९
पासंगिउ–प्रासङ्गिक ५ ४.८
पासगंठि–पाशग्रन्थि १०.१४.१३
पासट्ठिअ–पार्श्वस्थित ३.९.९
पासणाह–पार्श्वनाथ १.१.१३
पासेय–प्रस्वेद ५.१३.१०
पाहण–पाषाण, हि० पाहन ९ ११.११
पाहरिय–प्राहरिक, पहरेदार ९.१४.२
पाहाण–पाषाण १ २ ९; २.२०.७; °मय प्रश०२०
पाहुड–प्राभृत ५ १.२३
पि–अपि १.५ २१
पिइ–प्रिय, पति ४.१७ १७; ४ ४ १९.१८; ६ ८.१२; ९ ४.१६
√पिक्खमाण–दृश् + शानच् १ १८.११
पिंग–पिङ्ग (वर्ण) २.९.३, ४.२१ २
पिंगल–पिङ्गल (ग्रन्थ) ४.९.२
पिंगलिय–पिङ्गलित ७ ६ ३
पिंगीकय–पिङ्गीकृत ३.६.८
पिंड–पिण्ड, पितर पिण्ड २ ६.२
पिंडवास–पिण्ड + आवास, छावनी ५ ११.२
√पिउज–पा °इ (आत्मने०) १.७ ४; ३ ३ ८; १०.५.७
√पिज्जंत–पा + शतृ ९.१०.१०
√पिट्ट–पीड् °ट्टिवि १०.१३ ९
पिट्ठि–पृष्ठ ४.२०.११
पित्तल–पित्तल (धातु), हि० पीतल २.१८.५
पिय–प्रिया, कान्ता २ १५.११
पिय–प्रिय (जन) ३.११.१३

पिय–पति °खंध-स्कन्ध ४.१९.४; °मरण २.५.१५; °यम-प्रियतम ४.१२ २; ८१३.१
पियर–पितृ २.६.२; ८.१०.५
पियलालिया–प्रियलालिता (स्त्री०विशे०) पतिकी लाड़ली ५.९.१४
पियलि–(दे) टीका, तिलक ८.१४.१४
पियवयण–पितृवचन ३.९.६
पियसंग–प्रियसङ्ग ३.१२.९
पिया–प्रिया २.१०.८; ३; ३.३.२; °चउक्क-चतुष्क ३ १३ १
पियामह–पितामह १.१७.७
पियारी–प्रियतरा, हि० प्यारी २ ११ २
पियालवण–(i) प्रियाल + वन; (ii) प्रिया + आलापन १.७ ३; ४ १८.४
पियासिअ–पिपासित, प्यासा ३.१३.१०
पिल्लणअ–प्रेरणक. (कर्तरि) ९.३.९
पिल्लिय–प्रेरित ९.१७.४
पिसुण–पिशुन, दुर्जन २ १०.८; ११ ५ ७
पिहु–पृथु ९.१२ १
√पी–पा, पियइ ४.२ ७; ९. ७.११; ११. १५.४; पियवि १०.७ ८
पीऊस–पीयूष ३.१.१
√पीड–पीड् °इ ९ १२.१६
पीडायर–पीडाकर ७ ८.९
पीडिअ °य–पीडित १.१.५; ८.११ ६; १०.७ ७
पीढ–पीठ, हि० पीढा ९ १८.८
पीणखंध–पीनस्कन्ध ५.१२.१८
पीणत्थणी–पीनस्तनी (स्त्री०विशे०) ७.१२.६
पीणिय–प्रीणित १०.१.९
पीवर–पीवर, पीन, स्थूल ५ १२.१३; °तड-तट ४.१३ १२
√पुंज–पुञ्ज्, °इ ३ १४.२२
पुंजय–पुञ्ज + क (स्वार्थे) २ ३.३
पुंजिअ–पुञ्जित ३.९ ९
पुंडुच्छुवण–पुण्ड्र + इक्षु + यन्त्र १.८.६
पुंडरिंकिणी–पुण्डरीकिनी (नगरी) ३.१.२१
पुंडरिंगिणी–पुण्डरीकिनी (नगरी) ३ ४.१२
√पुक्कर–पूत् + कृ °इ ४.१.९.२०
√पुक्कार–पूत् + कृ + णिच् °इ ५ ७.२०

पुक्खरद्धय–पुष्करार्द्ध, पुष्करवरद्वीप ११.११.१०
पुक्खलावइ–पुष्कलावती (नगरी) ३.१.१३
पुग्गल–पुद्‌गल १०.३.४
पुच्छ–(तत्सम) पुच्छ, हिं० पूँछ ४.२१.५
√पुच्छ–प्रच्छ्, °इ २.७.१; ९.१७.६, °सु(विधि०) ८.६ २; °हु (विधि०) ८.११.८
√पुच्छंत–प्रच्छ् + शतृ °ताहँ (बहुव०) ८.६.१२
पुच्छिअ–पृष्ट: २.१.२
√पुच्छिज्ज–प्रच्छ् (कर्मणि) °इ ४ १ १३,६.११.४; ८.१.१२,९.१८.९
पुच्छिय–पृष्टः २.१८.९,९.७.६
पुज्ज–पूजा ३ १२.१४
√पुज्ज–पूज्, °इ ३.१४.९; °वि ३.१३.४
√पुज्ज–पूर् (कर्मणि) °इ ३.१४.१०
√पुज्जमाण–पूज् + शानच् १.१८.५
पुज्जवय–पूज्यव्रतः (पु० विशे०) ८.३.१४
पुज्जारह–पूजार्ह १०.२३.२
पुज्जिअ–√पूजित १.१४.३
√पुज्जिज्ज–पूज् (कर्मणि) °ए १.१८.२
पुट्ठ–पृष्ठ, पीठ ९ ४.८
पुट्ठाहर–स्पृष्ट + अधर ९.१९.११
पुट्ठि–पृष्ठ २.१०.३
पुट्ठी–पृष्ठ, पीठ ९.८.४
पुढवि–पृथिवी ११.१०.३
पुण–पुनः २.१९.२
पुणरवि–पुनरपि २.१०.१
पुणुण्णअ–पुन + उन्नत २.२०.१०
पुणुरुत्त–पुनरुक्त, पूर्ववत् १० १७ १६
पुण्ण–पुण्य १.१८.५
पुण्णपहाव–पुण्यप्रभाव ३.३.१७
पुण्णपाव–पुण्यपाप ३.१३.८
पुण्णपुंज–पुण्यपुञ्ज ४ २.४
पुण्णणिमित्त–पुण्यनिमित्त ११ ७.१०
पुण्णिमइंद–पूर्णिमा + चन्द्र ३.४ १
पुण्णिमचंद्र–पूर्णिमा + चन्द्र १.१४ ११
पुण्णु–पुनः २.१४ ११
पुत्त–पुत्र २.५.१७; ११.५.६
पुत्तअ–पुत्र ४ १४.२०
पुत्तकुर–पुत्र + अङ्कुर ९ ७ ६
पुत्तदुह–पुत्रदुःख १०.१९.९
पुत्तवच्छल–पुत्रवत्सल ३ ८.१
पुत्ताणण–पुत्रानन ३.४.४
पुत्ति–पुत्री ४.१२.५
पुप्फ–पुष्प ५.२.१९
पुप्फपरिणाम–पुष्पपरिणाम १ १२.१६
पुप्फयंत–पुष्पदन्त (अप० महाकवि) ५.१.२
पुरउ °ओ–पुरतः १.१.८; ४.१९.९; ५ ११.१; १० ४.१०
पुरंदर–पुरन्दर २.२.९
पुरट्ठिय–पुरस्थित ५ १.१९
पुरलोअ–पुरलोक, नागरिक ९.११ ७
पुरवासि–पुरवासी ५.९.१५
पुराण–(तत्सम) प्राचीन ४.४.५; ४.४.१०
पुरावासि–पुर + आवासी, नगरनिवासी ४.५.११
पुरि–पुरी, नगरी ७.११.११
पुरिय–पुरी + क (स्वार्थे) ६.१.१७
पुरिस–पुरुष ९.१२.६
पुरीस–पुरीष १०.१७.४
पुरुत्तम–पुरुषोत्तम १.११.१३
पुलय–पुलक २.९ २०
पुलिण–पुलिन ९.१३.१५
पुलिणट्ठाण–पुलिनस्थान ५.१० ८
पुलिंद–पुलिन्द, भील ३ १२ १६
पुव्व–पूर्व ७.६.१२
पुव्वत्थ–पूर्व + अर्थ १ ५ १८
पुव्वदिट्ठ–पूर्वदृष्ट ९ १०.१०
पुव्वभणिअ–पूर्वभणित, पूर्वकथित ४ १४.१८
पुव्वभवंतर–पूर्वभवान्तर ३.१०-१०
पुव्वभाय–पूर्वभाग ९ १९ १३
पुव्वविदेह–पूर्वविदेह ८ २ २३
पुव्वसंकेय–पूर्वसङ्केत २ १९ ८
पुव्वावर–पूर्वापर २.११ ९
पुव्वावरविदेह–पूर्व + अपर विदेह ११ ११.६
पुव्वावरोवहि–पूर्व + अपर उदधि ५ ८.३
पुव्वास–पूर्व + आशा, पूर्वदिशा ३ १.९
पुव्वासिय–पूर्वाश्रित २ २० ८
पुहइ–पृथिवी १०.११ १
पुहईसर–पृथिवी + ईश्वर ५ १.३०
पूइ–पूति ९.१ ११
पूय–पूति ११.६.३

पूया–पूजा १.१८ २
पूर–पूर(क) १ १४.५
√पूर–पूर् °इ ३ ६.१०; °हु (विधि०) ९.८.१८
√पूरंत–पूर्+शतृ १.१४ ९
पूरिअ °य–पूरित ४. ६. ३; ४.२१. ६; ९. ८. ७; ९.९.९.१३
पुव्वाणकोडि–पूर्वकोटि, कालप्रमाण ३.१.१२
√पेक्ख–दृश्, °इ–९.१० २१; ११.१५ ५; °मि–३.११.१०; ९.१५.७; पेक्खु(विधि०) १.१३.२;२.१२.८,४.१७.१३;४.१८.६; १०. ४. ७; °हि (विधि०) ९.८.१४; पेक्खिवि ४.२.१५; ६.१२.१०; पेक्खेवि–४. १७. १२; ७. ११. ३, ८. १३ ६; १०.१४.१४; पेक्खेवि १.१०.७; पेक्खवि ६.८.५; पेक्खेसहुं(भवि०बहुव०)८.११ ८
√पेक्खंत–दृश्+शतृ ९.१३.८
√पेक्ख–दृश्, पेक्खु (लोट्) १.१३.२
पेक्खणय–प्रेक्षणक ५.१.२५
पेक्खेवड–द्रष्टव्य ८.११.१३
पेच्छ–√दृश् °इ १०.१३.३
पेम्म–प्रेम ८.१३ १५
पेम्मपुंज–प्रेमपुञ्ज २.१५ १६
पेयखंड–प्रेतखण्ड ५.१४.१४
√पेल्ल–प्र+ इर्, पेल्लिवि ७ १० १३
पेल्लिअ–क्षिप्त ७.९.५
पेल्लिय–प्रेरित ४.१९.११;४.२१.१३,७.८.६; १०.२०.२
√पेस–प्र+इष्, °इ १०.१७.५; °हि (विधि०) १०.१४.८
पेसणकार–प्रेषणकार ७ ७.१०
पेसणयार–प्रेषणकार ४.८.११
पेसिअ °य–प्रेषित १. १३. ९; २.१५.७; ८. ९. ५; १०.२०.९
पोअ °य–पोत १०.११.३;१०.११.९
पोइय–प्रोत, पिरोया हुआ ७ ८.२
पोग्गल–पुद्गल १०.५.३
पोग्गलखंध–पुद्गलस्कन्ध ९ १.१३
पोट्टल–(दे) पोटली, पोट ११.६.३
पोत्त–पोत, वस्त्र ४.२०.२
पोमराअ °य–पद्मराग १.९.६;१.१६.११
√पोमाअ–स्तु °इवि ६.१४.७
पोमाइअ–प्रशंसित १०.१८.४
पोमावइ–पद्मावती (वीर कविकी पत्नी) प्रश० १५.
पोस–पोष (क) १०.१७.५
°प्प–आत्म ९.९.५
°प्पयड–प्रचण्ड ५.१.२१
°प्पयार–प्रकार ४.१५.१
°प्पयाव–प्रताप ४.५.७;५.५.११
°प्पवण्ण–प्रपन्न, उद्यत १०.१.९
°प्पसत्थ–(अ)प्रशस्त १.१८.६
°प्पहार–प्रहार ७.६ १०
°प्पिअ–अर्पित ५.१४.१५

[फ]

फंस–स्पर्श १.६.४
फंसण–स्पर्शन् २.१६.२,३.६.१५
फडक्क–फलक १.५.२०
फडाडोय–फटा+आटोप ५.१४.७
फणकडप्प–फण+कटप्र, फणसमूह १.१.१४
फणस–फनस (वृक्ष) ५.८.९
फणाल–फण+आल-मतुप्, फणवाला ७.२.१४
फणिजक्ख–फणि+यक्ष, नागयक्ष ३.१२.२१
फणिंद–फणि+इन्द्र ११.२.२
फरय–फलक (वस्त्र) ५.७.१७
फरहरिय–फरफरायित ७.५.४
फलभर–फल+भार १.७.८
फलबंध–फलबद्ध, फलयुक्त, फूले हुए ५.९.६
फलिह–स्फटिक १.१७ ५
फलिहफलअ–स्फटिक+फलक ५.१.१४
फलिहमअ–स्फटिकमय ४.१७.१५;९.९.१२
फलिहुल्लय–स्फटिक+ल्लय (मतुपार्थे) स्फटिकमय ४.१० १७
√फाड–स्फाट्, फाडिवि ९ १०.२०; फाडेवि ९.१५.१४
√फाडिज्ज–स्फाट् (कर्मणि) °इ २.२.१,११.४.४
फाडिय–स्फाटित ७.१.१८
फार–स्फार, बड़ा ४ ५ १५,७.२ ११
फारक्क–फारक्कः, फारक्क शस्त्रधारक ९.१३.१४
फाल–फाल, फलांग, हि० छलांग ५.१०.१४

√फालिज्जमाण–स्फाट् (कर्मणि) + शानच् ७.६.६
फिक्कार–फेत्कार ध्वनि ५.८.२०
√फिट्ट–स्फेट्, °इँ (बहुव०) ५.१४.२४,६.१.७
फुक्कार–फूत्कार ५ ८.२३
√फुट्ट–स्फुट्, भ्रंश् °इ ६.१.११,७.६.२१; फुट्टंति (बहुव०) ७.८.१२; फुट्टिवि ३ ७.६;७.८.४
√फुट्टंत–स्फुट् + शतृ ७.८.१२
फुड–स्फुट २.१७.९;८.२.१८
फुडिअ–स्फुटित १०.१२.७
फुडिय–स्फुटित ५.६.७
√फुर–स्फुर् °इ ८.२ ७,८.८.१३
√फुरंत–स्फुर + शतृ ५.१२.१२;१०.२०.३
फुरण–स्फुरण ५.१३.२१;८.७.७
√फुरहुरंत–स्फुर + शतृ ५.१३.११
फुरिय–स्फुरित ७.५.२
फुरियरुइ–स्फुरितरुचि, शोभायमान ७.५.१३
फुरियाहरण–स्फुरिताभरण ५.२.६
फुलिंग–स्फुलिङ्ग ८.१४.२०
फुल्ल–पुष्प,फूल ४.१५.१३;१०.१९.१५
√फुस–√स्पृश्, फुसंति (बहुव०) ४.१९.२
फेक्कार–फेत्कार १०.२६.२
√फेड–स्फेट् °मि १०.१५.६, फेडिवि ११.६.८
फेडिय–स्फेटित ६.४.६
फेणावलि–फेन + आवलि १.६.८
फेरिय–(दे) घुमाता हुआ ९.१२.३
√फोड–स्फुट्, हि० फोड़ना, फोडिवि ९.४.५
फोडिअ °य–स्फोटित ५ ३.१३; ५.७.२१,५.१०.१०; ९.४.५
फोफल–पूगफल, हि० सुपारी १.७.८

[ब]

बइल्ल–(दे) बैल ५.७.१४; ९.४.४
√बइस–उप + विश् °इ ५.१२.२१
बंदि–बन्दी ४.११.७
°बंध–बन्ध, कर्मबन्ध २.९.१०;२.२०.२; ९.१३.१३
बध–(रति) बन्ध ९.१३.१३
√बंध–बन्ध् °इ ९.१.१३;११.५ ३
बंधिऊण १०.९.७
बंधण–बन्धन ५.१२.१५; ६.१२.४
बंधव–बान्धव ३.७.१; ७.३.१४; ९.१५.१२; ११.३.४
बंधसमत्थी–बन्धसमर्था (स्त्री० विशे०) १०.२०.८
बंधुक्क–बंधूक (पुष्प) १०.१८.११
बंधुर–बन्धुर, श्रेष्ठ ६.१.७
बंधूय–बन्धूक (पुष्प) १.१२.३
बंभंड–ब्रह्माण्ड ८ ८.७
बंभण–ब्राह्मण २.४.९; २.६.१
बंभचेर–ब्रह्मचर्य ३.९.८; ११.१४.११
बंभोत्तर–ब्रह्मोत्तर (स्वर्ग) ३.१०.१; ८.२.२५
√बज्झ–बन्ध् °इ ११.५.२, °ति ४.१५.६
√बज्झंत–बन्ध् + शतृ ७.१२.४
बत्तीस–द्विंत्रिंश, बत्तीस ३.३.१३; १०.२१.११
बद्धउ–बद्ध ७.११.१;१०.४.६;१०.१४.१०
बप्प–(दे) बाप, पिता ११.३.४
बलएव–बलदेव ४.४.४
बलद्द–बलीवर्द, हि० बलद ९.११.२; १०.४.१५
बलविसट्ट–बलविश्रब्ध, अत्यन्त बलवान् १०.७.२
बलहर–बलहरः, (कर्तरि) ४.२०.१२
बलाहिय–(i) बलाहक (ii) बलाधिक, बलवान् १.६.३
बलाय–बलाका, बगुला ४.६.४
बलाबल–बल + अबल ५.१३.१६
बलिअ–बली, बलवान ९.४.२
बलिट्ठ–बलिष्ठ ४.२१.१६
बलुद्धर–बल + उद्धर-उत् + धरः (कर्तरि), बलधारक ६.१२.२
बहल–बहुल ६.१२.३; १०.१९.१४
बहलरंग–बहुलरङ्ग ११.७.४
बहि–बहिस्, बाह्य १०.२२ १२
बहिणि–भगिनी ५.२.१३; १०.६.५
बहिर–बधिर, हि० बहरा २.२०.६
बहिरत्त–बाह्यत्व १०.२२.११
√बहिरंत–बधिर + कृ + शतृ-बधिरी कुर्वन् ७.८.८
बहिरत्थ–बाह्य + अर्थ, बाह्यपदार्थ १०.२०.१२
बहिरिय–बधिरित ५.८.५
बहुअ–बहुक ५.४.४, १०.१९.१०
बहुकाम–बहुकाम, बहुवासनायुक्त ११.४.६
बहुचेड–बहुचेट + °उ-वत् (विशे०) १०.१४.१
बहुजाण–बहु + ज्ञानी १.२.१५

बहुत्त–बहुत्व ५.२.४; ५.१२.४
बहुत्तण–बहुत्व ११.१३.५
बहुमोल्ल–बहुमूल्य °उ-वत् ८.१२.११;१०.११.२
बारस–द्वादश १.१६.४
बारह–द्वादश, बारह २.५.१०; २.१६.६; °विह-°विध ३.६.३, ३.७.१६
बारहम–द्वादशम्, बारहवां १.१६.१०
बाल–बाला ४.१७.१४
बालक्क–बाल + अर्क, बालसूर्य १०.१.११
बालकीला–बालक्रीड़ा ३.१.१
बालदिवायर–बालदिवाकर ३.६.७
बालत्तण–बालत्व, बालपन २.१२.११
बालतव–बालतप २.२.५
बालंतेउर–बाल + अन्तःपुर ३.७.५
बालिया–बालिका ८.१०.८
बालुप्पह–बालुकाप्रभा (नरकभूमि) ११.१०.६
बालुयासायर–बालुकासागर(देश) ९.१९.११
बाहिय–बाधित, बाध्य, प्रेरित ९.३.७
बाहिरअ–बाहिरकः, बाह्य २.७.५
बाहिरउ–बाह्य २.७.५
बाहिरिअ–बाहर १०.१७.१६
बाहुपास–बाहुपाश ९.१४.११
बाहुलय–बाहुलता ९.१२.१५; ९.१८.६
बाहुल्ल–बाहुल्य ११.१३.४
बिण्णि–द्वौ, हि० दोनों २.८.१८; १०.४.१४
बीय–द्वितीय १०.८.१६
बीयउ–द्वितीय + क (स्वार्थे) ४.१०.१०; ६.११.७; ११.४.९
बीया–द्वितीया, हि० दूज ४.९.१; प्रश० १५
√बुज्झ–बुध् °इ ८.९.१६; °मि ९.१६.७; बुज्झु (विधि०) ९.१७.८
√बुज्झंत–बुध् + शतृ ५.१.१८
बुज्झाविअ–बोधित ८.९.१५
बुज्झिअ–बोधित ९.११.४
√बुज्झिउं–बुध् + तुमुन् ८.२.९
√बुड्ड–ब्रुड्, मस्ज्. बुड्डेविणु ४.१९.१९; बुड्डेवि ११.८.५
√बुड्डंत–ब्रुड् + शतृ ११.२.९
बुद्धि–बुद्धि १.६.१०,२.८.६,५.१३.१८
बुह–बुध ३.५.१०
√बूहि–ब्रू + (विधि०) ९.१७.१३
बे–द्वौ २.१७.३,८.७.१०,९.१७.४
बेण्णि–द्वौ ८.८.१९;९.४.६,९.१८.८
बोज्झ–(दे) हि० बोझ ५.७.८,५.७.१५
√बोल्लिज्ज–वद् (कर्मणि) °इ १०.३.९
बोल्ल–वद् °इ ४.११.१३,९.९.१; °ए (आत्मने०) ९.१७.१३; °मि ९.१६.६
√बोल्लंत–वद् + शतृ ८.९.८; ९.११.१६; १०.१०.१४
बोल्लण–बोलना ८.९.५
बोल्लाविअ–आहूत,पुकारा ७.९.१२,९.१५.१,१०.१.६
बोहि–बोधि १.२३.७,११.१३.१

[भ]

भअ–भय २.६.११,३.११.१४,८.१६.१०
भंग–भङ्ग, विनाश १०.१.१३;१०.१७.४
भंगी–भङ्गी, शैली ७.१.६
√भंज–√भञ्ज् °इ ११.४.१
भंजणय–भञ्जनक. (कर्तरि) ९.१६.९
भंड–भाण्ड १०.११.५
भंतचित्त–भ्रान्तचित्त ३.१२.१३
भंति–भ्रान्ति ४.१८.१३;९.११.१५
भंसण–भ्रंशनः (कर्तरि), भ्रंशक ३.६.१५
भंसिय–भ्रंशित २.२.९
भक्ख–भक्ष्य ८.१२.१४
√भक्ख–भक्ष् °हि (विधि०) ९.१०.१९
भक्खंत–भक्ष् + शतृ ९.११.३
भक्खण–भक्षण ९.१०.८,१०.१०.६
√भक्खिज्ज–भक्ष् °उ (विधि०) ९.१०.१७
भग्ग–भग्न ४.१९.१४,९.१३.५
भज्ज–भार्या २.११.२,४.११.६
√भज्जंत–भञ्ज् + शतृ ११.१.५६
√भज्जंत–धाव् + शतृ ७.६.७,७.१२.१३
भट्ट–भट्ट,वेदवित् विप्र (अथवा भ्रष्ट) ५.७.२१;५.११.७
भड–भट ६.२.५;६.२.९
भडथड–भटसमूह ६.४.७
भडमीस–भटमीष(ण) ६.३.६
भडयण–भटजन ७.४.४
भडरक्खिय–भटरक्षित १.९.१

भडद्दूल–भटशार्दूल ६.१४.६
भडारा–भट्टारक, स्वामी ३ १०.१०;९.१०.१९
भडारिआ–भट्टारिका, स्वामिनी १०.१०.६
√भण–भण् °इ ४.२.२;१०.१२.९. °मि ५.१२.२४; °उ (विधि०) १०.३.४; °हि ३.७.१०; भणिवि ५.४.१०; भणेवि ८.१०.९; भणेवि ९.१०.१२ भणु (विधि०) १०.१.१६;१०.८.१२
√भणंत–भण् + शतृ ३.६.९
भणिअ–भणित २.१२.२;५.१२.६;१०.१०.१२
√भाणिज्ज–भण् (कर्मणि) °इ ११.१४.९
भणिय–भणित ४.१७.७,५.१.१;१०.२५.६; °य १.५.१२
√भण्ण–भण् °इ ३.१४ २;८.१०.१४;१०.२३.६
भत्त–भक्त ४.५.१२,८.५.१२
भत्तार–भर्त्तार, पति ६.३.३;९.३.२
भत्तारधम्म–भर्त्तारधर्म, पतिधर्म २ १९ ३
भत्ति–भक्ति १.१४.४
भद्द–भद्र १.१७.३
भद्दरंग–भद्ररङ्ग (देश) ९ १९ ४
√भम–भ्रम् °इ ६ ६.२;९.२.१०,१०.४.१५,भामि-भ्रम् + क्त्वा ९ ९.१; भमेवि १०.१७.१९; भमेसइ (भवि०) ४.३.१५
√भमंत–भ्रम + शतृ ९ १.१७; °ी (स्त्रियाम्) ८ ११.८
भमण–भ्रमण १०.२०.१०;११.३.२
भमर–भ्रमर १ १२.५;८.५ ६
भमरउल–भ्रमरकुल ४.१६.७
भमरपंति–भ्रमरपङ्क्ति ४.१७ ६
भमरी–भ्रमरवती (स्त्री० विशे०) ५ १०.८
भमरोली–भ्रमर + आवलि ५.९.८
√भमाड–भ्रामय् °डेइ ७.४.१४
भमाडिअ–भ्रमित ६ १४.११
भमिअ–भ्रमित ८ १५.५; ९.१८.९
भमिय–भ्रमित ४.१४.१६; ४.१६.७
√भमिर–भ्रम् + इर (ताच्छील्ये) १.१.७; ५.८.५
भम्मह–भ्रमक (घुमक्कड) १०.७.१
भम्मुट्ठि–ब्रह्ममुष्टि (एक धूर्त्त चट) १०.८.२
भयंदर–भगन्दर (व्याधि) ३.११.३

भयवंत–भगवन्त ४.५.८
भयवत्त–भवदत्त २ ५.७; २.६.३; ८ ४.३
भयावण–भयावना ५.१३.११; ७.१.२२
भर–भार ४.११.१०; ७.३.१३
√भर–भृ, °इ ५.९.१०
√भरंत–भृ + शतृ ९.९ ११
भरनिव्वाह–भारनिर्वाह ७ ६.१९
भरह–भरत १.५.८; ३ १ ११
भरहखेत्त–भारत + क्षेत्र ४ ३.१५; ११ ११.९
भरहाइय–भरत (चक्रवर्ती) + आदिक ४ ४.३
भरहालंकार–भरत (मुनि) + अलंकार ३.१.३
भरिअ–भरित ३ १.१६
भरिय–मृता (स्त्री० विशे०) १०.१६.१०
भरियअ–भरित + क (स्वार्थे) ७.५.२; ९.८.१३
भरुयच्छ–भरुकच्छ, भडौंच (बन्दरगाह) ९.१९.४
भल्ल–भाला (शस्त्र) ७.६.९
भल्लः–भद्र, भला ८.१२.११
भल्लउ–भद्र + क (स्वार्थे) ८.१६.८; ११.९.८
भल्लायई–भल्लातकी (वृक्ष) ५.८.८
भल्लि–बर्छी ४.११.४; ८.१५ ३
भल्लुंकि–(दे) शिवा, शृगाली ५.८.२०; ७.१.१७
भवएउ–भवदेव २.८.७, ३.५.७; ८ ४ १४; °एव २.९.१५
भवएवामर–भवदेव अमर ३.३ १८
भवकद्दम–भवकर्दम २.७.९
भव–भव, संसार ९.११.१६, ११.१३.११, °गइ-गति (जन्म) ३.५.१२; °छेय-°छेद ८ २.१९; °जल ४.३.१२; °णिसि-°निशि ३ १३ ८; °तरण भवतरण (कर्तरि)भवतारक१९.२३ १; °तारअ °तारक ४.४.१३ °घर-°गृह १० १८ १२; °वइतरिणी°-वैतरणी २.११.१३; °संधारण-°संधारण-°भवधारण ११.५.९, °समुद्द-°समुद्र ४ ६.१३; °सायर-°सागर ११ २.९
भवयत्त–भवदत्त ३.३.३; ८.२ २१
भव्व–भव्य ८ २ १९; १० १८ २
भव्वबंधु–भव्यबन्धु १.५ ७
भव्वयण–भव्यजन १.१ ६, १० २४ ८
भसल–भ्रमर ३ ३.५; ९ ९.३
√भा–भा, °इ ४ १९.१५; भाति १० ३.५

भुयंग-भुजङ्ग (i) सर्प (ii) भुज + अङ्ग, देहलता (iii) प्रेमी, पति (iv) कामीपुरुष १.१०.६; ९.१२.७
भुयंगम-भुजङ्गम, सर्प, ९.१०.९;१०.१२.२
भुयंगिणि-भुजङ्गिनी, नागिन ४.१९ १७
भुयजुवल-भुजयुगल ९.७.७
भुयतुल-भुजतुला (i) भुजारूपी तुला (ii) भुजाओं में धारण की हुई तुला ८.३.१०
भुयदंड-भुजदण्ड १.११.२; °बल ६.१४.९, °वेय-°वेग १ म० ७
भुवडालिया-भ्रू + डालिका (दे), भ्रूलतिका ५.९.१०
भुवण-भुवन १.६.४;३.१०.१५
भुवणुल्ल-भुवन + उल्ल (स्वार्थे) १.१०.१२
√भू-भू, भविस्सए (भवि० तृ० पु० एकव०) २.३.४
भूअ-भूय. १०.१७.१५
भूइ-भूति, भस्म १.१.६,५ ५.११
भूगोयर-भूगोचर ५.१३ २८
भूजुयल-भ्रूयुगल ५.१३.५
भूभग-भ्रूभङ्ग, कटाक्ष १.१० १०,९.१३.१०
भूभंगवत्त-भ्रू + भङ्ग + वत् (युक्त) ४.२२.११
भूमिकम-भूमिक्रम, देखें सं० टिप्पण; १.१५.५
भूमिभाय-भूमिभाग ४ २१.७;५.१.२३
भूय-भूत, प्राणी १०.३.२
भूय-भूत, पञ्चभूत १०.४ १
भूयावलि-भूत + आवलि १०.२५ ४, ११ १५.४
भूवंकुत्त-भ्रू + वक्रत्व ४ १७.२१
भूवल्लि-भ्रूवल्लि, भ्रूलता १.११ १५
भूवाल-भूपाल ५.१ १६
भूसण-भूषण १०.१९ ७
भूसिअ-भूषित ३ १३ १,४.९.८
भूसिअंग-भूषित + अङ्ग ३.६.१
भेअ-भेद ११.९.३
भेडसंघाय-(दे) भेड-कायर + संघात ७ ६.१३
भेय-भेद (नीति) ५.३ ४
भेय-भेद, फूट, विग्रह ६.१ १४
भेयअ-भेदक ८.१५.३
भेसिय-भेषित ५.११.१३
भोअ-भोग (i) भोगेच्छा (ii) केंचुली ३.९.१७
भोइअ-भोगिक, भोगयुक्त, साधनसम्पन्न ५.९.२
भोग-(तत्सम) (i) फणाटोप (ii) वस्त्राभरणादि भोगोपभोगसामग्री १.१०.६
भोज्ज-भोज्य १०.२.१;१०.२०.१०
भोज्जसत्ति-भोज्यशक्ति १०.२.१
भोय-भोग २.९.११;४.९.१२
भोयण-भोजन २.१२.२,८.१३ ८
भोयणसत्ति-भोजनशक्ति १०.२.१
भोयभूमि-भोगभूमि ११.११.५
भोयायर-भोग + आदर ५.२.१६

[म]

म-मा (निषेधार्थे) ३.७.१०; ३.१३.५
मअ-मद ६.५.१०
मइ-मति, मतिज्ञान ३.५.१; १०.५.१२
मइंद-मृगेन्द्र ६.७.८; ७.८.६
मइंध-मत्यन्ध ११.८.५
मइजरढ-मतिजरठ, अतिशय प्राज्ञ ९.१०.७
मइणाण-मतिज्ञान १०.१८.७
मइमोहण-मतिमोहनः (कर्तरि) ५.१३.७
मइर-मदिरा ४ १७.१५
√मइलंत-(दे) मलिन + क्विप् + शतृ ६.४.१०
मइलण-(दे) मलिनीकरण ६ ५ ११
मइलिय-(दे) मलिनित ११.७.९
मइलल्ल-(दे) मलिनीक्रियमाण. (विशे०) ५ ७.६
मइवर-मतिवर, श्रेष्ठ, मतिमान् ५.१२ २२
मई-मति ८.९ १५; ९.१६ ५
मउ-मय, युक्त १ १६ ११
मउ-मृत ३.९ १६
मउ-मद ३ १२ ५
मउड-मुकुट, हि० मौड २.२०.११; ८.१२.४; १०.२०.३
मउपिंड-मृत्पिण्ड १० ४ ४
√मउरिज्ज-√मुकुर् (कर्मणि) इ ३.१२.५
मउरिय-मुकुरित ४.१५.१३
√मउलंत-मुकुलय् + शतृ ९.१३.१७
मउलाविय-मुकुलायित ७ २.५
मउलि-मौलि, मुकुट ५.१.१६; ८.११.१५
मउलिय-मुकुलित ८ १६ ९
मऊर-मयूर ४.७.६; ५ १० १४, ७.९.९
मं-मा (निषेधार्थे) ६ १२.३

मंकुण–मत्कुण १० २६.४
मंगलराइअ–मङ्गलराजि ४.५.१७
मंगलवंत–मङ्गलवन्त ९.४.९
मंच–मञ्च ८.१६.३
मंचअ–मञ्चक, मञ्च ८ १२.१२
मंजरि–मञ्जरी १ ८ २
मंजिट्ठ–मञ्जिष्ठ, हि० मंजीठ ११.७.४
मंड–मण्ड, हठात्, बलपूर्वक १.११ २; ५ ५ ४
मंड–मण्ड, बल ७.१० ९
मंडण–मण्डन, वस्त्र ४ १९.२
मंडण–मण्डन, बनाव-श्रृङ्गार ९ १२.१७
मडलंतर–मण्डल + अन्तर, प्रदेशान्तर ९.१७.९
मंडलग्ग–मण्डलाग्र, असि ७.२.९
मंडलवइ–मण्डलपति, राजा २.५.३; ४ २०.६
मंडलि–मण्डली ५.८.२८
मंडलिय–माण्डलीक ५ १.९, ५.७.१०
मंडली–मण्डली १.११.९
मंडव–मण्डप २.९.४, २ १० ३
मंडवथाण–मण्डपस्थान ३.२ ९
मंडिअ °य–मण्डित ३.१.२१; ४.२.८; ४.१३.२; ११.११.१
√मंडिज्ज–मण्डय् (कर्मणि) °इ ११.१४.२
√मंडिर–मण्ड् + इर (ताच्छील्ये) ६ १० २
मंत–मन्त्र, मन्तव्य ९.४ ३,९ ९ ४
√मंतड–मा + शतृ, हिं० समाना २.१० २०, मतु ८ ८.७
मंतत्थ–मन्त्र + अर्थ ४.९ ५
मंति–मन्त्री १.१२ ८,५.१३.१२
√मंतिज्ज–मन्त्रय् (कर्मणि) °इ ९ ८.८
मंतितणुब्भव–मन्त्रितनूद्भव, मन्त्रिपुत्र ३.७ ८
मंतिसुअ–मन्त्रिसुत ३.९.१०
√मंथ–मथ् °इ ८.१५.११
मंथाण–मन्थान, हि० मथानी, हांडी ८.१५.११
मंदमई–मन्दमति १.२.१
मंदमार–मन्दमार वृक्ष ४ २१.३
मंदर–मन्दर पर्वत १.१.१
मंदल–मर्दल वाद्य १०.१४ १२,१० १९ ३
मंदार–मन्दार वृक्ष ४ १६ २
मंदी–मन्द-मन्द (विशे०) ९.१०.६

मंदुज्जोअ–मन्द + उद्योत ११.७.५
मंदुर–मन्दुरा ५.१०.२२
मंसदल–मासखण्ड १०.१० ७
मगह–मगध २.३.१०;५.८ ३८
मगहदेस–मगधदेश १.६.२;३ १४.६
मगहा–मगध २ ४.७
मगहाहिव–मगधाधिप, मगधेश ३ १४.३,४.२२ २५
मगहेस–मगधेश ७.१३ ६
मगहेसर–मगधेश्वर १ १४ १
मग्ग–मार्ग ४ २१.२;१०.१७ १,१०.१९ ११
√मग्ग–मार्गय् °इ ४ ९.७,६.१२.८
√मग्गंत–मग् + शतृ ५ ३.४
मग्गण–मार्गण, बाण ७ ८.१४
मग्गरोह–मार्ग + रोध (अवरोध) ५.७.२४
मचकुंद–मुचकुन्द वृक्ष ४ १६ २
मच्छ–मत्स्य ४.२१ ४;१०.१० ८
मच्छिय–मक्षिका ७.१.१२
मच्छी–मत्स्यवती (स्त्री० विशे०) ५.१० ८
मज्ज–मद्य ४ २.७,४.१७.१३
√मज्ज–मस्ज्, °इ ६.५ ३
√मज्जत–मस्ज् + शतृ १०.१८.१८
मज्जणवड–मज्जनघट ४.१३.१२
मज्जपट्ट–मद्यपात्र ५.७ २१
√मज्जमाण–मस्ज् + शानच् ५ १०.६
मज्जाय–मर्यादा ५.३ ७
मज्झ–मध्य, कटि २.५ ५;९.१७ ७
मज्झंकिय–मध्यङ्कृत ११ ११.२
मज्झट्ठिय–मध्यस्थित १.१७.५
मज्झण्ण–मध्याह्न ५ ७ २,८ १२.१४
मज्झत्थ–मध्यस्थ १.२.६
मज्झिम–मध्यम ११.११.१
मडप्फर–(दे) मान, गर्व ७ ११ ७
मढिय–(दे) आवृत, मढा हुआ ११ ६.२
मण–मन २.१५ १४,४ २१ १९;१० ११ ३
मणअहिराम–मन + अभिराम २.९.७
मणकसाय–मन + कषाय २ ७.१०
मणत्थोहथेण–मन + अर्थ + ओघ + स्तेन; मन (या मनोरथ) समूह रूपी धनको चुरानेवाला ४.५ ६

मणपज्जय–मन पर्यय (ज्ञान) ३.५.१
मणसंकुण–मनमत्कुण ८.८.१२
मणरंजण–मनरञ्जनः, मनोरंजन करनेवाला४.४.११
मणरोहण–मनरोधन, मनोनिरोध ११ १४ ७
मणवल्लह–मनोवल्लभ २.१५.११
मणसुद्धि–मनशुद्धि ५.९.१५
मणहर–मनोहर ५.२.२१
मणहारिणी–मनोहारिणी २.१५.४
मणाअ–मनाक् २.१५.१७
मणिकडय–मणिकटक ९.६.२
मणिखइअ–मणिखचित १.१५.६
मणिचदकंति– चन्द्रकान्तमणि ३.३.८
मणिजुत्त–मणियुक्त १०.१९.७
मणिट्ठ–मन. + इष्ट, मनोज्ञ ५.१०.४
मणिमउडवर–मणिमुकुटवर ३.३.१३
मणिमुंच–मणिमुक्, मणि छुडानेवाला ५.५.९
मणिरयण–मणिरत्न ९.८.७
मणिवण्ण–मणिवर्ण (रंग) ७.१२.३
मणिसार–मणिजटित ३.१.१०
मणिसिह–मणिशिख, मणिशेखर, रत्नचूल (विद्याधर) ६.१०.८; ७.३.४
मणिट्ठा–मनिष्टा (स्त्री० विशे०) प्रश० १५
मणुअ–मनुज ३.१०.७
मणुब्भव–मनोद्भव ८ ६.३
मणुय–मनुज २.११.७; १०.१०.१६
मणुयत्त–मनुजत्व १०.४.१५; १०.१७.१९
मणुयत्तण–मनुजत्व + ण (स्वार्थे) २.२.४
मणुस–मनुष्य ५.१३.१७
मणुसइअ–मनुष्यगति ५.४.५; ७.७.९
मणुसोत्तरगिरि–मानुपोत्तरगिरि(पौरा०) ११ ११.११
मणोरम–मनोरम ३.२.३
मणोरह–मनोरथ १.११.२०; ७.३.१२
मणोहरगारअ–मनोहरकारक ९.१५.१२
मणोहारिय–मनोहारी ५.६.१४
√मण्ण–मनु, °इ ३.९.९; ९.३.१; १०.४.१२; °मि ४.२.११; १०.६.८; मण्णंति (बहुव०) ३.१ ७,९.१२.३; मण्णेविणु ८.१४.१३; °हि (विधि०) ३.५.१२
√मण्णंत–मनु + शतृ २.१४.३; ५.१२.२२
मण्णिय–मानित, स्वीकृत ९.११.१२
√मण्णिज्ज–मनु (कर्मणि) °इ १.५.११
मत्त–मात्र, केवल २.१५.१९
मत्त–मत्त, मतवाला ४.१६.७; ५.१०.२०
मत्थअ–मस्तक २.४.२
मत्थिअ–मथित ७.१.१०
मद्दल–मर्दल ५ ६.८; ४.८.३
मद्दव–मार्दव; मार्दवयुक्तचित्त ११.१४.३
ममत्ति–मम + इति, ममत्व ११.५ १०
मम्मण–(दे) कन्दर्पालाप, कामवार्ता; कामुक फुसफुसाहट ८.११.१४
मम्मण–अव्यक्तवचन ९.१९.४
मय–(i) मद, हस्तिमद (ii) मद-सुरा १.१०.११; १.१५.२; ५.१०.६
मयंक–मृगाङ्क, चन्द्रमा ४.५.१५
मयंक–मृगाङ्क, राजा ५.२.१३; ६.१.१२
मयंग–मातङ्ग, हस्ति ५.१०.२१,६.७.१०
मयंद–मृगेन्द्र ६.१०.६
मयगल–मदगल, हस्ति ५.१०.६
मयच्छि–मृगाक्षी(स्त्री०विशे०)१०.८.११;१०.१०.६
मयजल–मदजल ४.२०.९;७.५.३
मयजोडिय–मदयोजित, गर्विष्ठ ९.३.८
मयण–मदन, कामदेव ४.१८.३,४ १८.१४
मयणबाहु–मदनबाहु ४.१३.१
मयणमय–मदनमद ८.११.१२
मयणबाण–मदन बाण ९.२.५
मयणावास–मदनावास ४.१९.१६
मयनाहि–मृगनाभेय, कस्तूरी ४.१७.१६
मयमुक्क–मदमुक्त ४.२२.१९
मयरंद–मकरन्द ५.९.७,१०.१.१०
मयरचिंध–मकरचिह्न, मकरध्वज कामदेव ४.१३.८; १०.२०.४
मयरद्धय–मकरध्वज ४.७.६;९.१.५
मयरमच्छ–मकरमत्स्य, मगरमच्छ ४.६.५
मयरहर–मकरगृह समुद्र ८.३.८;१०.१८.७
मयरायर–मकराकर, समुद्र ९.५ ७
मयलंछण–मृगलाञ्छन, चन्द्रमा ४.७.१०,८.१५.४
मयसंग–मदसङ्ग, मदसहित १.१०.१०
मयाइ–मद आदि कषाय ११.१४ ३
मयाहिम–मृगाधिप ५ ८.२६

मयालोयणी–मृगलोचनी ४.५.६
√मर–मृ, °इ ९.६.५;१० १४.१६, °मि ९.६ ६; °उ (विधि०) ७.७.७, मरिवि २.२०.९; मरेवि ३.१३.१५; मरेवि ३.५.८; ११.१५.७; मरेप्पिणु ८.२.२२
√मरंत–मृ+शतृ १०.१४.१४
मरगइवण्ण–मरकतवर्ण १.११.३
मरगय–मरकत (मणि) ५.९ ८,८.१५.२
मरगयभित्ति–मरकतभित्ति ३.३.९
मरट्ट–दर्पयुक्त ७.५.१५
मरहट्ठि–महाराष्ट्री स्त्री, हि० मराठिन ४.१५ १५
√मरिज्ज–मृ (कर्मणि) °इ १०.१४.११
मरु–मरुत्, मारुत् ४ ६ ३,९.१२.३
मरुभोयण–मरुत्+भोजन, वायुभोजी सर्प ३.९.१७
मलण–मर्दनः (कर्तरि) ४ १५ १०
मलयाचल–पर्वत ५.२.१२,९ १९.१
मल्लि–वृक्ष ४.२१.२,५ ८ ८
मव–√मापय् °इ ४.१९.१८
मसाण–श्मशान ११.६.४
मसिण–मसृण २ १४.१०,८.१६८.
मसियाल–मसिकाल (विशे०) १०.२६.४
मसी–मसि ४.७.४
मह–मम २.१६.८; २ १९.७, ४ ३.८
√मह–मह्, काङ्क्ष् °इ ९.२.७; ९.१४.१२
महं–महत्, महान् ९.१९.७
महएवि–महादेवी १०.१६.१०; १० १७.२
महकइ–महाकवि १.३.४, १.३.९
महण–मन्थन ८.१४.१०
महणइ–महानदी ४.९.२
महण्णव–महार्णव ८.१४.१५; ९.५.१३
महंत–महन्त, महात्मा ३.७.१; ५.१३ २३
महपुरिस–महापुरुष ४.४.५
√महमहंत–मह्+मह्+शतृ ४.६.३
महाराय–महाराजा ४.२०.७; ५ १३.३
महरिट्ठ–महाराष्ट्र ९.१९.४
महरिसि–महर्षि ४.६.८; ५.२.२२
महल्ल–महत्+ल (स्वार्थे) १ ८.२; ११.४.२
महाउड्डिय–महाउत्कलिक, उडीसा निवासी ९.१९.१९
महाउहि–महायुधिः, महायोद्धा ६.१४.१०
महाकरि–महाकरि-महागज ९.५.५
महाकव्व–महाकाव्य १.१८ २२; ३.१४ २५
महागअ °य–महागज ६.५.३; ७.१०.११
महागइ–महागति, परमगति १.१.५
महाचुण्ण–महाचूर्ण, (हि०) मुर्दाशख चूर्ण १०.९.२
महाडइ–महा अटवी ५.८.५
महाणयर–महानगर ८.१३ १२
महाणस–महानस ३.३.७
महाणुभाअ–महानुभाव ७ ३.७
महातव–महातप १०.२२ ८; १०.२३.५
महातम–महातम (प्रभा, नरकभूमि) ११.१०.९
महाधिहि–महाधृति ९.१६.१०
महादुम–महाद्रुम २.१२.८
महाधय–महाध्वज ५.११.११
महापउम–महापद्म (राजा) ३.५.१०,८.२.२३
महापह–महापथ ८.५.१३
महाफडाल–महाफण + आल (मतुप्) महाफणयुक्त ७.२.१४
महामर–महामार २.९.१९, ५.१३.२२
महामव्व–महाभव्य १०.१८.४
महामरु–महामरुत् ३ १४.७
महामास–(तत्सम) नरमास १०.२६.२
महारअ–हमारा ११.१४.१०
महारइ–महारति, महाप्रीति ८.११.१७
महारडि–महारुदन २ १३.९
महारह–महारथ १.११ ८
महारा–हमारा ९.१०.१९
महारायाहिराय–महाराजाधिराज ५.१ १४
महारिसि–महा + ऋषि, महर्षि ३.१३ ८; ७.१३.१५
महावइ–महा आपत्ति ५ १३.८
महावण्ण–महावर्ण, रक्तवर्ण १०.९.२
महावय–महाव्रत ३.९ १५; ८.२.१२
महासंत–(तत्सम) महासन्त, महाजन ८.२.८
महासिहर–महाशिखर १.१३.१०
महाहव–महा+आहव, महायुद्ध ५.७ २७
महि–मही, पृथ्वी ७.२.६; १०.२५.११
महिअ–महित, पूजित २.६.४
महिणाह–महीनाथ १.१६.२
महिपत्तउ–महीप्राप्त ४.२.१७
महियल–महीतल १.६.२;७.५.५

महिल–पहिला ५.७.२; ९.१.१६
महिलायण–महिलाजन २.१२.६
महिवइ–महीपति, भूपति १०.१३.४,११.४.७
महिवट्ट–महीपृष्ठ, धरणिपृष्ठ ४.२२.२२; ५.१२.२, °वीढ °पीठ २.१०.१;८.३.१६
महिस–महिष ५.८.१७
महिसि–महिषी, महारानी १०.१५.३
महिसी–महिषी (i) महारानी (ii) भैंस २.५.३; ५.९.४
महिहर–महीधर ८.७.१४,११.४.५
महीयल–महीतल ३.१४.१०
महीस–महि + ईश, नृपति ५.८.३२,७.१३.१७
महीहर–महीधर ९.५.५;९.१२.१०
महु–मधु १.१०.११
महु–मधु (महुआ) वृक्ष १०.७.२
महुअर–मधुकर ८.१२.४
महुकीला–मधुक्रीड़ा, वसन्तक्रीडा ८.२.१
महुघड–मधुघट, मदिराकुम्भ ४.१७.१२
महुमत्त–मधुमत्त ८.१४.५
महुर–मधुर ४.१५.३,४.१७.११;८.११.१४
महुरक्खर–मधुर + अक्षर ५.१.२७
महुरत्त–मधुरत्व, माधुर्य १०.१.३
महुरयर–मधुरकरः (कर्तरि) ८.१३.१४
महुसंच–(i) मधुसंचय, मधुछत्र ९.१२.१८
महुरसद्द–मधुरशब्द ३.१२.१७
महुसत्ति–मधुरशक्ति १३.३.३
महुसूयण–मधुसूदन (श्रेष्ठि) १.५.२
महेसर–महेश्वर १.१०.७
मा–मा (निषेधार्थे) १०.२.६
माअ–माता ९.१५.१०
माइ–मातृ, माँ ९.१५.२,९.१६.५
माइहर–मातृगृह ८.१०.९
माण–मान, सम्मान २.२०.१२;३.१२.५
√माण–मन् °ए (आत्मने०) ३.४.१०; °हिं० (बहुव०) १०.५.४; °हुँ (उ० पु० बहुव०) ८.१०.१७
माणदंड–मानदण्ड ५.८.३
माणव–मानव ११.२.२
माणस–मानस ३.१.७
माणिक्क–माणिक्य ४.८.१२;१०.११.४
माणिक्कजडिय–माणिक्यजटित ५.१.२०
माणिणि–मानिनी ३.१२.५;८.११.१४
माणिय–मानित, स्वीकृत २.९.११
माणुण्णअ–मान + उन्नत ७.१३.२
माणुस–मनुष्य ९.१५.१;१०.१७.५
माणुसगोत्त–मनुष्यगोत्र ४.२.१
माणुसत्त–मनुष्यत्व १०.१३.६
माम–मामा, मातुल ९.१८.९;१०.१२.९
माय–मातृ ९.१५.६;१०.१९.९
मायंग–मातङ्ग ५.११.१२;७.६.३
मायरि–मातृ, माता ४.१.३;११.३.५
मायरी–मातृ ९.१७.१
माया–माता ८.६.२
मायामाम–मायामामा, छद्मवेशी मातुल १०.१.५
मार–वृक्ष ५.८.१२
मार–कामदेव १०.९.७
√मार–मारय् °इ ८.८.९; मारिऊण ५.७.२५; ६.१२.८
मारण–मारना २.२.३
माराविअ °य–मारायित, मरवा डाला ७.७.२; १०.१०.१३
मारि–मार-काट ५.३.३
मारिअ °य–मारित ६.७.१३; ९.११.१३;१०.१२.२
√मारिज्ज–मृ (कर्मणि) °इ ९.४.१
मारिणि–मारिणी (स्त्री० विशे०) २.१५.४
मारुय–मरुत् ११.८.१०
मारुय–मरुत् (i)हनुमानके पिता, (ii) पवन ३.१२.२
मारुयवेय–मारुत् + वेग ५.२.४
माल–माला २.४.२
माल–माला, लक्ष्मी १०.१.१२
मालइ–मालती लता ३.१२.१०; ४.१३.११
मालइलय–मालतीलता (मृगाङ्ककी रानी) ५.२.१३
मालंतकणय–माला + कनक, स्वर्णमाला ४.१२.३
मालव–मालवा (देश) १.५.१;९.१९.८
मालविणि–मालविनी, मालवदेशवासिनी ४.१५.१२
मास–मांस ७.१.१०,१०.१२.५
माह–माघ (महीना) प्रश० ४ १०.२३.१०
माहव–माधव, वसन्त ४.१६.८

माहव-माधव (धूर्तनाम) ९.१०.२३
माहुलिंग-मातुलिङ्ग वृक्ष ४.२१.३
माहेसर-माहेश्वर ४.१८.९
मि-अपि३.४.५;७.११.११,८.९.१०;९.२.८,९.६.८
मिग-मृग ३.३.१०,५.९.९
मिगकडगपाश-पैतरा, देखें सं० टिप्पण, ५.१४.२२
मिगणयण-मृगनयना ९.५.१३
मिच्चु-मृत्यु ५.५.१२
मिच्छत्त-मिथ्यात्व २.६.८; २.८.८; °भर °भार २.१६.४; °मोह ३.७.१३
मिच्छा-मिथ्या ९.१.१४,१० ३.१०; °दंसण °दर्शन १०.४.११; ११.७.८
मिट्ठ-हि० मेंठ, महावत ७.६.२
मिट्ठत्त-मिष्टत्व ९.१२.१६
मित्त-मित्र ६.१२.४
मियंक-मृगाङ्क (राजा) ७.३.२,११.२.३, °पहु-°प्रभु ५.१२ ९
मिरियविल्लि-हि० मिर्चकी बेल १.७.६
√ मिल-मिल्, इँ (बहुव०) १० २५.११; मिलिवि ९.११.१४
√ मिलंत-मिल् + शतृ १.१२.५,४.१५.१४;७.६.३
मिलण-मिलन, मिलना ७.५.११
मिलिअ °य-मिलित ४.१०.१२;८.८.१४;१०.४.११ १०.८.३
√ मिल्ल-मुच् मिल्लिवि ४.२१.१९; ७.७.१; १०.१०.८
मिल्लिय-मुक्त ८.६.३
मिस-मिष्, बहाना ४.१७.९;८.१६.६
मिहुण-मिथुन °उल्ल (स्वार्थे) ४.२०.१;८.१४.१६
मीण-मीन ९.५.८;१०.१०.९
मुअ-मृत ५.१३.६;१०.१२.८
√ मुअ-मुच्, मुअवि २.१८ ११; मुइवि १०.३.७, मुएवि ८.११.३
√ मुअंत-मुच् + शतृ २.५.१६
मुइय-मृत १०.१४.७
मुउ-मृत ३.१३.१२;९.११.२
मुंड-मुण्ड ६.२.५;६.१०.२
मुंडिय-मुण्डित उँ (स्वार्थे) २.१८.१०
मुक्क-मुक्त १.१७.२;५ ७.१४;१०.१४ २
मुक्कअ-मुक्त ९.८.१७;१०.२०.६
मुक्कट्टहास-मुक्त + अट्टहास ७.६.७
मुक्कणाय-(I) मुक्तनाद (II) मुक्तफेत्कार ५.८.३५
मुक्कविरोह-मुक्तविरोध १.१६.१०
मुक्कसद्द-मुक्तशब्द, नि.शब्द १०.९.१
मुक्ख-मुक्त १०.१५.१
मुक्ख-मूर्ख ४.१७.४
मुक्खत्तण-मूर्खत्व ९.५.२
√ मुच्चमाण-मुच् + शानच् ९.१४.७
मुच्छ-मूर्छा ३.७.४
√ मुच्छ-मूर्च्छ् °इर (ताच्छील्ये)६.९.८;९ १३.१६
मुच्छावसंग-मूर्च्छावश + अङ्ग ६.११.८
√ मुच्छिज्ज-मूर्च्छ् (कर्मणि) °इ ९ १०.४
मुच्छिअ-मूर्च्छित, मोहित ९.११.४
मुट्टउ-मुषित ५.७.२०
मुट्ठ-मुषित ९ १०.२३
मुट्ठिगाह-(I) मुष्टिग्राह्य (II) मूठ ४.१३.४
√ मुड-मुक्त, मुडिवि ७.३.१३
√ मुण-ज्ञा, °इ ५.१३.१६; मुणेइ ६.१०.९; °उ ४.१२.११, (वर्त० द्वि० पु० एकव०) ९.५.३; °हु (विधि०) ११.३.७; मुणि (विधि०) ३.९.१२; ११.९.६; मुणिवि ८.६.११; १०.१७.१२; मुणेवि ३.९.१ मुणेवि ९.१७.५
√ मुणंत-ज्ञा + शतृ ९.६.१०
√ मुच-मुच्, मुच्चइ १०.२०.८; १०.२३.४; मुच्चए ३.४.५; मोत्तूण ८.२.१०
√ मुच्चंत-मुच् + शतृ ४.१९.४
मुणाल-मृणाल ४.१४.१७
मुणि-मुनि २ १५.९; °दंसण-°दर्शन ३.६.१; °पुंगव २.१२.३;१० २४.२; °मग्ग-°मार्ग १०.२२ १; °वयण-°वचन २ १२.१
मुणिंद-मुनीन्द्र २.११ ४;२.१९ ८
मुणिय-ज्ञात ६.११.७;९.१४.२
मुणी-मुनि २.६.६;२.६ ७
मुत्त-मूर्त १०.४.२
मुत्तद्दुवार-मूत्रद्वार ९ १.११
मुत्तनिहाण-मूत्रनिधान ११.६.३
मुत्ताहल-मुक्ताफल ४.१०.५;७.४.२
मुत्ति-मुक्ति, त्याग १.१.७
मुत्तियमय-मुक्तमद ५.१.११

मुत्तियसय–मौक्तिकशत ५.१.१७
मुद्द–मुद्रा, चिह्न ३.११.१०;८.१४.११
मुद्दिअ–मुद्रित १०.२०.७
मुद्ध–मुग्ध, भोला ४.१७.८;८.१५ १०;९.१७.२
मुद्धडिस–मुग्धा (स्त्री० विशे०) २.१५.४
मुद्धमुहि–मुग्धमुखी ९.५.३
मुद्धि–मुग्धा (स्त्री० विशे०) ४.१७.८
मुद्धिय–मुग्धा १.१०.५
√मुय–मुच्, °इ २.१८.६; ९.७.९; १०.१४.६;
मुयवि ७.२.१०;१०.१०.११

√मुयंत–मुच् + शतृ ९.१०.१२
मुयअ–मृतक, मृत ७.४.१७;८.११.६
मुयसेस–मृतशेष, मृतप्राय ७.२.२
मुरअ–मुरज वाद्य १०.१४.९
मुरय–मुरज १.१४.६;११.१२.१
मुसिय–मुषित १०.७.७
मुसुंढि–मुसुंढि शस्त्र ७ ६.२
मुह–मुख १.१०.५; ४.१६.११; ४.१७.१६; °कंति –°कान्ति ५.१.१५; °कुहर ५.५.२; °नालि ६.७.५; °बिंब–°बिम्ब १०.३.५; °मरु–°श्वास १.१३.५; °वड–°पट ६.४.६; °सास–°श्वास ८.५.६

मुहतंब–मुख + ताम्र, ताम्रमुख ९.१०,१२
मुहाणल–मुखानल ७.१.१७
मुहाभास–मुखाभास + क (स्वार्थे) १.१८.११
मुहिय–मोहित १.३.७
°मुहिय–मुखी (स्त्री० विशे०) ४.१२.४
मुहुत्त–मुहूर्त ७.१३.१२;८.१२.३
मुहुल्ल–मुख + उल्ल (स्वार्थे) २.१४.७
मूढमण–मूढमन १०.१७.२०
√मूस–मुष्, मूसिवि ३.१४.२२
मूसिअ °य–मुषित ३.१४.५; ९.१५.४
मेच्छ–म्लेच्छ ११.४.६
मेच्छदेस–म्लेच्छदेश ९.११.११
मेठ–महावत ५.१०.२१
मेत्त–मात्र, केवल २.१.५;९.८.३
मेय–मेद ८.१५.३
मेरु–सुमेरु पर्वत १.१.३;११.११.२
√मेलव–मिल् (कर्मणि) °इ २.७.१

मेलावअ–मेलापक, मिलाप, हि० मेला ७.२.११
√मेल्ल–मुच्, °इ ९.१४.८; मेल्लि (विधि०) ५.१३.४; मेल्लवि ५.९.१७; ८.१०.६; मेल्लेवि ७.१२.११; ९.६.१०; १०.१.१६
√मेल्लंत–मुच् + शतृ १०.१९.१०;११.२.३
मेल्लिय–मुक्त ४.१६.७;७.११.३;८.६.२;९.१३.१४ १०.२०.२४
मेवाड–मेवाड प्रदेश ९.११.७
मेहवण–मेघवन प्रश० २०
मेहवणपट्टण–मेघवनपत्तन प्रश० ३
मेहुणेट–मैथुनिक, मामाका लडका, साला, ६.११.७
मोक्ख–मोक्ष २.१.१३;९.२.१३;१०.३.७
मोक्खथाण–मोक्षस्थान ४.३.१२
मोक्खवास–मोक्षवास ९.१४.११
मोग्गर–मुद्गर, मुगदर ६.१०.१०;७.१.१३;७ ३.४
√मोड–मुड् + णिच् °इ ३.११.४;५.७.१९
मोडिअ °य–मोडित ६.९.३;९.३.८;१०.२०.३
मोडियक्ख–मोडित + अक्ष (धुरी) ७.१.२०
मोत्तिअ–मौक्तिक ५.१४१;८.१२.९
मोयण–मोचन ६.३.६
मोर–मयूर, हि० मोर ४.१८.१;८.१४.१८
मोह–मोह, मोहनीय कर्म २.६.८
मोह–मोह, मूर्च्छा ६.१०.४
मोह–मयूख ७.१२.१
√मोहअ–मुह्, °इ ४.१३.७
मोहजाल–मोह (कर्म) जाल २.१९.१
मोहणय–मोहनकरः (कर्तरि) ९.१६.८
मोहवइरि–मोहवैरी १०.२६.१०
मोहिअ–मोहित ११ ८.५
मोहियमाणस–मोहितमानस ३.२.२

[य]

य–च १.५.१२;२.९.२०;६.१२.२ °यड-तट ८.११.११
√याण–ज्ञा, °इ ८.१४.१४; °मो ६.२.२; याणेमि १०.९.६

[र]

रअ–रज ६.४.१०

√रअ–रच्, रएप्पिणु ७.१०.३; रएविणु १.१०.९
रइ–रति ५.१३.१५;९.५.४;११.१५.९
रइअ–रचित १.४.९;३.९.४
रइकाममिहुण–रतिकाममिथुन, रति-काम युगल ४.१६.९
रइखेय–रतिखेद, सुरतश्रम ४.१९.१४
रइणाडय–रतिनाटक ८.११ ५
रइणाह–रतिनाथ, कामदेव ४ १३.५
रइथावण–रतिस्थापकः (कर्तरि), रतिभाव उत्पन्न करनेवाला ३.११.१५
रइदाढ–रतिदंष्ट्रा ३.७.१४
रइभंग–रतिभङ्ग ७.१.१
रइय–रचित ५ १.२५
रइरंधी–रति + रन्ध्री, रतिरन्ध्र, कामस्थान ४.१.११
रइरस–रतिरस ३.१२.४;४.१५.४
रइराम–रतिराम, कामदेव, रमण ४ १३.१६
रइवइ–रतिपति, कामदेव ४.९.७,४.१२.१६
रइवइराय–रतिपतिराज कामदेव ४.१३.१२
रइवंत–रति-प्रीति + वान् ४.१४.१३
रइवर–रतिवर, कामदेव १.१०.१२,४.६.११
रइवसण–रतिव्यसन ९.७.२
रइविडंब–रतिविडम्बना ९.१.७
रइविहलंघल–रतिविह्वल ८.११.७
रइसुह–रतिसुख १.१.९,१०.१९.५
रई–रति, आसक्ति ९.१६ ६,२.७.७
रउ–रव ३.७.४,७.२.३
रउ–रज ६.४.१०,६.६.१
रउद्द–रौद्र ५.६.७,६.१.१३
रउरव–रौरव (नरकभूमि) २.१८.६
रंग–रङ्ग, आसक्त ४.२१.१४
रंगावलि–रङ्गावली १.९.६
रंगिय–रञ्जित, रंगीले ६.४.७
√रंज–रञ्ज् °इ ५.१३.१९; °मि २.१५.१४; रंजेसइ (भवि० तृ० पु० एक व०) १.५.७
रंजण–रञ्जनः (कर्तरि) ९.१२.१६
रंजणय–रञ्जनक: (कर्तरि) ९.१६.९
रंजिय–रञ्जित १:२.१२,१.४.४;९.१६.२
रंडिय–रण्डित, विधवाकृत ६.२.६
रंध–रन्ध्र १.८.१,४.६.३
√रंध–रध्, रान्धना °इ ९.२.१०
रंधणी–राधनेवाली, रसोई बनानेवाली ५.७ १६
रंधिणी–रन्धिनी, पाकशाला ५.११.४
रंभा–रम्भा, कदली ४.१३.१६
√रक्ख–रक्ष्, °इ ११.१४.११; °हि (विधि०) २.२.९,७.९.१२;११.२.८
रक्खण–रक्षणः, रक्षकः ३.११.१०;१०.१४.२
रक्खस–राक्षस ६.७.१४,८.३.१२
√रक्खिज्ज–रक्ष् (कर्मणि) °इ ११.२.१ २.१४.४, ३ ४.९
रक्खिय–रक्षित (°ए आत्मने०) १.११.१३
रच्छा–रथ्या ४.११.७;१०.१५ ११
रच्छामुह–रथ्यामुख ९ ११.२
रज्ज–राज्य १.११.१९;३.८.११
रज्जधर–राज्यधर, राजा ३ २.१२
रज्जु–राजू (प्रमाण) ११ ११.१
रज्जु–(i) राज्य (ii) रज्जु-रस्सा ६.१२.४
रट्ठ–राष्ट्र ९.१९.३
√रडंत–रट् + शतृ ७ ६.२०;७.१०.१०
रणाविय–रणरणायित ४ १५ ९
रणंगण–रण + अङ्गना, रणदेवी; रण + आङ्गन, रणभूमि ६.१३.३,७.२.१
√रणझणझणंत–रणझण् (ध्वन्या०) १.१४.७
रणरण–रणरण (ध्वन्या०) २.१८.१२
रणरणअ–(दे) उद्विग्न होना १० १.६
रणरणिय–रणरणायित ध्वनि ५.७.१८
रणसूर–रणशूर ३ २.१३
रत्त–रक्त ९.१२.९
रत्त–रक्त + वत्, रक्त, आसक्त ८.१४ ५
रत्तंदण–रक्तचन्दन ४.११.४
रत्तंबर–रक्ताम्बर ८ १४.१४
रत्तकण–रक्तकण ६.७.६
रत्तकिरण–रक्तकिरण ५.७ २
रत्तपोत्त–रक्तपोत, लालवस्त्र ६ २.६
रत्ताणण–रक्तानन ९.६ ९
रत्तासोय–रक्ताशोक ८ ५.६
रत्ताहर–रक्ताधर ५ २.१८
रत्ति–रात्रि ४.५.९;९.१७.७;१० २५.७
रत्ती–रक्ता, आसक्ता (स्त्री० विशे०) २.५.५

√रम–रम्, °इ ९.११.१६; रमंति (बहुव०) ७.१.११; रमहिं (बहुव०) ५.९.५
रमण–नितम्ब १.७.९
रमण–(तत्सम) कामस्थान ९.१.११
रमणत्थल–रमणस्थल, ८.११.८
रमणसत्ति–रमणशक्ति १०.२.२
रमणि–रमणी २ ४.७;९.२.१२,१० १.१२
रमणुल्ल–रमण + उल्ल (स्वार्थे) १.१०.१२
रमाउल–रमा (लक्ष्मी) + आकुल शोभापूर्ण ५.१.६;५.६.१७
रमिय–रमित ३.१ १९;४.१८.१३
रम्म–रम्य १.११.१७
रय–रज, पराग ४.१६.६
रय–रज, धूलि ६.६ ३
रय–रज (स्त्री रज) १०.१५.७
√रय–रच् °मि ८.५.१३,९.८ १५;
°वि ७ १०.२२
रयजल–रजजल, धूलिरूपी जल ५.६.१६,१०.१५.७
रयण–रत्न २.१८.५;४.१२.१५;११.१३.१
रयणचूल–रत्नचूल (विद्याधर) रत्नशेखर ५.११ १९; ६.१०.५
रयणत्तय–रत्नत्रय १.१.७
रयणप्पह–रत्नप्रभा (नरक भूमि) ११ १०.४
रयणमाला–रत्नमाला ७.१२.४
रयणरिद्धिल्ली–रत्न + ऋद्धि + इल्ली (मतुपार्थे), रत्नऋद्धि युक्त (स्त्री० विशे०) ३.८.६
रयणविट्ठि–रत्नवृष्टि ३.६.१०
रयणसिह–रत्न + शिख, रत्नशेखर विद्याधर ५.३.१,५.१२.११
रयणायर–रत्नाकर, सागर (आयु प्रमाण) ७.२.१३; ११.१२.३
रयणायरत–रत्नाकर + अन्त, सागर पर्यन्त १.१३.१
रयणाहार–रत्न + आधार, रत्नधारक ४.६.१३
रयणाहिव–रत्नाधिप ३.३.१२
रयणि–रजनी १.१.७,९ ४.१३; °माण–रात्रिप्रमाण ३.१२ ३
रयणुद्धरण–रत्न + उद्धरण ३.१.१४
रयणुरुयअ–रदन + रुचि + क(स्वार्थे) दन्तरुचि, दन्तदीप्ति ३ २.११

रयभर–(i) रज + भार, धूलिसमूह
(ii) रज + भार, (स्त्री)रजस्राव
(iii) रत + भार, सुरत आवेग ६.६.१०
रयभर–रतभार, सुरत आयास ९.१३.१८
रव–रव, वेग १.६.९;४.१९.८
रवण–(i) रमण, कामी (ii) रमण-नितम्ब ९.१२.१७
रवण–रमण-रमणीक ५.३ ८
रवण्ण–रमणीय, रमणीक २.८.१३,३.१३.६
रविकंत–रविकान्त, सूर्यकान्तमणि १.९ ७,२.१.९
रविगहण–रविग्रहण ८.१३.१०;९.८.६
रविसेण–रविषेण (श्रेष्ठि) ३.१३.१
रस–रस, रुधिर ६.१४.१२
रस–रस, आस्वाद, आनन्द ८.१२ १५
रसंकिय–रस + अङ्कित ५ १४.२४
रसंत–रस + अन्त, रसान्त, उत्कृष्ट रस ५ १.२६
रसगिद्धि–रसगृद्धि ११ ८.८
रसचाअ–रसत्याग १०.२२ ५
रसड्ढ–रसाढ्य ५.८ ३४
रसड्ढिअ–रसाढ्य ७.११.५
रसड्ढिय–रसाढय, रसिक ६ १३.२
रसण–रसन (वानर ध्वनि) .६७.२
रसण–रशना, मेखला ३.८.३
रसणा–रसना, जिह्वा ७.१.१
रसदित्त–रसदीप्त ९ १ ४
रसधविय–रसप्रीणित ६.९.९
रसभरिय–रसभरित ९.१८.८
रसमउलिय–रसमुकुलित–आनन्दवश निमीलित नेत्र ३.१.२
रसा–नर्वी ७ १.१७
रसायण–रसायन १० ५.७
°रसिय–रसिक ६.२.८
रसियअ–रसदा, रस (फल) देनेवाली ४.९.६
रसिल्ल–रस + इल्ल (मतुपार्थे) रसयुक्त, रसीला ८.१३.९
रह–रथ ६.२.९;१०.१९.१४;११.१ ९.
रहचक्क–रथचक्र ५.७.१३
रहस–रभस्, उत्कण्ठा ९.८.५;९.१६.३
रहस–रहस्य, एकान्त ९.८.१५
रहस–रहस्य (गुप्तवार्ता) १०.१५.१०
रहसिअ–रभसित, उत्कण्ठित ५.६.९;५.१०.१६

रहि–रथी, रथवान् ६.७.८
रहिअ °य–रहित १.७.६;२.६.४ °वल ११.९.८
रहुकुल–रघुकुल ८.३.७
रहुवइ–रघुपति, राम ५.१३.२९
राअ–राजा ३.१०.८
राअ–राग १०.८.१४
राअपरिग्गह–राजपरिग्रह, राजसैन्य ६.१.१४
राअवारिअ–राजद्वारिक राजसेवक ५.१.२२
राइअ–राजित १.१.४
राइजागरण–रात्रिजागरण ४.८.१०
राइय–राजित, रञ्जित ६.१४.१३
राई–रागी ९.१.१२
राउत्त–राजपुत्र ३.५.१३
राउल–राजकुल ६.१.९;६.४.३;७.१२.१०; °वार–°द्वार ५.१२.५
राड–रट, चिल्लाहट ५.७.२०
राढ–राढ़ (देश) ९ १९.१३
राणउ–राणा, राजा ७.१३.५
राणि–रानी, राज्ञी १०.१५.११; °यण–°जन १.१२.१
राणी–रानी, राज्ञी ८.४.४
राम–रामा, रमणी ८.१४.१३
राम–रमणीय ४.५.१५
राम–रामचन्द्र ३.१२.१
रामय–रञ्ज्, मनोरंजन कराना १०.१९.३
रामा–(तत्सम) रमणी ३.१२.१
राय–राजा ५.१३.२८
राय–राग, स्वर ८.१६.१२
रायअंतेउर–राज + अन्त.पुर ५..१०.१९
रायउत्त–राजपुत्र १०.१८.३
रायउल–राजकुल ९ १३.१२; १०.१३.५; °कज्ज–°कार्य प्रश० ९; °कण्णा–°कन्या ३.४.७; °कुमार ४.९.११; °त्थाण-राज आस्थान, राजसभा ३.७.११;५.२.५; °दुहिय-°दुहिता ७.१२.७, °परिग्गह-°परिग्रह ५.१०.२३; °पुरोहिअ–°पुरोहित ९.१०.२३; °लच्छि-लक्ष्मी ३.८.६; °लील-°लीला ४.९.११;१०.१३.३; °वाणी ५.५.१३; °सासन-°शासन ५.१.१७; °सुअ-°सुत ३.९.७
रायगिह–राजगृह (नगर) ३.१४.२१, °गेह ४ ५ ४
रायद्दोस–राग + द्वेष २.२०.२,११.९ ८
रायभार–राजभार १०.१८.१२
रायविरोह–राग + विरोध, रागद्वेष ८.७.१०
रायरायाहिअ–राजराजाधिप, राजाधिराज १०.१९.६
रायागमण–राजा + आगमन ५ १०.१३
रायाणअ–राजन्यक, योद्धासमूह ५ १.१७
रायाणुमग्ग–राज + अनुमार्ग, राजमार्ग ४.१६.१
रायाहिराय–राजाधिराज १.१३.१
राव–रव, शब्द ६.७.१;७.४.१५
रावण–विशेषप्रोपवृक्ष ५.८.७
रावल–राजकुल ७.१२.१०
रिउ–रिपु ६.८.४,७.२.८; °घरिणी-°गृहिणी १.११.६ ४.१८.२; °रमणी १.११.१७, °वल ७.३.७; °सह-°सभा ७.३.१,७.११.११; °सेण्ण-सैन्य ६.२.१
√रिच्चेवअ–रिच् (कर्मणि) °इ ९ १२.१९
√रिज्जअ–री (कर्मणि) °इ ३.१२ ५
रिण–ऋण ६.८.३ ६.१४.१६
रित्त–रिक्त ९.८ २०
रिद्ध–ऋद्ध, समृद्ध १.९.११;९.१३ १३
रिद्धि–ऋद्धि ३.१.५; ३.६ ४
रिसह–ऋषभ् १ मं० १२,४.४.३
रिसि–ऋषि २.८.११;२.१८.७, °चरण ३.५.३; °संघ २.१२.१२;२.१६.२
रीण–क्षरित, °उ (स्वार्थे) २.६ १०
√रुअंत–रुद् + शतृ २.५ १७
रुइ–रुचि ८.२.१५,१०.१८.१०
रुइर–रुचिर ९ १२.१५
रुई–रुचि १ ११.१७
रुंज–वाद्य ५.६.१०
√रुंज–रुञ्ज्, रुंजति (बहुव०) ७.४ ३
रुंजिय–रञ्जित १.१४.८
रुंड-रुण्ड, धड ६.२.५
रुंद–वृक्ष ४.२१ ?
रुं रुं रुं–ध्वन्या० १ १४.८
रुक्ख–वृक्ष, हि० रूख ४.१६.८,८ १०.५; °संत:–°सन्तति ४.८.१५
√रुच्च–रुच् °इ २.११.४,३.१४ १८,९.१५.६

√रुज्झ–रुध् °इ ८ ९.१७
रुट्ठ–रुष्ट ३.११.५,४ २२.१०
रुद्दारि–रुद्र + अरि ५.१४.१२
रुणुरुंटिय–रुणरुण्टित (ध्वन्या०) २.१२.९
रुण्णअ–रुदित ९ १०.१२
रुद्दक्ख–रुद्राक्ष वृक्ष ४.१६ ३
रुद्ध–रुद्ध अवरुद्ध ३ १.१८,१० १७ १
रुप्पमय–रूप्यमय ४.७ ५
रुप्पिणि–रुक्मिणी (रानी) ८.४.२
√रुंभ–रुम्भ् °इ २ २०.३
रुलघुल–नि श्वास छोड़ना ४ २२.२१
रुहिर–रुधिर ६.५.१०;११.१५.४
रुहिरोह–रुधिर + ओघ ६.२ ५;६.९.८
रुहिरुलित्त–रुधिरलिप्त ४ १५.१५
रूअ–रूप ४.१७.१२
रूढ–आरूढ १०.१७.२
रूयकम–रूपक्रम, वेशरचना ९.१८.१
रूव–रूप ४.६.११; ९.१८.१; १०.२६.३, °णिहि-°निधि१.१२.१;-°दंसण-°दर्शन २ २०.६; °रिद्धि-°ऋद्धि २ १५.४; °लच्छि–°लक्ष्मी (श्रेष्ठिकन्या) ४.१२.६, °सिरि–रूपश्री (श्रेष्ठिकन्या) ९.९.५
√रुव–रोप् °मि ९.४.११
रूवअ–रूप्यक, रुपया ९.८.१२; ९.८.२१
रूवड–रूप, सौन्दर्य ९ १२.५
रूवाभाव–रूप + अभाव १०.५.१३
रूवासत्त–रूपासक्त १०.१७ ११
रूविय–रूपित, रचित ९.१३.१३
रेणु–रेणु, धूलि ६.५ ११
रेय–(i) रेत, बालू (ii) रेतस्, रज-वीर्य ९.१३.१५
रेल्लाविय–प्लावित ४ २०.९
रेवाणइ–रेवानदी ५ १०.५;५.१०.२४
रेह–रेखा १ १.१३; १०.२०.५
√रेह–राज् °इ ८.१३.१३,१० २०.५
रेहा–रेखा ५.१२ २०
रेहाइद्ध–रेखा + ऋद्ध, रेखायित,रेखायुक्त ४.१३ १०
रेहाविय–राजित २.१६.३
रोअ–रोग ९.११.७
रोक्क–(दे) रोकड, जमा ९.८.४
रोड–(दे) हैरान होना ९.१०.३
रोमंच–रोमाञ्च ४ १३.१९,१०.१८ २
√रोव–रोद् °इ९.४.१५; रोवंति (बहुव०) ३.७.६; ९.६ ६
रोवाविय–रुद् + णिच् + क्त रोदित ६.१४ १४
रोविअ–रोदित, रुदित ९.१०.१५
√रोविज्ज–रुद् + णिच् °इ ७.२.४
रोवियधणु–रोपितधनुष ११.११.९
रोस–रोष, क्रोध १०.१७.१२,११.९.८,११.१४.२
रोसाविअ–रुष् + णिच् + क्त, रोषायित १.१५.२
रोसिअ °य–रोषित, रुष्ट ५.८.१९; ८.१५.१४
रोहिणि–नक्षत्र, वृक्ष विशेष ४.७.१०,५.८.७
रोहिय–रोधित, अवरुद्ध ५.९.१३,६.४.२

[ल]

√लअ–ला, लएविणु ४.२.१७, लइ–ला + क्त्वा ४.१७ ४, ४.१८.६; लएसइ (भवि०) २.१३.२;४.६.१५
√लइ–ला ५.१२.२१,९.६.६
लइअ–लात, स्वीकृत, गृहीत ७.३.७,१०.९.७
√लइज्ज–ला (कर्मणि) °इ ५.१०.१७
लइय–लात ८.१४.२;११ ५.९
लइयउ–लात ९.८.१९
लउडि–लकुटि ६.५.९;७.१.१४;७.६.१०
लउडिदंड–लकुटिदण्ड १०.९ २
लंकाणयरी–लङ्कानगरी ५.८.२३
लंगल–लाङ्गल हलः ९ ४ ९
√लंघ–लघ् °इ २.१४.८,५ १०.१७,१०.११.३
लंघिअ–लङ्घित ६.१२.७
लंछिय–लाञ्छित १०.१४.४
लंजिया–लञ्जिका (वेश्या) ९ १९.२
लंपड–लम्पट ७.५.१६,८.११.११
√लंब–लम्ब्, °इ ४.१३.२१
लंबउ–लम्ब्, दीर्घ, हि० लम्बे ८.१५.१०
√लंबंत–लम्ब् + शतृ ४.८.७;७ ६ १३,७ ८.१०
लंबाविय–लम्बायित १०.१६.३
लंबिअ °य–लम्बित ५.११.२१,७.१३.४
√लक्ख–लक्ष् + णिच् (स्वार्थे)–°इ ९ १०.२१; °हि (विधि०) ५.१३.३३;७.१३ ९; ९.१०.१९
लक्खण–लक्षण ३.४.२;४.१४.१७

लक्खणंक–लक्षणाङ्क वीरकविका दूसरा अनुज प्रश० १४
लक्खिअ–लक्षित १.१५.८,४.४.२;६.१.१८
√लक्खिज्ज–लक्ष् + णिच् (स्वार्थे) (कर्मणि) °इ १२.१५;२.१४.४
लक्खिय–लक्षित ५.२.१०,१०.८.५
√लग्ग–लग्, °इ ११.७३; लग्गिवि १० १० ४, लग्गेसइ (भवि० तृ० पु० एकव०)७.१२८
लग्ग–लग्ना (स्त्री०) ६७.८,१०.१०.१४
लग्गअ–लग्न १०.१९.११
√लग्गंत–लग् + शतृ ११.२,३.९.७
√लग्गिर–लग् + इर (ताच्छील्ये) ९.१२.९
लग्गी–लग्ना (स्त्री० विशे०) ४.१६.११
लच्छि–लक्ष्मी २.१०.६;१०.१.१६
लच्छिपउत्त–लक्ष्मी + प्रयुक्त ४.३.१०
लच्छिफल–लक्ष्मी + फल ५४.१८
लच्छिलक्ख–लक्ष्मी + लक्षित–कान्तिमान् देहयुक्त ६.१०.६
लच्छी–लक्ष्मी १.१५.९,१.१८.१
√लज्ज–लस्ज् °इ ५१३.२३
√लज्ज–लस्ज (विधि०) °इ १०.१० १४
√लज्जमाण–लस्ज् + शानच् २.१९.६
लज्जंकिअ–लज्जा + अङ्कित १.१४.१६
√लज्जिज्ज–लस्ज् + णिच् °इ ९.१.१२,९४.१
लट्ठ–(दे) प्रधान ५.१४.९
लट्ठि–यष्टि, हि० लाठी ३.११६
लडह–लटभ, सुन्दर, लाडला ७१.५
लडहग–लटभ (ललित) + अङ्ग २१४.५
लद्ध–लब्ध ७.७.१,८.६.६,°वव ६.८.८;°वर १.४.६ °रस ८.१०.१७;°सस–लब्धशस, प्रशंसाप्राप्त २.५.१
√लब्भ–लभ् °इ (आत्मने०) ९९ १४,१०.१० १२ °हिँ (बहुव०) १०.५.८
लयउ–लातउ १२.३;७.१०.२३;९ १३.५;१०.२१.४
लयाहर–लतागृह २.४ ११
ललण–ललना, जिह्वा ९ १०.८
√ललंत–लप्लप् + शतृ ९ १०.८
ललिअ–ललित २ १५.३,५.२ ४
ललणिज्ज–ललनीय २.१०.६
ललिय–ललित ८.१४.१९; ९.१८.६, °कण्ण–°कर्ण २५.५, °क्खर–°अक्षर ७१.४, °बाहु १०.२१ ३
लव–लव, कण, किंचित् ९.१३.११;१०.१७ २०
लवण–(I) लावण्य (II) लवण, क्षार ८.१३.११
लवणण्णव–लवण + अर्णव १.१०.१४
लवलविय–लपलपित ५.१४ १३
लवलि–लवली वृक्ष ४ १६.३
लविय–लपित, कथित ९.१६.३
√लह–लभ् °इ २२.३; ७ १० २१; ११.१५९, °मि ९.१३.७; १० ११.११; लहिवि ८.२१.; १० ४.१५; लहेवि ११ १३.७, लहेप्पिणु ८७.३
लहु–लघु, शीघ्र ८.२.१३;८.१५.४
लहुअ–लघु + क (स्वार्थे) ३.७.१;८.४.१४
लहुण–लघुन', लघुकः प्रश० १३
लहुवारअ–लघुक + आरअ (स्वार्थे), अनुज ३५.७
लहू–लघु. ९.१७.१३
√ला–ला °इवि ९.७ १३
लाइय–लात ४.२०.३,८४.६
लाडदेस–लाटदेश ९.१९ ७
√लाय–लागय् °इ ३.१२.१६
लायण्ण–लावण्य २४.३; २.१८.९; ४.१४.११, °तरंग–°तरङ्ग २.१७.८,°रस २.१८४
लार–लार ८.१५९
लालस–कोमल ४७.३
लालामल–लारमल ९.१.१०
लालाविल–लार + आविल २.१८.१०
√लाव–लग् + णिच् °इ ४.१७.१८; °हि (विधि०) १०.१५.८
लावण्ण–लावण्य ४.११.१४,११.१७
लाविअ–लगाया १० १४.५
लाह–लाभ ८.१०,१४,१०.१४.६
√लिंत–ला + शतृ ८.६.१२; ८.७.१५; °उ ८.९.१७; लिंताहँ ८.६ १२; लिंतु ८ ११ १८
लित्त–लिप्त, हि० लीपना २.९.२;४.१३.१४
लिंपिअ–लिप्त ४.१०.३
√लिह–लिप् °इ ८.१५.९, १०.७.९, °मि ४.११.१३

लिहिअ °य–लिखित ७.८ ५;८.९.१२
लीण–लीन १.१८.१३,२.१५.१
लीलउ–लीला + वत् ४ ३०.१३
लीलावइ–लीलावती, वीरकविकी तीसरी पत्नी प्रश० १६
लीह–रेखा, रेखा ५.१४.१३
लुअ–लून ९.११.८
लुंचिय–लुञ्चित २.१६ ८
लुंठ–लुण्ठकः, लूटनेवाला ९.१९.६
लुंबि–लुम्बि वृक्ष ४.२१.२,५ १०.५
लुक्क–लुञ्चित ५.८.२७
√लुक्क–नि + ली °इ २.६.११; °मि ९.१०.९
√लुण–लु °मि ३.११.८
लुणिय–लुनित ६.३.१०,६ ७.५
लुद्द–लोध्र वृक्ष ४.१० ७
लुद्ध–लुब्ध, हिं० लोभी ५ १३.१५
लुद्धि–लुब्धता ९.१४.१०
लुय–लून ७.३.३
√लुलंत–लुट् + शतृ ६.१४.१२
लुलाविय–लुलावित ९ १८.३;१०.१६.५
लुडिय–लुण्टित ५.३.१०
लूरण–छेदन, हरण ८.८.८
√ले–ला, लेइ २.१८.७; लेमि ९.८.१६; लेवि ८.४.९; १०.८.२; लेसइ (भवि० तृ० पु० एकव०) ९.१५.१३; लेसमि (भवि० उ० पु० एकव०) १०.१४.७
√लेंत–ला + शतृ ३.७ १०;११.३.३
लेव–लेप ९.७.१२
लेस–लेश, अल्प १.२.२;१.१८.५
√लेहु–लभ् °हु (आज्ञा०) लभताम् ५.१४ ८
लेहण–लिहन, चाटना ९.७.१६
लोअ–लोक ७.१२.१४,९.२.८
लोट्टिय–लुण्टित, मुषित ५.३.८,६.४.१
लोय–लोक, लोग ३.१.२१;८ ५.१०
लोयग्ग–लोकाग्र, लोकान्त ११.१२.१०
लोयण–लोचन १.१.६;३.९.१७
लोयणिंद–लोकनिन्द्य ५.४.३
लोयपवर–लोकप्रवर, लोकोत्तम ८.१२.१३
लोयवाल–लोकपाल २.११.६;१०.१५.२
लोयाणुरूव–लोक + अनुरूप, लोकेस्वरूप ११.१०.१
लोयायार–लोकाचार ८ ८.३
लोयालोय–लोकालोक १०.२४.६
लोयाहाण–लोक + आख्यान ५.४.१३
लोयाहिव–लोकाधिप, लोकपति ३ १.१०
√लोल–लुट् ४.१९.१८
√लोलमाण–लुट् + शानच् ४.२१.४
लोह–लोभ ३.९.१६;९.५.४
लोहउर–लोहपुर ९.१९.११
लोहिणि–(i) लोभिनी (ii) लोहिनी शृङ्खला १०.२० ८
लोहिय–लोहित ४.११ ४

[व]

व–इव, वत् १.१४.११, ११.१५.६
वअ–व्रत २.८.८
वइ–पति ६ ११.३;७.१३.१०
वइट्ठ–उपविष्ट ७.१२.१०,१०.१४.६
वइतरणि–वैतरणी (नरक नदी) ११.४.३
वइदब्भ–वैदर्भ, विदर्भ (देश) ९.१९.३
वइयर–व्यतिकर, प्रसङ्ग, वृत्तान्त ७.११.९,९ १५.११
वइर–वैर १.१८ ३;
वइर–वज्र देश ९.१९.७
वइराय–वैराग्य ८.९.१७;१०.१८.१
वइरायर–वज्राकर, वज्रमणिकी खान ८.१२ १०; वज्राकर देश ९.१९.३
वइरि–वैरिन्, वैरी ६.१.१४;७.१०.८;८.८.५
वइवस–वैवस्वत, यम ४.२०.१३;७.१२.२
वइवाह–विवाह ८.८ १९
√वइस–उप + विश्, °सरिवि २.१६.१२; ५.१२.२३, वइसरवि ३ ७.११
वइसरिय–उपविष्ट ९.१८ ८;१०.१६.१०
वइसवण–वैश्रवण (श्रेष्ठि) ४.१२.५
वइसाण–वैश्वानर ६.६.२
वइसारिअ–उप्+विश् + ल्यप्, बैठाया ५.१.५; ७.१३.७
वओहर–वृत्तधर, दूत ५.१३.१२
वंक–वक्र, कुटिल, वंकी (स्त्री० विशे०) ४.१८.११; ५.९.१६
वंकअ–पङ्कज ४.२१.६

वंकालाव–वक्रालाप, वक्रोक्ति आलाप ४.१७.२३
वंकुज्जल–वक्र + उज्जवल ४ १३.४
वंकुडउ–वक्र, हि० बाँका ४.१५.४
वंकुडिय–वक्र, हि० बाँका ९.१८.३
वंग–वङ्ग (देश) ९.१९.१४
√वंच–वञ्च्, वंचिवि २ १५.१२,१० १०.३
√वंचत–वञ्च् + शतृ ५ १४ २०
√वंचमाण–वञ्च् + शानच् ६ १०.८
वंचय–वञ्चक ९ १३ ३
वंचिअ °य–वञ्चित १०.३.१०;१०.१०.१०; १०.१८.२
√वंचिज्ज–वञ्च् (कर्मणि) °इ ११ १४.२
√वंछ–वाञ्छ् °इ २.६.११;९.४ १६;९.१५.१; °हि (विधि०) ९.४.१२
वंठ–(दे) धूर्त, ठग ४.२१ १०
√वंद–वन्द् °इ ५.११.५, वंदेवि १ १८ ५;२ १९ ९
वंदण–वन्दना २.१६.१२,३.५.३
वंदणहत्ति–वन्दना + भक्ति ८ ४ ८
वंदणा–वन्दना २ ३.५
वंदारअ–वृन्दारक, देव ११.३ ८
वंदि–वन्दी ८.७.४,१०.१९.१५
वंदिअ °य–वन्दित २.१२.१३;३.१३.७;४.१.५; ४.४.९;७.१३.१७
वंदियसवण–वन्दितश्रमण ३.३.१७
वंदिर–वन्दिन् + र (स्वार्थे), वृन्द, समूह ८.७ ४
वंस–वंश, कुल १.५.२;५ १३.१७
वंसपव्व–वंशपर्व, बांसकी ग्रन्थियाँ ५ ८ २
वंसि–वंशी ५.८ ७
वग्ग–वर्ग ७.६.१८
√वग्ग–वल्ग् °इ ५ १३.१४
√वग्गंत–वल्ग् + शतृ १०.९ ३
वग्गिय–वल्गित ६.४ ७
√वग्गिर–वल्ग् + इर (ताच्छील्ये) ७.६.१३
वग्गुर–वागुरा, पशुओंको फँसानेका जाल ४ १३.२, ५.८.२५
वग्घ–व्याघ्र, हि० वाघ २.१३.९,५.८ १५
√वच्च–व्रज् °मि ९.५ १३; °सु (विधि०) ८.६.२
√वच्चंत–व्रज् + शतृ ४ २१.२;१०.८ ३
वच्छ–वक्ष (स्थल) ६.१.४,६.१३.३,७.३.५
वच्छ–वत्स २.१२.१०
वच्छयल–वक्षतल, वक्षस्थल २.५ १७
वच्छर–वत्सर, संवत्सर ९.१७.१०
वच्छायण–वात्स्यायन (कामसूत्र) ८.१६ ११
वज्ज–वज्र ४.१५.२,५.११.१८
√वज्ज–वृज् °इ ३ १२ १०
√वज्जंत–वृज् + शतृ ८.९ ९
वज्जिअ °य–वर्जित ४.३.३;४.२० ४
वज्जयंत–पु० वज्रदन्त (राजा) ८.३.२३
वज्जासणि–वज्र + अशनि ६.५.९;८ १०.३
वज्जिय–वादित ५.६ ११;८.१२.२
वट्ट–(i) वर्त्म मार्ग, हि० बाट, (ii) प्याला ८.१३.१२
√वट्ट–वृत् °इ २.१४.६,८; ६.१.१६ ५ ११ ८; ६.१४ ८; ९.१५.८; १०.४ १३; °ए (आत्मने०) १० १९.१४
वट्टिया–वर्तिता, प्रवर्तिता (स्त्री०) १०.१९.१४
वट्टुल्ल–वर्तुल २.१४.८
वट्ठ–पृष्ठ ५.१४.२१
वट्ठी–पृष्ठ ५.१४.२०
वड–(दे) बडा ९.१०.२१
वडवानल–वडवानल ७.२.१३
वडुअ °य–वटुक, ब्राह्मणपुत्र २ ४.१२;१०.६.२
वडुप्फल–(दे) बडा फलक ४.२.८
वडुहर–वडहर, काशीके पास एक गाँव ९.१९.१६
वड्डुअ–(दे) बडा १.१३.८
वड्डुल–(दे) बडा १०.१६.६
√वड्ढ–वृध् °इ ९.१६.६
√वड्ढंत–वृध् + शतृ ४.१७.१८
वड्ढमाण–वर्द्धमान १.१३ १०;२.८.१३
वड्ढमाणंकित–वर्द्धमान + अङ्कित, वर्द्धमान नामक ग्राम ८.२ २०
वड्ढमाणु–वर्द्धमान(तीर्थंकर) १ १.१;°जिन प्रश० ७
√वड्ढार–वृध् + णिच् (स्वार्थे) °इ ७.११.१५
वड्ढारिअ–वर्धापयित ६.१२.६
वड्ढिअ °य–वर्द्धित १.१३.५;३.८.२,४.१४.२२, ५ १४.५;१०.८ ५ ७
वढ–वठ, मूर्ख ९ ४.१२
वण–व(द)न, मुख ९.११.३
वण–वन ५.८.२४;१०.१३.१; °करि–वनहस्ति ५.१०.४; °गअ–वनगज १ ३.३
वणघट्ट–चुनार (नगर) ९.१९ १५

वणफल–वनफल, कार्पासफल कपासका फूल १.८.४
वणमाल–वनमाला (रानी) ३.३.१५,३.८.३
वणयर–वनचर ५.८.५;११.४.५
वणराइ–वनराजि ८.१४.६
वणासइ–वनस्पति १.१३ ३;४.८.१४.
वणिउत्त–वणिक्पुत्र ४.१४.१२,१०.७.५
वणिणंदण–वणिक्नन्दन ४.१.७
वणिय–व्रणित ९.१२.७
वणिय–वणिक् ९.१९.१६
वणिवग्ग–वणिक्वर्ग १०.१८.९
वणीस–वणिक् + ईश ३ ६.९,४ ३.२
√वण्ण–वर्ण् + णिच्(स्वार्थे)°इ ४.१०.२,४.२२.२५
°उ (विधि०) ८.१.५; वण्णिऊण १.१८.१
√वण्णिज्ज–वर्ण् + णिच्(स्वार्थे)(कर्मणि)°इ १.६.४
वण्ण–वर्ण, शब्द ८.२.७;१०.१.१०
वण्ण–वर्ण, वर्णन, कीर्ति ११.१.२
वण्णण–वर्णन ७.२.९
वण्णुक्करिस–वर्ण + उत्कर्ष १.५.१६
वत्त–वृत्त, वृत्तान्त ५.१२.८,६.११.७
वत्थ–वस्त्र २.९.१९,१० १९.८
वत्थाइ–वस्त्र + आदि १०.९.१०
वत्थु–वस्तु १०.४.१२, १०.९ १०; °रूव–°रूप १ १८.१२; °सहव–स्वरूप° ९.१.१४; १०.२०.९
√वद्धाव–वृध् + णिच् (स्वार्थे), हि० बधाई देना, °मि १.१३.८
वद्धावअ–वर्द्धापक. (कर्तरि) १.१४.३;४.१५.२
वद्धावण–वर्द्धापन, बधाई ४ ७.१२
वद्धावणा–वर्द्धापना ४.८.४
वप्प–बाप, पितृ ८.६ ४
वमाल–व्याप्त २.९.९,७ ९.१०
वम्मह–मन्मथ ८.१४.२०,१०.८.९
वय–व्रत २.१२.१,३.६.२
वयखग्ग–व्रतखड्ग १०.२६.१०
वयण–वदन, मुख ३.४.१,४.१९.९
वयण–वचन २.१०.७,१०.२.८
वयणमइरा–वदनमदिरा ४.१७.३
वयणरंग–वदनरङ्ग मुखरूपी रङ्गमञ्च ३.१.४
वयणाभास–वदनाभास, मुखाभास १०.४.६
वयणासव–वदनासव ९.१.९
वयणिज्ज–व्रतनिर्जित ३.८.१३
वयणिम्मल–व्रतनिर्मल ३.९.१८
वयणीय–वचनीय, निन्द्य ५.३.१५
वयणुल्ल–वदन(मुख) + उल्ल (स्वार्थे) ५.२.२१
वयतरणी–वैतरणी २ १३.१३
वयधार–व्रतधारक २.४.५
वयभर–व्रतभार १०.२१.१
वयविद्धि–व्रतवृद्धि १०.२२.७
वयविमल–व्रतविमल २ २०.५;८.११.१८
वयस–वयस्, वय. २.१८.४
वयसील–व्रत + शील ८.२.१५
वयोवासि °य–व्रत + उपवासित २.१९.५
वयोहर–वृत्तधर ८.१०.१;८.१०.९
वरइत्त–वरयिता, वर, दुल्हा २.१२ १४;७.१२ ९; ९ ८.१
वरइत्ती–वरयित्री (कर्तरि), वरण करनेवाली ३.८.८
वरंग–वर + अङ्ग, वराङ्ग, नितम्ब ४.१९.६; ४.१९.११
वरंगचरिअ–वराङ्गचरित १ ४.३
वरच्छि–वर + अक्षि ६.१३ ८;९.९ १
वरताल–वर + ताल ८.९.५
वरयत्त–वरयिता, वर, दुल्हा ८.१४.३
वरलच्छी–वर (श्रेष्ठ) + लक्ष्मी ४.६ १२
वरवण्ण–वर + वर्णक, द्यूतविशेष ४.२.९
वरवहुय–वर-वधू ९.१४.५
वराअ °य–वराकः, बेचारा ७.७ ७; १० ९ ७; १०.२६.७
वराड–बरार (प्रान्त) ९.१९ ४
वरि–वरम्, अच्छा २.१५.११;९.३.१;९.५ २
वरिट्ठ–वरिष्ठ ५ ८ ४;८.१०.६
वरिस–वर्ष, अब्द २.५ १०;१०.१७.२
√वरिस–वृष् °इ ९.९.९
वरिसण–वर्षण, हि० बरसना ७.९.१०
वरिसा–वर्षा ६.६.८
वरेंदीसिरी–वरेन्द्र (श्री), उत्तरी बंगाल ९.१९ १३
वलअ–वलय, मण्डल ६.३ २;८.८.१७
√वल–वल्, वलु (लोट्), वलु-वलु, लौटो लौटो ६.१२ ६
√वलंत–वल् + शतृ ५ १ २३;१०.१०.४
वलग्ग–अवलग्न ६ ७.१०

वलयायार–वलयाकार ११.११ ३
वलिय–वलित, मर्दित १.११.१;
वलिय–वलित, लौट गये १२.१२.४
वल्लर–(दे) वल्लर, खेत, अरण्य १.८.३
वल्लरि–वल्लरी ८.७.१७
वल्लह–वल्लभ, पति १.४.१०;४.१६.११
ववगय–व्यपगत ५.१४.२३;८.१४.२०
ववगयसत्त–व्यपगत सत्त्व ३.१३.१२
√ववहर–व्यवह् °इ ८.३ १२
ववहार–व्यवहार २ १.१२,५१२.४
√वस–वस् °इ ३.१०.१२;१०.१२.१०, वसिऊणं ८ ३.२
वस–वृष, वृषभ ९ ११.४
वस–वसा, चर्बी ६.७ ७,७ १.१०
वस–वश २.१४.१०;८ १० १७
वसण–व्यसन, विपत्ति, संकट ५.१३ १५;६ १ १
वसह–वृषभ ४.१८ १३
वसि–वशी, वशवर्ती ४.२२ २३
वसीकिय–वशीकृत ५ १.२२
वसुमइ–वसुमति, पृथ्वी ३.८.८,६.१४ १४
वह–प्रवाह हिं०, बहाव: ९.१०.१
√वह–वह् °इ ४.१८.३;९.९ १२,१०.७.५; वहंति; (बहुव०) ९ २.५; °मि ४.२.१५,१०.९.१० वहेवि १०.२६ १०
√वहंत–वह् + शतृ १० ७.३,१०.११.९
वहण–वहन, ढोना ७ ९.११
वहि–व्याधि ३.९.९
√वहिज्ज–वह् (कर्मणि) °इ १ ७ ७
वहु–वधू ८ ३ ८; ९.१३.१४; ९ १६.४
वहुअ °य–वधू ८ १६.६,१२; १० २१.५
वहुचउक्क–वधूचतुष्क ८ १५.१५
वहुमुह–वधूमुख ९ १४.१०
वहुव–वधू ४.१७ ९,९ १४.५,९ १६ ३
वहुवयण–वधूवदन (मुख) ९ १६ ११
वहुवर–वधू + वर ८ १२ १४
वाअ–वाक् ४ १ १३
√वा–वा °इ १ १३.४,३.४.४
वाइणा–वाचना, वाणी २.३ ४
वाई–वादी १.५ १७
वाउ–वायु १ ११ १९,१.१३ ४
वाउल्लिय–पुतली ९.१.६
वाऊलि–वातूल (बवंडर) ६.१४.२
वाडी–वाटिका ३.२.५
वाण–बाण ४.१२.१५;५.१४.११
वाणपंति–बाणपङ्क्ति १०.२०.२
वाणर–वानर २.४.१२,९.६.९
वाणरमुह–वानरमुख ९.१९.१३
वाणरिय–वानरी, हिं० वन्दरी ९.७.३
वाणसंड–बाणषंड, बाणावलि ७.९.१
वाणारसी–वाराणसी ९.१९.१५
वाणिज–(i) वणिजः (कर्तरि), वणिक् (ii) पानीय, पानी, ८.३.८;१०.११.१
वाणिज्ज–वाणिज्य १०.७.६; °कज्ज–°कार्य ९.१८.११
वाम–वाम, सुन्दर १०.१६.६
√वाय–वद्, °इ ३.१२.१७, °हु (विधि०) ४.१८.५
वायरण–व्याकरण ४ ९.३; ८.१३.९
वाया–वाचा १.१८.८
वायाहय–वात + आहत २.१८.१२
√वार–वारय् °इ ८.११.१८;९.१३.२,११ ८.४
वार–द्वार ११ ७.२
वारढंकण–द्वार + ढांकन (दे) कपाट ९.१७.३
वाराणसि–वाराणसी (नगरी) १०.१५.१
वारिअ °य–वारित १.१५.६; ३.१४.१६; ८.९.९; ९.४.१०
वारुअ–(दे) शीघ्रगामी १.१४.१०
वारुणत्थ–वारुण + अस्त्र ७.९.८
वालभ–वल्लभी (गुजरात) ९.१९.७
√वाव–वि + आप् °हि (विधि०) १०.५.६
वावड–व्यापृत १ ३ १,५.६.३
√वावर–वि + आ + पृ °इ(आत्मने०) १.८.१,३.३.७
√वावर–वि + अव + हृ °इ ८.३.९
वावल्ल–शस्त्र ७.६.१
वावार–व्यापार ८.८.१३;१० ३.८
वावी–वापी ३.२.८
वासरलच्छि–वासरलक्ष्मी, दिवसशोभा ८.१४.१३
वासहर–वासगृह ८.१५.१६,९.१८.६
वासारत्त–वर्षान्तु ९.९.६
वासिय–वासित, सुवासित ५.८ १९;८ ३.३
वासुपुज्ज–वासुपूज्य, (तीर्थङ्कर) १०.२४ ११; °जिन १.१२.६

ाह-प्रवाह ७.६.५;१०.१३.१०
√वाह-वह्+णिच् °इ १०.११.१
√वाहंत-वह् + शतृ ९.४४;९४.९
ाहण-वाहन ४.२०.५;५.३.१४
ाहयट्ट-घोटक संघात ४.२०.१०
√वाहर-व्या + हृ °इ ३.३.४
ाहरिअ-व्याहृत १०.१७ १६
ाहल-(दे) क्षुद्र जलप्रवाह ५.८.२१
वाहि-व्याधि २.५.११; ३.११.२
वाहिणी-वाहिनी, नदी ७.६.६
वाहितरंगिणि-व्याधितरङ्गिणी ३ ८.९
वाहियालि-(तत्सम) अश्वक्रीड़ास्थल ३.२.१०; ४.१३.१५
√वाहुड-(दे) चल् °वि १०.९ १०; °हि (विधि०) २.१२.१०
वाहुडण-(दे) गमन २.१२.७
वि-इव, अपि १.२.४,१.२.५;५.८.३;१०.८.५
√विउज्झ-वि + बुध् °इ १०.७.८
विउण-द्विगुण ११.११.३,११.११.१०
विउणअ-द्विगुण + क (स्वार्थे) ११.१०.११
विउल-विपुल (पर्वत) १.१३.१०
विउलइरि-विपुलगिरि१०.१३.११; °गिरि १.१५.८
विउस-विद्वस् १.२.६;४.९.३; °यण-°जन १.२.१२; °सह-°सभा १.४.४
विओय-वियोग ९.१५.१४
विकंत-विक्रान्त, शूर ६ ७.४
विंजण-(i) व्यञ्जन-अक्षर
(ii) व्यञ्जन-भोज्य पदार्थ ८.१३.९
विंझ-विन्ध्य ५ ८.१; ९.१९ ४, १०.१२ १
विंझइरि-विन्ध्यगिरि ४.१५.९
विंझपुस-विन्ध्यदेश ५ ८.३८
विंझाडइ-विन्ध्याटवी ५.८ ३०
विंट-वृन्त ११.९.९
विंतर-व्यन्तर (देव) १ १६ ८,११.१२.८
विंद-वृन्द ४.५ ४,१.१.१२
√विंध-विन्ध् °इ ३.१० १५;४.१२ १६
विंधण-हिं० बींधना ७.९.३
विंभअ-विस्मय ३.६.१४,४ १०.१०
विंभइय-विस्मित ९.६.३
विंभिय-विस्मित २.३.१०; ९ १९.१६; °चित्त ३.६.६; °मण-°मन ९.३.३
√विक्क-वि + क्री °इ २ १८.५; °मि १० ११.४
विक्कम-विक्रम, पराक्रम ४.२२.८;७.१०.१६
विक्कमकाल-विक्रम संवत् प्रश० २
विक्कार-विकार १.८.६
विक्खाअ °य-विख्यात °इय ३.१४.८; ४.१४.१६; °यउ ७.१३.१० प्रश० २१; प्रश० १४;
विक्खिरिय-विकीर्ण ५.१.२४
विगय-विगत २.१८.११
विग्गह-विग्रह, युद्ध ६.१.१२;१०.१५.३
विग्गहगइ-विग्रहगति, शरीरगति ८.८.१२
विग्घ-विघ्न ३.७.१०
विचित्त-विचित्र ४.१२.१३; °वाम १.८ ८; °मइ-°मति, धूर्त, चतुर ८.३.१३
√विचिंत-वि + चिन्त् °इ ११.१३.१
विच्चंतर-वृत्ति + अन्तर, वृत्त्यन्तर, वृत्तिपरिवर्तन २.१४.४
विच्छड्डिर-विच्छर्द् + इर, वैभवशील ७.१.२१
√विच्छुरंत-व्याप् + शतृ ४.२१.५
विजउच्छाह-विजय + उत्साह ७.३.७
विजय-विजय (नामक स्वर्ग विमान) ११.१२.२
√विजय-वि + जि °यंतु (विधि०) १.१.१;१.५.१८
विजयंतरिअ-विजय + अन्तरित ६.१.७
विजयद्ध-विजयार्द्ध ११.११.८
विजयसंख-विजयशङ्ख ४.१३.१०
विजयास-विजय + आशा ७.४.१८
विज्ज-विद्या ३.१४.११;४.१२.१०
विज्ज-वैद्य ५.४.१३
√विज्ज-विद् °इ ४.१४.६
√विज्जमाण-वीज् + शानच् १०.१३.४
विज्जा-विद्या ३.१४.९;८.५.५; °कुसल-°कुशल ३.३.५; °पवर-°प्रवर ८.४.५; °बल ३.१०.८;६.१४.३; °वंत-°वन्त ३.१४.२४; °वयण-°वचन ५.४.६; °सरीर-शरीर १.१८.९
विज्जावच्च-वैयावृत्य १०.२३.३
विज्जाहर-विद्याधर ५.२.६; ७ २.९

विद्दारिय–विदारित ५.८.१५
विद्दुम–विद्रुम ४ १४.२; ७ १२.३
विद्दुमराय–विद्रुमराग २.१४.७
विद्धउ–विद्ध ४.१३.६;६.५.८; ६.१२.९
विद्धपुरिस–वृद्धपुरुष ३ ११.१०
विद्धंस–विध्वस ६ १२.७;८ ७.१७
विद्धंसयर–विद्ध्वंसकर १.१.१०
विद्धंसिय–विद्ध्वस्त ५.१३.२३
विद्धि–वृद्धि, समृद्धि १.३.५,४.८ ९
विणोअ–विनोद ४.१३.१३
विप्प–विप्र २.९.८
विप्पिओय–विप्रयोग, विरह ४.१४.१
विप्फार–विस्फार ४.२.१३
विप्फारिय–विस्फारित (नेत्र) ८.९.९
विप्फुर–विस्फुर °इ १.५.१५
विप्फुरिय–विस्फुरित ११.६.७
विबंधणी–असहाय स्त्री ५.७ १६
विब्भम–विभ्रम ९.२ ४;१०.१५.४
विब्भुल्लउ–विस्मृत ८.१४.१६;१०.१५.७
विभाविअ–विभावित ३.१४.१४
विंभिय–विस्मित ५.२.३
विमण–विमन, विपण्ण २.१२.१२
विमत्तिअ–विमदा, (काम)मदरहिता (स्त्री० विशे०) ९.१३.४
विमल–विमल, शुद्ध ३.५.१. °कमलाणण °कमलानन ३.३.१; °जस—°यश १.४.२
विमलगिरि–पर्वत २.२०.९
विमलिय–विमलित २.३.९
विमाण–विमान २.२.७,२.२०.१२
विमाणय–विमान + क (स्वार्थे) २.३.७
विमीस–विमिश्र २.९.१६;२.१२.१३
विमुक्क–विमुक्त ९.४.१५;१०.१८.१२;११.१५.३
विमुक्कअ–विमुक्त + क (स्वार्थे) ४.१२.१५
विमुद्द–विमुद्र, समुद्रित, मुद्रामग्न ३.११.१०
वियक्खण–विचक्षण ८.२.२४;११.६.६
वियड–विकट, विस्तीर्ण २.१४.९,५.९.११
वियडयड–विकटतट, विस्तीर्ण १०.१६.१
वियप्प–विकल्प १०.२.१०; ११.४.८
वियप्पण–विकल्पना ८.७.१
वियप्पिअ–विकल्पित ९.१३.३
√वियंभ–वि + जृम्भ् °इ ९ १३.७; ११.१३.४ वियंभिवि ६.१४.६
√वियर–वि + किर् °इ ४.११.५
वियल–विकल ४.२२.१९;९.७.१२
वियलंग–विकलाङ्ग ९.१३.१६
√वियलंत–वि + गल् + शतृ १.७.४
वियलपाण–विकलप्राण ९.१४.७
वियलमइ–विकलमति ६.१०.१३
वियलिंदिय–विकल + इन्द्रिय ११.१३.४
वियलिय–विगलित १.१५.४
√वियस–विकस् °इ ४.१५.१४
√वियसंत–विकस् + शतृ ५.९.७
वियसिय–विकसित ३.१२.११;४.१२.४
वियाण–वितान ४.१८.४; ५.१.१३
√वियाण–वि + ज्ञा °इ २.७.२;८.१५.११
वियाणिय–विज्ञानित ११.१२.९
वियार–विकार २.१७.११;१०.२.१०
वियार–विचार ८.६.१०
वियारिअ–विदारित ६.११.८
√वियारिज्ज–वि + कृ (कर्मणि) °इ १०.५.२
वियास–विकास करनेवाला १०.१.१४
√वियास–वि + काश् + णिच् °इ ८.१६.७
√विरअ–वि + रचय् ; विरइवि २.५.१४; विरएवि ४.१७.१६
विरइ–विरति ११.८.६
विरइअ–विरचित ३.१४.२६;१०.२६.१३
विरइज्ज–वि + रच् °इ १.४.१०;९.१२.१३
विरइय–विरचित ८.२.७,९.१२.१
विरइयंजलि–विरचित + अञ्जलि १.१४.१
√विरइज्जमि–वि + रच् °मि ८.७.९
√विरम–वि + रम् °इ ५.७.२६
√विरय–वि + रचय् °इ ४.१५.४
√विरयंत–वि + राज् + शतृ ४.५.१;४.७.८
विरयण–विरचना, सजावट ८.१६.७;९.१२.१५
विरयत्त–विरक्त १०.२०.६
विरसक्खर–विरसाक्षर ४.२.८
विरहग्गि–विरह + अग्नि ८.१४.२०

विहुर–विधुर, विषमपरिस्थिति आपत्ति ६.१२.२; ७.८.१२
विहूसण–विभूषण ८.१५.२
विहूसिय–विभूषित ९.१२.५;११.१४.९
विहोयस–वैभवयुक्त ९.१२.११
वी–अपि २.८.२
वीअ–द्वितीय ४.१९.१२,५.७.१५
वीण–वीणा ८.९.१७
वीणज्झंकार–वीणाझङ्कार ४.१३.८
वीणाइ–वीणा आदि ४.१२.१३
वीणावज्ज–वीणावाद्य ८.१६.१२
वीणावायण–वीणावादन ५.२.२९
वीणोवम–वीणोपम २.१६.१
वीयराउ–वीतराग १.१७ ८;१.१८.३,८.९.१३
वीयसोय–वीतसोका (नगरी) ३.६.५
वीयसोया–वीतशोका ३.३.६
वीर–वीर कवि १.५.४;३.१.४
वीर–वीर, महावीर तीर्थंकर १ सं० १; १.२.१; ११.१.१
वीरकहा–वीर + कथा १.४.४
वीरजिणिद–वीरजिनेन्द्र ४.४.२
वीरवयण–वीर (कवि) वचन ३.१.१
वीस–विंशति ७.८.१४
√वीसर–वि + स्मृ (वहुव०) ३.२.२
वीसर–(i) विस्वर (ii) वी–पक्षी + स्वर १.६.५
वीसरिअ–विस्मृत ७ ६.११
वीसमण–विश्राम ४.९.१०
वीसोवहि–विंशति + उदधि, बीससागर (काल प्रमाण) ११.१२.५
√वीह–भी °इ ७.१.१५
√वीहंत–भी + शतृ ५.१३.३३,१०.२५.८
वीहच्छ–बीभत्स १०.१७.७;१० २६.३
वुक्कार–गर्जना (ध्वन्या०) ५ ८.१८
वुच्च–वच् °इ ३ १४.१८;५ ७.२४;९.१.१९
वुण्णउ–(दे) दीन, उद्विग्न ९ १०.१२
वुण्णिय–(दे) भयभीत ५.३.१२
वुत्तउ–उक्त ४.१४.२०
वुत्त–उक्त २.५ ७;१०.१०.२
वुत्त–वृत्त ५.१३.३१
वेअ–वेग ७.१०.१४;१०.१४.१२
वेइल्ल–विचकिल्ल (पुष्पलता) ४.१६.४
वेंतर–व्यन्तर १.१६.७
वेज्ज–वैद्य ११.४.१
वेढिअ °य–वेष्टित ५.३.६;६.१.१३;११.११.३
√वेढिज्ज–वेष्ट् (कर्मणि) °इ ११.७.६
वेमाणिय–वैमानिक ११.१२.७
√वेमेल्ल- वि + मुच् °इ २.२०.२
वेय–वेद २.५.८
वेय–वेग ७.६.६
वेयघोस–वेदघोष २.४.९
वेयण–वेदना १०.२६.५,११.५.८
वेयथंड–(?) हस्ति ६.१०.३
वेयल्ल–वेग + ल्ल (मतुपार्थे), वेगयुक्त ३.१२.१२
वेयाल–वैताल ७.१.११,१०.२६.३
वेलाउल–वेलाकूल १०.११.४
वेलाणई–वेलानदी, समुद्रोपकण्ठनदी, देखें : सं० टिप्पण १०.९.८
वेल्ल–वेलि, लता ४.१७.२१
वेल्लपास–वेलपाश, लताजाल १०.२६.८
वेल्लि–वेलि, लता ५.१०.२२
वेस–वेश्या ९.१२.५;९.१३.१
वेस–वेश २.१३.१
वेसपट्ट–वेशपट्ट, पट्टवेशधारी ९.१८.२
वेसर–(तत्सम) वेसर, अश्वतर, खच्चर १.१५ ४
वेसा–वेश्या ४.२१.१४
वेसायउ–वेश्यायत्त, वेश्याकी आधीनता, वेश्यागमन ५.९.१६
वेसायण–वेश्याजन ४ २.६
वेसावाड–वेश्यावाट ९.१२ ४
वेसिणि–प्रेषणी, परिचारिका १०.१५.९
वोड–वोड (नट) १०.१४.३
वोमहाअ–व्योम + भाग ५.५.१५
वोरीहल–बेरीफल ८ १५.१३
√वोल–वि + उत्क्रम् °वि १०.१०.२; वोलेविणु ७ १२.१७
√वोलिज्जमाण–व्रुड् + णिच् + शानच् ४ १९.२०; ५.८.३७

वोलिय–(दे) व्यतिक्रान्त ८.१४.२१
वोलीण–(दे) व्यतिक्रान्त ४.१९.२
वोसग्ग–व्युत्सर्ग १०.२३.५
व्व–इव १.८.३;२.२०.६
व्वण–व्रण ९.१३.१४

[स]

स–स्व ८.७ २; स स–स्व-स्व ५.८.२६
सअ–शत ३.११.२;११.८.३
सआ–सदा ८.८.५
सइत्तिया–स्वपिता (स्त्री०) ४.९.९
सइं–स्वयं १.११.२०
सइच्छ–स्व + इच्छा ४ २०.२
सइत्त–सचित्त, सावधान ४.५ ११
सइत्तउ–(अप०) मुदित ४.२.२
सई–स्वयं ४ ८ १४
सउणयण–शकुनिजन १०.१८.९
सउण्ण–सम् + पूर्ण ४.११.१६;४ १३.१८
सउचायार–शौच + आचार, शौचधर्म ११ १५.५
सउदिवड्ढ–शत + द्व्यर्द्ध, डेढसौ ५ ४ १५
सउहम्म–सौधर्म (राजकुमार) ८.४ ११;८.५.५
सं–अतिबृहत् ७.२.१२
संक–शङ्का १.१.४;७.६.२८
संकड–संकट, संकीर्ण ९.७.१६;११.३.२
संकंत–संक्रान्त ५.१.१६;१०.८ ७;१०.८.१२
संकप्प–संकल्प १.१८.१३;१०.२३.५
संकास–संकाश १०.१८.११
संकिट्ठ–संक्लिष्ट २.२०.१
संकिण्ण–संकीर्ण ४.१३.४;६.१२ १०
संकिय–शङ्कित १.५.६
संकिलक–संकलन १.५.५;५.७.५
संकुइअ–संकुचित ५.१.२१;९.९.३
संकुल–सङ्कुल १.१५.१
सकेअ–सङ्केत ९ ४ ७;१० ८.१४
√संकेय–सम् + केत् °वि १०.१६.९
√संकेस–√सम् + क्लिश् °इ २ १६.११
°संकोय–संकोच ५.१४.२२
संख–शङ्ख १.१४.९;१०.१९.५
संखिणि–शङ्खिणी (कवाड़ी) ९.८.१;१०.१८.१
संखेअ–सक्षेप २.९.१५; °व १.५.९
संग–सङ्ग, प्रसङ्ग, सङ्गति ७.२.९;१०.२६.९
संगअ–सङ्गत १०.१९.५
सगम–सङ्गम ९.९.३;११.१३.६;
संगर–सङ्ग्राम १.११ ११
संगर–सङ्गम ३.१२.८
सगह–सग्रह ८.३.१३
√संगह–सं + ग्रह् °हिवि १०.२६ १०
संगहिय–संग्रहीत ८.२.६; १०.१०.७
सगाम–सङ्ग्राम ५.१४.१६;१०.१.१३
संगिणि–सङ्गिनी ८.११.१२
संघट्ट–संघर्ष ६.७.१;१०.१८.८
√संघट्ट–सम् + घट्ट् °इ ६.९.५
संघट्टिय–संघटित १.९.२
संघडिय–संघटित, निर्मित ११.६.२
√संघर–सम् + हृ °रेवि ७.१.८
संघाड–सघात, जोड़ी २ ८.११;२.१५.७;५.७.२३
संघाय–संघात ७.१.१२
संच–सञ्चय, समूह १०.१६.५;१०.१८ २
√संचड–सम् + आरुह् °वि ६.२ ३
संचडिअ–आरूढ १.१४.१०
संचप्पिय–(दे) संवारा हुआ १०˙१६.६
√संचर–सम् + चर् °इ ११.६.१; °हु (विधि०) ६.१.११
√संचरंत–सम् + चर् + शतृ ४.१५.७;४ २१.५
संचरिय–संचारित ६.७.७
संचलिअ °य–सचलित ५.४.६;१०.१९.११
संचार–संचार, संचरण ९ १०.६
संचारिय–सचारित ५.१०.२२
संचियत्थ–संचितार्थ १.५ १७
संछइय–सम् + छादित ३.१.१५;४.१६.७
संछन्नय–सछन्न + क (स्वार्थे) ५ ८.२२
संछविय–सछादित ४.८.६
संछिण्ण–संछिन्न ६.६.१
संजणिय–सजनित २.८.१
संजम–सयम ११.१३.१०,११.१४.७
संजाअ °य–संजात ४ २ ४;७.६.१;१०.१७.१४; १०.२५ १०
संजाण–संजान (देश) ९.१९.४

संजायरइ–संजातरति ५.२.९
संजीवणि–संजीवनी ८.१८.४
संजुअ–सयुक्त १०.२४.१३
संजुत्त–सयुक्त ८.१४.३
संजोअ–संयोग ९.१२.११
संझा–सन्ध्या ५.११.५; ६.१०.१४
संठ्ठविय–संस्थापित, धैर्य बँधाया २ ५ १७
संठ्ठिय–संस्थित ५ ८.२२
√संठवि–सम् + स्था + णिच् + विधि० ४.१८ ८
संठाण–संस्थान, पैंतरा, देखें, सं० टिप्पण ५.१४.२१
संठिअ °य–संस्थित ८.१३.३,९.१७.८;१०.१९.११;
१०.२६.११
संठिया–संस्थिता (स्त्री०) १.११.७;६.१०.२
√संडज्झमाण–सम् + दह् + शानच् ५.५.११
संड–षण्ढ, नपुंसक ९ २ ५;११ ४.६
संत–शान्त (स्थान, मोक्ष) १० ५ १३
संत–श्रान्त १० ८.१२
संतचित्त–शान्तचित्त २.६.६
संतट्ठ–संत्रस्त ७.६.६
संतत्त–सतृप्त °इ ३.१३ १२;६.१ ११
संतप्पिअ–सन्तप्रिय ४.२.२
संताविअ–संतापित ५.११.१७;८.१२.५
संताण–सन्तान, सन्तति २.७.१०; १०.१८.८;
१०.२१.२ प्रश० १७
संताविअ–संतापित ६ १४.३
संति–शान्तिनाथ तीर्थंकर १.४.५
सतुआ–सन्तुवा (वीरकविकी माता) १ ४ ८; प्रश १२
संतोस–सन्तोष २.७.३; ७ १३.६
संथड–सार्थ, वणिक् दल ८.३ ११
संथर–सस्तरण, बिछौना १०.२०.११
संथाण–सस्थान, शस्त्रकोष, म्यान ५.१४.१०
संथाविअ–संस्थापित ३.४.७; १०.१४ ५
संथुअ–संस्तुत ७ १३.१८
संदण–स्यन्दन ६.४ ५,७.१.२०
संदरसिय–संदर्शित ३ ७.९
संदिणी–स्यन्दिनी, राजमार्ग १०.१९.१४
संदिण्ण–संदत्त ५.६.१०; ९.१४.१६
संदीवण–संदीपन १०.८.९
संदीविअ–संदीप्त, प्रज्वलित १०.१५ ८
√संदेस–सम् + दिश् °इ ९.३.१
√संध–सन्ध् °वि ७.९ ५
संधी–सन्धि १.१८.२३;६.१४.१८
संनिवेसिय–सन्निवेशित ५.१.१२
√संपच्चमाण–सं + पच् + शानच् ५.८.२९
√संपज्ज–सम् + पद् + णिच् °इ (आत्मने०)
९.२.९; १०.२.४;११.७.८
संपण्ण–सम्पन्न ५.३.११
संपण्णय–सम्पन्न + क (स्वार्थे) १० १९.१६
संपत्त–सम्प्राप्त ३.६.५
संपन्न–सम्पन्न ४.१२.९;९ ८.४
संपन्ननाणसा–सम्पन्न (संप्राप्त) ज्ञान, देखें. सं० टिप्पण
३.१.८
संपय–सम्पत्, सम्पदा १.१३.९;४.१४.११; ९.२ ८
संपया–साम्प्रतम्, सम्प्रति ६.१ ६
संपलित्त–सम् + प्रदीप्त ४.११ १
संपाइअ °य–संपादित ४.९ ६; ७.१३ ३
संपुण्ण–सम्पूर्ण ३ ६.४,९ ८ ११
संपुण्णिंदियत्त–सम्पूर्ण + इन्द्रियत्व ११.१३.६
संपेसिअ °य–सम्प्रेषित २.८.१२;५.४ १७,५.१२.४;
७.११ १०,८ ८.१९
√संबज्झ–सम् + बन्ध् °इ ४.२.१
संबोहणालाव–संबोधन + आलाप २.१९ १
संबोहिअ–संबोधित १.१७.१०;८.८.१०
संभउ–संभव ८ १२.९
संभारिअ °य–संस्मृत ३ ६ ५,७.८ ९
√संभाव–सम् + भू °इ २.८.१०,११ ४.१०
संभाविय–संभावित, सम्मानित ६.११.९
संभावियअ–संभावित + क (स्वार्थे) २.१०.२
संभासण–संभाषण ७.१३ ११,११.१४.६
संभूअ °य–संभूत ३.३.७;१०.३.४
√संमाणिज्ज–सम् + मान् (कर्मणि) °इ ८.१६.४
संरक्खिय–संरक्षित ७ ६.१२
√संलग्ग–सम् + लग् °इ ४ ९.७
संलद्ध–संलब्ध २.१९ ६
संलीण–संलीन, लगा हुआ ९.१४.१४
संवच्छर–संवत्सर २.५ १०; १०.१५.३
√संवड–सम् + पद् °इ (आत्मने०) ४ ११.१५
संवरिय–संवृत्त ८.६.१४,११ ८.९

संवलिअ °य–संवालित ४.१४.१; ५.१.१८;१०.४.११
सचित्त–सचित्र, विविध ४.१२.१३
सचेयण–सचेतन ११.५.८
सच्च–सत्य ११.१४.६; °उ–सत्य २.१३.८;४.१७.४
सच्चरिअ °य–सच्चरित्र ८.२.४; प्रश० ११
सच्चविय–(दे°) दृष्ट, विलोकित ७.६.१४
सच्छ–स्वच्छ ६.१.४
सच्छंद–स्वछन्द १०.७.२
सच्छमई–स्वच्छमति १.२.३
सच्छाय–सछाया, शोभायुक्त ३.१३.४
सछंद–(i) स्वच्छंद, (ii) स + छन्द १ ३ ३
सज्ज–सर्ज वृक्ष ५.८.१०
सज्ज–सज्जित, तैयार ७.३.१२;७.१२.१५
सज्जण–सज्जन १.८.२;८.८.५
सज्जिअ–सज्जित ४.९.९;७.१२ १८; °य ४.२०.४, ७.८.१३
सज्झ–साध्य ३.९ ४;९.५.१२
सज्झइरि–सह्यगिरि, सह्याद्रि ४.१५.९; °गिरि ९.१९.४
सज्झाम °य–स्वाध्याय २.८.३;१०.२३.४
सझडप्प–(दे) झटपट ५.१४.२०
√सडंत–षद् + शतृ ६.१०.११
√सण–शण वान्य १ ८.५
सणाह–सनाथ (स्त्री० विशे०) १.१०.६
सणेह–स्नेह ९.१२.८
√सवणंत–सम् + ज्ञप् + णिच् (स्वार्थे) + शतृ १० १६.७
सण्णाण–स्व + ज्ञान २.१.५
सण्णालुयअ–संज्ञालु + क (स्वार्थे) २ ६ ९
सण्णास–संन्यास ३ ९.१९,१०.२४.१२
सतक्क–(i) सतर्क (ii) सतक्ष, मट्ठे सहित ८.१३.१३
सताल°–सताल, सरोवरयुक्त ३.२.५
सत्त–सप्त ३.१ ६,४.५.१३
सत्त–सत्त्व ६ ९.३
सत्तंग–सप्त + अङ्ग १.१२.६
सत्तगोयावरीभीम–सप्तगोदावरीभीम (तीर्थ) ९.१९ १४
सत्तम–सप्तम १.१६.८;२.३ ६
सत्तरि–(हि) सत्तर (७०) प्रश० १
सत्तारह–सप्तदश, सत्रह ११.१०.७
सत्ति–शक्ति ७.८.१२;९.१९.१६
सत्तिरूव–शक्तिरूप, शक्ति अनुसार ८.२.६
सत्तु–शत्रु १.१.८;६.१.१८;६.४.२; °घर–शत्रुरूपी पर्वत ५.४.९
सत्थ–सार्थ समूह २ १३.१
सत्थ–शास्त्र ४.९.५;४.१२.९;६ १४.५,९.१५.१३
सत्थत्थ–शास्त्र + अर्थ ५.१.१८
सत्थाण–स्वस्थान ५.१.२१; °अ-क(स्वार्थे)७.१३ १४
सत्थिय–स्वस्तिक २.९.१०
सत्थी–स + स्त्री १०.२०.८
सदप्पण–सदर्पण ८.३.१४
सदवक्ख–सद् + अक्ष ४ १७.७
सदाण–स + दान, दानयुक्त ४ ५.१७
सदाण–स + दान, मदयुक्त हस्ति ४.२१.१३
सदित्त–सदीप्त, दीप्तियुक्त ४.५ १४
सद्द–शब्द १.१७.३;२.२०.६, °त्थ, °अर्थ २.५.९; °सत्थ–°शास्त्र, व्याकरण १.३.२
सद्दूल–शार्दूल ५.८.३५
सद्दोहम्मिदु–शब्द + ओघ + इन्दु
सद्ध–श्रद्धा १.५.२९.९.१२.१६
सद्ध–श्रद्धः, श्रद्धावान् ९.१७.१२
सद्धालु–श्रद्धालु १.३.८
सधर–स + धर, पर्वतसहित १.१०.१४
सधर–स + धरा, धरासहित ५ १०.१
सधूमग्गि–स + धूम्र + अग्नि १०.२६.२
सनियंसण–सविवसन ४.१९.३.
सन्नज्झ–सम् + नह् (कर्मणि क्तः) सन्नद्ध °इ ६ १ ९, सन्नहवि ७ ३.२, सन्नहिवि ६.२ ७
सन्नाम–सन्नाम (धारक) ५ १३.१२
सन्निह–सन्निभ ५.१४ ७,९.७.११; १०.२३ ९
सपत्त–सपत्र, बाणसहित ७ ८ १३
सपरियण–सपरिजन ३.१२ २०;४.७.१,७ १२.१५
सपरियर–सपरिकर १०.२०.८
सपलास–(i) स + पलाश–राक्षस सहित (ii) स + पलाश वृक्षसहित ५.८.३४
सपहरण–सप्रहरण ६.११.३
सपिअ–सप्रिया १०.८.१६
सप्प–सर्प ३.७.१२;९.९.५,१०.१२.४
सप्पपंति–सर्पपङ्क्ति ७.९ ४

सप्पवंच–सप्रपञ्च १० २५.३
सप्पसंका–सर्पशङ्का १-९.८
सप्पुरिस–सत्पुरुष ७.९.२;११.१४.६
सबंधउ–सबान्धव ८.१३.८
सबर–शबर, भील ५.१०.९
सबल–स + बल, सैन्यसहित ५.६ १;६ ४.२
सब्भाव–स्वभाव २.१.४
समज्ज–सभार्या ४.६.७;७.१३.२
सभोअ–सभोग ४.५.१२
√सम–शम् °इ २.८.१०;४.१७.४,१०.१७ १७
समअ–समय २.२.६;१०.१७.३
समउं–समकं, सह २ १३ ६;८.१६.१३
समउसिय–समवासित, वस्त्र पहनाये १० १९.८
समगंध–सम + गन्ध, गन्धसहित ५.९.६
समग्ग–समग्र ४ १५ १६
समग्ग–स्वमार्ग ९.८ ४;९.८.९
समग्गल–सम् + अग्गल, समधिक ९.८.२२
समचाइअ–(दे) बलवान् (?) ६.१४.५
समत्त–समस्त ५.१२.८
समत्त–समाप्त ५.१४.१६;६.१४.१८;८.१६.१८
समत्थ–समर्थ २.१ ८,७.१२ ८
√समत्थमाण–सम् + अर्थ + शानच् १ ५.१२
समत्थिय–समर्थित ८.११.१
√समप्प–सम् + अप्, समप्पंति (बहुव०) ७ ४ ५
समप्पिअ–समर्पित १.१०.११
√समभाव–सम + भू, समान होना °हिं (बहुव०) १० ५ ६
समय–समद मदयुक्त हस्ति ५.७.१
समयण–समदन, सकाम २.५.५
समरखेत्त–समरक्षेत्र ६.४ २
समरंगण–समराङ्गण ५.४.१७
समरि–शबरी ८ १६.१३
समरीसी–सदृशता १ १५.१२
समलंकिय–समलंकृत ८ ९.१०.
समवसरण–समवशरण १.१ ५,८ ४.८
समवाअ–समवाय, अभिप्राय २ १.१,९.११ १४ °य १० ३ २
समसंत–सम + सत्त्व, समान बलवाले ६.९.१
समसीसिया–समशीर्षिका, स्पर्द्धा ७.६.२९

समसीसी–समशीर्षता, समानता १.१५.१२
समहत्थ–पैंतरा, देखो सं० टि० ५ १४.२१
समहिट्ठिय–सम् + अधिष्ठित, ५.९.८
समहिट्ठियअ–समर्हापित ९.१८ ७
समाण–समान, सार्द्धम् ४.२.७;४.१२.३;१०.८.२
समाण–स + मान, मानसहित ९.१७ १४
√समाणय–सम् + आ + नी °णियइ ५.४.१७
समाणिअ–सामानिक छन्द ९.१७.१४
समाणिअ–समाप्त ११.१५.१०
√समार–सम् + आ + रच् °इ ३.१२.१४
समारद्ध–सम् + आरब्ध ५.१४.११
√समारोव–सम् + आ + रोप् °ए(आत्मने०)५.५.१३
समालत्त–समालप्त, कथित १०.९.५
समावासिय–समावासित, सुवासित ४.१६.९
समास–(i) समास रचना (ii) स + मास, मासयुक्त १.३.६
√समास–सम् + आ + श्वस् °इ २.१३.१२
समासाइय–समासादित, प्राप्त ९.१९.१२
समासीसदाण–समाशीपदान ५.५.१४
समाहअ–समाहृत ७.१० ११
समाहि–समाधि ३.१३.१५,१०.१२ १,११.१५ ७
समिद्ध–समृद्ध ८ १६ ३
समिद्ध–समृद्धि ३.१२.९
समिद्धि–समृद्धि १.१३ ३
समिय–शमित १.११.१६
समियंक–स + मृगाङ्क, मृगाङ्क (राजा) सहित ५.४.१८
समी–शमी, छोकार वृक्ष ५.८ १०
समीरण–समीर + न (स्वार्थिक) १ ८.१
समीरणवलय–समीरवलय, वातवलय, देखें : सं० टि० ११.१०.२
समीव–समीप ५ २.२
√समीहमाण–सम् + ईह + शानच्२ ३.५;५ १.१८
समुग्गअ °य–सम् + उद्गत ८ १३ ११,९ १३.१६
समुग्गीरिय–सम् + उद्गीरित समुद्गीर्ण १ १८ ४
समुच्चय–समुच्चय, साथ ८ २.१४
समुच्चय–सम् + उच्च + क (स्वार्थ) ५.१३ १७
समुज्जोअ–समुद्योत ५ २ १
समुज्जोइय–समुद्योतित १.१८.३

√समुट्ठंत–सम + उत् + स्था + शतृ ४.५.७
समुट्ठिय–समुत्थित ९.१८.७
समुड्डिय–समुड्डित ८ १४.११
समुड्डिय–समुद्धृत ८.७.१६
समुद्द–समुद्र ५.३.७; ८.१४.११; ९.१६.१
समुद्दत्त–(श्रेष्ठि) ४ १२.१
समुद्दित्त–समुद्दीप्त ४.५.४
समुद्धरिअ–समुद्धृत ३ ७.१५
समुद्धाइय–समुद्धावित ५.५.१५; १०.२६.१
√समुप्पाअ–सम् + उत् + पद् + णिच् °ए (आत्मने०) १.९.५
समुप्फालिय–समुत्फालित ५.६.६
समुब्भव–समुद्भव ११ ९.४
√समुब्भासअ–सम् + उद् + भास् °ए (आत्मने०) १.१८.१०
√समुल्लालयंत–सम् + उत् + लल् + णिच् + शतृ १०.२६.२
समुहु–सन्मुख ५.११.२०
समोसारण–समुत्सारण, हटाना ५.१ २०
सम्मइ–सन्मति, तीर्थंकर महावीर १.१.१२
सम्मइ–सन्मति, सद्बुद्धि १.१.१२, २.१.२
सम्मज्जण–सम् + मार्जन ५.१.२४
सम्मत्त–सम्यक्त्व २.८ १; ३.७.२; सम्मत्तदिट्ठि–सम्यक्त्वदृष्टि २ १८.१; °धर ३.५.९; °वित्ति–°वृत्ति ११.१३.१०
सम्मन्नाण–सम्यक्ज्ञान १०.२३ ७
सम्मन्नाणिअ–सम्यक्ज्ञानी ९ १ १६
सम्माण–सन्मान ७ ६.१२
सम्माणिअ–सन्मानित ४.८ ९; ७.१२.११; ११.१५.१०
सम्मुह–सन्मुख ११ ८.१०
सय–शत ६ १४.१४, ११.३.२
सयंभू–स्वयम्भू (कवि) १ २ १२
सयंभूएव–स्वयम्भूदेव (कवि) ५.१.१
सयखंड–शतखण्ड १० ६.१६
सयड–शकट ५.७.१२
सयण–शयन ९.१३.१७, १०.८.१६
सयण–स्वजन, सज्जन ४.६ ७; ६.११.९
°विंद–स्वजनवृन्द ८.१०.३
सयणिज्ज–शयनीय, भोग्य ३.११.१३

सयपंच–शतपञ्च ३.४.७
सयल–सकल ३.४.६
सयवत्त–शतपत्र १.७ १; ४.१२.४; ९.९.२
सयसक्कर–शत + शर्कर, शतधाकृत शतशः विदीर्ण ९.१५.१५
सया–सदा ३.१ ११
सयास–सकाश, पार्श्व ११.१.२
सर–स्वर ४.१६.७, ५.८.१९; ६.४.९
सर–शर ४ १०.८
सर–सरोवर ४.१९.३
√सर–स्मृ °इ १०.७.१०
√सरंत–स्मृ + शतृ २.५.१४; ४.५.६; १०.७.३ १०.७.३; °उ (स्वार्थे) १० ७.४
√सर–सृ °इ १०.२.१०; १०.२१.२१
√सरंत–सृ + शतृ ३.६.३
सरड–सरट, करकैंटा ९.१०.७
सरण–शरण १.१०.८, ३.९.१६
सरणाइय–शरणागत ५.१३ ३
सरणागय–शरणागत ७.१२ ८
सरधोरण–शरधोरणि (कर्तरि), शरधारक, धनुष ३.१२ १६
सरपालिअ–(i) सरपालि-सरोवर पंक्ति, (ii) स्मर-पालित, मदनपोषित (वेश्याएँ) ३.२ ६
सरभेय–स्वरभेद ४.१५.३
सरमद्द–स्वरमन्द ४.८.३
सरल–सरल वृक्ष ३.१.१७; ५.१०.२०
सरलंगुलि–सरल + अङ्गुलि १.८.७
सरलत्तण–सरलत्व, सीधापन ९ १२.१४
सरलाइय–सरलायित, सरलित ४.१३.६
सरलालिय–स्वरललित, ललितस्वर ५.६.६
सरलाविय–सरलायित, सरलित ४.१५.८
सरवत्त–शरवक्त्र, बाणमुख, बाण ७.८.१
सरवर–सरोवर १.७ १, ४.२०.१; ५ ९.७
सरस–सरस, रसयुक्त १.५.१०
सरस–स + रस, सङ्ग्रामरस, वीररस ५.६.१
सरस–(तत्सम) (i) स + रस, (i) रसयुक्त (ii) सस्नेह, सानुराग (iii) धनयुक्त ९.१२.१८
सरसइ–सरस्वती देवी १.४.७
सरसव–सर्षप, सरसों ७.२.९

सरसव्वण–(i) सरस + व्रण, नवीन व्रण(ii) शर + स + व्रण, बाणके व्रणसे युक्त ६.६.१०
सरस्सई–सरस्वती ३.१.४
सरह–शरभ, शार्दूल १.१.८; ५.८.३१,७.४.३
सरह–स + रथ ५.८.३१
सरह–स + रभस् सोत्कण्ठा, २.१५.१४; ७ ११.८
सरहस–स + रभस् ९.८.१४
सराढ–स + राढ, राढदेश सहित ९ १९.१०
सराय–स + राजन्, राजासहित ६ १.१६
सरावणीय–(i) रावण सहित (ii) रावण वृक्ष सहित ५.८ ३३
सरासण–शर + आसन, धनुष ७.९.१२
सरि–सरित् १.५.१०;४.१० ४;६.९.१०
सरिअ–स्वरित १.६.१०
सरिअ–स्मृत ६.११.३
सरिच्छ–सदृश, २.१८ १५;९ १२.९
सरिय–स्वरित ६.७ २
सरिस–सदृश ५.९.१,६.१.२,१०.१.११
सरीर–शरीर २.४.२;४.१९.१०,१०.२६.५
सरूअ–स्व + रूप १.१८.१२, ४.१७.१२
सरूव–स + रूप, सुन्दर ९.१२.१५
सरूवअ–(i) स + रूप्यक ९ ८.२१
सरूवायर–स्वरूपाकार ९.११ १५
सरोरुह–सरोरुह, कमल १.१८ ७
सरोस–सरोष ५.१३.१२
सलक्खण °उ–सलक्षण ५ ४.१९,८.२ १२; ४.७.११
सलज्ज–लज्जा सहित ७.२ ४; १० ८.२
सलवट्टि–(दे) सलवट, सिकुड़न ४.१२.१२,४.१४.७
√सलसल–सलसल्, °लति (बहुव०) ९ १०.३
सलसलिय–सलसलित (ध्वन्या०) ५.६ ८
√सलह–श्लाघ्, °हंति २.११ ३
√सलहंत–श्लाघ् + शतृ २.७.११
√सलहिज्ज–श्लाघ् (कर्मणि) °इ ४.९.८; ५.८.२८
सलील–स + लीला, लीलायुक्त ४ ११ ५
सलेव–स + लेप, सदर्प ६ ११.५
सलोण–(i) स + लवण (ii) स + लावण्य १ ६.११
सल्ल–शल्य, काटा २.१८ १५,५ ११ १५
सल्लइ–सल्लकी वृक्ष ४.१६.४;४.२१.१
सल्लतुल्ल–शल्यतुल्य ३.१३.१०
सल्लिय–शल्यित, शल्ययुक्त ५.४.६;१०.१९.१२
सल्लेहण–सल्लेखना १०.२४.१०
सव–शव १.११.१४
√सवंत–स्रव् + शतृ ८.२.४
सवचूरिअ–सर्वचूरित ६.८ ११
सवण–श्रवण, कर्ण, ४.८ १६
सवण–श्रमण २.८.५; २.१८.२; °संघ १०.२४.१३
सवत्ति–सपत्नी, हि० सौत ९ २.३
सवर–शबर ५.१०.१०
सवहु–सवधू ८.१३ ८
सवातिण्णि–हि० सवातीन (३¼) ११.१०.१०
सवासण–(i) स + वासन (हि० बासन), भाजन-सहित, (ii) शव + आसन, राक्षस८.३.१२
सवाह–स + बाध १०.१३.१०
सविडंब–स + विडम्ब(ना) ९.१०.३
सविणय–सविनय १.२.१; २.१.१; ४.१.१३; १०.२५.३
सवियप्प–सविकल्प २.१.११; १०.४.१
सवियास–स + विकास ५.१४.२२
सविलक्ख–सवैलक्ष्य, लज्जित ९.२.२
सविवेय–सविवेक ८.२.७
सविसेस–सविशेष, विस्तारपूर्वक ५.४.९;६.११.१०; ८ ५ ११
सविसेसदिक्ख–सविशेष दीक्षा २.२०.१
सविहीसण–(i) सविभीषण, विभीषण सहित (ii) विभीषण. (कर्तरि), भयभीत करनेवाले जंगली पशुओं सहित ५.८.३४
सव्व–सर्व २ १९.४,३ ९.६
सव्वंग–सर्व + अङ्ग १.८.५
सव्वगुण–सर्वगुण ३ ३.१६
सव्वण– सव्रण, व्रणयुक्त ७.२.२
सव्वण्हु–सर्वज्ञ १.१८.१
सव्वत्थ–सर्व + अर्थ ८.९.९
सव्वत्थगय–(i) सर्वार्थगत. सर्वपदार्थज्ञात (ii) सर्वार्थ(सिद्धि)गत (iii) कैवल्यप्राप्त ११.१.२
सव्वत्थसिद्धि–सर्वार्थसिद्धि (स्वर्ग) ११.१२.२; ११.१५.७

सव्वल–शवल शस्त्र, हि० सव्वल ७.६.१
सव्ववाणी–सर्ववाणी, सर्वभाषाएँ १.१७.४
सव्वस–सर्वस्व १.१०.९
सव्वस्स–सर्वस्व ६.१.१
सव्वहि–स + व्याधि ११.५.८
सव्वावयव–सर्व + अवयव १.१.६
सव्वास–सर्व + अशः (कर्तरि) अग्नि ५.४.४,५ ५.३
सव्वास–सर्व + आशा ४.६ २
ससक–शशाङ्क ४.१२.४
√ससंत–श्वस् + शतृ ९.२.२
ससइ–सशाश्वस् २.१२.५
ससर–(i) स + शर, शरयुक्त (ii) स + सर, सरोवरयुक्त ५.८.३२
ससरीर–स्वशरीर १०.२.११
ससहर–शशधर ७.३.३४,८.१२.४
ससि–शशि २ ११.६;४.१३.९;११.६.५; °कंति–चन्द्रकान्ति ९.२.१
ससिलंछण–शशिलाञ्छन, मृगाङ्क राजा, १० १८.९
ससिहर–शशधरः ५.२ २१
ससी–शशि ४.७.४
ससेण–स + सैन्य ४.५ ८
√सह–राज् °ह १.१२.७; ८.१३.१३; °हि (बहुव०, आत्मने०) ८.३.१३
√सहंत–राज् + शतृ १०.२६.५
सहण–सहन, हि० सहना ४.१४.५;१० २५.८
सहयर–सहचर ५.२.१५
सहयार–सहकार, आम्र ४ १५.१३
सहयारि–सहकारी (कारण) १०,४ ३
सहल–(i) स + फल, फलयुक्त (ii) सफल ३.२.९, ६.१२.३;९.१५.२
सहल–सरल, आसान ९.१५.२
सहस–सहस्र ३.९.१७,४.२.९
सहसक्ख–सहस्राक्ष, इन्द्र १ १ ५
सहसट्ठ–सहस्र + अष्ट, अष्ट सहस्र ५ १४ ९
सहसत्ति–सहसा + इति १ १४.२
सहससिंह–सहस्रशृङ्ग-पर्वत ५.२.८
सहा–सभा २.९.१८,४ ५.३
सहाअ–साहाय्य ९.८.५;१०.२४.७
सहायर–साहाय्यकरः, सहायक ८ १६.१
सहाव–स्वभाव १.२.३;९ ६.७
सहि–सखी १०.१७.१६
सहिअ–सहित १ ३.९;८ १५.१६, °य ४.४.७
√सहिज्ज–सह् (कर्मणि) °हो (विधि०) ६.३.८
सहुं–सह, साथ १ १८.१४; ३.१०.३
सहुं–सभा २.३.९
सहुट्ठउ–स + ओष्ठ ३.११ ८
√सहेउ–सह् + तुमुन् १०.२६.६
सहोयर–सहोदर २ १३.१०; प्रश० १३
सहोयरि–सहोदरा, भगिनी ११ ३.५
साइणि–शाकिनी, डाकिनी ९.१२.९
साकंद–स + आक्रन्द(न) १०.१८.९
साडण–शाटन, नष्ट करना ३.६.२,११ ८.८
साडिय–शाटित ११.९.१०
साण–श्वान ९ ११.१३
साणंद–स + आनन्द ४.१७.८
साणुत्तर–स + अनुत्तर (देव विमान) ११.१२ ५
साम–साम (नीति) ५.३.४
साम–साम्य ४.१४.५
सामग्गि–सामग्री ४.१५ ६,१०.१३.५
सामण्ण–सामान्य ४.१४.९;८.८.११
सामंतचक्क–सामन्तचक्र, सामन्तवृन्द ५.१.२३
सामरिस–स + अमर्ष ६.६.७
सामल–श्यामल,नीलवर्ण २.१५.३, ५.८.२३;७.९.६
सामली–श्यामल (स्त्री० विशे०), हि० सावली ३.३ ९;४.१८.१२
सामाणिअ–सामानिक छंद ९.१७.१४
सामि–स्वामी ६ ८.३; °अ °क (स्वार्थे) ८.६ ८; °य–°क (स्वार्थे) २.७.८;६ ८.७
सामिसाल–स्वामिसार, स्वामिश्रेष्ठ ९.१०.११; ११ ३.६
सामी–स्वामी १.११ ११
सायंभरी–शाकम्भरी (नगरी) ९ १९.९
सायड्ढण–स + आकर्षण, खींचनेवाली ९ १२.१५
सायत्त–स्वायत्त १०.१०.१६
सायर–सागर (कालप्रमाण) २ १०.१०,८.२.१४
सायर–सागर(दत्त) (श्रेष्ठि) ८.८.१९;१०.१९.१२
सायर–सागर, समुद्र १.३.७; °चंद–°चन्द्र (राजकुमार) ३.६.४;३ १०.४,°जल १०.११.३;

°दत्त (श्रेष्ठि) ४.१४ १२; °दत्ताइ सागरदत्त आदि ८.५.४; °ससि-°शशि, सागरचन्द्र (राजकुमार) ८.२.१२
सार-(i) सार वृक्ष (ii) सार-सारभूत १.७.३
सार-सार, सारभूत ७.२ ११
सार-सारण, सरकाना, खिसकाना ८.१७.८
सारंग-सारङ्ग, मृग ४.१८.५; १० १ ८
सारभूअ-सारभूत ५.१२.७
सारिच्छ-सदृश ४ १.२
सारिड-सार + वत्, श्रेष्ठ (नारियाँ) १.१६.७
सारिनर-(दे) महावत ६.७.१३
साल-शाल (वृक्ष) ४.२१.१
साल-वाद्य ४.८४
सालत्तय-स + आलक्तक (हि० अलता) १०.१६ २
सालस-स + आलस्य ४.७.३
सालि-शालि धान्य ५.९.६,९ ४.११
सालिछेत्त-शालिक्षेत्र ४.६.३;९.४.९
साली-शाली, धान्य ४.६.१२
सावज्ज-सावद्य १.१८.५
सावण्ण-सामान्य ४.११.१५
सावय-श्वापद ८.३.६
सावय-श्रावक २.१२.१; °कुल ४.३.३; °घर ३ ९ ११; °वय-°व्रत ३.१३.११; ४.३ ६
सावलेव-सावलेप, सदर्प ५ १२.२३
सावहि-सव्याधि ३.१४.१८
सावहि-स अवधि ११.५ ८
सास-श्वास १.१४.९; ९.१४ २
सासण-शासन, धर्मानुशासन ४.४.१२
सासमरु-श्वासमरुत् १.९.५
सासय-शाश्वत् १.१.९; ३ ८.१२; °सोक्ख-°सौख्य ११.१५ २
सासयसुह-स्व + आश्रय + सुख, आत्मसुख ३.६ ५
सासवार-स + अश्ववार, सवारसहित ७.१.१९
सासिय-शासित ९.१७.२
सासुया-श्वश्र + का (स्वार्थे), हि० सास १०.१४.४
साह-शाखा १० १४.१०
√साह-साध् + णिच् (स्वार्थे) °इ ४ ६ १० १०.११ १; °हवि ४.१८.१४ °हिवि ४.१८ ४
साहण-साधन २.२.५
साहण-साधन, सैन्य ४.२० ५,७ २ २
साहणिय-साधनिक, सेनापति ५.६ १
साहयवट्टि-साधकवर्त्तिका १.६.८
साहरण-साभरण ७ १२.६
साहस-साहस, पराक्रम ५.३.१
साहसिअ-साहसीक, साहसी १०.३ ११
साहार-स + आधार ७.१२.१७
√साहार-सम् + धारय् °इ ११.२.९
साहारण-साधारण १०.४.१
साहिअ°य-साधित, कथित ४.२२.२५; ६.११.९; ७.८.३
साहिज्जअ-साहाय्य, सहायक ११.४.१
साहिमाण-साभिमान ५.१२.२१
साही-(दे) रथ्या, मार्ग ५.१०.७
साहीण-स्वाधीन ९.११.१;१०.१०.११
साहु-साधु २.३.४,८.९ १४
साहुक्कारिअ-साधुकारित ७.१३ ७
साहुजण-साधुजन १०.३.११
साहुसील-साधुशील ६.१.३
√सि-अस्ति २.१८.२; ४.१७.२
सिअ-सित, श्वेत ४.५.१५
सिव-शिव १०.५.१३
सिंग-शृङ्ग, हि० सींग ३.१ १४;४.१.६,१०.१.१०
सिंगार-शृङ्गार ४.९ ८;५.२.१४
सिंगाररस-शृङ्गाररस ४.१८.१४
सिंगारवीर-शृङ्गारवीर(रसात्मक काव्य) १.१८.२२; ३.१४.२५
सिंगारासय-(i) शृङ्गार + आश्रय (ii) शृङ्गार + आशय ८.४.२
सिंगाहय-शृङ्ग + आहत ५.८.१७
सिंगि-शृङ्गी, शृङ्गयुक्त ११.१३.५
सिंघासण-सिंहासन ५.१.७;१०.१३ ४
सिंचिय-सिञ्चित ३.७.७
सिंदि-सिंदी, खजूरी, खजूरका वृक्ष ५.८.१२
सिंदुवार-वृक्ष ४.२१.३
सिंधु-सिन्धु (नदी) °तड-°तट ९. १९ ११; °तीर ९.१७.१७
सिंधुर-सिन्धुर, हस्ति ८.७.१७
सिंधुवरिसी-सिन्धुवर्षी (नगरी) १.५.१

सिंसमी–शीशम (वृक्ष) ५.८ १०
सिंहल–सिंहल (देश) ९.१९.१
सिंहवार–सिंहद्वार ५.१० १९
सिंहासण–सिंहासन १.१२.७;१.१४.२
सिक्कार–सीत्कार १.८.६
√सिक्कारंती–सीत्क + शतृ °ी(स्त्रियाम्)८.१६.१३
सिंक्किरी–(दे) पताका १.१५ ७
सिक्ख–शिक्षा ८.८.१८
सिक्खापमाण–शिक्षाप्रमाण २.१९.६
सिक्खिअ °य–शिक्षित ४.१७ २१; ५.२.१५ °या–शिक्षिता (स्त्री०) ४.१२ १०
सिग्घ–शीघ्र ३.५.११;१०.१०.४
सिग्घजाण–शीघ्रयान, विमान ६.१०.११
सिग्घ–शीघ्र २.१५ १२
सिज्ज–शैय्या १०.१६ १०
√सिज्झ–सिध् °इ १०.२ ६; °ए(आत्मने०)३.९.२
सिट्ठ–शिष्ट, कथित ९.१२ ६; °अ ९.४ १३; °उ १०.२.५ °जण–शिष्टजन ९ १५.४
सिट्ठि–श्रेष्ठि ३.११.१
सिढिल–शिथिल ९.१८.५
सिण्ण–सैन्य ७.३.३
सिणेह–स्नेह ५.९.४
सित्त–सिक्त ४ ११.४;४ १९.२
सिद्ध–(I) सिद्ध (II) शिक्षित ११.१ २;११.१२.११
सिद्ध–सिद्ध, तान्त्रिक, अघोर (पंथी) ६ ७.७
सिद्ध–प्राप्त ९.४.१२; °उ १०.३.६
सिद्धंत–सिद्धान्त १०.४.७
सिद्धविणास–सिद्धविनाश, उपलब्धनाश ९.१०.२२
सिद्धालय–सिद्धालय, मोक्षस्थान १०.२४.९
सिद्धिणअ–सिद्धिनय, दैवयोग ९.८.१५
सिद्धिवहु–सिद्धिवधू, मोक्षवधू ४.४.११;८.४.१०
सिप्प–शिल्प २.९.८
सिप्पिणी–(I)शिल्पिनी (II) शुक्ति,हि० सीपी ७.४ २
सिबिर–शिविर, स्कन्धावार, सैन्य ५.१०.३,६.१.१३ ११.७ ५
सिय–लक्ष्मी, श्री, शोभा ४.१६ ८,९.३ १५
सिय–सित, श्वेत ४ ११.१४; °गुणधवलिमा१.१०.५; °छुह °सुधा, चूना, २१६१०; °थण गोरस्तन ४.७.४; °पचमी–शुक्लपञ्चमी ३.१२ १८, °वड-श्वेतपट १०.१८.९; °सत्तमि–शुक्लसप्तमी १०.२३.१०;°हारउ-श्वेतहार धारिणी (स्त्री० विशे०) १ ६.८
सियाल–शृगाल, हि० सियाल, सियार ९.११.२
सिर–शिरा १०.१३.८;११.६ २
सिर–शिर २ १६.८, ५.१३ १०; १०.१९.१७ °कमल १.१३.१; २.१०.१, °भार ५.२.१९ °हिय-छिरो धृत १०.१९.७
सिरस–सिरीष (पुष्प) ८.१०.८
सिरसिय–सरसिज, कमल ८.१२.४
सिराबंध–शिराबन्ध ४.२२.१७
सिरि–श्री २.१४.६; ४.१६.८; °खंड-श्रीखण्ड ७.१२.२;८.१५.८; °तक्खड–श्रीतक्खड(श्रेष्ठि) १.६ १; °लाडवग्ग श्रीलाटवर्ग (गोत्र) १ ४.२
सिरिस–सिरीष पुष्पवृक्ष ५.८.१०
सिरिसंतुआ–श्रीसन्तुवा (वीरकविकी माता) प्रश० १२
सिरिसेण–श्रीसेना (श्रेष्ठिपत्नी) ३.१४ ८
सिरिमज्झदेस–श्रीमध्यदेश ९.१९.१३
सिरी–श्री ४.५.३; °वर ८.२.१३; °पव्वय–श्रीपर्वत ९.१९.२
सिल–शिला १.९.६;८.६.१४
सिलायड–शिलातट ६.९.१०,९ ९.१०
सिव–शिव, शृगाल ७.१.१२
सिव–शिव (धूर्तनाम) ९.१०.२३, १०.१८.१
सिवएवि–शिवदेवी (नेमि तीर्थंकरकी माता)९.१४.७
सिवकुमार–शिवकुमार (राजपुत्र) ८.१३.४, °कुमारि ३.५.११; °कुमाराहिहाण शिवकुमार + अभिधान (नाम) ३.४.४,
सिवधाम–शिवधाम, मोक्ष ११.१.१४; °पह–शिवपथ ९.१० १४; °वहु, °वधू–मोक्षलक्ष्मी ११.१४.११, °सुह–शिवसुख २.६.११; ८.८.१८
सिवाल–शृगाल १०.१२.४
सिविण–स्वप्न १ २.२; °उ ४.५.१७; °त्थ–स्वप्नार्थ ४.६.१०
सिसिर–शिशिर (ऋतु) ४.१८ ९
सिसु–शिशु २ १०.४,५.९.१३; °भाव–शैशव३.४.६
सिहंडि–(I) शिखण्डी-मयूर; (II) शिखण्डी अर्जुन-का सहयोद्धा ५.८ ३१
सिहर–शिखर ४.७.६; सिहरा (बहुव०) १०.३.९

सिहरि–शिखरिन्, पर्वत ५.१३.३२;७.८.१२; १०.१.१०
सिहि–शिखिन्, अग्नि २.१८.४
सिहि–शिखिन्, मयूर ९.९.६
सिहिण–स्तन ४.१३.१२
सिहिसाहुल–शिखि + साहुल–(दे) वस्त्र शिखिवस्त्र, मयूरध्वज ५.७.७
सिही–शिखिन्, अग्नि ५.५.११
सीम–सीमा (क्षेत्र) ५.३.१०
सीमंतिणि–सीमन्तिनी ३.९.१७;६;१४.१४
सीमंतिणी–सीमन्तिनी १.९.१०
सीय–शीत, शीतल १०.७.६
सीय–सीता ३.१२.१;५.१३.६
सीयर–शीकर ८.१५.८
सीयल–शीतल १,७.२;३.१.१६; ७.१५.८; °घण–अतिशीतल १.१३.४
सील–शील ३.६.२
°सील–शील (ताच्छील्ये) २.१२.७
सीवाव–षिवु + णिच्, सीवाविअ–सिलवाया ४ ३.२
सीस–शीर्ष २.१२.१३;७.१३.१७
सीस–शिष्य ७ १३.१६;११.१.२
√सीस–शास् °इ ३.६.१३;९.८.१
सीसक्क–(दे) शिरस्त्राण ६.१३.९
सीसत्तभाव–शिष्यत्वभाव ४ १७.२१
सीह–सिंह ५.१४.२; ११.२ ६; °दार–सिंहद्वार ४.५.१०
सीहवार–सिंहद्वार ५.१०.१८;५ ११.१
सीहल्ल–वीर कविका एक अनुज प्रश० १४
सीहसिलिंब–सिंहशिशु ७.६.३०
√सु–श्रु, सुम्मई (बहुव०) ४ १५.२;७.२.३
सुअ–सुत ३.५.९;३.१४.८;७ ५.८
सुअ–श्रुत ६.१.५
सुअकेवलि–श्रुतकेवली ४.३.१३
सुइ–श्रुति–श्रवण १.१.११
सुइण–स्वप्न १० १३ ३;१० १३.१२
सुइणंतर–स्वप्नान्तर १०.७.८
सुइणाण–श्रुतिज्ञान, शास्त्रज्ञान १० १८ १
सुइणालोय–स्वप्न + आलोकन, स्वप्नदर्शन ४.६.९
सुइर–सुचिर ९.१२.१८
सुइसत्थ–श्रुति + शास्त्र ९.१६.७
सुउ–सुत ४.२ ५
सुंड–शुण्ड, हि० सूंड ४.२०.११;६.१०.३
सुंदर–सुन्दर, शुद्ध १.२ ७;२.११ ४
सुंदरि–सुन्दरी २.१४.६;१०.१४.११
सुकइत्त–सुकवित्व १.३.१
सुकम्म–सुकर्म, पुण्य २.५.४,४.५.५
सुकन्ति–सुकान्ति, सुकान्ते (स्त्री० सप्तमी) ४ १८.१२
सुकर–सुकर, सहल, आसान २,७ २;२.७.३
सुकुमार–सुकुमार १०.१६.१
सुकुलक्कम–सु + कुलक्रम ११.१३.६
सुक्क–शुक्र, रज-वीर्य ९.१३.१६
सुक्क–शुष्क १०.२.६
√सुक्कंत–शुष् + शतृ ५.८.२६
सुक्कंग–शुष्क + अङ्ग १०.१३.८
सुक्कज्झाण–शुक्लध्यान १० २४.१
सुक्कवंश–शुष्क + वंश (बांस) ४.१५.२९
सुक्ख–शुष्क (चर्म) १० १२.६
सुक्ख–सुख ८ २.१४
सुक्खय–शुष्क ५.८.१६
सुक्खारह–सुखार्ह ११.१२ ७
सुखट्टउ–(i) सु + खट्वा, खाटोंसे युक्त (ii) सुखट्टा, खट्टे पदार्थोंसे युक्त ८ १३.१२
सुघडिअ–सुघटित ८.९.६
सुचित्तउ–सु + चित्त + वत्, शुद्धचित्तवाला ३.१०.१२
सुट्ठु–सुष्ठु ३.११.५
√सुण–श्रु °मि ५ १२.२१; °हि (विधि०) १०.१२.९; सुणी (विधि०) १ ५.९; सुणु (विधि०) २.१८ ९; सुणिवि ६ २.८ ५;८.६.११; सुणेवि १०.८ १४ सुणेप्पिणु ५.५.१३;
√सुणंत–श्रु + शतृ २.१३.४;३.६ १२
सुणह–सुनख, श्वान ९ ११.५
सुणिय–श्रुतम् ४.१२.११,९.१६.३
सुण्ण–शून्य, रिक्त ४.१० ९; ४.११.२; °अ–शून्य ८.१६.१३; णिही–°निधि ९.८.२३; °हत्थ–°हस्त ६.१०.९
सुण्णागार–शून्य + आगार, शून्य घर आदि १० २२.६
सुण्णार–सुवर्णकार, हि० सुनार १०.१६ १

सुललिय–सुललित ३.१.१६;५.१२.१५
√सुव–स्वप् °इ ६.८.३
सुवण्ण–सुवर्ण ४.५.१६,९ ८.७
सुवित्थर–सुविस्तार ३.२ १
सुविसुद्ध–सुविशुद्ध ३.५.६
सुविहोय–सुवैभवयुक्त ३.६.११
सुव्वय–सुव्रता (जैनसाध्वी) ३.१३.१४
√सुस–श्वस् °इ ४.११.४
सुसंद–सुसान्द्र ९.९.१०
सुसक्क–सुशक्त, सशक्त ५.४.२१
सुसत्त–सुसत्व, सुहृदय, शुद्धात्मा ८.५.१२,११.१५.७
सुसम–सुसम, सरल, मुग्ध १०.३.१०
सुसाउ–सुस्वादु ३.३.८
सुसिअ–शुष्क १० १५.६
सुसिर–सुषिर, छिद्र ११.८.३
सुसुत्ति–सुषुप्ति ९.१७ ७
सुह–शुभ, सुन्दर ४.७.७; ८.५.१४ °कम्म–°कर्म २.११.५;८.५ ११; °गंध–°गन्ध ४ ६ ३; °चरण २.७.८, °चरण-चारित्र १.४.१; °दंसण (i) °दर्शन-सुन्दराकृति (ii)शुभदर्शन-सम्यक्श्रद्धा २.६ ६, °भाव-शुभभाव १० ४.१४; °भावण–शुभ भावना (युक्त) १.१६ १०; °मण–शुभमन ४.३.७; °लक्खण–शुभलक्षण ८ ४.१;१०.८ ५
सुह–सुख ८.४.१२,८.६.९; °निलअ–°निलय २.१८.२, °निहाण–°निधान ६.८.५; °तित्त–°तृप्त २ ३.१०, °दुह–सुखदुःख २.२०.४, °धाम–°धाम ५.३.१०, °पुण्ण–°पूर्ण ५.१.२९; °भायण–°भाजन ३.१३.९, °मिच्चु–°मृत्यु १०.१४.८, °यर–°कर १ २.११; °रंजिय–रञ्जित १०.८.१५; °सायर–°सागर १०.२.५; °साहिय–°साधित ६.४.७, °सुत्त–°सुप्त ९.१६.७
सुहकर–शुभङ्कर, कल्याणकारी ११.२.४
सुहकरण–शुभकरण २ ७ ७
सुहड–सुभट ५ ३.३,६.५ १०
सुहडग–सुभट + अङ्ग ७.६.५
सुहडत्त–सुभटत्व °ण (स्वार्थिक),हि० सुभटपना ७ ७.५
सुहडसार–सुभट + सार, श्रेष्ठसुभट ५.१२ ९
सुहणक्खउ–शुभ + नख + वत्, सुन्दर नखोवाली ३.१०.१४
सुहणक्खत्तजोअ–शुभनक्षत्रयोग ३.४.१
सुहसील–शुभशील, शुद्धाचरण प्रश० १२
सुहम्म–सौधर्म या सुधर्म मुनि १०.१९ १७; १०.२१.६; °सामि–सुधर्मस्वामी ७ १३.१६
सुहय–सुभग, सुन्दर ४.१९.२२;१० १६.८
सुहयत्त–सुभगत्व °ण (स्वार्थिक) १० १७.१७
सुहा–सुधा, अमृत १.१८.८,२.१२ १
सुहापण्डु–सुधापाण्डु, चूनेसे पुता हुआ ४.५ १४
सुहाभाविय–सुधा + भावित (प्रभावित) २.१२ १
सुहायर–सुखाकर, सुखकर ८.१३.६;११ १२ ५
√सुहाव–शोभ् °इ (आत्मने०) ११.१२.१०
सुहावण–सुखायन, हि० सुहावना १.१६.४;४ ८ १६; ४.१५.७
सुहावणि–सुखायनी (स्त्री० विशे०) १.१०.२
सुहासायर–सुधासागर १.१८.६
सुहासुह–शुभ + अशुभ ३.७.१४;४.४.८
सुहि–सुहृत् ५.१.३०;८.१०.१४
सुहिय–सुखित, हि० सुखी २.६.१२
सुहिल्ल–सुखद °इल्ल (स्वार्थ) ११.६.१०
सुही–सुहृत् १.५.४
सुहुम–सूक्ष्म ८.१२.५
सूइअ–सूचित १०.४.३
√सूडुज्ज–सूच् (कर्मणि) °इ ५.१०.१८
सूडिअ °य–शाटित, भञ्जित ४.२१.६,५.३.१०; ८.१०.३
सूयाहर–सूति + गृह, प्रसूतिगृह ४.८ ३
सूर–शूर ६.२.९,६.७.१
सूर–सूर्य ८.१२.१४, °कंति–°कान्त (मणि) ३.३.७, °कर–°किरण ४.१५.५; °गो–°किरण २ ३ ३ °चक्क–°चक्री, सूर्य चक्रवर्ती, १०.२५ १
सूरसेण–सूरसेन (वणिक्) ३.१०.१२,३ १३.५
सूलिणि–शूलिनी, शूलधारिणी, चण्डिका देवी २.१६.१४
सेउ–(i) सेतु-पुल १.१ २, (ii) सेतु-सेतुबंध काव्य १ ३ ४
सेज्ज–शैय्या ६ १४.१४
सेट्ठि–श्रेष्ठि ३.१०.१२;४ ६ ७

[ह]

हत्थ–हस्त २.९.१७;७.१.१४,१०.१९.८
हत्थंकुश–हस्त + अङ्कुश ४.१५.१५
हत्थतल–हस्ततल ५.१४.१; °पमाण–हस्तप्रमाण ११.१२.८
हत्थि–हस्ति ४.१०.४;१०.१२.२; °णाउर–हस्तिनापुर(नगर)३.१४.६; °णी–हस्तिनी ४.२१.११, °मणि-गजमुक्ता ६.३.१; °रोह–महावत ५.७.२४; °हडा–°घटा, हस्तिसेना ६.६.५
हथियार–(दे) हथियार, शस्त्र ४.२१.१३
हम्म–हर्म्य ४.६.१२
हम्मीर–हम्मीर (देश) ९.१९.१०
हय–(तत्सम) हय, अश्व १.१६.१; °वयण–हयवदन, अश्वमुख (जाति) ९.१९ १२, °हिंसिय–हयहिंसित, घोडेका हीसना ६.५ ६
हय–हत १.११.१७,४.२०.९; °उ(स्वार्थे)८.१०.५, °दण्ड-दण्डाहत, ५ ८.१५; °विमाण–हतविमान ६.११.६
हयवच्छ–(i) हतवक्ष(स्थल) (ii) हतवृक्ष ९ १३ १२
हयास–हताश, दुर्जन १ २.५;१०.१०.३
√हर–हृ °इ ५.५.४; °मि ९ १४.४; हरेप्पिणु ४.२.६
हराविय–हारापित, खोया हुआ १०.११.११
हरि–विष्णु, नारायण ३.८ ७, ७ ४.१३
हरि–हरि, अश्व १० ११.५
हरि–हरि, सिंह ८ १० ४
हरि–(i) कृष्ण (ii) सिंह ५.८.३१
√हरिज्ज–हृ (कर्मणि) °इ १० २२ ५
हरिणंकरेह–हरिणाङ्कलेखा, चन्द्रलेखा ४ १८.११
हरिणंकसिया–हरिणाङ्कश्री, चन्द्रशोभा, चन्द्रकान्ति ३.३.१५
हरिणणयणी–हरिणनयनी, मृगलोचनी ३.४.१०
हरिणी–हरिणी १.१२.२, ३ १.१७
हरिय–हृत १.११ १५; ३.१२.१; ३.१४.१३
हरियंदण–हरितचन्दन ४.११.३
हरिवयण–हरिवदन, सिंहमुख ९.१९.१२
हरिविट्ठर–हरिविष्टर, सिंहासन १.१७.१
हरिस–हर्ष २.१६ ५; ८.३.१६
हरिसंगय–हरिसङ्गत, अश्वसहित ३ २.१०
हरिसरिस–हरिसदृश, सिंहसदृश ९.११ १३
हरिसिय–हर्षित ४.३.९; ४.७ १; ८.२.११
हलहर–हलधर, बलदेव, बलराम २.११.६; ३.८.७; ९.४ ८
हलिअ °य–हालिक, ३.१.१८; ९.३.४
हलुअत्तण–लघुत्व ४.१९.१०
हला–सखी ९.३ १; १०.१५.६
√हल्लि–(दे) कम्प्, (हिलना) + इर (ताच्छील्ये) १.८.८; २ १२.९; ३.१.१५; ४.१९.११; ५.१२.३
√हव–भू °इ २.१८.८; ९.६.४; १०.२१.११,°वंति ११ १२.७; °विण–भू + त्वा ९.१.१९; हवेसइ (भवि०, तृ० पु०, एकव०) ४.१ ८; ९.१०.१७; हवेसहिं(भवि०,तृ० पु०, बहुव०) ९.३.१२
हवी–हवि, अग्नि ३.३.७
√हस–हस् °इ १.८ ४
√हसंत–हस् + शतृ ९.२.२; १०.३.८
हसिअ°–हसित १.७.१; ४.१६.९; १०.१०.१०
हा–हाय, शोक २.१५.४, २.१६.१
हारिय–हारित ४.२.९
हालिय–हालिक, हाली ९.३.२, १०.१८.१
हास–हास्य ८.१६.१५
हासिय–हासित ४.१४.११
√हासिर–हस् + इर (ताच्छील्ये) ५.५ ६
हिअ–हित १०.२.११
हिंगुणी–वृक्ष ५.८.९
√हिंड–(दे) भ्रम् °मि ९.१५ ३
√हिंडंत–(दे) भ्रम् + शतृ ६ ७ ७
हिंडिर–(दे) भ्रमण + इर (ताच्छील्ये) ६ १०.२
√हिंदोलअ–हिन्दोलक (राग), हि० हिंडोला राग ८.१६.१२
हिट्ठ–हृष्ट १.१५.१०
हिडहिडिअ ९.३.९
°हिण्हाणु–अभिज्ञान, चिह्न ३.११.११
हिमवंत–हिमवन्त, हिमवान् पर्वत ११.११ ४
हिमसिहर–हिमशिखर १ १.४
हिमालय–पर्वत ११.११.८
हिय–हृदय ३.१२.१४;४.१५.५; °अ २.६.१; ६.६.११, ७.१.३; °इच्छिय–हृदय + इच्छित २ २०.१२, °उल्ल-हृदय + उल्लउ (स्वार्थे) ३.७.६, °घण–हृदयघन ९.१३.१

हियत्थ–हित + अर्थ　२.१५.१३;५.१३.१६
हियअ–हृदय ४.१०.९; ९.१२.१४; °च्छिर–°इच्छित ८.११.१; °दुक्ख–°दु.ख ३.१३४, °सल्ल °शल्य ७.६.१५; °सूल–°शूल–५.११.१९
हियवड–हृदय + क (स्वार्थे) १.११.६,९ १५.२; १०.१५.७
°हिरोविय–अधिरोपित　७.८ २
हिलिहिलिय–(ध्वन्या०) हिनहिनाना　५.११.१२
ही–धिक् दुःख, शोक, आश्चर्य　२.११.११
हीर–हीरा　१.३ १०
हीरय–हीरक, हीरा　४.१४.२,११.१३.२
हु–खलु　१.५.२१;२.६.१२
हुअ–भूत　७.११.१२,९.९.१४,९.११.४
√हुंत–भू + शतृ　१.११.१२;३.७.१२;४.११.६
हुय–भूतः ३.७.३; ४.७.४; ४.१०.४; हुया(बहुव०) ९.७.४
हुयउ–भूतः　२.१५.१०
√हुंकरंत–हुंड्कृत + शतृ　५.७.२२
हुंकरिय–हुङ्कारित　६.७,२
हुंकारिय–हुङ्कारित　५.८.१७
√हुंवडयमाण–हुङ्कृ + शानच्　१०.२६.४
हुडुक्का–वाद्य　४ २.७;५.६.१०
हुणिय–धुनित　१.१.५
हुयवह–हुतवह, अग्नि　२.५.१९;७.६.३
हुयास–हुताश(न), अग्नि　८.१४.८,१०.२६.८
√हुल्लिज्जंत–हूल् (कर्मणि) + शतृ　६.७.६
हुकण–हूकना　४.२०.४
हुहुय–शङ्ख ध्वनि　१.१४ ९
हेइ–हेति शस्त्र　७ १.१९
हेउ–हेतु　१०.२०.१२;१०.२१.९
हेंवाइअ–(अप०) गर्वित　४.२.१३;७.७ ५
हेट्ठामुह–अधोमुख　२ १८.८
हेट्ठिम–अधस्तन, नीचेका　११.१० ३
हेमेयड–हेममय, सुवर्णघटित　८.१६.३
हेरिय–हेरिक, गुप्तचर　६ १.१७,७.३.२
हेलअ–हेला, वेग　१.१०.७
हेलि–(दे) अद्भुत (?)　९.२.४
√हो–भू °इ ३.१२.८; °सि १०.१७.१०; °मि ४ १४.३; ५.४.९; °उ (विधि०) ४.४.१३; °हु (विधि०) ७ ३.१२; °इवि ९.७.१५; °एप्पिणु ३.१०.७; °वि ५.२.८; °सइ (भवि० तृ० पु० एकव०) २.१५ १०; °संति (भवि० तृ० पु० बहुव०) ९.३.१४ °एसहिं (भवि० तृ० पु० बहुव०) ४.३.१३
√होंत–भू + शतृ,　१.६.३
होंतउ–भू + शतृ (मूलार्थे)　२ १६.११
√होमिज्ज–हु (कर्मणि) °इ　२.४.१०

खाद्य-पदार्थ

कूर–विशिष्ट चावल　८.१३.१०
आरणाल–कांजी, साबूदाना　३.९.१०
गोधूम–गोधूम, गेहूँ　५.८ २९
तंबूल–ताम्बूल　८ ८.४
तंबोलवत्त–ताम्बूलपत्र　९.१२.३
तक्क–तक्र, छाछ　८.१३.१३
तिलजव–तिल + यव　२.६.१
तेल्ल–तैल　५ ७.२३
दहि–दधि　७.१२.५
दुद्ध–दुग्ध　४.१८,६.९.१०.२१
नाली–कमलनाल　९ २.१०
खट्टल–खट्टे अचार, चटनी आदि　८ १३.१२
नेह–स्नेह, घृत　८.१३.१०
लवण–लवण　८.१३.११
मुग्ग–मूंग　८.१३.११

ध्वन्यात्मक-शब्द

वाद्य-यन्त्र

वृक्ष-वनस्पति

पाडल–पाटल, गुलाब ४.५.१३
पलास–पलाश ५.८.३४
फोफल–पूगफल, सुपारी १.८८
मल्लायई–मल्लातकी वृक्ष ५.८.८
मंदमार– ४.२१.३
मंदार– ४.१६.२
मचकुंद–मुचकुन्द ४.१६.२
मल्लि– ४.२१ २;५.८.८
महु–मधु–मधूक, महुआ (वृक्ष) १०.७.२
मार– २ ८.१२
मालइ–मालती लता ३.१२.१०,४ १३.११
माहुलिंग–मातुलिंग ४.२१.३
मिरियविल्लि–मिर्च वेल १.८.६
मुणाल–मृणाल ४.१४ १७
रत्तंदण–रक्तचन्दन ४.११.४
रत्तासोय–रक्ताशोक ८.४.६
रावण–विशेष औषधि वृक्ष ५ ८ ७
रुंद– ४.२१.३
रुद्दक्ख–रुद्राक्ष ४.१६.३
लवलि–लवली, लवंग (वृक्ष) ४.१६.३
वधुक्क–बन्धूक पुष्प १०.१८ १४
वधूय– „ १ ३.१३
वणफल–वनफल-या कपासफल, कपासका फूल १.९.४
वल्लरी–लता ८.६.१७
विडंग– ३.२.६
वेइल्ल–विचकिल्ल, पुष्पलता ३.१२.१२,४.१६.४
वोरीहल–वेरीफल, वेर ८.१४.१३
सज्ज–सर्ज ५.८.१०
सण–धान्य विशेषके पौधे १.९.५
समी–शमी छोकार ५.१८.१०
सरल ३.१.१७,५.१०.२०
सरसव–सर्षप, सरसो ७ २.९
सल्लई–शल्यकी ४.१६.४,४.२१.१
सार १.८.३
साल–शाल ४.२१.१
सालि–शालि (धान्य) ५.९ ६,९.४.११, °खेत्त शालिक्षेत्र ४.६.३,९.४ ९
सिसमी–शीशम ५.८.१०
सिरसिय–सरसिज-कमल ८.११.४
सिरिस–शिरीष ५.८.१०
सेवत्ति ५.८.१०
सोहालिया–शेफालिका ५.८.१०
हिंगुणी ५.८.९

व्यक्तिगत-नाम

अवादेवय–अंबादेवी १.५.६
अक्ख–अक्ष, रावणपुत्र ५.८ ३४
अज्जवसू–आर्यवसू (ब्राह्मण) २.५.२
अज्जुण–अर्जुन (पांडव) ५.८.३१
अमरेंद–अमरेन्द्र, देवेन्द्र ४.१.५
अरुहयास–अर्हद्दास(श्रेष्ठी) ४.१.७,४.३.१०,८.५.२, ९.१४.२;१०.२१.३
अरुणणाह–अरहनाथ (तीर्थंकर) ३.१३.७
अहमिंद–अहमिन्द्र १०.२४.१२
आइच्चदंसणा–आदित्यदर्शना (विद्युन्माली देवकी एक देवी) ३.१४.१
अलोइणिविज्ज–अवलोकिनी विद्या ५ २.१०
आसत्थाम–अश्वत्थामा (द्रोणाचार्यपुत्र) ५.८.३२
आहंडल–आखण्डल-इन्द्र २.४.७
उवहिचंद–उदधिचन्द्र, सागरचन्द्र ३ ५ १३
कंचाइणि–कात्यायनी–चामुण्डादेवी ५.८.३५, कंचायणी १०.२५.२
कणयसिरि–कनकश्री-श्रेष्ठिकन्या (जंबूस्वामीकी एक पत्नी) ४.१२.४,९.६.१
कामधेणु–कामधेनु ४.१८.६
कामलय–कामलता (वेश्या) ३.१४.२१;९.१२.१४
केसवि–केशव, कृष्ण ४.४.४
गयणगइ–गगनगति विद्याधर ५.११.९
गयणगमण–गगनागमन, गगनगति विद्याधर ६.१०.५
गिरितयण–गिरितनया, पार्वती ५.९.१४
गुरु–द्रोणाचार्य ५.८.३२

करिवयण–करिवदन, हस्तिमुख, एक हिमालय पर्वतीय जाति, ९ १९.३

कलिंग–कलिंग नगर, उडीसाकी राजधानी, भुवनेश्वर ९ १९ १४

कवेरीतड–कावेरी तट, मांधाता (ओंकारनाथ) के निकट नर्वदाकी उत्तरी शाखा, ९.१९.५

कसमीर–काश्मीर ९.१९.१०

कामरूव–कामरूप, आसाम ९ १९.१५

किकाण–केकय देश, पंजाबमें सतलज और व्यासके बीचका प्रदेश। ९.१९.११

किंक्किध–किष्किंधा धारवाडमें तुंगभद्रा नदीके दक्षिणी तटपर अनगंडीके पास छोटी बस्ती, इसे अनगडी भी कहते हैं, ९.१९.६

कीर–कीर नगर, पंजाबमें बैजनाथ नामक तीर्थ, कोट कांगडासे तीस मील पूर्व ९.१९ ६

कुंतल–कुंतल देश, सीमाएँ उत्तरमे नर्वदा, दक्षिणमें तुंगभद्रा, पश्चिममें अरब सागर, पूर्वमें गोदावरी और पूर्वीघाट ९.१९ ३

कुरु–कुरुदेश, हस्तिनापुर, ९.१९.१३

कुरुविसय–कुरुविषय, वही, १०.१८.६

कुरुल–कुरल पर्वत ५.१०.११

केरल–केरलराज्य ९.१९.१

केरलनयरि–केरलनगरी ५ ५ १७

केरलपुरि–केरलपुरी वही ५.२.६

कोंकण–कोंकण देश, पश्चिमीघाट और अरबसागरके बीचका संपूर्ण प्रदेश, प्राचीन परशुराम क्षेत्र ९.१९.५

कोंग–कुर्ग, कोयम्बटूर, सलेम और तिन्नेवल्ली तथा ट्रावनकोर जिलोंका कुछ भाग ९ १९ १४

कोसल–(दक्षिण) कोसल, गोंडवाना, आधुनिक महाकोसल ९ १९.१

खस–खसदेश, काश्मीरके दक्षिणका प्रदेश, दक्षिणपूर्वमें कास्तवार नदी, पश्चिममें वितस्ता (व्यास) ९.१९.१०

खीरमहण्णव–क्षीर महार्णव, क्षीर समुद्र, क्षीरोद (पौराणिक) ६.१ १३ (द्रष्टव्य वृ० स० १४.६)

खीरोवहि–क्षीरोदधि–वही ४.१०.६

गउड–गौडदेश ९.१९.१३ उत्तर कोसल, राजधानी श्रावस्ती, आधुनिक गोंडा (उ० प्र०) प्राचीन कालमे भारतका एक विशाल भूभाग गौड़ कहलाता था। पंजाबको उत्तर गौड, गौडवाना (महाकोसल) को पश्चिम गौड़, कावेरीके तटपर एक दक्षिण गौड, एवं संपूर्ण बंगालको पूर्व गौड कहा जाता था। अंगदेशके दक्षिणमें दक्षिण बंगाल, जिसकी राजधानी ताम्रलिप्ति रही, उसे भी गौड देश कहते थे। उ० प्र० में गोंडा स्थानका भी नाम (गोनर्द्द) गौड़ था और उज्जयिनी तथा विदिशाके बीच एक कस्बा भी गौड नामसे जाना जाता था। (विशेष द्रष्टव्य: नं० ला० डे प्रा० म० भा० भौ० कोश)

गंग–गंगानदी ९ १९.१५

गंगवाडी–गंगवाडी नगरी (आंध्र) गंगराजाओंकी राजधानी ९.१९.२

गंगोवहि–गंगोदधि, गंगासागर, सागर संगम, ९ १९.१६

गुलखेड–गुलखेड १.५ १; मालवामें प्राचीन सिंधुवर्षी नगरीके पास वीर कविका जन्म गाँव।

गुज्जरत्ता–गूर्जरत्रा प्रदेश, गुजरात खानदेश और मालवाका एक बडा भाग गूर्जरत्रा कहलाता था। धीरे-धीरे वही गुजरात बन गया। ९.१९.९

गोल्ल (?) संभवत: गौडदेश ९.१९.१४, अंगदेशका दक्षिण भाग, अथवा दक्षिण बंगालकी राजधानी ताम्रलिप्ति (तमलुक)।

गोवयण–गोवदन, हिमालयीन गोमुखजाति ९ १९.१२; देखिये: वृ० सं० १०.२३; ६८.१०३

चंपानयरि–चंपानगरी, दक्षिण विहारमें भागलपुरसे चार मील पश्चिम ३.१०.११

चंपापुर–चंपापुर (वही, १० २४ ११)

चित्तउड–चित्तौड ९ १९.२

चीण–कोचीन पत्तन (केरल राज्य) ९ १९ ९

चेउल्ल–चेउल्ल (?)

चोड–चोल, द्रविड देश ९ १९.२, उत्तरमें पेन्नार या दक्षिण पिनाकिनी नदी, पश्चिममें तंजौरको लेकर कुर्ग अर्थात् वेल्लोरसे पुदोकोट्टई तक

छोहारदीव–छोहारद्वीप (?) ९.१६ ६

जउण–यमुना नदी ९ ९.१५

जंबूदीव–जम्बूद्वीप, एक विशाल जैन पौराणिक क्षेत्र, हिंदू पुराणोंके अनुसार भारतवर्ष ३.२.३; ६ १.१३

मिलाकर बंगालके पाँच विभाग थे। पुण्ड्र-उत्तरी बगाल, समुद्रतट पूर्व बगाल, कर्ण सुवर्ण-पश्चिम बंगाल, ताम्रलिप्त-दक्षिण बंगाल और कामरूप-आसाम। कामरूपको छोडकर पश्चात् कालमें बगालके निम्न चार विभाग हुए—वरेन्द्र और बंग गंगाके उत्तरमे; तथा राढ और बागडी गंगाके दक्षिणमें; वरेन्द्र और वंग ब्रह्मपुत्र नदीसे विभाजित थे, तथा राढ और बागडीके बीच गंगाकी एक शाखा जालिंगी नदी बहती थी। वरेन्द्र अर्थात् पुण्ड्र, महानंदा और करोतोया नदियोके बीच। बंग-पूर्व बंगाल। राढ-भागीरथी (गंगा) के पश्चिममें कर्णसुवर्ण। और बागडी अर्थात् दक्षिण बंगाल ९.१९ १४;

बंभोत्तर—ब्रह्मोत्तर स्वर्ग ३ १०.१;८.२.१३

बव्वर-बर्बरजातिका देश, बर्बर देश, बार्बरिका द्वीप जो सिंधु नदीके डेल्टाके एक ओर फैला था; और सिंधु नदीके मुहानेपर बर्बर नामक एक बड़ा बंदरगाह तथा व्यापारी नगर भी था।

बालुप्पह-बालु (का) प्रभा,(एक नरक भूमि)१०.१० ६

बालुयासायर-बालुका सागर, संभवतः बरवसागर ९.१९ १२

भद्दरंग-भद्ररंग ९.१९.३, प्राचीन भद्रावती (भद्रा) नदीके आसपासका प्रदेश, चाँदा (जिला उ०प्र०) से अठारह मील उत्तर-पश्चिममें भंडक नामक गाँव ९ १९.३

भरहखेत्त-भरतक्षेत्र, भारत ४.३.१५,११.११.९

भरुयच्छ-भृगुकच्छ, भडौच ९.१९.५

भारह-भारत देश १.६.१७;

भारत-महाभारतकी युद्धभूमि ८.३.८, °रणभूमि-वही ८ ८.३१

भिल्लमाल-आधुनिक भीनमाल, प्राचीन श्रीमाल, आबू पर्वतसे पचास मील पश्चिम ९.१९.७

भोयभूमि-भोगभूमि, देवकुरु उत्तरकुरुमें पौराणिक भोगभूमिया ११.११.५

मंदर-मंदारगिरि (जिला भागलपुर, द० बिहार)

मगह-मगध देश २.३.१०;५.८.३८ °विसअ-मगध विषय वही, २.४.७ सीमाएँ—गंगाके उत्तरमें बनारससे लगाकर मुंगेर तक, दक्षिणमें सिंहभूम जिला संपूर्ण; पश्चिममें सोननदी, और पूर्वमें बगाल

मणुसोत्तरगिरि—मानुषोत्तर पर्वत (पौराणिक) ११.११.११

मज्झदेश-प्राचीन मध्यदेश ९ १९.१४; सीमाएँ—पश्चिममें कुरुक्षेत्रमें सरस्वती, पूर्वमें इलाहाबाद, उत्तरमें हिमालय और दक्षिणमें विंध्य एवं पारियात्र [विशेष द्रष्टव्य : नंदलाल डे प्रा०और म० का० भार० भौगो० नामकोश तथा B. C. Law-Hist Geog of Ancient, India 'मध्यप्रदेश']

मलयाचल-मलयगिरि, पश्चिम घाटका दक्षिणपर्वत ५ २.१२;९.१९.१

महरट्ठ-महाराष्ट्रदेश, ऊपरी गोदावरी और कृष्णा नदीके बीचका प्रदेश, जो किसी समय 'दक्षिण' कहलाता था ९ १९.३

मालव-मालवदेश इसकी प्राचीन राजधानी अवंती या उज्जयिनी रही, और भोजके समय धारा। इसको अवंती देश भी कहते थे। १ ६ १;९ १९ ८

मालविणी-मालव स्त्री ४ १५.१२

मेच्छदेश-म्लेच्छ देश सरस्वतीके उत्तर पश्चिममें कोई देश (?) ९ १९.११

मेरु-सुमेरु पर्वत (पौराणिक), ऐतिहासिक दृष्टिसे गढ़वालमे रुद्रहिमालय १.१.५,११.११.२

मेवाड़-मेवाड प्रदेश (राजपूताना) ९.१९ ८

मेहवणपत्तण-मेघवनपत्तन (?) प्रश० गाथा ७

रयणप्पह-रत्नप्रभा, एक नरक भूमि, ११.१०.४

राढ-राढदेश, गंगाके पश्चिममें बंगालके तमलुक, मिदनापुर, हुगली और बर्दवान जिले (देखें 'बंग') ९ १९.१४

रायगिह-राजगृह, आधुनिक राजगिरि (दक्षिण-बिहार) ३.१४.२१;४.५.५

रेवानई-रेवा, नर्मदा नदी ५.१.५;५.१०.२४

लंकानयरि-लंकानगरी पालि साहित्यके प्रमाणानुसार आधुनिक सीलोनको लंका कहा जाता है। परंतु कुछ कारण हैं जिनसे प्राचीन लंका सीलोनसे भिन्न प्रतीत होती है। आधुनिक विद्वानोंमें डॉ० राजवली पाण्डेय आदिका मत भी सीलोनको लंका माननेके विरुद्ध है। (विशेष द्रष्टव्य : नं० ल० डे : प्रा० म० भा० भौगो० नामकोश) ५.८ ३३,

लंजिया-लंजिकादेश, संभवतः लांगुलिनी नदीका

प्रदेश गोदावरी और महानदीके बीच लागुलिया, लागुलिनी (मा०पु०) लांगली (महाभा०) नागलंदी अथवा नागवती नदी बहती है जो कलहंडीसे निकलकर गजम जिलेमें होती हुई मद्रासमें चिकाकोलके बीच खाडीमें गिरती है चिकाकोल विजयानगरम् और कलिंगपत्तमके बीच स्थित है। ९.१९.१

लाडदेश–लाटदेश ९.१९.८, निम्न तासीके बीचमें खानदेश सहित दक्षिण गुजरात।

लोहपुर–लोहपुर, लोहावर, लवपुर, आधुनिक लाहौर ९ १९.११

वइतरणी–वैतरणी नरक नदी ११.४.३; वयतरणी-वही, २.१३.१३

वइदब्भ–वैदर्भ, विदर्भ ९.१९.३; बरार, खानदेश, निजामके प्रदेशका कुछ भाग और म०प्र०का कुछ भाग। प्राचीन समयमें इसमें भोपाल और विदिशाके राज्य सम्मिलित थे, और इसकी प्राचीन राजधानी विदर्भनगर (बीदर) थी।

वइर–वज्रदेश कलकुंड या गोलकुण्डा, हैदराबादसे सात मील दक्षिणमे, जो अपने हीरोंके लिए प्रसिद्ध रहा है। ९.१९ ५

वइरायर–वज्राकर वैडूर्य पर्वत या विंध्यपाद अर्थात् सतपुड़ा पर्वत श्रेणी, जो अपने हीरे-पन्नोंकी खानोंके लिए प्रसिद्ध है। १.२.१०; ९ १९.३

वज्जर–वज्र, हैमवन, हेमकूट या कैलास पर्वत, जो कुबेरका निवास समझा जाता है ९ १९ ११

वडुहर–वडहर, काशीके पास एक गांव ९.१९.१६

वड्ढमाण–वर्द्धमान प्राचीन मगधमे एक गाँव २.४.१२, ८.२.८

वणघट्ट–आधुनिक चुनार (उ० प्र०) ९.१९.१६

वराड–बरार प्रान्त ९.१९.४; देखें 'वइदब्भ'

वरेंदोसिरी–वरेंद्रश्री, वोरेंद्र, उत्तरी बंगाल, (देखें : 'वंग') ९.१९.१४

वाणरमुह–वानरमुख, एक उत्तर पर्वतीय जाति ९.१९.१३ (देखिए वृ० सं० ६८.१०३)

वाणारसी–वाराणसी, बनारस ९.१९.१६

वाराणसि–वही, १०.१५ १

वालभ–वल्लभी ९ १९.६; खम्भातकी खाडीमें आधुनिक वल या वल्ले बन्दरगाह, भावनगर (गुजरात) से १८ मील उत्तर-पश्चिम।

विउल–विपुल पर्वत १.१४.१०; °इरि–गिरि, वही १०.२३.१२, °गिरि १ १६.८

विंज्झ–विंध्यपर्वत ५.८ १, ९.१९.४; १०.१२.१; °इरि–गिरि ४.१५.९; °एस–वध्यदेश ५.८.३८, °डइ–विंध्याटवी ५ ८.३०

विजय–विजय नामक एक स्वर्ग

विजयद्ध–विजयार्द्ध पर्वत (पौराणिक) ११.११.८

विमल गिरि–विमलाचल, विपुलाचल २०.२०.९

वीयसोया–वीतशोका नगरी (पौराणिक) ३.३.६

सजाण–संजन ९ १९.४, बंबईके थाना जिलेमें सजय नामक एक पुराना गाँव; अरबोंका सिंदन, महाभारतके अनुसार संजयंती नगरी। इसे शाहपुर भी कहा जाता था और एक नाम साहंजन भी था।

सवाहण–संवाहन नगर ९.१९ ४, मगधमें गंगाके तटपर कोई प्राचीन नगर।

सक्करपह–शर्कराप्रभा (एक नरक पृथ्वी), ११.१०.५

सज्झगिरि–सह्यगिरि, सह्याद्रि पश्चिमी घाट पर्वत श्रेणी, कावेरी नदीके उत्तरकी श्रेणियाँ ४.१५ २० ९.१९.३

सत्तगोयावरी–सप्तगोदावरी भीम, गोदावरीके सात मुहाने और गोदावरी जिलेमें सोलंगीपुर नामक तीर्थ ९.१९ १६

सरसइ–सरस्वती नदी, जो हिमालयकी शैवालिक नामक पहाड़ी नदीसे निकलकर कई स्थानोंपर लुप्त और फिर प्रगट होती हुई घग्घर या घाघरा नदीमें मिल जाती है, जो सरस्वतीका ही निचला भाग है, ९.१९ ११

सव्वत्थसिद्धि–सर्वार्थसिद्धि, सर्वोच्च स्वर्ग ११ १२.२

सरूवायर–स्वरूपाकर (विशेषण), कामरूप ९.१९.११

सहससिंग–सहस्रशृंग पर्वत, संभवतः सह्याद्रि (?) ५.२.८

सायंभरी–शाकंभरीतीर्थ, अजमेर (उ० प्र०) के पास सांभर ९.१९ ९

सिंघल–सिंहल, सीलोन ९.१९.१

सिंधु–सिंधु नदी, उत्तर भारतकी सबसे बड़ी व प्रधान नदी, ९.१९.११

सिंधुतीर–सिंधुतट, सिंधुनदी, मालवामें कालीसिंधु जिसे दक्षिण सिंधु भी कहा जाता है, ९.१५ ५

सिंधुवरिसी–सिंधुवर्षी नगरी मालवामें सिंधुनदीके तटपर कोई प्राचीन नगर १.६.१

सिरीपव्वत–श्रीपर्वत, कर्नूलके उत्तर-पश्चिममें कृष्णा-नदीके दक्षिणमें स्थित श्रीशैल, ९.१९.२

सुरसरि–सुरसरित् गंगा, ४.१० ४;१०.१७.९

सोपारय–सोपारक या सूर्पारक पत्तन, ९.१९.५। इसे पहले सूरत समझा जाता था, जो ठीक नहीं। थाना जिलेमें बंबईके सैंतीस मील उत्तरमे सूपर या सोपर नामक स्थान हैं, जहाँ अशोक-का एक शिलालेख भी है। यह अपरांत या उत्तर कोंकणकी राजधानी थी।

सोरट्ठ–सौराष्ट्र, काठियावाड (गुजरात) ९ १९.७

सोवण्णदोणी–सुवर्ण द्रोणी ९.१९.७, संभवतः सुवर्ण-गिरि बंबईके थाना जिलेके उत्तरमें वाडके पश्चिममें, खानदेशमें वाघली नामक स्थानपर स्थित पर्वत।

हंसदीव–हंसद्वीप, लंकानगरीके समीप एक द्वीप ५.३.१; ९ १९.६; (द्रष्टव्य : विमलसूरि प० च० ५४.४५ आदि)

हत्थिणाउर–हस्तिनापुर, प्राचीन कुरुक्षेत्रकी राजधानी (जिला मेरठ, उ० प्र०) ३.१४.६

हम्मीर–हम्मीर देश, राजपूतानेमें रणथंभौर९.१९.१०

हयवयण–हरिवदन, व्याघ्रमुख जाति ९.१९ १३; (द्रष्टव्य वृ० सं० १४.५)

हिमवंत–हिमवान् पर्वत ११.११.४

हिमालय–हिमालय पर्वत ११.११.८

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪṬHA

MŪRTIDEVĪ JAINA GRANTHAMĀLĀ

General Editors :

Dr. H. L. JAIN, Jabalpur : Dr. A. N UPADHYE, Kolhapur.

The Bhāratīya Jñānapīṭha, is an Academy of Letters for the advancement of Indological Learning. In pursuance of one of its objects to bring out the forgotten, rare unpublished works of knowledge, the following works are critically or authentically edited by learned scholars who have, in most of the cases, equipped them with learned Introductions etc. and published by the Jñānapīṭha.

Mahābandha or the **Mahādhavalā :**

This is the 6th Khaṇḍa of the great Siddhānta work *Saṭkhaṇḍāgama* of Bhūtabali : The subject matter of this work is of a highly technical nature which could be interesting only to those adepts in Jaina Philosophy who desire to probe into the minutest details of the Karma Siddhānta The entire work is published in 7 volumes. The Prākrit Text which is based on a single Ms. is edited along with the Hindī Translation. Vol I is edited by Pt. S. C. DIWAKAR and Vols. 2 to 7 by Pt. PHOOLACHANDRA. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jain Granthamālā, Prākrit Grantha Nos. 1, 4 to 9. Super Royal Vol I : pp. 20 + 80 + 350 ; Vol. II : pp. 4 + 40 + 440 ; Vol. III : pp. 10 + 496 ; Vol. IV : pp. 16 + 428 ; Vol. V : pp. 4 + 460 ; Vol VI : pp. 22 + 370 ; Vol VII : pp 8 + 320. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1947 to 1958. Price Rs. 11/- for each vol.

Karalakkhaṇa :

This is a small Prākrit Grantha dealing with palmistry just in 61 gāthās. The Text is edited along with a Sanskrit Chāyā and Hindī Translation by Prof. P. K. MODI Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākrit Grantha No. 2. Third edition, Crown pp. 48 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1964. Price 75 P.

Madanaparājaya :

An allegorical Sanskrit Campū by Nāgadeva (of the Saṁvat 14th century or so) depicting the subjugation of Cupid Edited critically by Pt. RAJKUMAR JAIN with a Hindī Introduction, Translation etc, Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthmālā, Sanskrit Grantha No 1. Second edition. Super Royal pp. 14 + 58 + 144. Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1964. Price Rs 8/-.

Kannaḍa Prāntīya Tāḍapatrīya Grantha-sūcī :

A descriptive catalogue of Palmleaf Mss. in the Jaina Bhaṇḍāras of Moodbidri, Karkal, Aliyoor etc. Edited with a Hindī Introduction etc. by Pt. K. BHUJABALI

SHASTRI. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthmālā, Sanskrit Grantha No. 2 Super Royal pp. 32 + 324 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1948. Price Rs. 13/-.

Tattvārtha-vṛtti :

This is a critical edition of the exhaustive Sanskrit commentary of Śrutasāgara (c 16th century Vikrama Saṁvat) on the Tattvārthasūtra of Umāsvāti which is a systematic exposition in Sūtras of the fundamentals of Jainism. The Sanskrit commentary is based on earlier commentaries and is quite elaborate and thorough. Edited by Pts. MAHENDRAKUMAR and UDAYACHANDRA JAIN Prof. MAHENDRAKUMAR has added a learned Hindī Introduction on the exposition of the important topics of Jainism. The edition contains a Hindī Translation and important Appendices of referential value. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 4. Super Royal pp. 108 + 548 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1949, Price Rs. 16/-

Ratna-Mañjūṣā with Bhāṣya :

An anonymous treatise on Sanskrit prosody. Edited with a critical Introduction and Notes by Prof. H D VELANKAR. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 5. Super Royal pp 8 + 4 + 72. Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1949. Price Rs. 2/-.

Nyāyaviniścaya-vivaraṇa :

The Nyāyaviniścaya of Akalaṅka (about 8th century A D) with an elaborate Sanskrit commentary of Vādirāja (c. 11th century A. D) is a repository of traditional knowledge of Indian Nyāya in general and of Jaina Nyāya in particular. Edited with Appendices etc. by Pt MAHENDRAKUMAR JAIN. Jñānapīthā Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos. 3 and 12. Super Royal Vol I : pp 68 + 546 ; Vol II : pp. 66 + 468 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1949 and 1954. Price Rs 15/- each.

Kevalajñāna-praśna-cūḍāmaṇi

A treatise on astrology etc. Edited with Hindī Translation, Introduction, Appendices, Comparative Notes etc. by Pt. NEMICHANDRA JAIN. Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 7 Super Royal pp 16 + 128. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1950. Price Rs. 4/-.

Nāmamālā :

This is an authentic edition of the Nāmamālā, a concise Sanskrit Lexicon of Dhanañjaya (c 8th century A. D) with an unpublished Sanskrit commentary of Amarkīrti (c 15th century A. D). The Editor has added almost a critical Sanskrit commentary in the form of his learned and intelligent foot-notes. Edited by Pt. SHAMBHUNATH TRIPATHI, with a Foreword by Dr. P. L. VAIDYA

and a Hindī Prastāvanā by Pt. MAHENDRAKUMAR. The Appendix gives Anekārtha nighaṇṭu and Ekākṣarī-kośa. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 6. Super Royal pp. 16 + 140. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1950. Price Rs. 3.50 P.

Samayasāra :

An authoritative work of Kundakunda on Jaina spiritualism Prākrit Text, Sanskrit Chāyā. Edited with an Introduction, Translation and Commentary in English by Prof. A. CHAKRAVARTI. The Introduction is a masterly dissertation and brings out the essential features of the Indian and Western thought on the all-important topic of the Self. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, English Grantha No. 1 Super Royal pp. 10 + 162 + 244. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1950. Price Rs. 8/-

Jātakaṭṭhakathā :

This is the first Devanāgarī edition of the Pāli Jātaka Tales which are a store-house of information on the cultural and social aspects of ancient India. Edited by Bhikshu DHARMARAKSHITA. Jñānapīṭha Mūrtidevī Pāli Granthamālā No. 1, Vol. 1. Super Royal pp 16 + 384. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi. 1951. Price Rs. 9/-.

Kural or Thirukkural :

An ancient Tamil Poem of Thevar. It preaches the principles of Truth and Non-violence. The Tamil Text and the commentary of Kavirājapaṇḍita. Edited by Prof. A. CHAKRAVARTI with a learned Introduction in English. Bhāratīya Jñānapīṭha Tamil Series No. 1. Demy pp. 8 + 36 + 440. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1951. Price Rs. 5/-.

Mahāpurāṇa :

It is an important Sanskrit work of Jinasena-Guṇabhadra, full of encyclopaedic information about the 63 great personalities of Jainism and about Jaina lore in general and composed in a literary style. Jinasena (837 A. D.) is an outstanding scholar, poet and teacher ; and he occupies a unique place in Sanskrit Literature. This work was completed by his pupil Guṇabhadra. Critically edited with Hindī Translation, Introduction, Verse Index etc. by Pt. PANNALAL JAIN. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos. 8, 9 and 14. Super Royal : Second edition, Vol. I : pp. 8 + 68 + 746, Vol. II : pp. 8 + 556 ; Vol III. : pp. 24 + 708 ; Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi. 1951 to 1954. Price Rs. 10/- each.

Vasunandi Śrāvakācāra :

A Prākrit Text of Vasunandi (c. Saṁvat first half of 12th century) in 546 gāthās dealing with the duties of a householder, critically edited along with a Hindī

Translation by Pt. HIRALAL JAIN. The Introduction deals with a number of important topics about the author and the pattern and the sources of the contents of this Śrāvakācāra. There is a table of contents There are some Appendices giving important explanations, extracts about Pratisthāvidhāna, Sallekhanā and Vratas There are 2 Indices giving the Prākrit roots and words with their Sanskrit equivalents and an Index of the gāthās as well Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākrit Grantha No. 3. Super Royal pp. 230. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1952. Price Rs 5/-

Tattvārthavārttikam or Rājavārttikam

This is an important commentary composed by the great logician Akalaṅka on the Tattvārthasūtra of Umāsvāti. The text of the commentary is critically edited giving variant readings from different Mss by Prof. MAHENDRAKUMAR JAIN. Jñānapīṭha Mūrtidevī Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 10 and 20. Super Royal Vol. I : pp 16+430 ; Vol. II : pp. 18+436. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1953 and 1957. Price Rs 12/-for each Vol

Jinasahasranāma :

It has the Svopajña commentary of Paṇḍita Āśādhara (V. S 13th century) In this edition brought out by Pt. HIRALAL a number of texts of the type of Jinasahasranāma composed by Āśādhara, Jinasena, Sakalakīrti and Hemacandra are given Āśādhara's text is accompanied by Hindī Translation. Śrutasāgara's commentary of the same is also given here. There is a Hindī Introduction giving information about Āśādhara etc. There are some useful Indices Jñānepīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 11. Super Royal pp. 288 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1954. Price Rs. 4/-.

Purāṇasāra-Saṃgraha :

This is a Purāṇa in Sanskrit by Dāmanandi giving in a nutshell the lives of Tīrthaṁkaras and other great persons The Sanskrit text is edited with a Hindī Translation and a short Introduction by Dr G.C. JAIN. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 15 and 16. Crown Part I pp. 20 + 198; Part II : pp. 16 + 206. Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1954, 1955. Price Rs. 2/- each.

Sarvārtha-Siddhi :

The Sarvārtha-Siddhi of Pūjyapāda is a lucid commentary on the Tattvārthasūtra of Umāsvāti called here by the name Gṛdhrapiccha. It is edited here by Pt. PHOOLCHANDRA with a Hindī Translation, Introduction, a table of contents and three Appendices giving the Sūtras, quotations in the commentary and a list of technical terms. Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 13. Double Crown pp. 116 + 506, Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1955. Price Rs. 12/-.

Jainendra Mahāvṛtti :

This is an exhaustive commentary of Abhayanandi on the *Jainendra Vyākaraṇa*, a Sanskrit Grammar of Devanandi alias Pūjyapāda of circa 5th-6th century A. D. Edited by Pts. S N. TRIPATHI and M CHATURVEDI. There are a Bhūmikā by Dr. V.S AGRAWALA, *Devanandikā Jainendra Vyākaraṇa* by PREMI and *Khilapāṭha* by MIMĀNSAKA and some useful Indices at the end. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 17. Super Royal pp. 56 + 506. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1956. Price Rs. 15/-.

Vratatithi Nirṇaya :

The Sanskrit Text of Sinhanandi edited with a Hindī Translation and detailed exposition and also an exhaustive Introduction dealing with various Vratas and rituals by Pt NEMICHANDRA SHASTRI. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 19 Crown pp. 80 + 200. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1956. Price Rs. 3/-.

Pauma-cariü :

An Apabhraṁśa work of the great poet Svayambhū (677 A. D). It deals with the story of Rāma. The Apabhraṁśa text up to 56th Sandhi with Hindi Translation and Introduction of Dr. DEVENDRAKUMAR JAIN, is published in 3 Volumes Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Apabhraṁśa Grantha Nos 1, 2 & 3. Crown size, Vol. I pp 28 + 333; Vol II : pp. 12 + 377; Vol. III : pp. 6 + 253. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1957, 1958. Price Rs. 3/- for each Vol.

Jīvaṁdhara-Campū :

This is an elaborate prose Romance by Haricandra written in Kāvya style dealing with the story of Jīvaṁdhara and his romantic adventures. It has both the features of a folk-tale and a religious romance and is intended to serve also as a medium of preaching the doctrines of Jainism. The Sanskrit Text is edited by Pt PANNALAL JAIN along with his Sanskrit Commentary, Hindī Translation and Prastāvanā. There is a Foreword by Prof. K. K. HANDIQUI and a detailed English Introduction covering important aspects of Jīvaṁdhara tale by Drs. A.N. UPADHYE and H. L JAIN. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jain Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 18. Super Royal pp. 4 + 24 + 20 + 344. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1958. Price Rs. 8/-.

Padma-purāṇa :

This is an elaborate Purāṇa composed by Raviṣeṇa (V. S. 734) in stylistic Sanskrit dealing with the Rāma tale. It is edited by Pt. PANNALAL JAIN with Hindī Translation, Table of contents, Index of verses and Introduction in Hindī dealing with the author and some aspects of this Purāṇa. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 21, 24, 26. Super Royal

Vol. I : pp. 44 + 548 ; Vol. II : pp. 16 + 460 ; Vol. III : pp. 16 + 472. Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1958-1959 Price Rs 10/- each

Siddhi-viniścaya :

This work of Akalankadeva with Svopajñavrtti along with the commentary of Anantavirya is edited by Dr. MAHENDRAKUMAR JAIN. This is a new find and has great importance in the history of Indian Nyāya literature. It is a feat of editorial ingenuity and scholarship The edition is equipped with exhaustive, learned Introductions both in English and in Hindi, and they shed abundant light on doctrinal and chronological problems connected with this work and its author. There are some 12 useful Indices Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 22, 23. Super Royal Vol I . pp. 16 + 174 + 370 , Vol II : pp. 8 + 808 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1959. Price Rs 18/- and Rs 12/-.

Bhadrabāhu Samhitā :

A Sanskrit text by Bhadrabāhu dealing with astrology, omens, portents etc. Edited with a Hindī Translation and occasional Vivecana by Pt NEMICHANDRA SHASTRI. There is an exhaustive Introduction in Hindī dealing with Jain Jyotisa and the contents, authorship and age of the present work. Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 25. Super Royal pp 72 + 416. Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1959. Price Rs. 3/-.

Pañcasamgraha :

This is a collective name of 5 Treatises in Prākrit dealing with the Karma doctrine the topics of discussion being quite alike with those in the Gommatasāra etc. The Text is edited with a Sanskrit commentary, Prākrit Vrtti by Pt. HIRALAL who has added a Hindī Translation as well. A Sanskrit Text of the same name by one Śrīpāla is included in this volume There are a Hindī Introduction discussing some aspects of this work, a Table of contents and some useful Indices. Jñānpītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākrit Grantha No 10. Super Royal pp. 60 + 804. Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1960. Price Rs. 15/-.

Mayana-parājaya-cariu :

This Apabhramśa Text of Harideva is critically edited along with a Hindī Translation by Prof Dr. HIRALAL JAIN It is an allegorical poem dealing with the defeat of the god of love by Jina. This edition is equipped with a learned Introduction both in English and Hindī. The Appendices give important passages from Vedic, Pāli and Sanskrit Texts. There are a few explanatory Notes, and there is an Index of difficult words. Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Apabhramśa Grantha No 5. Super Royal pp. 88 + 90 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1962. Price Rs. 8/-.

Harivaṁsa Purāṇa :

This is an elaborate Purāna by Jinasena (Śaka 705) in stylistic Sanskrit dealing with the Harivaṁśa in which are included the cycle of legends about Kṛṣṇa and Pāṇḍavas The text is edited along with the Hindī Translation and Introduction giving information about the author and this work, a detailed Table of contents and Appendices giving the verse Index and an Index of significant words by Pt. PANNALAL JAIN. Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 27. Super Royal pp, 12+16+812+160. Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1962 Price Rs. 16/-.

Karmaprakṛti :

A Prākrit text by Nemicandra dealing with Karma doctrine, its contents being allied with those of Gommatasāra Edited by Pt. HIRALAL JAIN with the Sanskrit commentary of Sumatikīrti and Hindī Tīkā of Paṇḍita Hemarāja, as well as translation into Hindī with Viśesārtha. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākrit Grantha No. 11. Super Royal pp. 32+160. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1964 Price Rs 6/-

Upāskādhyayana :

It is a portion of the Yaśastilaka-campū of Somadeva Sūri. It deals with the duties of a householder. Edited with Hindi Translation, Introduction and Appendices etc. by Pt. KAILASHCHANDRA SHASTRI Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Granth No 28. Super Royal pp. 116 + 539, Bhāratiya Jñānapīṭha, Kashi 1964. Price Rs. 12/-.

Bhojcaritra :

A Sanskrit work presenting the traditional biography of the Paramāra Bhoja by Rājavallabha (15th century A. D) Critically edited by Dr. B. Ch. CHHABRA, Jt Director General of Archaeology in India and S. SANKARNARAYANA with a Historical Introduction and Explanatory Notes in English and Indices of Proper names. Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 29 Super Royal pp 24 + 192. Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1964 Price Rs 8/-

Satyaśāsana-parīkṣā :

A Sanskrit text on Jain logic by Ācārya Vidyānandi critically edited for the first time by Dr. GOKULCHANDRA JAIN It is a critique of selected issues upheld by a number of philosophical schools of Indian Philosophy There is an English compendium of the text, by Dr NATHMAL TATIA. Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grant a No 30. Super Royal pp. 56 + 31 + 62, Bhāratīya Jñānapīṭha, Kashi, 1964. Price Rs 5/-.

Karakaṇḍa-cariu :

An Apabhraṁśa text dealing with the life story of king Karakaṇḍa, famous as

'Pratyeka Buddha' in Jaina & Buddhist literature. Critically edited with Hindi & English Translations, Introductions, Explanatory Notes and Appendices etc. by Dr. HIRALAL Jain, Jnānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Apabhraṁśa Grantha No. 4 Super Royal pp 64 + 278. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1961 Price Rs. 10/-

Sugandha-daśamī-kathā :

This edition contains Sugandha-daśamīkatha in five languages viz. Apabhraṁśa, Sanskrit, Gujarāti, Marāthi and Hindi, critically edited by Dr HIRALAL JAIN. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā Apabhraṁśa Grantha No. 6. Super Royal pp 20 + 26 + 100 + 16 and 48 Plates. Bhāratīya Jñanapitha Publication Varanasi, 1966 Price Rs. 11/-

Kalyānakalpadruma :

It is a Stotra in twenty five Sanskrit verses. Edited with Hindi Bhāsya and Prastāvanā etc. by Pt. JUGALKISHORE MUKHTAR. Jñānapitha Mūrtidevī Jaina Granthamālā Sanskrit Grantha No 32 Crown pp 76. Bhāratīya Jñānapīṭha Publication, Varanasi, 1967 Price Rs 1/50.

Jambū sāmi cariu :

This Apabhraṁśa text of Vīra Kavi deals with the life story of Jambū Swāmi, a historical Jain Ācarya who passed in 463 A. D. The text is critically edited by Dr Vimal Prakash Jain with Hindi translation, exhaustive introduction and indices etc Jñānapīṭha Murtidevī Jaina Granthamālā Apabhraṁśa Grantha No. 7. Super Royal pp. 16 + 152 + 402; Bhāratīya Jñānapītha Publication, Varanasi, 1968 Price Rs. 15/-.

Gadyacintāmaṇi :

This is an elaborate prose romance by *Vādībha Singh Sūri*, *written in Kāvya* style dealing with the story of Jīvandhara and his romantic adventures. The Sanskrit text is edited by Pt Pannalal Jain along with his Sanskrit Commentary, Hindi Translation, Prastāvanā and indices etc Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 31 Super Royal pp. 8 + 10 + 258. Bhāratīya Jñānapīṭha Publication, Varanasi 1968 Price Rs 12/-.

Yogasāra Prābhṛta :

A Sanskrit text of Amitgati Ācarya dealing with Jain Yoga vidyā. Critically edited by Pt. Jugalkishore Mukhtār with Hindi Bhāṣya, Prastāvanā etc. Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā Grantha No. 33 Super Royal pp. 14 + 236. Bhāratīya Jñānapīṭha Publication, Varanasi, 1968. Price Rs 8/-

For copies please write to :
Bharatiya Jnanpitha, 3620/21, Netaji Subhas Marg, Dariyaganj, Delhi (India)